श्रीः ।

भिषग्वर--शार्ङ्गधररचित-

शार्ङ्गधरसंहिता.

भाषाटीकासमेता.

चिकित्साग्रन्थ.
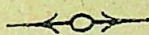
मथुरानगरनिवासि पाठकज्ञातीय श्रीकन्हैयालालमाथुरपुत्र-
आयुर्वेदोद्धारसंपादक पंडित दत्तराम चतुर्वेदी-
रचित माथुरीभाषाटीकाविभूषित.

जिसको
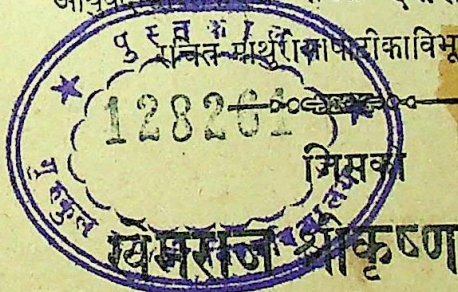
खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई.

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया.

संवत् १९६३, शके १८२८.

प्रस्तावना ।

शार्ङ्गधरके जीवनचरित्रको त्यागके हम इस ग्रंथके विषयमें कुछ लिखते हैं । सबको विदि है कि, यह "शार्ङ्गधरग्रंथ" ऋषिप्रोक्त नहीं है तथापि ऋषिप्रोक्तग्रंथोंसे प्रतिष्ठामें न्यून नहीं है इसी कारण एतद्देशीय वैद्योंने इसकी लघुत्रयीमें गणना की और इसको संहिता संज्ञा दी क्यों न हो जब स्वयं ग्रंथकार प्रथमही प्रतिज्ञा करते हैं ।

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः ।

अर्थात् जो प्रसिद्ध योग मुनीश्वरोंके कहे और वैद्योंके वारंवार अनुभव कियेहुए हैं उनक संग्रह सत्पुरुषोंके प्रसन्न करनेको शार्ङ्गधरनामा मैं करताहूं ।

इस लिखनेसे यह प्रयोजन है कि, यह शार्ङ्गधर ग्रंथ ग्रंथकारका स्वकपोलकल्पित नहीं है किंतु ऋषि मुनियोंके सर्वत्र प्रसिद्ध और प्राचीन आचार्योंके परिचित प्रयोग जो अत्यंत दुष्प्राप थे उनका संग्रहरूप यह ग्रंथ अस्मदादि मूढबुद्धिवालोंके निमित्त निर्माण किया । इसकारण इ ग्रंथको ऋषिप्रोक्तही समझना ।

अब आप इसको ध्यान देकर देखिये कि, किस प्रणालीसे ग्रंथकारने इसे निर्माण किय है । देखिये प्रथम मंगलाचरणमें विलक्षणता कि, अभीष्ट श्रीशिवको प्रणाम कर उनकी उपम वैद्यके प्रयोजनीय और औषधपर घटित की. फिर मुनिप्रोक्त और चिकित्सकोंके आनुभविक प्रयोगसे यह कथनद्वारा ग्रंथकी उत्तमता दिखाय, रोगोंके निदानपंचकका दिग्दर्शनमात्र वर्ण कर, कर्षणबृंहणात्मक द्विविध चिकित्सा कही ।

परंतु वह चिकित्सा औषधके विना नहीं होसके इसवास्ते औषधोंकी अचिंत्यशक्ति वर्णनसे संपूर्ण प्राणिमात्रको औषधमें पूर्ण विश्वास कराय दी । फिर औषध रोगोंकी करीजा है इसवास्ते चतुर्विध रोगोंके भेद दिखलाय उनको शांतिकारी प्रयोगाचरण करे यह कहा कदाचित् फिरभी रोगियोंको अश्रद्धा न हो इसवास्ते इस ग्रंथके प्रयोगोंको सप्रमाणता दिखाई

---

१ बृहत्संहितामें लिखाहै—मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरंतनं साधु न मनुजग्रथितम् ॥
तुल्येर्थेक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥ १ ॥
इस श्लोकका यह तात्पर्य है कि, यह ग्रंथ प्राचीन मुनियोंका बनाया है इससे उत्तम है और य मनुष्यरचित है इससे श्रेष्ठ नहीं परंतु यह महान् भूल है । सिवाय वेदके अन्यग्रंथमें एकसा अर्थ होने इसका विचार नहीं है । इसीप्रकार वाग्भट ग्रंथके अंतमेंभी लिखा है उसको बुद्धिमान् देखलेवेंगे ।

फिर देखिये कि, बुद्धिमान् वह कहाता है जो पूर्वही विचारके कार्य आरंभ करता है । यह नहीं कि, विचारा तो कुछ और कुछका कुछ लिखमारा इसवास्ते इस आचार्यने प्रथमही अपने कथनीय विचारको अनुक्रमणिका द्वारा लिख दियाहै । फिर कोई पामरजन न्यूनाधिक करके इस ग्रंथको न बिगाडे इससे—

द्वात्रिंशत्संमिताध्यायैर्युक्तेयंसंहितास्मृता ।
षड्विंशतिशतान्यत्रश्लोकानांगणनापिच ॥

यह लिखकर मानो इस ग्रंथपर अपनी मुद्रा करदी और २६०० छब्बीससौ श्लोकोंकी संख्या लिखनेका तात्पर्य यह है कि, मैंने इस शार्ङ्गधरसंहितामें बत्तीस अध्याय और छब्बीससौ श्लोक कहेहैं । इससे न्यूनाधिकको बुद्धिमान् पुरुष प्रक्षिप्त जाने अर्थात् वे मेरे बनाए नहीं हैं पीछेसे मिलाए गएहैं ।

फिर पूर्वोक्त अनुक्रमणिकाके अनुसार तोल, युक्तायुक्तविचार, औषधकी योजना आदि लिख औषध लानेकी विधि और औषधकी परीक्षा आदि लिखीहै । फिर औषधग्रहणका काल, रस, वीर्य, विपाकादिका वर्णन, ऋतुवर्णन, और उनमें दोषोंका संचय, कोप और शमनआदिका वर्णन, करके फिर नाडीपरिक्षा, दीपन पाचनादि कहके आगे शारीरभाग संक्षेपसे दिखाय फिर मुख्य २ रोगोंकी गणना लिखीहै ।

फिर दूसरे खंडमें पंचविध कषाय, तेल, चूर्ण, गुटिका, संधान तथा पारद आदि रसोपरसकी शुद्धि, तथा जारण मारण लिख साधारण रस लिखे हैं । फिर उत्तरखंडमें स्नेहपान, स्वेदन, वमन विरेचन, बस्तिकर्म, नस्य, धूमपान, गंडूष, कवल, प्रतिसारं लेपादि और रुधिरमोक्षविधि कहके अंतमें नेत्रकर्मविधि लिखी है ।

इसप्रकार ग्रंथका क्रम दूसरे किसी ग्रंथमें नहीं है । इत्यादि गुणगुंफित ग्रंथको देखा तो इस ग्रंथकी सर्वत्र दुर्दशा देखी । ग्रंथकर्त्ताके रचित करनेपरभी पामर जनोंने ऐसा बिगाडा कि, कुछ लिखा नहीं जाय । कहीं अधिक पाठ बढायदिया कहीं असलमें भी न्यून करदिया । फिर और देखिये कि, इन ग्रंथशत्रु और हमारे देशके अवनतिकर्त्ता मूर्ख छापनेवालोंने सर्वनाश कर दिया कि, यदि ग्रंथ शुद्धभी होय तथापि छापकर सर्वथा अशुद्ध करके भोले भाले ग्राहकोंको ठगना । इसका मुख्य कारण यही है कि, वे मुसलमान, कायस्थ, बनिये, दूसर, खत्री, कहार, कलवार और इतर शूद्रादिक हैं जो संस्कृत लेशमात्रभी नहीं जानते । ऐसे छापनेवाले हिन्दीके लखनऊ, देहली, आगरा, मथुरा आदि शहरोंमें बेशुमार हैं परंतु पूना, बंबई, काशी, कलकत्ते आदिमें संस्कृत ग्रंथ तथा स्वदेशभाषाके ग्रंथ अतिपरिश्रमके साथ बहुतसी प्रतियोंको एकत्र कर शुद्ध करके छापते हैं उनको देशहितैषी अवश्य जानना । इत्यादि छापेके दोषसे इस शार्ङ्गधरको

अशुद्ध देखके हमने इसको शुद्ध करना विचारा तो कईप्रति एकत्र करी उनसे तथा इस ग्रंथकी दो संस्कृतटीका मिलीं एकका नाम गूढार्थदीपिका और दूसरीका नाम आढमल्ली । इनमें आढमल्ली टीका सर्वोत्तम और बहुधा दुष्प्राप्य है । इन सबसे प्रथम ग्रंथका यथायोग्य शोधन करके उक्त टीकाओंकी सहायतासे इस शार्ङ्गधरकी माथुरी भाषाटीका निर्माण करी । यद्यपि यह टीका सर्वोत्तम नहीं है परंतु अन्य २ जो हिन्दी टीका छपी हैं उनसे सर्वप्रकार उत्कृष्ट है । हमारे कहनेसेही क्या है विद्वान् जन आपही कहदेवेंगे । जब यह ग्रंथ सटीक बनके तैयार होगया इतनेहीमें श्रीयुत गोब्राह्मणप्रतिपालक वैश्यवंशकुलकैरवेन्दु श्रीवेङ्कटेशचरणकमलचंचरीक श्रीसेठजी श्रीकृष्णदासात्मज खेमराजजीका पत्र आया कि, आप इस शार्ङ्गधरकी भाषाटीका जल्दी बनायके भेजो । यह पत्र देखतेही चित्तको अत्यंत हर्ष हुआ और यह पुस्तक उनको अर्पण की गई । तो उन्होंनेभी हमारा दानमसाने पूर्ण सत्कार किया और इस ग्रंथको निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" यंत्रालयमें छापकर प्रकाशित किया. मित्रहो ! यह वही पुस्तक आपके करकमलमें है जो कुछ भली और बुरी है आप देखलीजिये । इसमें जो कुछ शुद्धाशुद्ध रहगयाहै उसको आप मत्सरता त्यागके शोधन करदेना क्योंकि, भूलना यह मनुष्यका धर्म है ।

परंतु नीच और पामरोंमें "सुंदरमणिमयभवने पश्यति छिद्रं पिपीलिका सततम्" यह वाक्य चारितार्थ होवेगा परंतु उनसे हमारी क्षति किसीप्रकार नहीं होसकती अलमतिविस्तरेण ।

आपका कृपाभाजन—

मथुरानिवासि पं० दत्तरामचौबे

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस खेतवाडी—बम्बई

ओ ३ मृ ।

शार्ङ्गधरसंहिताग्रंथकी विषयानुक्रमणिका ।

विषयाः	पृष्ठांकाः

प्रथमोध्यायः ।

मागधपरिभाषा ।

कलिंगपरिभाषा ।

षष्ठोऽध्यायः ।

इति प्रथमखंडः ।

विषयाः	पृष्ठांकाः

द्वितीयखंडः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

विषयाः	पृष्ठांकाः

अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः ।

विषयाः	पृष्ठांकाः

तैलसाधनप्रकार ।

दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

मध्यमखंडः समाप्तः ।

तृतीयखंडः प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

पंचमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

इत्यनुक्रमणिकासंपूर्णा ।

ॐ श्रीशं वन्दे ।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

शार्ङ्गधरसंहिता ।

भाषाटीकासमेता ।

आर्या ।

मथुरानगरनिवासी कृष्णतनयदत्तरामनाथुरसे ।
शार्ङ्गधरकी भाषाटीकाकीनीसुआढमल्लीसों ॥ १ ॥

इस पृथुतर और दुरधिगमनीय आयुर्वेद शास्त्रतत्त्वके जाननेमें वैद्योंको अधिक परिश्रम होताहै और उसके मध्यमें अनेक विघ्न आते हैं इसीसे सर्व ग्रंथकर्त्ता ग्रंथकार ग्रंथके आदि मध्य और अन्तमें मंगलाचरण करते हैं ऐसा शिष्टाचार है, तथा शास्त्रकीभी आज्ञाहै, अतएव यह शारंगधर ग्रंथकर्त्ताभी निजेष्टदेव श्रीशिवपार्वतीको प्रणामपूर्वक आशीर्वादात्मक मंगलाचरण करते हैं जैसे ।

श्रियं स दद्याद्भवतां पुरारिर्यदंगतेजःप्रसरे भवानी ॥
विराजते निर्मलचन्द्रिकायां महौषधीव ज्वलिता हिमाद्रौ ॥ १ ॥

१ यदंगतेजः प्रसरे–इस पदके कहनेसे यह दिखाया कि श्रीशिवका विभूतीविभूषित अंग होनेसे अति शुभ्रताके कारण पर्वतकी उपमादेना युक्तही है । और उस सुन्दर स्वरूपमें खचित श्रीभगवतीजीको औषधी स्वरूप करके कहा यह शारंगधर आचार्यकी बुद्धिकी चातुर्यता सराहने योग्य है। प्रायः वैद्योंको पर्वत और औषधिसेही कार्य रहता है अतएव इस शारंगधरसंहितामें शिव पार्वतीको पर्वत और औषधीरूप उपमा देना अपना अभीष्ट दिखलाया । कोई कहते हैं कि इस अर्द्धनारी स्वरूपके वर्णनमें वात पित्त और कफ तीनोंका आधिपत्य वर्णन करा है जैसे पित्त उष्ण होता है इसीप्रकार श्रीशिवका तेज उष्ण सो पित्ताधिप हुआ और श्रीपार्वजीकी चंद्रिका शीतल सो श्लेष्माधिप हुई, तथा सर्पभूषणसे वाताधिपत्व सूचना करी, जैसे ये तीनों गुण सदैव शिवमें स्थित हैं उसी प्रकार इस शारंगधर ग्रंथमें वातपित्तकफकी साम्यता जाननी । और जैसे हिमालयमें औषधी प्रकाशित है उसीप्रकार इस ग्रंथमेंभी औषधियोंका वर्णन है । यद्यपि यह ग्रंथकीभी उपमा कही परंतु मुख्य उपमा पर्वत और शिवकीही यथार्थ है. इस ग्रंथमें त्रिविध मंगलाचरणोंमें आशीर्वादात्मक मंगलाचरण कहाहै. इसका यह प्रयोजन है कि दुष्ट उक्तिके प्रभावसे जो दुःखस्वरूपरोग प्रकट हो उनका नाश हो और रोगनिवृत्ति करके सुखरूप श्रीकी प्राप्तिहो । २ निर्मलचंद्रिकायते इति पाठांतरम् ।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशोवापितन्मुखम् । इति त्रिविधंकाव्यलक्षणं भवति ॥

अर्थ–हिमालय पर्वतमें अत्यंत देदीप्यमान (संजीवन्यादि) महौषधी जैसे निर्मल चन्द्रमाकी चाँदनीमें शोभाको प्राप्त होती है उसीप्रकार जिनके तेजसमूहमें अर्थात अर्द्धांगमें श्रीपार्वती महाराणी विराजमान (शोभित) ऐसे श्रीशिव तुमको कल्याण अर्थ लक्ष्मी देओ ॥ १ ॥

अब कहते हैं कि यह ग्रंथ संपूर्ण प्राणिजनोंके उपकारार्थ होय इसप्रकार विचार इस ग्रंथका संबंध कहना चाहिये क्यों कि (संबंधके कहनेसे श्रोता और वक्ताकी सि हैं अत एव सर्व शास्त्रोंमें प्रथम संबंध कहतेहैं) इसीकारण शार्ङ्गधर आचार्यभी प्रथम संबंधको कहते हैं–

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः ॥
विधीयते शार्ङ्गधरेण तेषां सुसंग्रहः सज्जनरंजनाय ॥ २ ॥

अर्थ–चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरोंके कहेहुये और प्राचीन सद्वैद्योंने वारंवार नाम योजनादिक करके अनुभव (निश्चित) किये ऐसे जे विख्यात योग उनका संग्रह सज्जनोंके मनोरंजनार्थ शार्ङ्गधर नामक मैं करताहूँ, तात्पर्य यह है कि, चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरोंके प्रयोग जहाँतहाँसे लेकर प्रकारांतरसे उन्हींको शुद्धकरके मैं लिखताहूँ, इस कहनेसे ग्रंथकी उत्तमता दिखाई–और त्रिकालदर्शीको मुनि कहतेहैं उनके कहे प्रयोग इस ग्रंथमें हैं इस वाक्य कहनेसे ग्रंथकी प्रामाणिकता दिखाई-एवं वैद्योंके अनुभव प्रयोग इसमें कहे हैं, इससे इस ग्रंथकी अन्य सर्व ग्रंथोंसे उत्कृष्टतादिखाईहै अर्थात् सर्व आयुर्वेद ग्रंथोंमें यह सर्वोत्तम है ॥ २ ॥

अब (प्रथम रोगकी परीक्षा करे फिर औषधकी) इत्यादि मतको विचार शार्ङ्गधर भी कहते हैं ।

हेत्वादिरूपाकृतिसात्म्यजातिभेदैः समीक्ष्यातुरसर्वरोगान् ॥
चिकित्सितं कर्षणबृंहणाख्यं कुर्वीत वैद्यो विधिवत्सुयोगैः ॥ ३ ॥

अर्थ–प्रथम वैद्य हेतु[3] आदिरूप[4] आकृति[5] सात्म्य[6] जाँति इनभेदोंसे रोगीके

---

१ सिद्धिःश्रोतृप्रवक्तॄणां संबंधकथनाद्यतः । तस्मात्सर्वेषु शास्त्रेषु संबंधः पूर्वमुच्यते ॥

२ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनंतरमौषधम् । ततः कर्म भिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

३ जिससे रोग होय उसका नाम हेतु है उसीको निदान कहतेहैं, जैसे मृत्तिका भक्षणसे पाण्डु होताहै । ४ रोग होनेके प्रथम जंभाई आना अंगोंका टूटना अरुचि इत्यादिक लक्षण होतेहैं नाम आदिरूप है और उसको पूर्वरूप ऐसे कहतेहैं । ५ रोगोंके तृषा, मूर्च्छा, भ्रम,दाह, नाश इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं उस अवस्थाका नाम आकृति उसीको रूप कहते हैं । ६ विहार इनका रोगीके प्रकृत्यनुसार सुखकारी प्रयोगहो उसका नाम सात्म्य और उसीको कहते हैं । ७ जिन कारणोंसे वाताद्यन्यतमदोष दूषित हो ऊर्ध्वाधरातिर्यक् यथेष्ट विचरनेसे

रोगोंको जान फिर यथाशास्त्र उत्तम प्रकारके प्रयोगोंसे कर्षण और बृंहणरूप द्विविध चिकित्सा यथाक्रम करे । अन्यथा दोष लगताहै जैसे वाग्भट लिखते हैं । (कि जो विना-दोषोंके जाने वैद्य चिकित्सा कर्मको करताहै वो उस कर्मकी सिद्धिको तथा सुख और सद्गतिको नहीं प्राप्तहोता) ॥ ३ ॥

अथवा हेतु है आदिमें जिनके ऐसे जे रूपादिक तिन्होंसे प्रथम रोगपरीक्षा करके फिर चिकित्सा करे । जैसे वाग्भटमें लिखाहै (कि दर्शन स्पर्शन प्रश्न और निदान पूर्वरूप-रूप-उपशय-तथा संप्राप्ति इनसे रोगियोंके रोगकी परीक्षाकरै) तहाँ हेत्वादिक पाँच तो कहे । अब रूपादित्रयको कहतेहैं. तहाँ रूपके कहनेसे देहका स्थूल और कृशता तथा बल वर्ण और विकारादिकी परीक्षा देखनेसे करे । तथा (आसमंतात् कृतिःकरणं) जिससे सर्वत्र कर्म कराजाय ऐसी त्वगिंद्रीसे शीत, उष्ण, मृदु, कठोर आदिकी परीक्षाकरे । और सात्म्यके कहनेसे हितकारी पदार्थ जानना अर्थात् आपको कौनसी वस्तु हितहै इस वाक्यसे प्रश्नकरनेको कहा अथवा सात्म्यकरके कोई अभिलाषका ग्रहण करतेहैं. अर्थात् जिसरोगीको जिस खनेपीने आदि आहार विहारकी इच्छा होय उस इच्छाद्वाराही वैद्य रोगीके देहस्थित दोषोंके क्षीण वृद्धिका ज्ञान करे ।

इस प्रकार दर्शनादित्रयपरीक्षा कही और जातिके कहनेसे शेषइन्द्रियोंकी परीक्षा जाननी क्योंकि सुश्रुतमें रोगकी परीक्षा छैः प्रकारकी कही है (जैसे पांच श्रोत्रादिइंद्रियोंसे और छठी प्रश्नसे) तहां दर्शनादि तीन परीक्षा कहआये अब शेष श्रोत्रादिकोंकी परीक्षा कहते हैं तहाँ कर्णइन्द्रीकरके प्रनष्टशल्य स्थानीय रुधिर निकलनेके शब्दकी परीक्षा करे । जिह्वाइन्द्रीकरके प्रमेहादि रोगोंमें रसकी परीक्षा करे । और घ्राणइन्द्रीकरके अरिष्ट लिंगादि व्रणोंके गंधकी परीक्षा करे) इसप्रकार हेत्वादिकोंकी व्याख्या करी । तहाँ प्रथम अर्थ ठीक है दूसरा अर्थ जो त्रिविध और षड्विधपरीक्षापरत्व कहा है सो कल्पित है तथापि उत्तम है स-

---

त्ति होय उसकारण तथा उस दुष्टदोष तथा उस विचरना इन सबके वास्तविक होनेसे जो आनुपूर्वीकज्ञान उसको जाति अथवा संप्राप्ति कहते हैं ।

१ शरीरमें बढेहुये वातादि दोषोंको औषधि करके घटानेको कर्षण चिकित्सा कहते हैं ।

२ अतिक्षीण दोषोंके पुष्ट करनेको बृंहण चिकित्सा कहते हैं ।

३ यस्तु दोषमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् । न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।

४ दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणाम् । रोगं निदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाप्तिभिः ।

५ पंचभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेन चेति-तत्र श्रोत्रेन्द्रियविज्ञेया विशेषा रोगेषु प्रनष्टशल्यविज्ञानीयादिषु वक्ष्यन्ते । सफेनं रक्तमीरयन्ननिलः सशब्दो निर्गच्छतीत्येवमादयः । रसनेन्द्रियविज्ञेयाः प्रमेहादिषु विशेषाः । घ्राणेन्द्रियविज्ञेया अरिष्टलिंगादिषु व्रणानां च गंधविशेषाः ।

मोह्य इसपदके धरनेसे अज्ञानकी निवृत्ति कही (अर्थात् बहुतसे रोग यथार्थ देखे न गये, तथा ठीक ठीक कहनेमें नहीं आये और ठीक ठीक विचारमें नहीं आये, अथवा जो ठी पूछनेमें नहीं आये, ऐसे रोग वैद्यको मोहित करते हैं) अतएव वारंवार परीक्षाद्वारा रोगनिश्च करना चाहिये । रोगनाशक कर्म, व्याधिप्रतीकार, धातुसात्म्यार्थक्रिया, ये चिकित्साके प र्यवाचक शब्द हैं जैसे लिखाहै (उत्तम भिषगादिचतुष्टयोंका विकृतधातुके समान करनेके अ जो प्रवृत्ति है उसको चिकित्सा कहते हैं) इस कर्षण बृंहण चिकित्सा करके दोषोंको घ और बढावे जैसे लिखा है (कि दोषोंकी विषमताको रोग कहते हैं और दोषोंकी समानता आरोग्य कहते हैं) सुयोगैः इस पदसे यह सूचनाकरी कि सुंदरद्रव्योंके प्रयोगोंसे अर्थात् आरोग्यकर्त्ता औषधोंकरके वैद्य रोगीकी चिकित्सा करे ।

औषधियोंके प्रभाव ।

दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति ॥
ज्ञात्वेति संदेहमपास्य धीरैः संभावनीया विविधप्रभावाः ॥ ४

अर्थ–जैसे देवताओंके अपरिमितभेद और उत्कृष्ट प्रभाव प्रकट हैं उसीप्रकार दिव्यौष योंके अनेकभेद और अपरिमितशक्ति प्रगट होती है । इस प्रकार जान गंभीर बुद्धिवाले (अपने चित्तसे) संदेहको दूरकर आदरपूर्वक औषधोंको विविधप्रभाववती माने । इस कहने यह तात्पर्य है कि, मणि मंत्र और औषधियोंके प्रभाव अचिंत्य हैं ॥ जो बाहरके आत्माके भावोंको हिताहितकर्त्ता है उसका नाम धीर है. धीरशब्दका ग्रहण इसजगह नि यार्थज्ञानके वास्ते है ॥ ४ ॥

अब प्रयोजन कहते हैं क्योंकि * सर्वशास्त्रोंका और कर्मका जबतक प्रयोजन नहीं हो तक कोई ग्रहण नहीं करे अतएव उस प्रयोजनको कहते हैं–

स्वाभाविकागंतुककायिकान्तरा रोगा भवेयुः किलकर्मदोषजाः
तच्छेदनार्थं दुरितापहारिणः श्रेयोमयान्योगवरान्नियोजयेत् ॥ ५

अर्थ–स्वाभाविक–आगंतुक–कायिक–और आंतरिक ऐसे चारप्रकारके कर्मज

१ मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्यातास्तथैव च । तथा दुःपरिमृष्टाश्च मोहयेयुश्चिकित्सकम् २ चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते । प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्थं चिकित्सेत्यभिधीयते । ३ दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता ।

* सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् । यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत्केन गृह्यते । ४ वकरके होनेवाले जे क्षुधा, तृषा, जरा, निद्रा आदि उनको स्वाभाविक व्याधि कहते हैं । ५ जो घात निमित्त करके रोग होते हैं (जैसे सर्पका काटना शस्त्र आदिका लगना) उनको आगंतुक हैं । ६ शरीरमें वातादिदोष वैषम्यताकरके उत्पन्न हुये ज्वर, रक्तपित्त, कासादिक रोग उनको कहते हैं । ७ मनोविकारकरके उत्पन्न हुये जे मद, मूर्च्छा, संन्यास, भ्रम, भूतोन्मादादिक रोग आंतरिक (मानस) कहते हैं ।

दोषज रोग उत्पन्न होते हैं, उनके शांतिके अर्थ दुःखसे छुडानेवाले और पुण्यरूप ऐसे जे उत्तम योग उनकी योजना करनी चाहिये ॥ ५ ॥

योगवरान् इस पदके धरनेसे यह दिखाया कि समस्त आर्ष ग्रंथोंके उत्तम २ प्रयोग शांति-धरने संग्रह करके इस अपने ग्रंथमें रक्खे हैं। अब कहते हैं कि रोग तीनै प्रकारके हैं जैसे ग्रंथांतरमें लिखा हैं कि (एक तो कर्मके कोपसे, दूसरे दोषोंके कोपसे तीसरे कर्म और दोषोंके कोपसे, कायिक और मानसिकरोग प्राणियोंके देहमें होते हैं) अब इन तीनोंके पृथक् २ लक्षण कहते हैं तहां (परद्रव्ये) (धरोवर आदि) और ऋण इनके न देनेसे–गुरुस्त्रीके गमनसे ब्राह्मण आदिके मारनेसे जो रोग प्रगट होते हैं उनको कर्मज रोग कहते हैं ये औषधि करके वैद्यसे अच्छे नहीं होते) (किंतु दानै–दया–आदिकरके ब्राह्मण–गौकी सेवा करनेसे गुरुकी आज्ञा पालन करनेसे तथा इनके साथ नम्रता रखनेसे जप और तप इत्यादि करनेसे पूर्वजन्मके संचित कर्मसे उत्पन्न व्याधिका शमन होता है अब दोषजव्याधिके लक्षण कहते हैं (कि वातादि दोष अपने कारणसे कुपित हो आपसमें मिलकर इतस्ततश्चलायमान हो जो विकारोंको प्रगट करते हैं उनको दोषजरोग कहते हैं ये औषध करनेसे दूर होते हैं) अब कर्म-दोषोद्भव विकारोंको कहते हैं (कि दानादिक कर्म और औषधी इन दोनोंके करनेसे जो रोग कथंचित् कर्म और दोषोंके क्षीण होनेसे कुछ २ शांति हो उनको कर्मदोषज विकार कहते हैं) ॥

अब प्रत्यक्षादि अविरुद्ध प्रयोगोंके कहनेसे और संक्षेप करनेसे इस ग्रंथका माहात्म्य कहते हैं.

प्रयोगानागमात्सिद्धान् प्रत्यक्षादनुमानतः ॥
सर्वलोकहितार्थाय वक्ष्याम्यनतिविस्तरात् ॥ ६ ॥

अर्थ–समस्त लोकके हितार्थ इस ग्रंथमें प्रत्यक्ष–अनुमान–और आगम (शास्त्र) से सिद्ध प्रयोगोंको संक्षेप रूपसे वर्णन करते हैं ॥ ६ ॥ आगमादिकोंके लक्षण जैज्जटादि आचार्योंने कहे उनको सबके जाननेके अर्थ मैं इस जगह लिखताहूं (तहाँ आगम कहिये वेद अथवा आप्तपु-

---

१ कर्मप्रकोपेन कदाचिदेके दोषप्रकोपेन भवंति चान्ये। तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः।

२ दुष्टामयाः परकलत्रधनर्णहारगुर्वंगनागमनविप्रवधादिभिर्वा। दुष्कर्मभिस्तनुभृतामिह कर्मजास्ते नोपक्रमेण भिषजामुपयांति सिद्धिम् ॥ ३ दानैर्दयादिभिरपि द्विजदेवतागोसंसेवनप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः। युक्तपुण्यनिचयैरपचीयमानाः प्राक्कर्मजा यदि रुजः प्रशमं प्रयांति।

४ स्वहेतुदुष्टैरनिलादिदोषैरवप्लुतैःस्वेषु मुहुश्चलद्भिः। भवंति ये प्राणभृतां विकारास्ते दोषजा भेषजसिद्धसाध्याः। ५ दानादिभिः कर्मभिरौषधीभिः कर्मक्षये दोषपरिक्षयाद्यात्। सिद्ध्यंति ये यत्नवतां कथंचित्तेकर्मदोषप्रभवाविकाराः।

रुषोंका वाक्य है जैसे लिखा है कि जो सिद्धं प्रमाणोंकरके सिद्ध हो और इसलोक तथा परलो कमें हितकारी हो वह आप्तोंका आगम शास्त्र है और जो सत्य अर्थके जाननेवाले हैं उनको आ कहते हैं) अब आगमसिद्ध जो सुननेमें आता है उसको कहते हैं, जैसे लिखा है (कि इस प्रयोगके प्रभावसे हजारवर्ष जीवे और वृद्धास्त्रीभी इसके सेवन करनेसे सोलहवर्षकी अवस्थावाली होय) यह आगमसिद्धि कही । अब कहते हैं कि जो कुछ अर्थका साक्षात्कारी ज्ञान है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं. जैसे लिखा है कि (मनइन्द्रीगत भ्रांतिरहित जो वस्तु है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं और जिसमें इन्द्रियोंको यथार्थ ज्ञान न हो उसको भ्रम कहते हैं) जैसे—वमन, विरेचना योग प्रत्यक्ष फल दिखानेवाले हैं । तथा जिस वस्तुका अव्यभिचारी लक्षणोंकरके पीछेसे ज्ञा होय उसको अनुमान कहते हैं जैसे पांडुरोग मिट्टी खानेसे होता है—और वमन मक्खीके खाने होती है ऐसा अनुमान कराजाता है, उसी प्रकार त्वचाके फटने और राध (रुधिर) निकलने व्रण पकगया ऐसा अनुमान कराजाता है ॥ ६ ॥ प्रत्यक्ष अनुमान और आगम ये तीन प्रमा आयुर्वेदमें माने जाते हैं ? अब कदाचित् कोई प्रश्न करे कि यह ग्रंथ तुम किस हेतुसे करते तहां कहते हैं कि (सर्वलोकहितार्थाय) अर्थात् सर्वलोकके हितके अर्थ करताहूं, तहां लोक दो कारका है एक स्थावर (वृक्षादि) और दूसरा जंगम (पशुपक्षी मनुष्यादि) इन दोनों प्रकार लोकमें यहांपर इस मनुष्य देहका लोक शब्दकरके ग्रहण है,

कदाचित् कोई कहे कि आप जो शार्ङ्गधर ग्रंथमें लिखते हो यह अन्य प्राचीन ग्रंथद्वारा ज्ञान हो सक्ताहै फिर इस पिष्टपेषण ग्रंथसे क्या फलसिद्धि होयगी ? तहां कहते हैं कि (अनति स्तरात्) अर्थात् विस्ताररहित इस ग्रंथको मैं कहताहूं अन्य आर्ष ग्रंथ बहुप्रपंचयुक्त हैं पूर्व समाधानादि करके चित्तको उद्वेग करते हैं इस कारण मैंने यह उक्तदोषरहित संक्षेपसे कहाहै एव यह ग्रंथ उत्तम है ॥ ६ ॥

अथ अनुक्रमणिका ।

प्रथमं परिभाषा स्याद्भैषज्याख्यानकं तथा ॥
नाडीपरीक्षादिविधिस्ततो दीपनपाचनम् ॥ ७ ॥
ततः कलादिकाख्यानमाहारादिगतिस्तथा ॥
रोगाणां गणना चैव पूर्वखण्डोऽयमीरितः ॥ ८ ॥

अर्थ—अब तीनों खण्डोंकी अनुक्रमणिका कहते हैं । तहां परिभाषासे आदिले रोग

१ सिद्धं सिद्धैः प्रमाणैस्तु हितं चात्र परत्र च । आगमः शास्त्रमाप्तानामाप्ताः सत्यार्थवेदिनः ।
२ जीवेद्वर्षसहस्राणि योगस्यास्य प्रभावतः । वृद्धा च शतवर्षीया भवेत्षोडशवार्षिकी
३ मनोक्षगतमभ्रांतं वस्तु प्रत्यक्षमुच्यते । इन्द्रियाणामसंज्ञाने वस्तुतत्त्वे भ्रमः स्मृतः ॥

नांत पर्यन्त सात अध्यायों करके यह पूर्वखंड आचार्यने कहाहै । जैसे प्रथमाध्यायमें परिभाष (तोलआदि) कथन, दूसरी अध्यायमें औषधाख्यान अर्थात् औषधभक्षणादि विधि और तथाके कहनेसे द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाकादिकोंका कथन है, तीसरी अध्यायमें नाडी-परीक्षाविधि और आदिशब्दसे दूत स्वप्नादिकोंका कथन है, चतुर्थ अध्यायमें दीपनपाचना-दिलक्षण और अनुलोमन विरेचन वमन लेखन स्तंभनादिकथन है, पंचमाध्यायमें कलादिकोंका कथन तथा सृष्टिक्रम शारीरादिकोंका कथन है, छठी अध्यायमें आहारादिकोंकी गति और गर्भोत्पत्ति कुमारपोषणोक्ति प्रकृतिलक्षण कथन है, सप्तमाध्यायमें रोग (ज्वरादिकोंकी) गणना कथन इस प्रकार सात अध्यायोंकरके प्रथम खण्ड कहा है ॥ ७ ॥ ८ ॥

मध्यखंडकी अनुक्रमणिका।

स्वरसः क्राथफांटौ च हिमः कल्कश्च चूर्णकम् ॥
तथैव गुटिकालेहौ स्नेहः संधानमेव च ॥
धातुशुद्धिरसाश्चैव खंडोऽयं मध्यमःस्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ–१ अध्यायमें स्वरस और पुटपाकविधि कही है २ अध्यायमें काढे और प्रमथ्यादि तथा उष्णोदक-क्षीरपाक-अन्नक्रिया-इनकी विधि कही है ३ अध्यायमें फाँट और मंथ इनकी विधिकथन ४ अध्यायमें हिमविधिका कथन ५ अध्यायमें कल्ककथन ६ अध्यायमें चूर्णोंका कथन ७ सातवें अध्यायमें गुटिकाओंका कथन ८ अध्यायमें अवलेहोंका कथन ९ अध्यायमें घृत और तेलका कथन १० अध्यायमें मद्यभेदकथन ११ अध्यायमें स्वर्णादिकधातु और उपधातु इनका शोधन मारणकथन १२ अध्यायमें रस उपरस इनका शोधन मारण और सिद्धरस इनका कथन कहा है इस प्रकार बारह अध्यायोंकरके मध्यमखंड कहाहै ॥ ९ ॥

उत्तरखंडकी अनुक्रमणिका।

स्नेहपानं स्वेदविधिर्वमनं च विरेचनम् ॥ ततस्तु स्नेहबस्तिः स्यात्ततश्चापि निरूहणम् ॥ १० ॥ ततश्चाप्युत्तरो बस्तिस्ततो नस्यविधिर्मतः ॥ धूमपानविधिश्चैव गंडूषादिविधिस्तथा ॥ ११ ॥ लेपादीनां विधिः ख्यातस्तथा शोणितविस्रुतिः ॥ नेत्रकर्मप्रकारश्च खंडः स्यादुत्तरस्त्वयम् ॥ १२ ॥

अर्थ–१ अध्यायमें स्नेहपानविधि । २ अध्यायमें स्वेदविधि । ३ अध्यायमें वमनविधि ४ अध्यायमें विरेचनविधि । ५ अध्यायमें स्नेहबस्तिकथन । ६ अध्यायमें निरूहणविधि ७ अध्यायमें उत्तरबस्तिकथन । ८ अध्यायमें नस्यविधि । ९ अध्यायमें धूमपानविधि तथा व्रणधूपन और ग्रहधूपन जानना । १० अध्यायमें गंडूषादिविधि और कवलप्रतिसारण कथन ११ अध्यायमें लेपादिकोंकी और मस्तकमें तैल डालना तथा कर्णपूरणकी विधि जानना १२ अध्यायमें रुधिरनिकालनेकी विधि । १३ अध्यायमें नेत्रकर्मप्रकार इस प्रकार तेरह अध्याय करके उत्तरखंड कहाहै ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

अब संहिताकी निरुक्तिपूर्वक ग्रंथकी श्लोकसंख्या कहते हैं.

द्वात्रिंशत्सम्मिताध्यायैर्युक्तेयं संहिता स्मृता ॥
षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणितानि च ॥ १३ ॥

अर्थ–शारंगधरसंहिता ३२ अध्याय करके युक्त है और इसमें २६०० छव्वीससौ श्लोकोंकी संख्या कही है । पदके समूहसे वाक्य वाक्योंके समूहोंसे प्रकरण और प्रकरणके समूहसे अध्याय होती है.

औषधोंके मानकी परिभाषा ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां ज्ञायते क्वचित् ॥
अतःप्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ १४ ॥

अर्थ–मान (परिमाण) के विना औषधोंकी युक्ति (कर्त्तव्यविधि) कहीं नहीं है अत एव औषध बनानेके लिये मान (तोलने आदि) विधि इस संहितामें मागध परिभाषा करके कहताहूं यह तोलनेका प्रमाण है और भक्षणकी मात्राका प्रमाण आगे प्रत्येक प्रयोगमें कहेंगे.

त्रसरेणुका परिमाण ।

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः ॥

---

१ घृत और तैल पीनेके प्रयोगको स्नेहपान कहते हैं । २ देहमेंसे पसीने निकालनेकी विधिको स्वेद कहते हैं । ३ गुदादिकोंमें तेलकी पिचकारी मारनेके प्रयोगको स्नेहबस्ति कहते हैं । ४ काढे तथा दूध इत्यादिकरके पिचकारी मारनेके प्रयोगको निरूहणबस्ति कहते हैं । ५ उत्तरबस्तिलिंग भगादिमें पिचकारी लगानेके प्रयोगको कहते हैं । ६ नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्यविधि कहते हैं । ७ चिलम हुका अथवा बीडीमें औषध करके जो धुआँ पीते हैं उसको धूमपान कहते हैं । ८ काढे अथवा रसादिकोंके कुल्ले करनेके प्रयोगको गंडूषविधि कहते हैं । ९ लेपादिक करनेके प्रयोगको लेपविधि कहते हैं ।

१० गुंजा, मासे, तोले, पैसेरा, अधसेरा, इत्यादिक जानना ।

त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ १५ ॥

अर्थ–तीसपरमाणुका १ त्रसरेणु होताहै, और वंशी शब्द उसी त्रसरेणुका पर्यायवाचक शब्द है। परमाणु अत्यंत सूक्ष्म होते हैं वह स्वभावसे अथवा अणुभाव करके जाने जाते हैं नेत्रोंकरके नहीं प्रतीत होते ।

परमाणुके लक्षण ।

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ॥
तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते ॥ १६ ॥

अर्थ–जाली झरोंकेमें सूर्यकी किरण पडनेसे उन किरणोंमें जो धूलके बहुत बारीक कण उडते दीखते हैं उस एक एक कण (रज) का जो तीसवाँ भागहै उसको परमाणु कहतेहैं. कोई इसके आगे वंशीके लक्षण कहता जैसे (जालांतरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते) अर्थात् जाली झरोंखोंमें जो सूर्यकी गिरणोंमें रज उडती दीखतीहै उसको वंशी कहते हैं ।

मरीची आदिका परिमाण ।

षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिःषड्भिस्तु राजिका ॥
तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ॥
यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुंजा स्यातच्चतुष्टयम् ॥ १७ ॥

अर्थ–६ वंशीको १ मरीचि (जो रेतली जमीनमें धूलके बारीक कण सूर्यकी किरणोंसे चमकतेहैं) होती है । छः मरीचियोंकी १ राई, ३ राईकी १ सपेद सरसों होती है, ८ सपेद सरसोंका १ यव होताहै, और ४ यव (जों) की १ गुंजा) रत्ती घूंघची होती है ।

मासेका परिमाण ।

षड्भिस्तु रत्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ ॥

अर्थ–६ रत्तीका मासा होताहै उसको हेम और धान्यकभी कहतेहैं, (कोई सात रत्तीका कोई पांचरत्तीका और कोई दश रत्तीका माषा होताहै ऐसा कहतेहैं) ।

शाण और कोलका परिमाण ।

माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ १८ ॥
टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते ॥
क्षुद्रभो वटकश्चैव द्रंक्षणः स निगद्यते ॥ १९ ॥

अर्थ- ४ मासेका शाण होताहै उसको धरण टंकभी कहतेहैं. (जहां जहां मा आवे वहां २ छः रत्तीका मासा जानना) २ शाणका कोल होताहै उसको क्षुद्रम, वटक और द्रंक्षणभी कहतेहैं, (कोलनाम बेरका है, उसके बराबर होनेसे इस तोलकी कोलसंज्ञा रक्खी है)

कर्षका परिमाण ।

कोलद्वयं च कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका ॥ अक्षःपिचुः पाणितलं किंचित्पाणिश्च तिन्दुकम् ॥ २० ॥ बिडालपदकं चैवतथा षोडशिका मता ॥ करमध्यं हंसपदं सुवर्णकवलग्रहम् ॥ उदुंबरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते ॥ २१ ॥

अर्थ--दो कोलका कर्ष होताहै, उसको पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिंदुक, विडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपदक, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुंबर कहतेहैं अर्थात् ये १३ नाम भी उसी कर्षके हैं । (तहां अक्षनाम बहेडे का है. उसके बराबर होनेसे इस कर्षको अक्षभी कहतेहैं, तेंदूके फल समान होनेसे तिंदुक संज्ञा है, थेली भरकी पाणितल संज्ञा है, तीनउंगली करके ग्राह्य अत एव इसकी विडालपद संज्ञा सोलह मासेका होताहै इस कारण इसकी षोडशिका संज्ञा है और गूलरके समान होनेसे इस कर्षकी उदुंबर संज्ञा आचार्योंने दीनी है इसी प्रकार जितनी संज्ञा इस परिभाषामें हैं वो सब सार्थक हैं व्यवहारमें १ कर्षका १ तोला होताहै ।

अर्द्धपल और पलका परिमाण ।

स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ शुक्तिभ्यां च-पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ॥ प्रकुंचः षोडशीबिल्वं पल-मेवात्र कीर्त्यते ॥ २२ ॥

अर्थ--२ कर्षका एक अर्द्धपल उसीको शुक्ति (शीप) और अष्टमिका कहते हैं २ शुक्ति पल होताहै उसको मुष्टि, आम्र (आम्रफल) चतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी और बिल्व (बेल फल) येभी पलके पर्यायवाचक नाम हैं ।

प्रसृतिसे आदिले मानिकापर्यंतकी संज्ञा ।

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ॥ प्रसृतिभ्यामंजलिः स्यात्कुडवोऽर्धशरावकः ॥ २३ ॥ अष्टमानं च संज्ञेयं-कुडवाभ्यां च मानिका ॥ शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ २४ ॥

अर्थ--दोपलकी प्रसृती होतीहै फैलीहुई उंगलियोंवाली हथेलीको प्रसृति और उसको प्रसृत भी कहतेहैं) दो प्रसृतीकी १ अंजली (पस्सा) होताहै, उसीको कुडव (पावसेर) अर्द्धशराव

और अष्टमानभी कहते हैं दो कुडवकी १ मानिका होती है उसको शराव. अष्टपलभी कहते हैं. एक शरावके १२८ टंक होते हैं।

प्रस्थका और आढकका परिमाण।

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम्॥
भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत्॥ २५॥

अर्थ—दो शरावका १ प्रस्थ (सेर) होताहै चार प्रस्थका १ आढक होता है उसको भाजन कंसपात्रभी कहते हैं यह ६४ पलका होताहै.।

द्रोणसे लेकर द्रोणीपर्यंतका परिमाण।

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोन्मनौ॥ उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः॥२६॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुंभौ च चतुःषष्टिशरावकाः॥शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता२७

अर्थ—चार आढकका १ द्रोण होताहै, उसको कलश, नल्वण, उन्मान, घट (घडा) और राशिभी कहतेहैं। दो द्रोणका शूर्प (सूप) होताहै उसको कुम्भभी कहते हैं उस शूर्पके ६४ शराव होतेहैं। एवं दो शूर्पकी १ द्रोणी होतीहै उसको वाह और गोणीभी कहते हैं।

खारीका परिमाण।

द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः॥
चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा॥ २८॥

अर्थ—चार द्रोणीकी १ खारी होतीहै. उसके ४०९६ पल होतेहैं।

भार और तुलाका परिमाण।

पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्त्तितः॥
तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः॥ २९॥

अर्थ—२००० पलका १ भार होताहै और १०० पलकी १ तुला होती है। यह केवल मगध देशमेंही नहीं किंतु सर्व देशमें यही तोलका निश्चय जानना।

अब सर्व मान ज्ञापनार्थ एक श्लोककरके मान कहते हैं।

माषटंकाक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम्॥
राशिर्गोणीखारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणा॥ ३०॥

अर्थ—मासेसे लेकर खारीपर्यंत एकसे दूसरी तोल चौगुनी जाननी जैसे ४ मासेका १ शाण,

---

१ तुला पलशतं तासां विंशतिर्भार उच्यते। खारी भारद्वयेनैव स्मृता षड्भाजनाधिकेति।

४ शाणका एककर्ष, ४ कर्षका एकबिल्व, ४ बिल्वकी एक अंजली, ४ अंजलीका एक प्र ४ प्रस्थका १ आढक, ४ आढककी एक राशि, ४ राशिकी एक गोणी, ४ गोणीकी एक ख इस प्रकार एकसे दूसरी चौगुनी जाननी ।

अब गीली-सूखी और दूध आदि पतली वस्तुओंका तोल ।

गुंजादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः ॥
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ ३१ ॥
प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः ॥
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचिन्मतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ-जल आदि पतले पदार्थ और गीली औषध तथा सूखी औषध ये रत्तीसे लेकर कु[1] पर्यंत समान लेवे और जल आदि पतले पदार्थ तथा गीली औषध ये लेनी होय तो प्र[2] लेकर तुलापर्यंत इनका तोल सूखी औषधकी अपेक्षा दुगुनी लेवे तथा तुलासे ले द्रोणपर्यंत इनकी तोल दुगुनी लेवे ऐसा कहीं नहीं कहा अत एव इनका मान सूखी औ धोंके समान लेवे । इस अभिप्रायको स्नेहपाकमें प्रायः मानते हैं । तत्कालकी लाई औषधको गीली कहते हैं. । जो धूपमें सुखायलीनीहो अथवा बहुत दिनकी धरी हुई औषध शुष्क[3] कहते हैं ।

कुडवपात्र बनानेकी रीति ।

मृदुस्तुवेणुलोहादेर्भांडं यच्चतुरंगुलम् ॥
विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ-चार अंगुल लंबा चार अंगुल चौडा-तथा चार अंगुल गहरा ऐसे माटीके बांसके अथवा लोह (सोना-चाँदी-ताँबा-जस्त-राँग-काँसा-शीशा-और लोह) के शब्दसे चामके, अथवा सींग और दाँतके पात्र बनावे उसकी कुडवसंज्ञा है इसके द्वारा दूध-तेल-घृत-नापा जाताहै ।

प्रयोगके प्रथम औषधोंके नाम विशिष्ट प्रयोगोंका धरना ।

यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते ॥
तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽसौ विनिश्चयः ॥ ३४ ॥

अर्थ-जिस प्रयोगमें जो प्रथम औषध है उसी औषधके नाम करके इस प्रयो

---

१ रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत् । शुष्कद्रव्यार्द्रयोस्तावत्तुल्यं मानं प्रकीर्त्तितम् ।
२ प्रस्थादिमानमारभ्य द्रव्यादिद्विगुणं त्विदम् । कुडवोपि क्वचित् दृष्टं यथा दंतीघृते मतः ।
३ शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा त्वार्द्रस्य द्विगुणा हि सा । शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात्तस्मादर्धं प्रयोजयेत् ।

जानना, उदाहरण–जैसे क्षुद्रादि, रास्नादि, गुडूच्यादिकाथ, इनमें प्रथम कटेरी रास्ना और गिलोयहै इसीकारण क्षुद्रादिकाढा रास्नादिकाढा और गुडूच्यादिकाढा कहाया इसी प्रकार चंदनादितैल कूष्मांडपाक हिंग्वष्टकचूर्ण आदिमेंभी जानना चाहिये ॥

* इति मागधपरिभाषा *

अथ कलिंगपरिभाषा।

स्थितिर्नास्त्येवमात्रायाः कालमग्निंवयोबलम् ॥
प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ–अब मात्राकी स्थिति नहींहै यह कहतेहैं जैसे कि औषधोंके सेवनका प्रमाण निश्चय करके करनेमें नहीं आता इसीकारण काल, जठराग्नि, अवस्था, बल, प्रकृति, दोष और देश, इनको वैद्य विचारकरके अपने बुद्धिके अनुसार मात्राकी कल्पना करे। तहाँ कालकरके शीत–गरमी–वर्षा जानना। जठराग्निकरके रोगीकी मंद–तीक्ष्ण–विषम–सम–चतुर्विध अग्नि जानना। अवस्था तीनहैं आदि मध्य और अंत्य। बल तीन प्रकारका है हीन–मध्यम–और उत्तम। प्रकृति तीन प्रकारकी है हीन–मध्य–और उत्तम अथवा देश–जाति–शरीर आदिके भेदसे प्रकृतिके बहुत भेद हैं। दोष तीन प्रकारका है वात पित्त कफात्मक। देशभी दोप्रकारका है एक भूमिदेश और एक देहदेश तहाँ भूदेश तीनं प्रकारका है जैसे जांगल, अनूप और साधारण उसीप्रकार देहभी जांगलादिभेदोंकरके तीनही प्रकारका है।

भक्षणार्थप्रथमकहीहुईकलिंगपरिभाषाकोभी दिखाते हैं।

यतो मंदाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ ॥
अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते सुज्ञसंमता ॥ ३६ ॥

अर्थ–कलियुगके मनुष्य मंदाग्नि, छोटी देहवाले, और तुच्छबलके होते हैं अतएव इनके उपयोगी तथा वैद्योंको मान्य ऐसी औषधका प्रमाण कहते हैं.

कलिंगपरिभाषाका तोल।

यवोद्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यतेबुधैः ॥ यवद्वयेन गुंजास्यात्त्रिगुंजो वल्ल उच्यते ॥ ३७ ॥ माषो गुंजाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्क्वचित् ॥ स्याच्चतुर्माषकैः शाणः सनिष्कष्टंक एव च ॥ गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः ॥ ३८ ॥ चतुः कर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ॥ चतुः पलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ॥ ३९ ॥

अर्थ—बारह सपेद सरसोंका १ यव (जौं) दोयवकी १ गुंजा (रत्ती) २ रत्तीका वल्ल (कहीं दोरत्तीकाभीवल्ल होताहै) आठरत्तीका १ माषा, कही कहीं सातरत्तीका माषा होवे । (यह तंत्रान्तरका मत है इसको विषकल्पमें लेना चाहिये क्योंकि सर्वत्र अप्रसिद्ध है) माषेका १ शाण होताहै उसको निष्क और टंकभी कहते हैं ६ मासेका एक गद्याणक, मासेका १ कर्ष होताहै, चारकर्षका एक पल. उस पलके दश शाण होते हैं । चार पलका कुडव होताहै और प्रस्थादिकोंका तोल मागध परिभाषाके समानही जानना परंतु यह इसीके अनुक्रमसे लेना मागधपरिभाषाका कर्ष और पलकरके नहीं लेनी चाहिये । यद्यपि तरोंमें अनेक मान हैं तथापि मागध और कलिंगमान ९ दो प्रसिद्ध हैं यह कहते हैं।

कालिंगं माधवं चेति द्विविधं मानमुच्यते ॥
कालिंगान्मागधं श्रेष्ठं मानं मानविदो जनाः ॥ ४० ॥

अर्थ-मान दो प्रकारका है एक कालिंग (अर्थात् उडिया देशमें प्रसिद्ध होनेसे) और मागध (मागधदेशमें प्रसिद्ध होनेसे) तहाँ कलिंगमानसे मागधमान श्रेष्ठ है ऐसे मानके वैद्य कहते हैं। मागधमान चरकका और कलिंगमान सुश्रुतका है ।

औषधोंका युक्तायुक्तविचार ।

नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ॥
विनाविडंगकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥ ४१ ॥

अर्थ—दशधा द्रव्यकल्पनादि संपूर्ण विषयमें नवीन औषधकी योजना करनी चाहिये वायविडंग, पीपर, गुड, अन्न, घृत और सहत ये छः पदार्थ पुराने गुणकारी होते हैं ये पुराने लेने चाहिये (घृते भोजनमें—तृप्तिके लिये सदा नवीन ताजा) लेना और तिमिर औषधोंमें पुराना लेना उक्तंच भावप्रकाशे "योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे" इत्यादि प्रकार शहतभी बृंहण कार्यमें नया लेना और कर्षणमें पुराना लेना उक्तंच सुश्रुते "बृंहणीयं नवं नातिश्लेष्महरं सरम् । मेदःश्लेष्मापहं ग्राहि पुराणमतिलेखनम् ॥" विडंगादि पुरातनत्व १ वर्षके बाद होताहै ॥

जो औषध सदैव गीली लेनी उनको कहते हैं.

गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डं च शतावरी ॥ अश्वगंधा सहचर शतपुष्पा प्रसारणी ॥ प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणा नैवकारयेत्

अर्थ—गिलोय, कूडा (कुरैया), अडूसा, पेठा, सतावर, असगंध, पीयावांसा,

---

१ सर्वंच क्षीरविषवद्युक्तं भवति भेषजम् । तेषामलाभे गृह्णीयादनतिक्रांतवत्सरम् ॥
२ घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्यं प्रजायते । तैलपक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥

और प्रसारणी, ये नौ औषध सर्वकालमें गीली लेनी चाहियें परंतु गीली जानके द्विगुणित न होवे।

साधारण औषधकी योजना।

शुष्कं नवीनं द्रव्यं च योज्यं सकलकर्मसु ॥
आर्द्रं च द्विगुणं युंज्यादेष सर्वत्र निश्चयः ॥ ४३ ॥

अर्थ—पूर्वोक्तश्लोककी नौ औषधियोंके विना इतर औषध संपूर्ण कार्यमें सुखी हुई नवीन लेनी चाहिये और गीली होंय तो दूनी लेना यह निश्चय सर्वत्र जानना।

अनुक्तकालादिकोंकी योजना।

कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादंगेऽनुक्ते जटा भवेत् ॥
भागेऽनुक्ते तु साम्यं स्यात्पात्रेऽनुक्ते च मृण्मयम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—जिस प्रयोगमें काल नहीं कहाहो वहां पर प्रातःकाल लेना,—जहाँ औषधका अंग नहीं कहाहों वहां औषधकी जड लेनी, जिस प्रयोगमें औषधके भाग न कहे हों उसजगह सब समान भाग लेवे और जिस जगह पात्र न कहाहो तहाँ मिट्टीका पात्र लेना चाहिये, चकारेसे जहाँ द्रव्य नहींहो तहाँ जल लेना चाहिये।

योगमें पुनरक्त द्रव्यका मान कहतेहैं।

एकमप्यौषधं योगे यस्मिन्यत्पुनरुच्यते ॥
मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४५ ॥

अर्थ—जिस प्रयोगमें एक औषधका नाम पर्याय करके दोबार कहाहो उसे आयुर्वेदरहस्यज्ञाता औषध दूनी लेवे।

चूर्णादिकोंमें कौनसा चन्दन लेवे।

चूर्णस्नेहासवालेहाः प्रायशश्चन्दनान्विताः ॥
कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—चूर्ण (लवंगादि) घृत तेल (लाक्षादि) आसव (कुमार्यासवादि) लेह (च्यवनप्राशावलेहादि) इनमें प्रायः सपेद चंदन लेना और काढे तथा लेप आदिमें प्रायः लाल चंदन लेना चाहिये, प्रायःशब्दसे यह दिखाया कि कहीं (एलादिचूर्णमें भी) लाल चंदन लेवे, क्योंकि यहाविधिविहितहैं और काढे आदिमें सपेद चंदन ले.।

---

१ द्रव्येऽप्यनुक्ते जलमात्रदेये भागेप्यनुक्ते समतामिधेया। अंगेप्यनुक्ते विहितं तु मूलं कालेप्यनुक्ते दिवसस्यपूर्वम्।

२ घृते तैले च योगे तु यद्द्रव्यं पुनरुच्यते। तज्ज्ञातव्यमिहार्येण मानतो द्विगुणं भवेत् ॥

३ प्रायःशब्दा विशेषार्थे क्वचिन्न्यूनेऽपि दृश्यते।

अब सिद्धकरीहुई औषधोंके काल व्यतीत होनेसे गुणहीनत्व कहतेहैं.

गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ॥
मासद्वयात्तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥
हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात्परम् ॥
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥ ४८ ॥
औषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात्परम् ॥
पुराणाःस्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥ ४९ ॥

अर्थ–वनसे लाईहुई औषध एक वर्षके पश्चात् तेज और गुणरहित होजातीहै, ताली[illegible] चूर्ण दोमहीनेके पश्चात् हीनवीर्य होजातेहैं (अर्थात् कुछ २ गुणोंमें न्यूनहोजातेहैं स[illegible] वीर्यरहित नहीं होते. क्योंकि लवणभास्करादि चूर्णोका प्रमाण अधिक कहा है वह [illegible] कालतक सेवनके लियेही कहाहै अन्यथा यह व्यर्थ होजायगा) और विजयादि गुटिका [illegible] खंडकादि अवलेह आदि बहुत काल रखनेसेभी अपने गुणको नहीं त्यागते परंतु कुछ २ गु[illegible] हित होजातेहैं । और घृत तेल आदि १६ महीनेके उपरांत गुणहीन होतेहैं. कोई (चतु[illegible] साधिकास्तथा) ऐसा पाठ कहकर अर्थ करते हैं कि, वर्षाकालके चारमहीना व्यतीत हो[illegible] घृततैलादि हीनवीर्य होतेहैं. लघुपाक हुई यव गेहूँ चना आदि औषधी १ वर्षके अनंतर [illegible] होतीहै, बहुतकालके रहनेसे गुड अधिक गुणवान् होताहै. एवं आसव (कुमार्यासवादि) [illegible] आदि धातुकी भस्म और चंद्रोदयादि रस वा रसायन ये जितने पुराने होंय उतनेही [illegible] गुणवाले होतेहैं ।

रोगोंको उक्तानुक्त द्रव्यकथन ।

व्याधेरयुक्तंयद्द्रव्यंगणोक्तमपितत्त्यजेत् ॥
अनुक्तमपियुक्तं यद्युज्यतेतत्रतद्बुधः ॥ ५० ॥

अर्थ–व्याधिमें चूर्ण कषायादिकोंकी योजना करनेमें जो औषधी दीजावे उस चूर्ण [illegible] आदिमें यदि एकदो ऐसी औषध जो व्याधिके विरुद्ध होय तो गणोक्त भी हो तथापि [illegible] विरुद्ध औषधको वैद्य निकाल डाले और यदि कोई ऐसी औषधी हो कि, जो उस व्या[illegible] हितकारी है परंतु चूर्ण काढे आदिमें नहीं कही होय तो उसको वैद्य अपनी [illegible] मिलाय देवे ।

---

१ घृतमब्दात्परं किंचिद्धीनवीर्यत्वमाप्नुयात् । तैलं पक्कमपक्कं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् । एतेषु गोधूमतिलमाषा नवा हिताः । रूढाः पुराणा विरसा न तथा गुणकारिणः । २ हीनं तु स्याद्घृतं पक्कं वा वत्सरात्परम् ॥

द्रव्यहरणार्थ कालादिकथन ।

आग्नेया विंध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः ॥ ५१ ॥
अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ॥
अन्येष्वपि प्ररोहंति वनेषूपवनेषु च ॥ ५२ ॥

अर्थ-विंध्याचल (आदिशब्दसे मलयाचल, सह्याद्रि, पारियात्र) आदिकोंकी उत्पन्न होनेवाली औषधि अग्निगुणभूयिष्ठ अर्थात् उष्णवीर्य होती हैं और हिमालय पर्वत आदिकी औषधी शीतवीर्य होती हैं, ये केवल पर्वतोहीमें नहीं होतीं किंतु वन और उपवन (बगीचा) आदिमेंभी होती हैं, अत एव जैसी २ पृथ्वीमें जैसी २ ऋतु (शरदी, गरमी, चातुर्मास्य) होती है उसीके अनुसार वीर्यवान् औषधी होतीहैं ।

औषध लानेकी विधि ।

गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे ॥
आदित्यसंमुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ॥
साधारणं धराद्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥ ५३ ॥

अर्थ-औषधी लानेके निमित्त प्रातःकाल उठ स्वस्थ चित्त करके, पवित्र होवे और उत्तम दिन (अर्थात् उत्तम तिथि, नक्षत्र, योग और लग्नमें) सूर्यके सन्मुख मुख करके तथा सूर्यको प्रणामकर और हृदयमें श्रीशिव (परमात्माका) ध्यान कर मौनमें स्थितहो जांगल और अनूपरहित ऐसी साधारण[१] पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाली और उत्तर दिशामें स्थित जो औषधी हैं उनको ग्रहण करे, कोई कहता है कि उत्तराश्रितं अर्थात् उत्तराभिमुख होकर औषधको उखाडे, इस जगह गृह्णीयात् यह पद दो वार आनेसे निश्चयार्थ ज्ञापन जानना ।

अब दुष्टस्थानमें प्रगट औषधका त्याग कहते हैं ।

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजा ॥
जंतुवह्निहिमव्याप्ता नौषधी कार्यसाधिका ॥ ५४ ॥

अर्थ-सर्प आदिकी बँबईकी, दुष्ट पृथ्वीकी जलप्रायस्थानकी श्मशानकी ऊषर (बंजड) पृथ्वीकी-मार्ग (रास्ते) में उत्पन्न होनेवाली-एवं जो कीडानकी खाई हुई-अग्निसे जरी -सरदीकी मारी हुई ऐसी औषधी कार्यसाधक नहीं होती, अतएव ऐसे स्थानकी और जडी औषध नहीं लानी चाहिये इस जगह हमारा कथन इतनाही है कि ये संपूर्ण औषध

१ सर्वलक्षणसंपन्ना भूमिः साधारणा स्मृता ।

लानेकी आज्ञा वैद्यको है यदि स्वयं वैद्य जायगा तभी वल्मीकादि स्थानकी और जंतु
पाले आदिसे दूषित औषधोंकी परीक्षा करेगा नीच जंगली मनुष्य यह बात काहेको दे
उसको तो कहींसे मिले ग्राहकको देकर अपने पैसे लेनेसे काम है दूसरे शुभाशुभ दिन
क्यों देखने लगा अतएव आजकल औषधी अपना गुण नहीं दिखातीं, दूसरेके यहाँके वैद्य
और डाक्टरोंसे कोई औषधीकी परीक्षाके विषयमें कुछ प्रश्न किया जावे तो वो केवल
याके बाबाही निकलेंगे ! कारण इसका भी यही है कि इन्होंने कभी परीक्षा न सीखी, न
आँखोंसे देखी जो कुछ बजारमें जंगली आदमी दे जाते हैं और जो कुछ उसका
बता जाते हैं वोही उनके वास्ते ठीक है, फिर औषध विपरीत गुण करे तो कौन आश्च
अतएव हमारे भारतनिवासी वैद्योंको इस परीक्षामें कटिबद्ध होना चाहिये । कि जिससे यह
सर्वथा अस्त न हो ।

औषधिग्रहणकाल ।

शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ॥
विरेकवमनार्थं च वसंतान्ते समाहरेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ–शरद् ऋतु (आश्विन कार्त्तिकके महीने) में संपूर्ण औषधी रससे परिपूर्ण हो
अतएव सर्व कार्य करनेके अर्थ इन दोनों महिनोंमें औषध लेकर धर रक्खे, तथा
(जुल्लाब) और वमन (रद्द) के लिये ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ आषाढ इन दो महीनों) में
लेनी चाहिये । यद्यपि अखिल कार्यके कहनेसे विरेक और वमनका बोध होगया तथापि
षतो सूचनार्थ पृथक् २ कहा है ।

द्रव्योंके ग्राह्यअंग कहते हैं ।

अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः ॥
गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥ ५६ ॥

अर्थ–जिन वृक्षोंकी बडी जड हो (जैसे वड–नीम–आमआदि) उनकी छाल लेनी
और जिन वनस्पतियोंकी छोटी जड हो (जैसे कटेरी धमासा गोखरू आदि) उनके
अंग अर्थात् जड-पत्ता-फूल-फल-और शाखा सब लेनी चाहिये १। कोई कहताहै कि
वृक्षोंके जडकी छाल लेवे और छोटे वनस्पतिकी जड मात्र लेनी चाहिये ।

अब ओषधोंका प्रसिद्ध अंगहरण कहतेहैं ।

न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारं स्याद्बीजकादितः ॥

१ ग्रीष्मे मंजरिकाग्रेषु वर्षासु दलचर्मणि । वसंते मूलमाश्रित्य वृक्षाणां तु रसस्थितिः ॥

तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात्त्रिफलादितः ॥ ५७ ॥
धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ॥ ५८ ॥

इति शार्ङ्गधरे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ–वड आदिशब्दसे पाखर, आम, जामुन. अंबाडे आदिकी छाल लेनी, विजयसार आदिशब्दसे खैर, महुआ, बबूर आदिका सार लेना, तालीस आदिशब्दसे पत्रज, घीकुवार पान पत्तेनका शाक इनके पत्ते लेने चाहिये, त्रिफला आदिशब्द करके सुपारी, कंलोल, मैनफल, आदिके फल लेने चाहिये । धाय आदिशब्दकरके सेवती, कमोदनी, कमलआदिके पुष्प लेने चाहिये । और थूहर आदिशब्द करके आक, दुद्धी, मंदार आदिका दूध लेना चाहिये, एवं चकारसे नहीं कहेगये गोंद आदि जानना ।

इति श्रीमाथुरकृष्णलालपाठकतनयदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसंहितार्थबोधिनीमाथुर-भाषाटीकायां प्रथमखंडे परिभाषाऽध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः ॥
कषायांश्च विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥

अर्थ–प्रथमाध्यायमें कह आए हैं कि (भैषज्याख्यानकं तथा) अर्थात् इस शार्ङ्गधरकी [दू]सरी अध्यायमें भैषज्य (औषध) भक्षणका काल कहेंगे अत एव उसको कहते हैं. वैद्य [ह]ुवा प्रातःकालमें रोगीको औषध भक्षण करावे और कषाय (स्वरस, कल्क, काढा, फांट [औ]र हिम) ये विशेष करके प्रातःकालमेंही देवे (बुधः) इसपदके धरनेसे यह सूचना करी [कि] औषधके कालको विचारके वैद्य अपनी बुद्धिके अनुसार औषध देवे केवल प्रातःकालकाही [नि]यम नहीं है अब अन्यकालोंको वक्ष्यमाण प्रकार करके कहते हैं ।

औषधभक्षणके पांचकाल ।

ज्ञेयः पंचविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥
किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ॥
सायंतने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥ २ ॥

अर्थ–मनुष्योंके औषधभक्षण विषयमें पांच काल हैं उनको कहते हैं. किंचित् सूर्योदय होने- औषध लेना यह प्रथम काल, तथा दिनमें भोजनके समय औषधी लेना दूसरा काल, तथ

सायंकालमें भोजनके समय औषध लेना तृतीयकाल और बारंवार औषधी लेना चतुर्थकाल, रात्रिमें औषध लेना वह पंचमकाल, इस प्रकार पांच काल जानना ।

तहां प्रात:काल कषायके सेवनमें कहा है, दूसरा काल जो भोजनके समयका है वह प्रकारका है, जैसे भोजनके प्रथम लवण और अदरखका सेवन, भोजनमें मिलायके हिंगवष्टक चूर्ण, भोजनके मध्यमें जैसे पानी आदि पीना भोजनान्तमें जैसे लौंग और हरीतक्यादिका और एक भोजनके आदि अन्तमें जैसे अम्लपित्त रोगमें धात्री अवलेह भोजनके आदि अ दिया जाता है ।

तीसरा काल सायंकाल भोजनका समय है. वो भी तीन प्रकारका है, जैसे कि ग्रास प्रा पिछाडी, और भोजनके अन्तमें बाकीके काल प्रसिद्ध हैं ।

प्रथमकाल ।

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ॥
लेखनार्थे च भैषज्यं प्रभातेऽनन्नमाहरेत् ॥
एवं स्यात्प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥ ३ ॥

अर्थ–पित्त और कफके कुपित होनेपर पित्तको विरेचन और कफको वमन उसी प्रकार (दोषोंको पतला करनेके) अर्थ प्रातःकालमें निरन्तर औषध देवे, तथा रोगीको प्रात भोजन न देवे । यदि दोष उत्कट होय तो अन्य समयभी देना हितकारी लिखा है इस औषध ग्रहणमें मनुष्योंको प्रथम काल जानना ।

(वक्तव्य श्लोक ३) विरेचनकी औषधि निरन्न दीजाती है, परन्तु वमनकी औषध नहीं दीजाती यवागू पिलाकर दीजाती है. देखो वमनविधि ।

द्वितीयकाल ।

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते ॥ अरुचौ चित्र ज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥ ४ ॥ समानवाते विगुणे मन्दे ग्निदीपनम् ॥ दद्याद्भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक् ॥ व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनांते समाहरेत् ॥ हिक्काक्षेपक पूर्वमंते च भोजनात् ॥ ६ ॥ एवं द्वितीयकालश्च प्रोक्तो भैष कर्मणि ॥ ७ ॥

अर्थ–अपान कहिये गुदासंबन्धी वायु उसके कुपित होनेपर भोजनके किंचित् पूर्व भक्षण करे । अरुचि होनेपर अनेक प्रकारके अन्न तथा नाना प्रकारकी रुचिकारी औषध मिलायके भोजन करे । तथा नाभिसम्बन्धी समानवायुके कोप एवं अग्निमांद्य अग्निदीपनकर्ता औषध भोजनके मध्यमें सेवन करे । सर्व देहव्यापी व्यान

कुपित होनेमें भोजनके अंतमें औषध भक्षण करे । तथा हिचकी, आक्षेपक वायु एवं कंपवायु इनके कुपित होनेपर भोजनके प्रथम और अंतमें औषध भक्षण करे इसप्रकार दूसरा काल कहा है ।

तृतीयकाल ।

उदाने कुपिते वाते स्वरभंगादिकारिणि ॥ ग्रासे ग्रासांतरे देयं भैषज्यं सांध्यभोजने॥८॥प्राणे प्रदुष्टे सांध्यस्य भक्ष्यस्यान्ते च दीयते ॥ औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥ ९ ॥

अर्थ—कंठसंबंधी उदानवायुके कुपित (स्वरभंगादि कंठका बैठजाना, वा गूंगा होजाना अथवा अन्य कंठके रोग) होनेसे सायंकालके भोजनसे ग्रास (गस्सा) के साथ अथवा दो दो ग्रासोंके बीचमें औषध भक्षण करावे । तथा हृदयस्थित प्राण वायुके कुपित होनेमें बहुधा सायं-कालके भोजनके अंतमें औषध भक्षण करावे इसप्रकार तीसरा काल जानना ।

कदाचित् कोई प्रश्न करै कि शार्ङ्गधरने पवनके पांच भेद कहे इसी प्रकार कफ और पित्तके जो पांच २ भेद हैं वो क्यों नहीं कहे ? तहाँ कहते हैं कि सब दोष, धातु मलादिकोंमें वायुको प्रधानता है और वायुही अन्य कफादिकोंके प्रकोपका कारण है अतएव इसके प्रकोप करके पित्तक-फका प्रकोप होता है ऐसा जानना । जैसे कहा है कि एक[1] दोष कुपित हो संपूर्ण दोषोंको कुपित करता है. तथा सुश्रुतने लिखा है कि 'अचिंत्यवीर्यवान् दोषोंका नियंता, सर्व रोग समूहोंका राजा ऐसा यह वायु स्वयंभू[2] और भगवान् ऐसे कहा है' अतएव इसको प्रधानत्व होनेसे इसीके भेद कहे हैं अन्य कफादिकोंके नहीं ।

चतुर्थकाल ।

मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च ॥
सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ॥ १० ॥

अर्थ—तृषा वमन हिचकी श्वास तथा विषदोष ये रोग होनेसे बारंबार अन्नसहित औषध भक्षण कराना चाहिये । इस श्लोकमें जो चकार है इससे यह सूचना करी कि, तृषादि रोगोंमें अन्नरहि-त भी औषध देवे. इस प्रकार चतुर्थकाल कहा ।

पंचमकाल ।

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा ॥ पाचनं शमनं देयमनन्नं

१ एकदोषस्तु कुपितो दोषानन्यान्प्रकोपयेत् । २ स्वयंभूरेष भगवान्वायुरित्यभिशब्दितः । अचिंत्यवीर्यो दोषाणां नेता रोगसमूहराट् ।

भेषजं निशि॥इति पंचमकालः स्यात्प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि॥११

अर्थ–जत्रु (हसली) के ऊपरभागके (कर्णरोग १ नेत्ररोग १ मुखरोग तथा नासिकारो इत्यादि) रोगोंके विषयमें तथा बढ़े हुए वातादि दोषोंके घटानेके विषयमें और अति क्षी दोषोंके बढानेके विषयमें रात्रिके समय पाचनरूप तथा शमनरूप औषध अन्नरहित भक्ष करावे, (तहां कोई रात्रिके कहनेसे सब रात्रिभर औषध देवे ऐसा कहते हैं परंतु व्यवहारमें रात्रिके प्रथम प्रहरमें औषध देना ठीक है) इस प्रकार पंचमकाल जानना ।

अब द्रव्यमें रसादिकोंकी विशेष अवस्था कहते हैं ।

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥
संवेदनक्रमादेताः पंचावस्थाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १२ ॥

अर्थ–द्रव्यमें रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति ये पांच अवस्था हैं । इनका ज्ञान क्रमक्र जानना । तहां मधुरादि भेदसे रस छः प्रकारका है । गुरु मंदादिके भेदसे गुण २० प्र रका है । शीत उष्णके भेदसे वीर्य दो प्रकारका है । कोई शीत, उष्ण, रूक्ष विशद्रादि करके अष्टविधवीर्यको मानतेहै । विपाक ३ प्रकारका है । कोई लघु गुरुके भेदसे विपाक दो प्रकारका मानतेहैं । और द्रव्योंकी शक्ति अचिंत्य हैं, अतएव द्रव्यप्रधान है जैसे किसीने क कि 'विनावीर्यके पाक नहीं और रसके विना वीर्य नहीं, द्रव्यके विना रस नहीं अत द्रव्यको प्रधानत्व है' द्रव्यके कहनेसे सामान्यतः जल, छाल, सार, गोंदआदि जानना । लिखा है 'जडे, छाल, सार, गोंद, नाल, स्वरस, पल्लव, दूध, दूधवाले फल, फूल, भस्म, ते कांटे, पत्र, शुंग (कोमल पत्तेकी कली) कंद, प्ररोह और उद्भिज्ज आदि' तथा जंगम पार्थिव द्रव्य शब्द करके ग्रहण किये जाते हैं ।

रसका स्वरूप ।

मधुरोऽम्लः पटुश्चैव कटुतिक्तकषायकाः ॥
इत्येते षड्रसाः ख्याता नानाद्रव्यसमाश्रिताः ॥ १३ ॥

अर्थ–मधुर, अम्ल, क्षार, चरपरा, कडुआ और कषैलां ये छः प्रकारके रस नाना द्र आश्रयकरके रहते हैं ऐसे जानना ।

---

१ पाको नास्ति विना वीर्याद्वीर्यं नास्ति विना रसात् । रसो नास्ति विना द्रव्याद्द्रव्यं श्रेष्ठमतः स्मृत

२ मूलत्वक्निर्यासनालस्वरसपल्लवदुग्धदुग्धफलपुष्पभस्मतैलकंटकपत्रशुंगकन्दप्ररोहउद्भिदादि जंगमपार्थिवादीनि सर्वाणि द्रव्यशब्देनाभिधीयंते ।

३ मनुष्य पशु आदि. ४ पृथ्वीके पदार्थ सुवर्णादि. ५ मीठा. ६ खट्टा. ७ खारी. ८ तीक्ष्ण आदि. ९ कडुआ गिलोय आदि. १० कषैला हरड बहेडा आदि ।

रसोंका उत्पत्तिक्रम।

धराम्बुक्ष्मानलजलज्वलनाकाशमारुतैः ॥
वाय्वग्निक्ष्मानिलैर्भूतद्वये रसभवः क्रमात् ॥ १४ ॥

अर्थ—पृथ्वी और जलसे मधुर (मीठा) रस उत्पन्न हुआहै। पृथ्वी और अग्निसे अम्ल (खट्टा) रस, जल और अग्निसे क्षार (नोन) रस आकाश और वायुसे तीक्ष्ण (चरपरा) रस, वायु और अग्निसे तिक्त (कडुआ) रस एवं पृथ्वी और वायुसे कषाय (कषैला) रस उत्पन्न हुआ है इस प्रकार दोदो भूतोंकरके एक एक रस उत्पन्न होताहै इसप्रकार छः रसोंकी उत्पात्ति जाननी।

गुणोंके स्वरूप।

गुरुः स्निग्धश्च तीक्ष्णश्च रूक्षो लघुरिति क्रमात् ॥१५॥ धराम्बुवह्निपवनव्योम्नां प्रायो गुणाः स्मृताः ॥ एष्वेवान्तरभवन्त्यन्ये गुणेषु गुणसंचयाः ॥ १६ ॥

अर्थ--पृथ्वीका भारी गुण, जलका स्निग्ध (चिकना) गुण, अग्निका तीक्ष्ण गुण, वायुका रूक्ष गुण और आकाशका हलका गुण इसप्रकार पांच गण क्रम करके पांच महाभूतोंके जानने। तथा इन्हीं गुणोंमें दूसरे सांद्र, मृदु, श्लक्ष्ण इत्यादि गुण रहते हैं उनको अनुमानसे जानना। " गुणाः " इस बहुवचनसे व्यवायी, विकाशी आदि अन्य बाईस गुण जानना कोई सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, ए तिनिही गुण कहते हैं, इसका विस्तार सुश्रुत ग्रंथमे देखिये।

वीर्यका स्वरूप।

वीर्यमुष्णं तथा शीतं प्रायशो द्रव्यसंश्रयम् ॥ तत्सर्वमग्निषोमीयं दृश्यते भुवनत्रये ॥ अत्रैवांतर्भविष्यंति वीर्याण्यन्यानि यान्यपि ॥ १७ ॥

अर्थ—वीर्य बहुधा द्रव्यके आश्रय रहताहै, वह दो प्रकारका है, एकशीतल और दूसरा उष्ण इसीसे त्रिलोकीमें ये वीर्य अग्न्यात्मक और सोमात्मक दीखते हैं तथा इन शीतोष्णवीर्यके अंतर्गत अन्यवीर्य (स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु, तीक्ष्ण इत्यादि) रहते हैं।

विपाकका स्वरूप।

मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोम्लं पच्यते रसः॥कषायकटुतिक्तानां पाकः स्यात्प्रायशः कटुः ॥ मधुराज्जायते श्लेष्मा पित्तम-

म्लाच्च जायते ॥ कटुकाज्जायते वायुः कर्माणीति विपाकतः ॥ १८ ॥

अर्थ–मिष्टरस और क्षाररस इनका मधुर पाक होताहै खट्टे रसका खट्टा पाक होताहै कषैले, चरपरे और कडुए रसोंका पाक बहुधा तीक्ष्ण होताहै अतएव उन तीन पाकोंसे जो तीन कर्म होतेहैं, उनको कहतेहैं--मधुर पाक करके कफ होताहै अम्ल पाक करके पित्त होताहै, और तीक्ष्ण पाक करके वायु होताहै इस प्रकार तीन प्रकारके पाक करके दोष उत्पन्न होतेहैं ।

प्रभावके स्वरूप ।

प्रभावस्तु यथा धात्री लघुश्चापि रसादिभिः ॥ समापि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् ॥ क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्प्रभावतः ॥ ज्वरं हंति शिरे बद्धा सहदेवीजटा यथा ॥ १९ ॥

अर्थ--आंवले रस गुण वीर्य विपाकादि गुण करके समान होने तथा हलके होनेपरभी प्रभावकरके वातादि तीनों दोषोंका नाश करतेहैं । 'लकुचस्य रसादिभिः' ऐसाभी पाठ है इसका अर्थ है कि आमले क्षुद्रफनसके रसादिक करकेसमानभी होनेपर अपने प्रभाव (उत्कृष्टशक्ति) से त्रिदोषोंको शमन करतेहैं । इस शक्तिको प्रभाव कहते हैं । कहीं एकही द्रव्य ऐसाहै कि अपने प्रभावसे शीघ्रही रोगको दूर करता है जैसे, सहदेईकी जडको मस्तकमें बांधनेसे ज्वर दूर होताहै इस प्रकार प्रभावका गुण जानना ।

रसादिकोंकी उत्कृष्टता ।

क्वचिद्रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥
कर्म स्वंस्वंप्रकुर्वंति द्रव्यमाश्रित्य ये स्थिताः ॥ २० ॥

अर्थ--कहीं रस, कहीं गुण, कहीं वीर्य, कहीं विपाक, कहीं शक्ति ये द्रव्यके आश्रय करके अपने २ कर्म करते हैं उन कर्मोंको उदाहरण करके दिखाते हैं प्रथम रसके उदाहरण--जैसे पियाका रस कटु और उष्ण होनेपरभी पित्तको शमन करताहै, कारण उष्ण और कटुरस होने गुणका उदाहरण जैसे तीक्ष्णगुणवालीभी मूली कफकी वृद्धि करती है, कारण इसका यह है वह स्निग्ध गुणवाली है । वीर्यका उदाहरण जैसे बडा पंचमूल कषैला और कडुवेंसा होने वादीको शमन करताहै, कारण यह उष्णवीर्य है । विपाकका उदाहरण जैसे सोंठ होनेपरभी वायुको शमन करतीहै कारण यह है कि इसका मधुर पाकहै । शक्ति उदाहरण जो कर्म रस, गुण, वीर्य, विपाक करके नहीं होते वो कर्म शक्ति प्रभाव करके होतेहैं. जैसे-खैर कुष्ठका नाश करताहै, कारण इसका यह है

इसकी विलक्षण शक्ति है । इसीकारण औषधोंका प्रभाव अचिंत्यहै । कदाचित् कोई प्रश्न करे कि गुण वीर्यमें क्या भेद है, क्योंकि जो गुण हरडमें है वही आमलेमें है । तहां कहतेहैं कि आमला शीतलवीर्य है और हरड उष्णवीर्य हैं अतएव वीर्यका भेद होनेसे दोनों पृथक् २ कहेहैं ।

इति द्रव्यादिकथनम् ।

वातादिदोषोंका संचय प्रकोप और उपशम ।

**चयकोपसमा यस्मिन्दोषाणां संभवंति हि ॥
ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु संक्रमात् ॥ २१ ॥**

अर्थ—जिन छः ऋतुओंमें दोषोंकी वृद्धि, प्रकोप और उपशमका संभव होताहै वे ऋतु सूर्यके बारह राशिओंमें संक्रमण करनेसे होतीहैं ।

ऋतुओंके नाम ।

ग्रीष्मे मेषवृषौ प्रोक्तौ प्रावृण्मिथुनकर्कयोः ॥ सिंहकन्ये स्मृता वर्षा स्तुलावृश्चिकयोः शरत् ॥ धनुर्ग्राहौ च हेमंतो वसंतः कुंभमीनयोः ॥ २२ ॥

अर्थ—मेष संक्रांतिसे लेकर वृष संक्रांतिकी समाप्ति पर्यंत ग्रीष्मऋतु होतीहै । इसी प्रकार मिथुन—संक्रांतिसे लेकर कर्कसंक्रांति पर्यंत प्रावृट्ऋतु, सिंह और कन्याकी संक्रांतिको वर्षाऋतु, तुला और वृश्चिकसंक्रांतिको शरद्ऋतु, धनसंक्रांति और मकरसंक्रांतिकी हेमंतऋतु, एवं कुंभकी संक्रांतिसे लेकर मीनकी संक्रांतिकी समाप्तिपर्यंत वसंत ऋतु कहलातीहै । इस प्रकार दोराशियों करके दो दो महिनेकी एक ऋतु होतीहै, ऐसे छः ऋतु जानना । ये दोषोंके संचय होनेमें ग्राह्य हैं, अयन विषयमें ग्राह्य नहीं हैं जैसे सुश्रुतमें लिखा है ।

ऋतुभेदकरके वातादिदोषोंका संचय कोप और शमन ।

ग्रीष्मे संचीयते वायुः प्रावृट्काले प्रकुप्यति ॥ वर्षासु चीयते पित्तं शरत्काले प्रकुप्यति ॥ हेमंते चीयते श्लेष्मा वसंते च प्रकुप्यति ॥ प्रायेण प्रशमं याति स्वयमेव समीरणः ॥ शरत्काले वसंते च पित्तं प्रावृडृतौ कफः ॥ २३ ॥

---

१ अमीमांस्यान्यचिंत्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ॥ आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ इति-श्रुते ।

२ इह तु वर्षाशरद्धेमन्तवसंतग्रीष्मप्रावृषः षड़तवो भवंति दोषोपचयप्रकोपशमनिमित्तम् ।

अर्थ–ग्रीष्मऋतुमें वायुका संचय होकर प्रावृट् कालमें प्रकोप होताहै वर्षाऋतुमें पि संचय होकर शरद्ऋतुमें प्रकोप होताहै, एवं हेमंतऋतुमें कफका संचय होकर वसंतऋतुमें कुपित होताहै । वायु शरद् कालमें अपने आपही स्वयं शांत होजाताहै और पित्त वसंतऋतुमें शांत होजाताहै तथा कफ प्रावृट् कालमें अपने आप शांत होजाताहै ।

दोषसंचयप्रकोपशमनचक्रम्.

नाम	वात	पित्त	कफ
सं	ग्रीष्मऋतु	वर्षाऋतु	हेमंतऋतु
च	वैशाख-ज्येष्ठ	भाद्रपद--आश्विन	पौष–माघ
य	मेष–वृष	सिंह--कन्या	धन–मकर
	प्रावृट्ऋतु	शरद्ऋतु	वसंतऋतु
कोप	मिथुन–कर्क	तुला-वृश्चिक	कुंभ–मीन
	आषाढ–श्रावण	कार्तिक--मार्गशिर	फाल्गुन–चैत्र
	शरदृतु	वसंतऋतु	प्रावृट्ऋतु
शमन	तुला–वृश्चिक	कुंभ--मीन	मिथुन–कर्क
	कार्तिक--मार्गशिर	फाल्गुन--चैत्र	आषाढ–श्रावण

वैद्यकशास्त्रमें तीन दोषोंमें वायुको प्रधानता है अतएव ग्रीष्म ऋतुसे आरंभकर अंतमें वसं कही है । गोदावरीके दक्षिणभागमें चारमहीने निरंतर वर्षा होतीहै इसीसे चातु प्रावृट् और वर्षा ये दो ऋतु कल्पना की गई । हेमंत और शिशिर इन दोनों ऋतुके दोष समान हैं अतएव शिशिरऋतुका परित्याग करके इस जगह हेमंत मात्र धराहै। कल्पना त्रिदोषोंके संचय प्रकोपके अनुभव करके की है, देव पितृ कार्यमें यह ऋतु ग्रहण नहीं करना उसमें चैत्र वैशाख वसंतऋतु इत्यादिक जो धर्मशास्त्रमें कही है वही काल में कहनी चाहिये ।

यहां पर वातादिकोंके संचय और कोपका कारण सुश्रुतसे लिखते हैं कि इस ग्रीष्म औषधि (गेहूंचनादि) साररहित, रूक्ष और अत्यन्त हलकी होती हैं. तथा इसी प्र रूक्षादि गुणयुक्त जल होते हैं.ऐसे अन्नजल (आबहवा) के सेवन करनेसे सूर्यके तेजकरके शी देह जिन्होंकी ऐसे मनुष्योंके रूक्ष, लघु और विशदगुणवान् होनेके कारण वायुका संचय है

यहीं वातका संचय प्रावृट् ऋतुमें अत्यंत जलमें भीगी पृथ्वीमें भीगीहुई देहवाले प्राणियोंके शीत वात वर्षाकरके प्रेरित वातजन्य व्याधियोंको उत्पन्न करती है।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि शीतगुण वायुका ग्रीष्म ऋतुमें क्योंकर संचय होता है? यहां कहते हैं कि संपूर्ण वातके गुणोंमें रौक्ष्य गुणकी प्रधानता है अतएव औषधियोंके अतिरूखे होनेसे रूक्ष वायुका ग्रीष्मऋतुमेंभी संचय होताहै।

जिनको कफ पित्तके संचय प्रकोपका कारण जानना होय वे बृहन्निघण्टुरत्नाकरके "चर्याचंद्रोदय" में देखलेवें इस जगह ग्रंथ बढनेके भयसे नहीं लिखा।

किसी २ पुस्तकमें यह श्लोक अधिक है।

[कार्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टावग्रहणस्य च ॥
यमदंष्ट्रा समाख्याता अल्पाहारः स जीवति] ॥ २४ ॥

अर्थ–कार्तिकके अंतके आठ दिन और मार्गशिरके आदिके आठ दिन 'यमदंष्ट्रसंज्ञक इनमें थोडा भोजन करनेवाला जीवित रहता है यह श्लोक प्रक्षिप्त है।

कोई प्रश्न करे कि जिस ऋतुमें दोषोंका संचय होता है उसी ऋतुमें कोप क्यों नहीं होता? यहां कहते हैं कि जैसे वायुका ग्रीष्म ऋतुमें संचय होता है परंतु इसमें ऋतु उष्ण होनेके कारण वातका कोप नहीं होता कोई दिन रात्रिमेंही छः ऋतुके धर्म होते हैं ऐसा कहते हैं। जैसे दिनके पूर्वभागमें वसंतके, मध्याह्नमें ग्रीष्मके, अपराह्नमें प्रावृट्के, प्रदोषमें वर्षाके, अर्द्धरात्रिमें शरदके और दो घडीके तडके, हेमंत ऋतुके लक्षण होते हैं।

अब दोषोंका अकालमेंभी चयादि निमित्तकारण कहते हैं।

चयकोपशमान्दोषा विहारा रससेवनैः ॥
समानैर्यात्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ॥ २५ ॥

अर्थ–वातादि दोषोंके जो गुण हैं उन गुणोंके समान है गुण जिन्होंके ऐसे आहार और विहार इनके सेवन करके वातादि दोषोंका संचय प्रकोप और उपशम होता है। और वातादि दोषोंके गुणोंके विपरीत गुणकर्ता ऐसे विहार और गुरु स्निग्धादि पदार्थ इनके सेवन करके अकालमें वातादि दोषोंका नाश होता है।

---

१ लघु रूक्ष शीतादिपदार्थ वात गुणोंके समान विदाही तीक्ष्ण अम्ल इत्यादि पदार्थ पित्तगुणोंके समान तथा मधुर स्निग्ध इत्यादि पदार्थ कफगुणोंके समान हैं।

२ तात्पर्य यह है कि वातादिकोंके संचयकालमें समानगुणके विहारादिक पदार्थोंके सेवन करनेसे वातादिकोंका संचय होताहै। एवं प्रकोपकालमें ऐसे पदार्थोंका सेवन करनेसे प्रकोप होताहै। और शमकालमें सेवन करनेसे उन दोषोंका शमन होताहै।

३ गुरु स्निग्ध उष्ण इत्यादिक पदार्थ वातगुणके विपरीत हैं कटु उष्ण रूक्ष इत्यादि पदार्थ कफके विरुद्ध हैं। और अविदाही मधुर शीतल इत्यादि पदार्थ पित्तगुणके विपरीत जानना।

वायुका प्रकोप तथा शमन ।

लघुरूक्षमिताहारादतिशीताच्छ्रमात्तथा ॥ प्रदोषे कामशोका-भ्यां भीचिंतारात्रिजागरैः॥अभिघातादपां गाहाज्जीर्णेऽन्ने धातु-संक्षयात् ॥ वायुः प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥२

अर्थ--लघु[1] आहार, तथा रूक्ष[2] आहार, एवं मित[3] आहार इनके सेवन करके तथा अति काल, अति शीत पदार्थोंके सेवन, अत्यंत परिश्रम करना, प्रदोषकाल, काम[4] धन पुत्र वियोग जनित दुःख, भय और चिंता, रात्रिमें जागरण, शस्त्र लकडी आदिकी चोट ल जलमें अत्यंत बैठा रहना तथा आहारका पाक होना एवं धातुका क्षीण होना, इत्यादिक णोंसे वायुका कोप होता है और इतने कहे हुए कारणोंके प्रत्यनीक (विरुद्ध--कहिये उष्ण स्निग्धादि) पदार्थोंके सेवन करनेसे वायु शांत होता है ।

पित्तकोप और शमन ।

विदाहिकटुकाम्लोष्णभोज्यैरत्युष्णसेवनात् ॥
मध्याह्ने क्षुत्तृषारोधाज्जीर्यत्यन्नेऽर्धरात्रिके ॥
पित्तं प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ २७ ॥

अर्थ--दाहकारी[6], तीक्ष्ण[7], खट्टे, उष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे, अत्यंत अग्निके तापमें प्रहरके समय भूख और प्यासके रोकनेसे, अर्द्धरात्रिके समय, अन्नके परिपाक होते समय, त्यादि कारणोंकरके पित्तका प्रकोप होता है इन उक्त कारणोंके विरोधी मधुर शीतल आदि र्थोंके सेवन करनेसे पित्तका शमन होता है ।

कफका कोप और शमन ।

मधुरस्निग्धशीतादिभोज्यैर्दिवसनिद्रया॥ मंदेऽग्नौ च प्रभाते च भुक्तमात्रे तथा श्रमात्॥२८॥ श्लेष्मा प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ २९ ॥

---

१ जो पदार्थ खानेसे जल्दी पचजावें उनको लघु जानने उदाहरण मूंग मोठ आदि । २ चना पदार्थ रूक्ष जानने । ३ जितना अपना आहार है उससे कम खानेको मिताहार कहते हैं ।
४ स्त्रीविषयमें इच्छा होनेको काम कहते हैं । ५ धातुक्षयात्स्रुते रक्ते मंदः स जायतेऽ पवनश्च परं कोपं याति तस्मात्प्रयत्नतः इत्यादि । ६ जिनके खानेसे दाह होय उनको विदाही जैसे वांस और करीलकी कोपल । ७ राई मिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थ जाननें ।

अर्थ--मधुरे, स्निग्धे, शीतल तथा आदिशब्दसे भाँरी, श्लक्ष्णाँदि पदार्थोंके सेवन करनेसे, दिनमें निद्रा लेनेसे, मंदाग्निमें अधिक भोजन करनेसे, प्रातःकालमें भोजन करते ही देहको परिश्रम न देनेसे अर्थात् बैठे रहनेसे, इत्यादि कारणोंसे कफका प्रकोप होताहै, तथा इन कारणोंके विरुद्ध कहिये उष्ण तथा रूक्षादि पदार्थोंके सेवन करनेसे कफका शमन होता है।

इति माथुरदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसंहिताभाषाटीकायां भैषज्याख्यानं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

प्रथम लिख आए हैं कि 'नाडीपरीक्षादिविधिः' अतएव भैषज्याख्यानके अनंतर नाडीपरीक्षा लिखते हैं।

नाडीपरीक्षा।

करस्यांगुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ॥
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः ॥ १ ॥

अर्थ—जीवकी साक्षिणी ऐसी धमनीनाडी हाथके अंगूठेकी जडमें है, उसकी चेष्टा करके शरीरके सुखदुःखको पंडितँ जाने। ×

दोषोंके निजस्वरूपकी चेष्टाको कहतेहैं।

नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौकासर्पयोर्गतिम् ॥ कुलिंगकाकमंडूकगतिं पित्तस्य कोपतः॥हंसपारावतगतिं धत्ते श्लेष्मप्रकोपतः ॥२॥

अर्थ—वादीके कोपसे नाडी जोंखँ और सर्पकी चालके समान गमन करती है. पित्तके

---

१ गुड खांड मिश्रीआदि मधुर पदार्थ जानने २ घी-तेल-आदि स्निग्ध पदार्थ जानने ३ केलेकी ली, बरफ आदि शीतल पदार्थ जानने ४ भैंसका दूधआदि भारी पदार्थ जानने ५ उडद आदि श्लक्ष्ण पदार्थ जानने ६ प्राणवायुकी साक्षीभत ७ नाडीपरीक्षा किस समय करनी किस समय नहीं करनी इसको जाननेवाला।

× प्रदर्शयेद्दोषनिजस्वरूपं व्यस्तं समस्तं युगलीकृतं च। मूकस्य मुग्धस्य विमोहितस्य दीपप्रभावा इव नाडी ॥ सद्यः स्नातस्य भुक्तस्य तथा तैलावगाहिनः। क्षुत्तृषार्त्तस्य सुप्तस्य सम्यङ्नाडी न बुद्ध्यते ॥

८ जोख और सर्प इनका टेढातिरछा गमन है.

कोपसे नाडी कुलिंग (घरका चिडा) कौआ और मेंडक इनकी गतिके समान चलती है. कफके कोपसे नाडी हंस और कबूतरकी चालके सदृश चलतीहै ।

सन्निपात और द्विदोषकी नाडी ।

लावतित्तिरवर्तीनां गमनं सन्निपाततः ॥ कदाचिन्मंदगमना कदा चिद्वेगवाहिनी ॥३॥ द्विदोषकोपतो ज्ञेया हंति च स्थानविच्युता

अर्थ–सन्निपातमें नाडी लवा, तीतर और बटेरकीसी चाल चलतीहै । दो दोषोंके को नाडी धीरे २ चलकर तत्काल जलदी २ चलने लगतीहै. तथा अपने स्थानसे अन्यत्र निजगा चलतीहै जैसे पित्तके स्थानमें चक्रगतिसे चले तो वातपित्त जानना इत्यादि वर्तिक पक्षीको गरुडभी कहते हैं ।

असाध्यनाडीके लक्षण ।

स्थित्वा स्थित्वा चलति या सा स्मृता प्राणनाशिनी॥ ४॥ अतिक्षीणा च शीता च जीवितं हंत्यसंशयम् ॥

अर्थ–जो नाडी अपने स्थानको त्यागदे अर्थात् उस स्थानसे आगे पीछे चलनेलगे जो ठहर ठहरके चले इन दोनों प्रकारकी नाडी रोगियोंके प्राणोंको नाश करती है। जो अत्यन्त क्षीण होगईहो और अत्यंत शीतल होगई हो वह निश्चय प्राणोंको हरण करतीहै। से जो नाडी कुटिल और ऊँची नीची चले उस नाडीकोभी प्राण हरण करनेवाली जानो।

ज्वरादिकी नाडीके लक्षण ।

ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥ ५ ॥ कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिंताभयप्लुता ॥ मंदाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मंदतरा भवेत् ॥ ६॥ असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी

अर्थ–सामान्यज्वरके कोपमें नाडी गरम और जल्दी जल्दी चलती है इच्छा होनेपर उनके न मिलनेसे तथा क्रोधसे नाडी बहुत जल्दी चलतीहै एवं (सोच–विचार) और भय (दुश्मन आदिका भय)से नाडी क्षीण होतीहै । " चिंताभयश्रमात् " ऐसा पाठ कहतेहैं तहां श्रम कहिये ग्लानिसे नाडी क्षीण हो मंदाग्नि और धातुक्षीणवाले मनुष्योंकी नाडी अत्यंत मंद होतीहै तथा

---

१ कुलिंग कौवा और मैंडक इनका उछल २ कर चलन होताहै । कोई कुलिंगके जगह 'क ऐसा पाठ कहते हैं, उनके मतसे कलापी कहिये मोर इनकीसी चालके समान नाडी चलती है. (बतक) और कबूतर इनकी धीरी २ चाल है ३ लवा और तीतर ये पक्षी चपलगतिवाले हैं ४ मध्यवहांगुष्ठमूले यात्यर्थमुच्छलेत् । शनैरूर्ध्वोर्ध्व गमनी कुटिला हंति मानवम् ॥

कोपसे अर्थात् रुधिरपूरित नाडी कुछ गरम और भारी होती है। कोई (कोष्णाकी जगह सोष्णा) ऐसा पाठ कहते हैं। और आमयुक्त नाडी अत्यन्त भारी होती है, जठराग्निके दुर्बल होनेसे जो विना पचाहुआ रस शेष रहता है उसकी आमसंज्ञा है। अथवा आम करके इस जगह आमाजीर्ण जानना ।

उत्तमप्रकृतिके लक्षण ।

लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथावेगवती भवेत्॥७॥सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता॥ चपला क्षुधितस्यापि तृप्तस्य वहतिस्थिरा ॥८॥

अर्थ--जिस पुरुषकी जठराग्नि प्रदीप्त होती है उसकी नाडी हलकी और वेगवती होती है, स्वस्थ (रोगरहित) मनुष्यकी नाडी स्थिर और बलवती होती है, भूखे मनुष्यकी नाडी चंचल होती है, और भोजन कर चुकाहो उसकी नाडी स्थिर होती है। इति नाडी-परीक्षा ।

अब प्रथम लिख आए हैं, कि आदि शब्दसे दूत स्वप्नादिक जानने अतएव दूतके लक्षणोंको कहते हैं ।

दूतपरीक्षा ।

दूताः स्वजातयोव्यंगाः पटवो निर्मलांबराः ॥ सुखिनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः॥९॥ सुजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि संगताः ॥ भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे॥१०॥

अर्थ—वैद्यके बोलनेको अथवा प्रश्न करनेके विषयमें दूत कैसा होय सो कहते हैं । जो बोलनेको जाय वो उस रोगीकी जातिका हो, हाथ पैर आदिसे हीन न हो, सर्व कर्ममें कुशल है, सफेद वस्त्रोंको धारण करता है और सुखी तथा उत्तम घोडे और बैलपर बैठाहुआ, सफेद पुष्प और रसभरे फल करके युक्त तथा उत्तम कुलका और उत्तम

---

१ जठरानलदौर्बल्यादविपक्कस्तु यो रसः । स आमसंज्ञको देहे सर्वदोषप्रकोपक इति । २आमं विदग्धं विष्टब्धकं चेति–कोई सामा गरीयसी इस पदका अर्थ यह करते हैं; कि आमके साथ जो रहे उसे साम कहते वे दोष हैं दूष्य दूषितादिक जानने–जैसे लिखा है ।

आमेन तेन संपृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः । सामा इत्युपदिश्यंते ये च रोगास्तदुद्भवाः इति । तहां सामदोषते सामदूष्यसे और सामदूष्यतासे रसादिधातु दूष्य हैं मलमूत्रआदि दूषित हैं ।

२ पाखण्डाश्रमवर्णानां सपक्षाः कर्मसिद्धये । त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपत्तये । ३ तैलकर्दमदिग्धांगा रक्तस्रगनुलेपनाः । फलं पक्वमसारं वा गृहीत्वान्यच्च तद्विधम् । वैद्यं य उपसर्पति दूतास्ते चाभिगर्हिताः ।

चेष्टाको करनेवाला दूत होना चाहिये, इस श्लोकमें जो चकार है इससे उत्तम दर्शन और उत्तम हो तथा सजीव कहिये नासिकाकी पवन जिधरको वह रही हो उधरको बैठनेवाला, अथवा दिशामें आनेवाला । तथा समयपर वैद्यको मिलनेवाला इस प्रकारका दूत वैद्यके घर रोगीके उत्तमें तिथि नक्षत्रमें आया हुआ रोगीका कल्याणकारी जानना । कोई स्वजातयः इस जगह 'स लयः' ऐसा पाठ कहते हैं ।

दूतके शकुन ।

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ॥
न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं च सुखावहम् ॥ ११ ॥

अर्थ-जिस समय दूत वैद्यके बुलानेको जाय उस समय रस्तेमें भेरी मृदंगादिक सौम्य शकुन होय तो रोगीको शुभदायक नहीं होते अंगार तेल कुलथी इत्यादिक प्रदीप्त (अशुभ) शकुन होतो शुभदायक है; अर्थात् अशुभ शकुन शुभ हैं और शुभ शकुन अशुभ होते हैं जैसे ज्योतिष शास्त्रमें लिखा है ।

वैद्यके शकुन ।

चिकित्सां रोगिणः कर्तुं गच्छतो भिषजः शुभम् ॥
यात्रायां सौम्यशकुनं प्रोक्तं दीप्तं न शोभनम् ॥ १२ ॥

---

१ छिंदंतस्तृणकाष्ठानि स्पृशंतो नासिकास्तनम् । वस्त्रांतानामिकाकेशनखरोमदशास्पृशः । स्रोतोऽवं हृद्गंडनूर्द्धोरःकुक्षिपाणयः । कपालोपलभस्मास्थितुषांगारकराश्रये । विलिखन्तो महीं किंचित्काष्ठलोष्ठ दिनः । २ नपुंसकाः स्त्रीबहवो नैककार्या असूयकाः । पाशदंडायुधधराः प्राप्ता वा स्युः परंपराः । जीर्णापसव्यैकमलिनोद्धतवाससः । न्यूनाधिकांगा उद्विग्ना विकृता रौद्ररूपिणः । वैद्यं य उपसर्पंति दू चापि गर्हिताः । ३ यस्यां प्राणमरुद्याति सा नाडी जीवसंयुतेति । ४ याम्यां दिशि प्रांजलयो विषमै स्थिताः । वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः । ५ वैद्यस्य पित्र्ये दैवे वा कार्ये चोत्पातदर्श मध्याह्ने चार्धरात्रे वा संध्ययोः कृत्तिकासु च । आर्द्राश्लेषामघामूलपूर्वासु भरणीषु च । चतुर्थ्यां वा नव वा षष्ठ्यां संधिदिनेषु च । दक्षिणाभिमुखे देशे त्वशुचौ वा हुताशनम् । ज्वलयतं पचंतं वा क्रूरक चोद्यते । नग्नं भूमौ शयानं वा वेगोत्सर्गेषु वा शुचिम् । प्रकीर्णके समभ्यक्तं स्विन्नविक्लवमेव च । वै उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः इति ॥

६ सौम्यशकुन--भेरी, मृदंग, शंख, वीणा, वेदध्वनि, मंगलगीत, पुत्रान्वित स्त्री, बछरासहित धुलेहुए वस्त्र, ये सन्मुख आवे तो अनुत्तम जानना ।

७ प्रदीप्तशकुन--कुलथी, तिल, कपास, तिनका, पाषाण, भस्म, अंगार, तेल, काली दरसी, मु डाककी राख, इत्यादि जानने ।

८ सद्यो रणे कर्मणि वा प्रवेशे शुभग्रहे नष्टविलोकने च । व्याधौ च नद्युत्तरणे भयार्ते शस्तः प्र द्विपरीतभावः ॥

अर्थ--रोगीको औषध करनेको जाननेवाले वैद्यको मार्गमें × साम्य शकुन शुभदायक हैं और दीप्त ÷ शकुन अच्छे नहीं।

निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेनसंयुतः॥
चिकित्स्योभिषजारोगीवैद्यभक्तोजितेंद्रियः॥ १३॥

अर्थ--जिस रोगीकी मूलप्रकृति पलटी न हो तथा देहका वर्ण* पलटा न हो, और सतोगुणी,

---

× भृंगारांजनवर्द्धमाननकुलावर्द्धकपश्वामिषं शंखक्षीरनृयनपूर्णकलशच्छत्राणिसिद्धार्थकाः। वीणाकेतनमीनपङ्कजदधिक्षौद्राज्यगोरोचनाकन्यारत्नसितेक्षुवस्त्रसुमनाविप्राश्वरत्नानिच॥

÷ गमनंदक्षिणेवामान्नशस्तंश्वसृगालयोः। वामंनकुलचाषाणांनोभयंशशसर्पयोः॥ भासकौशिकगृध्राणांनप्रशस्तंकिलोभयम्। दर्शनंचरुतंचापि न सम्यक् कृकलासयोः॥ कुलत्थतिलकार्पासतुषपाषाणभस्मनाम्। पात्रंनेष्टंतथांगारतैलकर्दमपूरितम्॥ प्रसन्नेतरमद्यानांपूर्णंवारक्तसर्षपैः। शवकाष्ठपलाशानांशुष्काणांपथिसंगमाः। नेष्यंतिपतितास्थीनांदीनांधरिपवस्तथा॥

१ कोई आचार्य पांचतत्त्वकरके पांचभौतिकी प्रकृति कहतेहैं जैसे--पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्त्वोंकरके जाननी। कोई२ सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीन प्रकारकी प्रकृति कहते हैं। इसप्रकार प्रकृतियोंको कहकर अब वर्णको कहते हैं।

प्रकृति सात प्रकारकी है पृथक्२ दोषोंसे, दो दोषोंके मिलापसे और सन्निपातसे जैसे सुश्रुतमें लिखा है, 'शुक्रशोणितसंयोगाद्योभवेद्दोषउत्कटः। प्रकृतिर्जायतेतेनतस्यामेलक्षणंशृणु'

कोई प्रकृति अन्यउपाधियोंसेभी होतीहै। जैसे चरकमें लिखाहै कि जातिप्रसक्ता, कुलप्रसक्ता, देशानुपातिनी, कालानुपातिनी, वयोनुपातिनी, और प्रत्यात्मनियता प्रकृति तहां जातिप्रसक्ता प्रकृति जाति २ में पृथक् २ होतीहै जैसे सुनार, लोहार, दरजी, नाऊ, कुम्हार, आदिमें बोलना चालचलना आदि। कुलप्रसक्ता प्रकृति जैसे--ब्राह्मणोंके कुलमें तपःप्रियता, क्षत्री कुलमें शूरवीरता आदि धर्म होतेहैं। देशानुपातिनीप्रकृति जैसे--कर्नाटक, पंजाब, उडिया, आसाम, गुजरातके रहनेवालेके कायिक वाचिक मानसिक धर्म पृथक् २ हैं। कालानुपातिनी प्रकृति जैसे--समय २ में देहादिकोंमें दुर्बलता स्थूलता आदि और दोषोंका संचय कोप प्रशमादि पृथक् २ होते हैं। वयोनुपातिनीप्रकृति जैसे--बाल्यअवस्था, यौवनअवस्था और वृद्धावस्थादिकके धर्म पृथक् २ होते हैं। और सातवीं प्रत्यात्मनियता प्रकृति है--जैसे प्रत्येक मनुष्यके रहती हैं वो सब प्रकृतियां कायिक, वाचिक, और मानसिकस्वभावविशेष करके पृथक् २ हैं।

* तहां वर्णशब्दकरके प्रभा जानना, उसीको छाया भी कहते हैं। परंतु कोई आचार्य प्रभा और छायामें भेद मानतेहैं जैसे--

--"वर्णप्रभामिश्रितायाछायासापरिकीर्तिता। वर्णमाक्रामतिच्छायाप्रभा वर्णप्रकाशिनी। आसन्नालक्ष्यतेछायाप्रभादूराचलक्ष्यते"

वैद्यका आज्ञाकारी तथा इन्द्रियोंका जीतनेवाला ऐसा रोगी[1] होय तो उसकी वैद्य चिकित्सा करे अर्थात् औषधी देवे ।

तहां दुष्ट स्वप्न ।

स्वप्नेषुनग्नान्मुंडांश्चरक्तकृष्णांबरावृतान् ॥ व्यंगांश्चविकृतान्कृष्णान्सपाशान्सायुधानपि ॥१४॥ बध्नतोनिघ्नतश्चापिदक्षिणांदिशमाश्रितान् ॥ महिषोष्ट्रखरारूढान्स्त्रीपुंसोयस्तुपश्यति । सस्वस्थोलभतेव्याधिंरोगीयात्येवपंचताम् ॥ १५ ॥

अर्थ--स्वप्नमें नंगे, संन्यासी, अथवा सांई इत्यादि मुंडे हुये, लाल, काले वस्त्रोंको पहने हुए नाक कान कटेहुए, पांगुरे कुबडे खंजे, काले, हाथोंमें फांस तलवार भाला बरछी इत्यादिक धारण करे हुए, बांधते मारते हुए, दक्षिग दिशामें स्थित, भैंसा, ऊंट, गधा इनपर चढे हुए, पुरुष किंवा स्त्रियोंको देखे तो रोगरहित मनुष्य रोगी होवे; और रोगी मनुष्य देखे तो मरणको प्राप्तहो ।

अधोयोनिपतत्युच्चाज्जलेग्नौवाविलीयते ॥ श्वापदैर्हन्यतेयोपि मत्स्याद्यैर्गिलितोभवेत् ॥ १६ ॥ यस्यनेत्रेविलीयेतेदीपोनिर्वाणतांव्रजेत् ॥ तैलंसुरांपिबेद्वापिलोहंवालभतेतिलान्[2] ॥ १७ ॥ पक्वान्नंलभतेऽश्नातिविशेत्कूपरसातलम्[3] ॥ सस्वस्थोलभतेव्याधिंरोगीयात्येवपंचताम् ॥ १८ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें अपनेको पर्वत अथवा वृक्ष इत्यादि उच्चस्थानसे गिरताहुआ देखे तथा जलमें डूबजावे, अग्निमें गिरजावे, कुत्तेने काटाहो, अथवा अपने कुटुंबके मनुष्य करके पीडितहो, मछली आदि जिसको निगल जावे (आदिशब्दसे, मगर, सूंस, ग्राह आदि निगल जावे), स्वप्नमें नेत्र जाते रहैं, जलता दीपक बुझ जावे,

---

इस वर्णमें प्रभा छायाका केवल लक्षणभेदही नहीं है किंतु संख्यामेंभी भेद है । जैसे-कृष्ण, श्याम, और गौरश्याम, ऐसे वर्ण चार प्रकारके हैं । प्रभाके सात भेद हैं–रक्त, पीत, श्वेत, श्याम, हरित, पांडुर और असित, छायाके पांच भेद हैं–स्निग्ध, विमल, रूक्ष, मलिन और संक्षिप्त । रुदनशीलताको सत्व कहते हैं जैसे लिखा है–

' सत्ववान्सहतेसर्वंसंस्तभ्यात्मानमात्मना । राजसः स्तंभमानोन्यैः सहतेनैवतामसः ॥ '

तहां प्रवर और मध्यमके भेदसे सत्वके तीन भेद हैं । इन सबके लक्षणयहांपर ग्रंथ बढनेके भयसे नहीं लिखे सो ग्रंथान्तरसे जानलेना ।

१ आढ्योरोगीभिषग्वश्योज्ञापकः सत्त्ववानपीति ।

२ लौहम् इति पाठांतरम् । ३ जननींप्रविशेत्नरः इतिपाठांतरम् ।

सुराको पीवे, लोह (सुवर्ण, तांबा, रांगा, शीशा, लोहा आदि) वा ग्रहणसे कपास खल-लवण आदिको प्राप्तहो और तिलमिले, एवं पक्वान्न (पूडी कचौडी लड्डू) प्राप्तहों अथवा पक्वान्नका भोजन करे (तथा माताके घरमें, माताके उदरमें, अथवा माताकी गोदमें माताके साथ शयन करे) जो कुएमें अथवा पातालमें प्रवेश करे तो रोगरहित मनुष्य रोगीहो और रोगी मनुष्य मरे।

दुःस्वप्नका परिहार।

दुःस्वप्नानेवमादींश्चदृष्ट्वाब्रूयान्नकस्यचित् ॥ स्नानंकुर्यादुषस्येवदद्याद्धेमतिलानथ ॥ १९ ॥ पठेत्स्तोत्राणिदेवानांरात्रौदेवालयेवसेत् ॥ कृत्वैवंत्रिदिनंमर्त्योदुःस्वप्नात्परिमुच्यते ॥ २० ॥

अर्थ—पूर्वोक्तकहेहुए (नग्नमुंडितादिक) खोटे स्वप्नोंको देखकर किसीसे न कहै। प्रातःकाल उठ स्नानकर काले तिल, और सुवर्णका दानकरे और दुष्ट स्वप्ननाशक (विष्णुसहस्रनाम गजेन्द्रमोक्षादि) देवस्तोत्रोंका पाठकरे। इसप्रकार दिनमें कृत्यकर रात्रिमें देवमंदिरमें रहकर जागरणकरे। इसप्रकार तीनदिन करनेसे यह मनुष्य दुष्टस्वप्न (खोटेसपने) के दोषसे छुटजाताहै।

अथ शुभस्वप्न।

**स्वप्नेषुयःसुरान्भूपाञ्जीवतःसुहृदोद्विजान् ॥
गोसमिद्धाग्नितीर्थानिपश्येत्सुखमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥**

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें इन्द्रादिक देवता, राजा महाराजा, जीवतेहुए मित्र, कुटुंबके लोग और ब्राह्मण, गौ, देदीप्यमान अग्नि मथुरा प्रयागादितीर्थ इत्यादिकोंको देखे अथवा तीर्थ कहिये गुरु-आचार्य आदिको देखे तो सुखको प्राप्तहो।

**तीर्त्वाकलुषनीराणिजित्वाशत्रुगणानपि ॥
आरुह्यसौधगोशैलकरिवाहान्सुखीभवेत् ॥ २२ ॥**

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें कीचके पानियोंको (आदिशब्दसे नदी नद समुद्रको) तरे अर्थात् पारहोय, तथा शत्रुओंको जीतके आवे, और सफेद घर, बैल, पर्वत और हाथी, घोडा, इनपर आपको चढाहुआ देखे तो उसको सुखकी प्राप्तिहो।

**शुभ्रपुष्पाणि वासांसि मांसं मत्स्यान् फलानि च
प्राप्तातुरः सुखी भूयात्स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥ ॥ २३ ॥**

---

१ धान्यादिकोंको पीस सिद्ध कीहुई जो सुरा (कहिये मद्य) उसको स्वप्नमें पीवे तो अशुभ है और इससे व्यतिरिक्त अर्थात् अन्यप्रकारकी दारू पीवे तो शुभ है। जैसे लिखा है—

"रुधिरंपिबतिस्वप्नेमद्यंवापिकथंचन। ब्राह्मणोलभतेविद्यामितरस्तुधनंलभेत्"

अर्थ–जो मनुष्य सफेद पुष्प, सफेद वस्त्र, कच्चा मांस, मछली और आम्र आदि फलोंको स्वप्नमें देखे वह रोगी रोगरहित हो और रोगहीन देखे तो उसको धनकी प्राप्तिहो ।

अगम्यागमनंलेपोविष्टयारुदितंमृतिम् ॥
आममांसाशनंस्वप्नेधनारोग्याप्तयेविदुः ॥ २४ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें अगम्यास्त्री (रजस्वला, बहिन, बेटी, गुरुस्त्री आदि) से गमन-करे, अथवा अगम्यस्थानमें जाय, तथा विष्टासे अपनीदेह लिप्तहुई देखे, तथा आपको अथवा अन्यको रुदन करता अथवा मराहुआ देखे, तथा कच्चेमांसको भक्षण करता देखे तो रोग-युक्त निरोगी हो और अरोगीमनुष्यको धनकी प्राप्तिहोवे ।

जलौकाभ्रमरीसर्पोमक्षिकावापियंदशेत् ॥
रोगीसभूयादारोग्यः स्वस्थोधनमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यको सपनेमें जोख, भँवरी, सर्प और मक्खी काटें, वा शब्दसे बर्र, ततैया, मच्छर आदि डसे तो रोगी रोगरहित हो और स्वस्थ मनुष्यको धनकी प्राप्ति होवे ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारसंपादकमाथुरदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरभाषाटीकायां नाडीपरीक्षादिविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

प्रथम यह लिख आएहैं कि "ततो दीपनपाचनं" अतएव दीपनपाचनाध्यायको कहतेहैं ।

दीपनपाचन औषध ।

पचेन्नामंवह्निकृच्चदीपनं तद्यथामिशिः ॥ पचत्यामंनवह्निं च कुर्या-द्यत्तद्धि पाचनम् ॥ नागकेशरवद्विद्याच्चित्रोदीपनपाचनः ॥ १ ॥

अर्थ–जो औषध आमको न पचावे और अग्निको प्रदीप्त करे उसको दीपनसंज्ञक जानना जैसे सौंफ । और जो औषध आमको पचावे और अग्निको प्रदीप्त न करे उसको 'पाचन' संज्ञक

१ द्रव्यगुणावल्यां–'शतपुष्पालघुस्तीक्ष्णापित्तकृद्दीपनीकटुः' । कदाचित् कोई प्रश्न करे कि जब सौंफ दीपनी है फिर आमको क्यों नहीं पचाती और विना आमके पचे अग्नि कदाचित् दीप्त नहीं होती तहां कहते हैं कि द्रव्योंके प्रभाव अचिंत्य हैं यह सुश्रुतमें लिखा है । इन हेतुनसे विचारनेमें नहीं आते । जैसे "नौषधिर्हेतुभिर्विद्वान्नपरीक्षेत्कथंचन । सहस्राणां च हेतूनांनांबष्ठादिर्विरेचयेत्" इत्यादि
२ 'जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तुयोरसः । सआमसंज्ञकोज्ञेयःसर्वदोषप्रकोपनः' ॥

कहते हैं जैसे नागकेशर । और जो अग्निको प्रदीप्त करे और आमकोभी पचावे उस औषधको 'दीपनपाचन' कहते हैं जैसे चित्रक ।

संशमनऔषध ।

नशोधयतिनद्वेष्टिसमान्दोषांस्तथोद्धतान् ॥
शमीकरोति विषमाञ्छमनं तद्यथामृता ॥ २ ॥

अर्थ–जो औषध वातादिदोष समान हो उनको विगाडै नहीं और न शोधन करे तथा बिगडेहुए दोषोंमें मिलकर समान दशामें प्राप्तकरे, तात्पर्य यह है कि जो कुछ इस प्राणीने खायापियाहै उसको विना निकाले अर्थात् न वमन करावे न दस्त करावे किंतु जो दोष हो उसमें मिलकर उसी जगह उसको शमन करदेवे, उसको 'शमन' संज्ञक कहते हैं । इस जगह दोषशब्द दोषोंमें और उन दोषोंके कार्यमेंभी कार्यकारणके उपचारसे लेना चाहिये । उदाहरण–जैसे गिलोय ।

अनुलोमन औषध ।

कृत्वापाकंमलानांयद्भित्त्वाबंधमधोनयेत् ॥
तच्चानुलोमनंज्ञेयं यथाप्रोक्ताहरीतकी ॥ ३ ॥

अर्थ–जो औषध मल कहिये वातादिदोषोंके पाक अर्थात् कोपको शांतिकरके परस्पर बद्ध अथवा अबद्धोंको पृथक् २ कर नीचेको गिरावे, अथवा वात मूत्र पुरीषादिकोंका बंध अर्थात् बद्धकोष्ठको स्वच्छकारके मलादिकोंको अधोभागमें प्राप्तकर गुदाद्वारा निकाले उस औषधको 'अनुलोमन' जानना । उदाहरण जैसे हरड ।

स्रंसन औषध ।

पक्तव्यंयदपक्त्वैवश्लिष्टं कोष्ठेमलादिकम् ॥
नयत्यधःस्रंसनंतद्यथा स्यात्कृतमालकः ॥ ४ ॥

अर्थ–पश्चात् पाक होने योग्य जो वातादिक दोष उनके कोष्ठाश्रित होनेसे जो औषध उनको विनाही पाककरें नीचेके भागमें लाकर गुदाके द्वारा निकाले उसको 'स्रंसन' संज्ञक औषधि कहते हैं । उदाहरण जैसे अमलतासका गूदा ।

---

१ नागकेशरकंरूक्षमुष्णं लघ्वामपाचनामिति । २ चित्रकःकटुकःपाकेवह्निकृत्पाचनोलघुः ।

❀ नशोधयतियद्दोषान्समान्नोदीरयत्यपि । समीकरोतिकुद्धांश्चतत्संशमनमुच्यते । इति पाठांतरम् ।

३ रसायनीसंशमनीदोषाणांज्वरनाशिनी । गुडूचीकटुकालघ्वीतिक्ताग्निदीपनीतिच ।

४ आदि शब्दकरके मलमूत्रादिक जानने । ५ पाचकस्थानके आश्रय करके कोई कोष्ठशब्द करके हृदयादिकोंकाभी ग्रहण करते हैं जैसे " स्थानान्यामाग्निपक्वानामूत्रस्यरुधिरस्यच । हृद्दुंडुफुप्फुसानांचकोष्ठमित्याभिधीयते " ।

भेदन औषध ।

मलादिकमबद्धं वा बद्धं वा पिंडितं मलैः ॥
भित्त्वाधःपातयतितद्भेदनं कटुकीयथा ॥ ५ ॥

अर्थ–जो औषध वातादिदोषोंकरके बंधेहुए अथवा विना बंधेहुए गांठके समान मलमूत्रादिकोंको तोड फोडकर नीचेके भागमें लायके गुदाके द्वारा निकाले उसको 'भेदन' संज्ञक कहते हैं। जैसे कुटकी ।

रेचनऔषध ।

विपक्कं यदपक्कं वा मलादि द्रवतां नयेत् ॥
रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥ ६ ॥

अर्थ–जो औषध पेटके अन्नादिकोंका उत्तम पाक होनेपर अथवा कुछ कच्चे रहनेपर उन अन्नादिकोंको तथा वातादिमलोंको पतला करके अधोभागमें लाय गुदाद्वारा दस्त करावे उसको 'रेचन' संज्ञक कहते हैं. जैसे निसोथ । रेचकमात्र द्रव्योंमें पृथ्वीतत्व और जलतत्वके गुरुत्वादि गुण अधिक होनेसे नीचेको जाती है अतएव दस्त कराते हैं । गुरुत्व शब्द करके इस जगह प्रभाव विशेष जानना अन्यथा मत्स्य मसूर पिष्टान्नादिकोंको विरेचकत्व आवेगा ।

वमन औषध ।

अपक्कपित्तश्लेष्माणौबलादूर्द्ध्वंनयेत्तुयत् ॥
वमनंतद्धिविज्ञेयं मदनस्यफलंयथा ॥ ७ ॥

अर्थ–जो औषध पक्कदशाको नहीं प्राप्तहुए ऐसे पित्त और कफको बलात्कार करके मुखके द्वारा निकाले (रद्दकरावे) उसे 'वमन' संज्ञक जानना । उदाहरण जैसे मैनफल । संपूर्ण वमनकारी द्रव्योंमें पवन और अग्निके गुण लघुत्वादि अधिक होनेके कारण ऊपरको जाते हैं अतएव रद्द होती हैं । इस जगहभी लघुत्वादि करके प्रभाव विशेष जानना अन्यथा तीतर–खील आदिको वमनत्व आवेगा । कोई प्रश्न करे कि कफको वमन और पित्तको विरेचनद्वारा निकाले ऐसा शास्त्रमें लिखा है, फिर इस जगह पित्तको वमन द्वारा निकालना कैसे कहा ? तहां कहते हैं कि अपक्क पित्तको वमनद्वाराही निकालना

---

१ शुष्क और गांठदार । २ मलशब्दसे इसजगह दोषोंका ग्रहण है । आदि शब्दसे रूक्ष दूषितादिकोंकाभी ग्रहण है । ३ आदिशब्दकरके दूष्य और दूषितादिकोंका ग्रहण है । ४ मदनस्य फलं बलादि पाठांतरम् ।

चाहिये, जैसे लिखा है कि कटुतिक्त और अम्लोंको वमन करके निकाले देखो दग्धपित्त अम्लताको प्राप्त होता है अतएव अम्लपित्तकी चिकित्सामें प्रथम वमन कराना लिखा है।

संशोधन औषध।

स्थानाद्बहिर्नयेदूर्ध्वमधोवामलसंचयम् ॥
देहसंशोधनंतत्स्याद्देवदालीफलंयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—जो औषध स्वस्थानमें संचित मलों (वातादिकों) को ऊपरके भागमें लायकर (मुखे--नासिका) द्वारा बाहर निकाले, अथवा उस संचयको अधो अधो भागमें लायकर (गुदा--लिंग--भग) द्वारा बाहर निकाले, उसको 'संशोधन' जानना। उदाहरण जैसे देवदालीका फल, जिसको वंदाल और घघरवेलभी कहते हैं। देहके कहनेसे फस्त खोलनाभी शोधनमें लिया है।

छेदन औषध।

श्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयतियद्बलात् ॥
छेदनंतद्यवक्षारो मरिचानिशिलाजतु ॥ ९ ॥

अर्थ—जो औषध परस्पर एकसे एक मिले हुए कफादि दोषोंको अपनी शक्ति करके फोडकर पृथक् २ करदेवे उसको 'छेदन' औषध कहते हैं। उदाहरण जैसे जवाखार, कालीमिरच, और शिलाजीत (मरिचानि) इस बहुवचनसे लाल मिरचभी छेदनकर्त्ता जाननी। उन वातादि क्रम त्यागकर इस जगह श्लोकमें कफादि क्रम क्यों कहा उत्तर देहको ऊर्ध्वमूलत्व अधःशाखत्व है इस कारण कफक्रम रक्खा है।

लेखन औषध।

धातून्मलान्वादेहस्य विशोष्योल्लेखयेच्चयत् ॥

---

१ मुखसे रद्दके द्वारा और नाकमें नास देनेसे वमन और नासके साथ वो दोष निकलते हैं।
२ शोधन बाह्य और अभ्यंतरके भेदसे दोप्रकारका है। तहां बहिराश्रय जैसे शस्त्र क्षार अग्नि प्रलेपादि। और अभ्यंतराश्रय चार प्रकारका है जैसे वमन विरेचन आस्थापन और शोणितावसेचन। कोई शोणितावसेचनकी जगह शिरोविरेचन कहते हैं परन्तु उसे वमनके अन्तर्गत जानना. क्योंकि ऊर्ध्वशोधक है।
३ कोई परस्पर गठे हुए ऐसा कहता है और कोई 'श्लिष्ट' का अर्थ अत्यन्त कुपित ऐसा कहता है। और आदि शब्द करके वात पित्त रुधिर और कृमि इनकाभी दोष शब्द करके ग्रहण है जैसे सुश्रुतमें लिखा है "नतदेहः कफादस्तिनपित्तान्नचमारुतात्। शोणितादपिवानित्यंदेह एतैस्तुधार्यते" और कृमिको दोषत्व गुग्गुलुकल्पमें लिखा है यथा "पंचादिदोषान्समये" इत्यादि यहां पंचदोष करके वात, पित्त, कफ, रुधिर और कृमियोंका ग्रहण है।

लेखनंतद्यथाक्षौद्रंनीरमुष्णंवचायवाः ॥ १० ॥

अर्थ–जो औषधी रसादिधातु और वातादिदोष इनको सुखायके देहसे बाहर निकाले उसको 'लेखन' औषधि कहते हैं । उदाहरण जैसे–सहत, गरमजल, वच और जो (मलान् वा इसमें वा जो पडा है उसे मनके दोष पृथक् करनेको जानना । क्योंकि मनके दोषोंकी चिकित्सा दूसरी है । प्रश्न–मनके दोष कौनसे हैं ? उत्तर–"रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ" इत्यादि–अर्थात् रजोगुण और तमोगुण ये दो मनको बिगाडनेवाले दोष हैं ।

ग्राही औषध ।

दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम् ॥
ग्राहि तच्च यथा शुंठी जीरकं गजपिप्पली ॥ ११ ॥

अर्थ–जो औषध अग्नि प्रदीप्त करे और आमादिकोंका पाचन करे तथा उष्णवीर्य होनेसे जल स्वरूप जो कफादि दोष, धातु और मल इनका शोषण करे उसको 'ग्राही' कहते हैं उदाहरण जैसे सोंठ, जीरा और गजपीपल ।

स्तंभन औषध ।

रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्चयद्भवेत् ॥
वातकृत्स्तंभनंतत्स्याद्यथावत्सकटुंटुकौ ॥ १२ ॥

अर्थ–जो औषधी रूक्ष गुणकरके, शीतवीर्य करके, कषैले रसकरके युक्त होनेसे एवं पाककरके हलकी होवे; ऐसे प्रकारकी जो औषध वो वादीको उत्पन्न करे है । अतएव उस औषधको 'स्तंभन' जाननी । उदाहरण जैसे–कुडा और स्योनाक (टैंटु)

रसायन औषध ।

रसायनंचतज्ज्ञेयंयज्जराव्याधिनाशनम् ॥
यथामृतारुदंतीचगुग्गुलुश्चहरीतकी ॥ १३ ॥

अर्थ–जो औषध देहकी वृद्धावस्था और ज्वरादि रोगोंका नाश करे उसको रसा-

---

१ नीरंकोष्णंवचायवाः इति पाठान्तरम् अयंपाठः कपोलकल्पनया केनापिलिखितः ।

२ प्रश्न–वच संग्राही नहीं हो सक्ती क्योंकि अनिलगुणभूयिष्ठ है और अनिल है सो शोषण करे है । उत्तर–संग्राही औषध पक्व और आमग्रहण करनेसे दो प्रकारकी है. तहां जो संग्रहणीमें आमको पचायके अग्नि प्रज्वलितकर उसी ग्रहणीमें स्थित द्रवताको सुखायके स्तंभन करे उसे उष्णग्राहक जानना और जो औषध अतिसारादिकोंमें पक्वमलादिकोंको स्तंभन करे उसका संग्रह कर उसे शीतग्राहक जाननी । ये दो अनिलगुणभूयिष्ठ हैं परन्तु फिरभी संग्राहित्वमें दोषता नहीं आती । ३ धीधैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधंपरम् ।

यन जानना। उदाहरण जैसे—गिलोय, रुदंती (शाकका भेद, पश्चिममें बहुत विख्यात है) गूगल और हरड। प्रश्न—व्याधिके कहनेसेही वृद्धावस्थाका ग्रहण होगया फिर पृथक् क्यों कही? उत्तर—जराशब्द करके इस जगह स्वाभाविकी वृद्धावस्थाका ग्रहण है क्योंकि सत्तरवर्षके उपरांत स्वाभाविक वृद्धावस्था कहलाती है। जो रसादिधातुओंका अयन अर्थात् पोषणकारी होय उसको 'रसायन' कहते हैं.

वाजीकरण औषध।

यस्माद्द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषुहर्षोवाजीकरंचतत्॥
यथानागबलाद्यास्तुबीजंचकपिकच्छुजम्॥ १४॥

अर्थ—जो औषध धातुको बढायकर स्त्रियोंमें हर्षयुक्त शक्तिको करे अर्थात् मैथुन शक्तिको बढावे उसको वाजीकरण जानना। उदाहरण जैसे नागबला (खरेटी) (आदि शब्दसे जायफल, शतावर, दूध, मिश्री, इत्यादिक) और कौंचके बीज वाजीकरण दो प्रकारका है एक वीर्यस्तंभकर्ता दूसरा वीर्यवृद्धिकारी।

धातुवृद्धिकारी औषध।

यस्माच्छुक्रस्यवृद्धिः स्याच्छुक्रलंचतदुच्यते॥
यथाश्वगंधामुशलीशर्कराचशतावरी॥ १५॥

अर्थ—जिस औषधसे धातुकी वृद्धि हो उस औषधको शुक्रल जाननी। उदाहरण जैसे—असगंध, मुसरी, मिश्री, शतावर इत्यादि।

धातुको चैतन्यकर्ता तथा वृद्धिकारी औषध।

दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जामलानि च॥
प्रवर्तकानि कथ्यंते जनकानि च रेतसः॥ १६॥

अर्थ—शुक्रधातुको चैतन्य करनेवाली तथा उत्पन्नकारी ऐसी औषध दूध, उडद, भिलायेके फलकी गिरी और आमले इत्यादिक जानना।

वाजीकरण औषधविशेष।

प्रवर्तनं स्त्रीशुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम्॥
जातीफलं स्तंभकं च शोषणी च हरीतकी॥ १७॥

अर्थ—स्त्री वीर्यकी प्रगट करनेवाली है. और बडी कटेरीका फल शुक्रका रेचन कर्ता है. एवं जायफल वीर्यका स्तंभक है. और हरड शुक्रको सुखानेवाली है. कोई प्रथम पदका यह अर्थ करते हैं कि कटेरीका फल स्त्रीके वीर्यको प्रवर्तन और रेचन कर्ता है। पर यह अर्थ श्रेष्ठ नहीं।

१ कालिङ्गं क्षयकारीच इति पाठान्तरम्।
× स्त्रीस्मरणकीर्तनदर्शनसंभाषणस्पर्शनचुंबनालिंगनादिभिः शुक्रस्य प्रवर्तनं (इति. भाव प्र.)

सूक्ष्म औषध ।

देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्मसुच्यते ॥
तद्यथासैंधवं क्षौद्रं निंबस्तैलं रुवूद्भवम् ॥ १८ ॥

अर्थ—जो औषध देहके सूक्ष्म छिद्र (रोमकूपों) में प्रवेश करे उसको सूक्ष्म औषधि हैं. उदाहरण. जैसे—सैंधानिमक, सहत, नीम, और अंडीका तेल (अथवा नीमका तेल अंडीका तेल ।)

व्यवायि औषध ।

पूर्वंव्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति ॥
व्यवायि तद्यथा भंगा फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जो औषध अपक्व हो सकल देहमें व्याप्तहो फिर मद्य विषके समान पाकको प्राप्त उस औषधको 'व्यवायि' जानना । उदाहरण जैसे भांग और अफीम ।

विकाशी औषध ।

संधिबंधांस्तुशिथिलान्यत्करोति विकाशितत् ॥
विश्लेष्यौजश्चधातुभ्यो यथाक्रमुककोद्रवाः ॥ २० ॥

अर्थ—जो औषध सर्व अंगोंकी संधियोंके बंधनोंको शिथिलकरे और रसादि धातुसे हुआ जो ओज (अर्थात् सर्व धातुओंका तेज) उसको धातुओंमेंसे शोषण करे उस औ 'विकाशी' जानना उदाहरण जैसे—सुपारी और कोदों धान्य चकारसे अपकही उक्त कर्मों ऐसा जानना ।

मदकारी औषध ।

बुद्धिं लुंपति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥
तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २१ ॥

अर्थ—जो पदार्थ बुद्धिका लोप करे उसको मदकारी कहते हैं यह तमोगुण प्रधान है हरण—जैसे सुरादिक, मद्य, दारू ।

बुद्धिशब्द मेधा, धृति, स्मृति, मति और प्रतिपत्तिआदिवाचक है. प्रसंगवश लक्षणोंको कहते हैं. ग्रंथधारणाशक्तिको 'मेधा' कहते हैं । संतुष्टताको

---

१ ततो भावय कल्पते इति पाठान्तरम् । पुनर्भावं स विंदति इति वा पाठान्तरम् । २ 'वि इति पा० ।

३ रसादीनां शुक्रान्तानां यत्परं तेजस्तत् बल्योजस्तदेवबलमुच्यते यतः "देहः सावयवस्तेन भवति देहिनामिति—" तात्पर्यार्थ यह है कि कोई कहता है कि संधिप्रभृतियोंके शिथिल होनेसे उत्पन्न होता है और उस कामसे ओज क्षीण होताहै । जैसे लिखा है—"अभिघातात्क्षयात्को नाच्छोकाच्छ्रमात्क्षुधः । ओजः संक्षीयते ह्येभ्यो धातुग्रहणमिश्रितम्" ।

कहते हैं कोई नियमात्मिका बुद्धिको 'धृति' कहते हैं। बीतीहुई वार्ताके याद रहनेको 'स्मरण' कहते हैं कोई अर्थधारणशक्तिको 'स्मरण' कहते हैं। विना जानी वस्तुके ज्ञानको 'मति' कहते हैं कोई २ त्रिकालज्ञानको मति कहते हैं और अर्थावबोधप्राकट्यको 'प्रतिपत्ति' कहते हैं। (सु- रादिकं) इस पदमें आदि शब्दकरके संपूर्ण मदकारी वस्तु जाननी। प्रश्न—मद्य तो बुद्धि, स्मृति; वाणी और चेष्टा कर्त्ता लिखाहै यथा "बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्न निद्रारतिवर्द्धनश्च। संपाठगीतस्वरवर्द्धनश्च प्रोक्तोतिरम्यः प्रथमो मदोहि" ॥ फिर इस जगह मदकारी द्रव्योंको बुद्धिलोपकर्त्ता कैसे लिखा है? उत्तर—मदकी चार पानावस्थाहैं, तहाँ प्रथम मदपान बुद्ध्यादिकका लोपकरता है. शेष बुद्ध्यादिकके लोपकर्ता हैं अतएव शार्ङ्गधरने लिखाहैं।

प्राणहारक औषध।

व्यवायि च विकाशि स्यात्सूक्ष्मं छेदि मदावहम् ॥
आग्नेयं जीवितहरंयोगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २२ ॥

अर्थ—पूर्व कही हुई जो व्यवायि, विकाशि, सूक्ष्म, छेदि, मदकारी और आग्नेय और प्राण हरनेवाला तथा योगवाही (गरमके संग अतिगरम और शीतद्रव्यके संग अतिशीतल हो) उसे विष कहते हैं. कोई आचार्य लोकमें "योगवाह्यमृतं विषं" ऐसाभी पाठ कहते हैं उसका अर्थ यह है कि वह विष योगवाही कहिये किसी संस्कार विशेष करके जिस २ अनुपानके साथ देवे उसी अनुपानके गुणोंको बढायके अमृतके तुल्य गुण करै।

प्रमाथी औषध।

निजवीर्येण यद्द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसंचयम् ॥
निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २३ ॥

अर्थ—जो द्रव्य अपनी शक्तिसे कान, मुख, नासिका आदि छिद्रोंसे तथा अन्य छिद्रोंसे कफादि दोष संचयको (और व्याधिसंचयको) निकाले उसको प्रमाथि कहते हैं उदाहरण जैसे वच, कालीमिरच, (तथा लाल मिरच।)

अभिष्यन्दि लक्षण।

पैच्छिल्याद्गौरवाद्द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः ॥
धत्ते यद्गौरवं तस्मादभिष्यन्दि यथा दधि ॥ २४ ॥

अर्थ—जो द्रव्य अपने पिच्छल गुणकरके भारीपनेसे रसवाहिनी २४ शिराओंको रोककर शरीरको भारीकरे उस पदार्थको अभिष्यन्दि कहिये स्रोतःस्रावी जानना उदाहरण जैसे—दही।

इति श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां दीपनपाचनादिर्नामविधिचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः।

प्रथम यह लिख आये हैं कि "ततः कलादिकाख्यानं" अतएव कलादि कहते हैं।

कलाः सप्ताशयाः सप्तधातवः सप्ततन्मलाः ॥ सप्तोपधातवः सप्त त्वचः सप्त प्रकीर्त्तिताः॥१॥ त्रयोदोषानवशतंस्नायूनांसंधयस्तथा ॥ दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च त्रिशतं तथा ॥२॥ सप्तोत्तरंमर्मशतंशिराः सप्तशतंतथा ॥ चतुर्विंशतिराख्याता धमन्यो रसवाहिकाः ॥ ३ ॥ मांसपेश्याः समाख्याता नृणांपंचशतंबुधैः ॥ स्त्रीणांचविंशत्यधिकाः कंडराश्चैव षोडश ॥ ४ ॥ नृदेहेदशरंध्राणिनारीदेहे त्रयोदश ॥ एतत्समासतः प्रोक्तं विस्तरेणाधुनोच्यते ॥ ५ ॥

अर्थ–शरीरमें रसादि धातुओंके जो स्थान हैं उनकी मर्यादाभूत ऐसी सात कला कोष्ठमें सात आशय कहिये स्थान हैं। रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि (हड्डी) और शुक्र ये सप्त धातु हैं, तथा उन धातुओंके सात मल हैं। धातुओंके समीप ऐसी सात उपधातु हैं। शरीरमें सात त्वचा हैं। वात, पित्त, और कफ ये तीन हैं। शरीरमें डोरीके समान और वेलके समान ९०० बंधन हैं उनको स्नायु कहते दोसौ दश संधि हैं। श्लोकमें जो चकार हैं इससे संधि दोसौ दशसे अधिक शरीरके आधारभूत और बलकारी ३०० हड्डी हैं जीवके आधारभूत ऐसे १०७ मर्मस्थान दोष और धातु तथा जलके बहानेवाली ७०० शिरा है। चकारसे कुछ अधिक ऐसा जानना। रस वहानेवाली २४ (धमनी) नाडी है, और पुरुषके देहमें मांसपेशी मांसके लंबे २ टुकडे पांचसौ हैं।

---

१ धात्वाशयांतरैस्तस्य यत्क्लेदस्त्वधितिष्ठति। देहोष्मणाविपक्कोयः साकलेत्यभिधीयते।

२ आशयः स्थानानि तानि कोष्ठशब्देनोपलक्षितानि तथाच–स्थानानामग्निपक्वानांमूत्रस्य रुधिरस्य हृदुंदुकः फुप्फुसश्चकोष्ठमित्यभिधीयते। ३ वडीबडीजड और बारीक २ अग्रभाग ऐसी शिरा देहमें रोम हैं इतनी हैं जैसे लिखा है–तावन्ति नाडयो देहे यावन्त्योरोमकूटयः। स्थूलमूलाश्च सूक्ष्माग्राः पत्ररेखाप्रतानवत्। ४ धमनी नाडी शिरा इनके कार्य पृथक् २ हैं अतएव इनके नाममी पृथक् हैं वास्तविक ये सब एकही हैं। ५ वो मांसके टुकडे किसी आचार्योंके मतसे चौकोन हैं. जैसे "चतुरस्त्रा भवेत्पेशी"।

था स्त्रियोंके २० अधिक हैं। कंडरा कहिये बडे स्नायु सोलह हैं। पुरुषोंके देहमें दश रंध्र कहिये छिद्र हैं और स्त्रियोंके तीन छिद्र अधिक हैं, अर्थात् तेरह छिद्रहैं। इस प्रकार कलादिक संक्षेपसे कहीं अब इन्हींको विस्तार करके कहते हैं।

कलान्की व्यवस्था।

मांसासृङ्मेदसांतिस्रोयकृत्प्लीह्नोश्चतुर्थिका ॥ पंचमी च तथांत्राणांषष्ठीचाग्निधरामता ॥ ६ ॥ रेतोधरासप्तमीस्यादितिसप्तकलाः स्मृताः ॥

अर्थ–पहली कला मांसको धारण करती है इसलिये उसको मांसधरा कहते हैं। दूसरी कला रुधिरको धारण करती है अतः उसको रक्तधरा कहते हैं इसी प्रकार मेदके धारण करनेवालीको मेदधरा कहते हैं। यकृत् और प्लीहाकी चौथी कला है जो इन दोनोंके मध्यमें रहती है अतएव उसको कफधरा कहते हैं। अंत्र कहिये आंतडेनको धारण करनेवाली पांचवीं कलाको 'पुरीषधरा' ऐसे कहते हैं। अग्निको धारण करनेवाली छठी कला उसको 'पित्तधर' कहते हैं और सातवीं कला ※शुक्रको धारण करती है अतएव उसको रेतोधरा जाननी, इस प्रकार सात कला जाननी।

श्लेष्माशयः स्यादुरसितस्मादामाशयस्त्वधः ॥ ७ ॥ उर्द्ध्वमग्न्याशयोनाभेर्वामभागेव्यवस्थितः ※ ॥ तस्योपरितिलंज्ञेयं तदधः पवनाशयः ॥ ८ ॥ मलाशयस्त्वधस्तस्यबस्तिर्मूत्राशयः स्मृतः ॥ जीवरक्ताशयमुरोज्ञेयाः सप्ताशयास्त्वमी ॥ ९ ॥

---

१ वीस अधिक हैं उनके स्थान कहते हैं दोनों स्तनोंमें पांच २ हैं और योनिमें चार गर्भमार्गमें तीन या गर्भस्थानमें तीन इसप्रकार वीस जाननी। २ उन सोलहोंके स्थान बताते हैं कि दोनों पैरोंमें चार, दोनों हाथोंमें चार, नाडमें चार और पीठमें चार इसप्रकार सोलह जाननी। ३ पांचवीं कला आंतडोंके आधारसे उदरस्थ मलके विभाग करतीहै अतएव उसको 'पुरीषधरा' कहतेहैं। ४ छठीकला अन्नपेयादिक ऐसे चार प्रकारके आमाशयसे प्रच्युत हुए अन्नको पक्वाशयमें ले जाकर धारण करती है इसीसे उसको 'पित्तधरा' कहतेहैं जैसे लिखाहै–"अशितं खादितं पीतं लीढं कोष्ठगतं नृणाम्। तज्जीर्यति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा" इति।

※ यथा पयांसि सर्पिश्च गुडश्चेक्षुरसं यथा। शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्भिषग्वरः ॥ द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाप्यधः। मूत्रश्रोत्रपथः शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते। कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा। स्त्रीषु व्यायामतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते।

(श्लो. ८) वामभागे व्यवस्थितः इत्यत्रमध्यभागे व्यवस्थित इतिवा पाठः।

पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्येनारीणामाशयास्त्रयः ॥ धरागर्भाशय प्रोक्तः स्तनौस्तन्याशयौमतौ ॥ १० ॥

अर्थ—वक्षस्थलमें कफका आशय कहिये कफका स्थान है. कफस्थानके किंचित् गमें आमका स्थान है. नाभिके ऊपर बांईतरफ अग्निका स्थान है. उसीको 'ग्रहणी' स्थान हैं। उस अग्निस्थानके ऊपर जो तिल हैं उसको क्लोम कहते हैं वह पिपासास्थान है अर्थात् इसी जगहसे उत्पन्न होती है। कोई आचार्य "तस्योपरिजलंज्ञेयं" ऐसा पाठ लिखकर हैं कि उस तिलके ऊपर जल है। जैसे लिखाहै "अग्नेरूर्द्ध्वं जलं स्थाप्यं तदन्नं च जले अग्नेरधः स्वयं वायुः स्थितोऽग्निं धमते शनैः ॥ वायुना धममानोग्निरत्युष्णं कुरुते जलम्। ष्णतोयेन समंतात्पच्यते पुन!" इति ॥ अर्थात् अग्निके ऊपर जल है. उसके ऊपर अन्न है ग्निके नीचे पवन स्थिर होकर स्वयं अग्निको धमाता है। वह वायुसे धमाईहुई अग्नि ऊपरके अत्यंत गरम करती है तब वह उष्णजल ऊपरके अन्नका अच्छे प्रकार परिपाक करता है।

अग्निस्थानके नीचे पवनका स्थान है उस पवनकी समान संज्ञा है फिर उस पव नीचे मलाशय अर्थात् मलका स्थान है; इसीको पक्काशय कहते हैं यह वामभागमें है। एकदेशमें विभाजित मलधारक उंडुक कहलाता है) लोकमें इसको 'पोट्टलक' कहते हैं उंडुकसे पक्काशय पृथक् है परंतु चरकमें पुरीष अंत्रशब्दकरके उंडुक कहा।

उसके पासही कुछ नीचे दहनीतरफ चमडेकी थैलीके आकार मूत्राशय है जिसको कहते हैं। जीवतुल्य रक्त है कि जिसका स्थान उर है। ऐसे सात आशय कहिये स्थान पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके तीन आशय अधिक हैं, जैसे एक गर्भाशय और दो स्तन्याशय स्तनसंबंधी दूध रहनेके स्थान। तहां गर्भाशय, पित्त और पक्काशयके मध्यमें है ऐसा

रसादि सातधातुओंका विवरण।

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥ जायंतेऽन्योन्यतः सर्वे पाचिताः पित्ततेजसा ॥ ११ ॥

अर्थ—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु पित्तके तेजसे होकर क्रमसे एकसे एक उत्पन्न होते हैं। जैसे रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, मांससे मेद, मे हड्डीसे मज्जा, मज्जासे शुक्र धातु उत्पन्न होतीहै।

---

१ 'नाभिस्तनांतरंजंतोरामाशय उदाहृतः'। जिस स्थानमें आम अर्थात् कच्चा अन्नरस स्थानको आमाशय कहते हैं। २ अग्न्याधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणात् ग्रहणीमता। नाभेरुपरि पच्यवाहिच।

अब कहते हैं कि, धातुओंके मलका परिणामभी स्थूल और अणुभाग विशेष करके तीन प्रकारका है। उदाहरण जैसे अन्नके पचनेसे विष्ठामूत्र ये मल होते हैं और सारवस्तु रसधातु प्रगट होती है वही रस पित्ताग्निकरके पच्यमान होनेसे उसका कफ है सो मल प्रगट होता है, स्थूल भाग रस और सूक्ष्मभाग रुधिर होताहै। रक्तके परिपाकसे पित्त मल होता है, स्थूल भाग रक्तका रक्तही है और सूक्ष्मभाग मांस प्रगट होता है। इसी प्रकार परिपक्व होकर मांससे कानका मल प्रगट होता है सो जानना। स्थूलभाग मांस और सूक्ष्मभाग मेद, उसका अपनी अग्निसे परिपक्व होनेपर पसीना मल होता है और स्थूल भाग मेद और उसका सूक्ष्मभाग हड्डी होती है वह हड्डीभी परिपक्व होकर केश रोमादिमलको प्रगट करती है। इसका स्थूलभाग हड्डी है और सूक्ष्मभाग मज्जा कहाती है। उस मज्जाके परिपक्व होनेसे स्थूल भाग मज्जा सूक्ष्मभाग शुक्र होता है और नेत्र पुरीष तथा त्वचा इनमें जो मैल आता है वह मज्जा धातुका मल है। वह शुक्रभी अपनी अग्निसे पचकर मलको प्रगट नहीं करता जैसे हजारबार धमाया हुआ सुवर्ण मैलको नहीं त्यागता इस शुक्रका स्थूल भाग शुक्र है और सूक्ष्म भाग ओज जानना।

धातुओंके मल।

जिह्वानेत्रकपोलानां जलंपित्तंचरंजकम् ॥ कर्णविड्रसनं दंतकक्षामेढ्रादिजंमलम् ॥ १२ ॥ नखानेत्रमलंवक्रस्निग्धत्वपिटिकास्तथा ॥ जायंतेसप्तधातूनांमलान्येतान्यनुक्रमात् ॥१३॥

अर्थ–सात धातुओंके क्रमसे मल होते हैं। जैसे जीभका जल[1], नेत्रोंका जल, और कपोलका जल, इनको रसधातुका मल जानना। रंजक पित्त (अर्थात् रसको रंगनेवाला पित्त) रुधिरका मल है। कानका मैल मांसका मल है। जीभ, दांत, कांख और शिश्न इनका मैल है सो मेद धातुका मैल है। आदिशब्दसे पसीनाभी मेद धातुका मल है। परन्तु यह शार्ङ्गधरका मत नहीं है क्योंकि स्वेदको उपधातुओंमें वर्णन किया है। नख (नाखून) हड्डीका मल है। 'नखाः' यह जो बहुवचन है इससे केश (बाल) (लोम) रोआं इत्यादिकभी हड्डीका मल है। नेत्रोंका मैल, मुखकी चिकनाई यह मज्जाधातुका मल है। और मुहमें मुंहासोंका होना यह शुक्र धातुका मल है। तथा केश ग्रहणसे डाढी मूछ येभी शुक्रधातुके मल हैं।

कोई आचार्य छः धातूनके छः ही मल मानते हैं। नेत्रमल, मुखकी चिकनाई और मुहाँसे इनको मज्जा धातुका मल कहते हैं[2]।

---

१ जीभ आदिका जो जल है सो कफसंबंधी है अतएव कफही रस धातुका मल है।

२ "किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्य तु कफोऽसृजः। पित्तं मांसस्य तु मलं खेषुस्वेदस्तुमेदसः। नखमस्थ्नस्तुलोमाद्यामज्ञःस्नेहोऽक्षिविट्त्वचः। प्रसादकिट्टंधातूनापाकादेवविवर्धते। शुक्रस्यातिप्रसन्नत्वान्मलाभावइतिस्मृतः।

अब मनुष्यकी धातुओंको कहते हैं ।

स्तन्यंरजश्चनारीणांकालेभवतिगच्छति ॥ शुद्धमांसभवःस्नेहः सावसापरिकीर्तिता ॥ १४ ॥ स्वेदोदन्तास्तथाकेशास्तथैवौ जश्चसप्तमम् ॥ इतिधातुभवाज्ञेयाएतेसप्तोपधातवः ॥ १५ ॥

अर्थ--स्तनसम्बंधी दूध रसधातुकी उपधातु है अर्थात् रसधातुसे प्रगट होता है और अर्थात् स्त्रियोंके मासिक रुधिर जो गिरता है वह रुधिरधातुका उपधातु ये दोनों उपधातु स्त्रि कालविशेषमें प्रगट होती हैं और नष्ट होती हैं (उसी प्रकार स्त्रियोंके रोमराजी आदिभी करके प्रगट होती हैं) और (कोई आचार्य रस धातुसे ही आर्तवकी उत्पत्ति कहते हैं.) मांससे उत्पन्न हुए स्नेह (चिकनाई) को वसा कहते हैं, यह मांसधातुका उपधातु है । कहिये पसीना, यह मेदधातुका उपधातु है. दांत अस्थि अर्थात् हड्डी धातुका उपधातु है । मज्जाधातुका उपधातु है । ओजे शुक्रधातुका उपधातु है । इस प्रकार सातें धातुसे उत्पन्न उपधातु जानने कोई आचार्य इन उपधातुओंको मलकेही अंतर्गत मानते हैं ।

सप्तत्वचा ।

ज्ञेयाऽवभासिनीपूर्वासिध्मस्थानंचसामता ॥ द्वितीयालोहिताज्ञे यातिलकालकजन्मभूः ॥ १६ ॥ श्वेतातृतीयासंख्यातास्थान चर्मदलस्यच ॥ ताम्राचतुर्थीविज्ञेयाकिलासश्वित्रभूमिका॥१७ पंचमीवेदिनीख्यातासर्वकुष्ठोद्भवस्ततः ॥ १८ ॥ स्थूलात्व क्सप्तमीख्याताविद्रध्यादेःस्थितिश्चसा ॥ इतिसप्तत्वचःप्रोक्ताः स्थूलाव्रीहिद्विमात्रया ॥ १९ ॥

अर्थ-पहली त्वचाका नाम ' अवभाँसिनी ' है सो सिध्मेंरोगकी जन्मभूमि है श्लोकमें चकार जो है इससे पद्मकंटकादिकरोगोंकी भी जन्मभूमि जानना । यह

---

१ "ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरंसितम् । सोमात्मकं शरीरस्यबलपुष्टिकरंमतम् ।"

२ "रसात्स्तन्यं ततो रक्तमसृजः स्नायुकंडराः । मांसाद्वसा त्वचः स्वेदो मेदसः स्नायुसंधयः । दंतास्तथा मज्ज्ञः केशा ओजश्चसप्तमात् । धातुभ्यश्चोपजायन्ते तस्मात्ते उपधातवः ॥"

३ अवभासिनीकी व्युत्पत्ति इसप्रकार है कि "अवभासयति पराजयति भ्राजकाग्निना सर्वान् वर्णा तथा पंचविधां छायां प्रकाशयतीति" अर्थात् जो भ्राजकाग्नि करके संपूर्ण वर्णोंको करे तथा पंच रकी छायाको प्रकाशित करे उसे अवभासिनी कहते हैं।

४ सिध्मरोग कुष्टका भेद है । उसको विभूत वा बनरफ कहते हैं ।

अठारहवें भाग प्रमाण मोटीहै २ दूसरी त्वचाका नाम ' लोहिता ' है यह तिलकोलककी जन्मभूमि है (तथान्यैच । व्यंगादिकोंकीभी जाननी) और जौके सोलहवें भाग प्रमाण मोटी है। तीसरी त्वचाका नाम ' श्वेता ' है. यह चर्मदल कुष्ठकी जन्मभूमि है और जौके १२ वें भाग प्रमाण मोटी है. चौथी त्वचाका नाम 'ताम्रा' है । यह किलासकुष्ठके होनेकी जगहहै, और जौके आठवें भाग प्रमाण मोटी है । पांचवीं त्वचाका नाम ' वेदनी ' है । यह संपूर्ण कुष्ठोंकी जन्मभूमि है ' तत् ' इस पदके कहनेसे विसर्पादिरोगोंकीभी जन्मभूमि जानना । यह मुटाईमें जौके पांचवें भागके समान मोटी है । छठी त्वचाका नाम 'रोहिणी' है । यह ग्रंथि (गाँठ) गंडमाला तथा गंडमालाका भेद अपची इनकी जगह है । ग्रंथि आदि कफ मेद प्रधान है अतएव इनके साधर्म्यसे श्लीपद अर्बुदका जन्मस्थान भी यही छठी त्वचा है यह जौके प्रमाण मोटीहै । सातवीं त्वचाका नाम ' स्थूला ' है । यह विद्रधिरोग: तथा आदिशब्दसे अर्श (बवासीर) और भगंदरादिरोगोंके होनेकी जगह है । इस प्रकार सात त्वचा कही हैं । ये सातों त्वचा दो जौकी बराबर मोटी हैं—यह प्रमाण पुष्टस्थानोंमें जानना, ललाट और छोटी उँगली आदिमें नहीं क्योंकि लिखाहै कि स्फिक् (कला) और उदर आदिमें व्रीहिमुखशस्त्रसे अँगूठेके बीच इतना मोटा चीरा देवे ।

वातादि दोषत्रय ।

वायुःपित्तंकफोदोषाधातवश्चमलास्तथा ॥
तत्रापिपंचधाख्याताःप्रत्येकंदेहधारणात् ॥ २० ॥

अर्थ—शरीरमें वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं जो रसादि धातुओंको दूषित करते हैं अतएव उनको दोष कहते हैं, और शरीरके धारण करनेसे उनकी धातु संज्ञाहै वे रसादि धातुओंको मलीन करते हैं अतएव उनकी मल संज्ञा कही है वे दोष शरीरधारकत्व करके एक २ पांच पांच प्रकारके हैं उदाहरण । जैसे सुश्रुतमें लिखाहै कि प्रस्पन्दन, उद्वहन, पूरण, विवेचन और धारण लक्षणात्मक वायु पांच प्रकारकी होकर शरीरको धारण करतीहै । इसी प्रकार राग, पक्ति, ओजस्तेजसात्मक पित्तके पांच विभागोंमें बँटकर अग्निकर्मसे देहका पालन करता है । तथा वृद्धि, सन्धि, श्लेष्मण, स्नेहन, रोपण, प्रपूरणात्मक कफके पांच विभागोंसे विभक्त होकर जल कर्म करके देहका पालन पोषण करता है ।

वायुका प्राधान्यतापूर्वक स्वरूप तथा विवरण ।

पवनस्तेषुबलवान्विभागकरणान्मतः ॥ रजोगुणमयः सूक्ष्मः

१ तिलकालक जिसको तिल कहते हैं इसे क्षुद्ररोगोंमें लिखा है । २ चकारसे मस्से अजगली आदिकीभी जन्मभूमि तीसरी त्वचाही है ।

शीतोरूक्षोलघुश्चलः ॥ २१ ॥ मलाशयेचरन्कोष्ठवह्निस्थाने तथाहृदि ॥ कंठेसर्वांगदेशेषुवायुःपंचप्रकारतः ॥ २२ ॥ अपानः स्यात्समानश्चप्राणोदानौतथैव च ॥ व्यानश्चेतिसमीरस्यनामान्युक्तान्यनुक्रमात् ॥ २३ ॥

अर्थ–वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंमें वायु बलवान् है । इसको मलादिकोंके पृथक् विभाग करनेसे, तथा पित्त और कफ इनको जहां इच्छा होय तहां लेजानेकी सामर्थ्य अतएव उस (वायु) को प्रधानताहै । इस वायुमें रजोगुण अधिक है. (शीतलस्वभाव है तथा देहके छिद्रोंमें प्रवेशकरनेसे) बहुत बारीक है, शीतल और रूखी है. तथा हलकी है अर्थात् एकस्थानपर स्थित नहीं रहती यह पांच स्थानोंमें गमन करती है अतएव पांचप्रकार जाननी उन पांचस्थान और पांचनामोंको अनुक्रमसे कहते हैं । मलाशय अर्थात् पक्वाशयमें वायु रहता है उसको ' अपान ' वायु कहते हैं । कोष्ठमें अग्निका स्थान है उसमें जो रहै उसको ' समान ' वायु कहते हैं । हृदयमें रहनेवाले वायुको ' प्राण ' वायु कहते कंठमें रहनेवाले वायुको 'उदान' वायु कहते हैं । और संपूर्ण देहमें रहनेवाले पवनको 'व्यान' कहते हैं । इसप्रकार वायुके पांच स्थान तथा पांच नाम जानना ।

पित्तका विवरण ।

पित्तमुष्णंद्रवंपीतंनीलंसत्त्वगुणोत्तरम् ॥ कटुतिक्तरसंज्ञेयंविदग्धंचाम्लतांव्रजेत् ॥ २४ ॥ अग्न्याशयेभवेत्पित्तमग्निरूपंतिलोन्मितम् ॥ त्वचिकांतिकरंज्ञेयंलेपाभ्यंगादिपाचकम् ॥२५॥ दृश्यंयकृतियत्पित्तंतादृशंशोणितंनयेत् ॥ यत्पित्तंनेत्रयुगले रूपदर्शनकारितत् ॥ २६ ॥ यत्पित्तंहृदयेतिष्ठन्मेधाप्रज्ञाकरंचतत् ॥ पाचकंभ्राजकंचैवरंजकालोचकेतथा ॥ २७ ॥ साधकं चेतिपंचैवपित्तनामान्यनुक्रमात् ॥

१ पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः ॥ वायुना यत्र नीयंते तत्र वर्षन्ति मेघवत् ।

२ कोई प्रश्न करे कि देहके कहनेसेही सर्व अंगोंका बोध होगया फिर सर्वांगका पृथक् ग्रहण किया ! तहां कहते हैं कि अंगग्रहण इस जगह प्रत्यंगादिकोंके निरासार्थ अर्थात् प्रत्यंगोंमें वायुका विशेष स्थान नहीं । अतएव विशेष स्थानग्रहणार्थ इस जगह सर्वांग देहका ग्रहण किया है । पवनके अन्य नामभी कहते हैं जैसे–" नागःकूर्मोथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः " इति ।

अर्थ-अब पित्तका वर्णन करते हैं। पित्त गरम और एक पतला पदार्थ है, दूषित पित्तका नीलवर्ण है और निर्मल पित्त पीले रंगका होताहै। इस पित्तमें सतोगुण अधिक है तथा निर्दूषित पित्तका स्वाद चरपरा और कडुवा होताहै, तथा उष्णादिपदार्थोंके संयोग करके विदग्ध[1] (विकृति) होनेसे खट्टा होजाता है। यह पित्त पांच स्थानोंमें रहता है। उन पांच स्थान और उसके नामोंको क्रम करके कहताहूं कोठेमें अग्निका स्थान है। उस स्थानमें जो पित्त है वह अग्निस्वरूपहोकर[2] तिलके बराबर है। वह पित्त उस पित्तके स्थानमें चार[3] प्रकारके अन्नको पचाता है अतएव उसको 'पाचक' पित्त कहतेहैं। त्वचोंमें[4] जो पित्त रहताहै वह शरीरमें कांति उत्पन्न करता है चंदनादिकोंके लेप-तैलादिकोंके अभ्यंग आदिशब्दकरके: स्नानादिक इनको पचाता है अतः उसको 'भ्राजक' पित्त कहते हैं। वह पित्त बाँईतरफ प्लीहाके स्थानमें रहकर, जैसे रससे रुधिरको प्रगट करता है उसी प्रकार दहनी तरफ यकृत्के स्थानमें रहकरभी रससे रुधिरको प्रगट करता है वह दृश्य कहिये दृष्टिगोचर है और उसको 'रंजक' पित्त कहते हैं. (कोई कहताहै कि यकृति कहिये कालखंड (कलेजे) में जैसे रुधिर दीखता है उसी प्रकारका प्लीहामें रुधिरको उत्पन्न करता है) दोनों नेत्रोंमें जो पित्त रहता है वह सफेद, नीले, पीत आदि रूपका दर्शन करता है उसको 'आलोचक' पित्त कहते हैं। जो पित्त हृदयमें है, वह मेधारूप और प्रज्ञारूप बुद्धिको उत्पन्न करता है। अतः उसको 'साधक' पित्त कहते हैं। इस प्रकार पित्तके पांच स्थान और पांच नाम क्रम करके जानने।

कफका विवरण।

कफः स्निग्धोगुरुःश्वेतः पिच्छिलः शीतलस्तथा ॥ २८ ॥
तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धोलवणोभवेत् ॥ कफश्चामाशये मूर्ध्निकंठेहृदिचसंधिषु ॥ २९ ॥ तिष्ठन्करोतिदेहेषुस्थैर्य सर्वांगपाटवम् ॥ क्लेदनः स्नेहगश्चैवरसनश्चावलंबनः ॥ ३० ॥

अर्थ--कफ चिकना, भारी, सपेद, पिच्छल[5] (मलाईके सदृश) और शीतल है। तथा

---

१ विदग्धाजीर्णसंसृष्टं पुनरम्लरसं भवेत् ॥

२ स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रं प्रमाणतः। ह्रस्वमात्रेषु सत्त्वेषु तिलमात्रं प्रमाणतः। कृमिकीटपतंगेषु वालमात्रं हि तिष्ठति।

३ भक्ष्य–भोज्य–लेह्य–चोष्य–। ४ त्वचात्रावभासिनीनामधेया-बाह्यत्वगित्यभिप्रायः।

५ मृद्यमानः सन्नंगुलिग्राही अर्थात् चेपदार।

कफमें तमोगुण अधिक है और मीठा है तथा विकृत (दूषित) कफका स्वाद निमकीन होताहै। वही कफ पांच स्थानोंमें रहकर देहकी स्थिरता और पुष्टताको करताहै। अब उसके पांच स्थान तथा उन पांचोंके नाम क्रमपूर्वक कहते हैं। आमके स्थानमें जो कफ रहता है उसको 'क्लेदन' कफ कहते हैं वह आमाशयमें चार प्रकारके आहारका आधार है, तथा मधुर पिच्छिल और प्रक्लेदित्व होनेपरभी अपनी शक्ति करके संपूर्णकफके स्थानोंपर उसके कर्म करके उपकार करता है।

मस्तकमें रहनेवाले कफको 'स्नेहन' कफ कहते हैं। वह तर्पणादि द्वारा इन्द्रियोंको अपने अपने कार्यमें सामर्थ्ययुक्त करताहै। और कंठमें स्थित कफको 'रसन' कफ कहतेहैं। यह जिह्वाकी जडमें स्थित और कटुतिक्तादि रसोंके ज्ञानका कारण है हृदयमें रहनेवालेको अवलंबन कफ कहते हैं। यह अवलंबनादि कर्मद्वारा हृदयका पोषण करता है। संधियोंमें रहने वाले कफको संश्लेषण कहते हैं यह संधिनको यथास्थित करता है। इस प्रकार कफके पांच स्थान और पांचनाम क्रमपूर्वक जानने।

स्नायुके कार्य।

स्नायवोबंधनंप्रोक्तादेहेमांसास्थिमेदसाम् ॥ ३१ ॥

अर्थ--स्नायु अर्थात् मांसरज्जु ये मांस, हड्डी और मेद इनके बंधनहैं इनको हिन्दीमें पट्ठे कहते हैं। इन्हींके द्वारा हड्डी, मांस और मेद खिंचीहुई है।

संधिके लक्षण।

संधयश्चांगसंधानाद्देहेप्रोक्ताःकफान्विताः ॥

अर्थ--शरीरमें हाथपैर आदि अंग जिस जगह एकत्रित हुएहैं उस स्थानको अर्थात् जोडके स्थानको संधि[2] कहते हैं। उन संधियोंमें कफके सदृश पदार्थ भराहुआहै।

---

१ स्नायु ९०० नौसौ प्रतान (फैलनेवाली) वृत्त (गोल) और भीतरसे पोली हैं। इनमेंसे, हाथ पैर आदि शाखाओंमें कमलनाल तंतुके समान फैलनेवाली और गोल महान् ६०० छःसौ स्नायु हैं और कोठेमें २३० दोसौ तीस स्नायु मोटी और छिद्रवाली हैं। तथा ग्रीवा (नाड) में ७० स्नायु हैं वे भी मोटी और पीली हैं। इसप्रकार सब मिलकर ९०० हुई। ये देहके बंधनरूप हैं जैसे लिखा है "नौर्यथा फलकैस्तीर्णा बंधनैर्बहुभिर्युता। भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुसमाहिता। एवमेव शरीरेऽस्मिन् यावंतः संधयः स्मृताः। स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः" इति।

२ संधि दो प्रकारकी हैं एक चल दूसरी अचल तहां ठोडी-कमर और हाथ पैरोंमेंकी तथा नाडकी संधि चलायमान है, बाकीकी सब संधियां अचल हैं सब संधियां २१० हैं इनमें जो कफके सदृश पदार्थ भरा है उसका प्रयोजन यह है कि जैसे रथचक्रादि तैलादिकके संयोगसे निर्विघ्नतासे फिरते हैं उसी प्रकार संधि इस पदार्थके योगसे चलनचलन विषयमें समर्थ होतीहैं।

अस्थिके कार्य।

आधारश्चतथासारकायेऽस्थीनिबुधाजगुः ॥ ३२ ॥

अर्थ–देहमें अस्थि (हड्डी) सार (बलरूप) और आधार है वह कपाल, रुचक, वलय, तरुण नलक, ऐसी पांच प्रकारकी हैं।

मर्मके कार्य।

मर्माणिजीवाधाराणिप्रायेणमुनयोजगुः ॥

अर्थ–देहमें मर्म प्रायः करके आत्माके आधारभूतहैं. ऐसे मुनीश्वरोंने कहा है॥

शिराओंके कार्य।

संधिबंधनकारिण्योदोषधातुवहाः शिराः ॥ ३३ ॥

अर्थ–शिरा (नश) संधिके बंधनकरनेवाली और वातादिदोष तथा रसादि धातु इनके वहाने वाली हैं।

धमनीके कार्य।

धमन्योरसवाहिन्योधमंतिपवनंतनौ ॥

अर्थ–देहमें जो रसवाहिनी नाडी हैं वे पवनको धमन करती हैं अर्थात् धमाती हैं अतएव उनको धमनी कहते हैं।

---

१ मांसनेत्रनिबद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा। अस्थीन्यालंबनं कृत्वा न शीर्यंते पतंति च।

२ अभ्यंतरगतैः सारैर्नूनं तिष्ठंति भूरुहाः। अस्थिसारैस्तथा देहा म्रियन्ते देहिनां ध्रुवम्। तस्माच्चिरावेनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम्॥ अस्थीनि न विनश्यंति साराण्येतानि देहिनाम्॥

३ वे मर्म पांच प्रकारके हैं। जैसे–मांसमर्म ११, शिरामर्म ४१, स्नायुमर्म २७, अस्थि मर्म ८ और संधिमर्म २०, इसप्रकार सब मर्म १०७ जानने। ये मर्म सद्यः प्राणहरणकर्ता–कालांतरमें प्राणहरणकर्ता, वैशल्यघ्न–वैकल्यकारी और पीडाकारी हैं 'सोममारुततेजांसि रजःसत्त्वतमांसि च। मर्माणि प्रायशः पुंसां भूतात्मायोवतिष्ठते। मर्मस्वभिहतो जीवो न जीवंति शरीरिणः। ४ शिरा स्थूल सूक्ष्म भेदकरके दो प्रकारकी हैं, उनका नाभिस्थान मूल है। उसी नाभिस्थानसे ये शिरा ऊपर नीचे और तिरछी फैली हुई हैं मूलाशिरा ४० हैं उनमें दश वातवाहिनी हैं, दश पित्तवाहिनी हैं, दश कफवाहिनी और दश रुधिरवाहिनी हैं। इस प्रकार सब चालिस जाननीं। उनमें वातवाहिनी जो दश शिरा हैं उनमेंसे १७५ दूसरी शिरा निकलीहैं इसी प्रकार पित्तवाहिनी, कफवाहिनी और रक्तवाहिनी शिरा इन प्रत्येकमेंसे १७५ एकसौ पचहत्तर २ निकली हैं। इसप्रकार सब मिलानेसे ७०० शिरा होती हैं।

५ धमनीनाडियां चौवीस हैं। ये भी नाभिस्थानसे प्रकट होकर दश नीचे गईहैं कि जो वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्तव आदि और अन्न जल रस इनको वहतीहैं। और दश ऊर्ध्वगामिनी धमनी हैं। ये शब्द, रूप, रस, गंध, श्वासोच्छास, जंभाई, क्षुधा, हँसना, बोलना, रुदन करना इत्यादिकोंको

पेशीके कार्य ।

मांसपेश्योबलायस्युरवष्टंभायदेहिनाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–मांसपेशी अर्थात् मांसके टुकडे मनुष्योंके बलके अर्थ और अवष्टंभ कहिये देहके सीधे खडारहनेके अर्थ जाननी ।

कंडराके कार्य ।

प्रसारणाकुंचनयोरंगानांकंडरा मता ॥

अर्थ–कंडरोंकहिये बडी स्नायु वो हाथ पैर आदि अंगोंके प्रसारण (फैलाने) और आकुंचन (समेटने) के विषयमें समर्थ जाननी ।

रंध्रों (छिद्रों) का विवरण ।

नासानयनकर्णानां द्वेद्वे रंध्रेप्रकीर्तिते॥३५॥मेहनापानवक्त्राणामेकैकंरंध्रमुच्यते ॥ दशमंमस्तकेचोक्तंरंध्राणीतिनृणांविदुः ॥ ३६ ॥ स्त्रीणांत्रीण्यधिकानिस्युःस्तनयोर्गर्भवर्त्मनः ॥ सूक्ष्मच्छिद्राणि चान्यानिमतानित्वचिजन्मिनाम् ॥ ३७ ॥

अर्थ–नाक, नेत्र, कान इनमें दो दो छिद्र हैं; लिंग गुदा और मुख इनमें एकएक छिद्र है मस्तकमें एक छिद्रहै कि जिसको ब्रह्मरंध्र कहतेहैं : इसप्रकार पुरुषोंके नौ छिद्र खुले हुए हैं और मस्तकमें जो ब्रह्मरंध्र है वह ढकाहुआ है–ऐसे दश छिद्र हैं । तथा स्तनसंबंधी दो छिद्र और गर्भमागमें ऐसे तीन छिद्र, पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके अधिक हैं । तथा इस प्राणीकी त्वचामें अनेक छिद्रहैं परंतु अत्यंत बारीक होनेसे नहीं दीखते । चकारसे प्राण, जल, रस, रुधिर, मांस, मेद, मूत्र, मल, शुक्र और अर्तवके वहनेवाले अन्य छिद्र और भी हैं ऐसा किसी आचार्यका मतहै ।

–बहाकर देहको धारण करतीहैं। तिरछी जानेवाली ४ धमनी हैं । इन चारोंमेंसे असंख्यात धमनी उत्पन्न हुईहैं इनसे यह देह जालके सदृश परिव्याप्त है । इनके मुख रोमकूपों (रोआँ) से बंधे हुएहैं और ये रसको सर्वत्र पहुँचातीहैं, पसीनेको बहातीहैं, तथा उबटना, स्नान और लेपादिक इनके वीर्यको भीतर ले जातीहैं । इसप्रकारसे २४ धमनी हैं । १ शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि संधयस्तु शारीरिणाम् पेशीभिः संभृतान्यत्र बलवंति भवंत्यतः ॥ तासां तु स्थानविशेषान्नानास्वरूपत्वं दर्शितम् । तद्यथा 'बहलपेलवस्थूला सुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशाभावाः' । आसां लक्षणं तु अस्माद्विरचितवृहन्निघंटुरत्नाकरस्य शारीरभागेप्यवलोकनियम् अत्र ग्रंथविस्तरभयान्न लिखितम् । २ कंडरा जो १६ हैं उनके प्ररोहके अर्थ जाननी जैसे हाथ पैरकी कंडराओंके नख (नाखून) अग्रप्ररोह है इसीप्रकार औरभी जानो । सोलह संख्याका जो ग्रहणहै सो इस जगह शस्त्रकर्मके निषेधार्थ है । यथा "जालानि कंडराश्चांगे पृथक् षोडश निर्दिशेत् । षट्कूर्चाः सप्तजीविन्यो मेढ्रजिह्वाशिरोगताः । शस्त्रेण ताः परिहरेच्चतस्रो मांसरज्जवः ।

अब शारीरकथनके प्रसंगसे अन्यफुप्फुसादिकोंका स्वरूप दिखाते हैं।

तद्वामेफुप्फुसंप्लीहादक्षिणांगेयकृन्मतम्॥ उदानवायोराधारः फुप्फुसंप्रोच्यतेबुधैः॥ ३८॥ रक्तवाहिशिरामूलंप्लीहाख्यातामहर्षिभिः॥ यकृद्रंजकपित्तस्यस्थानंरक्तस्यसंश्रयम्॥ ३९॥

अर्थ–हृदयके वामभागमें प्लीहा[1] और फुप्फुस[2] तथा दक्षिण भागमें यकृत् है उसको कालखण्ड (कलेजा) कहते हैं। अब इनके कार्य कहते हैं। फुप्फुस (फेंफडा) जो है सो उदान अर्थात् कंठस्थवायुका आधार है और प्लीहा है सो रुधिर बहनेवाली शिराओंका मूल है, एवं यकृत् है सो रंजक पित्त और रुधिरका स्थान है।

तिलके लक्षण।

जलवाहिशिरामूलंतृष्णाच्छादनकंतिलम्॥

अर्थ–रुधिरके कीट (कीटी) से प्रगट और दक्षिणभागमें यकृत्के समीप तिल नामका एक स्थान है उसको क्लोम कहते हैं। वह तिल जल बहनेवाली नाडियोंका मूल है अतएव तृष्णा कहिये प्यासको आच्छादन करता है।

वृक्कके लक्षण।

वृक्कौपुष्टिकरौप्रोक्तौजठरस्थस्यमेदसः॥ ४०॥

वृक्क कहिये कुक्षिगोलक[3] यह जठर (पेट) में रहनेवाले मेदको पुष्टकरते हैं अर्थात् बढाते हैं. जठर शब्दका ग्रहण अन्यस्थानाश्रित मेदके निषेधार्थ है--जैसे लिखा है "स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यंतराश्रिता। अथेतरेषु सर्वेषु सरक्ते मेद उच्यते" इति।

वृषणके लक्षण।

वीर्यवाहिशिराधारौवृषणौपौरुषावहौ॥

अर्थ–वृषणे[4] कहिये आँड। ये वीर्यवाही नाडियोंके आधार हैं अतएव पुरुषार्थ अर्थात् पुरुष बलको देतेहैं। 'बीजवाहि' ऐसाभी पाठान्तर है।

लिंगके लक्षण।

गर्भाधानकरंलिंगमयनंवीर्यमूत्रयोः॥ ४१॥

---

१ प्लीहा रक्तसे उत्पन्न है और उसको भाषामें फीहा कहते हैं। २ फुप्फुस अर्थात् फेंफडा यह रुधिरके झागसे प्रगट होकर हृदयनाडिकासे लगा हुआ है इसीसे श्वासका कार्य होता है, कि, जिसके द्वार सर्व देहकी चेष्टा होती है। (यह वाम भागमें उत्पन्न होकर दोनों तरफ फैलाहुआ होता है)

३ दो कुक्षिगोलक रक्त और मेदके सारांशसे उत्पन्न होते हैं (इन्हें भाषामें गुरदे कहते हैं)

४ वृषण मांस, कफ और मेदके सारांशसे उत्पन्न होते हैं।

अर्थ–लिंगकहिये शिश्नेन्द्री जो वीर्यद्वारा गर्भको प्रगट करती है और वीर्य तथा मूत्र निकालनेका मार्ग है। जैसे लिखा है. "द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाप्यधः। मूत्रस्रोतःपथः शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते" इति। "बीजमूत्रयोः" ऐसाभी पाठान्तर है।

हृदयके लक्षण।

हृदयंचेतनास्थानमोजसश्चाश्रयंमतम्॥

अर्थ–कमलकी कलीके समान किंचित् विकसित्त और अधोमुख ऐसा हृदय है यह चैतन्यताका स्थान होकर ओज कहिये संपूर्ण धातुओंके तेजोंका सारहै। यद्यपि सामान्यता करके सर्वदेह चेतनाका स्थान है जैसे चरकमें लिखाहै "चैतनानामाधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः। केशलोमनखाग्रांतमलद्रव्यगुणैर्विना" इति। परंतु विशेषता करके हृदयही चेतनाका मुख्य स्थान है और जैसे दूधमें सार वस्तु घृतहै इसी प्रकार सब धातुओंका तेज–स्नेहरूप ओज है अर्थात् तेजरूप हैं जैसे सुश्रुतमें लिखाहै "रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तदेव ओजस्तदेव बलमित्युच्यते" कोई आचार्य ओज शब्द करके जीव और रुधिरको ग्रहण करते हैं, कोई निर्विकार कफकोही ओज कहते हैं और किसी २ ग्रंथमें ओज शब्द करके रसका ग्रहण करते हैं।

शरीरपोषणार्थव्यापार।

शिराधमन्योनाभिस्थाःसर्वाव्याप्यस्थितास्तनुम्॥ ४२॥ पुष्णंतिचानिशंवायोः संयोगात्सर्वधातुभिः॥

अर्थ–नाभिस्थानमें रहनेवाली शिरा और धमनी संपूर्ण शरीरमें व्याप्तहो रात्रि दिवस वायुके संयोग करके रसादि सर्व धातुओंको सर्व शरीरमें लेजाकर शरीरका पोषण करती हैं और चकारसे पालन करती हैं। ये तरुण पुरुषोंके शरीरका पोषण (पुष्ट) करती हैं और वृद्ध मनुष्यके देहका पालन करती हैं। जैसे लिखा है "सएवान्नरसो वृद्धानां परिपक्वशरीरत्वादप्रीणनो भवति।" कोई कहै कि कैसे पोषण करती है? तहां कहतेहैं कि पवनके संयोगसे अर्थात् प्राकृत पवनकी सहायतासे पोषण करती हैं। जैसे लिखाहै "क्रियाणामप्रतीपातसमोहं बुद्धिकर्मणा। करोत्यन्यान्गुणांश्चापि स्वाःशिराः पवनश्चरन्" कौनसी वस्तुओंसे पोषण करती हैं? तहां कहते हैं कि, संपूर्ण रसादि धातुओंकरके पोषण करती हैं। इस वाक्यसे सबका समान्य कर्म कहा। जैसे लिखा है कि "याभिरिदं शरीरमारामइव जलहारिणीभिः केदारइव कुल्याभिरुपपद्यते अनुगृह्यते चाकुंचनप्रसारणादिभिर्विशेषैरिति"

१ लिंगके साथ वर्तमान हृदयके बंधनकरनेवाले ऐसे चार कंडरा (बडे २ स्नायु) हैं उनके अग्रभागसे यह लिंग प्रगट होता है। २ हृदय रुधिरके सारसे निर्मित है।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि वे शिरा और धमनीनाडी नाभिमें स्थित हो सर्व देहको कैसे पोषण करती हैं ? तहां कहते हैं "व्याप्नुवंत्यभितो देहं नाभिस्थप्रसृताः शिराः। प्रतानाः पद्मिनीकंद बिसादीनां यथा जलम्"।

प्राणवायुका व्यापार।

नाभिस्थःप्राणपवनः स्पृष्ट्वाहृत्कमलांतरम्॥ ४३॥ कंठाद्बहिर्विनिर्यातिपातुंविष्णुपदामृतम्॥पीत्वाचांबरपीयूषंपुनरायाति वेगतः॥ ४४॥ प्रीणयन्देहमखिलंजीवं च जठरानलम्॥

अर्थ—नाभिमें स्थित प्राणपवन (प्राणाश्रितवायु) हृदयका स्पर्शकर बाह्य आकाशसे अमृत (हवा) पीनेके वास्ते कंठसे बाहरजाता है वहां अमृतको पीकर फिर उसी वेगसे नासिकाद्वारा अपने स्थानमें आयकर संपूर्ण देह और जीव इनको सन्तुष्ट और जठराग्निको प्रदीप्त करता है।

वह प्राणवायु सकलशरीरमें व्यापक होनेसे नाभिमें आवृत जो शिरा हैं उनमेंभी स्थित है। अतएव लिखाहै "नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिर्व्यपाश्रिताः। शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः" इति। औरभी ग्रंथान्तरमें लिखाहै कि "ब्रह्मग्रंथौ नाभिचक्रं द्वादशारमवस्थितम्। लूतेव तंतुजालस्थस्तत्र जीवो भ्रमत्ययम्। सुषुम्नया ब्रह्मरंध्रमारोहत्यवरोहति। जीवप्राणसमारूढो रज्ज्वा कोल्हाटिको यथा।" इसप्रमाण पवनका कारणभी ग्रंथान्तरोंमें इसप्रकार लिखा है।

१प्राण, अग्नि और सोमादिक ये नाभिमें रहतेहैं। अतएव यहां "नाभिस्थः प्राणपवनः" ऐसा कहा। २ ऊपर लिखे श्लोकसे प्रत्यक्ष मालूम होताहै कि इस प्राणीके देहसे पवन विष्णुपदामृत पीनेको निकलताहै और फिर देहके भीतर जाताहै। परंतु मुख्य इसका तात्पर्य यहीहै कि, भीतरकी पवन देहमें किंचिन्मात्रभी रहनेसे विषैल अर्थात् विषरूप होजातीहै अतएव वह विषमिश्रित पवन बाहर निकलतीहै और विष्णुपदनाम आकाशका है उसमें प्राप्तहो स्वच्छ पवनसे मिश्रित होकर अपने विषैलेगुणको त्यागतीहै और आकाशकी नवीन पवनको श्वासद्वारा भीतर लेजाकर रुधिरकी शुद्धिकरनेसे देहको और जीवको पालन करतीहै। इसीलिये एक छोटेसे मकानमें बहुतसे मनुष्योंके बैठनेसे उस मकानकी पवन विषैली होजातीहै परंतु जिस मकानमें चारोंतरफसे पवन आनेजानेका संचार अच्छी तरह होवे उसमें यह अवगुणकारी पवन नहीं ठहरसक्ती। और इसीसे बडे २ मेलोंमें इंग्रेज जो बहुत दिनतक मेलेको ठहरने नहीं देते उसकाभी मुख्य यही कारणहै। इससे जो जो सफाई करनेके बंदोबस्त करतेहैं उन सबका कारण हमारे शास्त्रमें लिखाहै परंतु अब मूर्खानंद वैद्य और हकीम तथा डाक्टर इन सब बातोंको अँग्रेजोंकी निर्मित्त बतलाते हैं। ठीकहै कुएँकी मेंढकी कुएँकोही समुद्र मानतीहै।

"तेषां मुख्यतमः प्राणो नाभिकन्दादधः स्थितः । चरत्यास्ये नासिकायां नाभौ हृदयपंकजे शब्दोच्चारणनिश्वासे श्वासकासादिकारणम्" ।

इत्यादि गुणविशिष्ट प्राणपवन हृदयकमलके अभ्यंतरको स्पर्श करके अर्थात् हृदयकमलको प्रफुल्लितकर कंठको उल्लंघनकर मस्तकमें विष्णुपदामृत (ब्रह्मरंध्राश्रित अमृत) पीनेको प्राप्त होता है, "चक्रं सहस्रपत्रं तु ब्रह्मरंध्रे सुधाधरम् । तत्सुधासारधाराभिरभिवर्द्धयते तनुम्" भरतोऽपि "ब्रह्मरंध्रे स्थितो जीवः सुधया संप्लुतो यदा । तुष्टो गीतादिकार्याणि स प्रकर्षा साधयेत्" उस जगह उस ब्रह्मरंध्रस्थितअमृतको पीकर जिस वेगसे ऊपरगई उसी वगसे फि तत्क्षण लौटकर अपने स्थानपर आकर प्राप्त होती है वह अपनी जगहपर आकर सकलदे (चोटीसे लेकर चरणपर्यंत) को तथा जीव और जठरानल (पाचकाग्नि) को पुष्टकरती है

यद्यपि देह ग्रहणहीसे जीवानलादिकका ग्रहण होगया तोभी फिर कहना है सो विशेषताद्योत है अर्थात् सामान्यता करके देहके अंगप्रत्यंग विभाग जानना और जीव तथा अग्नि ये विशे ताकरके जानने क्योंकि "शरीराद्भिन्नो जीवः" इति श्रुतेः । अर्थात् जीवको शरीरसे भिन्न हो नेके कारण पृथक् कहा इसवास्ते दोष नहीं है "आयुर्वर्णौबलंस्वास्थ्यमुत्साहोपचयप्रभाः । ओ स्तेजोऽग्नयः प्राणाः स्वक्ता देहेऽग्निहेतुकाः । शांतेग्नौ म्रियते युक्ते चिरंजीवत्यनामयम् । रो स्वाद्विरतेमूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते" ।

आयुके और मरणके लक्षण ।

शरीरप्राणयोरेवंसंयोगादायुरुच्यते ॥ ४५ ॥
कालेनतद्वियोगाद्धिपंचत्वं कथ्यतेबुधैः ॥

अर्थ–एवं पूर्वोक्त श्लोकके अभिप्रायसे शरीर और प्राण इनके संयोगको आयु कहते और काल करके शरीर और प्राण इन दोनोंके वियोग होनेको पंचत्व (मरण) कहते हैं ।

वैद्यको क्या कर्तव्यहै ।

नजंतुःकश्चिदमरःपृथिव्यांजायतेक्वाचित् ॥ ४६ ॥
अतोमृत्युरवार्यःस्यात्किंतुरोगान्निवारयेत् ॥

अर्थ–पृथ्वीमें कोई प्राणी अमर (मृत्युरहित) नहींहै अत एव मृत्युके निवारण क

---

१ भूतात्माके शरीरनिधन पर्यंत धर्म, अधर्म नैमित्तिक सांसारिक सुखदुःखको उपभोग साध आयु कहते हैं । २ कालभी स्वयंभू, अनादि १ मध्य, निधनका कारण है । प्राणियोंके संहार वाला काल कहलाता अथवा प्राणियोंको सुखदुःखादिमें नियोजन करताहै इसवास्ते उसे काल क अथवा मृत्युके समीप प्राप्तकरता इसवास्ते उसको काल कहा है ।

कोई समर्थ नहीं है परंतु वैद्य रोगोंका निवारण करे । प्रसंग वश वैद्यके लक्षण "व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः" अर्थात् व्याधिका निदानादिद्वारा यथार्थ ज्ञान करके रोगजन्य पीडाका शमन करना यही वैद्यका वैद्यत्व है किंतु वैद्य आयुका प्रभु नहीं है ।

अब साध्य व्याधिका यत्न न करनेसे अवस्थांतर कहते हैं ।

याप्यत्वंयातिसाध्यश्चयाप्योगच्छत्यसाध्यताम् ॥ ४७ ॥
जीवितंहंत्यसाध्यस्तुनरस्याप्रतिकारिणः ॥

अर्थ–साध्य व्याधिकी चिकित्सा न करनेसे याप्य[१] होती है. याप्यकी चिकित्सा न करनेसे व्याधि असाध्य होजाती है और असाध्य होनेसे व्याधि प्राणहरण करती है अतएव व्याधिके उत्पन्न होतेही चिकित्सा करनी चाहिये । जैसे लिखा है "जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः । वह्निशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोपि विकरोत्यसौ" याप्य यह असाध्यका भेद है जैसे लिखा है कि "असाध्यो द्विविधो ज्ञेयो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः" तथा च "यापनीयं तु जानीयात् क्रियां धारयते तु यः । क्रियायां तु निवृत्तायां सद्य एव विनश्यति." उसी प्रकार साध्यभी दोप्रकारका है. एक सुखसाध्य और दूसरा कृच्छ्रसाध्य, एकदोषसे उत्पन्न, उपद्रवरहित और नवीन इत्यादि लक्षणयुक्त व्याधि सुखसाध्य कहीगई है और शस्त्रादिसाधनद्वारा चिकित्सा योग्य व्याधिको कृच्छ्रसाध्य कहते हैं ।

धर्मार्थकाममोक्षाणांशरीरंसाधनंयतः ॥ ४८ ॥
अतोरुग्भ्यस्तनुंरक्षेन्नरःकर्मविपाकवत्[२] ॥

अर्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनका साधन (कारण) ऐसा यह देह है अतएव शुभाशुभ कर्मके फलको जाननेवाले मनुष्य रोगोंसे शरीरकी रक्षाकरें ।

अब दोषोंकी विषम और सम अवस्थाको कहते हैं ।

धातवस्तन्मलादोषानाशयंत्यसमास्तनुम् ॥ ४९ ॥
समाःसुखायविज्ञेयाबलायोपचयायच ॥

अर्थ–रसादि सात धातु और धातुओंके मल तथा वातादि तीन दोष ये न्यूनाधिक

---

१ चकारसे यह दिखाया कि व्याधि प्रथमही याप्यत्वको नहीं प्राप्त होती किंतु प्रथम कृच्छ्रसाध्य होती है फिर याप्यत्वको प्राप्त होती है । २ पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते । अतो दानादिकं कुर्यात्संप्रतीक्ष्य विचक्षणः । इति ।

होनेसे शरीरका नाश करते हैं और सम (स्वप्रमाणस्थित) होनेसे सुख, बल और शरी- वृद्धिको देते हैं ।

इति शारीरे कालादिकथनम् ।

प्रथम यह कह आये हैं कि आदिशब्दसे सृष्टिक्रम कहेंगे सोही वर्णन करते हैं ।

जगद्योनेरनिच्छस्यचिदानंदैकरूपिणः ॥ ९० ॥
पुंसोस्तिप्रकृतिर्नित्याप्रतिच्छायेवभास्वतः ॥

अर्थ—महदादि रूप जे जग (पृथिव्यादिभूत) उनका आदि कारण होकर इच्छा रहित चिदानंद ज्ञानमय ऐसा जो पुरुष उसको ईश्वर कहते हैं। उस पुरुषकी नित्य और सू- छायाके प्रमाण प्रकृति है उसको अव्यक्तभी कहते हैं ।

प्रकृति कैसे विश्वनिर्माण करती है तथा पुरुषको कर्तृत्व कैसे हैं यह कहते हैं ।

अचेतनापिचैतन्ययोगेनपरमात्मनः ॥ ९१ ॥
अकरोद्विश्वमखिलमनित्यंनाटकाकृति ॥

अर्थ–वह मूलप्रकृति चेतनरहित (जड) होकर परमात्माके चैतन्यसंबंधकरके ऐसे संपूर्ण महदादि रूप विश्वको करता है । इस विषयमें दृष्टांत जैसे ऐन्द्रजालिक (बाजी- मंत्रप्रभावसे झूठे नाटकोंको दिखाता है इस श्लोकका संबंध पूर्व श्लोकके साथ है ।

---

१ अत्र ग्रन्थांतरसे दोषादिकोंका परिमाण लिखते हैं 'यःप्रसादपरोन्नस्य परजीर्णस्य सर्वशः । जलयस्तस्य नव देहेषु देहिनः ॥ रक्तस्यांजलयस्त्वष्टौशकृतः सप्तसर्वशः । पित्तस्यांजलयः पंच षट् प्रचक्षते । मूत्रस्य विद्याच्चत्वारो वसायाश्चांजलित्रयम् । द्वावंजली मेदसस्तु मज्जा एकांजलिर्मता । कांजलिर्ज्ञेया मस्तिष्कस्योजसस्तथा । चत्वारोञ्जलयः स्त्रीणां रजसः प्रकृतिस्थितिः । द्वावंजली स्तन्यस्यापि हि योषितः । प्रमाणमेतद्धातूनामदुष्टानामुदाहृतम्॥हीनाः स्वेन प्रमाणेन विविधाश्चापि योजयंति विकारैस्तु दोषा वृद्धिक्षयप्रदाः' इति । अतएवाह वाग्भटः "रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसा- गता" । ग्रंथांतरेऽपि 'विकृताविकृता देहं घ्नंति ते वर्द्धयंति च' । तथा च चरकेऽपि "विकारो षम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते । सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च" इति ।

२ अस्ति ब्रह्मचिदानन्दं स्वयं ज्योतिर्निरंजनम् । ईश्वरो लिंगमित्युक्तमद्वितीयमजं विभुम् । निराकारं सर्वेश्वरमुनीश्वरम् । सर्वशक्ति च सर्वेशं तदंशा जीवसंज्ञकाः । अनाद्यविद्यापरिता यथा- लिंगकाः ।

अब एकसे कार्यकी उत्पत्तिक्रम कहते हैं।

प्रकृतिर्विश्वजननीपूर्वंबुद्धिमजीजनत् ॥५२॥ इच्छामयींमहद्रूपामहंकारस्ततोऽभवत् ॥ त्रिविधःसोऽपिसंजातो रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ ५३ ॥

अर्थ-विश्वकी जननी ऐसी जो प्रकृति है वह प्रथम इच्छामयी (सत्व रजतमोगुण स्वभावोंसे अनेक प्रकारकी) और महद्रूप (महान् है पर्याय नाम जिसका अथवा स्फटिकमणिके समान) बुद्धिको उत्पन्न करती भई. उस बुद्धिसे अहंकार उत्पन्न हुआ वह राजसी तामसी और सतोगुण भेदसे तीन प्रकारका है । तहां वैकारिक सतोगुणी तैजस रजोगुणी और भूतादि तामसी जानना ।

त्रिविध अहंकारके कार्य ।

तस्मात्सत्त्वरजोयुक्तादिन्द्रियाणिदशाभवन् ॥ मनश्चजातंतान्याहुःश्रोत्रंत्वङ्नयनंतथा ॥ ५४ ॥ जिह्वाघ्राणत्वचोहस्तपादोपस्थगुदानि च ॥ पंचबुद्धींद्रियाण्याहुःप्राक्तनानीतराणि च ॥ ५५ ॥ कर्मेन्द्रियाणिपंचैवकथ्यंतेसूक्ष्मबुद्धिभिः ॥

अर्थ--राजस अहंकार है सहायक जिसका तथा तमोमात्रकरके अनुविद्ध (मिश्रित) जो सात्विक अहंकार है उससे श्रोत्र (कान) त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ (लिंग और भग) गुदा और मन ये ग्यारह इन्द्री उत्पन्न हुई । उनमें पहली (कान त्वचा आदि) ज्ञानेंद्री हैं क्योंकि इनको बुद्धिका आश्रय है, अवशिष्ट (बाकी) रही जो पांच वे कर्मेंद्री हैं क्योंकि इनको कर्मका आश्रय है । तथा उभयात्मक (बुद्ध्यात्मक और कर्मात्मक मन है) अथवा, राजस अहंकारसे इन्द्री, सात्विकसे इन्द्रियोंके देवता और मन ऐसे पृथक्त्व करके उत्पत्तिक्रम जानना । कोई 'तस्मात्' इस जगह 'तमःसत्वरजोयुक्तात्' ऐसा पाठ कहतेहैं और व्याख्या करते हैं ' तमःसत्त्वरजोयुक्त' से इंद्रीहुई तात्पर्य यह है कि सांख्यशास्त्रमें इंद्रियोंको अहंकारजन्य कहा है और वैद्यकमें भौतिकी कहीं हैं इतना फरक है ।

तन्मात्राओंकी उत्पत्ति ।

तमःसत्त्वगुणोत्कृष्टादहंकारादथाभवत् ॥५६॥ तन्मात्रपंचकंतस्यनामान्युक्तानिसूरिभिः ॥ शब्दतन्मात्रकंस्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम् ॥५७॥ रसतन्मात्रकंगंधतन्मात्रंचेतितद्विदुः ॥

अर्थ-राजस अहंकार है सहायक जिसका तथा सत्त्वमात्रकरके अनुविद्ध (युक्त)

ऐसा जो तामस अहंकार उससे तन्मात्रा कहिये उसी उंसी आश्रयपर मुख्यत्वकरके रहनेवाले -गुण उत्पन्न हुए, उनके पांच नाम–शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र गंधतन्मात्र इसप्रकार जानने । इन तन्मात्राओंको योगी पुरुषही जानसकतेहैं ।

तन्मात्रापंचकोंका विशेष ।

शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसगंधावनुक्रमात् ॥ ५८ ॥ तन्मात्राणांविशेषाःस्युःस्थूलभावमुपागताः ॥

अर्थ–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये क्रम करके तन्मात्रपंचकोंके विशेष जानने। इनका दुःख और मोह इन्हींसे अनुभव होता है अतएव स्थूलभावको प्राप्तहुए जानने तथा तन्मात्रपं का अनुभव सूक्ष्महै इसीसे नहीं होता ।

भूतपंचकोंकी उत्पत्ति ।

तन्मात्रपंचकात्तस्मात्संजातंभूतपंचकम् ॥ ५९ ॥ व्योमानिलानलजलक्षोणीरूपंचतन्मतम् ॥

अर्थ–शब्दादि पंचतन्मात्राओंसे भूतोंके पंचक उत्पन्न हुए उनके नाम आकाश[१] पवन[२] तेज[३] जल[४] और पृथ्वी[५] इसप्रकार जानने ।

इंद्रियोंके विषय ।

बुद्धींद्रियाणांपंचैवशब्दाद्याविषयामताः ॥६०॥ कर्मेन्द्रियाणांविषयाभाषादानविहारतः ॥ आनंदोत्सर्गकौ चैव कथितास्तत्त्वदर्शीभिः ॥ ६१ ॥

अर्थ–श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ये पांच बुद्धीन्द्रिय हैं, इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये पांच विषय क्रमपूर्वक जानने । उदाहरण–जैसे, कर्णइन्द्रीका शब्द, त्वगिन्द्रीका स्पर्श, चक्षुइन्द्रीका रूप, जिह्वाइन्द्रीका रस और घ्राण (नासिका) इन्द्रीका गंध विषय जानना। वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ, गुदा ये कर्मेन्द्री हैं इनके भाषण, आदान, विहार, आनंद, उत्सर्ग, ये विषय क्रमकरके जानने उदाहरण जैसे वाणीइन्द्रीका विषय भाषण, हस्तइन्द्रीका ग्रहण, पैरका विहार, उपस्थका आनंद और गुदाका उत्सर्ग ये विषय जानने ।

---

१ आकाश–आकाशका शब्दमात्रगुण जानना । २ वायु–वायुका मुख्यगुण स्पर्श तथा आनुषंगिक शब्द गुण जानना । ३ तेज–तेजका मुख्य गुण रूप और आनुषंगिक शब्द और स्पर्श ये गुण जानना । ४ उदक–उदकका मुख्यगुण रस और आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप ये गुण जानना । ५ पृथ्वी–पृथ्वीका मुख्य गुण गंध तथा आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये गुण जानना ।

मूलप्रकृतिके पर्यायनाम।

प्रधानंप्रकृतिः शक्तिर्नित्याचाविकृतिस्तथा ॥
एतानितस्यानामानिशिवमाश्रित्ययास्थिता ॥ ६२ ॥

अर्थ–प्रधान, प्रकृति, शक्ति, नित्या और अविकृति ये प्रकृतिके पर्यायशब्द जानना। वह प्रकृति शिव कहिये ईश्वरके आश्रय करके ऐसे रहतीहै जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सूर्यके आश्रय रहताहै। वह सत्व, रज, तमरूपा है, जैसे सुश्रुतमें लिखाहै " सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभवे हेतुमव्यक्तं नाम" इति।

अब चौबीसतत्त्वराशिको पृथक्‌निकालके कहतेहैं।

महानहंकृतिः पंचतन्मात्राणिपृथक्‌पृथक् ॥
प्रकृतिर्विकृतिश्चैवसप्तैतानिबुधाजगुः ॥ ६३ ॥

अर्थ–महत्तत्व अहंकार और पंचतन्मात्रा ये सात इन्द्रियादिकोंके कारण हैं अर्थात् प्रकृतिरूप और प्रकृतिके कर्मरूप कहिये विकृतिरूप हैं।

षोडशविकार।

दशेंद्रियाणिचित्तंचमहाभूतानि पंच च ॥
विकाराः षोडशज्ञेयाः सर्वव्याप्यजगत्स्थिताः॥ ६४॥

अर्थ–दशइन्द्री, उभयात्मक मन और पांच महाभूत ये सोलहविकारहैं। ये संपूर्ण जगतमें व्याप्त होकर स्थित हैं।

चौवीसतत्त्वराशी।

एवंचतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैःसिद्धेवपुर्गृहे ॥ जीवात्मानियतोनित्यं वसतिं स्वांतदूतवान् ॥ ६५ ॥ सदेहीकथ्यतेपापपुण्यदुःखसुखादिभिः ॥ व्याप्तोबद्धश्चमनसाकृत्रिमैःकर्मबंधनैः॥६६॥

अर्थ–अव्यक्त १ महान् २ अहंकार ३ शब्दतन्मात्रा ४ स्पर्शतन्मात्रा ५ रूपतन्मात्रा ६ रसतन्मात्रा ७ गंधतन्मात्रा ८ श्रोत्र (कान) ९ त्वक् (त्वचा) १० चक्षु (नेत्र) ११ घ्राण (नासिका) १२ रसना (जीभ) १३ वाक् (वाणी) १४ हाथ १५ पैर१६ उपस्थ (लिंग और योनि) १७ पायु (गुदा) १८ मन १९ पृथ्वी२० आप २१ तेज२२वायु २३ और आकाश २४ इस प्रकार चौवीस तत्व हुए। इनकरके सिद्ध (निर्मित) शरीररूप घरमें पचीसवाँ पुरुष सर्वकाल रहता हैं, उसको जीवात्मा कहते हैं। मन हैं सो उसका दूत है। वह जीवात्मा महदादिकृत सूक्ष्मलिंगशरीरमें रहता है अतएव उसको देही अथवा कर्म पुरुषभी कहते हैं। अत

एव पापपुण्य सुखदुःख इनकरके वह युक्त है तथा मनके साथ वर्तमान ऐसा जो कृत्रिम कर्म तिसकरके बद्ध है.

आदिशब्दसे इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, प्राण, अपान, उन्मेष, बुद्धि, मन, संकल्प वि स्मृति, विज्ञान, अध्यवसाव, विषय, उपलब्धी इत्यादिक गुणभी उत्पन्न होते हैं अर्थात सेभी बद्ध है ।

कदाचित् कोई प्रश्नकरे कि विकाररहित जीवात्मा विकारवस्तुओं करके कैसे बद्ध होता तहां कहते हैं कि जीवात्मा निर्विकारभी हैं परन्तु विकारवान् वस्तुके संयोगसे विकार होजाता है । इसमें दृष्टांत देतेहैं कि जैसे सायंकालमें आकाश सूर्यकिरणके संयोगसे होजाता है उसी प्रकारजीव विकारवान् होजाताहै वास्तवमें आकाशके समान निर्विकार कोई आचार्य कहते हैं कि ये संपूर्ण विकार उस लिंगदेहमें प्रतिबिंबके सदृश हैं जैसे तलाव पुष्कारिणी आदिके जलमें, जलके काँपनेसे समीपस्थित वृक्षादि कंपित पडते हैं ।

जीवके बंधन ।

(कामक्रोधौलोभमोहावहंकारश्चपंचमः ॥
दशेन्द्रियाणिबुद्धिश्चतस्यबंधाय देहिनः ॥)

अर्थ—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, दश इन्द्री और बुद्धि ये उस जीवके बंधन हैं लक्षण क्रमसे हम अन्य ग्रंथातरोंसे कहतेहैं ।

काम ।

(स्त्रीषुजातोमनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषुवा ॥
परस्परकृतःस्नेहः कामइत्यभिधीयते ॥)

अर्थ—पुरुषोंके स्त्रियोंमें और स्त्रियोंके पुरुषोंमें परस्पर प्रीति करनेको काम कहते हैं पर प्रीति उपभोगनिमित्त जाननी ।

क्रोध ।

(यऊष्माहृदयाज्जातः समुत्तिष्ठति वै सकृत् ॥
परहिंसात्मकः क्लेशः क्रोधइत्यभिधीयते ॥)

अर्थ—एकवारही इस प्राणीके हृदयसे गरमी प्रगट होकर परको हिंसात्मक दुःख देनेवाली इससे चित्तको एक प्रकारका क्लेशहोताहै उस क्लेशको क्रोध कहते हैं ।

लोभ ।

परार्थ परभागांश्चपरसामर्थ्यमेवच ॥

(दृष्ट्वाश्रुत्वाचयातृष्णा जायते लोभ एव सः)॥

अर्थ–परधन, परभाग और पराई सामर्थ्यको देखकर और सुनकर इस प्राणीके चित्तमें जो तृष्णा उत्पन्न होतीहै उसको लोभ कहते हैं।

मोह।

(अश्रेयःश्रेयसोर्मध्ये भ्रमणं संशयो भवेत्॥
मिथ्याज्ञानं तु तं प्राहुरहिते हितदर्शनम्॥)

अर्थ–अश्रेय (अकल्याण) और कल्याण इन दोनोंमें बुद्धिके भ्रमणको संशय कहते हैं। और अहितमें हित देखना उसको मिथ्याज्ञान कहते हैं।

अहंकार।

(अहमित्यभिमानेन यः क्रियासु प्रवर्त्तते॥
कार्यकारणयुक्तस्तु तदहंकारलक्षणम्॥)

अर्थ–जो प्राणी कार्य कारण करके युक्त अहं (मैं करताहूं) इस अभिमानके साथ क्रियाओंमें प्रवृत्त होताहै उसको अहंकार कहतेहैं।

अब बंधन अबंधन व्याधि और आरोग्यके लक्षण।

आप्नोतिबंधमज्ञानादात्मज्ञानाच्चमुच्यते॥
तद्दुःखयोगकृद्व्याधिरारोग्यंतत्सुखावहम्॥ ६७॥

अर्थ–यह पुरुष अज्ञानकरके क्लेशादिक बंधनको प्राप्त होताहै और आत्मज्ञान (धर्माधर्मके विचार) से उस बंधनसे छूटताहै। शरीर और शरीरी इनको जो दुःख देवे उसको व्याधि कहतेहैं, तथा इनको सुख देवे उसको आरोग्य कहते हैं। दुःख है सो इस प्राणीके स्वभावके प्रतिकूल है और सुख अनुकूल है॥ इति सृष्टिक्रमशारीरं समाप्तम्॥

इति श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां कलादिकथनं नाम पंचमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

प्रथम लिखआयेहैं कि, "आहारादिगतिस्तत्र" अतएव उसी आहारगतिअध्यायको कहतेहैं।

आहारकी गति और अवस्था।

यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः॥ माधुर्यं फेनभावं च षड्रसोऽपिलभेतसः॥ १॥ अथ पाचकपित्तेन विद-

ग्धश्चाम्लतां व्रजेत् ॥ ततः समानमरुता ग्रहणीमभि-
धीयते ॥ २ ॥ ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठवह्निना जायते कटु ॥

अर्थ—पांचभौतिक अन्नादिकोंका आहार प्राणवायुकरके प्रेरित हुआ प्रथम आमाशयमें होताहै । फिर वही छःरसयुक्तभी आहार मधुरभाव और फेन (झाग) रूपको प्राप्त हो फिर वही आहार उसी आमाशयमें पाचकपित्तके तेजसे विदग्ध (कर्पट) होकर अम्ल(भावको प्राप्त होताहै पश्चात् उस आमाशयसे समान वायुकरके ग्रहणी (अग्निस्थान) होताहै । उस ग्रहणीस्थानमें कोष्ठाग्निकरके उस आहारका पाक होताहै । वह पाक कटु (होताहै । आहारकी प्रथमावस्था मधुर, दूसरी अम्ल और तीसरी अवस्था कटु जाननी ।

उक्तआहारकी दो अवस्था ।

रसो भवति संपक्वादपक्वादामसंभवः ॥ ३ ॥

अर्थ—उस आहारका उत्तम पाक होनेसे रस होताहै और कच्चा परिपाक होनेसे आम होतीहै ।

रस और आमके कार्य ।

वह्नेर्बलेन माधुर्यं स्निग्धतां याति तद्रसः ॥ पुष्णाति धातू-
लान्सम्यक्पक्वोऽमृतोपमः ॥ ४ ॥ मंदवह्निविदग्धश्चकटु-
म्लोभवेद्रसः ॥ विषभावंव्रजेद्वापि कुर्याद्वा रोगसंकरम् ॥

अर्थ—वही पूर्वोक्त रस अग्निके बलकरके मधुरभाव और स्निग्धताको प्राप्तहोकर संपू धातुओंको पोषण करताहै अतएव उत्तम प्रकारसे परिपक्कहुआ रस अमृतके तुल्य है रस मंदाग्निकरके विदग्धहुआ विषभावको प्राप्त होताहै, अर्थात् कटु अम्ल होकर प्राण

---

१ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनके अंशसे प्रगट होताहै अतएव आहारकी पं संज्ञाहै । जैसे लिखाहै "चतुर्धा षड्रसोपेतोऽनेकविध्यनुपक्रमः । द्विविधोष्टविधो वीर्यैराहारः पांच २ हृदि प्राणोनिलो मतः । ३ नाभिस्तनांतरे जंतोराहुरामाशयं बुधाः इति । ४ आमाश स्थान है और कफका मिष्ट रस है अतएव इस स्थानमें छः प्रकारकाभी रस मिष्ट होजा एव ग्रंथातरमें लिखाहै कि "भुक्त्वादौ कफस्य वृद्धिः" इसी मिष्ट अवस्थाके आहारकी संज्ञा है जैसे लिखा है "माधुर्यमन्नं सृजतामपूर्वम्" । ५ पाचक पित्त एक पीले रंगका द्रव जब वह पूर्वोक्त मधुर आहारमें मिलताहै तब उसको खट्टा कर देता है । ६ जैसे मधुरादिगुणयुक्त होताहै उसी प्रकार उत्तम रस जीवन धारण, तर्पणादि गुणयुक्त होताहै सौम्यगुणवाला है । जैसे सुश्रुतमें लिखा है "सखलु द्रवानुसारी स्नेहनजीवनतर्पणधारण सौम्यावगम्यते" ।

होता है, अर्थात् कटु अम्ल होकर प्राणनाशकारी होता है । कदाचित् अल्प होनेसे मारणात्मक नहीं होता तो दोषोंके दूषित[1] होनेसे अनेक रुधिरविकार, ज्वर, भगंदर, कुष्ठादि रोगोंको करता है ।

आहारके सारको कहकर निःसारको कहतेहैं ।

आहारस्यरसःसारःसारहीनोमलद्रवः॥ शिराभिस्तज्जलंनीतंबस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥६॥ तत्किट्टं च मलंज्ञेयंतिष्ठत्पक्वाशयेचतत् ॥

अर्थ–उस आहारके रसको सार कहते हैं और आहारका निस्सार जो पदार्थ है उसको मलद्रव कहते हैं । तहां वह द्रव मूत्रवाहिनी शिराद्वारा बस्तिमें जाकर मूत्र होजाता है और अवशिष्ट रहा हुआ जो किट्ट वह पक्वाशयके एक देशमें जायकर मल (विष्ठा) होजाता है ।

मलका अधोगमन ।

वलित्रितयमार्गेण यात्यपानेननोदितम् ॥७॥
प्रवाहिनीसर्जनीचग्राहिकेतिवलित्रयम् ॥

अर्थ–गुदास्थित मल अपानवायु करके अधःप्रेरित वलि[2] त्रितयात्मक गुदाके द्वारा बाहर गिरता है उन वलियोंके नाम कहते हैं । प्रवाहिनी सर्जनी और ग्राहिका इस प्रकार शंखावर्त्त (शंखके आँटेके समान) तीन वली हैं ।

सारभूत रसकीभी कार्यत्वकरके स्थानांतरप्राप्ति कहतेहैं ।

रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः ॥ ८ ॥
रंजितः पाचितस्तत्रपित्तेनायातिरक्तताम् ॥

अर्थ–वह रस समान वायु करके ऊपरके प्रेरित अग्निस्थानसे हृदयमें[3] आकर रंजक-

---

१ दोषोंके दूषित होनेसे रोगोंको करता है किंतु स्नेहदग्धके सदृश आप नहीं करता अर्थात् घृत तैलसे जला हुआ मनुष्य घृतसे जला, तैलसे जला कहाता है परंतु वास्तवमें अग्निहीसे जला हुआ होताहै । जैसे लिखाहै "रसादिस्थेषु दोषेषु व्याधयः संभवंति ये । तज्जा इत्युपचारेण तान्याहुर्घृतदग्धवत्" । २ गुदाके अवयवभूत भीतर तीन २ वली एकसे एक ऊपर हैं इनका आकार शंखकी नाभिके समान है ।

३ रस सकल–शरीर–गमन–शीलत्व होनेसे ग्रहणीस्थानसे हृदयमें प्राप्त होताहै । जैसे लिखा है 'सर्वदेहानुसारत्वेऽपि तस्य हृदयस्थानं सहृदयाच्चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रवेश्योर्ध्वगा दशदश चाधोगामिन्यश्चतस्रस्तीर्यगास्ताः कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति वर्द्धयति यापयति चादृष्टहेतुकेन कर्मणा तस्य रसस्यानुमानाद्गतिरुपलक्षयितव्या' ।

पित्त करके रागयुक्त तथा पाचकपित्तमें पाचित हो रुधिररूपको प्राप्त होताहै ।

रक्तको प्राधान्य ।

रक्तंसर्वशरीरस्थंजीवस्याधारमुत्तमम् ॥ ९ ॥
स्निग्धंगुरुचलं स्वादुविदग्धंपित्तवद्भवेत् ॥

अर्थ–सर्वशरीरस्थ (पांचभौतिक) रुधिर (देहमूलत्व होनेसे) जीवका उत्तम आ[धार है]
उसके गुण स्निग्ध, गुरु चंचल और स्वादु हैं वही रुधिर विदग्ध कहिये विकृत होनेसे पि[त्तके]
समान कटु (तीक्ष्ण) और खट्टा होता है ।

रसादिधातुओंकी उत्पत्तिका क्रम ।

पाचिताः पित्ततापेनरसाद्याधातवःक्रमात् ॥ १० ॥
शुक्रत्वं यांतिमासेनतथास्त्रीणांरजोभवेत् ॥

अर्थ–रसादिक सातधातु पित्ततापकरके परिपक्व हो क्रमकरके एकमहीने शुक्र धातुको उ[त्पन्न]
करती हैं उसी क्रमसे एक महीनेमें स्त्रियोंके रज होता है ।

गर्भोत्पत्तिक्रम ।

कामान्मिथुनसंयोगेशुद्धशोणितशुक्रजः ॥ ११ ॥
गर्भः संजायतेनार्याःसजातोबालउच्यते ॥

---

१ प्रथम कुछ २ रंगता हुआ क्रमसे अत्यंत लाल होजाता है जैसे लिखा है "रसः कि[ञ्चि]
नैव संपद्यते द्वितीयेकपोतवर्णाभः पित्तस्थानेषु तिष्ठति, दिवसे तृतीये चतुर्थे वा पद्मवर्णो भवेत्, [पञ्च]
मेहनि षष्ठे वा किंशुकाभः सप्तमेहनि संप्राप्ते शक्रगोपकाभः एवंसप्ताहाद्रसोरक्तं भवतीति" । २ [स्नेहो]
द्रवतारागः स्पंदनं लघुता तथा । भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यंते शोणिते यतः । इति । ३ देहस्य
रंमूलं रुधिरणैव धार्यते । तस्माद्रक्षेद्धि रुधिरं रुधिरं. जीवमुच्यते । ४ रसके ग्रहणसे यह दिखा[या कि]
रसही शुक्रत्वको प्राप्त होता है इसीवास्ते 'शुक्रत्वं याति' ऐसा एक वचन कहा । आदि शब्दके [ग्रहणसे]
वही रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थिभावको प्राप्त होताहै ।

कोई आचार्य कार्य कारणके अभेदोपचारसे रसादि प्रत्येकधातु एकमहीनेमें शुक्र होता है
कहतेहैं ।

और स्त्रियोंके रज होताहै जैसे "रसादेव रजः स्त्रीणां मासिमासित्र्यहं भवत् । तद्वर्षाद्द्वाद[शादूर्ध्वं]
याति पंचाशतः क्षयम्" । उक्तश्लोकमें तथा इसपदके ग्रहणसे यह दिखाया कि स्त्रियोंके [शुक्र भी]
होताहै, क्योंकि द्रावणादि प्रयोगमें प्रत्यक्ष देखाजाताहै । अन्यथा उनको मैथुनानंद कैसे प्राप्त [हो]
तथा लिखाभीहै "सौम्यत्वगाश्रयं स्वच्छं स्निग्धं योनिमुखोद्गतम् । स्त्रीणां शुक्रं नगर्भाय भ[वे]
चार्तवम्" । अब कहतेहैं एक मासमें रसका शुक्र होताहै उसका हिसाब इसप्रकार है कि, आहार[से रस]
एकही दिनमें होताहै और रक्तादिधातु पांच २ दिनमें होतीहैं । विशेष देखना हो तो हमारे
"बृहन्निघंटुरत्नाकर"में देखलेवें ।

अर्थ–मनके संकल्पकरके स्त्रीपुरुषोंका रतिसंग होनेसे शुद्ध[1] शोणित (आर्त्तव) और शुद्ध[2] धातु इनके मिलापकरके स्त्रियोंके गर्भाशयमें गर्भधारण होता है जब वह गर्भ प्रगट होताहै तब उसको बालक कहते हैं।

पुत्रकन्याहोनेमें कारण।

आधिक्येरजसःकन्यापुत्रःशुक्राधिकेभवेत् ॥ १२ ॥ नपुंसकंसमत्वेनयथेच्छापारमेश्वरी ॥

अर्थ–गर्भाधान कालमें ऋतुसम्बन्धी रक्तकी आधिक्यतासे कन्या होतीहै और शुक्रधातुके आधिक्य होनेसे पुत्र होता है तथा आर्त्तव और शुक्रधातुके समान होनेसे नपुंसक संतान होती है। इसका कारण कर्मके अनुसरणादि परमेश्वरकी इच्छा है।

बालककी मात्राका प्रमाण।

बालस्यप्रथमेमासिदेयाभेषजरक्तिका ॥ १३ ॥ अवलेहीकृतैकैवक्षीरक्षौद्रसिताघृतैः ॥ वर्द्धयेत्तावदेकैकांयावद्भवतिवत्सरः ॥ ॥ १४ ॥ माषैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वंस्याद्यावत्षोडशवत्सरः ॥ ततः स्थिराभवेत्तावद्यावद्वर्षाणिसप्ततिः ॥ १५ ॥ ततोबालकवन्मात्रा ह्रसनीया शनैःशनैः ॥ मात्रेऽयंकल्कचूर्णानां कषायाणां चतुर्गुणा ॥ १६ ॥

अर्थ–बालककी प्रथम महीनेमें दूध, सहत, खांड और घृत इनमेंसे जो उपयुक्त होय उसीके साथ एक रत्ती सुवर्णादिक औषध डाल अवलेहभूत (चाटनेके योग्य) करके देवे। दूसरे

---

१ शुद्धआर्तवके लक्षण–" शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम्। तदार्तवं प्रशंसंतियद्वासो नविरंजयेत्। त्र्यहं गत्वाऽप्रवृत्तिं च कुरुते शोणितं स्त्रियः। व्युपद्रवा स्रंसते या गर्भस्तस्याध्रुवं भवेत्"। २ शुद्धशुक्रकेलक्षण–"स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च। शुक्रमिच्छंति केचित्तुतैलक्षौद्रनिभंतथा। वातादिदूषितं पूतिकुणपग्रंथिरूपिणम्। क्षीणमूत्रपुरीषाभ्यां गंधशुक्रं तु निष्फलम्"। ३ बालशब्द कन्या पुरुष और नपुंसक तीनोंका वाचक है।

४ " यथेच्छा " इसपदके कहनेसेही यमल (जोडला) होनेकी सूचना की है अर्थात् ईश्वरकी इच्छासे दो वा तीन इत्यादिकभी बालक होते हैं। जैसे लिखाहै " बीजेन्तर्वायुनाभिन्ने द्वौजीवौकुक्षिमागतौ। यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ "। ५ बालक तीनप्रकारका होताहै एक तो दूधपीनेवाला, दूसरा दूध अन्नका आहारकर्ता और तीसरा केवल अन्नका भोजनकर्ता जानना–इनको क्रमसे दूध सहत और खांडके साथ औषध देनी चाहिये। ६ प्रथमग्रहण इस जगे. बालकके जन्मदिनसे कहाहै। ७ घृत गौका लेवे।

८ औषध इसजगे सुश्रुतोक्त लेनी चाहिये जैसे लिखाहै "सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा। मत्स्याक्ष्याख्या शंखपुष्पी मधुसर्पिः सकांचनम्। अर्कपुष्पीघृतं क्षौद्रचूर्णितं कनकंवचा। हेमचूर्णानिकै-

महीनेमें दो रत्ती=तीसरे महीनेमें तीन रत्ती, इसप्रकार एक एक रत्तीके हिसाबसे औषधकी वृद्धि एकवर्ष करानी चाहिये तो मासेके प्रमाण होय । दूसरे वर्षमें दोमासे=तीसरेमें—तीनमासे इस प्रकार मासे २ औषधकी वृद्धि सोलह वर्षपर्यंत करनी चाहिये । सोलह वर्षके उपरांत सत्तर वर्षकी अवस्था पर्यंत औषध भक्षणमें सोलह मासेकाही प्रमाण जानना । फिर सत्तरवर्षके उपरान्त मात्राको जैसे बालकको बढाई थी उसी प्रमाण क्रमसे मात्राको घटाता चलाआवे । इसका कारणहै कि बालक और वृद्ध इनकी समान चिकित्सा है तथा कल्करूप चूर्णरूप और इनकी मात्रा बालकसे चौगुनी देनी चाहिये ।

अंजनादिकरनेका काल ।

अंजनंचतथालेपःस्नानमभ्यंगकर्मच ॥
वमनंप्रतिमर्शश्चजन्मप्रभृतिशस्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—बालकोंके नेत्रोंमें काजल आदिका लगाना, उवटना करना, स्नान (न्हवाना) तैलादिककी मालिश करना, उलटी कराना, और प्रतिमर्श (निरूहणबस्ति अर्थात् गुदामें पिचकारी देना) इत्यादिकर्म बालकके जन्मसेही हितकारी है ।

वमनविरेचनादिकर्म ।

कवलःपंचमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्मच ॥
विरेकःषोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैवमैथुनम् ॥ १८ ॥

अर्थ—पांचवर्षके उपरांत कवल (गंडूषभेद जो औषधादि करके कुल्ले करना) करे (पांच वर्षके भीतर न करे) । आठवर्ष उपरांत नस्य (नास) लेवे, सोलहवर्षके पश्चात् विरेचन (जुलाव) देवे, वीसवैंवर्षके पश्चात् मैथुन करना चाहिये ।

—र्द्धयः श्वेतादूर्वाघृतंमधु । चत्वारोभिहिताः प्रास्याः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि, ॥ " कुमाराणां वपुर्मेधाबलबुद्धिविवर्द्धनाः " इति । कोई आचार्य प्राचीन विश्वामित्रोक्त मात्रा बालकको कहते हैं जैसे " विडंगफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम् । अनेनैव प्रमाणेन मासिमासि प्रवर्धितम् । कोलास्थिमात्रं क्षीरादेर्दद्याद्भैषज्यकोविदः । क्षीरान्नादेः कोलमात्रमन्नादेर्दुंवरोपमम् " इति । १ मासा इसजगे मागधोक्तपरिभाषाके अनुसार छः रत्तीका लेनाचाहिये ।

२ इसजगह तीक्ष्ण जुलाब देना वर्जितहै परन्तु मृदु जुलाबका निषेध नहीं है । जैसे लिखा है " अग्निक्षारविरेकैस्तुबालवृद्धौ विवर्जयेत् । तत्साध्येषु विकारेषु मृद्वींकुर्याल्लघुक्रियाम् । "

३ बीसवर्षका ग्रहण पुरुषके प्रति है स्त्रियोंके प्रति नहीं है क्योंकि स्त्रियोंको १६ वर्षकी अवस्थामें समानवीर्यत्व कहा है यथा "पंचविंशतिमे वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे । समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलोभिषक् ॥ "

बाल्यादिदशपदार्थोंका ह्रास।

बाल्यंवृद्धिर्वपुर्मेधात्वग्दृष्टिःशुक्रविक्रमौ ॥
बुद्धिःकर्मेंद्रियंचेतोजीवितंदशतोह्रसेत् ॥ १९ ॥

अर्थ–जन्म होनेके दशवर्ष पश्चात् बाल्यावस्था नष्ट होतीहै । बीस वर्षके पश्चात् शरीरका बढना नष्ट होताहै । तीसवर्षके पश्चात् शरीर मोटा नहीं होता इस श्लोकमें "छविर्मेधा" ऐसा पाठभी है उस पक्षमें तीसवर्षपर्यंत कांति रहतीहै फिर नहीं रहती चालीसवर्षके उपरांत ग्रंथ पढकर याद रखनेकी शक्ति नहीं रहती । पचासवर्षके पश्चात् शरीरकी त्वचा शिथिल होती है । साठवर्षके उपरांत दृष्टिकी तेजी नष्ट होतीहै अर्थात् दृष्टिमंद पडजाती है । सत्तरवर्षके उपरांत वीर्य नहीं रहता । अस्सीवर्षके पश्चात् पराक्रम नष्ट होजाताहै । नब्बेवर्षके पश्चात् बुद्धि नहीं रहती सौवर्षके पश्चात् इस प्राणीकी कर्मेन्द्रियोंके चलनवलनादि धर्म जाते रहतेहैं । एकसौ दश वर्षके पश्चात् चैतन्य नष्ट होताहै और एकसौ बीसवर्षके पश्चात् जीव नष्ट होताहै अर्थात् मरताहै । इस प्रकार दश दश वर्षके अनंतर एकएकका ह्रास (हानी) होती है ।

वातप्रकृतिके लक्षण।

अल्पकेशःकृशोरूक्षोवाचालश्चलमानसः ॥
आकाशचारीस्वप्नेषुवातप्रकृतिकोनरः ॥ २० ॥

अर्थ–छोटे २ बाल, कृश और रूखा (तेजरहित) शरीर, वाचाल (बकवादी) चंचलचित्त, स्वप्नमें आकाशमें गमनकरे, इत्यादि लक्षण वातप्रकृतिवाले मनुष्यके होतेहैं ।

पित्तप्रकृतिमनुष्यके लक्षण।

अकाले पलितैर्व्याप्तोधीमान्स्वेदीचरोषणः ॥
स्वप्नेषुज्योतिषांद्रष्टापित्तप्रकृतिकोनरः ॥ २१ ॥

अर्थ–विनासमय बाले सफेद होजावें, बुद्धिवान् हो, अत्यंत पसीना आता हो, क्रोधी हो और स्वप्नमें नक्षत्र अथवा अग्न्यादिकको देखे, उस पुरुषकी पित्तप्रकृति जाननी ।

कफप्रकृतिवालेके लक्षण।

गंभीरबुद्धिः स्थूलांगःस्निग्धकेशोमहाबलः ॥
स्वप्नेजलाशयालोकीश्लेष्मप्रकृतिकोनरः ॥ २२ ॥

---

१ यह १२० की मनुष्योंकी परमायु जानना । यथा "समाषष्टिर्द्विघ्ना" मनुजकरिणां पंच च निशा हयानांद्वात्रिंशद्वरकरभयोः पंच च कृतिः । विरूपातश्चायुर्वृषमहिषयोर्द्वादशशुनः स्मृता छागादीनां दशकसहितंषट्चपरमम् ।"

२ "क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्माशिरोगतः । पित्तंचकेशान् पचति पलितं तेन जायते ।"

अर्थ–गंभीर (संपूर्ण कार्यमें क्षमाशीलबुद्धि जिसकी) हो, पुष्ट शरीर, चिकने बाल जिसकी देहमें बहुत बल हो तथा सपनेमें जलाशयों (तालाव सरोवर आदि) को देखे मनुष्यकी कफकी प्रकृति जाननी ।

द्विदोषज और त्रिदोषज प्रकृतिके लक्षण ।

ज्ञातव्यामिश्रचिह्नैश्चद्वित्रिदोषोल्बणानराः ॥

अर्थ–दो दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्विदोषजप्रकृतिवान् जानना और तीन दोषोंके लक्षण मनुष्य त्रिदोषजन्यप्रकृतिवाला जानना चाहिये ।

निद्रादिकोंकी उत्पत्ति ।

तमःकफाभ्यांनिद्रास्यान्मूर्च्छापित्ततमोभवा ॥ २३ ॥
रजःपित्तानिलैर्भ्रान्तिस्तन्द्राश्लेष्मतमोनिलैः ॥

अर्थ–तमोगुण और कफके संसर्गसे निद्रा आती है, पित्त और तमोगुण करके मूर्च्छा[1] होती है[2] रजोगुण पित्त और वायु इन करके भ्रम होता है, कफ, तम और वायु इनकरके घटपट पदार्थोंका ज्ञान होकर शरीर गुरु (भारी) होय जंभाई और क्लम कहिये परिश्रमविना श्रम लक्षण होते हैं इस स्थितिको तंद्रा[3] कहते हैं ।

ग्लानिके लक्षण ।

ग्लानिरोजःक्षयाद्दुःखादजीर्णाच्चश्रमाद्भवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ–संपूर्ण धातुओंके सारभूत ओजके क्षय करके दुःखसे अजीर्णसे और श्रमसे[4] ग्लानि होतीहै । ग्लानिशब्द[5] क्रमका दूसरा पर्यायवाचक नाम है अर्थात् हर्षक्षय जानना ।

आलस्यके लक्षण ।

यः सामर्थ्येप्यनुत्साहस्तदालस्यमुदीर्यते ॥

---

१ रूपादिके अविज्ञानको मूर्च्छा कहतेहैं अर्थात् मोहसंज्ञक अचेतनरूप जाननी । यद्यपि वाता तीनों दोषोंसे और रुधिरसे मूर्च्छा होतीहै तथापि पित्त प्रधान होनेसे ग्रहण कियाहै जैसे लिखाहै वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विशेषतः । षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते । २ "येना श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः। श्रमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः।" ३ "इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरव भणंक्रमः।निद्रार्त्तस्यैव यस्यैते तस्य तंद्राविनिर्दिशेत्"॥दुःख तीन प्रकारकाहै आध्यात्मिक, आधिदैवि आधिभौतिक । ४ शरीरके परिश्रम करनेको (दण्ड कसरतको) परिश्रम कहतेहैं "शरीरायास कर्म व्यायाम उच्यते ।"

५ ग्लानिके लक्षण तंत्रांतरमें इसप्रकार लिखेहैं "येनायासश्रमो देहे हृदयोद्वेष्टनं क्लमः । नचा भिकांक्षित ग्लानिं तस्य विनिर्दिशेत् ॥"

अर्थ–देहमें सामर्थ्य होनेपरभी काम करनेमें उत्साहरहित होउसको आलस्य कहते हैं ।

जंभाईके लक्षण ।

चैतन्यशिथिलत्वाद्यःपीत्वैकश्वासमुद्धरेत् ॥ २५ ॥
विदीर्णवदनःश्वासंजृंभासाकथ्यतेबुधैः ॥

अर्थ–चेतनके शिथिल होनेसे मनुष्य एक श्वासको पी कुछ देर मुखमें रखकर फिर उसको मुख फाडकर बाहर निकाले उसको जंभाई कहते हैं ।

छींकके लक्षण ।

उदानप्राणयोरूर्ध्वयोगान्मौलिकफस्रवात् ॥ २६ ॥
शब्दःसंजायते तेन क्षुतंतत्कथ्यतेबुधैः ॥

अर्थ–उदान (कंठस्थित) वायु और प्राण (हृदयस्थ) वायु इनका ऊपर मस्तकमें संयोग हो उससे (मस्तकसे) कफ गिरे इन दोनोंके संयोग होनेसे जो शब्द होय उसको क्षुत (छींक) कहते हैं ।

डकारके लक्षण ।

उदानकोपादाहारस्वस्थितत्वाच्चयद्भवेत् ॥
पवनस्योर्ध्वगमनं तमुद्गारं प्रचक्षते ॥ २७ ॥

अर्थ–उदान (कंठस्थित) वायुके कुपित होनेसे तथा अन्नादिकोंके आहारको अपने स्थानमें जायकर सुस्थिर रहनेसे जो वायुका ऊर्ध्वगमन होता है उसको उद्गार (डकार) कहते हैं ।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहिताभाषाटीकायां कलादिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

प्रथमाध्यायमें यह कहआएहैं कि " रोगाणां गणनाचेति " अतएव उसी रोगोंकी गणनाको दिखाते हैं ।

रोगाणांगणनापूर्वं मुनिभिर्याप्रकीर्तिता ॥
मयात्रप्रोच्यतेसैवतद्भेदाबहवोमताः ॥ १ ॥

१ आलस्यके लक्षण–सुखस्पार्शीप्रसंगित्त्वदुःखद्वेषमलोलता । शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्माण्यालस्यमुच्यते।
२ जृंभाके लक्षणान्तर–पीत्वैकमनिलश्वासमुद्वमेद्विवृताननः । यन्मुंचाति च नेत्रांभः सजृंभ इति कीर्तितः ।
३ नस्तइतिपाठांतरम् । अन्यत्राप्युक्तं "प्राणोदानौयदास्यातां मूर्ध्नि श्रोत्रापाथिस्थितौ । नस्तः प्रवर्त्तते शब्दः क्षुतं तदभिनिर्दिशेत् । "

अर्थ–ज्वरादिरोगोंकी गणना (संख्या) प्रथम जो मुनीश्वरोंने कहीहै उसी संख्याको इस ग्रंथमें कहते हैं क्योंकि उन रोगोंके अनेकभेद मुनीश्वरोंने कहे हैं तात्पर्य यह है कि ग्रंथमें रोगोंकी गणनामात्र कही है अन्य नहीं संख्याभी इस ग्रंथमें प्रयोजनके वास्ते कही क्योंकि निदानादि पंचक रोगज्ञानके उपाय हैं । तिन्होंमें संप्राप्ति जो कही है उसीका दूसरा संख्या है । जैसे लिखाहै "' संख्याविकल्पप्राधान्यवलकालविशेषतः । साभिद्यते यथात्रैव वक्ष्ये ष्टौज्वरा" इति ।

ज्वररोग सख्या ।

पंचविंशतिरुद्दिष्टा ज्वरास्तद्भेद उच्यते ॥ २ ॥ पृथग्दोषैस्तथा द्वंद्वभेदेन त्रिविधः स्मृतः ॥ एकश्चसंन्निपातेन तद्भेदा बहवः स्मृताः ॥ ३ ॥ प्रायशः सन्निपातेन पंचस्युर्विषमज्वराः ॥ तथागंतुज्वरोप्येकस्त्रयोदशविधोमतः ॥ ४ ॥ अभिचारग्रहावेशशापैरागंतुकस्त्रिधा ॥श्रमाद्दाहात्क्षताच्छेदाच्चतुर्धा घातकज्वरः ॥ ५ ॥ कामाद्भीतेः शुचोरोषाद्विषादौषधगंधतः ॥ अभिषंगज्वराः षट्स्युरेवंज्वरविनिश्चयः ॥६॥

अर्थ–ज्वर पचीस प्रकारका कहा है उसके भेद कहते हैं । १ वातज्वर[1] २ पित्त[2] ३ कफज्वर[3] ४ वातपित्तज्वर[4] ५ वातकफज्वर[5] ६ पित्तकफज्वर[6] ७ वातादि तीनों दो

---

१ शरीरमें कंप· ज्वरका विषमवेग (कभी अधिक कभी थोडा,) कंठ, होठ, मुख इनका सू निद्राका नाश, छींक न आवे, देहका रूखापन, मस्तक और अंगोंमें पीडा, मुखका विरस होना, मल उतरना, शूल, अफरा और जंभाई ये वातज्वरके लक्षण हैं ।

२ ज्वरका तीक्ष्ण वेग, अतिसार, अल्पनिद्रा, वमन, कण्ट, होठ, मुख, नाक इनका पकना आवें, अनर्थ बकना, मुखमें कडुआट, मूर्च्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, मल, मूत्र, नेत्र और ल पीला होना आर भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरके हैं ।

३ गलिवस्त्रसे अंगोंको ढकनेके समान देहका होना, ज्वरका मंदवेग, आलस्य, मुखमीठा, सफेदहो, देहका जकडजाना, अन्नमें अरुचि, देहभारी, शीत लगे, सूखी उलटियोंका आना, रोम होना, अतिनिद्रा, नाडियोंका रुकना, थोडादस्तहो, सरेकमा, मुखमें नोनकासा सवाद, देह थोडा रदका होना, लारका गिरना, मुखपाक, तथा नाक और मुखसे कफका स्राव, खाँसी, नेत्रोंका सं तथा देहमें पीडा, शीतका लगना, गरमी प्यारी लगे और मंदाग्निहो ये कफज्वरके लक्षण हैं । ४ मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा कंठ मुखका सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि अंधक शंन, जोडोंमें पीडा और जंभाई ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं । ५ देहमें आर्द्रता संधियोंमें पीडा, आना, देहभारी,मस्तकभारी,नाकसे पानीका गिरना,खाँसी, पसीने दाह और ज्वरका मध्यम वेगहो ये कफज्वरके लक्षण हैं ।

६ कफसे ल्हिसा मुख तथा मुखमें कडुआट, तंद्रा, मूर्च्छा खाँसी, अरुचि, प्यास, वारम्वार दा शतिलगे, तथा पसीने, कफ पित्तका गिरना, ये कफपित्तज्वरके लक्षण हैं ।

मिलनेसे एक संनिपातज्वर[१] तथा संनिपातज्वरके भेद अनेक हैं तिनमें प्रायःकरके पांच विषमज्वर हैं—जैसे संतत[२], सतत[३], अन्येद्यु[४], तृतीयक[५], चतुर्थक[६]।

एक प्रकारका आगंतुकज्वर। उसके तेरह भेद हैं उनको कहताहूं अभिचारज्वर[७] ग्रहावेशज्वर[८] और शापज्वर[९] ये तीन प्रकारके ज्वर आगंतुक ज्वर हैं। श्रमसे उत्पन्न हुआ ज्वर अग्न्यादि दाह-करके उत्पन्न हुआ, घावसे उत्पन्न, शस्त्रादिके प्रहारसे उत्पन्न, ये चार ज्वर 'अभिघात' संज्ञक जानने। तथा मनमें इच्छित स्त्रीके प्राप्त न होनेसे जो ज्वर होता है उसको कामज्वर कहते हैं। और भीति (डरने) से जो होय उसे भयज्वर कहते हैं। शोक (सोच) से होय सो शोकज्वर। क्रोधसे होय सो क्रोधज्वर, स्थावर कहिये बच्छनागादिक विष तथा जंगम कहिये सर्पादिकविष इनके सेवनसे जो ज्वर होवे उसको विषज्वर कहते हैं। तीव्र औषधिके गंधसे जो ज्वर होताहै उसको गंधज्वर कहते हैं, वे छः प्रकारके ज्वर 'अभिषंग' संज्ञक हैं। इस प्रकार तेरह प्रकारके आगंतुकज्वर और पहले बारह ज्वर सब मिलानेसे पच्चीस प्रकारके ज्वर होते हैं।

---

१ एकाएक क्षणमें दाह लगे, क्षणमें शीत लगे, हड्डी जोड—और मस्तकमें दर्द, आँसू भरे, काले और लाल तथा फटेहुएसे नेत्रहों, कानोंमें शब्द और दर्द, कंठमें काँटे पडजावें, तंद्रा, बेहोशी, अन-र्थभाषण, खाँसी, प्यास, अरुचि, भ्रम, जलीके माफिक काली और खरदरी तथा शिथिल जीभ होवे, रुधिर मिला थूके, शिरको इधर उधर पटके, अत्यंत प्यासका लगना, निद्रा जाती रहै, छातीमें पीडा, पसीने आवें, कभी २ बहुत देरमें मलमूत्र थोडे २ उतरें, कंठमें घरंघरं कफका बोलना, देहमें काले लाल चकत्तोंका होना, बहुत धीरे बोलना कान—नाक—मुख—इत्यादि छिद्रोंका पकना, पेट भारी हो, वात, पित्त और कफका देरमें पाक, शीतलगना, दिनमें घोर निद्राका आना, रात्रिमें जागना, अथवा बिलकुल निद्रा-का नाश होना, कभी गावे, कभी रोवे, कभी नाचे, कभी हंसे और देहकी चेष्टा जाती रहै ये सब लक्षण सन्निपातज्वरके हैं। बाकी और जो तेरह संनिपात हैं उनके लक्षण माधवनिदानमें देखो।

२ सातदिन वा दशदिन, वा बारहदिन जो देहमें एकसा ज्वर रहै उसको संतत ज्वर कहते हैं।

३ दिनरात्रिमें दोबार आवे उसको सततज्वर कहते हैं।

४ दिनरात्रिमें एकसा ज्वर आवे उसको अन्येद्यु (इकतरा) कहते हैं।

५ जो एकदिन बीचमें देकर आवे उस ज्वरको तृतीयक (तिजारी) कहते हैं।

६ दोदिन बीचमें देकर जो तीसरे दिन आवे उस ज्वरको चातुर्थिक (चौथैया) जानना।

७ श्येनादिक (शत्रुमारणार्थ शिकराआदिके) होम करनेसे जो ज्वर उत्पन्नहो अथवा विमंत्र करके सरसोंका हवन करनेसे जो ज्वर उत्पन्न होवे उसको अभिचारिक ज्वर जानना।

८ ब्रह्मराक्षसादिके संबन्धसे जो ज्वर होवे उसको ग्रहावेश ज्वर कहते हैं।

९ ब्राह्मण, गुरु, सिद्ध और वृद्ध, इनके शापसे जो ज्वर हो उसको शापज्वर जानना।

अतिसार रोग ।

पृथक् त्रिदोषैः सर्वैश्च शोकादामाद्भयादपि ॥ ७ ॥
अतिसारः सप्तधास्यात् ॥

अर्थ-अतिसाररोग सातप्रकारका है जैसे-१ वात २ पित्त ३ कफ ४ सन्निपात ५ ... ६ आम और ७ भयसे उत्पन्न होनेवाला, इनके लक्षण नीचे लिखे अनुसार जानने ।

संग्रहणी रोग ।

ग्रहणीपंचधामता ॥पृथग्दोषः सन्निपातात्तथाचामेन पंचमी॥

अर्थ-संग्रहणी रोग पांच प्रकारका है । जैसे १ वातसंग्रहणी. २ पित्तसंग्रहणी. ३ ...

---

१ कुछ ललाईको लिये, झाग मिला तथा रूखा, थोडा थोडा और वारंवार आम मिला दस्त उतरे और शूल चले, तथा मल उतरतेसमय शब्द होवे तो वातातिसार जानना । २ ... पीला, काला, धूँसरे रंगका मल उतरे, तथा तृष्णा, मूर्च्छा, दाह, गुदा, पकजाय ये लक्षण पि... सारके हैं ।

३ कफातिसारवाले पुरुषका मल सफेद, गाढा, चिकना, कफमिश्रित, दुर्गंधयुक्त और शीतल ... तथा रोमांच खडे होंय. यह लक्षण कफातिसारके जानने । ४ शूकरकी चरबी सदृश अथवा मांसके धो... पानीके सदृश और वातादि त्रिदोषोंके जो लक्षण कहेहैं उन लक्षण संयुक्त हो उस त्रिदोषजनित अ... रको कष्टसाध्य जानना ।

५ जिस पुरुषके पुत्र, मित्र, स्त्री, धन इनका नाश होजावे वह उसी २ वस्तुका शोचकरे ... क्षुधा मन्द होनेसे (धातुक्षय होय) उस प्राणीके बाष्प, नेत्र, नासा, गले आदिसे जो शोकद्वारा गिरे सो आर ऊष्मा कहिये शोकजन्य देहका तेज ये दोनों बाष्पोष्मा कोठेमें प्राप्तहो अग्निको ... रुधिरको कुपितकरें, तब यह रुधिर चिरमिटीके रंगसदृश गुदाके मार्ग होकर मलयुक्त अथवा मल... निकले तथा गन्धयुक्त अथवा गन्धरहित दस्त उतरे इसको शोकातिसार कहते हैं. इसी प्रकार भया... रभी जान लेना ।

६ अन्नके न पचनेसे दोष (वात पित्त कफ) स्वमार्गको छोडकर कोठेमें प्राप्तहो कोठेको दूषित ... रक्तादि धातु और पुरीषादि मलको वारंवार गुदाके मार्गसे बाहर निकालें और इसका रंग अनेक प्र... होय. तथा शूलयुक्त दस्त उतरे इसको छठा आमातिसार वैद्य कहते हैं ।

७ भयसे होनेवाले अतिसारमें जिस दोषका कोपहो उसी दोषके समान लक्षण होते हैं ।

८ वातग्रहणीवालेके अन्न दुःखसे पचे, अन्नका पाक खट्टा होय, अंगमें कर्कशता (यह वायुके ... चाके चिकनेपनको शोखनेसे होता है) कंठ, मुखका सूखना, भूख, प्यास न लगै । मन्द दीखै, ... शब्द हो, पसवाडे, जाँघ, पेडू और कंधामें पीडा होवे, विषूचिका हो (अर्थात् दोनों द्वारसे कच्चे ... प्रवृत्ति होवे) हृदय दूखे, देह दुबला होजाय, जीभका स्वाद जाता रहै, गुदामेंकतरने कीसी पी... मीठेसे आदि ले सर्व रसोंके खानेकी इच्छा, मनमें ग्लानि, अन्न पचे उपरांत पेटका फूलना, भोजन ... नेसे स्वस्थता, पेटमें गोला, हृद्रोग, तापतिल्लीकीसी शंका, वातके योगसे खाँसी श्वाससे पीडित बहुत ... बडे कष्टसे कभी पतला कभी गाढा थोडा शब्द और झाग मिला वांरवार दस्त आवे ।

९ जिस पुरुषके कटु, अजीर्ण, मिरच आदि तीखी दाहकारक (वंश करीलकी कोपल आ...

संग्रहणी ४ त्रिदोषजसंग्रहणी और पांचवीं आमजन्य संग्रहणी, इसप्रकार संग्रहणीके पाँच भेद जानने।

प्रवाहिका रोग।

प्रवाहिकाचतुर्धास्यात्पृथग्दोषैस्तथास्रतः॥

अर्थ–प्रवाहिकारोग चार प्रकारका है। जैसे १ वातकी प्रवाहिका २ पित्तकी प्रवाहिका ३ कफकी प्रवाहिका ४ और रुधिरकी प्रवाहिका। इसप्रकार प्रवाहिकाके चार भेद जानने।

अजीर्ण रोग।

अजीर्णंत्रिविधंप्रोक्तंविष्टब्धंवायुनामतम्॥९॥ पित्ता-द्विदग्धंविज्ञेयंकफेनामंतदुच्यते॥ विषाजीर्णरसादेकम्-

---

–खट्टी खारी (ओंगा आदिका खार) नोन, गरम पदार्थसेवन इन कारणोंसे कुपित हुआ जो पित्त सो जठराग्निको बुझायदे और कच्चाही नीले पीले रंगके पतले मलको निकाले, तथा धूमयुक्त डकार आवे, हिये आर कंठमें दाह होवे, अरुचि और प्यासकरके पीडित होवे यह पित्तकी संग्रहणीके लक्षण हैं।

१ भारी, अत्यंत चिकने, शीतल आदि पदार्थके खानेसे, अतिभोजनसे तथा भोजनकरके सोनेसे कुपित हुआ कफ जठराग्निको शांतकरै तब इसके खाया हुआ अन्न कष्टसे पचे, हृदयमें पीडा होय, वमन अरुचि, मुख कफसे लिसासा, तथा मुखका मीठा रहना, खाँसी, कफ थूके, सरेकमा होय, हृदय पानीसे भरे सदृश होय, पेट भारी और जड हो, दुष्ट और मीठी डकार आवै, अग्नि शांति हो, स्त्रीरमणमें अरुचि, पतला आम कफ मिला और भारी ऐसा मल निकले, बल विना शरीर पुष्ट दीखै, आलस्य बहुत आवै यह कफकी संग्रहणीके लक्षण हैं। २ वातादि तीनों दोषोंके जो लक्षण कहेहैं वे सब जिसमें मिलतेहों उसको त्रिदोषकी संग्रहणी जानिये। ३ आमवातसे जो आमसंग्रहणी उत्पन्न होती है उसके ये लक्षण हैं कि कभी आठदिनमें, कभी चौदह दिनमें अथवा नित्य आम गिरे उसको आमसंग्रहणी कहतेहैं।

४ वातकी प्रवाहिकामें शूल होताहै, वातकी प्रवाहिका रूखे पदार्थसे होतीहै।

५ पित्तकी प्रवाहिका तीक्ष्णपदार्थसे होतीहै, उसमें दाह होताहै।

६ कफकी प्रवाहिका चिकने पदार्थसे होतीहै, उसमें कफ बहुत होताहै।

७ रुधिरकी प्रवाहिका रक्तयुक्त होतीहै, वह खट्टेपदार्थसे होतीहै।

अर्थ—अजीर्ण रोग तीन प्रकारका है तहां वायुसे विष्टब्धाजीर्ण, पित्तसे विदग्धाजीर्ण, आमाजीर्ण होताहै. अन्नके रससे जो अजीर्ण होवे उसको विषाजीर्ण कहतेहैं ।

अलसकविषूच्यादि रोग ।

दोषैः स्यादलसस्त्रिधा ॥ १० ॥ विषूची त्रिविधाप्रोक्ता दोषैः सा स्यात्पृथक्पृथक् ॥ दण्डकालसकश्चैक एकैव स्याद्विलम्बिका ॥ ११ ॥

अर्थ—वातपित्त और कफ इन तीन दोषोंसे पृथक् २ लक्षण करके 'अलस' रोग तीन प्रकारका है यह अजीर्णसे उत्पन्न होताहै । उसीप्रकार विषूचिको (हैजा) वातादि भेदों २ लक्षणों करके तीन प्रकारका है उसको 'मोडी निवाही' कहतेहैं 'दंडकालसक' और 'विलंबिका' ये दो रोग उसी मोडीके भेद हैं ।

मूलव्याधि (बवासीर) ।

अर्शांसि षड्विधान्याहुर्वातपित्तकफास्तथा ॥ संनिपाताच्च संसर्गात्तेषां भेदो द्विधा स्मृतः ॥ १२ ॥ सहजोत्तरजन्मभ्यां तथाशुष्कार्द्रभेदतः ॥

---

१ शूल, अफरा, अनेक वातकी पीडा मल और अधोवायुका रुकजाना, देहका जकडना और देहमें पीडा होना ये विष्टब्ध अजीर्णके लक्षण हैं ।

२ विदग्ध अजीर्णमें भ्रम, प्यास और मूर्च्छा ये लक्षण होतेहैं और पित्तके अनेक रोग प्र... तथा धुएँके साथ खट्टी डकार आवै, पसीना आवै और दाह होय ।

३ कूख और पेटमें अफरा हो, मोह होय, पीडासे पुकारे, पवन चलनेसे रुककर कंठादिस्थानोंमें फिरे मल मूत्र और गुदाकी पवनरुके, प्यास बहुत लगे, डकार आवे ये लक्षण होंय उसको अलसक रोग कहतेहैं । ४ मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल, भ्रम, जंभाई, दाह, देहका विवर्ण, कम्प, हृदयमें पीडा और मस्तकमें पीडा ये लक्षण हों उसको ... कहतेहैं इसीको महामारी अथवा हैजा कहतेहैं ।

५ दंडके समान मनुष्योंको नवाय देवै उसको दंडकालसक कहतेहैं । वह दंडकालसक ... काके बहुत कुपित होनेसे होताहै. वह वातादि तीन दोषोंकरके व्याप्त रहताहै. उसके प्राणका नाश शीघ्रही होताहै । ६ जिस मनुष्यके भोजन कियाहुआ अन्न कफवातकरके ऊपर नीचे नहीं आवे अर्थात् वमन विरेचन न होय, उसको वैद्यविद्याके जाननेवाले जिसकी ... नहीं ऐसा विलंबिकारोग कहतेहैं ।

अर्थ–अर्श (बवासीर) रोग ६ प्रकारका है जैसे १ वातार्श २ पित्तार्श ३ कफार्श ४ संनिपातार्श ५ रक्तार्श ६ संसर्गार्श । इसप्रकार छः प्रकारकी बवासीर है, इसको

---

१ वाताधिक्यसे गुदाके अंकुर सखे (स्रावरहित) चिमचिम पीडायुक्त, मुरझायेहुये, काले, लाल टेढे, विशद, कर्कश, खरदरे, एकसे न हों बांके, तीखे, फटे मुखके, कंदूरी, बेर, खजूर, कपासके फलसदृश हों, कोई कदंबके फलसमान हों कोई सरसोंके सदृश हों शिर, पसवाडे, कन्धा, कमर, जाँत्र, पेडू इनमें अधिक पीडाहो, छींक, डकार, दस्तका न होना, हृदय पकडासा मालूम हो, अरुचि, खांसी, श्वास, अग्निका विषम होना अर्थात् कभी अन्न पचे कभी नहीं पचे, कानोंमें शब्द होय, भ्रम होय उस बवासीरकरके पीडित मनुष्यके पत्थरके समान, थोडा–शब्दयुत और वातकी प्रवाहिकाके लक्षणसंयुक्त शूल, झाग, चिकना इन लक्षणसंयुक्त हौले २ दस्त होय, उस मनुष्यकी त्वचाका रंग तथा नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र, मुख ये काले हों, गोला, तापतिल्ली, (उदररोग) अष्ठीला (वातकी गांठ) रोगोंके ये उपद्रव जिस बवासीरमें होते हैं उसको वातार्श कहते हैं ।

२ मस्सोंका मुख नीला, लाल, पीला और सुफेदी लिये होवे, उन मस्सोंमेंसे महीनधारसे रुधिर चुचाय और रुधिरकी बास आवे, महीन और कोमल शीतल हों और उनका आकार तोताकी जीभ कलेजा और जोंकके मुखके समान हो और देहमें दाह हो, गुदाका पकना, ज्वर, पसीना प्यास मूर्च्छा, अरुचि और मोह ये हों और हाथके स्पर्शकरनेसे गरम मालूम होवे और जिसके मलका द्रव नीला, पीला, लाल, गरम, आमसंयुक्त होय जवके समान बीचमें मोटे हों. और जिसकी त्वचा, नख, नेत्रादिक ये पीले हरतालके समान और हलदीके समान हों ये लक्षण पित्ताधिक बवासीरके हैं ।

३ कफकी बवासीरके लक्षण ये हैं. जैसे कि गुदाके मस्से, महामूल (दूर धातुके प्रति जाननेंवाले) कठिन मंद पीडाके करनेवाले सफेद, लंबे, मोटे, चिकने, करडे. गोल, भारी, स्थिर, गाढे, कफसे लिपटे मणिके समान स्वच्छ, खुजली बहुत होय और प्यारी लगे, करील कटहर इनके कांटेके समान होय गायके मनकेसदृश होय, पेडूमें अफरा करनेवाले, गुदा, मूत्रस्थान और नाभि इनमें पीडा करनेवाले, श्वास, खांसी लारका टपकना, अरुचि, पीनस इनको करनेवाले, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकका भारी होना, शीतज्वर, नपुंसकपना, अग्निका मंदहोना, वमन और आम जिनमें बहुत ऐसे अतिसार, संग्रहणी आदि रोगके करनेवाले, वसा (चर्बी) और कफ मिला दस्त होवे, प्रवाहिका उत्पन्नकरनेवाले और मस्सोंमेंसे रुधिर न निकले, गाढा मल होनेसेभी मस्से न फूटें और शरीरका रंग पीला और चिकना हो ये कफकी बवासीरके लक्षण हैं ।

४ जो पूर्व वातादिक तीनों दोषोंकी बवासीरोंके लक्षण कहे सो सब लक्षण मिलते हों उसको निपातकी बवासीर जानना और येही लक्षण सहज बवासीरके हैं ।

५ गुदाके मस्सोंका रंग चिरमिठीके रंगके समान होवे, अथवा वटके अंकुरसे हों और पित्तकी बवासीरके लक्षण जिसमें मिलतेहों, मूँगाके सदृश हों और दस्त कठिन उतरनेसे मस्से दबें तब मस्सोंमेंसे दुष्ट और गरमागरम रुधिर पडे और रुधिरके बहुत पडनेसे वर्षाऋतुके मेंढकके समान पीला रंग होजाय, रुधिरके निकलनेसे जो प्रगट त्वचाका कठोरपना, नाडीका शिथिलपना और खट्टी-

कोई कोई देशवाले मूलव्याधिभी कहतेहैं । इस छःप्रकारकी अर्शके भेद दो हैं एक सहज देहके साथ उत्पन्न हो वह, दूसरी उत्तर प्रगटे अर्थात् जन्म होनेके उपरांत मिथ्या विहारादिकरके वातादि कुपित हो उत्पन्न करे ये एवं आर्द्र और शुष्क इन भेदोंसे दोप्रकार है। आर्द्र कहिये गीली और शुष्क कहिये सूखी । लौकिकमें इनको खूनी और वादी कहा है।

चर्मकील रोग ।

त्रिधैव चर्मकीलानि वातात्पित्तात्कफादपि ॥ १३ ॥

अर्थ–चर्मकील रोगभी तीन प्रकारका है, जैसे १ वातजचर्मकलि २ पित्तजचर्मकील ३ कफज चर्मकील इस प्रकार चर्मकीलके तीन भेद कहेहैं ।

कृमिरोग ।

एकविंशतिभेदेन कृमयः स्युर्द्विधोच्यते ॥ बाह्यास्तथाभ्यन्तरेचतेषु यूकाबहिश्चराः ॥ १४ ॥ लिख्याश्चान्येन्तरचराः कफात्ते हृदयादकाः ॥ अन्त्रादा उदरावेष्टाश्चुरवश्चमहागुहाः ॥ १५ ॥ सुगन्धा दर्भकुसुमास्तथा रक्ताश्च मातराः ॥ सौरसा लोमविध्वंसारोमद्वीपाह्युदुम्बराः ॥ १६ ॥ केशादाश्च तथैवान्ये शकृज्जाता मकेरुकाः ॥ लेलिहाश्च मलूनाश्च सौसुरादाः कर्वेरुकाः ॥ १७ ॥ तथान्यःकफरक्ताभ्यां संजातः स्नायुकःस्मृतः ॥

अर्थ–इक्कीस भेदकरके कृमिरोग बाहर और भीतरके भेदसे दोप्रकारका है यूका (जूआ) लीखें जमँजूआँ यह तीनप्रकारकी कृमि देहके बाहर रहतीहैं

–वस्तु तथा शीतकी इच्छा इत्यादि दुःख तिनसे) पीडित होय, हीनवर्ण, बल, उत्साह, पराक्र नाश होय, संपूर्ण इंद्रियोंका व्याकुल होना, उसका काला, कठिन और रूखा ऐसा मल होय, वायु सरे नहीं, यह लक्षण ' खूनी ' बवासीरके जानने चाहियें ।

६ कुलपरंपराकरके देहके साथ उत्पन्नहोय उसको संसर्गार्श जानना ।

१ वातसे सुईके चुभाने जैसी पीडा होय ऐसी पीडा होय ।

२ पित्तसे कठोरता होय ।

३ कफसे काला और कुछ लाल तथा चिकनी गांठके समान देहके वर्णके समान वर्ण होवे ।

४ देहमें केश और मलीनवस्त्रके आश्रयसे जो कृमि रहतीहै है उसको यूँका (जूँ) कहते हैं। यूका तिलके सदृश होकर काली और सफेद होती है. इनके बहुत पांव होतेहैं. वे जूँ होतेहैं ।

५ बहुतही बारीक होती हैं वे लीख कहाती हैं ।

६ जमजूंआं एक जूंआंकाही भेद है. इसकेभी बहुत पैर होते हैं ।

अठारह प्रकारकी कृमि देहके भीतर रहतीहैं। उनको लौकिकमें जंतु कहते हैं।. उनके भेद मैं कहता हूं—१ हृदयादक २ अंत्राद ३ उदरावेष्ट ४ चुरव (चिनूना जो बालकोंके होतेहैं) ५ महागुह ६ सुगंध ७ दर्भकुसुम ये सातप्रकारके कृमि कफसे उत्पन्न होतेहैं। १ मातर २ सौरस ३ लोमविध्वंस ४ रोमद्वीप ५ उदुंबर ६ केशाद ये छःप्रकारकी कृमि रुधिरसे उत्पन्न होतीहैं। १ मकेरुक २ लेसिलुह ३ मलून ४ सौसुराद ५ ककेरुक ये पांचप्रकारकी कृमि मलसे उत्पन्न होतीहैं। इसप्रकार अठारह प्रकारकी भीतरकी कृमि और तीनप्रकारके पूर्वोक्त बाहरके कृमि ये सब मिलकर २१ प्रकारके कृमि होते हैं। उसीप्रकार कफरक्तसे जो उत्पन्न होता है उसको स्नायुक (नहरुआ अथवा नारू) कहतेहैं।

पांडुरोग।

पांडुरोगाश्च पंचस्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा॥ त्रिदोषैर्मृत्तिकाभिश्च-

अर्थ—पांडुरोग पांचप्रकारका है जैसे १ वातपांडु २ पित्तपांडु ३ कफपांडु ४ सन्निपात-

---

१ देहमें अठारह प्रकारके कृमि हैं, उनका कोप होनेसे ये सामान्य लक्षण होतेहैं. ज्वर, शरीरमें निस्तेजपन, शूल, हृदयमें पीडा, वमन, भ्रम, अन्नका द्वेष और अतिसार इस प्रकार सामान्य लक्षण जानने। २ कफसे आमाशयमें प्रगटहुई कृमि जब बढजाती हैं तब चारों तरफ डोलतीहैं. कोई चामके सदृश, कोई गिंडोहेके आकार, कोई धान्यके अंकुरके समान होतीहैं. कितनीही छोटी बडी चौडी होती और किसीका वर्ण श्वेत, किसीका ताँबेके समान होताहै। उन्होंके सात नाम हैं. इन कृमियोंसे वमनकीसी इच्छा होय, मुखसे पानी गिरै, अन्नका पाक न हो अरुचि, मूर्च्छा, वमन, प्यास, अफरा, शरीर कृश हो, सूजन और पीनस इतने विकार होतेहैं। ३ रुधिरकी रहनेवाली नाडीमें रुधिरसे प्रगट कृमि बारीक, पादरहित, गोल, ताँबेके रंगकी होतीहैं. कोई बहुत बारीक होतीहैं व देखनेसेभी नहीं दीखतीं ये कुष्ठको पैदा करती हैं। ४ पक्काशयमें विष्ठासे प्रगट कृमि गुदाके मार्ग होकर बाहर निकस-तीहैं जब यह बढ जाती हैं तब आमाशयमें प्राप्त होकर डकार और श्वाससे विष्ठाकीसी वास आने लगती है। ये कृमि बडी छोटी, गोल, मोटी, रंगमें काली, पीली, सफेद, नीली होतीहैं। जब ये मार्गको छोड अन्य मार्गमें जातीहैं तब इतने रोग प्रगट करतीहैं दस्तका पतला होना, शूल, अफरा, देहमें कृशता तथा कठोरता, पांडुरोग, रोमांच, मंदाग्नि और गुदामें खुजलीका होना।

५ वातादि दोष कुपित होकर रुधिरको दूषित करके शरीरकी त्वचाको पांडुवर्ण (पीली) करतेहैं उसको पांडुरोग (पीलिया) कहतेहैं। ६ वातके पांडुरोगमें त्वचा, मूत्र, नेत्र इनमें रूखापन और कालापन होताहै तथा कंप सुई छेदनेकासा चमका, अफरा, भ्रम, मेद और शूलादिक होतेहैं। ७ पित्तपांडुरोगीके ये लक्षण होतेहैं मल, मूत्र और नेत्र पीले हों, दाह, प्यास, ज्वर इनसे पीडितहो, मल पतला हो और उस रोगीके देहकी कांति अत्यंत पीली होतीहै। ८ मुखसे कफका गिरना, सूजन, तन्द्रा, आलसक, शरीरका भारी होना, त्वचा, मूत्र, नेत्र, मुख इनका सफेद होना इन लक्षणोंसे कफका पांडुरोग जानना। ९ ज्वर, अरुचि ओकारी, प्यास और क्लम तथा वमन इतने उपद्रवयुक्त—

पांडु ९ मृत्तिकाभक्षणसे जो होता है वह मृत्तिकाभक्षणका पांडु इसप्रकार पांडुरोगके प्रकार हैं।

कामला कुंभकामला व हलीमक रोग।

–तथैका कामला स्मृता ॥ स्यात्कुंभकामला चैका तथैव च हलीमकम् ॥ १८ ॥

अर्थ–कामला रोग एक प्रकारका है यह रोग पांडुरोगकी अपेक्षा करनेसे होता है। यह स्वतंत्र है और उस कामलाके दो भेद हैं एक कुंभकामला और दूसरा हलीमक।

रक्तपित्तरोग।

रक्तपित्तं त्रिधा प्रोक्तमूर्ध्वगं कफसंगतम् ॥
अधोगं मारुताज्ज्ञेयं तद्वयेन द्विमार्गगम् ॥ १९ ॥

अर्थ–रक्तपित्त तीन प्रकारका है एक उर्ध्वगामी दूसरा अधोगामी और तीसरा

–त्रिदोषजन्य पांडुरोग होता है, इस पांडुरोगसे रोगीके इन्द्रियोंकी, अपना अपना विषय ग्रहण करनेकी शक्ति जाती रहतीहै।

१ मिट्टी खानेका जिस मनुष्यको अभ्यास पडजाय उसके वातादिक दोष कुपित होते हैं। कसैली माटीसे वात, खारी माटीसे पित्त और मीठी माटीसे कफ कुपित होताहै। फिर वही मिट्टी जायकर रसादिक धातुओंको रूखा करतीहै जब रौक्ष्यगुण प्रगट होजाय तब जो अन्न खाय सो रूखा होजाताहै फिर वही मिट्टी पेटमें विना पके रसको रस वहनेवाली नसोंमें प्राप्तकर उनके मार्गको रोक देतीहै। रसके वहनेवाली नसोंका मार्ग जब रुकजाताहै तब इंद्रियोंका बल अर्थात् अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट होजातीहै शरीरकी कांति तेज और ओज कहिये सब धातुओंका सार (जो हृदयमें रहताहै सो) क्षीण होकर पांडुरोग प्रगट होताहै उसमें बल, वर्ण और अग्निका नाश होताहै, कपोल, भृकुटी, पैर, नाभि और लिंग, इनमें सूजन हो और कोठेमें कृमि पडजाँय तथा रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे। सब पांडुरोगोंमें जब पेटमें कृमि पडजातेहैं तब ये (पूर्वोक्त) लक्षण होते हैं।

२ वमन, अरुचि,ओकारीका आना, ज्वर, अनायास श्रम इनसे पीडित तथा श्वास खांसी इनसे पीडित और अतिसारयुक्त ऐसा कुंभकामलावाला रोगी मरजाताहै।

३ पांडुरोगीका वर्ण हरा, काला, पीला होजाय और बल व उत्साह, इनका नाश, तंद्रा, मंदाग्नि, मदीनज्वर, स्त्रीसंभोगकी इच्छाका नाश. अंगोंका टूटना, दाह, प्यास, अन्नमें अप्रीति और ये उपद्रव वातपित्तसे प्रगटे हलीमक रोगके हैं।

४ धूपमें बहुत डोलनेसे, अति परिश्रम करनेसे, शोकसे, बहुत मार्ग चलनेसे, अतिमैथुनसे, मिर्च आदि तीखी वस्तु खानेसे, अग्निके तापनेसे, जवाखार आदि खारे पदार्थ नोनको आदि लेकर लवणके पदार्थ, खट्टी, कडुवी ऐसी वस्तुके खानेसे कोपको प्राप्तभया जो पित्त सो अपने द्रव पुति इत्यादि गुणोंसे रुधिरको बिगाडताहै तब रुधिर ऊपरके अथवा नीचेके मार्गसे

जो ऊपर और नीचे दोनों मार्गसे जावे। इनमें जो ऊर्ध्वगामी अर्थात् जो मुखादि मार्गसे गिरताहै वह कफसंबंध करके होता है और अधोमार्ग कहिये गुदादि द्वारा गिरे वह वातके संबंधसे होता है और दोनोंमार्ग अर्थात् गुदा और मुखसे गिरनेवाला रक्तपित्त कफ और बादीके संबंधसे गिरता है। रक्तपित्तके ये तीन भेद जानने।

कासरोग।

कासाः पञ्च समुद्दिष्टास्ते त्रयस्तु त्रिभिर्मलैः॥
उरःक्षताच्चतुर्थःस्यात्क्षयाद्धातोश्च पंचमः॥ २०॥

अर्थ–कास (खाँसी) का रोग पाँच प्रकारका है १ वातकास २ पित्तकास ३ कफकास ४ छातीमें कुठार आदिके प्रहारके समान पीडा होकर होता है वह उरःक्षतकास

–दोनों मार्ग होकर प्रवृत्तहो (निकले) ऊपरके मार्ग नाक, कान, नेत्र, मुख इनके द्वारा निकले और अधोमार्ग कहिये लिंग, गुदा और योनि इनके रास्ते होकर निकले और जब रुधिर अत्यन्त कुपित होय तब दोनों मार्ग और सब रोमांचोंसे निकलता है, उसको रक्तपित्त कहते हैं।

१ नाक, मुखमें धूर वा धूआँ जानेसे, दंडकसरत, रूक्षान्न, इनके नित्य सेवन करनेसे, भोजनके कुपथ्यसे, मल मूत्रके रोकनेसे, उसी प्रकार छिका अर्थात् आतीहुई छींकको रोकनेसे, प्राणवायु अत्यन्त दुष्ट होकर और दुष्ट उदान वायुसे मिलकर कफ पित्तयुक्त अकस्मात् मुखसे बाहर निकले उसका शब्द फूटे कांस्यपात्रके समान होय उसको विद्वान्लोग कास (खाँसी) कहते हैं।

२ हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर, पसवाडा इनमें शूल चले, मुँह उतरजाय, बल, स्वर, पराक्रम क्षीण पडजाय, वारंवार खाँसीका उठना स्वरभेद और सूखी खाँसी उठे यह वातकी खाँसीके लक्षण हैं।

३ पित्तकी खाँसीसें हृदयमें दाह, ज्वर, मुखका सूखना इनसे पीडित हो, मुख कडुआ रहै. प्यास लगे.पीले रंगकी और कडवी पित्तके प्रभावसे वमन होय रोगीका पीलावर्ण होजाय और सब देहमें दाह होय।

४ कफकी खाँसीसे मुख कफसे लिपटा रहै, मथवाय रहै और सब देह कफसे परिपूर्ण रहै, अन्नमें अरुचि, शरीर भारी रहै, कंठमें खुजली, और रोगी बारंबार खाँसे। कफकी गाँठ थूकनेसे मुख मालूम होवे।

५ बहुत स्त्रीसंग करनेसे, भारके उठानेसे, बहुत मार्ग चलनेसे, मल्लयुद्ध (कुश्ती) करनेसे, हाथी, घोडा दौडनेसे रोकनेसे रूक्ष पुरुषका हृदय फूटकर वायु कुपित होकर खाँसीका प्रगट करता है सो पुरुष प्रथम सूखा खाँसे, पीछे रुधिर मिला थूके, कंठ अत्यन्त दूखे, हृदय फूटेहुएका सा रूप होय और तीखी सुईकेसे चमका चले उसको हृदयका स्पर्श नहीं सुहावे दोनों पसवाडोंमें शूल तथा दाह होय, गांठ गांठमें पीडा होय, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभेद इनसे पीडित होय, खाँसीके वेगसे रोगी कबूतरकी तरह घूं घूं शब्द करे; ये लक्षण उरःक्षत कासके हैं।

और धातुक्षयकास ऐसे कास (खाँसी) का रोग पाँच प्रकारका है ।

क्षयरोग ।

**क्षयाःपंचैव विज्ञेयास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्चते ॥
चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमःस्यादुरःक्षतात् ॥ २१ ॥**

अर्थ—क्षयरोग पांच प्रकारका है जैसे १ वातक्षय २ पित्तक्षय ३ कफक्षय ४ स
पातक्षय पांचवा उरःक्षतके होनेसे इस प्राणीके होता है. इस: भाँति क्षयरो

---

१ कुपथ्य और विषमाशनके करनेसे, अतिमैथुनसे मल मूत्र आदिका वेग धारनेसे, अतिदया क
अतिशोक करनेसे अग्नि मंद होय, अर्थात् आहार थककर वायु कुपित हो, अग्निको नष्टकरे, तब
दोष कोपको प्राप्तहो क्षयजन्य देहकी नाशक खाँसीको प्रगट करे तब वह खांसी देहको क्षीण
शूल, ज्वर दाह और मोह ये होंय तब यह प्राणका नाश कर, सूखी खांसी रुधिर मांस और
रको सुखावे रुधिर और राध थूके ये सर्व लक्षणयुक्त और चिकित्सा करनेमें अतिकठिन ऐसी इस
को वैद्य क्षयज कहतेहैं ।

२ क्षयरोगका पूर्वरूप—श्वास, हाथ पैरका गलना, कफका थूकना, तालुएका सूखना, वमन
उन्मत्तता, पीनस, खांसी और निद्रा ये लक्षण धातुशोष होनेवालेके होतेहैं । उस मनुष्यके नेत्र
होतेहैं और मांस खानेपर तथा स्त्रीसंग करनेकी इच्छा होतीहै । वह सपनेमें कौआ, तोता सेह, न
(मोर) गीध, बंदर, करकैटा इनपर अपनेको बैठा देखे, और जलहीन नदीको देखे तथा पवन,
और धुआँ इनसे पीडित वृक्ष देखे, ये सब स्वप्न क्षयी रोग होनेके दीखतेहैं, कंधा और प
पीडा, हाथ पैरमें जलन और सर्व अंगोंमें ज्वर ये तीन लक्षण क्षयके अवश्य होतेहैं । ३
प्रभावसे स्वरभेद, कंधा और पसवाडे इनसे संकोच और पीडा होतीहै । ४ पित्तसे ज्वर,
अतिसार और मुखसे रुधिरका गिरना । ५ कफके कोपसे मस्तकका भारीपन, अन्नसे द्वेष,
स्वरभेद ये लक्षण होतेहैं । ६ वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षणों करके युक्त जो
उसको संनिपातक्षय कहते हैं । ७ बहुत तीरंदाजी करनेसे, बहुत भारी वस्तु उठानेसे,
पुरुषके साथ युद्ध करनेसे, ऊँचे स्थानसे गिरनेसे, बैल, घोडा, हाथी, ऊँट इत्यादि दौडते
थामनेसे, भारी शत्रुको मारनेवाला, शिला, लकडे, पत्थर, निर्घात (अस्त्रविशेष) इनके
जोरसे वेदादिक शास्त्र पढनेसे, अथवा दूर दिशावर शीघ्र चलकर जानेसे, गंगा यमुनादि मह
तरनेवाला, अथवा घोडेके साथ दौडनेवाला, अकस्मात् कला खानेवाला, जल्दी जल्दी बहुत
इसीप्रकार दूसरे मल्लयुद्धादि क्रूरकर्म करनेसे, उरः (छाती) फट जातीहै । ऐसे पुरुषकी
दूखनेसे बलवान् उरःक्षतरूप व्याधि उत्पन्न होती है और रूखा थोडा कुसमय तथा छातीमें
लगेहे, अत्यन्त स्त्रीरमण करनेसे और रूखा थोडा और अनुमानका भोजन करनेवाले पुरुषकी
फटेके सदृश मालूमहो अथवा हृदयके दो टूककर डाले ऐसा मालूम होय और हृदय तथ
वाडोंमें अत्यन्त पीडा होय, अंग सब सूखने और थरथर काँपने लगे, शक्ति, मांस, वर्ण,
अग्नि ये सब क्रमसे घटने लगे, ज्वर रहै, व्यथा होय, मनमें संताप हो दीन होजाय,
होनेसे दस्त होने लगे और बारंबार खाँसते २ दुष्ट काला, अत्यन्त दुर्गंधयुक्त, पीला, गाँठके

पांच प्रकारका जानना। इसको क्षयी राजयक्ष्मा और राजारोगभी कहते हैं।

शोषरोग।

शोषाःस्युः षट्प्रकारेण स्त्रीप्रसंगाच्छुचो व्रणात्॥
अध्वश्रमाच्चव्यायामाद्वार्धक्यादपि जायते॥ २२॥

अर्थ–क्षयरोगका भेद शोषरोग है। उसके कारण अत्यंत स्त्रीप्रसंग करना। अति शोक करना, घाव, अत्यन्त रस्ता चलना, बहुत दंड कसरत करना और वृद्धावस्थाआनाहै। इस छः कारणोंसे शोषरोग (जिसमें देह सूखजाता है वह रोग) होताहै।

श्वासरोग।

श्वासाश्च पंच विज्ञेयाः क्षुद्रः स्यात्तमकस्तथा॥
उर्ध्वश्वासो महाश्वासश्छिन्नश्वासश्च पंचमः॥ २३॥

अर्थ–श्वासरोग पांच प्रकारकाहै १ क्षुद्रश्वास २ तमकश्वास ३ ऊर्ध्वश्वास

–बहुत और रुधिर मिला ऐसा कफ गिरे इसप्रकार क्षतरोगी अत्यंत क्षीण होय सो केवल क्षतसेही क्षीण होजाय ऐसा नहीं किंतु स्त्रीसेवन करनेसे शुक्र और ओज (सब धातुओंका तेज) का क्षय होनेसे ये मनुष्य क्षीण होताहै ये उरःक्षतरोगके लक्षण हैं।

१ रसादि सात धातुके शोषण (सूखने) से शरीर क्षीण होताहै इस रोगको शोषकहते हैं।

२ रूखा पदार्थ खाने और श्रमकरनेसे प्रगट हुआ जो श्वास सो पवनको ऊपर लेजाता है। यह क्षुद्रश्वास अत्यंत दुःखदायक नहीं और अंगोंको कुछ विकार नहीं करता जैसे ऊर्ध्वश्वासादिक दुःखदायक हैं ऐसे यह नहींहै यह भोजनपानादिकोंकी उचित गतिको नहीं करता, न इंद्रियोंको पीडा करता और न कोई रोग प्रगट करता यह क्षुद्रश्वास साध्य कहागयाहै।

३ जिस कालमें शरीरकी पवन उलटीगतिसे नाडियोंके छिद्रमें प्राप्तहोकर मस्तक तथा कंठका आश्रयकर कफसंयुक्त होताहै तब कफसे रुककर अति वेगपूर्वक कंठमें घुरघुर शब्द करता है और मस्तकमें पीनस रोग करता है वह अत्यंत तीव्रवेगसे हृदयको पीडित करनेवाले श्वासको उत्पन्न करता है उस श्वासके वेगसे रोगी मूर्च्छित होताहै त्रासको प्राप्त होताहै चेष्टारहित होजाता है और खाँसीके उठनेसे बडे मोहको वारंवार प्राप्तहोताहै, जब कफ छूटे तब दुःख होय और कफ छूटनेके बाद दोघड़ीपर्यंत सुख पावे, कंठमें खुजली चले, बडे कष्टसे बोले, श्वासकी पीडासे नींद न आवे सोवे तो वायुसे पसवाडोंमें पीडा होय, बैठेही चैन पडे और गरमीके पदार्थसे सुख होय, नेत्रोंमें सूजन होय, ललाटमें पसीना आवे अत्यंत पीडा होय, मुख सूखे, बारंबार श्वास और वारंवार हाथीपर बैठनेके सदृश सर्व देह चलायमान होवे यह श्वास मेघके वर्षनेसे, शीतसे, पूर्वकी पवनसे और कफकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे बढता है। यह तमकश्वास याप्य है यदि नया प्रगट भया होय तो साध्य होय है।

४ बहुत देरपर्यंत ऊंचा श्वासलेय, नीचे आवै नहीं, कफसे मुख भरजावै और सब नाडियोंके मार्ग कफसे बंद होजाँय, कुपितवायुसे पीडित होय ऊपरको नेत्रकर चंचलदृष्टिसे चारों ओर देखे मूर्छा और पीडासे अत्यंत पीडितहोय, मुख सूखे तथा बेहोश होय ये उर्ध्वश्वासके लक्षण हैं।

४ महाश्वासको और ५ छिन्नश्वास इसप्रकार श्वास रोगपांच प्रकारहैं ।

हिक्कारोग ।

**कथिताः पञ्च हिक्कास्तु तासु क्षुद्रान्नजा तथा ॥
गम्भीरायमला चैव महती पंचमीतिच ॥ २४ ॥**

अर्थ—हिक्का हिचकी रोगपांच प्रकारका है। उसमें १ क्षुद्राहिचकी २ अन्नजा हिचकी ३ गं हिचकी ४ यमला हिचकी और पाँचवीं महती हिचकी इसप्रकार हिचकी पांच प्रकारकी है ।

जठराग्निके विकार ।

**चत्वारोऽग्निविकाराः स्युर्विषमो वातसम्भवः ॥
तीक्ष्णःपित्तात्कफान्मन्दो भस्मको वातपित्तकः॥ २५॥**

अर्थ—जठर अर्थात् उदरकी अग्निके चार प्रकारके विकार हैं । जैसे

---

१ जिसका वायु ऊपरको जायके प्राप्त होय, ऐसा मनुष्य दुःखित होकर मुखसे शब्दयुक्त श्वास ऊँचे स्वरसे निकाले अथवा जैसे मतवाला बैल शब्द करे इसप्रकार रात्रिदिन श्वाससे पीडित होय का ज्ञान विज्ञान जाता रहै, नेत्र चंचल होय और जिसका श्वास लेनेमें नेत्र और मुख फटजाय, बंद होजाय, नहीं बोलाजाय अथवा बोले, तो मंद बोले मन खिन्न होय और जिसका श्वासदूरसे सु यह महाश्वास जिस पुरुषको होय वह तत्काल मरणको प्राप्त होय ।

२ जो पुरुष ठहर ठहरकर जितनी शक्ति उतनी शक्तिसे श्वासको त्यागकरे, अथवा क्लेशको प्र श्वासको नहींछोडे और मर्म कहिये, हृदय बस्ती (मूत्रस्थान) और नाडियोंको मानों कोई छेद ऐसी पीडाहोय, पेटका फूलना, पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडितहोय, वस्ती (मूत्र में जलन होय, नेत्र चलायमानहोय, अथवा नेत्र आँसुओंसे भरे होंय, श्वास लेते ले जाय, तथा श्वास लेते लेते एक नेत्र लालहोजाय, उद्विग्नचित्त होजाय, मुख सूखे, देह पलट जाय, बकवाद करे, संधिके सब बंध शिथिलहोजाँय, इस छिन्नश्वासकरके मनुष्य शीघ्र प्राण करता है ।

३ जो हिचकी बहुत देरमें कंठ हृदयकी संधिसे मन्दमन्द चले उसको क्षुद्रानामहिचकी कहते हैं

४ अन्न और पानीके बहुत सेवन करनेसे वात अकस्मात् कुपितहो ऊर्ध्वगामी होयकर मनुष्यके हिचकी प्रकट करता है ।

५ हिचकी नाभिके पाससे उठ घोर गंभीर शब्दकरे और जिसमें प्यास,ज्वरादि अनेक उपद्रवहों गंभीराहिचकी कहते हैं ।

६ ठहर ठहरके दोदो हिचकी चलें, शिर कंधाको कँपावें उसको यमला हिचकी जाननी ।

७ जो हिचकी मर्मस्थानमें पीडाकरतीहुई और सर्व गात्रको कंपातीहुई सर्वकाल प्रवृत्तहोय, उसको हिक्का कहते हैं ।

विषमाग्नि होती है, पित्तसे तीक्ष्ण अग्नि होती है, कफसे मंदाग्नि होती है और वातपित्तसे भस्म अग्नि होती है ।

अरोचक रोग ।

पञ्चैवारोचका ज्ञेया वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ संनिपातान्मनस्तापाच्-

अर्थ-अरोचक रोग पांचप्रकारका है १ वातारोचक २ पित्तारोचक ३ कफारोचक ४ संनिपातारोचक ५ और मनको दुःख होनेसे जो संताप होतहै उससे (इसप्रकार उत्पन्न होनेवाला) पांचप्रकारका अरोचक (अरुचि) रोग जानना ।

छर्दिरोग ।

-छर्दयः सप्तधा मताः ॥२६॥ त्रिभिर्दोषैः पृथक्तिस्रः कृमिभिः संनिपाततः ॥ घृणया च तथा स्त्रीणां गर्भाधानाच्च जायते ॥२७॥

अर्थ-छर्दि कहिये वमनरोग सात प्रकारका है । जैसे १ वांतकी छर्दि

---

१ कभी कभी अन्नका पचन होता है और कभी कभी नहीं होता, उसको विषमाग्नि जानना, यह वातकी प्रकृतिसे होती है ।

२ भोजनके ऊपर भोजन करनेसे भी सुखकरके अन्नपाक होजाता है सो तीक्ष्ण अग्नि जानना. यह पित्तकी प्रकृतिसे होता है ।

३ थोडा भोजन करनेसेभी अन्नका पाक नहीं होता उसको मंदाग्नि जानना. यह कफकी प्रकृतिसे होता है ।

४ भूख अत्यंत प्रबल लगती है इसकारण वारंवार भोजन करता है तोभी वह अन्न पचन होजाता है परंतु उस अन्नके रससे शरीरमें पुष्टता नहीं आती और शरीर कृश होता है उसको भस्मकाग्नि जानना । अन्य ग्रंथोंमें भस्मक अग्निका तीक्ष्णाग्निमेंही अन्तर्भाव माना है ।

५ वातकी अरुचिसे दाँत खट्टे होंय और मुख कषैला होता है ।

६ पित्तकी अरुचिसे कडुआ, खट्टा, गरम, विरस, दुर्गन्धयुक्त मुख होजाता है ।

७ कफकी अरुचिसे खारा, मीठा, पिच्छल, भारी, शीतल होता है और मुख बंधासरीखा अर्थात् खाय नहीं और आँत कफसे लिप्त होजाय ।

८ संनिपातकी अरुचिसे अन्नमें अरुचि तथा मुखमें अनेक रस मालूम हों ।

९ शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, अहृद्य (अर्थात् मनको बुरी लगे ऐसी वस्तु) अपवित्र वास इनसे प्रगट हुई अरुचिमें मुख स्वाभाविक रहै, अर्थात् वातजादिकोंके सदृश कषैला, खट्टा आदि नहीं होय ।

१० हृदय और पसवाडोंमें पीडा और मुखशोष होवे मस्तक और नाभिमें शूल होय, खाँसी स्वरभेद और सुई चुभनेकीसी पीडा होय, डकारका शब्द प्रबल होय, वमनमें झाग आवें, ठहर ठहरकर वमन होय, तथा थोडी होय, वमनका रंग काला होय, पतली और कषैली होय वमनका वेग बहुत होय परंतु वमन थोडा होय और वेगके प्रभावसे दुःख बहुत होय ये लक्षण वायुकी छर्दीके हैं ।

२ पित्तकी छर्दि ३ कफकी छर्दि ४ कृमियोंके विकारकी छर्दि ५ संनिपातकी छर्दि ६ अमेध्य दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंके दुर्गंधसे तथा मनके तिरस्कार होनेसे होतीहै सातवीं छर्दि स्त्रियोंके रहनेके पश्चात् होती है । इस प्रकारसे सात प्रकारकी छर्दि जानना ।

स्वरभेदरोग ।

स्वरभेदाः षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रयः ॥
मेदसा संनिपातेन क्षयात्षष्ठः प्रकीर्तितः ॥

अर्थ—स्वरभेद (गलेका बैठजाना) रोगके छः प्रकार हैं । जैसे १ वातका स्वरभेद पित्तका स्वरभेद ३ कफका स्वरभेद ४ मेदबढनेका स्वरभेद ५ सन्निपातका स्व

१मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तालुआ, नेत्र इनमें संताप अर्थात् ये तपायमान रहैं,अन्धेरा चक्कर आवे, रोगी पीला, हरा, गरम, कडुआ, धुआँके रंगका और दाहयुक्त पित्तको वमन करे, पित्तकी छर्दीके लक्षण हैं ।

२ तंद्रा, मुखमें मिठास, कफका पडना, संतोष (अन्नमें अरुचि) निद्रा, अरुचि, भारीपना पीडित हो, चिकना, गाढा, मीठा, सफेद कफको वमन करे और जब रद्द करे तब पीडा थोडी रोमांच होय, ये कफकी छर्दीके लक्षण हैं ।

३ कृमिकी छर्दीमें शूल, खाली रद्द ये विशेष होते हैं बहुधा कृमि और हृदयरोगके लक्षण सदृश लक्षण जानने ।

४ शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन लक्षणोंसे प्रवल भई जो वमन सो संनि होती है । रद्द करनेवालेकी वमन खारी, खट्टी, नीली, संघट्ट, (जिसको देशवारे मनुष्य जाडी कहते गरम, लाल, ऐसी होती है ।

५ अमेध्य मांस मछली आदि पदार्थोंके दुर्गंधसे मनको तिरस्कार आके जो वमन होताहै, उसमें दोषका कोपहो उस दोषकी रद्द जाननी । स्त्रियोंके गर्भ रहने पश्चात् जो वमन होताहै, उसके भी लक्षण जानने ।

६ बहुत जोरसे बोलनेसे, विषके खानेसे, ऊँचे स्वरके पाठ करनेसे (अर्थात् वेदादिपाठ करने कंठमें लकडी काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे कोपको प्राप्त हुये जो वात, पित्त, कफ सो कंठमें बहने चार नसें हैं उनमें प्राप्तहो अथवा उनमें वृद्धिको प्राप्तकर स्वरका नाश करै उसको स्वरभेद रोग कहतेहैं ।

७ वायुसे स्वरभेद होय तो रोगीके नेत्र, मुख, मूत्र, और विष्ठा ये काले होंय वह पुरुष टूटा शब्द बोले, अथवा गधाके स्वरप्रमाण कर्कश बोले ।

८ पित्तस्वरभेदवाले मनुष्यके नेत्र, मुख, मूत्र, और विष्ठा ये पीले होते हैं और बोलते समय होता है ।

९ कफके स्वरभेदसे कंठ कफसे रुकारहै, मन्दमन्द तथा थोडा बोले और दिनमें बहुत बोले ।

१० मेदके संबन्धसे कफ अथवा मेदसे गला लिप्त होय, अथवा मेदसे स्वरके मार्ग रुकजानेसे बहुत लगे, गलेके भीतर और मंद बोले ।

११ संनिपातके स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं स्वरभेद असाध्य है ऐसा ऋषि कहते हैं ।

और छठा क्षयरोगका स्वरभेद ऐसे स्वरभेदरोग छःप्रकारका जानना।

तृष्णारोग।

तृष्णा च षड्विधा प्रोक्ता वातात्पित्तात्कफादपि॥
त्रिदोषैरुपसर्गेण क्षयाद्धातोश्च षष्ठिका॥ २९॥

अर्थ–तृष्णारोग छः प्रकारका हैं जैसे १ वाततृष्णा २ पित्ततृष्णा ३ कफतृष्णा ४ त्रिदोषतृष्णा ५ आगंतुक जो शस्त्रादिकों करके क्षत होनेसे होतीहै सो उपसर्गज तृष्णा और जो धातुक्षयसे होतीहै सो ६ धातुक्षयजन्य तृष्णा ऐसे छः प्रकारका तृष्णा (प्यास) रोग है मनुष्योंको जो वारंवार पानी पिनेकी इच्छा होतीहै और पानी पीनेसेभी प्यास जाती नहीं फिर फिर इच्छा होती है उसको तृष्णा कहते है।

मूर्च्छारोग।

मूर्च्छा चतुर्विधा ज्ञेया वातपित्तकफैः पृथक्॥
चतुर्थी संनिपातेन--

---

१ क्षयीके स्वरभेदयाले पुरुषके बोलते समय मुखसे धुआँसा निकले और वाणी क्षय होजाय अर्थात् यथार्थ स्वर नहीं निकले इस स्वरभेदमें जिस समय वाणी हत होजाय, अर्थात् ओजका क्षय होनेसे बोलनेकी सामर्थ्य नहीं हो तब यह असाध्य होताहै आर ओजका क्षय (नाश) नही होय तो साध्यहै।
२ वातकी तृषा (प्यास) में मुख उतर जाय, अथवा दीन होय, कनपटी और मस्तक इन ठिकानेमें नोचनेके समान पीडा होय और जल बहनेवाली नाडियोंका मार्ग रुकजाय, मुखका स्वाद जातारहै और शीतल जलके पीनेसे प्यास बढे। ३ पित्तकी तृषामें मूर्छा, अन्नमें अरुचि, बडबड, दाह, नेत्रोंमें लाली, अत्यंत शोष, शीतपदार्थकी इच्छा, मुखमें कडुआट और संताप ये लक्षण होते हैं। ४ अपने कारणसे कुपित कफकरके जठराग्नि आच्छादित होती है तब अग्निकी गरमी अधोगत जलके बहनेवाली नाडीनको सुखाय कफकी तृषाको प्रगटकरती है। केवल कफसे तृषाका प्रगट होना असंभव है, केवल कफ बढे भयका द्रवीभूतधर्म होनेसे प्यासकर्तृत्व असंभव है। आर वात-पित्तकी तृषा होनेसे होता है सो ग्रंथांतरमें लिखाभी है. इसीसे चरकाचार्यने कफकी तृष्णा नहीं कही सुश्रुतने चिकित्सामें भेद होनेसे कही है। हारीतनेभी सपित्तकफकी तृषा मानी है, केवल कफकी नहीं मानी इस तृषामें निद्रा, भारीपन, मुखमें मिठास ये लक्षण होतेहैं, इस तृषासे पीडित पुरुष अत्यंत सूख जाता है। ५ वात, पित्त, कफ इन तीनोंके तृष्णाके समान जिस तृष्णामें लक्षण होय उसको त्रिदोषज तृष्णा कहते हैं। ६ हीनस्वर, मोह, मनमें ग्लानि होय, मुख दीन होजाय, हृदय, गला और तालु सूखजाय ये तृष्णाके उपद्रव हैं, कि जो मनुष्यको सुखाय डालते हैं आर व्याधिके कारण शरीर कृश होनेसे यह कष्टसाध्य होजाय है वे उपद्रव यह हैं. ज्वर, मोह, क्षय, खाँसी, श्वास, अतिसारादिक। ये रोग जिसके होय उसकी तृष्णा कष्टसाध्य जाननी। ७ रसक्षयसे जो तृष्णा होय उसमें जो लक्षण होते हैं सोही सब क्षयजतृष्णामें होते हैं। तिससे पीडित पुरुष रात्रिदिन वारंवार पानी पीवे परंतु संतोष नहीं होता।

अर्थ–मूर्च्छा चार प्रकारकी है १ वातकी मूर्च्छा २ पित्तकी मूर्च्छा ३ कफकी मूर्च्छा और चौथी सांनिपातकी मूर्च्छा है। इस प्रकार चार प्रकारकी मूर्च्छा जानना।

तहां पित्ततमोगुणसे मोह उत्पन्न होताहै। संज्ञा और चेष्टाके बहनेवाले छिद्रोंके विकारसे आच्छादित होनेसे अकस्मात् शरीरमें तमोगुण बढकर सुखदुःखका ज्ञान जाता रहै और मनुष्य लकडीके समान पृथ्वीपर गिरजावे उसको मूर्च्छा कहते हैं।

भ्रम, निद्रा, तंद्रा, सन्यास रोग।

–तथैकश्च भ्रमः स्मृतः॥ ३० ॥
निद्रा तन्द्रा च संन्यासो ग्लानश्चैकैकशः स्मृतः॥

अर्थ–भ्रम १ निद्रा २ तंद्रा ३ संन्यास ४ ग्लानि ५ ये पांच रोग एक एक प्रकारके हैं। इनके क्रमसे लक्षण कहते हैं। रजोगुण पित्त और वायु इनसे भ्रम उत्पन्न होताहै। तमोगुण और कफ इन दोनोंसे उत्पन्न हो इंद्रिय और मन इनको मोहितकर बाह्य घटपटादि पदार्थोंका ज्ञान न रहे उस अवस्थाको निद्रा कहते हैं। और इन्द्रियोंको मोहित कर के सोवै और कुछ जागता रहनेपर नेत्र खुले मुँदे रहैं उसको तन्द्रा कहते हैं। देह मन इनके व्यापार बंद होकर मरेके समान लकडीसा गिर पडे उसको वाणीसंन्यास कहते हैं। यह एक घोर निद्राकी अवस्था है। ग्लानिके लक्षण इसी खंडके छठे अध्यायके अंतमें कह आये हैं सो जानना।

मदरोग।

मदाः सप्त समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः॥ ३१ ॥

---

१ जो मनुष्य नीले अथवा लाल रंगके आकाशको देखे पीछे मूर्छाको प्राप्त होय और शीघ्र बेहोश हो जाय, देहमें कंप, अंगोंका फूटना हृदयमें पीडा होय, शरीर कृश होजाय, शरीरका रंग काला लाल पडजाय, उसको वातकी मूर्छा जानना।

२ जिसको आकाश लाल, हरा, पीला दीखे पीछे मूर्छा आवै और सावधान होते समय पसीना आवे प्यास होय संताप होय, नेत्र लाल पीले होंय, मल पतला होय, देहका वर्ण पीला होय ये लक्षण पित्तकी मूर्छाके हैं।

३ कफकी मूर्च्छामें आकाशको मेघके समान अथवा अंधकारके समान अथवा बद्दल इनके समान देखकर मूर्च्छागत होय, देरमें सावधान होय, देहपर भारी बोझासा भार मालूम होय अथवा गीला चमडा धारण कियाहुआसा मालूम होय, मुखसे पानी गिरे, रद्द होयगी ऐसा मालूल होय।

४ संनिपातकी मूर्छामें सब दोषोंके लक्षण होतेहैं, इस रोगको दूसरा अपस्मार(मृगी) जानना चाहिये परंतु अपस्मारोंमें दाँतका चबाना मुखसे झाग गिरना, नेत्रोंका हाल औरही प्रकारका होना इत्यादिक लक्षण होतेहैं, सो इस रोगमें नहीं होते, इतनाही भेद है।

५ संन्यास रोगका उपाय जल्दी होवे तो मनुष्य बचताहै नहीं तो मरताहै. उसका उपाय यह है कि, हाथ पैरोंकी उँगलियोंको सुईसे छेदनकरे अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले।

त्रिदोषैरसृजो मद्याद्विषादपि च सप्तमः ॥

अर्थ–मदरोग सात प्रकारका है जैसे १ वातमद २ पित्तमद ३ कफमद ४ त्रिदोषमद ५ रुधिरकुपित होनेसे जो होय और ६ प्रमाणसे अधिक मद्य पीनेसे होय सो तथा ७ बच्छनाग आदि विष भक्षण करनेसे होय सो इस प्रकार सात प्रकारके मदरोग जानने। सुपारी, कोदों-धान्य, धतूरा इत्यादिके भक्षण करनेसे जैसे मतवाला आदमी हो जाता है उसी प्रकारका वातादि दोष दुष्ट होकर मनको विभ्रम करते हैं उसको मद कहते हैं इसमें जिस दोषका अधिक कोप होता है उसी दोषके लक्षण होते हैं। इस रोगवालेको मतवाला कहते हैं।

मदात्ययरोग।

मदात्ययश्चतुर्धा स्याद्वातात्पित्तात्कफादपि ॥ ३२ ॥ त्रिदोषैरपि विज्ञेय एकः परमदस्तथा ॥ पानाजीर्णं तथा चैकं तथैकः पानविभ्रमः ॥३३॥ पानात्ययस्तथा चैकः-

अर्थ–मद्यका प्रमाण इस प्रकार लेना कि प्रातःकाल दांतन आदि शरीरकी शुद्धिके कर्मसे निवटकर ८ तोले मद्य पीवे। दुपहरको चिकने पदार्थ घी मिला गेहूँका चून (मैदाआदि) तथा मांस इत्यादिकोंके साथ पीवे। तथा रात्रिके आरंभमें चौगुनी पीवे परंतु जितना अपनी देहको सहन होवे उतना पीवे बढती न पीवे इस प्रकार सेवन करनेसे वह मद्य रसायनरूप होकर आयुष्यकी तथा शरीरकी वृद्धि करता है तथा बल देता है और अमृतके समान हितकारक होता है। इसमें अंतर पडनेसे अर्थात् जितनी सेवन करते हैं उससे अधिक सेवन करनेसे बुद्धिभ्रंश होवे तथा वह मद्य विषके समान होकर दाहादिक उपद्रवके चिह्न करता है। प्राण व्याकुल होते हैं तथा कहीं कहीं प्राणहानिभी होती है। उसको मदात्यय रोग कहते हैं वह मदात्यय वात[१] पित्त[२] कफ[३] त्रिदोषै[४] इन भेदोंसे चार प्रकारका है। परमद, पानाजीर्ण, पानविभ्रम और पानात्यय ये चार मदात्यय रोगके भेद जाननें। यदि मद्यपीने आदिके गुणागुण अधिके जानने हों तो चरक सुश्रुत आदि बृहद्ग्रन्थोंको देखो।

---

१ हिचकी, श्वास, मस्तकका कंप होना, पसवाडोंमें पीडा, निद्राका नाश और अत्यंत बकवाद ये लक्षण जिसमें होंय उसको वातप्रधान मदात्यय रोग जानना।

२ प्यास, दाह, ज्वर, पँसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम (कुछ कुछ ज्ञान होय) देहका वर्ण हरा होय, इन लक्षणोंसे पित्तप्रधान मदात्यय जानना।

३ वमन (रद्द) अन्नमें अरुचि, खालीरद्द (ओकारी) तन्द्रा, देह गीली भारी और शीतलगे, इन लक्षणोंसे कफप्रधान मदात्यय जानना।

४ जिसमें त्रिदोषमदात्ययके लक्षण मिलते हों उसको संनिपातप्रधान मदात्यय जानना।

दाहरोग।

--दाहाः सप्त मतास्तथा॥रक्तपित्तात्तथा रक्तात्तृष्णायाः पित्ततस्तथा ॥ ३४ ॥ धातुक्षयान्मर्मघाताद्रक्तपूर्णोदरादपि॥

अर्थ–देहमें जो जलन होती है उसको दाह रोग कहते हैं यह सात प्रकारका है १ रक्तपित्तके कुपित होनेसे होय सो २ रुधिरके कोपसे होय सो ३ तृषाके रोकनेसे ४ पित्तके कोपसे ५ रसादिक धातुओंके क्षय करके ६ मर्मस्थलमें चोट लगनेसे जो होय और ७ बडे भारी घोर शस्त्रादिका प्रहार होकर कोठेमें रुधिर जमनेके कारणसे होवे। इस प्रकार दाहरोग सात प्रकारका जानना।

उन्मादरोग।

उन्मादाः षट् समाख्यातास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते ॥
संनिपाताद्विषाज्ज्ञेयः षष्ठो दुःखेन चेतसः ॥ ३५॥

अर्थ–उन्माद रोग छः प्रकारका है जैसे १ वातोन्माद २ पित्तोन्माद ३ कफोन्माद

---

१ जिसमें कुछ लक्षण रक्तके मिलते हों और कुछ पित्तके हों उसको रक्तपित्तज दाह कहते हैं।

२ सर्व देहका रुधिर कुपित होकर अत्यंत दाहकरे और वह रोगी अग्निके समीप रहनेसे जैसा है ऐसा तपे, प्यासयुक्त, ताम्रके रंग सदृश देहका रंग होय और नेत्रभी लाल होंय, तथा मुखसे देहसे तप्तलोहेपर जल डालनेकीसी गंध आवे और अंगमें मानों किसीने अग्नि लगायदीनी है ऐसी होय उसे रुधिरके कोपसे उपजी दाह कहते हैं।

३ प्यासके रोकनेसे जलरूप धातुक्षीण होकर तेज कहिये पित्तकी गरमीको बढावे, तब वह देहके बाहर और भीतर दाहकरे। इस दाहसे रोगी वेसुध होय और गला, तालु, होठ यह सूखें और जीभको बाहर काढदे और काँपे,

४ पित्तसे जो दाह होय उसमें पित्तज्वरकेसे लक्षण होते हैं। उसपर पित्तज्वरकी चिकित्सा चाहिये पित्तज्वरमें और पित्तके दाहमें इतना अन्तर है कि पित्तज्वरमें अग्नि और आमाशयका होना होता है और पित्तके दाहमें नहीं होता है और सब लक्षण एकही हैं।

५ धातुक्षयसे जो दाह होय उसे रोगी मूर्च्छा प्यास इनसे युक्त स्वरभंग तथा चेष्टाहीन हो इस दाहमें पीडित होकर यदि चिकित्सा न करावे तो वह रोगी मरणको प्राप्त होताहै।

६ मर्मस्थान (हृदय-शिर-वस्ति) में चोट लगनेसे होय जो दाह सो असाध्य है।

७ शस्त्र कहिये तल्वार आदिके लगनेसे प्रगट रुधिरसे कोष्ठ कहिये हृदय भरजावे तब अत्यंत दाह प्रगट होता है एवं क्षतजदाहसे कोष्ठ शब्दसे यहांपर हृदय आमाशय आदि स्थान जानना आहार थोडा रह जावे, अनेक प्रकारके शोककर दाह होय और इस दाह करके आभ्यंतर दाह तथा प्यास, मूर्च्छा, और प्रलाप (बकवाद) ये लक्षण होंय।

८ रूखा, थोडा और शीतल अन्न, धातुक्षय और उपवास इन कारणोंसे अत्यंत बढी वायु सो चिंता शोकादि करके युक्त होकर हृदय (मन) को अत्यंत दुष्टकर बुद्धि और स्मृति

४ सैन्निपातोन्माद ५ विषे सेवनका उन्माद ६ धनबंधुनाशजन्य मनको दुःख होनेसे होता है सो शोकजं उन्माद वातादिक दोषोंके वढनेसे अपना २ नित्यका मार्ग छोडकर अन्य मनोवाहिनी नाडियोंमें जायके चित्तको विभ्रम करै हैं इससे इस रोगको उन्माद कहते हैं।

भूतोन्मादरोग।

भूतोन्मादा विंशतिः स्युस्ते देवाद्दानवादपि ॥ गन्धर्वात्किनराद्यक्षात्पितृभ्यो गुरुशापतः ॥ ३६ ॥ प्रेताच्च गुह्यकाद्वृद्धात्सिद्धाद्भूतात्पिशाचतः ॥ जलादिदेवतायाश्च नागाच्च ब्रह्मराक्षसात् ॥ ३७ ॥ राक्षसादपि कूष्माण्डात्कृत्यावेतालयोरपि ॥

अर्थ—भूतोन्माद बीस प्रकारका है उनके नाम कहते हैं जैसे १ देवग्रह कहिये गणमातृका-

---

-इनका शीघ्र नाश करती है हँसनेके कारण विना हँसे. मन्दमुसकान करे,नाचे, विना प्रसंगके गीत गावे और बोले, हाथोंको सर्वत्र चलावे, रोवे और शरीर रूखा तथा कृश और लाल होजाय और आहारका परिपाक भये पर जियादह जोर होय, ये वातउन्मादके लक्षण हैं।

९ अधकची, कडवी, खट्टी, दाह करनेवाली और गरम वस्तुका भोजन करनेसे संचित भया जो पित्त सो तीव्रवेग होकर अजितेंद्री पुरुषके हृदयमें प्रवेश कर पूर्ववत् अति उग्र उन्माद तत्काल उत्पन्न करता है इस उन्मादसे असहनशील, हाथ पैरोंको पटकना, नग्न होजाय, डरपे, भाजने लगे, देह गरम हो जाय, क्रोधकरे, छायामें रहै, शीतल अन्न और शीतल जल इनकी इच्छा, पीला मुख हो जाय यह लक्षण पित्तज उन्मादके हैं। १० मन्द भूखमें पेटभर भोजनकर कुछ परिश्रम न करे ऐसे पुरुषके पित्तयुक्त कफ हृदयमें अत्यन्त वढकर बुद्धि, स्मरण और चित्त इनकी शक्तिका नाश करता है और मोहित कर उन्मादरूप विकारको उत्पन्न करता है उस विकारसे वाणीका व्यापार कहिये बोलना इत्यादि मन्द होय, अरुचि होय, स्त्री प्यारी लगे, एकांत वास करे, निद्रा अत्यन्त आवे वमन होय, मुखसे लार वहै, भोजन करनेके पीछे रोगका जोर हो, नख त्वचा मूत्र नेत्रादिक सफेद होंय यह लक्षण कफके उन्मादके हैं।

---

१ जो उन्माद वातादिक तीनों दोषोंके कारण करके होता है वह संनिपातजन्य उन्माद बहुत भयंकर होता है उसमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं। इसमें विरुद्ध औषधकी विधि वर्जित है यह उन्माद वैद्योंकरके त्याज्य है कारण कि यह असाध्य है। २ विषसे प्रगट उन्मादमें नेत्र लाल होंय, बल, इन्द्रिय और शरीरकी कांति नष्ट होजाय, अतिदीन हो जाय, उसके मुखपर कालोंच आय जाय और संज्ञा जाती रहै। ३ चौरोंने, राजाके मनुष्योंने अथवा शत्रुओंने उसी प्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि किसीने त्रास दिया होय, अथवा धन बन्धुके नाश होनेसे, इस पुरुषका अन्तःकरण अत्यन्त दूखे, अथवा प्यारी स्त्रीसे संभोग करनेकी इच्छावाले पुरुषके मनमें भयंकर विकार उत्पन्न होय, पुरुष गुप्तबातको भी कहने लगे और अनेक प्रकारका बोले, विपरीत ज्ञान होय, गावे, हँसे और रोवे, तथा मूर्ख हो जाय। ये लक्षण शोकज उन्मादके हैं। ४ देवग्रह जो गणमातृकादिक पीडित मनुष्य सदा संतोषयुक्त रहै, पवित्र रहै देहमें दिव्यपुष्पके समान सुगन्ध, नेत्रोंके पलक लगें नहीं,सत्य और संस्कृतका बोलनेवाला हो, तेजस्वी स्थिरदृष्टि, वरका देनेवाला 'तेरा कल्याण हो' ऐसा वर देय और ब्राह्मणसे प्रीति रक्खे।

दिक २ दानव (पापबुद्धि असुर) ३ गन्धर्व (देवताओंके आगे गान करनेवाले) ४ (उन्हीं गन्धर्वोंका भेद है) ५ यक्ष ६ पितर (अग्निष्वात्तादिक) ७ गुरु ८ गुह्यक १० वृद्ध ११ सिद्ध १२ भूत १३ पिशाच १४ जलादिदेवता १५ नाग ब्रह्मराक्षस १७ राक्षस १८ कूष्मांडराक्षस १९ कृत्या २० वेताल इसप्रकार बीस

---

१ पसीनायुक्तदेह, ब्राह्मण, गुरु और देव इनमें दोषारोपण करनेवाला, ठेढी दृष्टिसे देखे निर्भय, वेदविरुद्धमार्गका चलनेवाला और बहुत अन्न जलसे भी जिसके संतोष न होय और ऐसे मनुष्यको दैत्यग्रहपीडित जानना ।

२ गन्धर्वग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्नचित्त, पुलिन और बाग बगीचामें रहनेवाला, अनिन्दित रका करनेवाला, गान, सुगन्ध और पुष्प ये जिसको प्यारे लगें ऐसा होता है । वही पुरुष, सुन्दर बोले, थोडा बोले ।

३ किन्नर ग्रहसे पीडित मनुष्योंके लक्षण गन्धर्वग्रहके सदृशही होते हैं ।

४ यक्षपीडित मनुष्यके नेत्र लाल होते हैं और वह सुंदर बारीक ऐसे रक्त वस्त्रका धारण करे गंभीर, बुद्धिमान्, जलदी चलनेवाला, प्रमाणका बोलनेवाला, सहनशील, तेजस्वी किसको क्या दे बोलनेवाला होता है ।

५ कुशोंके ऊपर प्रेतोंको (पितरोंको) पिंडदेय, चित्तमें भ्रांति रहे और उत्तरीय वस्त्र अपसव्य तर्पण भी करे, मांस खानेकी इच्छा होय, तथा तिल, गुड, खीर इनपर मन चले (इस कहनेका जन यह है कि, जिसकी जिस पदार्थपर इच्छा होय उसको उसी पदार्थकी बली देनेसे उस ग्रह होती है ऐसेही सर्वत्र जानना यह डल्लनका मत है) और वह मनुष्य पितरोंकी भक्ति करे । पितृग्रहपीडित मनुष्यके हैं ।

६ गुरु कहिये ब्राह्मणादिक माता पिता आदि बडोंके अपराध करनेसे जो शाप होता है मनुष्योंको उन्माद उत्पन्न होता है उसके लक्षण प्रेत, गुह्यक, वृद्ध, सिद्ध और भूत इनके सदृशही होते हैं ।

७ पिशाचजुष्टके लक्षण ये हैं कि, जो अपने हाथ ऊपरको करे नंगा होजाय, तेजरहित, बहुत पर्यंत बकनेवाला, जिसके देहमें अपवित्र दुर्गन्ध आवे तथा अतिचंचल कहिये सब अन्नपानमें इच्छा नेवाला, खानेको मिलै तो बहुत भोजन करे, एकांत वनांतरोंमें रहनेवाला, विरुद्ध चेष्टा करनेवाला नकर्ता, डोलनेवाला ऐसा मनुष्य होता है ।

८ जलादि देवता कहिये जलदेवता अप्सरा आदिक और स्थलदेवताभी इनके लक्षण अनुमान समझ लेना ।

९ जो मनुष्य सर्पके समान पृथ्वीमें लोटा करे, अर्थात् छातीके बल चले, तथा सर्पके समान ओष्ठप्रांत (होठों) को चाटा करे, सदा क्रोधी रहै, सहत, गुड, दूध और खीरकी इच्छा रहै उसे ग्रहग्रस्त जानना ।

१० देव, ब्राह्मण, गुरुसे द्वेषकर्ता, वेद और वेदके अंग (शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष, निघण्टु, निरुक्त) का पढामया, शीघ्र पीडाका कर्ता, हिंसा करे नहीं, ये लक्षण ब्रह्मराक्षस मनुष्यके हैं ।

११ राक्षसोंसे पीडित जो उन्मादरोगी वह मांस, रुधिर और नानाप्रकारके मद्य इनमें

देवतादि ग्रहोंके कहे हैं। तिनमें ग्रहका शरीरमें संचार होकर उस ग्रहकीसी चेष्टाके समान मनुष्य चेष्टा करते हैं उसको भूतोन्माद कहते हैं।

अपस्माररोग।

अपस्मारश्चतुर्धा स्यात्समीरात्पित्ततस्तथा ॥ ३८ ॥
श्लेष्मणोपि तृतीयः स्याच्चतुर्थः संनिपाततः ॥

अर्थ–अपस्मार रोग चार प्रकारका है जैसे १ वातापस्मार २ पित्तापस्मार ३ कफाप-स्मार ४ और संनिपातापस्मार इस प्रकारसे अपस्मार (मृगी) रोगको चार प्रका-रका जानना।

आमवातरोग।

चत्वारश्चामवाताःस्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा॥३९॥चतुर्थःसंनिपाताच्च-

अर्थ–आमवात रोग चार प्रकारका है। जैसे १ वातामवात २ पित्तामवात

-रखनेवाला और निर्लज्जा होता है अर्थात् नंगा रहनेसेभी लाज नहीं धरता निर्दय होता है क्रूरता दिखाता है, क्रोधी, बलिष्ठ, रात्रिमें भटकनेवाला और अच्छे कर्मोंसे द्वेषकरनेवाला होता है इसीके सदृश कूष्मांड राक्षस कृत्या और वेताल इनकरके पीडित मनुष्योंके लक्षण अनुमानसे जानलेना।

१ चिंता, शोक, क्रोध, लोभ, मोहादिसे कुपित जो दोष वात, पित्त, कफ सो हृदयमें स्थित जो मनको कहनेवाली नाडी उनमें प्राप्तहो स्मरण (ज्ञान) का नाशकर अपस्मार रोगको प्रगट करते हैं।

२ वातके अपस्मारमें रोगी कांपे दांतोंको चबावे मुखसे लार गेरे और श्वास भरे तथा कर्कश अरुणवर्ण मनुष्योंको देखै अर्थात् कोई नीलवर्णका मनुष्य मेरे पास दौडा आता है ऐसा देखै।

३ पित्तकी मिरगीवालेके झाग, देह, नेत्र और मुख ये पीले होते हैं और वह पीले रुधिरके रंगकीसी सब वस्तु देखे, प्यासयुक्त और गरमीके साथ अग्निसे व्याप्तभया ऐसा सब जगतको देखे और मेरे पास पीले वर्णका पुरुष दौडा आता है ऐसा देखे।

४ कफकी मृगीवालेके झाग, अंग, मुख और नेत्र सफेद होंय, देह शीतल होय, देह तथा देहके रोमांच खडे रहैं, भारी होय और सब पदार्थ सफेद दीखें और सफेद रंगका पुरुष मेरे सामने दौडा आता है ऐसा देखे यह अपस्मार (मिरगी) रोग देरसें छोडे अर्थात् वातपित्तकी मृगी जलदी रोगीको छोड देती है।

५ जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषज अपस्मार जानना यह असाध्य है और जो क्षीण पुरुषके होय वह भी असाध्य है, तथा पुराना पडगया हो वह भी अपस्मार (मिरगी) रोग असाध्य है।

६ अंगोंका टूटना अरुचि, प्यास, आलसक, भारीपना, ज्वर, अन्नका न पचना और देहमें शून्यता हो जाय इस रोगको आमवात कहतेहैं।

७ वातके आमवातमें शूल होता है।

८ पित्तसे जो आमवात हाय उसमें दाह और लालरंग होताहै।

३ कफामवात ४ संनिपातामवात । इन भेदोंसे आमवात रोग चार प्रकारका

शूलरोग ।

शूलान्यष्टौ बुधा जगुः ॥ पृथग्दोषैस्त्रिधाद्वन्द्वभेदेन त्रिविधान्यपि ॥ ४० ॥ आमेन सप्तमं प्रोक्तं संनिपातेन चाष्टमम् ॥

अर्थ—शूलरोग आठ प्रकारका है । १ वातशूल २ पित्तशूल ३ कफशूल ४ वात-पित्तशूल ५ पित्तकफशूल ६ कफवातशूल ७ आमशूल ८ संनिपातशूल इस

---

१ कफसंबंधी आमवातमें देहमें आर्द्रता (गीला) और भारीपन तथा खुजली चलती है । २ [illegible]पसे प्रगट आमवातमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं, यह कष्टसाध्य है । ३ दंड, कसरत, बहुत अतिमैथुन, अत्यंत जागना, बहुत शीतल जल पीना, कांगनी. मूँग, अरहर, कोदों, अत्यंत [illegible] पदार्थके सेवनसे और अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन) लकडी आदिके लगनेसे, कषैला, [illegible] भीजा अन्न जिसमें अंकुर निकस आये हों, विरुद्ध-क्षीर मछली आदि, सूखामांस, सूखाशाक,([illegible]रिया आदि) इनके सेवनसे, मल मूत्र शुक्र और अधोवायु इनके वेगको रोकनेसे, शोकसे, [illegible]सके करनेसे, अत्यंत हँसनेसे, बहुत बोलनेसे कोपको प्राप्त भई जो बात सो बढकर हृदय, [illegible] पीठ, त्रिकस्थान. मूत्रस्थानमें शूलको करे और भोजन पचनेके पीछे प्रदोषकालमें, वर्षा[illegible] शीत कालमें, इन दिनोंमें शूल अत्यंत कोपकरे और वारंवार कोप होय. मल, मूत्रका अवरोध, [illegible] और भेद ये लक्षण वातशूलके हैं. तथा स्वेदन और अभ्यंजन तथा मर्दन इत्यादिकसे और [illegible] गरम अन्नसे यह शूल शांत होता है ।

४ यवक्षार आदि खार, मिरच आदि तीक्ष्ण, और गरम, विदाहकारक वीस और करील आदि [illegible] सिंबी, खल, कुलथीका यूष, कडुआ, खट्टा, सौवीर (मद्यविशेष) सुराविकार, (काँजी इत्यादि [illegible] क्रोधसे, अग्निके समीप रहनेसे, परिश्रमसे, सूर्यकी तीव्र धूपमें डोलनेसे, अति मैथुन करनेसे, विदा[illegible]रक अन्न आदि इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर नाभिस्थानमें शूल उत्पन्न करे वह शूल तृषा, दाह, पीडा, पसीना, मूर्छा, भ्रम शोष इनको करे दुपहरके समय, मध्यरात्रिमें अन्नके विदाह[illegible] शरद्कालमें शूल अधिक होय । शीतकालमें शीतलपदार्थसे और अत्यन्त मधुर (मीठा) शीतल [illegible] यह शूल शांत होय ।

५ जलके समीप रहनेवाले पक्षियोंका मांस, मछली आदिका मांस दही, घृत, मक्खन आदि [illegible] विकार, मांस, ईखका रस, पिसा अन्न, खिचडी, तिल, पूरी कचोडी आदि और कफकारक [illegible] खानेसे कफ कुपित होकर आमाशयमें शूलरोगको प्रगट करे, उसे सूखी रद्द, खांसी, ग्लानि, [illegible] मुखसे लार गिरे, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी हो, ये लक्षण होंय, भोजन करते समय पीडा होय, [illegible]दयके समय, शिशिरऋतुमें और वसंतकालमें शूल बहुत होय ।

६ दाह ज्वर करनेवाला, ऐसा भयंकर शूल होय सो वातपित्तका जानना ।

७ कूख, हृदय, नाभि और पसवाडे इनमें पित्तकफका शूल होता है ।

८ बस्ति (मूत्रस्थान) हृदय, कंठ, पसवाडे इन ठिकाने शूल होय उसे कफवातका शूल जान[illegible]

९ पेटमें गुडगुडाहट होय, उबाकियोंका आना रद्द, देह भारी, मन्दता, अफरा, मुखसे [illegible]स्राव इन लक्षणोंसे तथा कफशूल लक्षणोंके समान ऐसे शूलको आमशूल कहते हैं ।

१० जिसमें तीन (वात, पित्त, कफ) के लक्षण मिलते हों उसको संनिपातका शूल कहते हैं [illegible] बल, और अग्नि जिसके क्षीण होगये हों ऐसा शूलरोग असाध्य जानना ।

आठ प्रकारका शूल रोग है इन आठोंमें बहुधा वायु मुख्य शूलकर्त्ता है ।

परिणामशूलरोग ।

परिणामभवं शूलमष्टधा परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥ मलैयैः शूलसंख्या स्यात्तैरेव परिणामजे ॥ अन्नद्रवभवं शूलं जरत्पित्तभवं तथा ॥ ४२ ॥ एकैकं गणितं सुज्ञैः--

अर्थ-भोजन पचनेपर जो शूल होय उसको परिणामशूल कहते हैं । वह वातादि दोषों करके आठ प्रकारका है उन्हीं दोषों करके यह परिणाम शूल आठ प्रकारका है । अन्नद्रव[1] शूल और जरत्पित्तशूल[2] ये दो शूल एक एक प्रकारके जानने ।

उदावर्तरोग ।

उदावर्तास्त्रयोदश ॥ एकः क्षुधानिग्रहजस्तृष्णारोधाद्द्वितीयकः ॥ ४३ ॥ निद्राघातात्तृतीयः स्याच्चतुर्थः श्वासनिग्रहात् ॥ छर्दिरोधात्पंचमः स्यात्षष्ठः क्षवथुनिग्रहात् ॥ ४४ ॥ जृम्भारोधात्सप्तमः स्यादुद्गारग्रहतोऽष्टमः नवमः स्यादश्रुरोधाद्दशमः शुक्रवारणात् ॥ ४५ ॥ मूत्ररोधान्मलस्यापि रोधाद्वातविनिग्रहात् ॥ उदावर्तास्त्रयश्चैते घोरोपद्रवकारकाः ॥ ४६ ॥

अर्थ-उदावर्त रोग १३ प्रकारका है जैसे १ क्षुधा[3] २ तृषा[4] ३ निद्रा[5] ४ श्वास[6] ५ वमन[7]

---

१ अन्न पचगयाहोय अथवा पचरहा होय अथवा अजीर्ण हो, अर्थात् सर्वदा जो शूल प्रगट होय, वह पथ्यापथ्यके योगसे अथवा भोजन करनेसे नियमसे शांत नहीं होय उसको अन्नद्रव शूल कहते हैं, यह शूल त्रिदोषविकृतिसे एक प्रकारका है. परंतु असाध्य नहीं है क्योंकि इसकी चिकित्सा कही है ।

२ अम्लपित्तसे जो शूल होता है, उसको जरत्पित्त शूल कहते हैं ।

३ क्षुधा (भूक) रोकनेसे तंद्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टिका मंद होना. ये रोग प्रगट होंय ।

४ प्यासके रोकनेसे कंठ और मुखका सूखना, कानोंसे मंद सुनना और हृदयमें पीडा ये लक्षण होंय ।

५ आतीहुई निद्राको रोकनेसे जंभाई, अंगोंका टूटना नेत्र और मस्तकका अत्यंत जडता होना और तंद्रा होय ।

६ जो मनुष्य हारगयाँहो और वह श्वासको रोके उसके हृदयरोग, मोह और वायुगोला इतने रोग होंय ।

७ जो मनुष्य आतीहुई वमनके वेगको रोके उसके अंगोंमें खुजली चले, देहमें चकत्ते होजाँय, अरुचि मुखपर झाँईसी पडे, सूजन, पांडुरोग, ज्वर, कुष्ठ, खालीरद, विसर्प ये रोग होंय ।

६ छींके ७ जंभाई ८ डकार ९ नेत्रसंबंधी जल १० शुक्रधातु ११ मूत्र १२ मल १३ वायु इन तेरह प्रकारके वेगोंको रोकनेसे तेरह प्रकारका उदावर्त उत्पन्न होता है मूत्र, मल और वायु इन तीनोंके रोकनेसे जो उदावर्त हो वह घोर उपद्रव करताहै।

आनाहरोग।

आनाहो द्विविधः प्रोक्त एकः पक्वाशयोद्भवः ॥
आमाशयोद्भवश्चान्यः प्रत्यानाहः स कथ्यते ॥ ४७॥

अर्थ—आनाहरोग दो प्रकारका है। एक पक्वाशयमें होनेसे पेटको फुलाता है दूसरा आमाशयमें होता है जिसको प्रत्यानाह कहतेहैं। इसप्रकार दो प्रकारका आनाह रोग अफरा रोग जानना।

---

१ आतीहुई छींकके रोकनेसे मन्या (कहिये नाडके पिछाडीकी नस) का स्तंभ कहिये जकडजाना, शिरमें शूलका चलना, अधोमुख टेढा होजाय, अर्धांगवात और इंद्री दुर्बल होजाय इतने होते हैं।

२ आतीहुई जंभाईको रोकनेसे मन्या कहिये नाडके पीछेकी नस और गला इनका स्तंभ और जन्य विकार मस्तकमें होय उसी प्रकार नेत्ररोग, नासारोग, मुखरोग और कर्णरोग ये तीव्र होतेहैं।

३ आतीहुई डकारके वेगको रोकनेसे वातजन्य इतने रोग होते हैं, कंठ और मुख भारी मालूम होय, अत्यंत नोचनेकीसी पीडा होय. अव्यक्त भाषण (अर्थात् जो समझनेमें आवे) होय।

४ आनंदसे अथवा शोकसे प्रगट अश्रुपातोंको जो मनुष्य नहीं त्यागकरे उसके इतने रोग प्रगट हों मस्तक भारी रहै, नेत्ररोग और पीनस ये प्रबल हों।

५ मैथुन करते समय वीर्य निकलतेको जो मनुष्य रोके, अथवा और प्रकारसे शुक्रके वेगको रोके उसके मूत्राशयमें सूजन होय, तथा गुदामें और अंडकोशोंमें पीडा होय, मूत्र बडे कष्टसे उतरे, शुक्राश्मरी होय, शुक्रका स्राव होय, ऐसे अनेक प्रकारके रोग होंय।

६ मूत्रका वेग रोकनेसे बस्ति (मूत्राशय) और शिश्नइंद्रीमें पीडा होय, मूत्र कष्टसे उतरे, मस्तकमें पीडा, पीडासे शरीर सीधा होय नहीं, पेटमें अफरा होय।

७ मलका वेग रोकनेसे गुडगुडाहट होय, शूल होय गुदामें कतरनेकीसी पीडा होय, मल उतरे नहीं डकार आवे, अथवा मल मुखके द्वारा निकले।

८ अधोवायुके रोकनेसे अधोवायु, मल, मूत्र ये बन्द होंय, पेट फूलजाय; अनायास श्रम और बादीसे पीडा होय, तथा अन्य वातकृत (तोद शूलादिक) पीडा होय।

९ आम अथवा पुरीष क्रमसे संचित होकर, विगुणवायुसे वारंवार निबद्ध होकर अपने. मार्गसे अच्छी तरह प्रवृत्त होय नहीं, इस विकारको आनाह कहते हैं।

१० पक्वाशयमें आनाहरोग होनेसे अध्मान, वातरोधादि आलसरोगोक्त लक्षण होतेहैं।

११ आमसे प्रगट आनाहरोगमें प्यास, पीनस, मस्तकमें दाह, आमाशयमें शूल, देहमें भारीपन हृदयका जकडजाना, शूल, मूर्च्छा, डकार, कमर, पीठ, मल, मूत्र, इनका रुकना, शूल, मूर्च्छा विष्ठा मिलीहुई रद और श्वास ये लक्षण होते हैं।

उरोग्रह और हृदयरोग।

उरोग्रहस्तथाचैको हृद्रोगाः पंच कीर्तिताः ॥ वातादयस्त्रयः प्रोक्ताश्चतुर्थः संनिपाततः ॥ ४८॥ पंचमः कृमिसंजातः-

अर्थ–छातीमें खीचनेके समान पीडा होवे उसे उरोग्रह कहते हैं उसे एक प्रकारका जानना । तथा हृदयरोग पांच प्रकारका है । जैसे १ वातहृद्रोग २ पित्तहृद्रोग ३ कफहृद्रोग ४ संनिपातज हृद्रोग ५ तथा कृमिरोगजन्य हृद्रोग इसप्रकार हृद्रोग पांच प्रकारका है।

उदररोग।

-तथाष्टावुदराणिच॥वातात्पित्तात्कफात्त्रीणित्रिदोषेभ्योजलादपि ॥ ४९ ॥ प्लीह्नःक्षताद्बद्धगुदादष्टमं परिकीर्तितम् ॥

अर्थ–उदररोग आठ प्रकारका है १ वातोदर २ पित्तोदर ३ कफोदर ४ त्रिदो-

---

१ उरोग्रह यह हृद्रोगका एक भेद है । उसका विशेष लक्षण यह है कि रक्त, मांस प्लीहा और यकृत् इनकी उरोग्रह होतेही समय वृद्धि होती है ऐसा जानना और वातादिदोष कुपितहोकर रसधातु दूषित करके हृदयमें जाकर हृदयको पीडा करे।

२ वातज हृदयरोगमें हृदयऐंचने सरीखा सुईसे टोंचने सरीखा, फोडने सरीखा, दो टुकडा करनेके समान, मथनेके समान कुलाडीसे फाडनेके समान पीडा होती है ।

३ पित्तके हृदयरोगमें प्यास, किंचित् दाह, मोह और हृदयकी धुआं निकलतासा मालूम होय, मूर्च्छा पसीना और मुखका सूखना, ये लक्षण होते हैं।

४ कफके हृदयरोगमें भारीपना, कफका गिरना, अरुचि, हृदय जकड जाय, मंदाग्नि, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं।

५ जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलतेहों उसे त्रिदोषका हृद्रोग जानना। इसमें कुछभी अपथ्य होनेसे गांठ उत्पन्न होती है उस गांठसे कृमि पैदा होतीहैं ऐसा चरकमें लिखाहै ।

६ तीव्र पीडा करके तथा नोचनेकीसी पीडाकरके तथा खुजली करके युक्त ऐसा हृद्रोग कृमिजन्य जानना, उत्क्लेद, (ओकारी आनेके समान मालूम हो) थूकना, तोद (सुईचुभानेकीसीपीडा) शूल, हृल्लास, अंधेरा आवे, अरुचि, नेत्र काले पडजांय और मुखशोष यह लक्षण कृमिज हृदयरोगमें होते हैं।

७ अफरा, चलनेकी शक्तिका नाश, दुर्बलता मंदाग्नि, सूजन, अंगग्लानि, वायुका तथा मलका रुकना दाह, तंद्रा ये लक्षण सब उदरोंमें होते हैं।

८ वातोदरमें हाथ, पैर नाभि और कूख इनमें सूजन होय, संधियोंका टूटना तथा कूख, पसवाडे, पेट कमर इनमें पीडा, सूखी खांसी, अंगोंका टूटना, कमरसे नीचे भागमें भारीपना, मलका संग्रह होना त्वचा, नख, नेत्रादिका काला लालहोना, पेट अकस्मात् (निमित्तके विना) बडा होजाय. छोटी सुई चुभानेकीसी तथा नोचनेकीसी पीडा होय पेटमें चारों तरफ बारीक काली शिरा (नाडियों)से व्याप्त होय,-

घोदर ५ जलोदर ६ प्लीहोदर ७ क्षतोदर ८ बद्धगुदोदर इसप्रकार आठप्रकारके उदररोग जानने

गुल्मरोग ।

गुल्मास्त्वष्टौ समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः॥९०॥द्वन्द्वभेदा-त्रयः प्रोक्ताः सप्तमः सन्निपाततः ॥ रक्तस्त्वष्टम आख्यातः-

---

–चुटकी मारनेसे फूली पखालके समान शब्द होय, इस उदरमें वायु चारोंतरफ डोलकर शूल करता तथा गूँगता है।

९ पित्तके उदररोगमें ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, मुखमें कडुआस, भ्रम, अतिसार, त्वचा, नख, नेत्र इनमें पीलापना, पेट हरा होय, पीलीताँबेके रंगकी नाडियोंसे उदर व्याप्त हो, पसीना आवे गरमीसे लगे देहमें दाह होय, आंतोंसे धुआँसा निकलता दीखे, हाथके स्पर्श करनेसे नरम मालूम हो, शीघ्र पाक होय अर्थात् जलोदरत्वको प्राप्त होय और उसमें घोर पीडा होय ।

१० कफके उदररोगमें हाथ, पैर आदि अंगोंमें शून्यता हो और जकड जांय, सूजन होय अंग भारी होजाय, निद्रा आवै, वमन होयगी ऐसा मालुम होय, अरुचि होय, खांसी होय त्वचा नख नेत्रादिक सफेद हों, पेट निश्चल, चिकना, सफेद, नाडियोंसे व्याप्तहो इसकी वृद्धि बहुत कालमें होय पेट करडा और शीतल मालुम होय, तथा भारी और स्थिर होय ।

११ खोटे आचरणवाली स्त्री जिस पुरुषको नख, केश (बार) मल, मूत्र और आर्तव (स्त्रीके दर्शका रुधिर) मिला अन्न पान देय, अथवा जिसका शत्रु विषदेवे, अथवा दुष्टांबु (जहरमिलाई वा छली तिनका पत्ता आदि औटाहुआ ऐसा जल) और दूषीविष (मन्दविष) इनके सेवन करनेसे रुधिर और वातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर अत्यंत भयंकर त्रिदोषात्मक उदररोग उत्पन्न करते हैं वे शीतकालमें अथवा पवन चलते समय, अथवा जिस दिन वर्षाका झड लगे उस दिन विशेष करके कोपको प्राप्त होते हैं। और दाह होय, वह रोगी निरन्तर विषके संयोगसे मूर्छित होय देह पीलावर्ण तथा कृश होय और परिश्रम करनेसे शोष होय, इसी सन्निपातोदरको दूष्योदर भी कहते हैं।

---

१ जिसने स्नेह घृत तैलादि पान कियाहोय, अथवा अनुवासन बस्ति की हो, वमन कियाहो, अथवा दस्त कियेहों, अथवा निरूह बस्ति कीहो, ऐसा पुरुष शीतल जल पीवे तब उसकी जलवहनेवाली नसोंके मार्ग तत्काल दुष्ट होते हैं। वे उदक बहनेवाले स्रोत (मार्ग) स्नेहसे उपलिप्त (चीकने) होनेसे उदरको उत्पन्न करते हैं. वह जलोदर होता है. उसमें चिकनापन दीखै, ऊँचा होय, नाभीके पास बहुतऊँचा होय, चारों ओर तनासा मालूम होय, पानकी पोट भरीसी होय, जैसी पानीसे भरी पखालमें जल हिलता है उसी प्रकार हिले, गुडगुड शब्द करे, काँपे, इसको जलोदर, अर्थात् जलंधर भी कहते हैं।

२ विदाही (बंशकरीरादि) अर्थात् दाह करनेवाली और अभिष्यंदि (दध्यादि) अर्थात् छिद्रों रोकनेवाले ऐसे अन्न निरन्तर सेवन करनेवाले मनुष्यके अत्यंत दुष्टभए जे रुधिर और कफ (छिद्र) बढकर प्लीह (तापातिल्ली) को बढाते हैं इस उदरको प्लीहोत्थ उदर कहते हैं। यह वांईतरफ बढता है इस अवस्थामें रोगी बहुत दुःख पाता है देहमें मंद ज्वर होय, मंदाग्नि होय तथा कफपित्तोदरके लक्षण इसमें मिलतेहों, बल क्षीण होय और अत्यंत पीला वर्ण होजाय।

अर्थ-गुल्म (गोलेका) रोग आठ प्रकारका है जैसे १ वातगोला २ पित्तगोला ३ कफगुल्म ४ वातपित्तगुल्म ५ पित्तकफगुल्म ६ कफवातगुल्म ७ संनिपातगुल्म ८ रक्तगुल्म इसप्रकार आठ प्रकारका गुल्मरोग जानना ।

---

३ काँटा–धूल आदि–अन्नके साथ मिलकर पेटमें चला जाय, अर्थात् पक्वाशयमें विलोम (टेढा तिरछा) चलाजाय तब आँतोंको काटे और सीधा जायतो नहीं काटे, अथवा जँभाई, अतिअशन करनेसे अर्थात् रोकनेसे आँत फटजायँ । उन फटे आँतोंसे गलित पानीके समान स्राव गुदाके मार्ग होकर झरे, नाभिके नीचेका भाग बढे, नोचनेकीसी तथा भेद (चीरने) कीसी पिडासे अत्यंत व्यथित होय, इस क्षतोदरको ग्रथांतरमें परिस्राविउदर कहते हैं और कहीं छिद्रोदर कहते हैं ऐसा यह क्षतोदर है ।

४ जिस पुरुषकी आँत उपलेपी अर्थात् गाढेअन्न (शाकादिक) करके अथवा बाल तथा बारीक पत्थरके टुकडे करके बद्ध होजाय, उस पुरुषका दोषयुक्त मल धीरे धीरे आँतडीकी नलीमें होकर जैसे बुहारीसे झारा तृण धूर आदि क्रमसे बैठता है उसी प्रकार यही बढता है । और वह मल बडे-कष्टसे गुदाद्वारा थोडा थोडा निकलता है । जब मलका निकसना बंद होजाय, तब मल दोषों-करके गुदासे ऊपर आता है, इसीसे उदर बढता है. अर्थात् हृदय और नाभिके मध्य अन्नरक-स्थानकी वृद्धि हो इसीसे इस उदरको बद्धगुदोदर कहते हैं । अथवा गुदाके ऊपर आँतोंको बद्ध होनेसे बद्धगुद कहते हैं ।

---

१ जो गुल्म कभी नाभि, कभी बस्ति, कभी पसवाडेमें चलाजाय, तथा कभी लंबा, कभी मोटा गोल अथवा छोटा होय, तथा उसमें कभी थोडी, कभी बहुत पीडा होय तोद भेद (सुई चुभने कीसी पीडा) होय, अथवा अनेक प्रकारकी पीडा होय मलकी और अधोवायुकी अच्छी रीतिसे प्रवृत्ति होय नहीं, गला और मुख सूखे शरीरका वर्ण नीला अथवा लाल होय, शीतज्वर, हृदय, कूख, पसवाडे कंधा और मस्तक इनमें पीडा होय । जो गोला जीर्ण होनेपर अधिक कोप करे और भोजन करनेके पिछाडी नरम होजाय, वह गोला बादीसे प्रगट होता है । उसमें रूखा, कषैला कडुआ, तीखा पदार्थ खानेसे सुख नहीं होता ।

२ ज्वर, प्यास, मुख और अंगोंमें ललाई, अन्न पचनेके समय अत्यंत शूल होय, पसीना आवे, जलन होय, फोडाके समान स्पर्श न सहजाय, ये पित्तगुल्मके लक्षण हैं ।

३ देहका गीलापना, शीतज्वर, शरीरकी ग्लानि, सूखी रद्द, (उबाकी) खांसी, अरुची, भारीपन, शीतका लगना, थोडी पीडा होय, गुल्म (गोला) कठिन होय और ऊँचा होय ये सब कफात्मक गुल्मके लक्षण हैं ।

४ जिस गुल्ममें वात और पित्त इन दोनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको वातपित्तक गुल्म जानना ।

५ जिस गुल्ममें पित्त और कफ इन दोनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको पित्तकफका गुल्म जानना

६ जिस गुल्ममें कफ और वात इन दोनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसे कफवातका गुल्म जानना ।

७ भारी पीडा करनेवाला, दाह करके व्याप्त, पत्थरके समान कठिन, तथा ऊँचा और शीघ्र दाह करके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इनका नाश करनेवाला, ऐसे त्रिदोषज गुल्मके असाध्य जानना ।

मूत्राघातरोग ।

--मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ ५१ ॥ वातकुण्डलिकापूर्वं वाताष्ठीला ततःपरम्॥वातबस्तिस्तृतीयःस्यान्मूत्रातीतश्चतुर्थकः ॥५२॥ पंचमं मूत्रजठरं षष्ठो मूत्रक्षयः स्मृतः ॥ मूत्रोत्सर्गःसप्तमःस्यान्मूत्रग्रन्थिस्तथाष्टमः ॥५३॥ मूत्रशुक्रंतुनवमं विड्घातोदशमः स्मृतः॥ मूत्रसादश्चोष्णवातो बस्तिकुण्डलिकातथा॥५४॥ त्रयोऽप्येतेमूत्रघाताः पृथग्घोराःप्रकीर्तिताः ॥

अर्थ--मूत्राघातरोग १३ प्रकारका है। जैसे १ वातकुंडलिका २ वाताष्ठील ३ [वा]तबस्ती ४ मूत्रातीत ५ मूत्रजठर ७ मूत्रक्षय ७ मूत्रोत्सर्ग ८ मूत्रग्रंथी ९ मूत्र[शुक्र]

---

८ नई प्रसूतभई स्त्रीके अपथ्य सेवन करनेसे अथवा अपक्व गर्भपात होनेसे अथवा ऋ[तु]कालके समय अपथ्य भोजन करनेसे वायु कुपित होकर उस स्त्रीके रुधिर (जो ऋतुसमय निकले) को लेकर गुल्म करता है वो गुल्म पीडायुक्त व दाहयुक्त होता है । यह गुल्म बहुत देरमें गोल [गोल] हिले, अवयव कहिये हाथ पैरके साथ नहीं हिले, शूलयुक्त होय गर्भके समान सब लक्षण मि[ले] (अर्थात् मुखसे पानी छूटे, मुख पीला पडजाय, स्तनका अग्रभाग काला होजाय और दोह[द] लक्षण सब मिले ये लक्षण व्याधिके प्रभावसे होते हैं) यह रक्तजगुल्म स्त्रियोंके होता है. दश [म]हीना व्यतीत होजाय तब इस रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

---

१ मूत्रके वेग रोकनेसे कुपित भये दोषोंसे वातकुंडलिकादिक तेरह प्रकारके मूत्राघात होते हैं ।

२ रूखे पदार्थ खानेसे अथवा मल मूत्रादिवेगोंके धारण करनेसे कुपित भई जो वायु सो [बस्ति] (मूत्राशय) में प्राप्त हो पीडा करे और मूत्रसे मिलकर मूत्रके वेगको विगुण (उलटा) [कर] वहां आप कुंडलके आकार (गोलाकार) मूत्राशयमें विचरे तब मनुष्य उस वातसे पीडित मूत्रको वारंवार थोडा २ पीडाके साथ त्यागकरे । इस दारुण व्याधिको वातकुंडलिका कहते हैं।

३ वस्ति और गुदा इनमें वह वायु अफरा करे, तथा गुदाकी वायुको रोककर चंचल [और] उन्नत (ऊँची) ऐसी अष्ठीला (पत्थरकी पिण्डीके सदृश) को प्रगटकरे, यह मूत्रके मार्गको [रोक]नेवाली और भयंकर पीडा करनेवाली है । उसको वाताष्ठीला कहते हैं ।

४ जो मनुष्य अड (जिद्द) से मूत्रबाधाको रोकता है उसको वस्ति (मूत्राशय) के मुखको बन्द कर देता है तब उसका मूत्र बंद होजाय और वह वायु वस्तिमें और कूखमें पीडा [करे] उस व्याधिको वातबस्ति कहते हैं, यह बडे कष्टसे साध्य होतीहै ।

५ मूत्रको बहुत देर रोकनेसे पीछे वह जलदी नहीं उतरे और मूतते समय धीरे धीरे उतरे [उस] रोगको मूत्रातीत कहते हैं ।

६ मूत्रके वेगको रोकनेसे मूत्रवेगधारणजनित और उदावर्तका कारणभूत ऐसा अपान[वायु]

१० विड्घात मूत्रसाद १२ उष्णवात १३ बस्तिकुंडलिका ऐसे तेरह प्रकारके मूत्राघात जानने तिनमें मूत्रसाद उष्णवात वस्ति ये तीन बडे भारी प्राण संकट करने वाले हैं। पीडा थोडी होकर मूत्रका रुकना अधिक होवे उस व्याधिको मूत्राघात कहते हैं। और मूत्रकृच्छ्रमें मूत्रका रुकना अल्प होकर पीडा अत्यंत होती है इतना मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्रमें भेद है।

मूत्रकृच्छ्र।

मूत्रकृच्छ्राणि चाष्टौ स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ६६ ॥ संनि-

—कुपित होनेसे पेट बहुत फूल जाय और नाभिके नीचे तीव्र वेदना संयुक्त अफरा करे, अधोबस्तिका रोध करनेवाला ऐसे इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं।

७ रूखा अथवा श्रांत (थक गया) देह जिसका ऐसे पुरुषके बस्तिमूत्राशयमें रहे जो पित्त और वायु सो मूत्रका क्षय करे और पीडा तथा दाह होता है. उसको मूत्रक्षय कहते हैं।

८ प्रवृत्त भया मूत्र बस्तिमें अथवा शिश्न (लिंग) में अथवा शिश्नके अग्रभागमें अटक जाय और बलसे मूत्रको करै भी तो बादीसे बस्तिको फाडकर जो मूत्र निकले वह मन्द मन्द थोडा पीडाके साथ अथवा पीडारहित रुधिर सहित निकले ऐसी विगुण वायुसे उत्पन्न हुई इस व्याधिको मूत्रोत्सर्ग कहते हैं।

९ बस्तिके मुखमें गोल स्थिर छोटीसी गाँठ अकस्मात् होय, उसमें पथरीके समान पीडा होय इस रोगको मूत्रग्रंथि कहते हैं।

१० मूत्रबाधाको रोकके जो पुरुष स्त्रीसंग करे उसका वायु शुक्रको उडाय स्थानसे भ्रष्ट करै, तब मूतनेके पहिले अथवा मूतनेके पीछे शुक्र गिरे और उसका वर्ण राख मिले पानीके समान होय, उसको मूत्रशुक्र कहते हैं।

---

१ रूक्ष और दुर्बल पुरुषके शकृत् (मल) जब वायुकरके उदावर्तको प्राप्त हो तब वह मलमूत्रके मार्गमें आवे उस समय मनुष्य मूतने लगे तो बडे कष्टसे मूत्र उतरे और उसके मूत्रमें विष्ठाकीसी दुर्गन्ध आवे. उसको विड्घात कहते हैं।

२ पित्त अथवा कफ वा दोनों वायुकरके बिगडे हुए होंय तब मनुष्य पीला, लाल, सफेद, गाढा ऐसा कष्टसे मूते और मूतनेके समय दाह होय जब वह मूत्र पृथ्वीमें सूख जाय तब गोरोचन, शंखका चूर्ण ऐसा वर्ण होय अथवा सर्व वर्णका होय, इस रोगको मूत्रसाद कहते हैं।

३ व्यायाम, दंड, कसरत, अतिमार्गका चलना और धूपमें डोलना इन कारणोंसे कुपित भया जो पित्त सो बस्तिमें प्राप्त होय वायुसे मिल बस्ति, अंडकोश और गुदा इनमें दाह करे और हल्दीके समान अथवा कुछ रक्तसे युक्त वा लाल ऐसा मूत्र वारंवार कष्टसे होय, उसको उष्णवात रोग कहते हैं।

४ जल्दी जल्दी चलनेसे, लंघन करनेसे, परिश्रमसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे, पीडासे बस्ति अपने स्थानको छोड ऊपर जाय मोटी होकर गर्भके समान कठिन रहै, उससे शूल, कंप और दाह ये होंय मूतकी एकएक बूंद गिरे। यदि बस्ति जोरसे पीडित होय तो बडी धार पडे बस्तिमें सूजन होय, पेटमें पीडा होय इस रोगको बस्तिकुंडलिका कहते हैं।

पाताच्चतुर्थं स्याच्छुक्रकृच्छ्रंतु पञ्चमम् ॥ विट्कृच्छ्रं षष्ठमाख्यातं घातकृच्छ्रं च सप्तमम् ॥५६॥ अष्टमं चाश्मरीकृच्छ्रं-

अर्थ–मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकारका है । जैसे १ वातमूत्रकृच्छ्र २ पित्तमूत्रकृच्छ्र ३ कफमूत्रकृच्छ्र ४ संनिपातमूत्रकृच्छ्र ५ शुक्रमूत्रकृच्छ्र ६ विड्मूत्रकृच्छ्र ७ घातुकृच्छ्र और ८ अश्मरीकृच्छ्र । इसप्रकार मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकारका है । मूत्रकृच्छ्र कहिये वातादि दोष अपने २ कारण करके पृथक् २ अथवा मिलकर कुपित हो मूत्राशयमें प्रवेश कर मूत्रमार्गको पीडितकरें । उससमय वह मनुष्य अत्यंत क्लेश करके मूते उस रोगको मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ।

अश्मरीरोग ।

चतुर्धा चाश्मरी मता ॥ वातात्पित्तात्कफाच्छुक्रात्-

अर्थ–अश्मरी (पथरी) रोग चार प्रकारका है । जैसे १ वाताश्मरी २ पित्ताश्मरी ३ कफाश्मरी और ४ शुक्राश्मरी । इसप्रकार चार प्रकारकी पथरी जाननी ।

---

१ वातके मूत्रकृच्छ्रमें वंक्षण (जांघ और ऊरू इनकी संधि) मूत्राशय और इंद्री इनमें पीडा होय और मूत्र वारंवार थोडा उतरे ।

२ पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रमें पीला कुछ लाल, पीडायुक्त, अग्निके समान वारंवार कष्टसे मूत्र उतरे ।

३ कफके मूत्रकृच्छ्रमें लिंग और मूत्राशय भारी हो, तथा सूजन होय और मूत्र चिकना होय ।

४ संनिपातके मूत्रकृच्छ्रमें सर्व लक्षण होते हैं. यह मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य है ।

५ दोषोंके योगमें शुक्र (वीर्य) दुष्ट होकर मूत्रमार्गमें गमन करे, तब उस मनुष्यके मूत्राशय और लिंग इनमें शूल होय और मूतते समय मूत्रके संग वीर्य पतन होय ।

६ मल (विष्ठा) के अवरोध होनेसे वायु विगुण (उलटा) होकर अफरा, वात, शूल और मूत्ररोध करे तब मूत्रकृच्छ्र प्रगट होय ।

७ मूत्र बहनेवाले स्रोत (मार्ग) शल्य (तीर आदि) से विंधजाय; अथवा पीडित होय तो उस घातुसे भयंकर मूत्रकृच्छ्र होता है, इसके लक्षण वातमूत्रकृच्छ्रके समान होते हैं ।

८ पथरीके निदानसे जो मूत्रकृच्छ्र होय उसको पथरीका मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ।

९ वायुकी पथरीसे रोगी अत्यन्त पीडा करके व्याप्त होय, दांतोंको चबावे, कांपे, लिंगको हाथसे रगडे, नाभिको रगडे और रातदिन दुःखसे रोवे और मूत्र आनेके समय पीडा होनेके कारण अधोवायुका परित्याग करे, सूत्र वारंवार टपक टपकके गिरे, उसकी पथरीका रंग नीला और रूखा होय उसके ऊपर कांटे होंय ।

१० पित्तकी पथरीसे रोगीके बस्तिमें दाह होय और खारसे जैसा दाह होय, ऐसी वेदना होय, बस्तिके ऊपर हाथ धरनेसे गरम मालूम होय और भिलाएकी मींगीके समान होय, लाल, पीली, काली होय ।

११ कफकी पथरीसे बस्तिमें नोचनेकीसी पीडा होय शीतलपन होय और पथरी बडी मुर्गीके

वायु कुपित हो बस्तिमें जायके मूत्र, शुक्र, धातु, पित्त, कफ इनको सुखायके उसीके मुखमें क्रम करके पाषाणके गोलेके समान गाँठ उत्पन्न करे इसरोगको पथरी कहते हैं। जैसे गौके पित्तेमें क्रमसे गोलोचन होता है उसी प्रकार पथरी होती है। इसमें बस्तिका फूलना, तथा बस्ति, शिश्न (लिंग) और अंडकोश इनमें पीडा तथा मूत्रकृच्छ्र, अरुचि इत्यादिक उपद्रव होते हैं। उस पथरीका पाक होकर वालूके समान मूत्रमार्गमें होकर गिरे उसको शर्कराश्मरी कहते हैं।

प्रमेहरोग।

तथामेहाश्चविंशतिः ॥ ५७ ॥ इक्षुमेहः सुरामेहःपिष्टमेहश्च सान्द्रकः ॥ शुक्रमेहोदकाख्यौच लालामेहश्चशीतकः॥५८॥ सिकताह्वःशनैर्मेहो दशैतेकफसंभवाः ॥ मंजिष्ठाख्योहरिद्राह्वोनीलमेहश्चरक्तकः ॥५९॥कृष्णमेहः क्षारमेहःषडेतेपित्तसंभवाः॥ हस्तिमेहो वसामेहो मज्जमेहो मधुप्रभः ॥६०॥ चत्वारो वातजा मेहा इति मेहाश्च विंशतिः ॥

अर्थ–प्रमेहरोग वीस प्रकारका है। जैसे १ इक्षुप्रमेह, २ सुरामेह[२], ३ पिष्टमेह[३], ४ सांद्रमेह[४] ५ शुक्रमेह[५] ६ उदकमेह[६], ७ लालामेह[७], ८ शीतमेह ९ सिकतामेह और १० शनैर्मेह

—अंडके समान, स्वच्छ और मद्य (दारू) के रंगकीसी अर्थात् कुछ पीलीसी होय। यह कफकी पथरी बहुधा बालकोंके होती है।

१२ शुक्राश्मरी शुक्र (वीर्य) के रोकनेसे होती है। यह पथरी बडे मनुष्योंकेही होती है। मैथुन करनेके समय अपनेस्थानसे वीर्य चलायमान होगयाहो उस समय मैथुन न करे तब शुक्र (वीर्य) बाहर नहीं निकले भीतरही रहै, तब वायु उस शुक्रको उठाकर सुखादेता है. उसीको शुक्रजा अश्मरी कहते हैं। इसकरके अंडकोषोंमें सूजन, वलीमें पीडा और मूत्रकृच्छ्रता होती है। इस शुक्राश्मरीकी आदिमें लिंग और अंडकोष, पेडू इनमें पीडा होती है वीर्यके नाश होनेके कारण पथरीकी नांई शर्करा उत्पन्न होती है।

---

१ इक्षुप्रमेहसे ईखके रसके समान अत्यंत मीठा मूत्र होय।

२ सुराप्रमेहसे दारूके समान ऊपर निर्मल और नीचे गाढा मूते।

३ पिष्टप्रमेहसे पिसे चावलोंके पानीके समान सफेद और बहुतसा मूते तथा मूतते समय रोमांच होंय।

४ सांद्रप्रमेहसे, रात्रिमें पात्रमें धरनेसे जैसा मूत्र होवे ऐसा मूत्र होय।

५ शुक्रप्रमेहसे शुक्र (वीर्य) के समान अथवा शुक्र मिला होय।

६ उदकप्रमेह करके स्वच्छ बहुत सफेद, शीतल, बंधरहित, पानीके समान कुछ गाढा और चिकना मूत होता है।

७ लालाप्रमेहसे लारके समान तारयुक्त और चिकना मूत्र होता है।

ये दश प्रमेह कफजन्य हैं अर्थात् कफसे प्रगट होते हैं १ मंजिष्टमेह २ हरिद्रामेह ३ नील मेह ४ रक्तमेह ५ कृष्णमेह और ६ क्षारमेह ये छः प्रमेह पित्तजन्य हैं। १ हस्तिमेह १ वसा मेह ३ मज्जामेह ४ मधुमेह । ये चारप्रकारके प्रमेह वातजन्य हैं अर्थात् वातसे प्रगट हैं इसप्रकार सब मिलकर बीसप्रकारके प्रमेह जानना ।

सोमरोग ।

सोमरोगस्तथा चैकः--

अर्थ—सब देहमें उदक क्षोभित होकर योनिमार्गसे सफेद रंगका गिरता है उसको सोम कहते हैं वह एकही प्रकारका है।

प्रमेहपिटिका ।

प्रमेहपिटिका दश ॥ ६१ ॥ शराविका कच्छपिका पुत्रिणी विनतालजी ॥ मसूरिकासर्षपिकाजालिनीचविदारिका ॥ ६२ ॥ विद्रधिश्चदशैताःस्युःपिटिका मेहसंभवाः ॥

अर्थ—प्रमेहकी पिटिका (फुन्सी) दशप्रकारकी हैं। जैसे १ शराविका, २ क

---

८ शीतप्रमेहसे मधुर तथा अत्यंत शीतल ऐसा बारंबार बहुत मूते ।
९ सिकताप्रमेहसे मूत्रके कण और वालूरेतके समान मलके रवा गिरें ।
१० शनैर्मेहसे धीरे धीरे और मंद मंद मूते ।

---

१ मांजिष्ठप्रमेहसे आम दुर्गंध और मजीठके समान मूते ।
२ हारिद्रप्रमेहसे तीक्ष्ण, हल्दीके समान और दाहयुक्त मूते ।
३ नीलप्रमेहसे नीलि रंगका अर्थात् पपैया पक्षीके पंखके सदृश मूते ।
४ रक्तप्रमेहसे दुर्गंधयुक्त गरम खारी और रुधिरके समान लाल मूत्र करै ।
५ कृष्ण (काले) प्रमेहसे स्याहीके समान काला मूते ।
६ क्षारप्रमेहसे खारी जलके समान गंध, वर्ण, रस और स्पर्श ऐसा मूत्र होता है ।
७ हस्तिप्रमेहसे मस्तहाथीके समान निरंतर वेगरहित जिसमें तार निकलें और ठहरठहरके मूते ।
८ वसाप्रमेहसे वसा (चर्बी) युक्त अथवा वसाके समान मूते ।
९ मज्जाप्रमेहसे मज्जाके समान अथवा मज्जा मिला बारंबार मूते ।
१० मधुप्रमेहसे कषेला, मीठा और चिकना ऐसा मूते ।
११ शराविका पिटिका ऊपरके भागमें ऊँची और मध्यमें बैठीसी होय जैसे कि मिट्टीका होता है।
१२ कच्छपिका पिटिका कछुआकी पीठके समान कुछ दाहयुक्त होय है ।

पिका, ३ पुत्रिणी, ४ विनेता, ५ अलजी, ६ मसूरिका, ७ सर्षपिका, ८ जलिनी, ९ विदारिका और १० विद्रधिका । इसप्रकार दशप्रकारकी पिटिका प्रमेहकी उपेक्षा करनेसे होती हैं । यह संधिमें मर्मस्थलमें तथा जिस जगह मांस विशेष होता है उस जगह तथा देहमें मेदादुष्ट होनेसे उत्पन्न होती हैं ।

मेदोरोग।

मेदोदोषस्तथाचैकः--

अर्थ-मेदरोग एक प्रकारका है । उसके लक्षण ये हैं कि, कफको उत्पन्न करनेवाला आहार, मधुरान्न, मधुररस, स्नेहान्न कहिये घृतपक्क गोधूमपिष्टादिक लड्डू शकल्पारे इत्यादिकोंके सेवन करनेसे मेद बढता है उससे अन्यधातु, अस्थ्यादि शुक्रांत, उनका पोषण नहीं होता है किंतु मेद बढता है जिससे मनुष्य सर्व कर्ममें अशक्त होजाता है । और अल्पश्वास, तृषा, मोह, निद्रा, श्वासावरोध, सोतेमें अत्यंत ठोरना, शरीरमें ग्लानि, छींक, पसीनोंकी दुर्गंधि, अल्पप्राण और अल्पमैथुन इत्यादिक उपद्रव होते हैं । मेद सर्व प्राणीमात्रोंके प्रायःकरके रहती है । अतएव जिस मनुष्यको मेद रोग होता है उसको बहुधा पेटकी अधिक वृद्धि होती है । और उस मेद करके मार्गरुद्ध होनेपर पवन कोष्ठाग्निमें विशेष करके संचार करने लगताहै और अग्निको प्रदीप्त करके आहारको शोषण करलेता है । इसीसे भोजन कियाहुआ पदार्थ तत्काल जीर्ण होकर दूसरे भोजनकी इच्छा होती है । कदाचित् भोजनका समय टलजावे तो घोर विकार प्रमेह-पिडिका, ज्वर, भगंदर, विद्रधि, और वातरोग इनमेंसे कोईसा एक रोग होता है । और विशेष-कर अग्नि और वायु ये उपद्रवकारी होनेसे मेदोरोगीके शरीरको जलाते हैं । इस विषयमें दृष्टांत है कि जैसे वनसंबंधी अग्नि वायुकी सहायतासे वनको जलाता है इसप्रकार जलावे तथा वह मेद अत्यंत कुपित होनेसे एकाएकी वातादिदोष कुपित हो घोर उपद्रव करके मनुष्यको शीघ्र मारते हैं । उस मेदके योगसे शरीर अत्यंत मोटा होनेसे मनुष्यका उदर, स्तन, और कूले

---

१ पुत्रिणी पिटिका यह बीचमें बडी फुन्सी होय. उसके चारों ओर छोटी छोटी फुन्सियां और होंय उसको पुत्रिणी कहते हैं ।

२ विनता फुन्सी पीठमें अथवा पेटमें होती है । इसकी पीडा बहुत होय, ठंढी होय तथा बडी और नीले रंगकी होती है ।

३ अलजी पिटिका लाल, काली, बारीक फोडों करके व्याप्त और भयंकर होती है ।

४ मसूरिका पिटिका मसूरकी दालके समान बडी होती है ।

५ सर्षपिका पिटिका सफेद सरसोंके समान बडी होती है ।

६ जालिनी पिटिका तीव्र दाहकरके संयुक्त और मांसके जालसे व्याप्त होती है ।

७ विदारिका पिटिका विदारीकंदके समान गोल और करडी होती है ।

८ विद्रधिका पिटिका विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होती है ।

ये चलते समय थलर २ हिलते हैं तथा विसर्प, भगंदर, ज्वर, अतिसार, प्रमेह, ब... श्लीपद इत्यादि उपद्रव होते हैं। इसप्रकार मेदरोगके लक्षण जानने।

शोथरोग।

शोथरोगा नव स्मृताः॥६३॥दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि॥

अर्थ–शोथरोग नौ प्रकारका है १ वातशोथ २ पित्तशोथ ३ कफशोथ ४ वातपित्त... ५ पित्तकफशोथ ६ कफवातशोथ ७ त्रिदोषकी शोथ ८ अभिघातशोथ और ९ विषशोथ इसप्रकार शोथ रोग नौप्रकारका है। इसको लोकमें सूजन कहते हैं। स्वकारणसे ... कुपित होकर उसीप्रकार दुष्ट हुआ रक्त पित्त और कफ इनको बाहरकी शिराओंमें ... फिर वह वायु उस रक्तपित्त और कफकरके रुद्धगतिहो त्वचा और मांस इनके आश्रि... उसे कहिये सूजन उसको अकस्मात् उत्पन्नकरे उस रोगको सूजन कहते हैं।

---

१ वादीसे सूजन चंचल, त्वचा पतली हो जाय कठोर कठोर हो, लाल, काली, तथा लचा... पड जाय, भिन्न भिन्न वेदना होय, अथवा रोमांच और पीडा हो। कदाचित् निमित्तके विना ... जाय, उस सूजनके दाबनेसे तत्क्षण ऊपरको उठ आवे, दिनमें जोर बहुत करे।

२ पित्तकी सूजन नरम नरम, कुछ दुर्गंधयुक्त, काली, पीली और लाल।

३ कफकी सूजन भारी, स्थिर और पीली होती है इसके योगसे अन्नद्वेष, लारका गिरना, ... वमन, मंदाग्नि ये लक्षण होयँ, तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और नाश बहुत कालमें होय। इसको ... नेसे ऊपरको नहीं उठे, रात्रिमें इसकी प्रबलता होती है।

४ वात, पित्त इन दोनोंके लक्षण जब सूजनमें हों उसको वातपित्तकी सूजन कहते हैं।

५ पित्त और कफ इनके लक्षण जिस सूजनमें मिलते हों उसको पित्तकफकी सूजन जानना।

६ कफ और वात इन दोनोंके लक्षण जिस सूजनमें मिलें उसको कफ और वातकी ... जानना।

७ सन्निपातके सूजनमें वात, पित्त और कफ इन तीनोंकेभी लक्षण होतेहैं।

८ अभिघातज सूजन काष्ठादिककी चोट लगनेसे, शस्त्रादिकसे छेदन होनेसे, पत्थर आदिसे ... अथवा घावके होनेसे, लकडीआदिके प्रहारसे, शीतल पवन लगनेसे, समुद्रकी पवन लगनेसे, भि... तेल लगजानेसे और कौंचकी फलीका स्पर्श होनेसे जो सूजन होय सो चारोंतरफ फैल जाय ... अत्यंत दाह होय, उसका रंग लाल होय और विशेष करके इसमें पित्तके लक्षण होते हैं।

९ विषवाले प्राणियोंके अंगपर चलनेसे अथवा मूतनेसे, अथवा निर्विष (विषरहित मनुष्यादि) प्राणीके दाढ, दांत, नख लगनेसे, अथवा सविष प्राणियोंके विष्ठा, मूत्र, शुक्र इनसे भरा, अथवा ... वस्त्र अंगमें लगनेसे, अथवा विषवृक्षकी हवाके लगनेसे, अथवा संयोगविष अंगमें लगनेसे जो ... उत्पन्न होय सो विषज कहलाती है। वो सूजन नरम, चंचल, भीतर प्रवेश करनेवाली जल्दी प्राप्त ... वाली, दाह और पीडा करनेवाली होती है।

वृद्धिरोग ।

वृद्धयः सप्त गदिता वातात्पित्तात्कफेन च ॥६४॥
रक्तेन मेदसा मूत्रादन्त्रवृद्धिश्च सप्तमा ॥

अर्थ--वृषण जिससे बडे होवें उस रोगको वृद्धि कहते हैं । वह रोग सातप्रकारका है जैसे १ वातवृद्धि २ पित्तवृद्धि ३ कफवृद्धि ४ रक्तवृद्धि ५ मेदोवृद्धि ६ मूत्रवृद्धि होय उसके होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मस्तपना ये लक्षण होंय । दाह होय, हाथ लगानेसे दूखै, इसीसे नेत्र लाल होय, उसमें अत्यंत दाह तथा पाक होय । और ७ अन्त्रवृद्धि । इस प्रकार वृद्धिरोग सातप्रकारका है । वृद्धिरोग अर्थात् वायु अपने स्वकारण करके कुपित हो सूजन और शूलको करती नीचेके भागमें जायकर वंक्षणद्वारा अंडकोशोंमें जायके वृषणवाहिनी नाडियोंको दूषितकर कफ जैसे वृषणकी गोलाके ऊपरकी त्वचाको वढाय देवै उसको वृद्धिका रोग कहते हैं ।

---

१ वातसे भरी मस्तक जैसी और हाथके लगनेसे मालूम होय ऐसी मालूम होय रूक्ष और विनाकारण दूखने लगे उसे वातकी अंडवृद्धि जानना ।

२ जिसमें पित्तके लक्षण मिलते हों उस अंडवृद्धिको पित्तकी अंडवृद्धि जानना । इससे अंड पके गूलरके समान होता है तथा दाह, गरमी और पाक होतीहै ।

३ कफकी अंडवृद्धिमें अंड शीतल, भारी, चिकना (तथा खुजलीयुक्त) कठिन और थोडीपीडायुक्त होताहै ।

४ काले फोडोंसे व्याप्त तथा जिसमें पित्तवृद्धिके लक्षण मिलते हों उस अंडवृद्धिको रक्तज अंडवृद्धि कहतेहैं ।

५ मेदसे जो अंडवृद्धि होती है वह कफकी वृद्धिके समान मृदु, नरम तथा ताल्फलके समान अर्थात् पीले रंगकी होय ।

६ मूत्रको रोकनेका जिसको अभ्यास होय उसके यह रोग मूत्रवृद्धि होय है, वह पुरुष जब चले तब पानीसे भरे पखालके समान डबक डबक हिलें तथा बजें और उसमें पीडा थोडी हो: हाथके छूनेसे नरम मालूम होय, उसमें मूत्रकृच्छ्रकीसी पीडा होय, फल और कोश दोनों इधर उधर चलायमान होयँ ।

७ वातकोपकारक आहारके सेवनसे, शीतल जलमें प्रवेश करके स्नान करनेसे उपस्थित मूत्रादिकके वेगोंके धारण करनेसे, अप्राप्तवेग (अर्थात् करनेकी इच्छा न होय) उसको बलपूर्वक करनेसे, भारी बोझके उठानेसे, अतिमार्गके चलनेसे, अंगोंकी विषम चेष्टा (अर्थात् टेढा तिरछा अंगकरके गमनादिक करना) बलवानूसें वैर करना कठिन धनुषका ईचना इत्यादि ऐसेही और कारणोंसे कुपितभई जो वायु सो छोटी आंतोंके अवयवोंके एक देशको बिगाडकर अर्थात् उनका संकोचकर अपने रहनेके स्थानसे उसको नीचे लेजाय तब वंक्षण संधिमें स्थित होकर उस स्थानमें गांठके समान सूजनको प्रगट करे उसकी उपेक्षा करनेसे (अर्थात् औषध न करनेसे) तथा अंडकोशोंके दाबनेसे जो वायु कों कों शब्द करै, तथा हाथके दाबनेसे वायु ऊपरको चढ जाय और छोडनेसे फिर नीचे उतरकर अंडोंको फुलायदे यह रोग अन्त्रवृद्धि कहलाता है ।

अंडवृद्धिरोग ।

अण्डवृद्धिस्तथाचैकः-

अर्थ-अंडकोशकी वृद्धिको (पोतेछिटकना) तथा कुरंड कहते हैं । यह एक प्रकारका है। इसके लक्षण बहुधा अंत्रवृद्धिके समान होते हैं ।

गंडमाला गलगण्ड और अपचीरोग ।

--तथैका गण्डमालिका ॥ ६५ ॥ गण्डापचीतिचैका स्यात्-

अर्थ-गंडमाला, गंड (गलगंड) और अपची ये तीनरोग एक एक प्रकारके हैं। इनके लक्षण नीचे लिखे सो देखना ।

ग्रंथीरोग ।

-ग्रन्थयो नवधा मताः ॥ त्रिभिर्दोषैस्त्रयो रक्ताच्छिराभिर्मेदसोव्रणात् ॥ ६६ ॥ अस्थ्नामांसेन नवमः-

अर्थ-ग्रंथिरोग नौ प्रकारका है । जैसे १ वातग्रंथी २ पित्तग्रंथी ३ कफ

---

१ मेद और कफसे प्रगट भया कूख, कंधा, नाडके पिछाडी मन्या नाडीमें, गलेमें और वंक्षण (जंघासंधि) इन ठिकानोंमें छोटे बेरके बराबर, बडे बेरके समान, आमलेके समान, ऐसी अनेक प्रकारकी गंड होती हैं, वे बहुत दिनमें हौले हौले पके, उनको गंडमाला कहते हैं ।

२ मन्या, नाडी, ठोडी, इन ठिकानेपर अंडके बराबर ग्रंथिरूप सूजन लंबायमान होतीहै और सूजन बडी छोटीभी रहती है, उसको गंड अथवा गलगंड कहते हैं, वह गलगंडरोग गलेमें जो होता है वायु और इनके दुष्ट होनेसे होता है और मन्यानाडीमें जो होता है सो मेदके दुष्ट होनेसे होता है ।

३ गंडमालाकी गांठ पके नहीं, अथवा पाक होनेसे स्रवे, कोई नष्ट हो जाय, दूसरी नवीन होय ऐसी पीडा बहुत दिनरहे उसको अपची कहते हैं ।

४ बादीकी गांठ तनेके समान करडी मालूम हो, छीलनेके समान मालूम हो सूई चुभनेकीसी पीडा होय, मानो गिरा चाहती है, मथनेकीसी पीडा होय, फोरनेकीसी पीडा होय, कालावर्ण हो बस्तिके पिछाडी होय और उसके फूटनेसे स्वच्छ रुधिर निकले ।

५ पित्तकी गांठ आगसे भरेके समान अत्यंत दाहकरे, आतोंसे धुआँ निकलतासा मालूम हो मानों सिंगी लगायके कोई चूसे है. खार जगानेके सदृश पका मालूम हो, अग्निके समान जलीती हो उस गांठका रंग लाल अथवा किंचित् पीला होय और फूटनेसे उसमेंसे दुष्ट रुधिर बहुत निकले ।

६ कफकी ग्रंथि (गांठ) शीतल, प्रकृतिसमान वर्ण (किंचित् विवर्ण) थोडी पीडा हो, खुजली चले, पत्थरके समान कठिन-बडी होय और चिरकालमें बढनेवाली होय, फूटनेसे सफेद राध निकले ।

४ रक्तग्रंथी ५ शिराग्रंथी ६ मेदोग्रंथी ७ व्रणग्रंथी ८ अस्थिग्रंथी और ९ मांसग्रंथी। इसप्रकार ग्रंथिरोग नौ प्रकारका है। ग्रंथी कहिये गाँठ। वातादिदोष मांस और रक्त ये दुष्ट होकर मेद और शिरा इनको दूषितकर गौल और ऊंची तथा गांठके समान सूजन उत्पन्न करे उसको ग्रंथी अर्थात् गांठ कहते हैं।

अर्बुदरोग।

-षड्विधं स्यात्तथार्बुदम् ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तान्मांसादपि च मे-

अर्थ–अर्बुदरोग छः प्रकारका है। जैसे १ वातार्बुद २ पित्तार्बुद, ३ कफार्बुद, ४ रक्तार्बुद, ५ मांसार्बुद. और ६ मेदकी अर्बुद ऐसे अर्बुद रोगको छःप्रकारका जानना।

---

१ रक्त दुष्ट होकर उससे जो ग्रन्थि उत्पन्न होती है उसको रक्तग्रन्थि कहते हैं. इसके लक्षण पित्त-ग्रन्थिके सदृश जानना।

२ निर्बल पुरुष शरीरको परिश्रमकारक कर्म करे तब वायु कुपित होकर शिराके जालको संकुचित कर, एकत्रकर और सुखायकर ऊँची गाँठ शीघ्र प्रगट करती है।

३ मेदकी ग्रंथि शरीरके बढनेसे बढे और शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होजाय, चिकनी बडी खुजली युक्त पीडारहित होय और जब वह फूटजाय, तब उसमेंसे तिलकल्कके समान अथवा घृतके समान मेदा निकले।

४ क्षतादिकोंकरके व्रण होकर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको व्रणग्रन्थि कहते हैं।

५ वातादिक दोष कुपितहोकर हड्डियोंको दूषित करें तिनसे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको अस्थि ग्रंथि कहते हैं।

६ मांसके दुष्ट होनेपर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको मांसग्रन्थि कहते हैं और व्रणग्रन्थि तथा अस्थिग्रंथियोंमें जिस दोषका कोप हो उसीके लक्षणसे जानलेना।

७ शरीरके किसी भागमें दुष्ट भये जो दोष सो मांस रुधिरको दुष्ट कर गोल, स्थिर मन्द पीडायुक्त, पूर्वोक्त ग्रंथियोंसे बडी, बडी जिसकी जड होय, बहुकालमें बढनेवाली तथा पकनेवाली ऐसी मांसकी गाँठ उठे उसको वैद्य अर्बुद कहते हैं।

८ इन वातादि तीन दोषोंके अर्बुदोंके लक्षण सर्वदा ग्रंथिके समान होते हैं।

९ दुष्टभये जो दोष सो नसोंमें रहा जो रुधिर उसको संकोचकर तथा पीडितकर मांसके गोलेको प्रगट करे वह यत्किंचित् पकनेवाला तथा कुछ स्रावयुक्त हो और मांसांकुरसे व्याप्त और शीघ्र बढनेवाला ऐसा होता है, उसमेंसे रुधिर बहाकरै. यह रक्तार्बुद असाध्य है। वह रक्तार्बुदपीडित रोगी रक्तक्षयके उप-द्रवों करके पीडित होता है इससे उसका वर्ण पीला होजाता है। ये रक्तार्बुदके लक्षण हैं।

१० मुक्का आदिके लगनेसे अंगमें पीडा होय, उस पीडासे दुष्ट भया जो मांस सो सूजन उत्पन्न करे। उस सूजनमें पीडा नहीं होय और वह चिकनी, देहकेवर्ण होय, पके नहीं, पत्थरके समान कठिन, हले नहीं, ऐसी होती है। जिस मनुष्यका मास बिगडजाय अथवा जो नित्य मांसको खाया करे, उसके यह अर्बुद रोग होता है। यह मांसार्बुद असाध्य कहागया है। कोई मासार्बुदका भेद सोरली कहते हैं।

श्लीपदरोग ।

दसः ॥ ६७ ॥ श्लीपदंचत्रिधाप्रोक्तं वातात्पित्तात्कफादपि ॥

अर्थ–श्लीपद रोग तीनप्रकारका है । वातका श्लीपद २ पित्तका श्लीपद ३ कफ श्लीपद ऐसे तीन प्रकार जानने ।

विद्रधिरोग ।

विद्रधिःषड्विधःख्यातोवातपित्तकफैस्त्रयः ॥ ६८ ॥
रक्तात्क्षतात्त्रिदोषैश्च--

अर्थ–विद्रधिरोग छःप्रकारका है । जैसे १ वातकी विद्रधि २ पित्तकी विद्रधि कफकी विद्रधि ४ रुधिरजन्यविद्रधि ५ क्षतजन्यविद्रधि और ६ संनिपातकी वि इस प्रकार छः भेद विद्रधिके हैं ।

---

१ जो सूजन प्रथम वंक्षण (जांघकी संधि) में उत्पन्न होकर धीरे धीरे पैरोंमें आवै और उसके ज्वरभी होय तो इस रोगको श्लीपद कहते हैं । यह श्लीपद हाथ, कान, नेत्र, शिश्न, होठ, नाक, मेंभी होती है ऐसा किसीका मत है ।

२ वातकी श्लीपद काली, रूखी, फटी और जिसमें पीडा होय, विनाकारणके दूखे और उसमें बहुत होय ।

३ पित्तकी श्लीपद पीलेरंगकी दाह और ज्वरयुक्त होय, तथा नरम होय ।

४ कफकी श्लीपदका वर्ण चिकना सफेद, पीला, भारी और कठिन होता है ।

५ अत्यंत बढे तथा अस्थि (हड्डी) का आश्रयकरके रहनेवाले वातादिदोष त्वचा, रुधिर, और मेद इनको दुष्टकर धीरेमें भयंकर शोथ उत्पन्नकरें, उसकी जड हड्डीपर्यंत पहुँच जाय । उ कालमें अत्यंत पीडाकारक तथा गोल अथवा लंबा जो शोथ (सूजन) होय, उसको विद्रधि कहते

६ जो विद्रधि काली, लाल, विषम कहिये कदाचित् छोटी कदाचित् मोटी हो, अत्यंत वे युक्त और उसका प्रगट होना तथा पाक नाना प्रकारका होय, उसको वातविद्रधि कहते हैं ।

७ पित्तकी विद्रधि पके गूलरके समान होय अथवा कालावर्ण होय, ज्वर, दाह करनेवाली प्रगट और पाक शीघ्र होय ।

८ कफकी विद्रधि मिट्टीके शरावसदृश वडी होय पीलावर्ण, शीतल, चिकनी, अल्पपीडा होय, उत्पत्ति और पाक देरमें होती है ।

९काले फोडोंसे व्याप्त, श्यामवर्ण, दाह, पीडा आर ज्वर ये उसमें तीव्र होयँ, तथा पित्तकी वि लक्षणकरके युक्त होय, उसको रक्तविद्रधि जानना ।

१० लकडी, पत्थर, ढेला आदिका अभिघात (चोट लगना पिचजाना इत्यादि) होनेसे अ त्वार, तीर, बरछी इत्यादिक लगनेसे घाव होजानेसे, अपथ्य करनेवाले पुरुषके कुपित वायुकरके (फैली) क्षतोष्मा (घावकी गरमी) और रुधिर सहित पित्तको कोपकरे उस पुरुषके ज्वर, प्यास दाह होय और उसमें पित्तकी विद्रधिकेलक्षण मिलतेहों । इसको क्षतज विद्रधिजानना । इसकोही अ विद्रधि कहतेहैं ।

११ संनिपातज विद्रधिमें अनेकप्रकारकी पीडा (जैसे तोद, दाह,खुजली आदि) तथा अने

व्रणरोग।

व्रणाःपंचदशोदिताः ॥ तेषांचतुर्धाभेदःस्यादागंतुर्देहजस्तथा ॥६९॥ शुद्धोदुष्टश्चविज्ञेयस्तत्संख्याकथ्यतेपृथक् ॥वातव्रणः पित्तजश्चकफजोरक्तजोव्रणः ॥७०॥ वातपित्तभवश्चान्योवात-श्लेष्मभवस्तथा ॥ तथापित्तकफाभ्यांच संनिपातेन चाष्टमः ॥७१॥ नवमो वातरक्तेन दशमो रक्तपित्ततः ॥श्लेष्मरक्तभव-श्चान्योवात्तपितासृगुद्भवः ॥७२॥वातश्लेष्मासृगुत्पन्नः पित्तश्ले-ष्मास्रसंभवः ॥ संनिपातासृगुद्भूत इतिपंचदशव्रणाः ॥७३॥

अर्थ–व्रण (घाव) पंद्रह प्रकारके हैं। उनके चार भेद हैं। जैसे १ आगंतुक व्रण २ देहजव्रग ३ शुद्धव्रण ४ दुष्टव्रण। इसप्रकार चार प्रकारके व्रग जानने। उनकी संख्या कहते हैं। जैसे १ वातव्रण २ पित्तव्रग ३ कफव्रण ४ रक्तजव्रण ५ वातपित्तव्रण ६ वातकफव्रण ७ *पित्तकफव्रण ८ संनिपातव्रण ९ वातरक्तव्रण १० रक्तपित्तव्रण

–रका स्राव (जैसे पतला, पीला सफेद स्रावहोय, घंटाल कहिये नीचे स्थूल होय और ऊपर पतरीहो अर्थात् अग्रभाग अति ऊँचाहोय) छोटी, बडी, कदाचित् पके कदाचित् नहीं पके ऐसी होय।

---

१ अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्रोंके अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्रकारकी आकृतिवाले व्रग होते हैं उनको आगंतुकव्रण कहतेहैं।

२ वात, पित्त, कफ ये दोष दुष्ट होकर उनसे व्रण होता है उसको देहज व्रग कहतेहैं।

३ जो व्रण जीभके नीचे भागके समान अत्यंत नरमहोय, स्वच्छ, चिकना,थोडीपीडायुक्त भले प्रकार का होय, दोष रक्तादि स्रावरहित होय उसको शुद्धव्रण जानना।

४ जिसमेंसे दुर्गंधयुक्त राध आर सडाभया रुधिर बहै, जो ऊपर ऊँचा तथा भीतरसे पोलाहो बहुत दिन रहनेवाला होय उसको दुष्टव्रण कहते हैं वह शुद्धलिंगके विपरीत होताहै।

५ वादीसे प्रगट व्रगमें जिकडना, तथा हाथके छूनेसे कठिन मालूम होय, उसमेंसे थोडा स्राव होय, तथा पीडा बहुत होय, तथा सुईके चुभानेकीसी पीडाहोय और उसका रंग काला होय।

६ प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सडना, चिरासा होय, वास आवे, स्रावहो ये पित्तव्रणके लक्षणहैं।

७ कफका स्राव अत्यंत गाढा, भारी, चिकना, निश्चल, मंदपीडा, स्रवनेवाला और बहुत कालमें पके।

८ जो रक्तके कोपसे होय वह रक्तव्रण। उसमेंसे रुधिर स्रवे।

९ वात और पित्त इसके लक्षण जिस व्रणमें होंय, उसे वातपित्तव्रण जानना।

१० वायु और कफके लक्षण जिस व्रणमें हों उसे वातकफजव्रण जानना।

* इसी प्रकारसे पित्तकफव्रण, संनिपातव्रण और वातरक्तव्रण जानने।

११ कफरक्तव्रण १२ वातपित्त और रक्तजन्यव्रग १३ वातकफ और रुधिर जन्यव्रण पित्तकफरुधिरजन्यव्रण १५ संनिपात और रुधिरजन्यव्रग । इस प्रकार पंद्रह प्रकारके जानने ।

आगंतुकव्रणरोग ।

सद्योव्रणस्त्वष्टधास्यादवक्लृप्तविलम्बितौ ॥
छिन्नभिन्नप्रचलिता घृष्टविद्धनिपातिताः ॥७४ ॥

अर्थ—सद्योव्रण (आगंतुक) आठ प्रकारका है। जैसे १ अवक्लृप्त २ विलंबित, ३ ४ भिन्न ५ प्रचलित ६ घृष्ट ७ विद्ध और ८ निपातित । इसप्रकार आगंतुकव्रण आठ रके हैं ।

कोष्ठरोग ।

कोष्ठभेदोद्विधाप्रोक्तच्छिन्नान्त्रो निःसृतान्त्रकः ॥

अर्थ—कोष्ठभेद दो प्रकारका है जैसे १ छिन्नांत्रक २ निःसृतांत्रक है ।

---

१ अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्रकारकी वाले व्रण होते हैं. उनको आगंतुक व्रण कहते हैं ।

२ जिस व्रणके भीतर कतरनीसे कतरनेके सदृश पीडा होय, उसको अवक्लृप्त व्रण कहते हैं

३ जिस व्रणका मांस लटकता है उसको विलंबित व्रण कहते हैं ।

४ जो व्रण तिरछा, सरल (सीधा) अथवा लंबा होय, उसको छिन्नव्रण कहते हैं ।

५ बर्छी, भाला, वाण, तल्वारके अग्रभाग विषाण (दाँत सींग) इनसे आशय (कोष्ठ) थोडासा रुधिर स्रवे (निकले) उसको भिन्नव्रण कहते हैं ।

६ जो अंग हाडसहित प्रहार कहिये मुद्गर आदिकी चोट अथवा दबना किंवार आदि पिचजाय, तथा मज्जा, रुधिर करके युक्त होय (घाव न हो) उसको प्रचलित व्रण कहते हैं, पिचित व्रणभी कहते हैं ।

७ कठिन वस्त्र आदिके घर्षण (घिसने) से, चोटके लगनेसे, जिस अंगके ऊपरकी त्वचा तथा आगके समान गरम रुधिर चुवाय उसको घृष्टव्रण कहते हैं।

८ बारीक अग्रभागवाले (सुई आदि) शस्त्रसे आशय बिना जे अंग हैं उनमें वेध होने (कहिये उनमेंसे वह शस्त्र न निकला होय) निर्गत (कहिये शस्त्र निकल गया) हो उसको कहते हैं ।

९ जिसमें अंग अतिच्छिन्न तथा अतिभिन्न न भया हो और छिन्नभिन्न इन दोनोंके लक्षण मिलते हों, तथा व्रण तिरछा बांका होय, उसको निपातितव्रण कहते हैं. इसको क्षतमणभी

१० शस्त्रादिकों करके पेटकी आँत टूटगई हो और शस्त्र और आँत ये दोनों भी पेटके उसको छिन्नांत्रक कहते हैं ।

११ शस्त्रादिकोंकरके पेटकी आँत टूटके बाहर निकल आई हो उसको निःसृतांत्रक

अस्थिभंगरोग।

अस्थिभंगोऽष्टधाप्रोक्तो भग्नपृष्ठविदारिते ॥ ७८ ॥ विवर्तित-श्चविश्लिष्टस्तिर्यक्क्षिप्तस्त्वधोगतः ॥ ऊर्ध्वगः संधिभंगश्च-

अर्थ–अस्थिभंग शब्द करके इस जगह हस्तादिकोंके कांडका भंग और संधिभंग इन दोनोंका ग्रहण है। वह भग्नरोग आठ प्रकारका है। जैसे १ भग्नपृष्ठ २ विदारित ३ विवर्तित ४ विश्लिष्ट ५ तिर्यक्क्षिप्त ६ अधोगत ७ ऊर्ध्वग ८ और संधिभंग। इस रीतिसे आठ प्रकार जानने। हड्डी टूटने आदिको भग्न कहते हैं।

वह्निदग्धरोग।

-वह्निदग्धश्चतुर्विधः॥७९॥प्लुष्टोऽतिदग्धोदुर्दग्धःसम्यग्दग्धश्चकीर्तितः

अर्थ–अग्निसे जलेहुएको दग्ध कहते हैं। वह रोग चार प्रकारका है। जैसे १ प्लुष्ट २ अतिदग्ध ३ दुर्दग्ध और ४ सम्यग्दग्ध। इसप्रकार अग्निदग्ध रोग चार प्रकारका जानना।

---

१ संधियोंके दोनों तरफकी हड्डियोंके परस्पर घिसनेसे सूजन होती है और रात्रिमें पीडा बहुत होय उसको भग्नपृष्ठ कहते हैं। कोई इसको उत्पिष्ट भी कहते हैं।

२ विश्लिष्ट संधियोंके दोनों तरफकी हड्डियां टूटके उनमें बहुत पीडा होय, उसको विदारित कहते हैं।

३ विवर्तित संधियोंमें दोनों तरफसे हाड संधिसे पलटजाँय, तब अत्यंत पीडा होय इस संधिमें हाड दोनों तरफ फिरा करे।

४ विश्लिष्ट संधिमें सूजन और रात्रिमें पीडा होकर सर्वकालमें अत्यंत पीडा होय। संधि शिथिलमात्र होय, इसमें हाडके हटनेसे बीचमें गढेला होजाय।

५ हड्डीके तिरछे हटनेसे पीडा बहुत हो और एक हड्डी संधिस्थान छोडकर टेढी होजाय।

६ संधिकी हड्डी एक नीचेको हट जाय तो पीडा होय और संधिकी विरुद्ध चेष्टा होय इसमें संधिके हाड परस्पर दूर होंय परंतु नीचेको गमन करें।

७ संधिके ऊपरका हाड संधिसे बाहर होजाय, उसमें पीडा होय, उसको ऊर्ध्वग कहते हैं।

८ संधिकी हड्डी चूर्ण होजावे, अथवा टूटके दो टूकडे हों, उसको संधिभंग कहते हैं।

९ अग्नि करके अंग दग्ध होनेसे जो अंगका वर्ण पलटजाय उसको प्लुष्ट कहते हैं।

१० अग्निसे दग्ध होकर रक्त, मांस, शिरा, स्नायु, संधि और हड्डी दीखनेलगे और ज्वर दाह प्यास मूर्च्छा इनकरके व्याप्त हो. उसको अतिदग्ध कहते हैं।

११ अग्निसे दग्ध होनेसे बहुत पीडा होय, अंगमें फोडे हों और वे फोडे जल्दी अच्छे न हों. उसको दुर्दग्ध कहते हैं।

१२ अग्निसे जो अंग दग्ध होय और ताड वृक्षके समान अंग काला हो, उसको सम्यग्दग्ध

नाडीव्रणरोग।

नाड्यःपंच समाख्यातावातपित्तकफैस्त्रिधा॥७७॥त्रिदोषैरपिशल्य

अर्थ–नाडीव्रणे (नासूर) पांच प्रकारके हैं। जैसे १ वातनाडीव्रण २ पित्तनाडीव्रण ३ कफनाडीव्रणै ४ त्रिदोषैनाडीव्रण और ५ शैल्यनाडीव्रण। इसप्रकार नाडीव्रण प्रकारका है।

भगंदररोग।

-तथाष्टौ स्युर्भगन्दराः॥ शतपोनस्तुपवनादुष्ट्रग्रीवस्तु पित्ततः॥ ७८॥ परिस्रावीकफाज्ज्ञेयऋजुर्वातकफोद्भवः॥ परिक्षेपी मरुत्पित्तादर्शोजःकफपित्ततः॥ ७९ आगंतुजातश्चोन्मार्गीशंखावर्तस्त्रिदोषजः॥

अर्थ–भगंदररोग आठ प्रकारका है। तहां १ वातसे शतपोनक २ पित्तसे

---

१ जो मूर्ख मनुष्य पके हुए फोडेको कचा समझकर उपेक्षा करे, किंवा बहुत राध उपेक्षा करदे, तब वह बढी हुई राध पूर्वोक्त त्वङ्मांसादिक स्थानमें जायकर उनको भेदकर भीतर पहुंच जाय, तब एकमार्गकर उसमें वह राध नाडीके समान बहे, इसीसे इसको (नासूर) कहते हैं।

२ बादीसे नाडीव्रणका मुख रूखा तथा छोटा होय और शूल होय, इसमेंसे होय रात्रिमें अधिक स्रवे।

३ पित्तके नाडीव्रणमें प्यास, ज्वर और दाह होय। उसमेंसे पीले रंगका और बहुत स्रवे, और दिनमें स्राव अधिक होय।

४ कफज नाडीव्रणमें सफेद, गाढी, चिकनी राध निकले, खुजली चले, रातमें स्राव बहुत

५ जिस नाडीव्रणमें दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुखका सूखना और तीनों दोषोंके उसको त्रिदोषकोपजन्य नाडीव्रण जानना। इसे भयंकर–प्राणनाश करनेवाली कालरात्रि जानना।

६ किसी प्रकारसे शल्य (कंटकादि) रक्त, मांस, राध आदिके स्थानमें पहुँचकर नाडीव्रणको उत्पन्न करै. उस नाडीव्रणमें छाग मिला तथा रुधिरयुक्त मथेके समान गरम बहै, तथा पीडा होय।

७ गुदाके समीप दो अंगुल ऊँची पिछाडी एक पिटिका (फुन्सी) होय उसमें बहुत और वह पिटिका फूट जाय उसको भगंदर रोग कहते हैं. यदाह भोजः–"भगंपारिसमन्तात् तार्थैवच। भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो भगंदरः" इति।

८ कषैले और रूखे पदार्थ खानेसे वायु अत्यंत कुपित होकर गुदस्थानमें (फुन्सी) करे, उनकी उपेक्षा करनेसे वे फुंसी पकें और फूट जायं तब पीडा

३ कफसे परिस्रावी ४ वातकफसे ऋजु ५ वातपित्तसे परिक्षेपी ६ कफपित्तसे अर्शोज ७ आगंतुज उन्मार्गी और त्रिदोषसे ८ शंखावर्त भगंदर होता है। इस प्रकार आठ प्रकारके भगंदर जानने।

उपदंशरोग।

मेढ्रेपंचोपदंशाःस्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ८० ॥ संनिपातेनरक्ताच-

अर्थ—लिंगमें उपदंश रोग पांचप्रकारका होता है। जैसे वात, पित्त, कफ, संनिपात और रक्तसे उपजाहुआ तहां लिंगेन्द्रीमें किसी कारणसे हस्तका कठोर स्पर्श होनेसे, बडी कामबाधा प्राप्त हो नख (नाखून) दांत इनका अभिघात होनेसे, मैथुनके पश्चात् लिंग धोनेसे, दासी आदिके साथ अत्यंत विषय करनेसे, दीर्घ कठोर, केश

—लाल झाग मिली राध बहे, तथा अनेक छिद्र हो जायं। उन छिद्रोंमें होकर मूत्र मल और शुक्र (रेत) बहे चालनीकेसे अनेक छिद्र होंय, इसी कारण इस रोगको शतपोनक कहते हैं शतपोनक नाम संस्कृतमें चालनीका है।

९ पित्तकारक पदार्थ खानेसे कुपित भया जो पित्त सो गुदामें लाल रंगकी पिटिका उत्पन्न करे वो शीघ्र पक जाय और उनमेंसे गरम राध बहे। पिटिका (फुन्सियां) ऊंटकी नाडके समान होय इसीसे इनको उष्ट्रग्रीव कहते हैं।

---

१ कफसे प्रगटभये भगंदरमें खुजली चले, तथा उसमेंसे गाढी राध बहे वो पिटिका कठिन होय उसमें पीडा थोडी होय और उसको वर्ण सफेद होय उसको परिस्रावी भगंदर कहते हैं।

२ जो भगंदर वात और कफ इनके लक्षणोंकरके युक्त होय और सीधा बहताहो उसको ऋजु भगंदर कहते हैं।

३ जो भगंदर वात और पित्तके लक्षणोंकरके युक्त हो उसको परिक्षेपी भगंदर कहते हैं।

४ जो कफ पित्तके लक्षणोंकरके युक्त हो, उसको अर्शोज भगंदर कहते हैं।

५ गुदामें कांटे आदिके लगनेसे क्षत (घाव) हो जाय उस घावकी उपेक्षा करनेसे उसमें कृमि पडते जायँ वो कृमि उस क्षतको विदारण करें ऐसे वो घाव बढकर गुदापर्यंत पहुंचे तथा कृमि उसमें अनेक मुख कर लेवें उसको उन्मार्गी भगंदर कहते हैं।

६ जिसमें गौके थनके समान अनेक पिडिका होंय, उनका रंग पीला और स्राव अनेक प्रकारका होय, और व्रण शंखके आँटके समान गोल होय. इसको शंखावर्त अथवा शंबुकावर्तभी कहतेहैं।

७ लिंगेंद्रीके ऊपर काले फोडे उठें, उनमें तोडनेकीसी पीडा होय और स्फुरण हो ये लक्षण वातोपदंशके जानने।

८ पित्तके उपदंश करके पीले रंगके फोडे होते हैं। उनमेंसे पानी बहुत बहै, दाह होय।

९ कफके उपदंश करके सफेद मोटा फोडा होय उसमें खुजली चलै, सूजन होय, और गाढी राध बहै।

१० जिस उपदंशमें अनेक प्रकारका स्राव और पीडा होय। यह त्रिदोषज उपदंश असाध्य है।

११ रुधिरके उपदंशसे मांसके समान लालरंगके फोडे होंय।

तथा रोगादि करके दूषित योनि जिसकी हो उस दोषसे, ब्रह्मचारिणी (रजस्वला गमनादिक तथा वाजीकरणादिकके अनेक उपचार करनेसे इन सब कारणोंसे लिंगेन्द्रीमें प्रगट होवे उसको उपदंश कहते हैं ।

शूकरोग ।

-मेढ्रशूकामयास्तथा ॥ चतुर्विंशतिराख्याता लिंगार्शोग्रथितं तथा ॥ ८१ ॥ निवृत्तमवमंथश्च मृदितं शतपोनकः ॥ अष्ठीलिकासर्षपिका त्वक्पाकश्चावपाटिका ॥८२॥ मांसपाकःस्पर्शहानिर्निरुद्धमणिरुद्धतः ॥ मांसार्बुदंपुष्करिका संमूढपिटिकालजी ॥ ८३ ॥ रक्तार्बुदंविद्रधिश्चकुंभिकातिलकालकः ॥ निरुद्धं प्रकशिः प्रोक्तस्तथैवपरिवार्तिका ॥ ८४ ॥

अर्थ—लिंगेन्द्रीमें शूकरोग चौवीस प्रकारका होता है । जैसे १ लिंगार्श २ ग्र ३ निवृत्त ४ अवमंथ ५ मृदित ६ शतपोनक ७ अष्ठीलिका ८ सर्षपिका ९ त्व

---

१ जो मंदबुद्धिवाला पुरुष शास्त्रोक्त क्रमके विना लिंगको मोटा किया चाहै, वो विषहर लिंगके ऊपर लेपादिक करे, अथवा जलयोग वात्स्यायन ऋषिके कहे उनका साधन करे, लिंगपर शूकरोग होता है सूकनाम जलके मलसे उत्पन्न जलजंतुका है उसके सदृश यह रोग है इसका भी नाम शूक कहा है ।

२ लिंगार्श शूकरोगमें अर्शके लक्षण जानना ।

३ निरंतर शूक लेप करनेसे लिंगेंद्रीके ऊपर गांठ पैदा होय उसको ग्रथित कहते हैं ।

४ निवृत्त रोगमें कफका संबंध ज्यादा रहता है ।

५ कफ रक्तसे लिंगेंद्रीके बाह्य प्रदेशमें लंबीलंबी पिटिका होती हैं और वो पिटिका फूट भीतर फैलती हैं उसको अवमंथ रोग कहते हैं ।

६ वायुके कोपसे लिंगमें फुन्सीहोय, उससे लिंगको पीडा होय लिंग जोरसे ठाढा होय, आवे, इसको मृदित कहते हैं ।

७ जिस पुरुषके लिंगमें बारीक छिद्र हो जाय, वह व्याधि वातशोणितसे प्रगट होती है शतपोनक कहते हैं ।

८ शूकाके लेपसे बायु कुपित होकर करडी निहाईके समान पिडिका होय, और कोई कोई बडी, टेढे ऐसे मांसाकुरोंसे व्याप्त होय इसको अष्ठीलिका कहते हैं ।

९ दुष्ट जलजंतुका दुष्ट रीतिसे लेप करनेसे कफवात कुपित होकर सपेद सरसोंके समान फुन्सी होय इसको सर्षपिका कहते हैं ।

१० वातापित्तसे लिंगकी त्वचा पक जाय उसको त्वक्पाक कहते हैं इसमें ज्वर और दाह होता

१० अंत्रपीडिका ११ मांसपाक १२ स्पर्शहानि १३ निरुद्धमणि १४ मांसार्बुद १५ पुष्करिका १६ संमूढपिटिका १७ अलजी १८ रक्तार्बुद १९ विद्रधि २० कुंभिको २१ तिलकालक २२ निरुद्ध २३ प्रकश और २४ परिवर्तिका। इस प्रकार शूक रोग चौबीस प्रकारका जानना।

कुष्ठरोग।

कुष्ठान्यष्टादशोक्तानि वातात्कापालिकं भवेत्॥ पित्तेनौदुम्बरं प्रोक्तं कफान्मण्डलचर्चिके॥ ८५॥ मरुत्पित्तादृष्यजिह्वंश्ले-ष्मवाताद्विपादिका॥ तथासिध्मैककुष्ठं च किटिभंचालसं तथा॥ ८६॥ कफपित्तात्पुनर्दद्रूःपामा विस्फोटकं तथा॥ महाकुष्ठंचर्मदलं पुण्डरीकंशतारुकम्॥ ८७॥ त्रिदोषैःका-कणंज्ञेयंतथान्यच्छ्वित्रसंज्ञितम्। तथा वातेन पित्तेन श्लेष्मणा च त्रिधाभवेत्॥ ८८॥

---

१ अवपीडिका शूकरोगमें लिंग फटासा मालूम होय।

२ जिसकी इन्द्रीका मांस गलजाय और अनेक प्रकारकी पीडा हो इस व्याधिको मांसपाक कहते हैं। वह व्याधि त्रिदोषज है।

३ शूकका लेप करनेसे रुधिर दूषित होकर त्वचाके स्पर्शज्ञानको नष्ट करे।

४ निरुद्धमणि शूकरोगमें लिंगकी मणिकी चेतना जाती रहती है।

५ मांस दुष्ट होनेसे मांसार्बुद प्रगट होता है।

६ पित्त रक्तसे उत्पन्न भई पिटिका उसके चारोंतरफ अनेक छोटी छोटी फुंसियां होयँ और कमलकी भीतरकी केसरके समान सब फुन्सी होय, उसको पुष्करिका कहते हैं।

७ लेप करनेके अनंतर जब लिंगमें खुजली चलै तब उसको दोनों हाथोंसे खूब खुजानेसे एक मूढ (बिना मुखकी) पिटिका होय, उसको संमूढपिटिका कहते हैं।

८ यह पिटिका प्रमेहपिटिकामें जो अलजी नाम पिटिका कह आए हैं उसके समान लाल काले फोडोंसे व्याप्त होय, तथा उसके लक्षण उस अलजीके समान होते हैं।

९ जिस पुरुषके लिंगेंद्रीके ऊपर काले, लाल फोडे उत्पन्न हों उसको रक्तार्बुद कहते हैं।

१० विद्रधिके लक्षणमें जो संनिपातविद्रधिके लक्षण कहे हैं, वोही यहां विद्रधि शूकके लक्षण जानने।

११ रक्तपित्तसे जामुनकी गुठलीके समान काले रंगकी पिटिका होय, उसको कुंभिका कहते हैं।

१२ काले अथवा चित्र विचित्र रंगके विषशूकोंके लेपकरनेसे तत्काल सर्वलिंग पकजाय तथा सब मांस तिलके समान काला होकर गलजाय। इस त्रिदोषोत्पन्न व्याधिको तिलकालक कहते हैं।

१३ निरुद्ध, प्रकाश और परिवर्तिक इनके लक्षण ग्रंथांतरमें निदानस्थानमें क्षुद्ररोगोंमें लिखे हैं। उनके समान शिश्नमें रोग होते हैं ऐसा जानना।

अर्थ–कुष्ठरोग अठारह प्रकारका है । जैसे १ कापालिक २ औदुंबर ३ ... ४ विचर्चिका ५ ऋक्षजिह्व ६ विपादिका ७ सिध्मकुष्ठ ८ किटिभ ९ अलस १० दद्रु ११ ...

---

१ विरोधि कहिये क्षीरमत्स्यादि, पतले, स्नेहयुक्त, भारी ऐसे अन्नपानके सेवनकरनेसे रदके वेग रोकनेसे और मलमूत्रादिवेगोंके रोकनेसे, भोजनकरके अत्यंत व्यायाम (दंड कसरत) अथवा अतिश्रम करनेसे, सूर्यका ताप सहनेसे, शीत, गरमी, लंघन और आहार इनके सेवनोक्त क्रम छोडके सेवन करनेसे, पसीना, श्रम और भय इनसे पीडित हो और उसीसमय शीतल जल पीवे इस कारण अजीर्णपर अन्न भक्षण करनेसे, तथा भोजन ऊपर भोजन करनेसे, वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन नस्यकर्म, इन पंचकर्मके करते समय अपथ्य करनेसे, नया, अन्न दही, मछली, खारी, खट्टे पदार्थके सेवन करनेसे, उडद, पूरी, मिष्ठान्न (लड्डू, खजला, फेनी आदि) तिल दूध गुड इन खानेसे, अन्नके पचेविना स्त्रीसंगकरनेसे, तथा दिनमें सोनेसे, ब्राह्मण, गुरु इनका तिरस्कार करने पापकर्मको आचरण करनेसे, पुरुषोंके वातादि तीनों दोष त्वचा, रुधिर मांस और जल, इनको दुष्टकर कुष्ठरोग (कोढ) उत्पन्न करते हैं, कुष्ठ होनेके वातादिदोष, और त्वचादि दूष्य ये (वात, पित्त, कफ, त्वचा, रक्त, मांस, जल) पदार्थ अवश्यकारणभूत हैं इनसे ही अठारह प्रकारके कुष्ठ होते हैं तिनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ हैं ।

२ जो चेंढ काले तथा लाल खीपडाके सदृश, रूखे, कठोर पतले ऐसे त्वचावाले तथा ... कीसी पीडायुक्त होंय, वे दुश्चिकित्स्य हैं इसको कापालिक कुष्ठ कहते हैं ।

३ औदुंबरकुष्ठ–यह शूल, दाह, लाल और खुजली इनसे व्याप्तहोय, इनमें बाल कपिल वर्णके होंय तथा ये गूलरफलके समान होते हैं ।

४ मंडलकुष्ठ सफेद, लाल, कठिन, गीला, चिकना जिसका, आकार मंडलके सदृश होय तथा ... दूसरेसे मिला होय, ऐसा यह मंडलकुष्ठ असाध्य है ।

५ खुजलीयुक्त, कालेरंगकी जो फुन्सी (माताके समान) होय तथा उनमेंसे स्राव बहुत होय उसे चर्चिका अथवा विचर्चिका कहते हैं ।

६ ऋक्षजिह्व कुष्ठ कठोर अंतविषे लाल होय, बीचमें काला होय, पीडाकरे, तथा रीछकी जीभके समान होता है, इसको ऋक्षजिह्व कहते हैं ।

७ विपादिकाकुष्ठ जिसमें हाथकी हथेली और पैरके तरवा फटजायँ और पीडा बहुत होय ।

८ सिध्मकुष्ठ सफेद, लाल, पतला हो, खुजानसे भूसीसी उडे यह विशेषकरके छातीमें होता है ... वीयाके फूलके आकारका होता है ।

९ किटिभकुष्ठ नीलवर्णका हो, व्रणकी चटके समान कठोर स्पर्श मालूम होय और रुक्ष हो ।

१० अलसकुष्ठ–इस कुष्ठमें पीडा बहुत होय और जिसमें पिडिका पित्तीके समान बहुत और ... होंय, इसमें बहुतसे मूर्ख वैद्य पित्तकी शंका करते हैं ।

११ दद्रुकुष्ठमें खुजली होय, लाल होय और फोडा होय और ये ऊँचे ऊठ आवै मंडलके आकार गोल उत्पन्न होय इसीसे इसको दद्रुमंडल भी कहते हैं ।

१२ पामाकुष्ठ–जो पिटिका छोटी और बहुत होंय, उनमेंसे स्राव होय तथा खुजली चले और ... होय इस कुष्ठको पामा (खाज) कहते हैं ।

विस्फोटक[1] १३ महाकुष्ठ[2] १४ चर्मदल[3] १५ पुंडरीक[4] १६ शतारुक[5] १७ काकण[6] और १८ श्वित्रकुष्ठ[7] इस प्रकार अठारह प्रकारका कुष्ठ जानना ।

क्षुद्ररोग, विस्फोटक और मसूरिका रोग ।

क्षुद्ररोगाः षष्टिसंख्यास्तेष्वादौ शर्करार्बुदम् ॥ इंद्रवृद्धापनसिका विवृत्तांधालजीतथा ॥ ८९ ॥ वराहदंष्ट्रोवल्मीकं कच्छपी तिलकालकः ॥ गर्दभीरकसाचैवयवप्रख्याविदारिका ॥ ९० ॥ कंदरो मसकश्चैव नीलिकाजालगर्दभः ॥ ईरिवेल्ली जंतुमणिर्गुदभ्रंशोऽग्निरोहिणी ॥ ९१ ॥ संनिरुद्धगुदः कोठः कुनखोऽनुशयीतथा ॥ पद्मिनीकंटकश्चिप्प्यमलसो मुखदूषिका ॥ ९२ ॥ कक्षावृषणकच्छूश्च गंधःपाषाणगर्दभः ॥ राजिका च तथा व्यंगश्चतुर्धा परिकीर्तितः ॥ ९३ ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादित्युक्तं व्यंगलक्षणम् ॥ विस्फोटाः क्षुद्ररोगेषु तेऽष्टधा परिकीर्तिताः ॥ ९४ ॥ पृथग्दोषैस्त्रयोद्वन्द्वैस्त्रिविधाः सप्तमोऽसृजः ॥ अष्टमः

---

१ विस्फोटककुष्ठ–जो फोडे काले वा लाल रंगके होंय और जिनकी त्वचा पतली होय उसको विस्फोटक कुष्ठ कहते हैं ।

२ जो कुष्ठ घर्म (पसीना) से रहित होता है और जिस करके सर्व अंग मक्खियोंके अंगके सदृश होता है और रसादि धातुओंको व्याप्त करता है इसको महाकुष्ठ कहते हैं । कहीं इसको चर्मकुष्ठभी कहते हैं ।

३ चर्मदलकुष्ठ–यह लाल हो, शूलयुक्त, खुजलीयुक्त, फोडोंसे व्याप्त होकर फूट जाय, इसमें हाथ लगानेसे सहा न जाय इसमें त्वचा फटजाती है ।

४ पुंडरीक कुष्ठ जो कुष्ठ पुंडरीक (कमल) पत्रके समान सफेद होय और उसका अंतभाग लाल होय. यत्किंचित् ऊँचा निकल आवे और मध्यमें थोडा लाल होता है ।

५ शतारुक कुष्ठ–जो लाल होय, श्याम होय, जिसमें जलन होय, शूल हो, तथा अनेक फोडे हों उसको शतारुक कुष्ठ कहते हैं ।

६ काकण कुष्ठ–जो चिरामिठीके समान लाल अर्थात् बीचमें काला होय और आसपास लाल अथवा बीचमें लाल और पास काला होय, किंचित् पका, तीव्रपीडायुक्त, जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों यह कुष्ठ अच्छा नहीं होता ।

७ चित्रकुष्ठ–पूर्वोक्त कुष्ठोंके समान है निदान और चिकित्सा जिसकी ऐसी होती है और उसमेंसे स्राव होता है और वह श्वित्रकुष्ठ रक्त, मांस और मज्जा इन तीनों धातुओंसे उत्पन्न होता है. वह कुष्ठ वात, पित्त, कफ इनके भेदोंसे तीन प्रकारका होता है । वायुसे रूक्ष और लाल होय, पित्तसे लाल कमलपत्रके समान लाल होय, उसमें दाह होय, उसके ऊपरके बाल गिरपडें, कफके योगसे वह कोढ़ सफेद गाढा और भारी होता है, उसमें खुजली चलती है, ऐसे तीन भेदका श्वित्रकुष्ठ जानना

संनिपातेन क्षुद्ररुक्षु मसूरिका ॥ ९५ ॥ चतुर्दशप्रकारेणात्रि-भिर्दोषैस्त्रिधाचसा ॥ द्वन्द्वजा त्रिविधाप्रोक्ता संनिपातेन स-प्तमी ॥ ९६ ॥ अष्टमी त्वग्गता ज्ञेया रक्तजा नवमी स्मृता॥ दशमी मांसजा ख्याता चतस्रोऽन्याश्चदुस्तराः ॥ मेदोऽ-स्थिमज्जशुक्रस्थाः क्षुद्ररोगा इतीरिताः ॥ ९७ ॥

अर्थ–क्षुद्ररोग ६० साठ प्रकारके हैं जैसे १ शर्करार्बुद २ इन्द्रवृद्धा ३ पनसि- ४ विवृत्ता ५ अंधालजी ६ वराहदंष्ट्र ७ वल्मीक ८ कच्छपी ९ तिलकालक १० गर्द-

---

१ कफ, मेद और वायु ये मांस, शिरा और स्नायु इनमें प्राप्त हो गाँठ करते हैं । जब वह तब उसमेंसे सहत, घृत, चर्बीके समान स्राव हो तिसकरके वायु पुनः बढकर मांसको सुखाय उस बारीक खिंचीसी गाँठ करे, उसको शर्करा कहते हैं । शर्करा होनेके अनंतर नाडियोंसे दुर्गंधयु- क्लेदयुक्त अनेक प्रकारके वर्णका (घृत, मेद और वसा इनके वर्णका) रुधिर स्रवे, उसको शर्करा- र्बुद कहते हैं ।

कमलकर्णिकाके समान बीचमें एक पिडिका होय, उसके चारोंओर छोटी छोटी फुन्सियाँ हों उस- इन्द्रवृद्धा कहते हैं यह वात पित्तसे उत्पन्न होती हैं ।

३ कानके भीतर वात, पित्त, कफसे जो फुन्सी उग्रवेदनासहित प्रगट होय और वह स्थित हो उसको पनसिका कहते हैं ।

४ पित्तके योगसे कटे मुखकी, अत्यंत दाहयुक्त, पके गूलरके समान, चारोंओर बल पडीहुई पिडिका होय उसको विवृत्ता कहते हैं ।

५ कफवातसे प्रगट, कठिन, जिसमें मुख न हो, तथा ऊँची ऐसी पिडिका होय तथा जिसके चारों- ओर मंडलाकार हो और जिसमें राध थोडी होय, उसको अंधालजी कहते हैं ।

६ शरीरमें गाँठके समान कठिन सजन उत्पन्न होय, उसका आकार सूअरकी ठोडीके सदृश हो उसमें दाह, खुजली और पीडा होय और उसके ऊपरकी त्वचा पकजाय उसको वराहदंष्ट्र, सूकरदं- वराहडाढभी कहते हैं ।

७ कंठ, कंधा, कूख, पैर, हाथ, संधि, गला इन ठिकानोंपर तीनों दोषोंसे सर्पकी बाँबीके समा- गाँठ होय. उसका उपाय न करै तब वह धीरे धीरे बढै उसमें अनेक मुख होजायँ, उनमेंसे स्राव हो- नोचनेकीसी पीडा होय, तथा वह मुखके ऊपर कुछ ऊँची होकर विसर्पके समान फैल जाय इस रोगको वैद्य वल्मीक कहते हैं, इसके ऊपर औषधि उपचार नहीं चले और पुरानी होनेसे विशेष असाध्य जानना ।

८ कफवायुसे प्रगट गाँठ बंधी, पांच अथवा छः कठिन कछुआकी पीठके समान ऊँची. जो पिडि- होय उनको कच्छपिका कहते हैं ।

९ वात, पित्त, कफके कोपसे काले तिलके समान पीडारहित, त्वचासे मिले ऐसे अंगमें दाग हों उनको तिलकालक (तिल) कहते हैं ।

१० वातपित्तसे प्रगट एक गोल ऊँची तथा लाल और फोडोंसे व्याप्त ऐसा मंडल होय, वह बहुत दूखे, उसको गर्दभी अथवा गर्दभिका ऐसे कहते हैं ।

११ रकसा १२ यवप्रख्या १३ विदारिका १४ कंदर १५ मसक १६ नीलिका १७ जालगर्दभ १८ इरिवेल्लिका १९ जंतुमणि २० गुदभ्रंश २१ अग्निरोहिणी २२ संनिरुद्धगुद २३ कोठ २४ कुनख २५ अनुशयी २६ पद्मिनाकंटक २७ चिप्य २८ अलस

---

१ शरीरमें जो पिटका (फुन्सी) स्रावरहित होकर खुजलीयुक्त हों उनको रकसा कहते हैं।

२ कफवातसे प्रगट जौके समान, कठिन, गाँठके सदृश मांसमिश्रित जो पिडिका होय उसको यवप्रख्या कहते हैं. तथा इसको अन्नालजीभी कहते हैं।

३ विदारीकंदके समान गोल काँखमें अथवा वंक्षणस्थानमें जो गाँठ ताँबेके रंगकीसी हो,उसको विदारिका कहते हैं. यह संनिपातसे होयहै अर्थात् इसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं।

४ पैरोंमें कंकर छिदनेसे, अथवा काँटे लगनेसे बेरके समान ऊंची गाँठ प्रगट होय उसको कदर अथवा ठेक कहते हैं. यह कदररोग हाथोंमेंभी होताहै. ऐसा भोजका मत है।

५ वादीसे शरीरके ऊपर उडदके समान काली, पीडारहित, स्थिर, कठिन, कुछ ऊँची गाँठसी प्रगट होय, उसको मसक माष मस्सा ऐसे कहते हैं।

६ व्यंगके लक्षणसदृश जो काला मंडल अंगमें होय, अथवा मुखपर होय, उसको नीलिका कहतेहैं।

७ पित्तसे विसर्पके समान इधर उधरको फैलनेवाली, पतली तथा कुछ पकनेवाली ऐसी सूजन होय, उसमें दाह होय और ज्वर होय उसको जालगर्दभ कहते हैं।

८ त्रिदोषसे प्रगट मस्तकमें गोल, अत्यंत पीडा और ज्वर करनेवाली, त्रिदोषके लक्षण संयुक्त ऐसी पीडिका होय उसको ईरिवेल्ली कहते हैं।

९ कफरक्तसे जन्मसेही प्रगटभई समान, तथा कुछ ऊँचा, जिसमें पीडा होय नहीं, ऐसा गोलमंडलके समान देहमें चिह्न होय उसको लक्ष्म कोई लक्ष्य तथा कोई जंतुमणि ऐसे कहते हैं यह स्त्रीपुरुषोंको अंग भेदकरके शुभाशुभ फलदायक है।

१० जिस पुरुषकी देह रूक्ष और अशक्त होय, उस पुरुषके प्रवाहन (कुंथन) तथा अतिसार हेतु करके गुदा बाहर निकल आवे, अर्थात् काँच बाहर निकल आवे उस रोगको गुदभ्रंश रोग कहते हैं उस रोगमें धातुक्षय होनेसे वात कुपित होय है।

११ काँखके आसपास मांसके विदारण करनेवाले जो फोडा होते हैं. तिनकरके अंतर्दाह होय, तथा ज्वर होय वह फोडा प्रदीप्त अग्निके समान लाल होय: इन फोडोंमें वायु अधिक होनेसे सात दिन, पित्ताधिक्यसे बारह दिन और कफाधिक्यसे ५ पांच दिनमें रोगी मरे यह अग्निरोहिणीनामक त्रिदोषज पीडिका असाध्य है और कठिन है।

१२ मल मूत्रादिकोंके वेग रोकनेसे गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर महास्रोत (गुदा) का अवरोध करे और वह द्वारको छोटा करे पीछे मार्ग छोटा होनेसे उस पुरुषका मल बडे कष्टसे बाहर निकले, इस भयंकर रोगको संनिरुद्धगुद कहते हैं।

१३ कफ रक्त पित्त इनके कोपसे देहमें मोहारकी मक्खीके दंशसे जैसे सूजन आती है ऐसी किंचित् लालरंगकी सूजन आवे. उनमें खुजली बहुत चले, क्षणमें उत्पन्न होती है और क्षणमें चली जाती है उसको कोठ ऐसे कहते हैं।

१४ किसी कठोर पदार्थके अभिघातकरके नख (नखून) दुष्ट होकर रूक्ष, कालेवर्णके और खरदरे हों उसको कुनख कहते हैं।

२९ मुखदूषिका ३० कक्षा ३१ वृषणकच्छु ३२ गंधं ३३ पाषाणगर्दभ ३४ राजिका ३५ व्यंग (यह १ वात २ पित्त ३ कफ ४ रुधिर इन भेदोंसे चार प्रकारका है सब चौंतीस और ये चार ऐसे अडतीस प्रकारके क्षुद्ररोग हुए । तथा स्फोट रोग देहमें फुन्सी होती हैं अतएव उनका क्षुद्ररोगोंमें संग्रह किया । वह विस्फोट आठ प्रकारका है । १ वातविस्फोटक २ पित्तविस्फोटक ३ कफविस्फोटक ४ क...

---

१५ पैरोमें त्वचाके समान वर्ण यत्किंचित् सूजनयुक्त, भीतरसे पकी जो पिडिका होय उसको अ... शयी कहते हैं ।

१६ देहमें सफेद रंगका गोल ऐसा मंडल उत्पन्न होताहै. उसके ऊपर काँटेके सदृश मांसके अं... आते हैं और उनको खुजली बहुत चले उस रोगको पद्मिनीकंटक कहते हैं ।

१७ वायु और पित्त नखोंके मांसमें स्थिर होकर दाह और पाकको करे, इस रोगको चिप्प ... कहते हैं. यह अल्प दोषोंसे होय तो इसको कुनख कहते हैं ।

१८ दुष्ट कीच (वर्षा आदिके पानी और सडी कींच) में डोलनेसे पैरोंकी उँगली गीली रहे ... उँगलियोंके बीचमें सफेद सफेद चकत्ता होंय, उनमें खुजली दाह और गीलापन तथा पीडा होय उ... अलस अर्थात् खारुआ कहतेहैं. यह कफरक्तके दोषसे होताहै ।

१ कफ वायुके कोपसे सेमरके काँटेके समान तरुण (जवान) पुरुषके मुखके ऊपर जो फुन्सी ... उनको मुखदूषिका अर्थात् मुहाँसे कहते हैं. इनके होनेसे मुख बुरा होजाताहै ।

२ बाहु (भुजा) की जड कंधा और पसवाडे इन ठिकाने पित्त कुपित होकर काले फोडोंसे ... तथा वेदनायुक्त जो पिडिका होय उसको वृक्षा वा कँखलाई कहते हैं ।

३ जो मनुष्य स्नान करते समय लगेहुये मलको नहीं धोवे, उस पुरुषका मल अंडकोशमें सं... होय । पीछे वह पसीना आनेसे गीला होय, तब अंडकोशोंमें घोर पीडा होय और खुजानेसे तत्का... फोडे होंय । पीछे वे फोडे स्रवकर आपसमें मिल जाते हैं । कफरक्तसे होनेवाली इस व्याधिको वृ... कच्छु कहते हैं ।

४ पित्तके कोपसे त्वचाके भीतर जो एक पिडिका फोडाके समान बडी होय, उसको गंधनाम्नी पि... कहते हैं ।

५ वातकफसे ठोडीकी संधिमें कठिन मंदपीडा करनेवाली, चिकनी ऐसी सूजन होय, उसको पा... गर्दभ कहतेहैं ।

६ कफवायुकरके देहमें सरसोंके सदृश फुन्सी होती हैं उनको राजिका कहते हैं. कोई कोढ़... कहतेहैं ।

७ क्रोध और श्रम इनसे कुपितभया वायु सो पित्तसंयुक्त होकर मुखमें प्राप्त होकर एक मंडल उ... करे । वह दूखे नहीं, पतला तथा श्यामवर्णका होय, उसको व्यंग (झाँई) ऐसे कहते हैं ।

८ कडुआ, खट्टा, तीखा (मरिचादि) गरम, दाहकारक, रूखा, खारा, अजीर्ण, भोजनके ऊ... भोजन और गरमी, ऋतुदोष कहिये शीतोष्णका अतियोग अथवा ऋतुविपर्यय (ऋतुका पलटना) ... कारणोंसे वातादिदोष कुपित हो त्वचाका आश्रयकर रुधिर, मांस और हड्डी इनको दूषितकर भयंकर वि... स्फोटक (फोडा) उत्पन्न करे । उनके प्रगट होनेके पूर्व घोर ज्वर होताहै ।

पित्तविस्फोटक ५ कफपित्तविस्फोटक ६ वातकफविस्फोटक ७ रक्तविस्फोटक ८ संनिपातविस्फोटक। इस प्रकार आठ प्रकारका विस्फोटक जानना। देहमें शीतला रोगसे ये फुन्सियाँ होती हैं इसवास्ते क्षुद्ररोगमें मसूरिका रोगका संग्रह किया है वह मसूरिका चौदह प्रकारकी है जैसे १ वातमसूरिका २ पित्तमसूरिका ३ कफमसूरिका

---

९ मस्तकमें पीडा, शूल देहमें पीडा, ज्वर, प्यास, संधीमें पीडा, फोडोंका वर्ण काला होय ये वातविस्फोटकके लक्षण हैं।

१० ज्वर, दाह, पीडा, स्राव, फोडोंका पकना, प्यास, देह पीला अथवा लाल होय ये पित्तविस्फोटकके लक्षण हैं।

११ वमन, अरुचि, जडता, तथा फोडा खुजलीयुक्त हों, कठिन पीले और उनमें पीडा होय नहीं और वे बहुत कालमें पकें। यह विस्फोटक कफका जानना।

---

१ वातपित्तके विस्फोटकमें तीव्र पीडा होती हैं।

२ खुजली, दाह, ज्वर और वमन इन लक्षणोंसे कफपित्तजन्य विस्फोटक जानना।

३ खुजली, गीलापन, भारीपन इन लक्षणोंसे वातकफका विस्फोटक जानना।

४ रक्तसे प्रगटभया विस्फोटक ताँबेके रंगका, गुंजा (चिरमिठी) के समान लाल। वह रुधिरके दुष्ट होनेसे अथवा पित्तके दुष्ट होनेसे होता है यह सैंकडों अनुभवकारी औषधके करनेसेभी साध्य नहीं होता।

५ जो फोडा बीचमें नीचा होय और ओरपाससे ऊँचा होय, कठिन और कुछ पका होय तथा जिसके योगसे दाह, अंगमें लाली, प्यास, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीडा, ज्वर, प्रलाप, कंप, तंद्रा ये लक्षण, होतेहैं उसे संनिपातका विस्फोटक जानना, वह आसाध्य है।

६ कडुआ, खट्टा, नोंनका, खारी, विरुद्धभोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), दुष्ट अन्न निष्पाव (शिंबीबीज उडद मूँग) आदि शाक विषैल फूल आदिसे मिला पवन तथा जल, शनैश्चरादि क्रूरग्रहोंका देखना, इन सबकारणोंका देखना इन सब कारणोंकरके शरीरमें वातादिदोष कुपित होकर दुष्ट रुधिरमें मिलकर मसूरके समान देहमें अनेक मरोरी करें उनको मसूरिका (माता) ऐसे कहते हैं तिस माता (शीतला)के पूर्व ज्वर होय, खुजली चले, देहमें फूटनी होय, अन्नमें अरुचि, भ्रम होय, अंगके ऊपरकी त्वचामें सूजन होय, तथा वर्ण पलट जाय, नेत्र लाल होयँ ये शीतलाके पूर्वरूप होते हैं।

७ वातमसूरिकाके फोडे काले लाल और रूक्ष होते हैं, उनमें तीव्र पीडा होय, कठिन होयँ शीघ्र पकें नहीं इसके योगसे संधि हाड और पर्वोंमें फोडनेकीसी पीडा होय, खाँसी, कंप, पित्त स्थिर न हो, विना परिश्रमके श्रम होय तालुआ होठ और जीभ ये सूखने लगें, प्यास, अरुचि हो ये लक्षण होते हैं।

८ पित्तकी मसूरिकाका मुख लाल, पीला, सफेद होता है। उसमें दाह तथा पीडा बहुत होय और यह शीतला शीघ्रपके। इसके योगसे मल पतला होय, अंग टूटे, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक और नेत्रपाक होय, ज्वर तीव्र हो ये लक्षण होयँ।

९ कफकी मसूरिकामें मुखके द्वारा कफका स्राव होय, अंगमें आर्द्रता तथा भारीपन, मस्तकमें शूल वमन आनेकीसी इच्छा होय, अरुचि, निद्रा, तंद्रा आलस्य ये होयँ और फोडा सफेद चिकने अत्यंत मोटे होयँ इनमें खुजली बहुत चले, पीडा मंद होय और वे बहुत दिनमें पकें।

४ कफपित्तमसूरिका ५ वातपित्तमसूरिका ६ वातकफमसूरिका ७ संनिपातमसूरिका ८ त्वक्‌गतें जो रसधातु, उससे होनेवाली मसूरिका ९ रक्तजा १० मांसजा ११ मेदोजा १२ अस्थिजा १ मज्जाजन्य तथा १४ शुक्रधातुसे होनेवाली इनमें अंतकी चार मसूरिका कष्टसाध्य जाननी इसप्र सब १४ मसूरिका ८ विस्फोट और पूर्वोक्त ३८ क्षुद्ररोग सब मिलनेसे ६० प्रकारका क्षुद्र जानना ।

विसर्परोग ।

विसर्परोगानवधा वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ त्रिधा च द्वन्द्वभेदेन संनिपातेन सप्तमः ॥ ९८ ॥ अष्टमो वह्निदाहेन नवमश्चाभिघातजः ॥

---

१ कफ पित्तसे केशों (बालों) के छिद्र समान बारीक और लाल, ऐसी मसूरिका होती हैं इ होनेसे खाँसी, अरुचि होय तथा इनके. होनेसे ज्वर होय । इनको रोमान्तिक (कसूँमीमाता) कहते हैं ।

२ जिन मसूरिकाओंमें वातपित्तके लक्षण मिलते हों उन्हें वातपित्तकी मसूरिका जाननी ।

३ जिनमें वातकफके लक्षण मिलते हों उनको वातकफकी मसूरिका जाननी ।

४ त्रिदोषकी मसूरिकाके फोडे नीले, चिपटे, लंबे, बीचमें नीचे ऐसे होयँ, उनमें पीडा अत्यंत हो तथा वे बहुत दिनमें पकें और उनमेंसे दुर्गंधयुक्त स्राव होय वे सर्व दोषोंके फोडे बहुत होते हैं ।

५ रसगत मसूरिका पानीके बबूलेके सदृश हो इनके फूटनेसे पानी बहै । यह त्वग्गतमसूरिका है इ इसका यह है कि दोष स्वल्प है ।

६ रुधिरगतमसूरिका ताँबेके रंगकी और जलदी पकनेवाली होती है उसके ऊपरकी त्वचा प होती है यह अत्यंत दुष्ट होनेसे साध्य नहीं हो और इसके फूटनेसे इसमेंसे रुधिर निकले ।

७ मांसस्थमसूरिका कठिन और चिकनी होती है यह बहुत दिनमें पके तथा इसकी त्वचा पतली हो अंगोंमें शूल होय, चैन पडे नहीं, खुजली चले, मूर्च्छा, दाह और प्यास ये लक्षण होते हैं ।

८ मेदोगतमसूरिका मंडलके आकार अर्थात् गोल होय, नरम, कुछ ऊँची, मोटी तथा काली हो है. इसके होनेसे भयंकर ज्वर, पीडा, इन्द्रिय मनको मोह, चित्तका अस्थिर होना, संताप ये लक्षण हो हैं । इस मसूरिकासे कोई एक आदि मनुष्य बचता होगा कारण कि यह अत्यंत कृच्छ्रसाध्य है ।

९ अस्थिगत मसूरिका बहुत छोटी, देहके समान रूक्ष, चिपटी, कुछ ऊँची होती है उसे अस्थि मसूरिका जाननी ।

१० जिस मसूरिकामें अत्यंत चित्तविभ्रम, पीडा, अस्वस्थता ये होते हैं. वह मर्मस्थानोंको भेद क शीघ्र प्राण हरण करे । इसके होनेसे सर्व हड्डिनमें भौंराके काटनेके समान पीडा होती है । उसे म गत मसूरिका जानना ।

११ शुक्रधातुगत मसूरिका पकेके समान चिकनी और अलग अलग होती है । इनमें अत्यंत पी होय. इनके होनेसे गीलापन, अस्वस्थता, मोह, दाह, उन्माद ये लक्षण होते हैं. रोगी बचे ऐसे इनमें लक्षण नहीं दीखे. इसीसे इनको असाध्य जानना ।

अर्थ–विसर्परोग नव प्रकारका है । जैसे १ वातविसर्प २ पित्तविसर्प ३ कफविसर्प ४ वातपित्तविसर्प ५ कफवातविसर्प ६ कफपित्तविसर्प ७ संनिपातविसर्प ८ जठराग्नितोप-

---

१ खारी, खट्टा, कडुआ, गरम आदि पदार्थ सेवन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर, विसर्परोग होता है, वह सर्वत्र फैलजाय, इसीसे इसको विसर्प कहते हैं।

२ बादीसे जो विसर्प होय उसके लक्षण वातज्वरके समान होते हैं तथा उसमें सूजन, फरकना नोंचनेकीसी पीडा, तोड़नेकीसी पीडा, दर्द और रोमांच खडे हों तथा वह विसर्प लंबा होता है।

३ पित्तके विसर्पकीगति शीघ्र होय अर्थात् वह जल्दी फैलजाय तथा पित्तज्वरके लक्षण इसमें मिलते हों तथा अत्यंत लाल होयँ।

४ कफविसर्पमें खुजली बहुत होय, तथा चिकनी हो, और उसमें कालज्वरकीसी पीडा हो।

५ वातपित्तसे प्रगट विसर्प ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास और हड्फूटन, मंदाग्नि, अन्धकार, दर्शन, अन्नद्वेष इन लक्षणकरके संयुक्त होवे, इनके संयोगसे सर्व शरीर अंगारोंसे भरासा मालूम होय जिस जिस ठिकानें वह विसर्प फैले उसी उसी ठिकानेपर अग्निरहित अंगारके समान काला, लाल होकर शीघ्र सूजे आगसे फुकेके समान ऊपर फफोला होय और उस विसर्पकी शीघ्रगति होनेसे जल्दी हृदयमें जायकर मर्मानुसारी विसर्प होय। अथवा वह अत्यंत बलवान् होय अर्थात् अंगोंको व्यथा करे, संज्ञा और निद्रा इनका नाश करे श्वास बढावे, तथा हिचकी उत्पन्न करे। ऐसी मनुष्यकी अवस्था अ-स्वस्थ होनेके कारण, धरती, तेज, आसन, इत्यादिकोंमें सुख होवेनहीं हिलने चलनेसे क्लेश होय,मन तथा देहको क्लेश होनेसे उत्पन्न भई ऐसी दुर्बोध निद्रा (मरणरूपी निद्रा) को प्राप्त होय, इस रोगको अग्नि विसर्प कहते हैं।

६ स्वहेतुसे कुपितभया जो कफ सो पवनकी गतिको रोक कफको भेदकर अथवा बढे भए रुधिरको भेदकर त्वचा, नस, (नाडी) और मांस इनमें प्राप्त हो और इनको दुष्टकर लम्बी, छोटी, गीली, मोटी, खरदरी, लाल, गांठोंकी माला प्रगट करे। उन गांठोंमें पीडा अधिकहोय, ज्वर होय श्वास, खांसी अतिसार, मुखमें पपडीपरे, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, वर्णका पलटना, मूर्च्छा, अंगोंका टूटना, मंदाग्नि ये लक्षण होतेहैं इस रोगको ग्रंथिविसर्प कहते हैं। यह कफवातके कुपित होनेसे उत्पन्न होता है, इसको सुश्रुतमें अपची कहते हैं।

७ कफपित्तके विसर्पमें ज्वर, अंगोंका जिकडना,निद्रा, तंद्रा, मस्तकशूल, अंगग्लानि, हाथपैरोंका पट-कना, बकबाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मंदाग्नि, हड्फूटन, प्यास, इन्द्रीनका जकडना, आमका गिरना, मुखादिस्रोतों (छिद्रों) में कफका लेप इत्यादि लक्षण होते हैं, तथा वह विसर्प आमाशयमें उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फैले उसमें पीडा थोडी होय, सर्वत्र पीली तांबेके रंगकी सफेद रंगकी पिडिका होय, तथा वह विसर्प चिकनी, स्याहीके समान काली, मलीन, सूजनयुक्त, भारी, गंभीरपाक कहिये भीतरसे पकी हो उनमें घोर दाह हो और वह दबानेसे तत्क्षण गीली होजाय तथा फटजाय वह कीचके समान हो और उसका मांस गलजाय उसमें शिरा, नाडी, (नस) ये दीखने लगें उसमें मुर्दाकीसी बास आवे, इस विस-र्पको कर्दमविसर्प कहते हैं।

८ सन्निपातजन्य विसर्पमें जो वातादिकोंके लक्षणकहे हैं सो सब होयँ।

९ जठराग्निके बहुत संतप्त होनेसे रक्त दूषित होकर जो विसर्प होताहै उसको वह्निदाहज विसर्प कहते हैं। इसके लक्षण पित्तविसर्पके समान जानना।

जन्यविसर्प और ९. अभिघातजविसर्प इस प्रकार नव प्रकारका विसर्परोग जानना ।

शीतपित्तरोग ।

तथैकः श्लेष्मपित्ताभ्यामुदर्दः परिकीर्तितः ॥ ९९ ॥
वातपित्तेन चैकस्तु शीतपित्तामयः स्मृतः ॥

अर्थ—शीतलवायुके संपर्ककरके कफ और वायु ये दुष्टहोकर पित्तसे मिल भीतर रक्तादि धातु और बाहर त्वचामें प्रवेशकर देहमें जैसे मोहारकी मक्खीके काटनेके समान ददोडा उत्पन्न होता उसप्रकार ददोडा उत्पन्न हो उनमें खुजली पीडा और दाह ये उपद्रव होवें । कफ पित्तके कोपसे जिसमें खुजली अधिक चले और पीडा न्यूनहो उसको उर्दर्द कहतेहैं । वह रोग एक प्रकारका है वातपित्तके कोपकरके जिसमें खुजली थोडी और व्यथा अधिक होवे उसको शीतपित्त (पित्ती) कहतेहैं । इतनाही इनमें भेद जानना तथा ज्वर वमन और दाह इत्यादि ये दोनोंके साधारण लक्षण जानने ।

अम्लपित्तरोग ।

अम्लपित्तंत्रिधाप्रोक्तं वातेनश्लेष्मणातथा॥१००॥ तृतीयंश्लेष्म-

अर्थ—अम्लपित्तरोग तीन प्रकारका है १ वातजअम्लपित्त २ कफजअम्लपित्त

---

१ बाह्य कारण करके क्षत (घाव) होकर उसमें वायु कुपित होकर वह रुधिरसहित पित्तको प्राप्तकर विसर्परोग उत्पन्न करे । उसमें कुल्थीके समान श्याम वर्णके फोडे होतेहैं. सूजन ज्वर और दाह होय, उसका रुधिर काला निकले । ये अभिघातज (क्षतज) विसर्पके लक्षण जानने ।

२ वरटी (ततैया) के काटनेके समान त्वचाके ऊपर चकत्ते होजांयँ, उनमें खुजली और सूई चुभानेकीसी पीडा होय उसके संयोगसे वमन, संताप और दाह होय, इसे उदर्द कहतेहैं ।

३ शीतल पवनके लगनेसे कफ, वायु दुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर रक्तादिकोंमें और त्वचामें विचरे, प्यास, अरुचि मुखमेंसे पानी गिरना अंग गलना और भारी होना नेत्रमें ला ये शीतपित्त होनेके पूर्व होतेहैं. शीतपित्तको लौकिकमें पित्ती कहते हैं । इसमें खुजली होती सो कफसे जानना । चोंटनी बादीसे होतीहै । ओकारी, संताप और दाहसे पित्तसे होती ऐसे जानना ।

४ विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) और दुष्टान्न, खट्टा, दाहकारक, पित्त बढानेवाला ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसे, वर्षादि ऋतु में जलौषधिगत विदाहादि स्वकारणसे संचित भया पित्त दुष्ट होय, उसे अम्लपित्त कहते हैं, अन्नका न पचना, विना परिश्रम करे परिश्रमसा मालूम हो, वमन, कडवी तथा खट्टी डकार आवे, देह भारी रहै, हृदय और कंठमें दाह होय, अरुचि होय, ये लक्षण हों तो अम्लपित्त जानना ।

३ और कफवातज अम्लपित्त इस प्रकार अम्लपित्तके तीन भेद जानने चाहिये ।

वातरक्तरोग ।

-वाताभ्यां वातरक्तं तथाष्टधा॥वाताधिक्येन पित्ताच्चकफाद्दोषत्र-येणच॥१०१॥रक्ताधिक्येनदोषाणां द्वन्द्वेन त्रिविधः स्मृतः ॥

अर्थ—वातरक्तरोग आठ प्रकारका है । जैसे वायुकी आधिक्यता जिस वातरक्तमें है वह १ वातज २ पित्तजवातरक्त ३ कफजवातरक्त ४ त्रिदोषजवातरक्त और ५ रक्तके

---

५ वातयुक्त अम्लपित्तमे कंप, प्रलाप, मूर्च्छा, चिमचिमा (चेंटी काटनेसे प्रगट खुजलीके समान) देहग्लानि, पेटदूखना, नेत्रोंके आगे अंधकार दीखे, भ्रांति होना, इन्द्री मनको मोह, रोमांच खडे हों ये लक्षण होते हैं ।

६ कफयुक्त अम्लपित्तमें कफके ढेला गिरे, शरीरका अत्यंत जडपडना, अरुचि, शीत लगे, अंगग्लानि, वमन, मुख कफसे लिहसाहै, मंदाग्नि, बलनाश, खुजली और निद्रा ये लक्षण होतेहैं ।

---

१ वातकफयुक्त अम्लपित्तमें ऊपर कहेहुए दोनोंके लक्षण होतेहैं ।

२ नोन, खटाई, कडवी, खारी, चिकना, गरम, कच्चा ऐसे भोजनसे, सडे और सूखे ऐसे जलसंचारी जीवोंके और जलके समीप रहनेवाले जीवोंके मांससे, पिण्याक (खर) मूली, कुलथी, उडद, निष्पाव (सेम,) शाक (तरकारी,) पलल (तिलकी चटनी,) ईख, दही, कांजी, सौवीरमद्य, सुक्त (सिरकाआदि,) छाछ, दारू, आसव (मद्यविशेष,) विरुद्ध (जैसे दूध मछली) अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन,) क्रोध, दिनमें निद्रा, रातमें जागना इन कारणोंसे, विशेष करके सुकुमार पुरुषोंके और मिथ्या आहार विहार करनेवाले पुरुषोंके और जो मोटा होय, तथा सूखा होय ऐसे मनुष्यके वातरक्त रोग होता है । हाथी, घोडा, ऊंट इनपर बैठकर जानेसे (यह वायुके बढनेका और विशेष करके रुधिरके उतरनेका कारण है.) विदाहकारी अन्नके खानेवाले पुरुषके (इसीसे दग्धरुधिरकी वृद्धि होती है) गरमागरम अन्नके खानेवाले पुरुषके सब शरीरका रुधिर दुष्ट होकर पैरोंमें इकठा होय और वह दुष्ट वायुसे दूषित होकर मिले इस रोगमें वायु प्रबल है, इसीसे इसरोगको वातरक्त कहते हैं ।

३ वाताधिक वातरक्तमें शूल, अंगोंका फरकना, चोंटनेकीसी पीडा ये अधिक होते हैं, सूजन रूखापन, नीलापन, अथवा श्यामवर्णता, एवं वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि होय और क्षणभरमें न्हास (कम) हो, धमनी और अंगुलिनकी सन्धिमें संकोच होय, शरीर जकड बंध होय, अत्यंत पीडा होय, सर्दी बुरीलगे, और शीतके सेवन करनेसे दुःख होय, स्तंभ होय, कंप और शून्यता होय ये लक्षण होते हैं ।

४ पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यंत दाह, इंद्री मनको मोह, पसीना, मूर्च्छा, मस्तपना, प्यास, स्पर्श बुरा मालूम होय, पीडा, लाल रंग, सूजन, छोटे छोटे पीरे फोडा, अत्यंत गरमी, ये लक्षण होते हैं ।

५ कफाधिक वातरक्तमें स्तैमित्य (गीले कपडासे आच्छादित समान) भारीपना, शून्यता, चिकनापन, शीतलता, खुजली और मंदपीडा ये लक्षण होते हैं ।

६ तीनों दोषों (वात, पित्त, कफ) के वातरक्तमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ।

आधिक्यसे होनेवाला रक्तज । दोषोंसे प्रगट द्वंद्वज वातरक्त तीन प्रकारके होतेहैं । ऐसे मिलायके वातरक्तरोग आठ प्रकारका जानना ।

वातरोग ।

अशीतिर्वातजारोगाःकथ्यन्तेंमुनिभाषिताः ॥१०२॥ आक्षेपकोहनुस्तंभऊरुस्तंभःशिरोग्रहः ॥ बाह्यायामोऽन्तरायामःपार्श्वशूलःकटिग्रहः॥१०३॥दण्डापतानकःखल्ली जिह्वास्तंभस्तथार्दितः ॥पक्षाघातःक्रोष्टुशीर्षोमन्यास्तंभश्चपंगुता ॥१०४॥ कलायखंजतातूनीप्रतितूनी च खञ्जता ॥ पादहर्षोगृध्रसीच विश्वाचीचावबाहुकः ॥१०५॥अपतानोव्रणायामोवातकण्ठोऽपतन्त्रकः॥अंगभेदोंऽगशोषश्च मिम्मिणत्वंचकल्लता॥१०६॥ प्रत्यष्ठीलाष्ठीलिकाचवामनत्वंचकुब्जता ॥ अंगपीडांगशूलंच संकोचस्तंभरूक्षताः॥१०७॥अंगभंगोंऽगविभ्रंशो विड्ग्रहोबद्धविट्कता॥मूकत्वमतिजृम्भास्यादत्युद्गारोंऽत्रकूजनम्॥१०८॥ वातप्रवृत्तिःस्फुरणं शिराणां पूरणं तथा ॥ कंपःकार्श्यश्यावता च प्रलापःक्षिप्रमूत्रता॥१०९॥निद्रानाशःस्वेदनाशोदुर्बलत्वं बलक्षयः॥ अतिप्रवृत्तिःशुक्रस्यकार्श्यनाशश्चरेतसः ॥११०॥ अनवस्थितचित्तत्वंकाठिन्यंविरसास्यता॥कषायवक्त्रताध्मानंप्रत्याध्मानंचशीतता॥१११॥रोमहर्षश्चभीरुत्वंतोदःकंडूरसाज्ञता ॥ शब्दाज्ञताप्रसुप्तिश्चगंधाज्ञत्वं दृशःक्षयः ॥११२॥

अर्थ—वादीका रोग ८० प्रकारका ऋषियोंने कहा है । उनके नाम कहते हैं १ आ-

---

१ रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यंत पीडा हो और उसमेंसे ताँबेके रंगका क्लेद बहे । उसमें चिमचिम वेदना होय. स्निग्ध अथवा रूखे पदार्थसे शांत न होय. उस सूजनमें खुजली होय और निकरे ।

२ दो दोषोंके वातरक्तमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं. वातपित्त, वातकफ, कफपित्त इन दो दोषोंके लक्षण जिसमें हों उसे द्विदोषज जानना ।

३ जिस कालमें वायु कुपित होकर सब धमनी नाडीनमें जायकर प्राप्त होय, तब उस बारंबार संचार करके देहको आक्षिप्त करती है. अर्थात् हाथीपर बैठनेवाले पुरुषके समान चलायमान करती है उस वारवार चलनेको आक्षेपरोग कहते हैं ।

१ हनुस्तंभ २ ऊरुस्तंभ ३ शिरोग्रह ४ बाह्यायाम ५ अभ्यंतरायाम ६ पार्श्वशूल ७ कटिग्रह ८ दंडापतानक ९ खल्ली १० जिह्वास्तंभ ११ अर्दित १२ पक्षाघात १३ क्रोष्टुशीर्ष १४ मन्यास्तंभ १५ पंगु १६ कलायखंज १७ तूनी १८ प्रतितूनी १९

१ जिह्वाके अतिघर्षण करनेसे, चना आदि सूखी वस्तुके खानेसे, अथवा किसी प्रकारकी चोटके लगनेसे, हनुमूल (कपोल) के अर्थात् डाढकी जडमें रहा जो वायु सो कुंपित होकर हनुमूलको नीचेकर मुखको खुलाही रख दे, अथवा मुखको बंद करदे, उसको हनुस्तंभ अथवा हनुग्रह कहते हैं।

२ वायु कफ और मेद इनसे मिलकर जाँघोंमें जाके जाँघोंको जड करके जकडता है. उस करके जाँघें अचेतन होती हैं, हिलने चलनेका सामर्थ्य नहीं रहता उसको ऊरुस्तंभ कहते हैं।

३ वायु रुधिरका आश्रयकर मस्तकके धारण करनेवाली नाडीनको रूखी, पीडायुक्त और काली करदे यह शिरोग्रह रोग असाध्य है. इसको शिराग्रहभी कहते हैं।

४ बाहरकी नसोंमें रहती जो वात सो बाह्यायाम अर्थात् पीठको बाँकी करदे, उरःस्थल, जाँघों और कमरको मोडदे. ऐसे इस रोगको पंडित असाध्य बाह्यायाम कहते हैं।

५ पैरकी उँगली; घोंटू, हृदय, पेट, उरःस्थल और गला इन ठिकानोंमें रहनेवाला वायु सो वेगवान् होकर वहांके नसोंके जाल उसको सुखाय बाहर निकालदे, उस मनुष्यके नेत्र स्थिर होजायँ भेंज रहिजाय, पसवाडोंमें पीडा होय, मुखसे कफ गिरे और जिस समय मनुष्य धनुषके सदृश नीचेको नमजाय तब वह बली वायु अन्तरायाम रोगको करे. इसको धनुर्वात भी कहते हैं।

६ कोष्ठाशयमें वायु कुपित होकर पसवाडोंमें शूलकरे उसको पार्श्वशूल कहते हैं।

७ जो वायु कमरको स्तंभन करे उसको कटिग्रह कहतेहैं।

८ वायु अत्यंत कफयुक्त होकर सब धमनी नाडीनमें प्राप्त होकर सब देहको दंड (लकडी) के समान तिरछा करदे यह दंडापतानक रोग कष्टसाध्य है।

९ जो वायु पैर, जंघा, ऊरू और हाथके मूलमें कंपन करे उसको खल्ली (मलाम्नाय) रोग कहतेहैं।

१० वायु वाणीकी बहनेवाली नाडीनमें प्राप्तहो जिह्वाका स्तंभन करदे, उसको जिह्वास्तंभ रोग कहते हैं. यह अन्न पान तथा बोलनेकी सामर्थ्यका नाशकरे।

११ ऊँचे स्वरसे वेदादिकका पाठ करनेसे अथवा कठिन पदार्थ सुपारीआदिके खानेसे बहुत हँसने और बहुत जंभाईके लेनेसे, ऊँचे नीचे स्थानमें सोनेसे, विषमाशन (विरुद्ध भोजन) के करनेसे कोपको प्राप्तभई जो वायु सो मस्तक, नाक, होठ, ठोढ़ी, ललाट और नेत्र इनकी सन्धिनमें प्राप्त हो मुखमें पीडा करे अर्थात् अर्दित रोगको उत्पन्न करे। उस पुरुषका मुख आधा टेढ़ा होजाय, उसकी नाड मुडे नहीं, मस्तक हिलाकरे, अच्छीतरह बोला नहीं जाय, नेत्र, भ्रुकुटी, गाल इनकी विकृति कहिये पीडा, फरकना, टेढा होना इत्यादि होंय और जिस तरफ अर्दित रोग होय उस तरफकी नाड, ठोढी और दाँत इनमें पीडा होय. इस व्याधिको अर्दित रोग कहते हैं।

१२ वायु आधे शरीरको पकड सब शरीरकी नसोंको सुखायकर दहने अंगको अर्धनारीश्वरके समान कार्य करनेको असामर्थ्य करदे और संधिके बंधनोंको शिथिल करदे पीछे उस रोगीके सब वा आधे अंग हिलेचलें नहीं और उसको देखने स्पर्श करने आदिका थोडाभी ज्ञान नहीं रहै, इसको एकांगरोग अथवा पक्षवध किंवा पक्षाघात कहतेहैं।

१३ वातरक्तसे जानु, घंटू इन दोनोंकी संधिमें अत्यंत पीडाकारक सूजन हो और स्यारके मस्तकसमान मोटी हो, उसको क्रोष्टुशीर्ष कहते हैं।

२० खंज २१ पादहर्ष २२ गृध्रसी २३ विश्वाची २४ अवबाहुक २५ अपत॰ २६ व्रणायाम २७ वातकंटक २८ अपतानक २९ अंगभेद ३० अंगशोष ३१ मि॰

१४ दिनमें सोनेसे, अन्न, स्थान, ऊँचेको विकृतिपूर्वक देखनेसे इनकारणोंसे कोपको प्राप्तहुई वात सो कफयुक्त होकर मन्यानाडीको स्तंभनकरे । इस रोगको मन्यास्तंभ कहते हैं (अर्थात् ... रहजावे) ।

१५ दोनों जाँघोंकी नसोंको पकड दोनों पैरोंको स्तंभित करदे, उसको पाँगुला कहतेहैं ।

१६ जो पुरुष चलतेसमय थरथर काँपे और खञ्ज अर्थात् एक पैरसे हीन मालूम होय । इस ... संधिके बन्धन शिथिल होते हैं, इस रोगको कलायखंज कहते हैं ।

१७ पक्वाशय और मूत्राशयमें उठी जो पीडा सो नीचे जायकर प्राप्तहो और गुदा तथा उपस्थ ... स्त्रीपुरुषोंके गुह्यस्थान इनमें भेदकरे अर्थात् पीडाकरे, उसको तूनीरोग कहते हैं ।

१८ गुदा और उपस्थ इनसे उठी जो पीडा, सो उलटी ऊपर जायकर प्राप्तहो और, जोरसे पक्वा... यमें प्राप्तहो और तूनीके समान पीडा करे, उसको प्रतितूनी अथवा प्रतूनी भी कहते हैं ।

---

१ कमरमें रहा जो वात सो जंघाकी नसोंको ग्रहण कर. एक पगको स्तंभित करदेय, उसको (लोडा) रोग कहतेहैं ।

२ जिसके पैर हर्षयुक्त (कहिये झनझनाहट पीडायुक्त:) होंय, उसको पादहर्ष कहतेहैं, यह कफवातके कोपसे होताहै ।

३ प्रथमा स्फिक् कहिये कमरके नीचेका भाग जिसको कूला कहतेहैं उसको स्तंभित करदे॰ क्रमसे कमर, पीठ, ऊरू, जानु, जंघा और पग, इनको स्तंभित करदे, अर्थात् ये रहिजाँय वेदना तोद कहिये चोंटनेकीसी पीडा होय और वारंवार कंप होय, यह गृध्रसीरोग बादीसे होता है और कफसे होय तो इसमें तंद्रा और भारीपना और अरुचि ये विशेष होते हैं ।

४ बाहुके पिछाडीसे लेकर हाथके ऊपर भागपर्यन्त प्रत्येक उँगलियोंके नीचे मोटी नस हैं ... दुष्टकर हाथसे लेना, देना, पसारना, मुट्ठी मारना इत्यादिककार्योंका नाशकर्ता जो रोग होय ... विश्वांची रोग कहते हैं ।

५ कंधामें रहै जो वायु सो नसोंका संकोच करता है, उसको अवबाहुक अथवा अपबाहुक कहते हैं ।

६ दृष्टिका स्तंभन होजाय, संज्ञा जाती रहै गलेमें घुरघुर शब्द होय वायु जब हृदयको छोडे रोगीको होश होय और वायु हृदयको व्याप्तकरै तब फिर मोह होजाय इस भयंकर रोगको अ... कहते हैं. गर्भपातके होनेसे, अथवा अतिरिक्तस्रावके होनेसे, अथवा अभिघात कहिये दंडादिकोंकी लगनेसे जो प्रगट अपतन्त्रक रोग सो असाध्य है ।

७ जो वायु अभिघातकरके व्रण उत्पन्न होनेसे उसमें पीडा करताहै, उसको व्रणायाम कहते हैं ।

८ ऊंची नीची जगहमें पैर पडनेसे, अथवा श्रमके होनेसे वायु कुपित होकर टकनामें प्राप्त ... पीडाकरे, उस रोगको वातकंटक कहतेहैं ।

९ रूक्षादि स्वकारणोंसे कोपको प्राप्तहुई जो वायु सो अपने स्वस्थानको छोड ऊपर जायकर और हृदयमें जायकर पीडा करे, मस्तक और कनपटी इनमें पीडा करे और देहको धनुषकी नवाय देवे और चलै तो मूर्छित करदे वह रोगी बडे कष्टसे श्वास लेय, नेत्र मिचजावें, अथवा ... होजाँय, कबूतरके समान गूँजे, तथा बेहोश होय इस रोगको अपतानक कहते हैं ।

३२ कलता ३३ प्रत्यष्ठीलिका ३४ अष्ठीला ३५ वामनत्वे ३६ कुब्जत्वे ३७ अंगपीडा ३८ अंगशूल ३९ संकोच ४० स्तंभ ४१ रूक्षता ४२ अंगभंग ४३ अंगविभ्रंश ४४ विड्ग्रह ४५ बद्धविट्कता ४६ मूकत्वे ४७ अतिजृंभ ४८ अत्युद्गार ४९ अंत्रकूजन ५० वातप्रवृत्ति ५१ स्फुरण ५२ शिरापूरण ५३ कंपवायु ५४ कार्श्य ५५ श्यावता

१० जो वायु सब अंगोंका भेद करता है अर्थात् अंगमें फूटन उपजाता है उसको अंगभेद कहते हैं।
११ जो वायु सब अंगोंको सुखाय देता है उस रोगको अंगशोष कहते हैं।
१२ कफयुक्त वायु शब्दके बहनेवाली नाडीमें प्राप्त होकर मनुष्योंके वचनको क्रियारहित मिन्मिण ऐसा करदे मिम्मिण कहिये गिनगिनायकर नाकसे बोलना।

१ जिस वायु करके कण्ठमें स्पष्ट शब्द नहीं निकले है उसको कलरोग कहते हैं।
२ जो वाताष्ठीला अत्यन्त पीडायुक्त हो वात, मूत्र, मलकी रोधन करनेवाली और तिरछी प्रगट भई होय उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं।
३ नाभिके नीचे उत्पन्न हो और इधर उधर फिरे, अथवा अचल अष्ठीला गोल, पाषाणके समान कठिन और ऊपरका भाग कुछ लंबा होय और आडी कुछ ऊँची होय और बहिर्मार्ग कहिये अधोवायु, मल, मूत्र, इनका अवरोध कहिये रुकना हो ऐसी गाँठको अष्ठीला अथवा वाताष्ठीला कहते हैं।
४ दुष्ट हुआ वायु गर्भाशयमें जाकर गर्भको विकार करता है. उस करके मनुष्य बोना होता है, इस रोगको वामनरोग कहते हैं।
५ शिरागत वायु दुष्ट होकर पीठ, अथवा छातीको कुबडा करदे उसको कुब्जरोग कहते हैं।
६ जिस वायुकरके सब अंगोंको पीडा होती है उस रोगको अंगपीडा कहते हैं।
७ जिस वायुकरके सब अंगोंमें शूल (चमका) चले उसको अङ्गशूल कहते हैं।
८ जिस वायुकरके सब अंगोंका संकोच (सुकडना) होय उसको संकोच कहते हैं।
९ जिस वायुकरके सब अंगोंका स्तंभ होवे (सब अंग स्तब्ध होवे) उसको स्तंभ कहते हैं।
१० जो वायु शरीरको तेजहीन करता है, उसको रूक्ष कहते हैं।
११ जिस वायुकरके अंगमें पीडा होती है उसको अंगभंग कहते हैं।
१२ जिस वायुकरके शरीरका कोई एक अवयव काष्ठ (लकडी) के समान चेतनारहित हो उसको अंगविभ्रंश कहते हैं।
१३ जिस वायुकरके मलका अवरोध हो अर्थात् मल साफ नहीं निकले उसको विड्ग्रह कहते हैं।
१४ जिस वायुकरके मल पक्काशयमें संघट्ट (गाढा) हो उसको बद्धविट्क कहते हैं।
१५ कफयुक्त वायु शब्दके बहनेवाली नाडीनमें प्राप्त होकर मनुष्योंको वचनक्रियारहित करदे उसको मूकरोग कहते हैं।
१६ वायु दुष्ट होकर जंभाई बहुत लावे उसको अतिजृंभ कहते हैं।
१७ आमाशयमें वायु दुष्ट होनेसे बहुत डकार आती हैं उसको अत्युद्गार कहते हैं।
१८ जो वायु पक्वाशयमें रहकर आँतोंमें जाकर शब्द करता है. उसको अन्त्रकूजन कहते हैं।
१९ जो वायु गुदाके द्वारा बाहर निकले उसको वातप्रवृत्ति कहते हैं।
२० जिस वायुकरके अंग फुरफुराता है उसको स्फुरण कहते हैं।
२१ वायु शिरा (नाडी) गत होनेसे शूल, नाँडीका संकोच और स्थूलत्व करे और बाह्यायाम, आभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुबडापन इन रोगोंको उत्पन्न करे। इसको शिरापूरण कहते हैं।

६६ प्रलाप ६७ क्षिप्रमूत्रता ६८ निद्रानाश ६९ स्वेदनाश ६० दुर्बलत्व ६१ ब
६२ शुक्रातिप्रवृत्ति ६३ शुक्रकार्श्य ६४ शुक्रनाश ६५ अनवस्थितचित्तत्व ६६ का
६७ विरसास्यता ६८ कषायवक्त्रता ६९ आध्मान ७० प्रत्याध्मान ७१ शै
७२ रोमहर्ष ७३ भीरुत्व ७४ तोद ७५ कंडू ७६ रसाज्ञता ७७ शब्द

---

२२ सब अंगोंको और मस्तकको कंपावे उस वायुको वेपथु (कंप) वायु कहते हैं।

२३ जो वायु सब अंगोंको कृश करदे उसको कार्श्य कहते हैं।

२४ जिस वायु करके सब शरीर काले वर्णका हो जावे उसको श्याव कहते हैं।

---

१ अपने हेतुसे कुपित भई जो वात सो असंबद्ध (अर्थरहित) वाणी बोले अर्थात् बकवाद अथवा बड़बड़ शब्द करे उसको प्रलाप कहते हैं।

२ जिस वायु करके वारंवार मूते उसको क्षिप्रमूत्ररोग कहते हैं।

३ जिस वायु करके निद्रा न आवे उसको निद्रानाश कहते हैं।

४ जिस वायु करके शरीरको स्वेद (पसीना) नहीं आवे उसको स्वेदनाश कहते हैं।

५ जिस वायु करके पुरुषका बल हीन होवे उसको दुर्बलता (दुबलेपना) कहते हैं।

६ जिस वायु करके शरीरके बलका क्षय होवे उसको बलक्षय कहते हैं।

७ शुक्रस्थानकी वायुका कोप होनेसे वह वायु बहुत शुक्र (वीर्य) को जल्दी पतन करे उसको [illegible]तिपात कहते हैं।

८ जो वायु शुक्र (वीर्य) धातुको क्षीण करदे उसको शुक्रकार्श्य कहते हैं।

९ जिस वायु करके शुक्र (वीर्य) नाश होवे उसको शुक्रनाश कहते हैं।

१० जिस वायु करके मन इन्द्रीको स्वस्थता नहीं रहती है उसको अनवस्थितचित्तत्व कहते हैं।

११ जिस वायु करके शरीर कठिन रहता है उसको काठिन्य कहते हैं।

१२ जिस वायु करके मुखमें स्वाद नहीं रहै उसको विरसास्य कहते हैं।

१३ जिस वायु करके मुख कषैला होवे उसको कषायवक्त्र कहते हैं।

१४ गुडगुड शब्दयुक्त, अत्यन्त पीडायुक्त ऐसा उदर (पक्वाशय) अत्यन्त फूले अर्थात् [illegible] भरकर चमडेकी थैलीके समान होजाय इस भयंकर रोगको आध्मान कहते हैं यह वातके [illegible] होती है।

१५ वही पूर्वोक्त आध्मान रोग आमाशयमें उत्पन्न होय तो उसको प्रत्याध्मान कहते हैं। इसमें [illegible] वाडे और हृदय इनमें पीडा नहीं होय और वायु कफ करके व्याकुल होता है।

१६ जिस वायु करके देह शीतल होय उसको शैत्य रोग कहते हैं।

१७ वायु त्वचागत होनेसे सब शरीरमें रोमांच खडे हों. उसको रोमहर्ष कहते हैं।

१८ जिस वायु करके भय उत्पन्न होता है उसको भीरुरोग कहते हैं।

१९ जिस वायु करके शरीरमें सुई चुभानेकीसी पीडा हो उसको तोद कहते हैं।

२० जिस वायु करके शरीरमें खुजली चले उसको कण्डू कहते हैं।

२१ जो मनुष्य भोजन करे उसकी जीभको मधुर (मीठा) खट्टा इत्यादिक रसोंका ज्ञान न [illegible] उस रोगको रसाज्ञान कहते हैं।

२२ कान इन्द्रीमें वायु कुपित होनेसे शब्दका ज्ञान जाता रहै अर्थात् कोई शब्द करे सो [illegible] आवे नहीं उसको शब्दाज्ञान कहते हैं।

७८ प्रसुप्ति ७९ गंधाज्ञत्व और ८० दृशःक्षय इसप्रकार वादीके अस्सी भेद जानने।

पित्तरोग।

अथ पित्तभवारोगाश्चत्वारिंशदिहोदिताः ॥ धूमोद्गारो विदाहःस्यादुष्णांगत्वं मतिभ्रमः ॥ ११३ ॥ कांतिहानिःकंठशोषो मुखशोषोऽल्पशुक्रता ॥ तिक्तास्यताम्लवक्त्रत्वं स्वेदस्रावोंऽग पाकता॥ ११४॥क्लमोहरितवर्णत्वमतृप्तिःपीतकामता॥रक्तस्रावोंऽगदरणंलोहगंधास्यतातथा॥ ११५॥ दौर्गंध्यं पीतमूत्रत्वमरतिः पीतविड्ता ॥ पीतावलोकनंपीतनेत्रतापीतदंतता ॥ ११६॥ शीतेच्छापीतनखतातेजोद्वेषोऽल्पनिद्रता ॥ कोपश्चगात्रसादश्चभिन्नविड्त्वमंधता ॥ ११७ ॥ उष्णोच्छ्वासत्वमुष्णत्वं मूत्रस्यचमलस्यच ॥ तमसोऽदर्शनं पीतमण्डलानां च दर्शनम् ॥ ११८॥ निःसरत्वं च पित्तस्य चत्वारिंशद्रुजः स्मृताः ॥

अर्थ-पित्तरोग ४० चालीस प्रकारका है उनके नाम कहते हैं-१ धूमोद्गार २ विदाह ३ उष्णांगत्व ४ मतिभ्रम ५ कांतिहानि ६ कंठशोष ७ मुखशोष ८ अल्पशुक्रता

---

१ जिस वायु करके त्वचामें स्पर्श करनेसे मृदु, कठिन, शीत, उष्ण पदार्थका ज्ञान नहीं होवे उसको प्रसुप्ति कहते हैं।

२ जिस वायु करके घ्राणेंद्रियका ज्ञान जाता रहे अर्थात् सुगंध वा दुर्गंध कुछभी समझनेमें नहीं आवे उसको गंधाज्ञान कहते हैं।

३ जिस वायु करके दृष्टिका नाश होता है अर्थात् कुछ पदार्थ नहीं दीखता उसको दृशःक्षय (दृष्टिका नाश) कहते हैं।

४ डकार आते समय मुखमेंसे धुआँसा निकले वह धूमोद्गाररोग पित्तके कुपित होनेसे होता है।

५ जिस पित्तसे शरीरमें बहुत दाह होय उसको विदाह कहते हैं।

६ जिस पित्तसे सब अंग उष्ण होवे उसको उष्णांग कहते हैं।

७ जिस पित्तकरके बुद्धिकी चेष्टा ठिकानेपर न रहे उसको मतिभ्रम कहते हैं।

८ जिस पित्तकरके शरीरके तेजका नाश होता है उसको कांतिहानि कहते हैं।

९ जिस पित्तकरके कंठका शोष (सूखना) होता है उसको कंठशोष कहते हैं।

१० जिस पित्तकरके मुख सूखजाता है उसको मुखशोष कहते हैं।

११ जिस करके शुक्र (वीर्य) थोडा उत्पन्न होवे उसको अल्पवीर्य जानना।

९ तिक्तास्यता[1] १० अम्लवक्त्रत्व[2] ११ स्वेदस्राव[3] १२ अंगपाकता[4] १३ क्लम[5] १४ ह
तवर्णत्व[6] १५ अतृप्ति[7] १६ पीतकायता[8] १७ रक्तस्रावे[9] १८ अंगदरण[10] १९ लोहगं
स्यता २० दौर्गंध्ये[12] २१ पीतमूत्रत्व[13] २२ अरति[14] २३ पीतविट्कता[15] २४ पीतावलो
२५ पीतनेत्रता[17] २६ पीतदंतता[18] २७ शीतेच्छो[19] २८ पीतनखता[20] २९ तेजोद्वेषे[21] ३० अ
निद्रता[22] ३१ कोप[23] ३२ गात्रसाद[24] ३३ भिन्नविट्कत्व[25] ३४ अंधता[26] ३५ उष्णोच्छ्

---

१ जिस पित्तसे मुख कडआ होता है उसको तिक्तास्य कहते हैं ।
२ जिस पित्तकरके मुख खट्टासा रहे उसको अम्लवक्र कहते हैं ।
३ जिस पित्तसे देहमें पसीना बहुत आवे उसको स्वेदस्राव कहते हैं ।
४ जिस पित्तसे अंग पकजाय उसको अंगपाक कहते हैं ।
५ जिस पित्तके योगसे शरीरमें ग्लानि उत्पन्न होय उसको क्लम कहते हैं ।
६ जिस पित्त करके देहका वर्ण हरा, नीला होजावे उसको हारितवर्ण कहते हैं ।
७ जिस पित्तके योगसे कितना भी अच्छा भोजन पान किया हो तोभी भोजनपानकी इच्छा नि नहीं होती है उसको अतृप्ति कहते हैं ।
८ जिसमें सब शरीरका वर्ण पीला दीखे उसको पीतकाय कहते हैं ।
९ जिस पित्तसे स्रोतों (छिद्रों) में से अर्थात् मुख, नाक, आदिसे रुधिरका स्राव होवे उ रक्तस्राव कहते हैं ।
१० जिस पित्तसे अंग फटजाय उसको अंगदरण कहते हैं ।
११ जिस पित्तसे मुखमेंसे अग्निमें तपाये लोहेके गंधके सदृश गंध आवे उसको लोहगंधास्य कहे
१२ जिस पित्त करके सब अंगसे बुरा गंध आवे उसको दौर्गंध्य कहते हैं ।
१३ जिस पित्त करके मूत्रका वर्ण पीला होवे उसको पीतमूत्र कहते हैं ।
१४ जिस पित्तकरके मनकी कभी पदार्थमें प्रीति नहीं रहती है उसको अरति कहते हैं ।
१५ जिस पित्तकरके मल (विष्ठा) का वर्ण पीला होवे इसको पीतविट्क कहते हैं ।
१६ जिस पित्त करके पुरुष सब पदार्थोंका पीला वर्ण देखे उसको पीतावलोकन कहते हैं ।
१७ जिस पित्तकरके नेत्र पीले वर्णके रहें उसको पीतनेत्र कहते हैं ।
१८ जिस पित्तसे दाँत पीले वर्णके होवें उसको पीतदंत कहते हैं ।
१९ जिस पित्तसे पुरुषको शीतल जलादिककी इच्छा रहे उसको शीतेच्छा कहते हैं ।
२० जिस पित्तसे पुरुषके नख पीले हों उसको पीतनख कहते हैं ।
२१ जिस पित्तसे पुरुषसे सूर्यादिकोंका तेज नहीं देखा जाय उसको तेजोद्वेष कहते हैं ।
२२ जिस पित्तसे पुरुषको निद्रा थोडी आवे उसको अल्पनिद्रता कहते हैं ।
२३ जिस पित्तकरके पुरुषको हर किसीभी पदार्थपर सदा क्रोध आवे उसको कोप कहते हैं ।
२४ जिस पित्तसे शरीरके संधिभाग दूखें उसको गात्रसाद कहते हैं ।
२५ जिस पित्तसे पुरुषका मल (विष्ठा) पतला होवें उसको भिन्नविट्क कहते हैं ।
२६ जिस पित्तसे दृष्टिसे कुछ देखनेमें नहीं आवे उसको अंध कहते हैं ।
२७ जिस पित्तसे नासिकाके द्वारा गरम गरम पवन निकले उसको उष्णोच्छ्वास कहते हैं ।

३६ उष्णमूत्रत्व ३७ उष्णमलत्व ३८ तमोदर्शन ३९ पीतमंडलदर्शन और ४० निःसरत्व। इस प्रकार चालीस प्रकारका पित्तरोग जानना।

कफरोग।

कफस्य विंशतिः प्रोक्ता रोगास्तंद्रातिनिद्रता ॥ ११९ ॥ गौरवंमुखमाधुर्यं मुखलेपः प्रसेकता ॥ श्वेतावलोकनंश्वेतविड्त्वंश्वेतमूत्रता ॥ १२० ॥ श्वेतांगवर्णताशैत्यमुष्णेच्छातिक्तकामिता ॥ मलाधिक्यंचशुक्रस्यबाहुल्यंबहुमूत्रता ॥ १२१ ॥ आलस्यंमन्दबुद्धित्वं तृप्तिर्घर्घरवाक्यता ॥ अचैतन्यं च गदिता विंशतिः श्लेष्मजागदाः ॥१२२॥

अर्थ–कफरोग वीस प्रकारका है जैसे १ तन्द्री २ अतिनिद्रा ३ गौरव ४ मुखमीठा रहना ५ मुखलेप। ६ प्रसेकता ७ श्वेतदेखना ८ श्वेतविष्ठाका उतरना ९ श्वेतमूत्रहोना १० देहका वर्ण सफेद होना ११ शैत्यता १२ उष्णेच्छा १३ तिक्तकामिता १४ मलाधिक्य

---

१ जिस पित्तसे पुरुषका मूत्र गरम उतरे उसको उष्णमूत्र कहते हैं।
२ जिस पित्तसे मल (विष्ठा) गरम उतरे उसको उष्णमल कहते हैं।
३ जिससे नेत्रके सामने अंधेरासा दीखे उसको तमोदर्शन कहते हैं।
४ जिस पित्तसे देहके ऊपर पीले वर्णके चकत्ते देखनेमें आवें उसको पीतमंडलदर्शन कहते हैं।
५ जो पित्त मुख तथा नासिकाके द्वारा गिरे उसको निःसर कहते हैं।
६ जिससे नेत्र भारी होते हैं उसको तंद्रा कहते हैं।
७ जिस कफसे बहुत निद्रा आवे उसको अतिनिद्रता कहते हैं।
८ जिस कफसे सब शरीरमें जडता हो उसको गौरव कहते हैं।
९ जिस कफसे मुखमें निरंतर मीठासा स्वाद आता रहे उसको मुखमाधुर्य कहते हैं।
१० जिस कफसे मुख कफकरके लिपटारहे उसको मुखलेप कहते हैं।
११ जिस कफसे मुखमेंसे लार गिराकरे उसको प्रसेक कहते हैं।
१२ जिस कफसे सब पदार्थ सफेद दीखें उसको श्वेतावलोकन कहते हैं।
१३ जिस कफसे मल (विष्ठा) सफेद उतरे उसको श्वेतविट्क कहते हैं।
१४ जिस कफकरके मूत्र सफेद उतरे उसको श्वेतमूत्र कहते हैं।
१५ जिस कफसे सब अंगोंका वर्ण सफेद हो जाय उसको श्वेतांगवर्ण कहते हैं।
१६ जिससे शर्दी बहुत होवे उसको शैत्य कहते हैं।
१७ जिस कफ करके उष्ण सूर्य अग्नि आदिके तापकी इच्छा होवे उसको उष्णेच्छा कहते हैं।
१८ जिस कफकरके तिक्त पदार्थ (मिरच) आदिके खानेकी इच्छा चले उसको तिक्तकामिता कहते हैं।
१९ जिस कफके योगमें मल (विष्ठा) बहुत उतरे उसको मलाधिक्य कहते हैं।

१५ शुक्रबाहुल्य[1] १६ बहुमूत्रता[2] १७ आलस्य[3] १८ मन्दबुद्धि[4] १९ तृप्ति[5] २० घर्घरवाक्य[6] २१ अचैतन्य[7] इसप्रकार कफके वीसरोग जानने । परंतु यहाँ संख्याकरनेपर २१ होते हैं सो और उष्णेच्छा एक माननेसे संख्या ठीक हो जाती है ।

रक्तरोग ।

रक्तस्यच दशप्रोक्ताव्याधयस्तस्यगौरवम् ॥ रक्तमंडलता रक्तनेत्रत्वंरक्तमूत्रता॥१२३॥ रक्तष्ठीवनतारक्तपिटिकानां चदर्शनम् ॥ उष्णत्वं पूतिगंधित्वं पीडापाकश्च जायते ॥ १२४॥

अर्थ–रुधिरसे उत्पन्न होनेवाले १० रोग हैं । जैसे १ गौरव[8] २ रक्तमंडलता[9] ३ रक्तनेत्र[10] ४ रक्तमूत्रता[11] ५ रक्तष्ठीवनता[12] ६ रक्तपिटिकादर्शन[13] ७ उष्णत्व[14] ८ पूतिगंधित्व[15] ९ पीडा[16] और १० पाक[17] ऐसे दश प्रकारके रक्तरोग हैं ।

ओष्ठरोग ।

चतुःसप्ततिसंख्याका मुखरोगास्तथोदिताः॥तेष्वोष्ठरोगागणिता एकादशमिताबुधैः ॥ १२५ ॥ वातपित्तकफैस्त्रेधात्रिदोषैरसजस्तथा ॥ क्षतमांसार्बुदंचैव खंडौष्ठश्च जलार्बुदम् ॥ १२६॥

---

१ जिस कफकरके शुक्र (वीर्य) बहुत होवे तथा उतरे उसको शुक्र बाहुल्य कहतेहैं ।
२ जिस कफकरके मूत्र बहुत उतरे उसको बहुमूत्र कहतेहैं ।
३ जिस कफसे मनुष्य भारी रहे, कोई काम करनेमें उत्सुकता नहीं रहे उसको आलस्य कहते हैं ।
४ जिस करके बुद्धि मंद होवे उसको मंदबुद्धि कहते हैं ।
५ जिस कफकरके खाने पीनेमें इच्छा न चले उसको तृप्ति कहते हैं ।
६ जिस कफसे बोलते समय कंठमेंसे घरड घरड आवाज निकले उसको घर्घरवाक्य कहते हैं ।
७ जिस कफसे मनुष्य चैतन्यतामें मंद होय उसको अचैतन्यता कहतेहैं ।
८ जिस रक्तसे अंग जड होताहै उसको रक्तगौरव कहते हैं ।
९ जिस रक्तसे शरीरके ऊपर लालवर्णके चकत्ते उठें उसको रक्तमंडल कहते हैं ।
१० जिस रक्तसे नेत्र लालवर्णके हों उसको रक्तनेत्र कहते हैं ।
११ जिस रक्तसे लालवर्णका मूत्र मूते उसको रक्तमूत्र कहते हैं ।
१२ जिस रक्तसे लालवर्णका थूके उसको रक्तष्ठीवन कहते हैं ।
१३ जिस रक्तसे लालवर्णके फोडे (फुन्सी) अंगपर दीखें उसको रक्तपिटिकादर्शन कहतेहैं ।
१४ जिस रक्तसे शरीरमें गरमी मालुम हो उसको उष्णत्व कहतेहैं ।
१५ जिस रक्तसे शरीरमेंसे दुर्गंध आवे उसको पूतिगंध कहते हैं ।
१६ शरीरमें रक्तकरके जो पीडा होती है उसको रक्तपीडा कहते हैं ।
१७ शरीरमें जो रुधिर पकताहै उसको रक्तपाक कहतेहैं ।

मेदोऽर्बुदंचार्बुदंचरोगाएकादशौष्ठजाः॥

अर्थ–मुखके रोग चौहत्तर हैं उनमें ओष्ठरोग ग्यारह प्रकारके हैं जैसे १ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ संनिपातज ५ रक्तज ६ क्षतज ७ मांसार्बुद ८ खंडौष्ठ ९ जलार्बुद १० मेदोर्बुद ११ अर्बुद ये ओष्ठके ग्यारह रोग हैं।

दंतरोग।

दन्तरोगादशाख्याता दालनःकृमिदंतकः॥१२७॥ दंतहर्षःकरालश्च दंतचालश्च शर्करा॥ अधिदंतःश्यावदंतो दंतभेदःकपालिका१२८॥

अर्थ–दाँतके १० रोग हैं उनको कहते हैं १ दालन[१२] २ कृमिदंत[१३] ३ दंतहर्ष[१४]

---

१ बादीके कोपसे होठ कर्कश, खरदरे, कठोर, काले होतेहैं उनमें तीव्र पीडा हो और दो टुकडोंके समान होजाते हैं तथा होठकी त्वचा किंचित् फटजाती है।

२ पित्तसे होठ चारोंओरसे फुन्सीनसे व्याप्तहों, उनमें पीडा होय, तथा पक जावें और पीलेसे दीखें।

३ कफसे होठ त्वचाके समान वर्णवाले फुन्सीनसे व्याप्त होंय, कुछ दूखें, तथा मलाईके समान चिकने और शीतल तथा भारी होंय।

४ सन्निपातसे होठ कभी काले, कभी पीले, उसीप्रकार कभी सफेद, तथा अनेक प्रकारकी फुन्सीनसे व्याप्त होंय।

५ रक्तसे होठोंमें खजूर फलके वर्णकी फुन्सी होय उनमेंसे रुधिर गिरे, तथा वह होठ रुधिरके समान लाल होय।

६ अभिघातसे (चोट लगनेसे) होठ सर्वत्र चिरजाय, पीडा होय, उनमें, गाँठ होजाय तथा खुजली चलते समय पीव बहै।

७ मांस दुष्ट होनेसे होठ जड (भारी) मोटे होतेहैं मांसपिंडके समान ऊँचे होंय इस रोगवाले मनुष्यके दोनों होठोंमें अथवा होठोंके प्रांतभागमें कीडे पडजावें।

८ होठोंके एक भागमें चीराजावे और उसमेंसे स्राव होय उसको खंडौष्ठ कहते हैं।

९ मांसके भाग बढके होठ ऊँचे और मोटे होकर उनमेंसे पानी स्रवे उसको जलार्बुद कहते हैं।

१० मेदसे होठ घृतके झागसमान खुजलीसंयुक्त तथा भारी होंय, तथा उनसे स्फटिकके समान निर्मल स्राव बहुत होय इसमें भया हुआ व्रण नहीं भरता है तथा उसमें मृदुता नही रहती है।

११ वातादिक दोष कुपित होनेसे होठोंमें ग्रंथि उत्पन्न होती है, उसको अर्बुद कहते हैं।

१२ जिसकेदाँतोंमें फोडनेकीसी पीडा होय, उसको दालनरोग कहते हैं यह रोग बादीसे होताहै।

१३ बादीके योगसे दाँतोंमें काले छिद्र पड जाँय, तथा हिलनेलगें उनमेंसे स्राव होय, शोथयुक्त पीडा होनेवाले और कारण विना दूखनेवाले ऐसे दाँत होयँ, उसको कृमिदंतरोग कहते हैं यहां दांतोंमें काले छिद्र पडनेका यह कारण है कि दुष्टरुधिरसे कृमि (कीडा) पैदा होकर दांतोंमें छिद्र करते हैं।

१४ शीतल, रुक्ष, खटाई इत्यादि पदार्थ और पवन इनके लगनेको जो दांत नहीं सहिसकें, उसको दंतहर्ष कहते हैं यह रोग पित्तवायुके कोपसे होता है यह रोग वातज होनेपरभी उष्ण (गरमी) को नहीं सहि सके, यह व्याधिका स्वभाव है।

५ कराल ५ दंतचाल ६ दंतशर्करा ७ अधिदंत ८ श्यावदंत ९ दंतभेद और १० कपालि इस प्रकार दश भेद जानने ।

दंतमूलरोग ।

तथा त्रयोदशमिता दंतमूलामयाः स्मृताः ॥ शीतादोपकुशौ द्वौतुदंतविद्रधिपुप्पुटौ ॥ १२९ ॥ अधिमांसो विदर्भश्च महासौषिरसौषिरौ ॥ तथैवगतयः पंचवातात्पित्तात्कफादपि ॥ १३० ॥ संनिपातगतिश्चान्या रक्तनाडीचपंचमी ॥

अर्थ-अब दंतमूलके रोगोंको कहते हैं । तहां दाँतकी जडके रोग तेरह हैं । जैसे शीताद २ उपकुश ३ दंतविद्रधि ४ पुप्पुट ५ अधिमांस ६ विदर्भ ७ महासौषिर ८ सौ-

---

१ बादी धीरे धीरे मसूढेका आश्रय लेकर दांतोंको टेढे तिरछे करे उसको करालरोग कहते हैं यह रोग साध्य नहीं होता ।

२ बादीके योगसे तिस तिस अभिघातादिक करके हनुसंधि (ठोढी)में चोट लगनेसे दाँत चलायमान होजाँय उसको दंतचाल अथवा हनुमोक्ष कहते हैं ।

३ दांतोंका मल पित्तवायुके प्रभावसे सूखकर रेतके समान खरदरा स्पर्श मालूम होय, उस को दंतशर्करा कहते हैं ।

४ बादीके योगसे दाँतके ऊपर दूसरा दाँत ऊगे उससमय पीडा होय जब वह दाँत ऊगआवे तब पीडा शांत होय उसको अधिदंत अथवा खल्लीवर्द्धन कहते हैं ।

५ जो दाँत रुधिरसे मिले पित्तसे जलेके समान सब काले होजाँय उसको श्यावदंत कहते हैं ।

६ जिस व्याधिकरके मुख टेढा होकर दाँत फूटने लगें, उसको दंतभेद कहते हैं यह व्याधि वात करके होती है इस दंत भंगकारी दोषके प्रभावसे मुखभी टेढा होता है ।

७ कपाल कहिये मट्टीके बडा आदिके जैसे टूक होते हैं ऐसे दांत मलकरके सहित होजाँय उसको कपालिका ऐसे कहते हैं यह रोग दांतोंका सदा नाश करता है ।

८ जिसके मसूढेमेंसे अकस्मात् रुधिर बहे और दांतोंका मांस दुर्गंधयुक्त, काला, पीवसहित नरम होकर गिरे और एक दांतका मसूढा पकनेसे दूसरे मसूढेको पकावे. इस कफरुधिरसे व्याधिको शीताद नाम कहते हैं ।

९ जिसके मसूढेमें दाह होकर पाक होय और दांत हिलने लगें, मसूढोंमें घिसनेसे रुधिर पीडाके साथ, निकले, रुधिर निकलनेके पिछाडी फिर मसूढे फूल आवें और मुखमें बास आवे । पित्तरक्तकृत विकारको उपकुश कहते हैं ।

१० वातादिक दोष और रक्तकुपित होकर दांतोंके मसूढोंके भीतर और बाहर सूजन करे रुधिरसे मिली राध गिरावे, पीडा और दाह होय इसको दंतविद्रधि कहते हैं ।

११ जिसके दो अथवा तीन दांतोंकी जडमें महान् सूजन होय, उसको दंतपुप्पुट रोग कहते हैं यह व्याधि कफरक्तसे होती है ।

१२ जिसके पीछेकी डाढके नीचे अर्थात् मसूढेमें बहुत सूजन होय और घोर पीडा होय, लार बहुत बहे, उसको अधिमांसक कहते हैं । यह कफके कोपसे होता है ।

९ वातनाडी १० पित्तनाडी ११ कफनाडी १२ संनिपातनाडी और १३ रक्तनाडी ऐसे तेरह प्रकारके दंतमूलरोग हैं ।

जिह्वारोग ।

तथा जिह्वामयाः षट् स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥१३१॥ अलस-श्चतुर्थः स्यादधिजिह्वश्चपंचमः ॥ षष्ठश्चैवोपजिह्वः स्यात्-

अर्थ–जीभके रोग छः प्रकारके हैं उनके नाम १ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ अलस ५ अधिजिह्व और ६ उपजिह्व । इस प्रकार जिह्वाके रोग छः प्रकारके हैं ।

---

१३ मसूढे रगडनेसे सूजन बहुत होय और दांत हिलने लगें उसको विदर्भ कहते हैं यह रोग चोटके लगनेसे होता है ।

१४ जिस त्रिदोष व्याधिसे मसूढेके समीपसे दांत हलें और तालुएमें छिद्र पडजायँ, दांत और होठ भी फटजाय, उसको महासौषिर रोग कहते हैं । यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मार डालता है ।

१५ कफरुधिरसे दांतोंकी जडमें सूजन होय,उसमें पीडा और स्राव होय, उसको सौषिररोग कहतेहैं ।

---

१ दंतमूलमें व्रण होनेसे उसके बीच नली होजाती है । उस नलीमेंसे दुर्गंधयुक्त राध बहने लगे उस को नाडी कहते हैं । जिसमें वात दुष्ट होनेसे शूलादिक होते हैं उसको वातनाडी कहते हैं ।

२ उस पूर्वोक्त नाडीकी नलीमें दाहादिक पित्तके लक्षण होनेसे पित्तनाडी जानना ।

३ जिस नाडीमेंसे गाढी और सफेद राध बहे उसमें खुजली और जडपना इत्यादिक कफके लक्षण हों उसको कफनाडी कहते हैं ।

४ जो नाडी तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होती है, उसको संनिपातनाडी कहते हैं ।

५ जिस नाडीमेंसे लाल वर्णकी और दाहयुक्त राध बहे और उसमें पित्तके दाहादिक लक्षण हों उस को रक्तनाडी कहते हैं ।

६ वादीसे जीभ फटीसी, प्रसुप्त (अर्थात् रसका ज्ञान जाता रहे) और पर्वतीय वृक्षके पत्रसमान कांटेयुक्त खरदरी हो ।

७ पित्तसे जीभ पीली हो, उसमें दाह होय तथा लंबे लंबे तांबेके समान कांटे होंय, इस रोगको लौ-किकमें जाली अथवा जोडी कहते हैं ।

८ कफसे जीभ मोटी भारी होती है और उसमें सेमरकेसे कांटके समान मांसके अंकुर होते हैं ।

९ जीभके नीचे कफरुधिरसे प्रगट ऐसी भयंकर सूजन होय उसको अलस कहते हैं उसके बढनेसे स्तंभ होय तथा जीभके मूलमें सूजन होय. यह रोग असाध्य है ।

१० कफरक्तके विकारसे जीभके ऊपर जीभके अग्रभागके समान अंकुर आवे उसको अधिजिह्व कहते हैं ।

११ कफरुधिरसे जिह्वाग्रके समान जैसा जीभका आगेका भाग होता है ऐसी सूजन जीभको नीची दबायकर उत्पन्न होय उसके योगसे लार बहुत बहे और उसमें खुजली तथा दाह होय । इस रोगको वैद्य उपजिह्व कहते हैं ।

तालुरोग ।

तथाष्टौ तालुजागदाः ॥ १३२ ॥ अर्बुदंतालुपिटिकाकच्छपी मांससंहतिः॥गलशुंडीतालुशोषस्तालुपाकश्चपुप्पुटः ॥१३३॥

अर्थ–तालुएके रोग आठ प्रकारके हैं। जैसे १ अर्बुद २ तालुपिटिका ३ कच्छपी ४ मांस० ५ गलशुंडी ६ तालुशोष ७ तालुपाक और ८ पुप्पुट ऐसे हैं ।

गलरोग ।

गलरोगास्तथाख्याताअष्टादशमिताबुधैः ॥ वातरोहिणिकापूर्वंद्वितीया पित्तरोहिणी ॥१३४॥ कफरोहिणिकाप्रोक्ता त्रिदोषैरपिरोहिणी॥मेदोरोहिणिकावृंदोगलौघोगलविद्रधिः १३५स्वरहातुंडिकेरीचशतघ्नीतालुकोऽर्बुदम् ॥ गिलायुर्वलयश्चापिवातगंडःकफस्तथा॥१३६॥मेदोगंडस्तथैवस्यादित्यष्टादशकंठजाः

अर्थ–कंठरोग अठारह प्रकारके हैं. जैसे—१ वातरोहिणी २ पित्तरो०

---

१ रुधिरसे तालुएमें कमलकी कर्णिकाके समान सूजन होय और उसमें पीडा थोडी होय उ० अर्बुद कहते हैं ।

२ रुधिरसे तालुएमें लाल, स्तब्ध (लठर ऐसी सूजन होय) उसमें पीडा और ज्वर होय, उसको पिटिका अथवा अध्रुव कहते हैं ।

३ कफसे तालुएमें कछुआकी पीठके समान ऊंची सूजन होय उसमें पीडा थोडी होय वह शीघ्र नहीं, उसको कच्छपी कहते हैं ।

४ कफकरके तालुएमें दुष्ट मांस होकरके जो सूजन होय और वह दूखे नहीं, उसको मांस० कहते हैं ।

५ कफरुधिरसे तालुएके मूलमें फूली बस्तीके समान सूजन होय. इसके प्रभावसे प्यास, खांसी, श्वा० होते हैं इस रोगको गलशुंडी कहते हैं ।

६ वादीसे तालु अत्यंत सूखकर फटजाय, तथा भयंकर श्वास होय, उसको तालुशोष कहते हैं।

७ पित्त कुपित होकर तालुएमें अत्यंत भयंकर पाक (पकी फुन्सी) उत्पन्न करे उसको ता० कहते हैं ।

८ मेदयुक्त कफकरके तालुएमें पीडारहित और स्थिर तथा बेरके समान सूजन होय, उसको ० वा तालुपुप्पुट कहते हैं ।

९ जीभके चारों ओर अत्यंत वेदनायुक्त जो मांसांकुर उत्पन्न होंय, उनसे कंठका अवरोध होवें कंप, विनाम, (कंठ नवै) स्तंभ आदि वातके विकार होते हैं इसको वातरोहिणी कहतेहैं ।

१० पित्तसे प्रगटभई रोहिणी शीघ्रही बढे तथा पके, उसके योगसे तीव्र ज्वर होय।

३ कफरोहिणी ४ संनिपातरोहिणी ५ मेदोरोहिणी, ६ वृन्दे, ७ गलौघ, ८ गलविद्रधि, ९ स्वरहा १० तुंडिकेरी ११ शतघ्नी १२ तालुक १३ अर्बुद १४ गिलायु १५ वलय १६ वातगंड १७ कफगंड १८ मेदोगंड, इसप्रकार अठारह प्रकारके कंठरोग हैं।

मुखान्तर्गतरोग।

मुखांतःसंश्रयारोगा ह्यष्टौख्यातामहर्षिभिः ॥१३७॥ मुखपाकोभवेद्वातात्पित्तात्तद्वत्कफादपि ॥ रक्ताच्चसंनिपाताच्चपूत्यास्योर्ध्वगुदावपि॥१३८॥अर्बुदंचेतिमुखजाश्चतुःसप्ततिरामयाः॥

अर्थ–मुखके भीतरके रोग आठ प्रकारके हैं। जैसे १ वातमुखपाक २ पित्तमुखपाक ३ कफमुखपाक ४ रक्तमुखपाक ५ संनिपातमुखपाक ६ दुर्गंधास्य ७ ऊर्ध्वगुद और ८ अर्बुद। इसप्रकार मुखपाक रोग आठ प्रकारका है।

---

१ जो रोहिणी कंठके मार्गको रोधकरे (रोकदे) तथा हौले हौले पके तथा जिसके अंकुर कठिन होंय, उसे कफजन्यरोहिणी जाननी।

२ त्रिदोषसे उत्पन्न भई रोहिणी गंभीरपाकिनी होती है। तिन करके गला रुक जाताहै ज्वरयुक्त जो उसमें राध बहुत हो जिसमें औषधिका प्रभाव नहीं चले और तीन दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होय यह तत्काल प्राणोंको हरण करे।

३ मेद दुष्ट होनेसे गलेमें फुंसी उत्पन्न होती हैं उसको मेदोरोहिणी कहते हैं।

४ गलेमें ऊंची गोल तीव्रदाह तथा सूजन होय, उसको वृंद कहते हैं यह वृंद रक्तपित्तके कोपसे होता है। इसमें वायुका संबंध होनेसे चोंटनेकीसी पीडा होय।

५ रक्तयुक्त कफसे गलेमें भारी सूजन होय उसके योगसे कंठमें अन्नजलका अवरोध (रुकावट) होय, तथा वायुका संचार होय नहीं, इसको गलौघ कहतेहैं।

६ जो सूजन सब गलेमें व्याप्त होवे, तथा जिसमें सर्वप्रकारकी पीडा हो उसको विद्रधि कहते हैं।

७ वायुका मार्ग कफसे लिप्त होनेसे वारंवार नेत्रोंके आगे अंधकार आकर जो पुरुष श्वासको छोडे, अथवा मूर्च्छा आकर जिसका श्वास निकले, जिसका स्वर भिन्न होय, कंठ सूखे, और विमुक्त कहिये कंठ स्वाधीन नहीं, अर्थात् थोडा भी अन्न खायाहो तथापि कंठके नीचे न उतरे इस वातजरोगको स्वरहा (स्वरघ्न) कहते हैं।

८ वादीके योगसे मुखमें सर्वत्र छाले होजांय और चिनमिनावें, मुख, जिह्वा, गला, होठ, मसूडे, दांत और तालु इन सबमें व्याप्त होता है। इस रोगको मुखपाक (मुखआना) अथवा सर्वसर कहते हैं।

९ पित्तसे मुखमें लाल तथा पीले छाले होंय और दाह होवे।

१० कफसे मुखमें मंद पीडा और त्वचाके समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होंय।

११ रक्तके कोपसे मुखमें लाल फोडे होते हैं उनके लक्षण पित्तके सदृश होंय। उसको रक्तज मुखपाक कहतेहैं।

कर्णरोग ।

कर्णरोगाःसमाख्याता अष्टादशमिताबुधैः ॥ १३९ ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्संनिपाताच्चविद्रधिः॥शोथोऽर्बुदंपूतिकर्णःकर्णार्शः कर्णहल्लिका ॥१४०॥बाधिर्यंतंत्रिकाकंडूःशष्कुलिः कृमिकर्णकः ॥ कर्णनादः प्रतीनाह इत्यष्टादश कर्णजाः ॥ १४१ ॥

अर्थ—कर्णरोग १८ प्रकारके है जैसे—१ वात २ पित्त ३ कफ ४ रक्त ५ संनि- ६ विद्रधि ७ शोथ ८ अर्बुद ९ पूतिकर्ण १० कर्णार्श ११ कर्णहल्लिका १२ बा-

---

१२ मुखमें जो फोडे होतेहैं उनमें वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षण मिलनेसे उन्हें संनि- मुखपाक कहतेहैं ।

१३ मुखमें फोडेकीसी दुर्गंध आवे उसको पूत्यास्य अर्थात् दुर्गंधमुख कहते हैं ।

१४ मुखमें जो फोडे होतेहैं उनके फूटनेसे उनका आकार गुदाके सदृश होवे उसको उर्ध्व- कहतेहैं ।

१५ संनिपातके योगसे मुखमें गोल आकारवाली ग्रंथि उत्पन्न होतीहै उसको अर्बुद कहतेहैं ।

---

१ बादीसे कानमें शब्द होय, पीडा होय, कानका मैल सूखजाय, पतला स्राव होय, सुनाई दे- देवे अर्थात् बहरा होजाय ।

२ पित्तसे कानमें सूजन होय, कान लाल हो, दाह हो, चिरासा होजाय, तथा किंचित् पीला दु- युक्त स्राव होय ।

३ कफके प्रभावसे विरुद्ध सुनना, खुजली चले; कठिन सूजन होय, सफेद और चिकना स्राव होय ।

४ पित्तके लक्षणसे रक्तज कर्णरोग जानना ।

५ संनिपातसे सब लक्षण होंय, स्राव होय, वा जौनसा दोष अधिक होय वैसेही दोषानुसार स्राव होय ।

६ कानमें खुजानेसे व्रण होजाय, अथवा चोटलगनेसे कानमें व्रण होकर विद्रधि होय, उसी वातादि दोषोंकरके दूसरे प्रकारकी विद्रधि होयहै, जब वह फूटे तब उससे लाल पीला रुधिर नोचनेकीसी पीडा होय, धूंआसा निकलता मालूम होवे, दाह होवे चूसनेकीसी पीडा होवे ।

७ सुकुमार स्त्री अथवा बालक कानकी लौरको एकसाथ बहुत बढावे तो कानकी लौरमें सूजन फूलजावे और पूर्ण हो उसको कर्णशोथ कहते हैं ।

८ त्रिदोषके कोपसे कानमें गोलाकार मांसकी फुन्सी उत्पन्न होवे उसको कर्णार्बुद कहतेहैं ।

९ कानमेंसे राध निकले और दुर्गंध आवे उसको कर्णपूति कहते हैं ।

१० वातादिक दोष कुपित होनेसे कानमें मांसके अंकुर उत्पन्न होतेहैं, उनमें शूल, कंडू उपद्रव होते हैं उसको कर्णार्श कहतेहैं ।

१३ तंत्रिका १४ कंडू १५ शष्कुल १६ कृमिकर्णक १७ कर्णनाद और १८ प्रतीनाह । इस प्रकार कानके रोग अठारह प्रकारके जानने ।

कर्णपाली रोग।

कर्णपालीसमुद्भूता रोगाः सप्त इहोदिताः ॥ उत्पातः पालिशोषश्च विदारी दुःखवर्द्धनः ॥ १४२ ॥ परिपोटश्च लेही च पिप्पली चेति संस्मृताः ॥

अर्थ–कर्णपालीके रोग सात प्रकारके हैं। जैसे १ उत्पात २ पालिशोष ३ विदारी ४ दुःखवर्धन ५ परिपोट[1] ६ लेही[12] और ७ पिप्पली ।

---

११ पतंग, कानखजूरा, गिजाई आदिके कानमें घुसनेसे बेचैनी होय, जीव व्याकुल होय और कानमें पीडा होय, तथा कानमें नोचनेकीसी पीडा होय वह कीडा कानमें फडके और फिरे उस समय घोर पीडा होय, और जब वह बंद होय, तब पीडा बंद होय इसको कर्णहल्लिका कहते हैं।

१२ जिस समय केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु शब्द बहनेवाली नाडियोंमें स्थित हो जाय, तब उस पुरुषको शब्द सुनाई नहीं देता अर्थात् बहरा हो जाता है उसको बाधिर्य कहते हैं।

---

१ पित्तादि दोषोंकरके युक्त वायुसे कानोंमें वेणु (बंशी) का शब्द सुनाई देता है, उसको तंत्रिका अथवा कर्णक्ष्वेड कहते हैं ।

२ कफसे मिला हुआ वायु कानोंमें खुजली उत्पन्न करता है उसको कर्णकण्डू कहते हैं।

३ मस्तकमें पाषाण, लकडी आदिका अभिघात होनेसे अथवा पानीमें गोता मारनेसे, अथवा कानमें विद्रधि पकनेसे वायु कुपित होकर कानमेंसे राध बहे उसको कर्णशष्कुलि अथवा कर्णस्राव कहते हैं ।

४ जिस समय कानमें कृमि पडजाँय, अथवा मक्खी अण्डा धरे, तब कृमिके लक्षण होते हैं। इसको कृमिकर्ण कहते हैं ।

५ वायु कानके छिद्रमें स्थित होनेसे अनेक प्रकारके स्वर, तथा भेरी, मृदंग और शंख इनके सदृश शब्द सुनाई देवें इस रोगको कर्णनाद कहते हैं ।

६ जिस समय कानका मैल पतला होकर मुखमें और नाकमें उतरता है उसको प्रतीनाह रोग कहते हैं, इसमें आधा मस्तक दूखता है ।

७ कानमें भारी आभरण (गहना) पहननेसे, चोटके लगनेसे अथवा कानको खींचनेसे रक्त पित्त कुपित होकर कानकी पालिमें हरा, नीला, अथवा लाल सजन होय, उसमें दाह होवे, पीडा होवे और रक्त बहे, इस रोगको उत्पात कहते हैं ।

८ वायुके कोपसे कानकी पाली सूखजाय उसको पालीशोष कहते हैं ।

९ कानकी लौर फटकर उसमें खुजली चले उसको विदारी कहते हैं ।

१० दुष्टरीति करके कानको छेदने तथा बढानेसे खुजली दाह पीडायुक्त सूजन होय, वह पकजाय, उसको दुःखवर्द्धन कहते हैं ।

कर्णमूलरोग ।

कर्णमूलामयाःपंचवातात्पित्तात्कफादपि ॥१४३॥ संनिपाता

अर्थ–कर्णमूलरोगको वात, पित्त, कफ, सन्निपात और रक्त इन भेदोंसे पांच प्रका जानना ।

नासारोग ।

रक्ताच्च तथानासाभवागदाः ॥ अष्टादशैवसंख्याताःप्रतिश्याय स्तुतेष्वपि ॥ १४४ ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्संनिपातेन पं मः ॥ आपीनसःपूतिनासोनासार्शो भ्रंशथुःक्षवः ॥१४५॥नास नाहःपूतिरक्तमर्बुदं दुष्टपीनसम् ॥ नासाशाषो घ्राणपाकःपुट वश्च दीतकः ॥ १४६ ॥

अर्थ–नासारोग कहिये नाकमें होनेवाले रोग अठारह हैं. १ जैसे वातप्रतिश्याय २ पि प्रतिश्याय ३ कफप्रतिश्याय ४ रक्तप्रतिश्याय ५ संनिपातप्रतिश्याय ६ आ

---

११ सुकुमार स्त्री अथवा बालकोंके कानोंमें अलंकार (गहने) पहनानेके लिये प्रथम छिद्र क कई दिन उनमें गहने नहीं पहने, फिर किसी कालमें कानमें गहने पहननेका समय आवे तब ये छिद्र होनेके वास्ते कानमें सींक आदि डालकर बढानेको चाहे, तब उससे काले वर्णकी वा लाल वर्णकी उत्पन्न होवे, उसमें पीडा होवे, वह बादीसे होती है, उसको परिपोट कहते हैं ।

१२ कफ, रक्त, कृमिसे उत्पन्न भई तथा सर्वत्र विचरनेवाली जो सूजन कानकी पालीमें होय कानकी पालीको खाय जाय अर्थात् उसका मांस झरने लगे उसको परिलेही ऐसे कहते हैं ।

१३ कानको बलपूर्वक पालीमें (लौरमें) वायु कुपित होकर कफको संग लेकर कठिन तथा पीडायुक्त सूजनको प्रगट करे, उसमें खुजली चले इस कफवातजन्य विकारको पिप्पली अथवा उ कहते हैं ।

---

१ कानके नीचे मूलकी जगहपर गौंठके आकार सूजन उत्पन्न हो । उसमें जिस दोषको कोप हो उसके लक्षण होते हैं । जैसे वायुका कोप होनेसे पीडा होती है, पित्तका कोप होनेसे दाह हो कफका कोप होनेसे खुजली होती है, संनिपातसे तीनों लक्षण होते हैं और रक्तसे दाह होता है प्रकार करके पांच कर्णमूल रोग जानने ।

२ जिसके नाकका मार्ग रुकजाय, आच्छादित होजाय और उसमेंसे पतला पानी गला, तालु, होठ ये सूख जाँय और कनपटी दूखे, गला बैठजाय ये वातके प्रतिश्याय (पीनस लक्षण जानने ।

३ जिसकी नाकसे दाहै और पीला स्राव निकले, वह मनुष्य पीला और कृश होजाय उष्ण गरम रहे, नाकसे अग्निके समान धूआँ निकले ये पित्तके पीनसके लक्षण हैं ।

७ पूतिनास ८ नासार्श ९ भ्रंशथु १० क्षव ११ नासानाह १२ पूतिरक्त १३ अर्बुद १४ दुष्टपीनस १५ नासाशोष १६ घ्राणपाक १७ पुटस्राव और १८ दीप्तक ऐसे ये अठारह नासिकाके रोग हैं ।

---

४ नाकसे सफेद पीला बहुत कफ गिरे, उसकी देह सफेद होजाय, नेत्रोंके ऊपर सूजन होय और मस्तक भारी रहे तथा गला, तालु, तथा होठ और शिर इनमें खुजली विशेष चले, ये कफके पीनसके लक्षण हैं ।

५ रुधिरकी पीनसमें नाकसे रुधिर गिरे, नेत्र लाल होय, उरःक्षतकी पीडाके सदृश पीडा होय, श्वास अथवा मुखमें वास आवे, दुर्गंधिका ज्ञान नहीं होय ये रक्तके पीनसके लक्षण हैं ।

६ जिसके नाकमें वात, पित्त, कफके पीनसके लक्षण होंय, तथा वह पीनस वारंवार होकर पककर अथवा विना पके नष्ट होजाय उसको संनिपातकी पीनस कहते हैं । यह विदेह आचार्यके मतसे साध्य है ।

७ जिसके नाक रुकजाय, वात, शोणित कफसे नाक भीतरमें सूखासा रहे, गलिा रहे, धुआँसा निकले, जिसके, नाकमें सुगंध, दुर्गंध मालुम न हो उसके पीनस प्रगट भई जाननी । इस वातजन्य विकारको आपीनस कहते हैं ।

---

१ गले और तालुएमें दुष्टभया पित्त रक्तादिदोषकरके वायुमिश्रित होकर नाक और मुखके मार्गसे दुर्गंधि निकले इस रोगको पूतिनास वा पूतिनस्य कहते हैं ।

२ वात, पित्त, कफ ये दूषित होकर, त्वचा, मांस और मेदा इनको दूषित करते हैं उससे नाकमें मांसके अंकुर उत्पन्न होते हैं उसको नासार्श कहते हैं ।

३ सूर्यकी गरमी करके, मस्तक तप्तहोनेसे पूर्व संचितभया विदग्ध, गाढा, खारी, ऐसा कफ नाकसे गिरे, उस व्याधिको भ्रंशथुरोग कहते हैं ।

४ नासिकाश्रित मर्म (शृंगाटक मर्म) के विषे वायु दुष्ट होकर कफसहित भारी शब्दको नासिकाके बाहर निकाले, इसको क्षव (छींक) कहते हैं ।

५ वायुसहित कफ श्वासके मार्गको बंद करे, तब नाकका स्वर अच्छीरीतिसे नहीं चले, इसको नासानाह कहते हैं ।

६ जो दुष्ट होनेसे अथवा कपालमें चोट लगनेसे नाकमेंसे राध और रुधिर बहे, इसको पूतिरक्त अथवा पूयरक्त कहते हैं ।

७ वातादिदोष कुपित होनेसे नाकमें ऊँची गाँठ उत्पन्न होती है उसको नासार्बुद कहते हैं ।

८ वारंवार जिसकी नाक झडा करे और सूखजाय नाकसे अच्छी तरह श्वास नहीं आवे, नाक रुकजाय और फिर खुलजाय । श्वास लेनेमें वास आवे तथा उस रोगीको सुगंध दुर्गंधिका ज्ञान न रहै । ऐसे लक्षण होनेसे इसको दुष्ट प्रतिश्याय वा दुष्ट पीनस कहते हैं यह कष्टसाध्य है ।

९ वायुसे नासिकाका द्वार अत्यंत तप्त होकर सूखजाय, तब मनुष्य बडे कष्टसे ऊपर नीचेको श्वास लेय, उस रोगको नासाशोष कहते हैं ।

१० जिसकी नाकमें पित्त दूषित होकर फुन्सी प्रगट करे और नाक भीतरसे पकजाय उसको घ्राणपाक कहते हैं ।

११ नाकसे गाढा, पीला अथवा सफेद, पतला दोष (कफ) स्रवे, उसको पुटस्राव कहते हैं ।

१२ नाक अत्यंत दाहयुक्त होनेसे उसमें वायु धुआँके सदृश विचरे और नाक प्रदीप्त अर्थात् गरम होवे उसको दीप्तक कहते हैं ।

शिरोरोग ।

तथा दश शिरोरोगा वातेनार्धावभेदकः ॥ शिरस्तापश्च वाते पित्तात्पीडातृतीयका ॥ १४७ ॥ चतुर्थी कफजापीडा रक्तात् संनिपातजा ॥ सूर्यावर्ताच्छिरःपाकात्कृमिभिः शंखकेनच ॥ १४८

अर्थ—मस्तकरोग दश प्रकारका है । जैसे—१ अर्धावभेदक २ वातजशिरोभि ३ पित्तजशिरोभिताप ४ कफजशिरोभिताप ५ रक्तजशिरोभिताप ६ सन्निपातजशि रोभिताप ७ सूर्यावर्त्त ८ शिरःपाक ९ कृमिज और १० शंखक ऐसे मस्तकके दश रोग

१ रूखे अन्नसे, अत्यंत भोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), पूर्व दिशाकी पवन करनेसे, बर्फसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिका वेग धारण करनेसे, परिश्रम और दंडकसरत करनेसे कारणोंसे कुपित भई जो केवल वात अथवा कफयुक्त वायु सो आधे मस्तकको ग्रहणकर मन्या भृकुटी, कनपटी, कान, नेत्र, ललाट ये सब एक ओरसे आधे दूखें, कुल्हाडीसे घाव क कीसी, अथवा अरणिके (आंच लगानेके काष्ठके) मथनेकीसी पीडा होय उसको अ भेदक अर्थात् आधाशीशी कहते हैं । यह रोग जब बहुत बढ जाता है तब एक ओरके क बहरापन होजाता है । अथवा एक ओरकी आँख मारी जाती है जिस ओरको पीडा होय उ उपद्रव होते हैं ।

२ जिसका मस्तक अकस्मात् दूखे और रात्रीमें विशेष दूखे, बाँधनसे अथवा सेकनेसे हो, उसको वातजाशिरस्ताप कहते हैं ।

३ जिसका मस्तक अंगारसे तपायेके समान गरम होवे और नाकमें दाह होय, शीतल किंवा रात्रिमें शांतहो, उस मस्तकशूलको पित्तका जानना ।

४ जिसका मस्तक भीतरसे कफकरके लिप्त (ल्हिसासा) होवे, भारी, बँधासा और शीतल तथा नेत्र सुजाकर मुखको सुजाय देवे इस मस्तकरोगको कफके कोपका जानना ।

५ रक्तजन्य मस्तकरोगमें पित्तकृत मस्तकरोगके सब लक्षण होते हैं तथा मस्तकका स्पर्श जाता यह विशेष होता है ।

६ त्रिदोषसे उत्पन्न मस्तकरोगमें वात, पित्त कफ इन तीनोंके लक्षण होते हैं ।

७ सूर्यके उदय होनेसे धीरेधीरे मस्तक दूखनेका आरंभ होय और जैसे जैसे सूर्य बढे वैसे वह शूल नेत्र और भ्रुकुटी (भौंह) में दो प्रहर दिन बढेतक बढता जाय और सूर्यके साथ फिर जैसे सूर्य अस्त होय तैसे २ पीडा मंद होतीजाय, शीतल और गरम उपचार करनेसे सुख होय इस संनिपातिक विकारको सूर्यावर्त कहते हैं ।

८ मस्तकके रुधिर, वसा, कफ और वायु इनके क्षय होनेसे अत्यंत भयंकर मस्तकशूल हो छींक बहुत आवे, मस्तक गरम होवे, तथा उसमें स्वेदन, वमन, धूमपान, नस्य और रुधिर ये कर्म करनेसे यह मस्तकशूल बढता है इसको शिरःपाक अथवा क्षयजाशिरोरोग कहते हैं ।

९ जिसके मस्तकमें टाँकीके तोडनेकीसी पीडा होवे, तथा कृमि भीतरसे मस्तक खाय

कपालरोग।

तथा कपालरोगाःस्युर्नवतेषूपशीर्षकम् ॥ अरुंषिकाविद्रधिश्च दारुणंपिटिकार्बुदम् ॥ १४९ ॥ इन्द्रलुप्तं च खालित्यं पलितं चेति ते नव ॥

अर्थ—कपालके रोग नव प्रकारके हैं। जैसे १ उपशीर्षक २ अरुंषिका ३ विद्रधि ४ दारुण ५ पिटिका ६ अर्बुद ७ इन्द्रलुप्त ८ खालित्य और ९ पलित। ऐसे नव प्रकारके कपालके रोग हैं।

-करदेवे, तथा भीतरसे मस्तक फडके तथा नाकमें रुधिर, राध और कीडे पडें यह कृमिजशिरोरोग बडा भयंकर है।

१० दुष्टभये जो पित्त रक्त और वायु सो विशेष बढकर नेत्रोंमें भयंकर सूजन उत्पन्न करें इसमें घोर पीडा होय, घोर दाह होय तथा नेत्र लाल बहुतहों यह विषके वेगके समान बढकर गलेमें जाकर गलेको रोकदे इस शंखक रोगसे रोगीके तीन दिनमें प्राणोंका नाश होवे इन तीन दिनमें कुशल वैद्यकी औषध पहुँचनेसे रोगी बचे, परंतु प्रथम निश्चयकरके चिकित्सा करना।

---

१ वातादिक दोष कुपित होनेसे मस्तकके समीप माथेके ऊपरके भागपर सूजन उत्पन्न होती है उसको उपशीर्षक कहते हैं।

२ रुधिर, कफ और कृमिके कोपसे माथेमें बहुत फुन्सी होजांय उनमेंसे चेप विशेष निकले और क्लेद युक्त होय इन फुन्सीको अथवा व्रणोंको अरुंषिका कहते हैं।

३ वातादिक दोषोंसे माथेमें गांठ होकर पके और फूटे उसमें शूल दाह ये होंय उसको विद्रधि कहते हैं।

४ कफ वायुके कोपसे केशोंकी जमीन अति कठिन होकर खुजावे, खबरदारी होय तथा बारीक फुन्सी होकर पके उसको दारुण कहते हैं कफवातके कोपसे यह रोग होताहै इसका कारण यह है कि, विनापित्तके पाक नहीं होय।

५ त्रिदोषके कोपसे मस्तकमें गोल फुन्सी होती है उससे शूल दाह आदि पीडा होवे उसको पिटिका कहते हैं।

६ माथेमें वातादि दोष कुपितहोकर रुधिर और मांसको दूषितकर मोटी और गोल ऐसी गांठ उत्पन्न करे उसमें पीडा थोडी होवे उसकी जड नीचे रहती है यह गांठ बहुत देरमें बढती और बहुत देरमें पकती है उसको अर्बुद ऐसे कहते हैं।

७ पित्तवादीके साथ कुपित होकर रोमकूपोंमें अर्थात् बालोंके छिद्रोंमें प्राप्त हो, तब मस्तक अथवा अन्यस्थानके बाल झडने लगें पीछे कफ और रुधिर रोमकूप कहिये बालोंके प्रगटहोनेके स्थानको रोकदे उससे फिर बाल नहीं ऊगे इस रोगको इन्द्रलुप्त अर्थात् चाईरोग कहते हैं यह रोग स्त्रियोंके नहीं होता कारण यह कि, उसका रुधिर महीनेके महीने शुद्ध होता है और निकलतारहता है इसीसे वह रोमकूपोंको नहीं रोकता।

८ इंद्रलुप्त सदृशही खालित्यरोगके लक्षण हैं। तहां इंद्रलुप्त रोग मूँछ डाढीमें होता है और खालित्य रोग शिरमें होता है।

९ क्रोध, शोक और श्रमके करनेसे शरीरमें उत्पन्न भई जो ऊष्मा (गरमी) और पित्त सो मस्तकमें जायकर बालोंको पकायदे अर्थात् सफेद करदे यह पलित रोग होताहै।

वर्त्मरोग ।

तथानेत्रभवाः ख्याताश्चतुर्नवतिरामयाः ॥ १५० ॥ तेषुवर्त्मगदाः प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिसंज्ञिताः ॥ कृच्छ्रोन्मीलः पक्ष्मशातः कफोत्क्लिष्टश्च लोहितः ॥ १५१ ॥ अरुङ्निमेषः कथितो रक्तोत्क्लिष्टः कुकूणकः ॥ पक्ष्मार्शः पक्ष्मरोधश्च पित्तोत्क्लिष्टश्च पोथकी ॥ १५२ ॥ श्लिष्टवर्त्माचबहलः पक्ष्मोत्संगस्तथार्बुदम् ॥ कुंभिकासिकतावर्त्मालगणोऽजननामिका ॥ १५३ ॥ कर्दमःश्याववर्त्मादि बिसवर्त्म तथालजी ॥ उत्क्लिष्टवर्त्मेतिगदाः प्रोक्ता वर्त्मसमुद्भवाः ॥ १५४ ॥

अर्थ-नेत्रके रोग ९४ हैं उनमें पलकोंके रोग २४ हैं, जैसे । १ कृच्छ्रोन्मील[1] २ पक्ष्मशात[2] ३ कफोत्क्लिष्ट[3] ४ लोहित[4] ५ अरुङ्निमेष[5] ६ रक्तोत्क्लिष्ट[6] ७ कुकूणक[7] ८ पक्ष्मार्श[8] ९ पक्ष्मरोध[9] १० पित्तोत्क्लिष्ट[10] ११ पोथकी[11] १२ श्लिष्टवर्त्म[12] १३ बहल[13] १४ पक्ष्मो-

---

१ वातादि दोष जब कोएके मार्गको संकुचित करें तब मनुष्य नेत्रको उघाड कर नहीं देख सके उस रोगको कुंचन अथवा कृच्छ्रोन्मील कहते हैं ।

२ पलकोंकी जडमें रहनेवाला पित्त कुपित होकर नेत्रोंके बाल जिनको बरुनी अथवा वांफणी कहते हैं उनका नाश करे नेत्रोंमें खुजली चले और दाह होय, उसको पक्ष्मशात कहते हैं ।

३ कोएमें अल्पपीडा तथा बाहरसे सूजा हुआ अत्यंत कीचडसे व्याप्त हो उसको कफोत्क्लिष्ट अथवा प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं ।

४ रुधिरके संबंधसे नेत्रके कोएके भीतरके भागमें लाल तथा नरम अंकुर बढे उसको शोणितार्श अथवा लोहित कहते हैं इसको जैसे जैसे काटे तैसे तैसे बढता है इस रक्तज व्याधिको विदेहाचार्य अ... मानते हैं ।

५ वर्त्माश्रित (कोएमें आस्थित) जो वायु सो निमेष (कहिये पलकके उघाडने मूंदनेवाली न...) प्रविष्ट होकर वारंवार पलकोंको चलायमान करे उसको अरुङ्निमेष (नेत्रका मिचकाना) कहते हैं । यह रोग संन्निपातज है ।

६ नेत्रके कोएमें लंबे खरदरे कठिन दुःखदायक ऐसे मासांकुर होतेहैं उसको शुष्कार्श अथवा रक्तोत्क्लिष्ट कहते हैं ।

७ दूधके विकारसे छोटे बालकोंके नेत्रमें खुजली, दाह और वारंवार स्राव होताहै उसको कुकूणक कहते हैं।

८ ककडीके बीजके बराबर, मंदपीडायुक्त, पृथक् ऐसी फुन्सी कोएमें उठे उसको पक्ष्मार्श कहते हैं यह संनिपातात्मक है ऐसा निमि और विदेह आचार्यका मत है ।

९ जिसके नेत्रके कोयोंमें सूजनसे नेत्रके बराबर सूजन आयजावे उससे उस मनुष्यको कुछ नहीं दीखे इस रोगको पक्ष्मरोध वा वर्त्मबंध कहते हैं ।

१० बादीसे चलायमान कोएके बाल नेत्रमें प्रवेश करें और वे वारम्वार नेत्रसे रगडेजांय ह...

१५ अर्बुद १६ कुंभिका १७ सिकतावर्त्म १८ अलंगण १९ अंजननामिका २० कर्दम २१ श्यावबर्त्म २२ बिसवर्त्म २३ अलजी और २४ उत्क्लिष्टवर्त्म । इस प्रकार चौवीस प्रकारके पलकोंके रोग हैं ।

–नेत्रके काले वा सफेद भागमें सूजन होय, वह केश (बाल) जडसे टूटजावें, अतएव इस व्याधिको पक्ष्मकोप, उपपक्ष्म, अथवा पित्तोत्क्लिष्टभी कहतेहैं ।

११ कोयोंमें लाल सरसोंके समान रुधिरस्रावयुक्त, खुजलीसंयुक्त, भारी, तथा पीडासंयुक्त ऐसी फुन्सी होय उसको पोथकी कहते हैं ।

१२ नेत्रके वर्त्म धोनेसे अथवा नहीं धोनेसे वारंवार चिपकजावे, कोए पककर राधसे नहीं चिकटैं तो इस रोगको अक्लिष्टवर्त्म अथवा क्लिष्टवर्त्म कहते हैं ।

१३ नेत्रका कोया त्वचाके समान वर्ण तथा कठिन फुन्सीसे व्याप्त होय, उस रोगको बहल-वर्त्मरोग कहते हैं ।

१४ नेत्रके ढकनेवाली वाफणी अर्थात् कोएमें फुन्सी होय और उसका मुख भीतर होय, वह, लाल बडी तथा खुजली संयुक्त होय, उसको पक्ष्मोत्संग पिटिका कहते हैं, यह त्रिदोषजन्यहै ।

---

१ नेत्रके कोएके भितर गोल, मंद वेदनायुक्त, कुछ लाल, जल्दी बढनेवाली ऐसी जो गाँठ होय उसको अर्बुद कहते हैं, यह संनिपातज है ।

२ पलकोंके समीप कुंभिकाके बीजके समान फुन्सी होय वह पककर फूटजाय और फूटकर वहे उसको कुंभिका कहते हैं, कोई आचार्य कहते हैं कि, कच्छदेशमें दाडिम (अनार) के बीजके आकार कुंभिका होती है ।

३ कोएमें जो पिडिका कठिन और बडी होकर सर्वत्र छोटी छोटी फुन्सियोंसे व्याप्त होय उसको वर्त्मशर्कर, अथवा सिकतावर्त्म कहते हैं ।

४ नेत्रके कोएमें बेरके समान बडी कठिन खुजलीसंयुक्त चिकनी गाँठ होय उसको अलगण कहते हैं यह रोग कफजन्य है इसमें पीडा और पकना; नहीं होता ।

५ दाह तोद (चोंटनी) संयुक्त, लाल, नरम, छोटी, मंद पीडा करनेवाली ऐसी फुन्सी नेत्रके कोएमें होय उसको अंजना कहते हैं. यह संनिपातज है ।

६ क्लिष्टवर्त्मरोग (जो पूर्व कहा) फिर पित्तयुक्त रुधिरको दहनकरे तब वह दही दूध, माखनके समान गीला होजाय अतएव इस व्याधिको वर्त्मकर्दम कहते हैं ।

७ जिसके नेत्रके कोएके बाहर अथवा भीतर काली सूजन तथा पीडा होय । उसको श्याववर्त्म कहते हैं यह वाताधिक त्रिदोषजन्य है ।

८ तीनों दोष कुपित होकर नेत्रके कोयोंको सुजाय देवें, तथा उनमें छिद्र होजाय, उन कोयोंमेंसे कमलतंतुके समान भीतरसे पानी झरे इस रोगको बिसवर्त्म कहते हैं ।

९ नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें ताँबेके समान बडी फुन्सी उठे उसको अलजी कहतेहैं ।

१० जिसके नेत्रके पलक पृथक् पृथक् होंय, तथा जिसके पलक मीचें और खुलें नहीं ऐसे नेत्रके कोए मिले नहीं उसको उत्क्लिष्टवर्त्म कहते हैं । इसकोही शालाक्यसिद्धांतवाला वातहतवर्त्म कहता है ।

नेत्रसंधिगरोग ।

नेत्रसंधिसमुद्भूता नवरोगाः प्रकीर्तिताः ॥ जलस्रावः कफस्रावो रक्तस्रावश्च पर्वणी ॥ १६६ ॥ ॥ पूयस्रावः कृमिग्रन्थिरुपनाह स्तथालजी ॥ पूयालस इति प्रोक्ता रोगानयनसंधिजाः ॥ १६६ ॥

अर्थ–नेत्रोंकी संधिके रोग नौ हैं । जैसे १ जलस्रांव २ कफस्रांव ३ रक्तस्रांव ४ पर्वणी ५ पूयस्रांव ६ कृमिग्रंथि ७ उपनाँह ८ अर्लजी और ९ पूयालस । इस प्रकार नेत्रके रोग हैं ।

नेत्रके सफेदबबूलेके रोग ।

तथाशुक्लगता रोगा बुधैः प्रोक्तास्त्रयोदश ॥ शिरोत्पातः शिराहर्षः शिराजालं च शुक्तिकः ॥ १६७ ॥ शुक्लार्म चाधिमांसार्म प्रस्तार्यर्मचपिष्टकः ॥ शिराजापिटिकाचैवकफग्रंथितकोऽर्जुनः ॥ १६८ ॥ स्नाय्वर्मचाधिमांसः स्यादिति शुक्लगतागदाः ॥

अर्थ-नेत्रके सफेद भागके ऊपर तेरह रोग होते हैं जैसे १ शिरोत्पांत २ शिराहर्ष

---

१ जिसकी संधिमें पित्तसे पीला गरम जल वहे उसको जलस्राव कहते हैं ।

२ जिसमेंसे सफेद, गाढी और चिकनी राध बहे उसको कफस्राव कहते हैं ।

३ जिस विकारमेंसे विशेष गरम रुधिर बहे, उसको रक्तस्राव कहते हैं ।

४ नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें ताँबेके समान छोटी गोल जो फुन्सी होवे और वह फुन्सी दाह होकर पके उसको पर्वणी कहते हैं ।

५ नेत्रकी संधिमें सूजन होकर पके तथा उसमें राध बहे, उसको पूयस्राव कहते हैं । यह सांनिपातात्मक है ।

६ जिसके नेत्रके शुक्लभागकी संधिमें और पलकोंकी संधिमें उत्पन्नहुई अनेक प्रकारकी कृमि खुजली और गाँठ उत्पन्न करे और नेत्रकी पलक और सफेदी भागके संधिमें प्राप्त होकर नेत्रके भीतरी भागको दूषित करे, भीतर फिरे, उसको कृमिग्रंथी कहते हैं ।

७ नेत्रकी संधिमें बडी गाँठ होवे, वह थोडी पके, उसमें खुजली बहुत हो, दूखे नहीं उसे उपनाह कहते हैं ।

८ नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें तांबेके समान बडी फुन्सी उठे उसको अलजी कहते हैं ।

९ नेत्रकी संधिमें सजन होवे और पककर फूटजाय, उसमेंसे दुर्गंधि आवे और राध वहे, तथा तोद (सुईछेदनेकीसी पीडा) होय, उसको पूयालस कहते हैं ।

१० जिसके नेत्रकी नस पीडा सहित अथवा पीडारहित तांबेके समान लाल रंगकी होजाय और बराबर अधिकाधिक (जियादहसे जियादह) लाल होजाय इस रोगको शिरोत्पात (सबलवायु) कहते हैं यह रोग रक्तजन्य है ।

११ अज्ञानकरके शिरोत्पात (सबलवायु) की उपेक्षा करनेसे शिराहर्षरोग होता है । अर्थात् इलाज नकरनेसे शिराहर्ष रोग होताहै उसमें नेत्रोंसे लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरें और उस रोगीको कुछदिखलाई न देवे ।

३ शिराजाल ४ शुक्तिके ५ शुक्रार्म ६ अधिमांसार्म ७ प्रस्तार्यर्म ८ पिष्टक ९ शिराजपिटिका १० कफग्रथितक ११ अर्जुन १२ स्नाय्वर्म १३ अधिमांस इसप्रकार नेत्रके सफेद भागमें होनेवाले १३ रोग जानने।

नेत्रके काले बबूलेके रोग।

तथा कृष्णसमुद्भूताःपंचरोगाः प्रकीर्तिताः॥ १५९॥ शुद्धशुक्रं शिराशुक्रं क्षतशुक्रं तथाजकः॥ शिरासंगश्चसर्वेऽपिप्रोक्ताः कृष्णगतागदाः॥ १६०॥

अर्थ–नेत्रके काले भागमें होनेवाले रोग ५ हैं. जैसे १ शुद्धशुक्र २ शिराशुक्र

---

१ नेत्रके सफेद भागमें शिरा (नस) का समूह जालीके समान होय और वह कठिन तथा रुधिरके समान लाल होवे इसको शिराजाल कहते हैं।

२ नेत्रके सफेद भागमें श्यामवर्ण मांसतुल्य सींपीके समान जो बिन्दु होय उसको शुक्तिक कहतेहैं।

३ नेत्रके शुक्लभागमें सफेद मृदु मांस बहुत दिनमें बढे, उसको शुक्लार्म कहते हैं।

४ नेत्रमें जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजाके समान (कुछ लाल काला) दीखे उसको अधिमांसार्म कहते हैं।

५ नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण, श्यामवर्ण तथा लाल, ऐसा मांस बढे, उसको प्रस्तारिअर्मरोग कहते हैं।

६ कफवायुके कोपसे शुक्लभागमें पिष्ट (पिसा) सा जो मांस बढे उसको पिष्टक कहते हैं, वह मलसे मिले अर्श (बवासीर) के समान होता है।

७ नेत्रके शुक्लभागमें शिरा (नसों) से व्याप्त सफेद फुन्सी होय, उसको शिराजपिटिका कहते हैं। वह कृष्णभागके समीप होती है।

८ नेत्रके सफेद भागमें कांसेके समान कठिन अथवा पानीके बूंदके समान कुछ ऊँची जो गांठ होय उसको कफग्रथितक अथवा बलास कहते हैं।

९ शुक्लभागमें खरगोशके रुधिरके समान जो बिंदु (बूँद) नेत्रमें उत्पन्न होय उसको अर्जुन कहतेहैं।

१० नेत्रमें जा कठिन तथा फैलनेवाला स्रावरहित मांस बढे उसको स्नाय्वर्म कहते हैं।

११ नेत्रके सफेद भागमें लालकमलके सदृश लाल वर्णका और मृदु ऐसा मांस बढता है उसको अधिमांस अथवा रक्तार्म कहते हैं।

१२ नेत्रके काले भागमें अभिष्यंदसे सींग तुमडीकी पीडायुक्त, शंख, चंद्र, कंदपुष्प इनके समान सफेद, आकाशके समान पतला जो व्रणरहित शुक्र कहिये फूला होय उसको शुद्धशुक्र कहते हैं, यह सुखसाध्य है।

१३ जिस शुक्रके बीचका मांस गिरजाय इसीसे शुक्रके स्थानमें गढेला हो जाय, अथवा उसके विपरीत पिशितावृत (अर्थात् उसके चारों और मांस होय) चंचल कहिये एक ठिकाने न रहे, शिराओंकरके व्याप्त हो बारीक होगयाहो, दृष्टिका नाश करनेवाला, दो पटल कहिये परदोंके भीतर भयांहो, चारों ओरसे लाल हो और बीचमें सफेद और बहुत दिनका शुक्र (फूला) हो इसको शिराशुक्र कहतेहैं, यह असाध्य है।

३ क्षतशुक्र ४ अजक ५ शिरासंग । इसप्रकार पांच भेद जानने ।

काचबिंदुरोग ।

काचंतुषड्विधंज्ञेयं वातात्पित्तात्कफादपि ॥ संनिपाताच्चरक्ताच्च षष्ठं संसर्गसंभवम् ॥ १६१ ॥

अर्थ—वातादिदोष कुपितहो दृष्टिके पटलमें प्राप्त हो काँचरोगको प्रगट करते हैं। वह प्रकारका है. जैसे १ वातजे २ पित्तज ३ कफज ४ सन्निपातज ५ रक्तज ६ संसर्गज मोतियाबिंदु छः प्रकारके हैं ।

---

१ नेत्रके काले भागमें शुक्र कहिये फूलासा होजाय और भीतरसे गढासा होय उसमें सुईके समान छिद्र पडाहुआ देखनेमें आवे, तथा, नेत्रोंमेंसे अति गरम और बहुतसा स्राव होवे, इस क्षतशुक्र कहते हैं। इसमें पीडा बहुत होतीहै ।

२ काले भागमें बकरीकी शुष्क विष्ठाके समान, दूखनेवाला लाल हो और गाढा, कुछ काले बहैं उसको अजक कहतेहैं ।

३ नेत्रके कृष्ण भागमें वातादि दोषोंके योगसे चारों ओर सफेद शुक्र (फूला) फैल जावे, उसे पातजन्य शिरासंग अथवा अक्षिपाकात्यय रोग जानना ।

४ दृष्टिके सर्वपटलोंके भीतर कालिकास्थिके समीप पहले पडदेमें तथा दूसरे पडदेमें वातादि प्राप्तहोकर मनुष्य, नेत्रके आगे अनेक प्रकारके स्वरूप देखे उसको तिमिर कहतेहैं । फिर वही कुछदिन रोग दशाको प्राप्त होता है उसको काच (मोतियाबिंदु) कहते हैं ।

५ बादीके काच (मोतियाबिंदु) में रोगीको मलीन, कुछ लाल तिरछी और भ्रमती ऐसी दीखे, इसे वातजकाचबिंदु जानना ।

६ जिस मोतियाबिंदुसे रोगीको सूर्य खद्योत (पटबीजना), इंद्रधनुष बिजली और नाचनेवाले तथा सर्व वस्तु नीली दीखे, वह पित्तजकाचबिंदु कहाता है ।

७ चिकनी और सफेद तथा पानीमें कर निकालनेके समान और भारी ऐसा रूप, कफज काच दीखे ।

८ अनेक प्रकारके विपरीत (अर्थात् एकके अनेक, दो अथवा अनेकप्रकारके रूप दीखें) अंगके अथवा अधिक अंगके रूप दीखे और ज्योतिःस्वरूपसे सब पदार्थ दीखें, इस काचबिंदुको पातज जानना ।

९ रक्तज काचबिंदुरोगमें लाल और अनेक प्रकारका तथा अंधकार किंचित् सफेद, काली और ऐसी वस्तु दीखें ।

१० रक्तके तेजसे मिश्रित हुए पित्तसे संसर्गज काचाबिंदु होता है इसके योगसे रोगीको आकाश और सूर्य ये पीले दीखें उसे सर्वत्र सूर्य ऊगेसे दीखें तथा वृक्षभी तेजस्वरूपसे दीखें, परिम्लायि रोगभी कहते हैं, परिम्लायि पित्तको नील कहते हैं, इस रोगको कोई आचार्य रक्तपित्तज है ऐसा कहते हैं ।

तिमिररोग ।

तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥
संसर्गेण च रक्तेन षष्ठं स्यात्संनिपाततः ॥ १६२ ॥

अर्थ—नेत्रके पटल (पडदे) वातादि दोषोंसे दुष्ट हो तिमिररोगको प्रगट करते हैं । तिस करके मनुष्य नानावर्ण और विपरीत स्वरूप देखता है । उन दोषोंके लक्षण दृष्टिके पहले पटलमें वातादि दोष जानेसे इस प्राणीको रूपवान् पदार्थ धुंधरे २ से दीखें तथा वातादि दोषोंके समान उन पदार्थोंके वर्ण दीखें, अर्थात् बादीसे काजलके समान पित्तसे नीले रंगके, कफसे सफेद रंगके, रुधिरसे लालरंगके और सन्निपातसे अनेक वर्णके दीखते हैं । ऐसे लक्षण सर्व पटलोंमें जानने । दूसरे पडदेमें वातादि दोष जानेसे दृष्टि विह्वल होती है । अर्थात् नेत्रके सामने मच्छर, मुली, बाल, मंडल, जाली, पताका, किरण, कुंडल, वर्षा बादल ये सब अँधेरेके समूह और जालसे देखते हैं । दूरका पदार्थ समीप और समीपका पदार्थ दूर है ऐसा मालूम होवे । बडे यत्नसेभी सुई पिरोनेमें न आवे इत्यादि नेत्रके तीसरे पडदेमें दोष पहुँचनेसे ऊपरके पदार्थ कपडेसे मढेहुयेसे दीखें और नीचेके बिलकुल नहीं दीखें । नाक और कानके विना मुखदीखे इत्यादि । वह तिमिर वात, पित्त, कफ, संसर्ग, रक्त और संनिपात इनसे प्रगट छः प्रकारका है । उनके लक्षण मोतियाबिंदु जो छः प्रकारके प्रथम लिख आये हैं, उसके समान जानना ।

लिंगनाशरोग ।

लिंगनाशः सप्तधा स्याद्वातात्पित्तात्कफेनच ॥
त्रिदोषैरुपसर्गेण संसर्गेणासृजा तथा ॥ १६३ ॥

अर्थ—तिमिररोग नेत्रके चतुर्थ पटल (पर्दे) में पहुँचनेसे संपूर्ण दृष्टिको व्याप्तकर न दीखनेसमान करता है उसको लिंगनाश कहते हैं । वह लिंगनाश १ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य ४ त्रिदोषजन्य ५ उपसर्गजन्य ६ संसर्गज और ७ रक्तज इन सात कारणोंसे सातप्रकारका है ।

---

१ वातके लिंगनाशमें दृष्टिके ऊपर मोटा काँचके समान लाल मंडल होता है, वह चंचल और खरदरा होता है ।

२ पित्तसे दृष्टिमंडल किंचित् नीला तथा कांचके समान पीला होवे ।

३ कफसे भारी, चिकना, कुंदफूलके समान और चंद्रके समान सफेद होय और उसके नेत्रमें हलनेवाले कमलपत्रके ऊपर पानीकी बूँदके समान टेढी तिरछी सफेद बूँद फैलीसी दिखलाई दे ।

४ त्रिदोषज लिंगनाशमें तरह तरहके मंडल होय तथा सर्व दोषोंके लक्षण न्यारे न्यारे दीखे ।

दृष्टिरोग।

अष्टधा दृष्टिरोगाः स्युस्तेषु पित्तविदग्धकम्॥ अम्लपित्तविदग्धं च तथैवोष्णविदग्धकम्॥१६४॥ नकुलांध्यं धूसरांध्यं रात्र्यांध्यं ह्रस्वदृष्टिकः॥ गंभीरदृष्टिरित्येते रोगा दृष्टिगताः स्मृताः॥१६

अर्थ–दृष्टिमंडलमें जो रोग होते हैं उनको दृष्टिरोग कहते हैं वे १ पित्तविदग्ध २ अम्लपित्तविदग्ध ३ उष्णविदग्ध ४ नकुलांध्य ४ धूसरांध्य ६ रात्र्यांध्य ७ ह्रस्वदृष्टि ८ गंभीर ऐसे आठ प्रकारके हैं।

---

५ उपसर्गज अर्थात् अभिघातज लिंगनाश दो प्रकारका है. एक निमित्तजन्य और दूसरा अनिमित्तजन्य. तिनमें शिरोभितापकरके (विषवृक्षके फलसे मिले पवनका मस्तकमें स्पर्श होनेसे) होय उसको निमित्तजन्य कहते हैं. इसमें रक्ताभिष्यंदके लक्षण होते हैं. देव, ऋषि, गंधर्व, महासर्प और इनके सन्मुख दृष्टिको लगाकर (टकटकी लगाकर) देखनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट होय उसे अनिमित्तज लिंगनाश कहते हैं इस रोगमें नेत्र स्वच्छ दीखते हैं और दृष्टि वैडूर्यमणिके समान रंग कहिये श्यामवर्ण होय।

६ संसर्गज लिंगनाशमें पित्त दुष्ट हुए रुधिरसे दूषित होनेसे दृष्टिका मंडल लाल और पीला हो जाता है।

७ रुधिरसे दृष्टिमंडल मूँगाके समान अथवा लाल कमलके समान लाल होवे।

---

१ पित्त दुष्ट होकर वढनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि पीली होय तथा उसके योगसे उस मनुष्यके सब पदार्थ पीले रंगके दीखे, उस दृष्टिको पित्तविदग्ध कहते हैं।

२ अम्लपित्त करके मनुष्यको रद्द करनेके समय दृष्टिको अभिघात होनेसे सर्व. पदार्थ सफेद दीखने लगजाते हैं उस दृष्टि रोगको अम्लपित्तविदग्ध कहते हैं।

३ तीसरे पटलमें दोष (पित्त) जानेसे दिनमें रोगीको नहीं दीखे, रात्रिमें शीतलताके कारण कम होनेसे दीखे इसको उष्णविदग्ध अथवा दिवांध रोग कहते हैं।

४ जिस पुरुषकी दृष्टि दोषोंसे व्याप्त होकर नौलेकी दृष्टिसे समान चमके वह पुरुष दिनमें अनेक प्रकारके रूप देखे, इस विकारको नकुलांध्य कहते हैं।

५ शोक, ज्वर, परिश्रम आर मस्तकताप इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर जिसकी दृष्टिमें प्राप्त होय, उससे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ धूँआके रंगके दीखे इस रोगको धूसरांध्य, धूमदर्शी अथवा धूम विदग्धदृष्टि कहते हैं।

६ जो दोष (कफ) तीनों पटलोंमें रहे वो नक्तांध (रतौंधा) को उत्पन्न करे वो पुरुष दिनमें सूर्यके तेजसे कफ कम होनेसे देखे, रातको नहीं देखे उसको रात्र्यांध्य वा नक्तांध्य कहते हैं।

७ दृष्टिके मध्यगत पित्त दुष्ट होनेसे मनुष्यको दिनमें बडे पदार्थ छोटे दीखे. और रात्रिमें ठीक दीखे उसको ह्रस्वदृष्टि कहते हैं।

८ जो दृष्टि वायुसे विकृत होकर भीतरसे संकुचित होवे तथा उसमें पीडा होवे, उसको गंभीरदृष्टि कहते हैं।

अभिष्यन्दरोग ।

अभिष्यन्दाश्च चत्वारो रक्ताद्दोषैस्त्रिभिस्तथा ॥

अर्थ—संपूर्ण नेत्ररोगोंके कारणभूत ऐसे अभिष्यंद रोग चार हैं। १ रक्ताभिष्यंद २ वाताभिष्यंद ३ पित्ताभिष्यंद और ४ कफाभिष्यंद ।

अधिमंथरोग ।

चत्वारश्चाधिमंथाःस्युर्वातपित्तकफास्रतः ॥ १६६ ॥

अर्थ—उस अभिष्यंद रोगकी उपेक्षा करनेसे उससे वात, पित्त, कफ और रक्त इन चार कारणोंसे चार प्रकारके अधिमंथ रोग उत्पन्न हों उनके निस्तोद (चपका) स्तंभ इत्यादि पूर्वोक्त अभिष्यंदोंके लक्षण होते हैं. व कलासे गिरते हुए प्रतीत हों, नेत्रोंमें कोई धसगया ऐसा मालूम हो. आधामस्तक बहुत दूखे. ये इसके विशेष लक्षण हैं. अधिमंथ वातज होनेसे वातके लक्षण शूलादिक, पित्तज होनेसे पित्तके लक्षण दाहादिक और कफज होनेसे कफके लक्षण खुजली आदि होते हैं। इस अधिमंथमें अंजनादिक मिथ्या उपचार करनेसे दृष्टि नष्ट होती है। वह प्रकार इसप्रकार है जैसे कफाधिमंथ मिथ्योपचारसे कुपित होनेसे सातदिनमें, रक्ताधिमंथ पांच दिनमें, वाताधिमंथ छःदिनमें और पित्ताधिमंथ तत्काल दृष्टिनाश करता है।

सर्वाक्षिरोग।

सर्वाक्षिरोगाश्चाष्टौ स्युस्तेषु वातविपर्ययः ॥ अल्पशोथोऽन्यतोवातस्तथा पाकात्ययः स्मृतः ॥ १६७ ॥ शुष्काक्षिपाकश्च तथा शोफोऽध्युषित एवच ॥ हताधिमंथ इत्येते रोगाः सर्वाक्षिसंभवाः ॥ १६८ ॥

---

१ रक्ताभिष्यंदसे नेत्रोंसे लाल पानी गिरे, नेत्र लाल होंय और नेत्रोंके ओर पास रेखासी लाल दीखे और जो पित्ताभिष्यंदके लक्षण कहे हैं वे सब लक्षण इसमें होवें।

२ वादीसे नेत्र दूखने आये हों उनमें सुई चुभानेकीसी पीडा होय, नेत्रोंका स्तंभन (ठहरजाना) रोमांच, नेत्रोंमें रेत गिरनेसमान खटके तथा रूक्ष होय मस्तकमें पीडा हो, नेत्रोंसे पानी गिरे परन्तु नेत्र सूखेसे रहैं और नेत्रोंसे जो पानी गिरे वह शीतल होय ।

३ पित्तसे नेत्र दूखने आनेसे उनमें बहुत दाह हो नेत्र पकजाँय उनमें शीतल पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्रोंसे धुआँ निकले अथवा नेत्रोंमें धुआँ जानेकीसी पीडा होय तथा नेत्रोंसे अश्रु (आँसू) बहुत पडें और गरम पानी निकले आँख पीलीसी मालूम पडे ।

४ कफसे नेत्र दूखने आये हों उसको गरम वस्तु नेत्रोंमें लगानेसे आराम मालूम हो (अर्थात्) नेत्रमें सेक अच्छा मालूम हो तथा नेत्र भारी होय, सूजनहो, खुजली चले, कीचडसे नेत्र दूषित हो और शीतल हो, उनमेंसे स्राव होय सो गाढा और बहुत होय ।

अर्थ–संपूर्ण नेत्रमें व्याप्त जो रोग होते हैं उनको सर्वाक्षिरोग कहते हैं । वे आठ प्रकारके हैं जैसे–१ वातविपर्यय २ अल्पशोथ ३ अन्यतोवात ४ पाकात्यय ५ शुष्काक्षिपाक ६ ७ अध्युषित ८ हताधिमंथ इसप्रकार सर्वाक्षिरोग आठ हैं इसप्रकार सब नेत्ररोग मिलानेसे होते हैं ।

षंढरोग ।

पुंस्त्वदोषाश्चपंचैव प्रोक्तास्तत्रेर्ष्यकः स्मृतः ॥
आसेक्यश्चैव कुंभीकः सुगंधिः षंढसंज्ञकः ॥ १६९ ॥

अर्थ–पुंस्त्वदोष कहिये वीर्यक्षीणताके कारण मनुष्यको नपुंसकत्व प्राप्त होता है उसे १ ईर्ष्यक २ आसेक्य ३ कुंभिक ४ सुगंधि ५ षंढ इसप्रकार पांच प्रकारका जानना ।

---

१ वायु क्रमसे कभी भ्रुकुटीमें प्राप्त हो और कभी कभी नेत्रोंमें प्राप्त होकर अनेक प्रकारकी तीव्र पीडा करे उसको वातविपर्यय कहते हैं ।

२ नेत्रोंमें सूजन आकर पकजाय, उनमें आँसू बहें और पके गूलरके समान लाल होंय ये अल्पशोथके लक्षण हैं यह अल्पशोथ त्रिदोषज है ।

३ घाटी (घार) कान, मस्तक, ठोढी, मन्यानाडी इनमें अथवा इतर ठिकाने स्थित जो वायु भ्रुकुटी (भौंह) वा नेत्रोंमें तोद भेदादि पीडा करे, इसरोगको अन्यतोवात कहते हैं अर्थात् अन्य स्थानोंमें स्थित होकर अन्यस्थानोंमें पीडा करे इसीसे इसको अन्यतोवात कहते हैं ।

४ वातादि दोषोंकरके नेत्रके काले भागपर छर होके सब नेत्र सफेद होजावें और तीव्र वेदना हो उसको पाकात्यय कहते हैं ।

५ नेत्र खुलें नहीं अर्थात् संकुचित होजाँय, जिनकी बाफणी कठिन और रूक्ष होय, जिसके दाह विशेष होय यथार्थ दीखे नहीं, खोलनेमें बहुत दुःख होय उसको शुष्काक्षिपाकरोग कहते हैं यह रोग रक्तसहित वादीसे होता है ।

६ नेत्रोंमें सूजन आकर पकजाँय, उनम आँसू बहें और पके गूलकरके समान लाल होंय । ये शोथसहित नेत्ररोगके हैं यह व्याधि त्रिदोषजन्य है ।

७ मध्यमें कुछनीलवर्ण और आसपास लाल भराहो ऐसे सर्व नेत्र पकजाँय और उनमें पीली फुन्सी होय, उनमें दाह होकर सूजन होय, तथा नेत्रोंसे पानी झरे यह अम्ल (खटाई) के होताहै । इसको अध्युषित वा अम्लाध्युषित कहते हैं ।

८ वातज अधिमंथकी उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको सुखाय देवे. उस मनुष्यके नेत्रोंमें तोद (सुई चुभानेकीसी पीडा) दाहादि भारी पीडा होय यह हताधिमंथनामक नेत्ररोग असाध्य है । इसको क्षेपण, दृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिशोष ऐसे कहते हैं· इस रोगसे नेत्र सूखे कमलसे हो जाते हैं ।

९ जो मनुष्य दूसरेको मैथुन करते देख आप मैथुन करे उसको ईर्ष्यक नपुंसक कहतेहैं, दूसरा पर्यायवाचक नाम दृग्योनि है ।

शुक्ररोग।

शुक्रदोषास्तथाष्टौ स्युर्वातात्पित्तात्कफेन च ॥ कुणपं-चास्रपित्ताभ्यांपूयाभं श्लेष्मपित्ततः ॥ १७० ॥ क्षीणंचवा-तपित्ताभ्यां ग्रंथिलं श्लेष्मवाततः ॥ मलाभं संनिपाताच्च शुक्रदोषा इतीरिताः ॥ १७१ ॥

अर्थ-१ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य ४ रक्तपित्तजन्य कुणपसंज्ञक ५ कफपित्तजन्य पूयाभ ६ वातपित्तजन्य क्षीण ७ कफवातजन्यग्रंथिल ८ संनिपातजन्यमलाभ ऐसे आठ पुरुषोंके शुक्रधातुके दोष हैं।

---

१० मातापिताके अति अल्पवीर्यसे जो गर्भ रहे वह आसक्यनामके नपुसंक होता है. वह अन्य पुरुषसे अपने मुखमें मैथुन कराकर उसके वीर्यको खाजाय, तब उसको चैतन्यता (अर्थात् लिंग सतर) होवे तब स्त्रीसे मैथुन करे इसका दूसरा नाम मुखयोनि है।

११ जो पुरुष पहले अपनी गुदा भंजन करावे जब उसको चैतन्यता प्राप्त हो तब स्त्रीकेविषे पुरुषके समान प्रवृत्त होय उसको कुम्भिक नपुंसक कहते हैं. इसका गुदायोनि यह पर्याय शब्द है। इस कुम्भिक नपुंसककी उत्पत्ति ऐसे होती है कि, ऋतुकालमें अल्परजस्क स्त्रीसे श्लेष्मरेतवारे पुरुषके संभोग करनेसे उस स्त्रीका कामदेव शांत नहो, इस कारण उस स्त्रीका मन अन्य पुरुषसे संभोग करनेकी इच्छा करे तब उसके कुम्भिकनामक नपुंसक होता है. कोई आचार्य कुम्भिक नपुंसकका लक्षण ऐसा कहते हैं कि, जो पुरुष लौंडेबाजी करते हैं. वे पहले स्त्रीके पीछे बैठकर पशूके समान शिथिल लिंगसेही उसकी गुदा भंजन करें। इस प्रकार करनेसे जब चैतन्यता प्राप्त हो तब मैथुन करें। इसको कुम्भिकनामक नपुंसक कहते हैं।

१२ जो पुरुष दुष्ट योनिमें उत्पन्न होय उसको योनि तथा लिंगके सूंघनेसे चैतन्यता प्राप्त होय उसको सुगंधि वा सौगंधिक तथा नासायोनि कहते हैं।

१३ जो पुरुष ऋतुकालमें मोहसे स्त्रीके सदृश प्रवृत्त होवे अर्थात् आप नीचेसे सीधा होकर ऊपर स्त्रीको चढायकर मैथुन करे। उससे जो गर्भ रहे वह पुरुष स्त्रीकीसी चेष्टा करे और स्त्रीके आकार होय स्त्रीकी चेष्टा करै (अर्थात् स्त्रीके समान नीचे सोकर अन्य पुरुषसे अपने लिंगके ऊपर वीर्य पतन करावे)।

---

१ वादीसे शुक्र झागवाला, सूखा, कुछ गाढा और थोडा तथा क्षीण हो यह गर्भके अर्थका नहीं है।
२ पित्तसे दूषित शुक्र नीला, पीला अत्यन्त गरम होता है उससे बुरी वास आवे और जब निकले तब लिंगमें दाह होय।
३ कफसे शुक्र (वीर्य) शुक्रवहा नाडियोंके मार्ग रुकनेसे अत्यन्त गाढा होजाता है।
४ कुणप शुक्र दोषमें शुक्रकी गंध मुर्दाके सदृश आवे।
५ पित्त कफसे दूषित शुक्रमें राधकीसी बास आवे।

स्त्रियोंके आर्तवदोष ।

अथ स्त्रीरोगनामानि प्रोच्यन्ते पूर्वशास्त्रतः ॥ अष्टावार्तवदोषाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा॥१२७॥ पूयाभं कुणपं ग्रंथि क्षीणं मलसमंतथा ॥

अर्थ–स्त्रियोंका आर्तवे कहिये ऋतुसमयका रुधिर बहता है जिसको रज कहते हैं उसके आठ प्रकारके हैं जैसे–१ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ पूयाभ ५ कुणप ६ ग्रंथी ७ क्षीण और मलसम इसप्रकार आर्तवदोष आठ प्रकारके हैं ।

प्रदररोग ।

तथाच रक्तप्रदरं चतुर्विधमुदाहृतम् ॥ १७३ ॥ वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थं संनिपाततः ॥

अर्थ–रक्तप्रदरके १ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजेन्य और ४ संनिपातजन्य इस प्रकार चार भेद हैं ।

---

६ पित्तवादीसे शुक्र क्षीण होजाता है ।

७ कफवादीसे शुक्र गांठदार होता है ।

८ संनिपातसे दूषित हुए शुक्रमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं और पीडा होय तथा उसमें मूत्र विष्ठाकीसी बास आवे ।

---

१ आर्तव अर्थात् स्त्रियोंके यौवनमें महीनेकी महीने जो योनिके द्वारा रज निकलता है वो प्रकारके दोष वात, पित्त, कफ, रक्त, द्वंद्व और सान्निपात इन करके दुष्ट होनेसे गर्भ धारणके योग्य होता है तिन तिन दोषोंके अनुसार शुक्र दोषोंके लक्षण जानलेना ।

२ विरुद्ध मद्यसेवन, अजीर्ण, गर्भपात अतिमैथुन, अत्यंत भोजन, अत्यंत बोझेका उठाना दिनमें सोना इत्यादिक सर्वकारणोंकरके स्त्रियोंका रज दुष्ट होकर प्रवाह बहै उसको प्रदर कहते हैं उसके पूर्वरूप ये हैं अंगोंका टूटना, पीडा, दुर्बलता, ग्लानि, मूर्च्छा, प्यास, दाह, प्रलाप, देहमें शिथिलता नेत्रोंमें तंद्रा और वातजन्य रोग इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

३ वातसे प्रदर रूक्ष, लाल, झागसंयुक्त मांसके और सफेद पानीके समान थोडा बहै उसमें ददीकी आक्षेपकादि पीडा होती है ।

४ पित्तसे किंचित् पीला, नीला, काला, लाल, गरम ऐसा प्रदर बहै उसमें दाह चिमचिमाहट होय तथा उसका वेग अत्यंत होय ।

५ कफसे आमरस (कच्चा रस) संयुक्त, चिकना, किंचित् पीला, मांसके धुले जलके समान होय इसको श्वेतप्रदर अथवा सोमरोग कहते हैं ।

६ जो प्रदर शहद, घृत, हरिताल और मज्जा इनके रंगके समान तथा मुर्दाकी दुर्गंधियुक्त होय इसको त्रिदोषज प्रदर जानना वह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करे ।

योनिरोग ।

विंशतिर्योनिरोगाःस्युर्वातपित्तकफादपि ॥ १७४ ॥ संनिपाताच्च रक्ताच्चलोहितक्षयतस्तथा ॥ शुष्काचवामिनीचैव षंढीचांतर्मुखीतथा ॥ १७५ ॥ सूचीमुखी विप्लुताच जातघ्नी च परिप्लुता ॥ उपप्लुता प्राक्चरणा महायोनिश्चकर्णिका॥१७६॥ स्यान्नंदा चातिचरणा योनिरोगा इतीरिताः ॥

अर्थ–१ वातला २ पित्तला ३ श्लेष्मला ४ सान्निपातजा ५ रक्तजा ६ लोहितक्षया ७ शुष्का ८ वामिनी ९ षंढी १० अंतर्मुखी ११ सूचीमुखी १२ विप्लुता १३ पुत्रघ्नी १४ परिप्लुता १५ उपप्लुता १६ प्राक्चरणा १७ महायोनि १८ कार्णिका १९ नंदा और २० अतिचरणा ऐसे बीस प्रकारके योनिरोग हैं ।

---

१ जो योनि कठोर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त होवे उसको वातला कहते हैं ।

२ जो योनि दाह, पाक, ज्वर आदि पित्तके लक्षणोंसे युक्त होय और उसमेंसे नीला, पील काला, आर्तव (रज) निकले उसको पित्तला कहते हैं ।

३ जो योनि बहुत शीतल और सेमरके गोंदके समांन चिकनी होय तथा उसमें खुजली चले उसको श्लेष्मला कहते हैं ।

४ जिस योनिमें वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षण मिलें उसको सान्निपातजा कहते हैं ।

५ जो योनि स्थानभ्रष्ट होय, वह बडे कष्टसे बालकको प्रसूत करे उसको रक्तजा वा प्रस्रंसिनी कहते हैं. जिस योनिका अंग बाहर निकल आवे और इसे विमर्दित करनेसे प्रसव योग नहीं होता है ।

६ जिस योनिसे दाहयुक्त रुधिर बहे उसको लोहितक्षया कहते हैं ।

७ जिस योनिका आर्तव नष्ट हो उसको शुष्का अथवा वंध्या कहते हैं ।

८ जिसमेंसे रजोयुक्त शुक्रवायु बराबर बहे उसको वामिनी कहते हैं ।

९ जो योनि आर्तवसे रहित रहती है उस स्त्रीके स्तन नहीं होते । और मैथुनके समय जिस योनिका खरदरा स्पर्श मालूम होय उसको षंढी कहतेहैं ।

१० बडे लिंगवाले पुरुषको तरुणस्त्रीके साथ मैथुन करनेसे उस स्त्रीके योनिके बाहर दोनों तरफ अंडकोशके समान मांसका दो गाँठ उत्पन्न हों उस योनिको अंतर्मुखी कहते हैं ।

११ जिस योनिका छिद्र सुईके अग्रभागके समान सूक्ष्म होता है उसको सूचीमुखी कहते हैं ।

१२ जिसमें निरंतर पीडा हो उसको विप्लुता कहते हैं ।

१३ जिस योनिमें रुधिर क्षय होनेसे गर्भ न रहे उसको जातघ्नी वा पुत्रघ्नी कहतेहैं ।

१४ जिसके मैथुन करनेमें अत्यंत पीडा होय उसको परिप्लुता कहतेहैं ।

१५ जिस योनिसे झागसे मिला आर्तव (रज) ऊपरके भागमें बडे कष्टसे उतरे उसको उपप्लुता कहते हैं ।

योनिकंदरोग ।

चतुर्विधं योनिकंदं वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ १७७॥ चतुर्थं संनिपातेन-

अर्थ-योनिकंदं रोग १ वातजं २ पित्तजं ३ कफजं और ४ सन्निपातजं ऐसे ये रोग चार प्रकारका है ।

गर्भके रोग ।

तथाष्टौ गर्भजा गदाः ॥ उपविष्टकगर्भःस्यात्तथा नागोदरः स्मृतः ॥ १७८॥ मक्कल्लो मूढगर्भश्च विष्टंभो गूढगर्भकः ॥ जरायुदोषो गर्भस्य पातश्चाष्टमकः स्मृतः ॥ १७९ ॥

अर्थ-गर्भसंबंधी रोग आठ प्रकारके हैं. जैसे- १ उपविष्टकगर्भ २ ...

---

१६ जो योनि थोडे मैथुनसे लिंगसे पहले स्रवे उसको प्राक्चरणा कहते हैं । उसमें गर्भ नहीं होता है ।

१७ जिस योनिका मुख निरंतर फटारहे उसको महायोनि वा विवृता कहते हैं ।

१८ जिसमें कफ रुधिर करके कर्णिका (कमलके भीतर जो होता है ऐसा मांसकंद) उसको कर्णिका कहते हैं ।

१९ जो योनि अति मैथुनसेभी संतोषको प्राप्त नहीं होवे उसको नंदा कहते हैं ।

२० जो योनि बहुवार मैथुल करनेसे पुरुषके पीछे द्रवे (छूटे) उसको अतिचरणा कहते हैं. यह कफजानित रोग है ।

---

१ दिनमें सोनेसे, अतिक्रोध, अतिशय परिश्रम, अत्यंत मैथुन करनेसे और योनिमें नख क्षत पडनेसे, वातादिक दोष कुपित होनेसे योनिमें संतराके आकारका राधसे मिला ऐसा गोला होता है उसको योनिकंद कहते हैं ।

२ वादीसे योनिकंद रूक्ष, विवर्ण और तनाहुआ ऐसा होता है ।

३ पित्तसे योनिकंद लाल, दाह और ज्वर इनकरके युक्त होता है ।

४ कफसे योनिकंद नीला और कंडूयुक्त होता है ।

५ संनिपातज योनिकंद वात, पित्त, कफ, इनके लक्षणोंसे युक्त होता है ।

६ स्त्रीको गर्भ रहनेके पश्चात् विदाही और तीक्ष्ण पदार्थ खानेसे देहमें गरमी बढती है ... निके द्वारा रक्तस्राव होता है । रक्तस्राव होनेसे गर्भ बढता नहीं और पेटमें किंचित् हलै उसको ... गर्भ कहते हैं ।

७ शुक्र धातु और आर्तव इनका संयोग होते समय वायु उस गर्भका आकार सर्पके ... उसको नागोदर कहते हैं । यह गर्भ निर्बल होकर पडता है अथवा पेटमेंही नष्ट होजा...

३ मक्कल्ल ४ मूढगर्भ ५ विष्टंभ ६ गूढगर्भ ७ जरायुदोष और ८ गर्भपात ऐसे आठ प्रकारके गर्भपात रोग हैं ।

स्तनरोग ।

पंचैवस्तनरोगाःस्युर्वातात्पित्तात्कफादपि ॥ संनिपातात्क्षताच्चैव तथा स्तन्योद्भवा गदाः ॥ १८० ॥बालरोगेषु गदिताः—

अर्थ—स्तनरोग १ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य ४ सन्निपातजन्य और

---

१ माताके मानसिक तथा आगंतुक दुःखसे प्रसूत होनेके प्रथम वायु कुपित होकर कूखमें शूल उत्पन्न करके गर्भको मारदे । इसको गर्भमक्कल्ल कहते हैं । और प्रसूतिके अनन्तर वायु कुपित होकर योनिसे रुधिर, जाल आदि जो गिरतेहैं उनको रोककर ऊपर जाके हृदय, वस्ति, मस्तक और कूखमें शूल उत्पन्न करे इसको प्रसूतिमक्कल्ल कहतेहैं । यह योनिके संकोच और घोर ऊर्ध्व श्वासको उत्पन्न करके प्रसूतभई स्त्रीको मारदेताहै ।

२ मूढ (कुंठित गति) वायु गर्भको मूढ (टेढा) करदेताहै और योनि तथा पेटमें शूल उत्पन्नकरे और मूत्रोत्संग (धीरे धीरे पीडासहित मूत निकलना) करे, इसको मूढगर्भ कहते हैं । इस मूढगर्भकी आठप्रकारकी गति होती है । विगुण वायुसे गर्भ विपरीत (टेढा) होकर अनेक प्रकार करके योनिके द्वारमें आयकर अडजाताहै. १ कोई गर्भ मस्तकसे योनिके द्वारको बंद करदेता है, २ कोई पेटसे योनिके मार्गको रोक देय, ३ कोई शरीरके विपरीतपनसे योनिके मार्गको रोकदेय, ४ कोई एक हाथसे योनिके मार्गको रोकदेय, ५ कोई दोनों हाथोंको बाहर निकालकर योनिके द्वारको रोकदे, ६ कोई गर्भ तिर्छा होकर योनिके मार्गको रोकदे, ७ कोई गर्भ मन्यानाडीके मुडनेसे नीचेको मुख होय वह योनिके द्वारको रोकदे ८ कोई गर्भ पार्श्वभंग (पसवाडे भंग) होनेसे योनिके द्वारको रोक देय इस प्रकारसे मूढगर्भकी आठ गति जाननी ।

३ जो स्त्री गर्भिणी होनेसे पश्चात् अकालमें भोजन करे और रूक्षादि पदार्थ खावे उसके गर्भको वायु कुपित होकर सुखायदेहै उसकरके उस स्त्रीकी कूख वडी नहीं दीखती वह गर्भ वायुते पीडित होकर उतनेका उतनाही रहे बढे नहीं इसको विष्टंभगर्भ कहते हैं ।

४ गर्भ रहकर बढे नहीं और कुछ कालसे पेटमेंही जीर्ण होजाय उसको गूढगर्भ कहते हैं ।

५ गर्भशय्यामें गर्भके वेष्टनके अर्थ जरायु (झिल्ली) रहती है, उसके दोषसे जो गर्भको विकार होता है उसको जरायुदोष कहते हैं ।

६ अभिघात (चोट) विषमाशन (विषम भोजन) पीडनादिक इन कारणोंसे जैसे पकाहुआ फल वृक्षसे चोट लगनेसे क्षणभरमें गिरजाता है, इसीप्रकार गर्भ अभिघातादि कारणोंसे गिरता है, चौथे मासपर्यन्त गर्भ पतली अवस्थामें होनेसे जो स्रवे उसे स्राव कहते हैं और पांचवें छट्ठे महीने पर्यंत शरीर बनने ऊपर जो गर्भ निकले उसे गर्भपात कहते हैं ।

७ वातादिदोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्रीके सदुग्ध अथवा अदुग्ध स्तनोंमें प्राप्तहो मांस रक्तको दुष्ट करके स्तनरोग उत्पन्न करें ।

८ वादीसे होनेवाले स्तनरोगमें शूल, तोद आदि पीडा होती है ।

९ पित्तसे ज्वर, दाह आदिक होते हैं ।

१० कफसे थोडी पीडा और खुजली होय ।

११ संनिपातज स्तनरोगमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ।

५ क्षतजेन्य ऐसे पांच हैं । स्त्रियोंके दूधसंबंधी रोग बालरोगप्रकरणमें कहे हैं ।

स्त्रीदोष ।

स्त्रीदोषाश्च त्रयः स्मृताः ॥ अदक्षपुरुषोत्पन्नः सपत्नीवि[हि]तस्तथा ॥ १८१ ॥ दैवाज्जातस्तृतीयस्तु-

अर्थ-स्त्रियोंको दुःख उत्पन्नकरनेवाले तीन दोष हैं जैसे--१ अदक्षपु[रुष] सपत्नीविहित ३ दैविक इसप्रकार स्त्रियोंमें तीन दोष हैं ।

प्रसूतिरोग ।

तथाच सूतिकागदाः ॥ ज्वरादयश्चिकित्स्यास्ते यथा[दोषं] यथाबलम् ॥ १८२ ॥

अर्थ-बालक होनेसे पश्चात् ज्वरादिरोग उन्पन्न होते हैं उनको प्रसूतके [रोग कहते] हैं उन रोगोंका दोषानुसार बलाबल विचार चिकित्सा करनी ।

बालरोग ।

द्वाविंशतिर्बालरोगास्तेषु क्षीरभवास्त्रयः ॥ वातात्पित्तात्क[फा]च्चैव दंतोद्भेदश्चतुर्थकः ॥१८३॥ दंतघातो दंतशब्दोऽकाल[दं]तोऽहिपूतनम्॥मुखपाको मुखस्रावो गुदपाकोपशीर्षके॥१[८४॥] पार्श्वारुणस्तालुकंठो विच्छिन्नं पारिगर्भिकः ॥ दौर्बल्यं [गा]

---

१ अभिघात (चोट) आदिके लगनेसे स्तनमें सूजन उत्पन्न होती है । उसमें व्रण [आदि] वातादिकोंके लक्षण होते हैं. उसको क्षतज स्तनरोग कहते हैं ।

२ जो पुरुष स्त्रीके कामदेवकी शांति करनेमें समर्थ नहीं हो और मूर्ख होय, त[था] न जाने ऐसा पति होनेसे जो संताप होता है उसकरके जो रोग होय, उसको अ[दक्षपुरुषोत्पन्न] स्त्रीरोग कहते हैं ।

३ जिस स्त्रीके सपत्नी (सौत) होवे उसको अपने पतिकी प्रीति दूसरी स्त्रीके ऊपर है[ऐसे देखकर] जो रोग होता है उसको सपत्नीविहित स्त्रीरोग कहते हैं ।

४ अपने पतिका मरण होनेसे उसके साथ सती होनेकी इच्छा जो करे उसकी [इच्छा पूर्ण न] होनेसे शोकादिकन करके जो रोग होता है उसको दैविक स्त्रीरोग कहते हैं ।

५ जिस स्त्रीके बालक प्रकट होचुका हो ऐसी स्त्रीके मिथ्या उपचार करनेसे दो[ष]... पानके सेवन करनेसे कोपके करनेसे अथवा अजीर्णपर भोजनादिक करनेसे प्रसूतिरो[ग]... उसमें ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा और बलक्षय तथा कफवातजन्य रोगमें उ[त्पन्न]... तंद्रा अन्नद्वेष और मुखसे पानीका गिरना आदि विकार अशक्तता, मंदाग्नि ये हो[ते हैं] ज्वरादिकोंको प्रसूतिरोग कहतेहैं इन सबमें एक रोग प्रधान होता है और बाकीके उपद्र[व]...

शोषश्च शय्यामूत्रं कुकूणकः ॥१८९॥ रोदनं चाजगल्ली स्यादिति द्वाविंशतिः स्मृताः ॥

अर्थ–बालकोंके जो रोग होतेहैं उनको बालरोग कहते हैं। वे रोग २२ बाईस हैं तिनमें स्त्रीके स्तनसंबंधी दूध दुष्ट होनेसे उत्पन्न होनेवाले १ वातजन्य २ पित्तजन्य और ३ कफजन्य ऐसे तीन प्रकारके हैं।

४ दंतोद्भेद ५ दंतघात ६ दंतशब्द ७ अकालदंत ८ अहिपूतनरोग ९ मुखपाक १० मुखस्राव ११ गुदपाक १२ उपशीर्षक १३ पार्श्वारुण १४ तालुकण्ठ १५ विच्छिन्न

---

१ जो बालक वातदूषित दूधको पीता है उसके वातके रोग होते हैं उसका शब्द क्षीण हो जाय, शरीर कृश होय और मलमूत्र तथा अधोवायु नहीं उतरे।

२ जो बालक पित्तदूषित दूधको पीवे उसके पसीना आवे, मल पतला होजाय, कामलारोग होय, तथा पित्तके औरभी रोग होंय (प्यासका लगना, सर्वांगमें दाह आदि अनेक रोग होंय,)।

३ जो बालक कफदूषित दूधको पीवे उसके मुखसे लार बहुत गिरे, तथा कफके रोग होंय (निद्रा आवे, अंग भारी होय, सूजन होय, वमन होय, खुजली चले)।

४ बालकोंके प्रथम दाँत उत्पन्न होते समय ज्वर, अतिसार, खाँसी, मस्तकमें पीडा, वमन, अशक्तता इत्यादि उपद्रव होते हैं, उस रोगको दंतोद्भेद कहते हैं।

५ सातवें वा आठवें वर्षमें बालकके दाँत गिरते हैं उस समय जो ज्वरादि उपद्रव होते हैं उस रोगको दंतघात कहते हैं।

६ निद्रामें जो बालक दाँतसे दाँत घिसके बजाता है उसको दंतशब्द कहते हैं।

७ जिस बालकके दाँत जिस कालमें गिरते हैं उसके प्रथमही गिरें उसको अकालदंत कहते हैं।

८ बालकके मलमूत्र करनेके अनंतर गुदाके न धोनेसे अथवा पसीना आनेसे तथा धोनेके अनंतर रुधिर कफसे खुजली उत्पन्न होय तदनंतर खुजानेसे शीघ्र फोडा उत्पन्न होय और उससे स्रावहोय. पीछे ये सब मिलकर इस भयंकर व्याधिको प्रगट करें. इसको अहिपूतन कहते हैं यह रोग ग्रंथांतरमें क्षुद्ररोगोंमें कहागया है परन्तु यह रोग बालकोंके होता है अतएव इसको बालरोगोंमें कहा है। यह रोग माताके दुष्ट दूधके पीनेसे बालकके होता है।

९ बालकका मुख पकजावे उसको मुखपाक कहते हैं।

१० बालकके मुखमेंसे लार बहे उसको मुखस्राव कहते हैं।

११ बालककी गुदा पके उसको गुदपाक कहते हैं।

१२ बालकके कपालमें व्रण होवे, उससे ज्वर आदि होता है. उसको उपशीर्षक कहते हैं।

१३ बालकके भीतर त्रिदोषसे महापद्म विसर्परोग होताहै, वह दो प्रकारका १ शीर्षज २ बस्तिज, शंखभागसे लेकर हृदयतक बडे वेगसे दुःख देता है उसको शीर्षज कहते हैं. उसमें मुख और तालुए प्रदेशमें लालकमलके सदृश लाल होते हैं और हृदयसे गुदातक वेगसे दुःख देता है इसको बस्तिज कहते हैं उसमें बस्ति और गुदा लाल कमलके समान लाल होय इसीको पार्श्वारुण कहते हैं।

१६ पारिगर्भिक १७ दौर्बल्य १८ गात्रसाद १९ शय्यामूत्र २० कुकूणक २१ २२ अजगल्ली ऐसे सब बाईस रोग हैं।

बालग्रह।

तथा बालग्रहाः ख्याता द्वादशैव मुनीश्वरैः॥ १८६ ॥ स्कं-दग्रहो विशाखःस्यात्स्वग्रहश्च पितृग्रहः॥ नैगमेयग्रहस्तद्वच्छ-कुनिः शीतपूतना ॥ १८७ ॥ मुखमंडनिका तद्वत्पूतना चां-धपूतना॥ रेवती चैव संख्याता तथा स्याच्छुष्करेवती॥

अर्थ—बालग्रह १२ बारह प्रकारके हैं जैसे १ स्कंदग्रह २ विशाखग्रह ३

---

१४ बालकके तालुएमें जो मांस होता है, उससे कफ कुपित होनेसे तालु काँटेके समान लटक उसको तालुकंटक कहते हैं।

१५ बालकके तालुएमें घाव पडनेसे उसको स्तनपान करनेमें कष्ट होवे, पतला मल निक बहुत लगे, नेत्र और कण्ठ इनमें विकार होवे, मन्यानाडी धरे नहीं दूधकी रद्द करदे, उसको कहते हैं।

---

१ बालकके गर्भिणी माताका दूध पीनेसे खाँसी, मंदाग्नि, वमन, तंद्रा, अरुचि, कृशता और होंय और उसके पेटकी वृद्धि होय, इस रोगको पारिगर्भिक अथवा परिभव ऐसे कहते हैं, अग्निदीपनकर्ता औषधि बालकको देना चाहिये।

२ जिस दोष करके देह दुर्बल (बलरहित) होवे उसको दौर्बल्य कहते हैं।

३ जिस दोषसे बालकके अंग सूख जाते हैं उसको गात्रशोष कहते हैं।

४ बालक वातादि दोषोंकरके शय्यामेंही मूतदे उसे ज्ञाननहीं रहे उसको शय्यामूत्र कहते हैं

५ कुकूणक यह रोग बालकोंके दूधके दोषसे होता है। इस रोगके होनेसे बालकके नेत्र और पानी बहे। नेत्रोंमें कीचड आनेसे वह ललाट नेत्र और नाकको रगडे धूपके सामने जाय और उसके नेत्र खुलें नहीं। इसको लौकिकमें कोथलाव कहते हैं, यह रोग होता है।

६ बालक थोडा वा बहुत रोनेलगे तब युक्तिकरके रोगके अनुसारसे बडा अथवा छोटा इसको रोदन कहते हैं।

७ बालकके कफवातसे चिकनी, त्वचाके वर्णवाली, गाँठसीबँधी, पीडारहित, तथा मूँगके पिडिका होय उसको अजगल्लिका कहते हैं।

८ स्कंदादिक बारह ग्रहोंसे ग्रहीत बालकके ये सामान्य लक्षण होते हैं। जैसे कभी क्षणभर विह्वल होजाय, कभी क्षणभरमें डरे, रोवे, नख और दाँतोंसे अपने शरीर और माताको खरोंचे देखे, दाँतोंको चबावे, किलकारी मारे, जँभाईलेय, (भौंह) को तिर्छी धरे, दाँतोंसे और वारंवार मुखसे झाग डाले। वह अत्यंत क्षीणहोय, रात्रिमें सोवे नहीं, देहमें सूजन होय, होय और स्वर बैठ जाय। उसके देहमेंसे रुधिर मांसकी बास आवे, जितना पहिले उतना नहीं खाय, ये सामान्यग्रहव्याप्त बालकके लक्षण हैं।

४ पितृग्रह[1] ५ नैगमेय[2] ६ शकुनि[3] ७ शीतपूतना[4] ८ मुखमंडनिका[5] ९ पूतना[6] १० अन्धपूतना[7] ११ रेवती[8] १२ शुष्करेवती[9] ऐसे बारह बालग्रह जानने।

अनुक्तरोगोंका संग्रह।

तथा चरणभेदास्तु वातरक्तादिकाश्च ये॥ १८८॥ द्विचत्वारिंशदुक्तास्ते रोगेष्वेव मुनीश्वरैः॥ द्विषष्टिर्दोषभेदाः स्युः सन्निपातादिकाश्च ये॥ तेऽपि रोगेषु गणिताः पृथक्प्रोक्ता न ते क्वचित्॥ १८९॥

अर्थ—वातरक्त, पाद, सुप्तिपाद, स्तंभ, पाक, तथा फूटन इत्यादि पैरोंके रोग किसी आचार्यने बियालीस प्रकारके कहे हैं। उसी प्रकार सन्निपातादिक जो बासठ प्रकारके

---

९ बालकके एक नेत्रसे पानी गिरे और अंगमें स्राव (कहिये पसीना) बहे एक ओरका अंग फडके तथा थरथर काँपे, वह बालक आधी दृष्टिसे देखे, मुख टेढा होजाय, रुधिरकीसी दुर्गंध आवे वह बालक दाँतोंको चबावे, अंग शिथिल होजाय, स्तनको नहीं पीवे और थोडा रोवे, ये स्कन्दग्रह लगे बालकके लक्षण हैं।

१० विशाख ग्रहकरके पीडित बालकके ज्वर, ऊर्ध्वदृष्टिआदिक लक्षण होते हैं।

११ बालक बेसुधि होय, मुखसे झाग डाले, जब होस हो तब रोवे, उसके देहमें राधसे मिले रुधिरकीसी दुर्गंधि आवे इन लक्षणों करके स्वग्रहगृहीत बालक जानना। इस स्वग्रहको स्कन्दापस्मारभी कहते हैं।

---

१ पितृग्रहसे पीडित बालकके ज्वर, पसीना, दाह आदि उपद्रव होते हैं।

२ वमन, कंप, कंठ मुखका सूखना, मूर्छा, दुर्गंधि, ऊपरको देखे, दाँतोंको चबावे, इन लक्षणोंसे नैगमेय ग्रहकी बाधा जाननी।

३ शकुनि ग्रहसे पीडित बालकके अंग शिथिल होंय, भयसे चकित होय, उसके अंगमें पक्षीके अंगके समान बास आवे, घावहों उसमेंसे लस बहे, सब अंगोंमें फोडा उत्पन्न होय और वह पके तथा दाह होय।

४ शीतपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति क्षीण होजाय, उसके नेत्ररोग होय, देहमें दुर्गंधि आवे; वमन होय और दस्त होंय।

५ मुखमंडनिका ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति सुन्दर होय और देहकी कांति सुन्दर होय शिरासे बँधा देह होजाय, उसके देहमें मूत्रकीसी दुर्गंधि आवे यह बालक बहुत भक्षण करे।

६ पूतना ग्रहकी पीडासे बालकको दस्त, ज्वर, प्यास होंय, टेढी दृष्टिसे, देखे, रोवे, सोवे नहीं, व्याकुल होय शिथिल होजाय ये लक्षण होते हैं।

७ अन्धपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके वमन होंय, खाँसी, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी दुर्गन्ध, बहुत रोना, दूध पीवे नहीं, अतिसार ये लक्षण होते हैं।

८ रेवती ग्रहसे पीडित बालकके अंगमें घाव और फोडे होंय उनमेंसे रुधिर बहे, उनमेंसे कीचकीसी बास आवे, दस्त होय, ज्वर होय, अंगमें दाह होय।

९ शुष्करेवती ग्रहसे पीडित बालकके ज्वर, शूल, अजीर्ण, मस्तकमें पीडा, मुख और हृदय इनका शोष ये लक्षण होते हैं।

वातादिदोषोंके भेद कहे हैं वे ऋषियोंने कहीं भी पृथक् नहीं कहे किन्तु उनकी गणना अनुक्रम पादरोगोंमें तथा वातव्याधिमेंही की है।

पंचकर्मोंके मिथ्यादि योगसे होनेवाले रोग।

हीनमिथ्यातियोगानां भेदैः पंचदशोदिताः॥
पंचकर्मभवा रोगा रोगेष्वेव प्रकीर्तिताः॥ १९०॥

अर्थ–१ वमन २ विरेचन ३ निरूहणबस्ती ४ अनुवासनबस्ती और ५ नस्य ये पंचकर्म उत्तरखण्डमें कहे हैं। इन पांचकर्मोंमें जिसका हीनयोग मिथ्यायोग किं वा अतियोग होवे तो कर्म इन तीन कारणोंसे तीन प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं ऐसे पांचोंके मिलानेसे १५ पंद्रह हैं उनका अन्तर्भाव उक्त रोगोंमेंही जानना।

स्नेहादिकोंसे होनेवाले रोग।

स्नेहस्वेदौ तथा धूमो गंडूषोऽजनतर्पणे॥
अष्टादशैतज्जाः पीडास्ताश्च रोगेषु लक्षिताः॥ १९१॥

अर्थ–१ स्नेहपान २ स्वेदविधि ३ धूमपान ४ गंडूष ५ अंजन ६ तर्पण इन छःमेंसे प्र कके हीनयोग मिथ्यायोग और अतियोग इन तीन भेद करके अठारह भेद होते हैं और उ जो होनेवाले रोग हैं वे भी सब उक्त रोगोंमें संगृहीत किये गये हैं।

---

१ औषधादिकों करके रद्द करानेके प्रयोगको वमन कहते हैं।
२ औषधादिकों करके दस्त करानेके प्रयोगको विरेचन कहते हैं।
३ स्नेहादि औषधसे गुदामें पिचकारी मारनेके प्रयोगको निरूहणबस्ति कहते हैं।
४ अनुवासनबस्तिभी निरूहण बस्तिके सदृशही होती है।
५ नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्य कहते हैं।
६ कहे हुए प्रमाणसे कम प्रमाणका उपयोग करनेको हीनयोग कहते हैं।
७ प्रमाणसे रहित उपयोग करनेको मिथ्यायोग कहते हैं।
८ अधिक प्रमाणसे उपयोग करनेको अतियोग कहते हैं।
९ स्नेहपान तैल घृत आदि स्निग्ध पदार्थ पीनेके प्रयोगको स्नेहपान कहते हैं।
१० अंगको पसीना लानेके प्रयोगको स्वेदविधि कहते हैं।
११ गुडगुडी हुक्का आदिमें औषध डालके पीनेके प्रयोगको धूमपान कहते हैं।
१२ कषाय और रसादिकोंसे कुरला करनेके प्रयोगको गंडूषविधि कहते हैं।
१३ नेत्रमें औषध डारनेके प्रयोगको अंजनविधि कहते हैं।
१४ औषधादि करके धातुओंकी वृद्धि करनेके विषयक जो प्रयोग करते हैं उसको तर्पण कहते अथवा नेत्रकी तृप्ति करनेके प्रयोगको तर्पण कहते हैं।

शीतादिकोंसे होनेवाले रोग।

शीतोपद्रव एकःस्यादेकश्चोष्णोपतापकः॥
शल्योपद्रवएकश्च क्षाराच्चैकःस्मृतस्तथा॥ १९२॥

अर्थ-अत्यंत सरदीके योगकरके मनुष्यको ठंडकका उपद्रव होवे वह १ अत्यंत गरमीसें मनुष्यके उष्णताका उपद्रव होवे वह २ शल्य कहिये नख केश, काँटा, खोबरा, हाड, सींग इत्यादिकं पदार्थ एक साथ पेटमें जानेसे जो रोग होवे उसको शल्य कहते हैं वह और ३ तीक्ष्णक्षारादिकसे पेटमें अथवा बाह्यस्पर्शकरके जो उपद्रव होवे वह इस प्रकार ४ प्रकारके उपद्रव वैद्यको जानने चाहिये।

विषरोग।

स्थावरं जंगमं चैव कृत्रिमं च त्रिधा विषम्॥ तेषां च काल-कूटाद्यैर्नवधा स्थावरं विषम्॥ १९३॥ जंगमं बहुधा प्रोक्तं तत्र लूता भुजंगमाः॥ वृश्चिकामूषकाः कीटाः प्रत्येकं ते चतुर्विधाः॥ १९४॥ दंष्ट्राविषनखाविषवालश्रृंगास्थिभिस्तथा॥ मूत्रात्पुरीषाच्छुक्राच्च दृष्टिर्निःश्वासतस्तथा॥ १९५॥ लालायाःस्पर्शतस्तद्वत्तथा शंकाविषं मतम्॥ कृत्रिमं द्विविधं प्रोक्त गरदूषीविभेदतः॥ १९६॥

अर्थ-स्थावर जंगम और कृत्रिम ऐसे तीन प्रकारके विष हैं उनमें स्थावर विष कालकूट वच्छनागादि विषोंका भेदकरके नौ प्रकारके हैं। जंगम विष बहुत प्रकारके हैं जैसे-लूता, सर्प, बिच्छू ँसा कीडा, इनके वात, पित्त. कफ और संनिपात भेदसे एक एकके चार २ भेद हैं। जिन ठिकानोंपर विष है उनका ठिकाना जातिभेदसे पृथक् २ है जैसे-डाढ, नख, केश, सींग, हाड, मूत्र, मळ, शुक्र, धातु, दृष्टि, श्वास, लार, स्पर्श इत्यादि। मनमें विषकी शंका आकर उसे वायु कुपित हो संपूर्ण देहको सुजाय देवे तथा ज्वरादिक उपद्रव होवें उसको शंकाविष कहते हैं। यह और दूषीविष (पदार्थके संयोगसे प्रगट) इस भेदकरके कृत्रिम विष दो प्रकारके हैं। दूषीविष कहिये विष कुछ काल करके शरीरमें जीर्ण होकर छिपकर रहे, तथा विषका अल्पवीर्य हो इसीसे प्राणनाश नहीं करे परंतु ज्वरादिक उपद्रव करे। तथा देश, काल, अन्न और दिवानिद्रा इन करके दूषित होनेसे रसादि सप्त धातुओंको दूषित करते हैं। इसीसे इसको दूषीविष कहते हैं इस प्रकार कृत्रिम विष दोप्रकारके जानने।

विषके भेद ।

सप्तधातुविषं ज्ञेयं तथा सप्तोपधातुजम् ॥
तथैवोपविषेभ्यश्च जातं सप्तविधं ततः ॥ १९७ ॥

अर्थ–सुवर्णादिक सप्तधातुओंकी शुद्धिके विना की हुई भस्म भक्षण करनेसे तथा हरिताला-दिक सात उपधातुओंकी अशुद्ध भस्म, आक आदि और अशुद्ध उपविष इनके भक्षण करनेसे ये विषके समान पीडा करते हैं अतएव इनको विषसंज्ञा है ।

अन्यविषके भेद ।

दुष्टनीराविषं चैकं तथैकं दिग्धजं विषम् ॥

अर्थ–जिस पानीमें कीचड, काई, पत्ते, तिनका, लूतादिक जंतुके मल, मूत्र तथा मकडी और मेंढक मरगयेहों तो इन कारणोंसे पानी खराब होजावे उस पानीको दुष्ट नीर कहते हैं उसमें स्नान करे अथवा पीवे तो उससे विषके समान पीडा उत्पन्न होवे । शस्त्रादिकमें विषका लेपकर प्रहार करनेसे उससे घाव होजावे और वह जल्दी अच्छा नहीं हो एवं विषके समान ज्वरादिक उपद्रव हों उसको विषदग्ध शस्त्रज जानना ।

उपद्रव ।

कपिकच्छुभवा कंडूर्दुष्टनीरभवा तथा ॥ १९८ ॥
तथा सूरणकंडूश्च शोथोभल्लातजस्तथा ॥

अर्थ–कौंछ (किंवाछ) की फलीके रुआँ लगनेसे दुष्ट जल और जमींकंद (सूरण) इन तीनका देहमें स्पर्श होनेसे अंगमें अत्यंत खुजली चलती है तथा देहमें दाह होता है एवं भिलावेके तेलका स्पर्श होनेसे अंगमें सूजन होय और खुजली चले इस प्रकार चार चार प्रकारके उपद्रव जानना ।

आगंतुकभेद ।

मदश्चतुर्विधश्चान्यः पूगभंगाक्षकोद्रवैः ॥ १९९ ॥
चतुर्विधोऽन्यो द्रव्याणां फलत्वङ्मूलपत्रजः ॥

अर्थ–सुपारी, भांग, बेहेडेके फलके भीतरकी मींगी कोदो धान्य ये चार पदार्थ भक्षण करनेसे इनसे चार प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं सो मदात्यय रोगमें कहा है उसे जानना और औषधी, वनस्पति इनके फल, छाल, मूल और पत्ते इन चारोंके भक्षण करनेसे चार प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं ।

इति प्रसिद्धा गणिता ये किलोपद्रवा भुवि ॥
असंख्याश्चापरे धातुमूलजीवादिसंभवाः ॥ २०० ॥

इति श्रीदामोदरतनूजेन शार्ङ्गधरेण निर्मितायां संहितायां
प्रथमखंण्डे रोगगणनानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ-ऐसे प्रसिद्ध रोगरूप उपद्रव इनकी संख्या निश्चय करके शार्ङ्गधराचार्यने कही है इसके सिवाय दूसरे स्वर्णादि धातु, हरतालादिक उपधातु, अनेक प्रकारकी वनस्पति, औषधि और जीवादिकसे उपद्रव होते हैं वे उपद्रव असंख्य (बेशुमार) हैं उनकी संख्या नहीं होती। वह अनुमान करके जाननी ।

श्रीमन्माथुरकुलकमलमार्त्तण्डपाठकज्ञातीयश्रीकृष्णलालपुत्रेण दत्तरामेण रचितायां
शार्ङ्गधरे माथुरीभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः परिपूर्णतामगात् ॥ ७ ॥

इति शार्ङ्गधरसंहितास्थप्रथमखण्डं संपूर्णम् ।

॥ श्रीः ॥
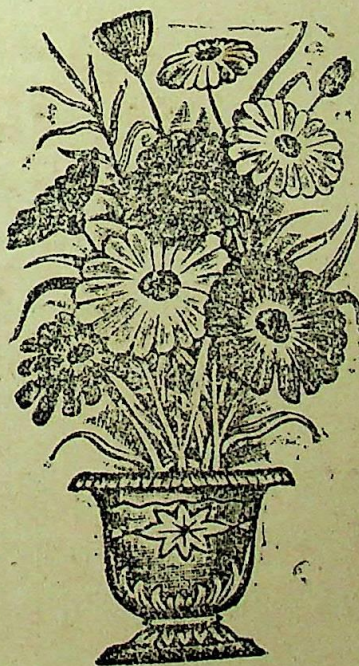
शार्ङ्गधरसंहिता.

भाषाटीकासमेता.

द्वितीयखण्ड २.

पाँच काढे।

अथातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफांटकौ ॥
ज्ञेयाः कषायाः पंचैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अर्थ–१ स्वरसे[1] २ कल्क ३ क्वाथ ४ हिम ५ फांट इन पांचोंको कषाय कहते हैं पर एककी अपेक्षा दूसरा हलका है। जैसे स्वरसकी अपेक्षा कल्क हलका है, कल्ककी अपेक्षा क्वाथ हलका है, क्वाथकी अपेक्षा हिम और हिमकी अपेक्षा फांट हलका है। रोगगणनाके पश्चात् कषायादिकोंका कथन ठीक है अतएव (अथातः) ऐसा श्लोकमें पद कहा है।

स्वरस।

आहतात्तत्क्षणात्कृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवः ॥
वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते ॥ २ ॥

अर्थ–कीडा, अग्नि, पवन, जल इत्यादिक करके जो बिगडी न हो ऐसी वनस्पतिको लाके उसको उसी समय कूट कपडेमें डालके निचोड लेवै। उस निचोडे हुए रसको स्वरस अथवा अंगरस कहते हैं।

स्वरसकी दूसरी विधि।

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं चेद्द्विगुणे जले ॥
अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः ॥ ३ ॥

अर्थ--एक कुडेव[2] सूखी औषधका चूर्ण करे। फिर उस औषधसे दूना जल किसी घडे आदि पात्रमें भरके उस औषधको भिगो देवे। इस प्रकार एक दिन और एक रात्र भीगने दे दूसरे दिन औषधोंको मसलकर उस पानीको कपडेसे छान लेवे इसकोभी स्वरस कहते हैं।

---

१ वनस्पति आदिके अवयवके रसको अंगरस अथवा स्वरस कहते हैं।
२ तोलेके विषयमें मागध परिभाषाके मतानुसार व्यावहारिक १६ तोले होते हैं।

स्वरसकी तीसरी विधि।

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसंभवे ॥ जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशेषं च गृह्यते ॥४॥ स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत् ॥ निःशोषितंचाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत्॥५॥

अर्थ–यदि गीली वनस्पति न मिले तो सूखी वनस्पतिको लाकर उसमें आठगुना पानी डालदे काढाकरे। जब जलते २ चौथाहिस्सा जल रहे तब उतारके पानी छान ले यह स्वरसका तीसरा प्रकार है। स्वरस भारी है अतएव दो तोले सेवन करे और जिस औषधिको रात्रिमें भिगोयके प्रातःकाल काढा किया हो वह ४ तोलेके प्रमाण सेवन करे। औषध भक्षणमें कलिंगपरिभाषाका मान लेना चाहिये।

स्वरसमें औषधडालनेका प्रमाण।

मधुश्वेतागुडक्षारांजीरकं लवणं तथा ॥
घृतं तैलं च चूर्णादीन्कोलमात्रं रसे क्षिपेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–सहत, खाँड, गुड, जवाखार, जीरा, सेंधानिमक, घृत, तेल तथा चूर्णादि ये स्वरस डालने हों तो कोलै डाले।

अमृतादिस्वरस प्रमेहपर।

अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित् ॥
हारिद्रचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाक्षिकः ॥ ७ ॥

अर्थ–गिलोयका स्वरस सहत मिलायके पीवे तो सर्व प्रमेह दूरहोवें. अथवा आमलेके स्वरसमें हल्दीका चूर्ण और सहत मिलायके पीवे तो सर्व प्रमेह नष्ट होवें।

वासकादिस्वरस रक्तपित्तादिकोंपर।

वासकस्वरसः पेयो मधुना रक्तपित्तजित् ॥ ज्वरकासक्षयहरः कामलाश्लेष्मपित्तहा ॥ ८ ॥ त्रिफलायारसःक्षौद्रयुक्तोदार्वीरसोऽथवा ॥ निंबस्य वा गुडूच्यावापीतोजयतिकामलाम् ॥९॥

अर्थ–अडूसेके स्वरसमें सहत मिलायके पीवे तो ज्वर खाँसी और क्षयरोगका दूर करे एवं त्रिफला, दारुहलदी नीमकी छाल और गिलोय इनमेंसे किसी एकके स्वरसमें सहत मिलाय पीवे तो कामलारोग दूर होवे।

---

१ दो तोले भक्षणमें कलिंगपरिभाषाका मान है। उस मानसे तोलेके व्यवहारिक मासे आठ होते हैं। यह पान रोगीका बलाबल देखिके देना चाहिये यह तात्पर्य है।

२ अडूसेका स्वरस अर्धपल और सहत दो टंकप्रमाण मिलायके सेवन करें तो रक्तपित्तका नाश होवे।

तुलसी और द्रोणपुष्पी इनका स्वरस विषमज्वरपर ।

पीतो मरिचचूर्णेनतुलसीपत्रजो रसः ॥
द्रोणपुष्पीरसोप्येवं निहंति विषमज्वरान् ॥ १० ॥

अर्थ–तुलसीके पत्तोंका स्वरस अथवा द्रोणपुष्पी[१] (गोमा रूँखडी) के पत्तोंका रस । इन दोनोंमेंसे किसी एकको ले उसमें काली मिरचका चूरा डालके पीवे तो विषमज्वर दूर होवें ।

जम्ब्वादिस्वरस रक्तातिसारपर ।

जंब्वाम्रामलकीनांचपल्लवोत्थोरसोजयेत् ॥
मध्वाज्यक्षीरसंयुक्तोरक्तातीसारमुल्वणम् ॥ ११ ॥

अर्थ–जामुन, आम, आमले इनके पत्तोंका स्वरस निकाल सहत घी और दूध मिलायके पीवे तो घोर रक्तातिसारको दूरकरे ।

स्थूलबम्बुल्यादिस्वरस सब अतिसारोंपर ।

स्थूलबम्बूलिकापत्ररसः पानाद्व्यपोहति ॥
सर्वातिसारान्छ्योनाककुटजत्वग्रसोऽथवा ॥ १२ ॥

अर्थ–काँटेरहित बडे बबूलके पत्तोंका स्वरस पीनेसे सर्व प्रकारके अतिसार दूर होवे अथवा टेंटूकी छालका स्वरस अथवा कूडाके छालका स्वरस इनमेंसे किसी एकको पीवे तो सर्वप्रकारके अतिसार रोग दूर हों ।

अद्रकका स्वरस वृषणवात और श्वासपर ।

आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तोवृषणवातनुत् ॥
श्वासकासारुचीर्हंतिप्रातिश्यायंव्यपोहति॥ १३ ॥

अर्थ–अदरखके रसमें सहत मिलायके पीवे तो अंडकोशोंकी बादीको दूरकरे तथा श्वास, खाँसी, अरुचि और सरेकमाको दूरकरे ।

बिजोरेका स्वरस पार्श्वादिशूलोंपर ।

बीजपूररसः पानान्मधुक्षारयुतोजयेत् ॥
पार्श्वहृद्बस्तिशूलानिकोष्ठवायुंचदारुणम् ॥ १४ ॥

अर्थ–बिजोरेके फलको अथवा जडका स्वरस, सहत और जवाखार मिलायके पीवे तो कुक्षिशूल, हृदयशूल, बस्तिशूल तथा दारुण ऐसा कोठेका वायु इन सबको दूर करे ।

---

[१] द्रोणपुष्पी एक जातकी रूँखडी है इसका वृक्ष हाथ डेढहाथसे अधिक ऊँचा नहीं होता इसकी डंडीमें फूलके गुच्छ २ से होते हैं। मध्यदेश (दिल्ली, आगरा, मथुराके प्रान्तमें) इसको गूमा कहते हैं ।

शतावरका स्वरस पित्तशूलपर तथा घीगुवारका स्वरस तिल्लीपर ।

शतावर्याश्चमधुनापित्तशूलहरोरसः ॥
निशाचूर्णयुतः कन्यारसः प्लीहापचीहरः ॥ १५ ॥

अर्थ–शतावरीके स्वरसमें सहत मिलायके पीवे तो पित्तशूल दूर होय तथा घीगुवारेका रस हल्दी मिलायके पीवे तो प्लीहा[1] (तिल्ली) का रोग और गण्डमालाका भेद जो अपची है उसको दूर करे ।

अलंबुषारस गंडमालापर ।

अलंबुषायाः स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया ॥
अपचीगण्डमालानांकामलायाश्च नाशनः ॥ १६ ॥

अर्थ–गोरखमुंडीका स्वरस दोपैल[2] पीवे तो अपची रोग गंडमाला और कामला रोग दूर होवे ।

शशमुंडरस सूर्यावर्त्तादिकोंपर ।

रसोमुंडयाः सकोष्णोवामरिचैरवधूलितः ॥
जयेत्सप्तदिनाभ्यासात्सूर्यावर्तार्धभेदकौ ॥ १७ ॥

अर्थ–गोरखमुंडीके स्वरसको कुछ थोडा गरम कर काली मिरचका चूर्ण मिलाय पीवे तो सूर्यावर्त्त[3] और अर्धावभेद (आधाशीशी) इनको दूरकरे ।

ब्राह्म्यादिका रस उन्मादरोगपर ।

ब्राह्मीकूष्मांडषड्ग्रंथाशंखिनीस्वरसाःपृथक् ॥
मधुकुष्ठयुतःपीतःसर्वोन्मादापहारकः ॥ १८ ॥

अर्थ–ब्राह्मी[4], पेठा, वच और शंखाहुली[5] इनके स्वरस पृथक् २ निकालके किसीएक को सहत और कूठका चूर्ण मिलायके पीवे तो संपूर्ण उन्मादके रोग दूर होवें ।

---

१ पेटमें बाँई तरफ रोग होता है उसको कोई कोई फीहा और कोई प्लीह तिल्ली कहते हैं ।

२ भक्षण विषयमें कालिंगपरिभाषाके मानानुसार दोपलके व्यवहारिक छः तोले और आठ मासे होते हैं ।

३ सूर्यावर्त्त कहिये जैसे २ सूर्य चढे तैसे २ मस्तकमें दर्द बढे और जैसे २ अस्त होंय तैसे २ पीडा शांति होवे उसको सूर्यावर्त्तरोग कहते हैं ।

४ ब्राह्मी रूखडी गंगा यमुनाके किनारे बहुत होती है इसकी दो जाति है एक ब्राह्मी और दूसरी मंडूकपर्णी । यह प्रसर जातिकी रूखडी है ।

५ शंखाहुलीको शंखपुष्पीभी कहते हैं । इसमें सफेद रंगके परम सुंदर पुष्प होते हैं । यह प्रसर जातिकी रूखडी है ।

कूष्मांडकरस मदरोगपर ।

कूष्मांडकस्यस्वरसोगुडेनसहयोजितः ॥
दुष्टकोद्रवसंजातंमदंपानाद्व्यपोहति ॥ १९ ॥

अर्थ-पेठके रसमें गुड मिलायके सेवन करे तो दुष्ट कोदो धान्यसे उत्पन्न ... दूर करे ।

गांगेरुकीस्वरस व्रणरोगपर ।

खड्गादिच्छिन्नगात्रस्यतत्कालपूरितोव्रणः ॥
गांगेरुकीमूलरसैर्जायतेगतवेदनः ॥ २० ॥

अर्थ-तल्वार आदि शस्त्रका घाव देहमें होनेसे उसी समय उस घावमें गांगेरुकी[1] ... स्वरसको भर देवे तो मनुष्य पीडारहित होवे ।

पुटपाक कहनेका कारण ।

पुटपाकस्यकल्कस्यस्वरसोगृह्यतेयतः ॥
अतस्तुपुटपाकानांयुक्तिरत्रोच्यतेमया ॥ २१ ॥

अर्थ-पुटपाक और कल्क इन दोनोंकाही स्वरस लिया जाता है अतएव ...कको युक्ति कहते हैं ।

पुटपाकस्यमात्रेयंलेपस्यांगारवर्णता ॥ लेपंचद्व्यंगुलंस्थूलं... र्याद्वांगुष्ठमात्रकम् ॥ २२ ॥ काश्मरीवटजंब्वाम्रपत्रैर्वेष्टि... त्तमन् ॥ पलमात्रंरसोग्राह्यःकर्षमात्रंमधुक्षिपेत् ॥ २३ ॥ ... ल्कचूर्णद्रवाद्यास्तुदेयाःस्वरसवद्बुधैः ॥

अर्थ-गीली वनस्पतिको कूट पीस गोला बनावे उसके कँभारी बड ... मुनके पत्तोंसे लपेट उसपर दो अंगुल मोठा अथवा अंगुष्टप्रमाण मिट्टीका ... फिर उस गोलेके नीचे उपले चुनके उसके बीचमें उस गोलेको रखके आँच... वे । जब गोलेकी मिट्टी लाल होजावे तब उसको निकाल मिट्टी और पत्ते उपरके ... रे उसका रस निचोड लेवे यदि वह वनस्पति कठोर होवे तो उसके पानीके ... जो द्रव द्रव्य कहे हैं उनमें पीसके इसी प्रकार गोलेआदिकी क्रातिकरके ... ढलेना चाहिये इसके लेनेकी मात्रा एक पलकी जाननी ॥ यदि उस रसमें सहत ...

---

१ गांगेरुकीको भाषामें गंगेर कहते हैं यह क्षुपजातिकी औषधि है गुण दोष बलाचतुष्टमें लिखे ...

होवे तो अर्द्ध पल डाले कल्क चूर्ण दूध आदिशब्दसे जो द्रवद्रव्योंका मान जैसा स्वरसमें डालना लिखाहै उसी प्रकार इस जगह डालना चाहिये।

कुटजपुटपाक सर्वातिसारोंपर।

तत्कालाकृष्टकुटजत्वचं तंडुलवारिणा ॥ २४ ॥ पिष्टां चतुःपलमितां जंबूपल्लववेष्टिताम् ॥ सूत्रेण बद्धांगोधूमपिष्टेनपरिवेष्टिताम् ॥ २५ ॥ लिप्तांचघनपंकेन गोमयैर्वह्निनादहेत् ॥ अंगारवर्णांचमृदंदृष्ट्वावह्नेःसमुद्धरेत् ॥ २६ ॥ ततोरसंगृहीत्वा च शीतं क्षौद्रयुतंपिबेत्॥जयेत्सर्वानतीसारान्दुस्तरान्सुचिरोत्थितान् ॥ २७॥

अर्थ–तत्कालकी लाई कुडेकी छाल ४ पल ले। उसको उसी समय चावलोंके धोवनके जलमें पीसके गोला बनावे। फिर उसको जामुनके पत्तोंसे लपेट सूतसे बाँधदेवे। उसके ऊपर गेहूंके चूनको सानके लपेट देवे और उसके ऊपर गाढी २ मिट्टीका लेप करे। फिर उसको आरने उपलोंमें रखके फूँकदेवे। जब गोलेकी मिट्टी आगके वेगसे लाल होजावे तब निकाल ले। उसकी मिट्टी और पत्ते आदि दूरकर किसी स्वच्छ कपडे आदिमें दबायके रस निचोडलेवे। जब यह रस शीतल हो जावे; तब सहत मिलायके पीवे तो बहुत कालका दुर्घट अतिसार रोग दूर होवे।

चावलोंके धोनेकी विधि।

कंडितंतंडुलपलंजलेऽष्टगुणितेक्षिपेत् ॥
भावयित्वाजलंग्राह्यंदेयंसर्वत्रकर्मसु ॥ २८ ॥

अर्थ–एकपल बीने और फटकेहुए चावलोंमें आठगुना अर्थात् ८ पल जल मिलाय हाथोंसे मसलके चावलोंको धोवे फिर यह चावलोंका धुलाहुआ पानी सब कार्यमें लेनाचाहिये।

अरलुपुटपाक।

अरलुत्वक्कृतश्चैवपुटपाकोऽग्निदीपनः ॥
मधुमोचरसाभ्यांचयुक्तःसर्वातिसारजित् ॥ २९ ॥

अर्थ–टैंटूकी गीली छालको लायके उसी समय कूटके गोला बनावे। फिर पूर्वोक्त विधि जो पुटपाककी कहीहै उसके अनुसार पुटपाक सिद्ध करे। फिर रस निकाल उसमें सहत और मोचरसका चूर्ण डालके पीवे तो सर्व प्रकारके अतिसार रोग दूर हों।

न्यग्रोधादि पुटपाक ।

न्यग्रोधादेश्चकल्केनपूरयेद्गौरतित्तिरेः ॥ निरंत्रमुदरं सम्यक्पुटपाकेनतत्पचेत् ॥ ३० ॥ तत्कल्कःस्वरसः क्षौद्रयुक्तःसर्वातिसारनुत् ॥

अर्थ–१ बड २ गूलर ३ पापरी[1] ४ जलवेत[2] ५ पीपर इनकी छालका चूर्ण करके पीस कल्क करके उसको सफेद तीतरके[3] पेटमें भरके पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे उसका पु[illegible] करलेवे फिर अग्निसे निकाल, पत्ते मिट्टीआदिको दूर कर, उस तीतर पक्षीके पेटसे [illegible] निकालके रस निचोड उसमें सहत मिलायके पीवे तो सब अतिसार नष्ट होवें ।

दाडिमादिपुटपाक ।

पुटपाकेनविपचेत्सुपक्वंदाडिमीफलम् ॥ ३१ ॥ तद्रसोमधुसंयुक्तःसर्वातीसारनाशनः ॥

अर्थ–पकेहुए अनारको पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे । फिर रक्तवर्ण होनेपर अग्निसे नि[illegible] पत्ते मिट्टी आदिको दूर कर उस अनारको निकाल दाबकर रस निकाल लेवे । उसमें [illegible] मिलायके पीवे तो संपूर्ण अतिसार रोग दूर होवें ।

बीजपूरादिपुटपाक ।

बीजपूराम्रजंबूनांपल्लवानिजटाःपृथक् ॥ ३२ ॥ विपचेत्पुटपाके[illegible] क्षौद्रयुक्तश्चतद्रसः ॥ छर्दिंनिवारयेद्घोरांसर्वदोषसमुद्भवाम् ॥३[illegible]

अर्थ–बिजोरा, आम, और जामुन इनके गीले पत्ते और जड लायके उसी [illegible] कूट पीस गोला बनाय पूर्वोक्त रीतिसे अग्नि देवे । फिर उस गोलेको बाहर निकाल [illegible] रस निकाल लेवे । उस रसमें सहत मिलायके पीवे तो सर्व दोषजन्य दुर्घट ओ[illegible] रोग दूरहो ।

पिष्टानांवृषपत्राणांपुटपाकरसोहिमः ॥ मधुयुक्तोजयेद्रक्तपित्तकासज्वरक्षयान् ॥ ३४ ॥

अर्थ–अडूसाके गीले पत्तोंको उसी समय कूट गोला बनावे । फिर पूर्वोक्त [illegible]

१ पापरी यह एक जातिका बडा भारी वृक्ष होता है । इसके छोटे २ पत्ते होते हैं उनको [illegible] घिसनेसे दादको दूर करे हैं ।

२ जलवेतस जलमें होनेवाले वेतको कहते हैं ।

३ उस तीतरके पेटकी आँतडी आदि निकाल कर साफ कर ले फिर कल्कको भरे ।

अग्नि देकर उसमेंसे रस निकाल लेवे। उसमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त, श्वास, ज्वर और क्षयरोग दूर होवे।

कंटकारीपुटपाक।

पचेत्क्षुद्रांसपंचांगांपुटपाकेनतद्रसः॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तःकासश्वासकफापहः॥ ३५॥

अर्थ–छोटी कटेरीके संपूर्ण वृक्षको फलसहित लाकर उसी समय कूटके गोला बनावे। फिर पुटपाककी विधिसे पकाय रस निकाल उस रसमें पपिलका चूर्ण मिलाय पीवे तो श्वास खाँसी और कफ ये दूर हों।

बिभीतकपुटपाक।

बिभीतकफलंकिंचिद्घृतेनाभ्यज्यलेपयेत्॥गोधूमपिष्टेनांगारै-र्विपचेत्पुटपाकवत्॥ ३६॥ ततःपक्वंसमुद्धृत्यत्वचंतस्यमु-खेक्षिपेत्॥ कासश्वासप्रतिश्यायस्वरभंगाञ्जयेत्ततः॥ ३७॥

अर्थ–बहेडेके फलमें घी चुपडके उसपर गेहूंके चूनका लेपकर पुटपाककी विधिसे अंगारों-पर भूने फिर उसके टुकडे करके मुखमें रक्खे तो श्वास, कास, खाँसी, सरेकमा और स्वर-भंग इन सब रोगोंको शीघ्र दूर करे।

शुंठीपुटपाकआमातिसारपर।

चूर्णंकिंचिद्घृताभ्यक्तंशुंठ्याएरंडजैर्दलैः॥ वेष्टितंपुटपाकेन विपचेन्मंदवह्निना॥ ३८॥ ततउद्धृत्यतच्चूर्णंग्राह्यंप्रातःसि-तान्वितम्॥ तेनयांतिशमंपीडाआमातीसारसंभवाः॥ ३९॥

अर्थ–सोंठके चूर्णमें थोडा घी मिलाय गोला करे फिर उसको अंडीके पत्तोंसे लपेट उस गोलेको सूतसे लपेट ऊपर मिट्टीका लेप करे। फिर उसको पुटपाककी विधिसे पक करे। पीछे उस गोलेको आगसे निकाल उस सोंठके चूर्णको खाँडके साथ नित्य प्रातःकाल खाय तो आमातिसारसे उत्पन्न हुई जो पीडा सो सब दूर होवे।

दूसरा शुंठीपुटपाक आमवातपर।

शुंठीकल्कंविनिक्षिप्यरसैरेरंडमूलजैः॥विपचेत्पुटपाकेनतद्रसः क्षौद्रसंयुतः॥४०॥ आमवातसमुद्भूतांपीडांजयतिदुस्तराम्॥

---

१ मनुष्यके दम चढनेको अर्थात् दमेके रोगको श्वास रोग कहते हैं।
२ गीली अथवा सूखी खांसीको कास कहते हैं।
३ अंडके कहनेसे सूरती अंड लेना उसके अभावमें दूसरा लेना।

अर्थ–अंडकी जडके रसमें सोंठके चूर्णको सानके गोला बनावे उसको पुटपाककी वि‍धि पकायके रस निकाल लेवे । उसमें सहत मिलायके पीवे तो आमवायुसे होनेवाली घोर ... दूर होवे ।

सूरणपुटपाक बवासीरपर ।

सौरणंकंदमादायपुटपाकेनपाचयेत् ॥ ४१ ॥
सतैललवणस्तस्यरसश्चार्शोविकारनुत् ॥

अर्थ–सूरन (जमीकंद) को कूटके गोला बनावे फिर पुटकी विधिसे पका ... निचोड लेवे । उसमें तिलका तेल और सैंधीनामक डालके पीवे तो बवासीरका वि... दूर होवें ।

मृगशृंगपुटपाक हृदयशूलपर ।

शरावसंपुटेदग्धंशृंगंहारिणजंपिबेत् ॥
गव्येनसर्पिषापिष्टंहृच्छूलंनश्यतिध्रुवम् ॥ ४२ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ–मिट्टीके शरावेमें हरणके सींगके टुकडे रखके उसको दूसरे शरावेसे ढकक... लेमें रखके फूंक देव । फिर इस भस्मको गौके घीमें मिलायके चाटे तो हृ... शूल दूर होवे ।

इति श्रीमाथुरकृष्णलालपाठकतनयदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसंहितार्थबोधिनीमाथुरी-भाषाटीकायां द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः २.

काढेकरनेकी विधि ।

पानीयंषोडशगुणंक्षुण्णेद्रव्यपलेक्षिपेत् ॥ मृत्पात्रेक्वाथये-द्ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ १ ॥ तज्जलंपाययेद्धीमान्कोष्णंमृद्वग्निसाधितम् ॥ शृतःक्वाथःकषायश्चनिर्यूहःसनिगद्यते ॥ २ ॥ आहाररसपाकेचसंजातेद्विपलोन्मितम् ॥ वृद्धवैद्योपदेशेनपिबेत्क्वाथंसुपाचितम् ॥ ३ ॥

अर्थ–एकपल औषधको जो कूट कर १६ पल पानीमें डालके हलकी आ... औटावे । जब दो पल पानी शेष रहे तब उतारके छानले इसको कुछ २ गरम

पीवे तथा रोगीको भले प्रकार अन्नपचन होनेके पश्चात् वृद्ध वैद्यको विचार करके काढा देना चाहिये। १ शृत २ क्वाथ ३ कषाय और ४ निर्यूह ये काढेके पर्याय वाचक नाम हैं।

काढेमें खाँड और सहत डालनेका प्रमाण।

क्वाथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ॥
वातपित्तकफातंकेविपरीतंमधुस्मृतम् ॥ ४ ॥

अर्थ–काढेमें खाँड डालनी होवे तो वातरोगमें काढेकी चौथाई, पित्तरोग होवे तो आठवाँ हिस्सा और कफरोग होवे तो काढेका सोलहवां भाग डाले। तथा सहत–पित्तरोग होय तो काढेका सोलहवाँ हिस्सा, वातरोग होय तो आठवाँ हिस्सा और कफरोग होवे तो चतुर्थांश सहत डाले।

काढेमें जीरा आदिकरडे और दूध आदि पतले पदार्थ मिलानेका प्रमाण।

जीरकंगुग्गुलुंक्षारंलवणं च शिलाजतु ॥
हिंगुत्रिकटुकंचैवक्काथेशाणोन्मितंक्षिपेत् ॥ ५ ॥
क्षीरंघृतंगुडंतैलंमूत्रंचान्यद्रवंतथा ॥
कल्कंचूर्णादिकंक्काथेनिक्षिपेत्कर्षसंमितम् ॥ ६ ॥

अर्थ–जीरा, गूगल, जवाखार, सैंधानमक, शिलाजीत, हींग, त्रिकुटा ये पदार्थ काढेमें डालने हों तो शाणप्रमाण डाले। और दूध, घी, गुड, तेल, मूत्र तथा अन्य दूसरे पतले पदार्थ कल्क चूर्णादिक एक एक कर्ष (२ तोले) डाले।

काढेके पात्रको ढकनेका निषेध।

अपिधानमुखेपात्रेजलंदुर्जरतांव्रजेत ॥
तस्मादावरणंत्यक्त्वाक्काथादीनांविनिश्चयः ॥ ७ ॥

अर्थ–काढा होते समय उस पात्रको ढके नहीं क्योंकि काढेके पात्रको ढकनेसे काढा भारी होजाता है। इस कारण काढा करते समय उसके मुखपर ढकना न देय यह नियम सर्वत्र है।

गुडूच्यादिकाढा सर्वज्वरपर।

गडूचीधान्यकारिष्टरक्तचंदनपद्मकैः ॥ गुडूच्यादिगणक्काथःसर्वज्वरहरः स्मृतः ॥ ८ ॥ दीपनोदाहहृल्लासतृष्णाछर्द्यरुचीर्जयेत् ॥

अर्थ–१ गिलोय २ धनिया ३ नीमकी छाल ४ पद्माख और ५ रक्तचन्दन इन पांच औष-

धोंका काढा करके पीवे तो जठराग्निको दीपन करके सर्व ज्वरोंको दूर करे । उसी प्रकार द
वमन और अरुचि इन सब रोगोंको दूर करे इसे गुडूच्यादि क्वाथ कहते हैं ।

नागरादि वा शुण्ठ्यादिकाढा सर्वज्वरपर ।

नागरंदेवकाष्ठंचधान्याकंबृहतीद्वयम् ॥ ९ ॥
दद्यात्पाचनकंपूर्वंज्वरितानांज्वरापहम् ॥

अर्थ–१ सोंठ २ देवदारु ३ धनिया ४ कटेरी और ५ बडी कटेरी (भटकटैया) इ
पांच औषधोंको छदाम २ भर ले काढाकर प्रथम ज्वरके पचानेको यह पाचन काढा देवे तो ज
दूर हो ।

क्षुद्रादिक्काथ ।

क्षुद्राकिराततिक्तंचशुंठीछिन्नानपौष्करम् ॥ १० ॥
कषायएषांशमयेत्पीतश्चाष्टविधंज्वरम् ॥

अर्थ–१ कटेरी २ चिरायता ३ कुटकी ४ सोंठ ५ गिलोय और ६ अंडकी जड इन
औषधोंका काढाकरके पीवे तो आठ प्रकारके ज्वर दूर हों ।

गुडूच्यादिक्काथ ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैःपाचनंस्मृतम् ॥ ११ ॥
दद्याद्वातज्वरेपूर्णलिंगेसप्तमवासरे ॥

अर्थ–१ गिलोय २ पीपरामूल और ३ सोंठ इन तीन औषधोंका काढा वातज्वर पूर्ण
होनेपर सातवें दिनके पश्चात् पाचन देवे तो वातज्वर नष्ट होवे ।

शालपर्ण्यादिकाढावातज्वरपर ।

शालिपर्णीबलारास्नागुडूचीसारिवातथा ॥ १२ ॥
आसांक्काथंपिबेत्कोष्णंतीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥

अर्थ–१ शालपर्णी २ खरेंटी ३ रास्ना ४ गिलोय और ५ सरिवन इन पांच औषधोंका क
थोडा गरम २ पीवे तो तीव्र वातज्वर दूर होय ।

काश्मर्यादिक्काथ वातज्वरपर ।

काश्मरीसारिवारास्नात्रायमाणामृताभवः ॥ १३ ॥
कषायःसगुडःपीतोवातज्वरविनाशनः ॥

अर्थ–१ कंभारी २ सरवन ३ रास्ना ४ त्रायमाण और ५ गिलोय इन पांच औषधोंका क
कर गुड मिलायके पीवे तो वातज्वर दूर हो ।

कट्फलादिपाचन पित्तज्वरपर।

कट्फलेंद्रयवांबष्ठातिक्तामुस्तैः शृतंजलम् ॥ १४ ॥ पाचनंदशमेह्निस्यात्तीव्रेपित्तज्वरेनृणाम् ॥

अर्थ—१ कायफर २ इन्द्रजौ ३ पाढ ४ कुटकी और ५नागरमोथा इन पांच औषधोंका काढा तीव्र पित्तज्वरके दशदिन जानेपर यह पाचन देवे तो पित्तज्वर दूर होवे।

पर्पटादिकाढा पित्तज्वरपर।

पर्पटोवासकस्तिक्ताकिरातोधन्वयासकः ॥१५॥ प्रियंगुश्चकृतः क्काथएषांशर्करयायुतः ॥ पिपासादाहपित्तास्रयुक्तं पित्तज्वरं जयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—१ पित्तपापडा २ अडूसा ३ कुटकी ४ चिरायता ५ धमासा और ६ फूलप्रियंगु इनका काढां करके खाँड मिलायके पीवे तो प्यास दाह और रक्तपित्त इन करके युक्त पित्तज्वर दूर होवे।

द्राक्षादिकाढा पित्तज्वरपर।

द्राक्षाहरीतकीमुस्तंकटुकाकृतमालकः ॥ पर्पटश्चकृतः क्काथएषांपित्तज्वरापहः ॥ १७ ॥ तृण्मूर्च्छादाहपित्तासृक्छमनोभेदनः स्मृतः ॥

अर्थ—१ दाख, २ छोटीहरड, ३ नागरमोथा, ४ कुटकी, ५ किरवारेका गूदा और ६ पित्तपापडा इन छः औषधोंका काढा पित्तज्वरको दूर करे तथा तृषा मूर्छा दाह रक्तपित्त इनको शांत करे एवं भेदक (बँधेहुए मलको तोरनेवाला) है।

बीजपूरादिपाचनकफज्वरपर।

बीजपूरशिवापथ्यानागरग्रंथिकैः शृतम् ॥ १८ ॥ सक्षारंपाचनंश्लेष्मज्वरेद्वादशवासरे ॥

अर्थ—१ बिजोरेकी जड २ छोटी हरड ३ सोंठ और ४ पीपरामूल इन चार औषधोंका काढा करके उसमें जवाखार मिलाय बारह दिनके पश्चात् कफज्वरपर पाचन देवे तो कफज्वर दूर होय।

भूनिंबादिकाथकफज्वरपर।

भूनिंबनिंबपिप्पल्यःशठीशुंठीशतावरी ॥ १९ ॥ गुडूचीबृहतीचेतिक्काथोहन्यात्कफज्वरम् ॥

अर्थ–१ चिरायता २ नीमकी छाल ३ पीपर ४ कचूर ५ सोंठ ६ सतावर ७ गिलोय और ८ कटेरी इन आठ औषधोंका काढा करके पीवे तो कफज्वरको दूर करे ।

पटोलादिकाढा कफज्वरपर ।

पटोलत्रिफलातिक्ताशठीवासामृताभवः ॥ २० ॥
क्काथोमधुयुतः पीतोहन्यात्कफकृतंज्वरम् ॥

अर्थ–१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ कचूर ७ अडूसा और ८ गिलोय इन आठ औषधोंका काढा सहत मिलायके पीवे तो कफज्वरको नष्ट करे ।

पर्पटादिकाढावातपित्तज्वरपर ।

पर्पटाब्जामृताविश्वाकिरातैः साधितंजलम् ॥ २१ ॥
पंचभद्रमिदंज्ञेयंवातपित्तज्वरापहम् ॥

अर्थ–१ पित्तपापडा २ नागरमोथा ३ गिलोय ४ सोंठ और ५ चिरायता इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो वातपित्तज्वर दूर होवे ।

लघुक्षुद्रादिकाढावातकफज्वरपर ।

क्षुद्राशुंठीगुडूचीनांकषायः पौष्करस्य च ॥ २२ ॥
कफवाताधिकेपेयोज्वरेवापित्रिदोषजे ॥
कासश्वासारुचिकरेपार्श्वशूलविधायिनि ॥ २३ ॥

अर्थ–१ कटेरी २ सोंठ ३ गिलोय आर ४ अंडकी जड इन चार औषधोंका काढा पीवे जिस ज्वरमें कफवायु प्रबल हो उसको हरे और खाँसीको दूरकरे एवं श्वास, खाँसी, अरुचि, पीठ शूल इन उपद्रवकरके युक्त ऐसा त्रिदोषज ज्वर दूर होवे ।

आरग्वधादिकाढावातकफज्वरपर ।

आरग्वधकणामूलमुस्तातिक्ताभयाकृतः ॥
क्काथःशमयतिक्षिप्रंज्वरंवातकफोद्भवम् ॥ २४ ॥
आमशूलप्रशमनोभेदीदीपनपाचनः ॥

अर्थ–१ अमलतासका गूदा २ पीपरामूल ३ नागरमोथा ४ कुटकी और ५ जंगीहरड इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो वातकफज्वर और आमका शूल तत्काल नष्टहोय तथा मल उतरकर होकर दीपन पाचन करे ।

अमृताष्टक पित्तश्लेष्मज्वरपर ।

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेंद्रयवनागरैः ॥ २५ ॥ पटोलचन्दना-

भ्यांचपिप्पलीचूर्णयुक्छृतम् ॥ अमृताष्टकमेतच्चपित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ २६ ॥ छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णानिवारणम् ॥

अर्थ-१ गिलोय २ नीमकी छाल ३ कुटकी ४ नागरमोथा ५ इन्द्रजौ ६ सोंठ ७ पटोलपत्र और ८ लालचंदन इन आठ औषधोंका काढा करके पीपलका चूर्णडालके पीवे तो पित्तकफज्वर दूर होवे तथा वमन, अरुचि, हृल्लास, दाह और प्यासको नष्ट करे।

पटोलादिकाढा पित्तकफज्वरपर।

पटोलंचंदनंमूर्वातिक्तापाठामृतागणः ॥ २७ ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकंडूविषापहः ॥

अर्थ-१ पटोलपत्र २ रक्तचंदन ३ मूर्वा ४ कुटकी ५ पाढ और ६ गिलोय इन छः औषधोंक काढा करके पीवे तो पित्तकफज्वर वमन दाह खुजली और विषबाधा इनको दूर करे।

कंटकार्यादिपाचन सर्वज्वरपर।

कंटकारीद्वयंशुंठीधान्यकंसुरदारुच ॥ २८ ॥
एभिःशृतंपाचनंस्यात्सर्वज्वरविनाशनम् ॥

अर्थ-१ कटेरी २ छोटी कटेरी ३ सोंठ ४ धनिया और ५ देवदारु इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो सर्व प्रकारके ज्वर दूर हों इसको पाचन कहते हैं।

दशमूलादिकाढावातकफज्वरादिपर।

शालिपर्णीपृष्ठपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ २९ ॥ बिल्वाग्निमंथस्योनाककाश्मरीपाटलायुतैः ॥ दशमूलमितिख्यातंक्वथितंतज्जलंपिबेत् ॥ ३० ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तंवातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ सन्निपातज्वरहरंसूतिकादोषनाशनम् ॥ ३१ ॥ शोषशैत्यभ्रमस्वेदकासश्वासविकारनुत् ॥ हृत्कंपग्रहपार्श्वार्तितन्द्रामस्तकशूलहृत् ॥ ३२ ॥

अर्थ-१ शालपर्णी २ पिठवन ३ छोटी कटेरी ४ बडी कटेरी ५ गोखरू ६ बेलगिरी ७ अरनी ८ टेंटू ९ कंभारी और १० पाढल इन दश मूलका काढा पिप्पलीका चूर्ण डालके पीवे

तो वातकफज्वर संनिपातज्वर प्रसूतिका रोग शोषै सरदीका लगना भ्रम पसीने खाँसी और मूर्छा इन रोगोंको दूर करे ।

अभयादिकाढात्रिदोषज्वरपर ।

अभयामुस्तधान्याकरक्तचन्दनपद्मकैः ॥ वासकेंद्रयवोशीरगुडूचीकृतमालकैः ॥ ३३ ॥ पाठानागरतिक्ताभिःपिप्पलीचूर्णयुक्छृतम् ॥ पिबेत्रिदोषज्वरजित्पिपासादाहकासनुत् ॥३४॥ प्रलापश्वासतन्द्राघ्नन्दीपनंपाचनंपरम् ॥ विण्मूत्रानिलविष्टंभवमिशोषारुचिच्छिदम् ॥ ३५ ॥

अर्थ–१ जंगीहरड २ नागरमोथा ३ धनिया ४ लालचंदन ५ पद्माख ६ अडूसा ७ इन्द्रजौ ८ खस ९ गिलोय १० अमलतासका गूदा ११ पाठ १२ सोंठ और १३ कुटकी इनका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो त्रिदोषज्वर प्यास, दाह, खाँसी, प्रलाप, श्वास तन्द्रा इनको दूरकरे । दीपन और पाचन है । एवं मल, मूत्र, अधोवायु इनके रुकनेको वमन शोष और अरुचि इनको दूर करे ।

अष्टादशांगकाढासन्निपातादिकोंपर ।

किरातकटुकीमुस्ताधान्येंद्रयवनागरैः ॥ दशमूलमहादारुगजपिप्पलिकायुतैः ॥ ३६ ॥ कृतःकषायःपार्श्वार्तिसन्निपातज्वरंजयेत् ॥ कासश्वासवमीहिक्कातन्द्राहृद्ग्रहनाशनः ॥ ३७ ॥

अर्थ– १ चिरायता २ कुटकी ३ नागरमोथा ४ धनिया ५ इन्द्रजौ ६ सोंठ १० दशमूल मिलायकर १६ हुए १७ देवदारु और १८ गजपीपल इन अठारह औषधोंका काढाकरके पीवे तो पार्श्वशूल और सन्निपातज्वर ये दूर हों । उसी प्रकार श्वास, खाँसी, वमन, हिचकी, तंद्रा हृदयपीडा इनको दूर करे ।

यवान्यादिकाढाश्वासादिकोंपर ।

यवानीपिप्पलीवासातथावत्सकवल्कलः ॥ एषांक्वाथंपिबेत्कासेश्वासेचकफजेज्वरे ॥ ३८ ॥

अर्थ–१ अजमायन, २ पीपल, ३ अडूसेके पत्ते और ४ कूडेकी छाल इन चार औषधोंका काढाकरके पीवे तो खाँसी, श्वास और कफज्वर इनका नाश करे ।

१ शोष, शैत्य, इस ठिकाने 'शाखाशैत्य' ऐसा पाठ है तहां हाथ पैरमें सरदी होना ऐसा अर्थ करना चाहिये ।

कट्फलादिकाढा कासआदिपर।

कट्फलांबुदभार्ङ्गीभिर्धान्यरोहिषपर्पटैः॥
वचाहरीतकीशृंगीदेवदारुमहौषधैः॥ ३९॥
क्वाथःकासंज्वरंहंतिश्वासश्लेष्मगलग्रहान्॥

अर्थ--१ कायफल, २ नागरमोथा, ३ भारंगी, ४ धनिया, ५ रोहिषतृण[१], ६ पित्तपापडा, ७ वच, ८ हरड, ९ काकडसिंगी, १० देवदारु और ११ सोंठ इन ग्यारह औषधोंको काढा पीनेसे खाँसी, ज्वर, श्वास, कफ और कंठका रुकना इन सबको दूरकरे।

गुडूच्यादिकाढा तथा पर्पटादिकाढा।

क्वाथोजीर्णज्वरंहंतिगुडूच्याःपिप्पलीयुतः॥ ४०॥
तथापर्पटजःक्वाथःपित्तज्वरहरःपरम्॥
किंपुनर्यदियुज्येतचंदनोदीच्यनागरैः॥

अर्थ--गिलोयका काढा सिद्ध होनेपर पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो बहुतदिनका ज्वर जाय। उसीप्रकार केवल पित्तपापडेका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो पित्तज्वर नष्ट होय। यदि लालचंदन, नेत्रवाला, सोंठ इनको मिलायके पित्तपापडेका काढा करके सेवन करे तो पित्तज्वर चलाजाय इसमें क्या कहना है।

निदिग्धिकामृताशुंठीकषायंपाययेद्भिषक्॥ ४१॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तंश्वासकासार्दितापहम्॥
पीनसारुचिवैस्वर्यशूलजीर्णज्वराच्छिदम्॥ ४२॥

अर्थ--१ कटेरी २ गिलोय ३ सोंठ इन औषधोंका काढा पीपलका चूर्ण मिलायके सेवन करे तो श्वास, खाँसी, आर्दितवायु, सरेकमां, अरुचि, स्वरभंग, शूल, और जीर्ण ज्वर इनको दूर करे।

देवदार्वादिकाढा प्रसूतिदोषपर।

देवदारुवचाकुष्ठंपिप्पलीविश्वभेषजम्॥ कट्फलंमुस्तभूनिंब तिक्तधान्याहरीतकी॥४३॥ गजकृष्णाचदुःस्पर्शा[२]गोक्षुरंधन्वयासकम्॥ बृहत्यातिविषाच्छिन्नाकर्कटीकृष्णजीरकम्॥४४॥

---

१ रोहिष तृणके प्रतिनिधिमें चिरायता डालनेकी संप्रदाय है।
२ यहां दुःस्पर्शा और धन्वयासक दोनों शब्दोंका अर्थ धमासाही होता है अत एव परिभाषामें कहे प्रमाण धमासा दूना लेना अथवा दुःस्पर्शा शब्द करके कौंचके बीज लेने चाहिये।

क्वाथमष्टावशेषंतुप्रसूतांपाययेत्स्त्रियम् ॥ शूलकासज्वरश्वास मूर्च्छाकंपाशिरोर्तिजित् ॥ ४५ ॥

अर्थ–१ देवदारु, २ वच, ३ कूठ, ४ पीपल, ५ सोंठ, ६ कायफर, ७ नागरमोथा, ८ चिरायता, ९ कुटकी, १० धनिया, ११ जंगीहरड, १२ गजपीपल, १३ लाल धमासा, १४ गोखरू, १५ धमासा, १६ कटेरी, १७ अतीस, १८ गिलोय, १९ काकडासिंगी और २० कालाजीरा इन वीस औषधोंका अष्टावशेष काढा करके पीवे तो प्रसूतरोग, शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा कंपवायु और मस्तकपीडा इन सबको दूर करे ।

क्षुद्रादिकाढा सर्वशीतज्वरोंपर ।

क्षुद्राधान्यकशुंठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः ॥ रक्तचंदनभूनिंबपटोलवृषपौष्करैः ॥४६॥ कटुकेंद्रयवारिष्टभार्ङ्गीपर्पटकैःसमैः ॥ क्वाथंप्रातर्निषेवेतसर्वशीतज्वरच्छिदम् ॥४७॥

अर्थ--१ कटेरी २ धानिया ३ सोंठ ४ गिलोय ५ नागरमोथा ६ पद्माख ७ लालचंदन ८ चिरायता ९ पटोलपत्र १० अडूसा ११ अंडकी जड १२ कुटकी १३ इंद्रजौ १४ नीमकी छाल १५ भारंग और १६ पित्तपापडा इन सोलह औषधोंका काढा प्रातः कालमें पीवे तो सर्वशीतज्वर दूर हों ।

मुस्तादिकाढा विषमज्वरपर ।

मुस्ताक्षुद्रामृताशुंठीधात्रीक्वाथःसमाक्षिकः ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तोविषमज्वरनाशनः ॥ ४८ ॥

अर्थ--१ नागरमोथा २ कटेरी ३ गिलोय ४ सोंठ और ५ आमले इन पांच औषधोंका काढा सहत और पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो विषमज्वर दूर होय ।

पटोलादिकाढा एकाहिकज्वरपर ।

पटोलत्रिफलानिंबद्राक्षाशम्याकविश्वकः ॥ क्वाथःसितामधुयुतोजयेदेकाहिकंज्वरम् ॥ ४९ ॥

अर्थ--१ पटोलपत्र, २ त्रिफला, ३ नीमकी छाल, ४ मुनकादाख, ५ अमलतासका गूदा और ६ अडूसा इन छः औषधोंका काढा सहत और खांड डालके पीवे तो नित्य आनेवाला ज्वर दूर होवे ।

पटोलेंद्रयवादारुत्रिफलामुस्तगोस्तनैः ॥ मधुकामृतवासाना

क्काथंक्षौद्रयुतंपिबेत् ॥ ५० ॥ संततेसततेचैवद्वितीयकतृतीयके ॥ एकाहिकेवाविषमेदाहपूर्वेनवज्वरे ॥ ५१ ॥

अर्थ–१ पटोलपत्र, २ इन्द्रजौ, ३ देवदारु, ४ त्रिफला, ५ नागरमोथा, ६ मुनक्का दाख, ७ मुलहटी, ८ गिलोय और ९ अडूसा इन नव औषधोंका काढा कर सहत मिलायके पीवे तो संततज्वर, सततज्वर, द्वितीयकज्वर, तृतीयकज्वर, एकाहिकज्वर, विषमज्वर, दाहपूर्वकज्वर और नवज्वर इतने रोगोंको दूर करे।

गुडूच्यादिकाढा तृतीयज्वरपर।

गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चंदनोशीरनागरैः ॥ कृतंक्काथंपिबेत्क्षौद्रसितायुक्तंज्वरातुरः ॥ ५२ ॥ तृतीयज्वरनाशाय तृष्णादाहनिवारणम् ॥

अर्थ–१ गिलोय, २ धनिया, ३ नागरमोथा, ४ लालचन्दन, ५ नेत्रवाला और ६ सोंठ इन छः औषधोंका काढा सहत और खाँड डालके पीवे तो तिजारीका आना दूर होवे।

देवदार्वादिकाढा चातुर्थिकज्वर पर।

देवदारुशिवावासाशालिपर्णीमहौषधैः ॥ ५३ ॥ धात्रीयुतंशृतंशीतंदद्यान्मधुसितायुतम् ॥ चातुर्थिकज्वरश्वासेकासे मंदानलेतथा ॥ ५४ ॥

अर्थ–१ देवदारु, २ जंगीहरड, ३ अडूसा, ४ सालपर्णी, ५ सोंठ और ६ आमले इन छः औषधोंका काढा करके शीतल होनेपर सहत और खांड मिलायके पीवे तो चौथिया ज्वर, श्वास और खांसी दूरहों तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

गुडूच्यादिकाढा ज्वरातिसारपर।

गुडूचीधान्यकोशीरशुंठीवालकपर्पटैः ॥ बिल्वप्रतिविषापाठारक्तचंदनवत्सकैः ॥ ५५ ॥ किरातमुस्तेंद्रयवैः क्कथितंशिशिरंपिबेत् ॥ सक्षौद्रंरक्तपित्तघ्नंज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५६ ॥

अर्थ–१ गिलोय २ धनिया ३ खस ४ सोंठ ५ नेत्रवाला ६ पित्तपापडा ७ बेलगिरी ८ अतीस ९ पाठ १० लालचन्दन ११ कुंटकी छाल १२ चिरायता १३ नागरमोथा और १४ इन्द्रजौ इन चौदह औषधोंका काढा शीतलकर सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त और ज्वरातिसार दूर होवे।

नागरादिकाढा ज्वरातिसारपर ।

नागरंकुटजोमुस्तममृतातिविषातथा ॥
एभिःकृतंपिबेत्क्काथंज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५७ ॥

अर्थ–१ सोंठ २ कुडाकी छाल ३ नागरमोथा ४ गिलोय और ५ अतीस इन पांच औषधोंका काढा पीवे तो ज्वरातिसार शांत होवे ।

धान्यपंचक आमशूलपर ।

धान्यवालकबिल्वाब्दनागरैःसाधितंजलम् ॥
आमशूलहरंग्राहिदीपनंपाचनंपरम् ॥ ५८ ॥

अर्थ–१ धनिया २ नेत्रवाला ३ बेलगिरी ४ नागरमोथा और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा पीनेसे आमशूल दूर करके मलका अवष्टंभ दूरकरै और दीपन पाचन करै।

धान्यकादिकाढा दीपनपाचनपर ।

धान्यनागरजःक्काथोदीपनःपाचनस्तथा ॥
एरंडमूलयुक्तश्चजयेदामानिलव्यथाम् ॥ ५९ ॥

अर्थ–१ धनिया २ सोंठ इन दोनों औषधोंका काढा पीनेसे दीपन पाचन करे और इसमें अंडकी जड डाल लेवे तो आमवायुको दूर करता है ।

वत्सकादिकाढा आमातिसार और रक्तातिसारपर ।

वत्सकातिविषाबिल्वमुस्तवालकमाशृतम् ॥
अतिसारंजयेत्सामंचिरजंरक्तशूलजित् ॥ ६० ॥

अर्थ–१ कूडाकी छाल २ अतीस ३ बेलगिरी ४ नागरमोथा और ५ नेत्रवाला इन औषधोंका काढा बहुत दिनके आमातिसारको और शूलसहित रक्तातिसारको दूर करै।

कुटजाष्टककाढाअतिसारादिकोंपर ।

कुटजातिविषापाठाधातकीलोध्रमुस्तकैः ॥ ह्रीबेरदाडिमयुतैः कृतःक्काथः समाक्षिकः ॥ ६१ ॥ पेयोमोचरसेनैवकुटजाष्टकसंज्ञकः ॥ अतिसाराञ्जयेद्घोरान्रक्तशूलामदुस्तरान् ॥ ६२ ॥

अर्थ–१ कूडेकी छाल २ अतीस ३ पाढ ४ धायके फूल ५ लोध ६ नागरमोथा ७ नेत्रवाला और ८ अनारकी छाल इन आठ औषधोंका काढा सहत और मोचरस डालके पीवे तो जिस अतिसारमें दाह रक्तशूल और आम होय ऐसे घोर अतिसारको नष्ट करै।

ह्रीबेरादिकाढा अतिसारादिरोगोंपर ।

ह्रीबेरधातकीलोध्रपाठालज्जालुवत्सकैः ॥ धान्यकातिविषा-
मुस्तगुडूचीबिल्वनागरैः ॥ ६३ ॥ कृतःकषायःशमयेदतिसा
रंचिरोत्थितम् ॥ अरोचकामशूलास्रज्वरघ्नःपाचनःस्मृतः॥६४॥

अर्थ–१ नेत्रवाला २ धायके फूल ३ लोध ४ पाढ ५ लजालू ६ कूडाकी छाल ७ धनिया ८ अतीस ९ नागरमोथा १० गिलोय ११ बेलगिरी और १२ सोंठ इन बारह औषधोंका काढा पीवे तो बहुत दिनका अतिसार अरुचि आमशूल रुधिरविकार और ज्वर इनको दूर करे इसको पाचन कहा है ।

धातक्यादिकाढा बालकोंके सबअतिसारोंपर ।

धातकीबिल्वलोध्राणिवातकंगजपिप्पली ॥ एभिःकृतं
शृतंशीतंशिशुभ्यःक्षौद्रसंयुतम् ॥ ६५ ॥ प्रदद्यादवले-
हंवासर्वातीसारशांतये ॥

अर्थ–१ धायके फूल २ बेलगिरी ३ लोध ४ नेत्रवाला और ५ गजपीपल इन पाँच औषधोंके काढेको शीतलकर सहत मिलायके बालकको चटावे तो बालकका अतिसाररोग दूर होवे ।

शालपर्ण्यादिकाढा संग्रहणीपर ।

शालिपर्णीबलाबिल्वधान्यशुंठीकृतंशृतम् ॥ ६६ ॥
आध्मानशूलसहितांवातजांग्रहणींजयेत् ॥

अर्थ–१ शालपर्णी २ खरेटी ३ बेलगिरी ४ धनिया और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो पेटका फूलना और शूल इन करके युक्त वातज संग्रहणीको दूर करे ।

चतुर्भद्रादिकाढा आमसंग्रहणीपर ।

गुडूच्यतिविषाशुंठीमुस्तैःक्वाथःकृतोजयेत् ॥ ६७ ॥
आमानुषक्तांग्रहणींग्राहीपाचनदीपनः ॥

अर्थ–१ गिलोय २ अतीस ३ सोंठ और ४ नागरमोथा इन चार औषधोंका काढा पीवे तो आमयुक्तग्रहणी दूर होवे तथा ग्राही कहिये मलको अवष्टंभ करनेवाला होकर दीपन पाचन करता है ।

इन्द्रयवादिकाढा सब अतिसारोंपर ।

यवधान्यपटोलानांक्वाथःसक्षौद्रशर्करः ॥ ६८ ॥

योज्यः सर्वातिसारेषु बिल्वाम्रास्थिभवस्तथा ॥

अर्थ–१ इन्द्रजौ २ धनिया और ३ पटोलपत्र इन तीन औषधोंके काढेमें मिश्री और मिलायके पीवे तो संपूर्ण अतिसार दूर होवें । उसी प्रकार बेलगिरिका अथवा आमकी गुठली अथवा आमकी गुठली और बेलगिरीका काढा करके सहत और मिश्री मिलायके पीवे तो पित्त और दुर्घट श्वास और खाँसी दूर हो ।

त्रिफलादिकाढा कृमिरोगपर ।

त्रिफलादेवदारुश्चमुस्तामूषककर्णिका ॥ ६९ ॥ शिग्रुरेतैः कृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥ विडंगचूर्णयुक्तश्चकृमिघ्नः कृमिरोगहा ७०

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ देवदारु ५ नागरमोथा ६ मूसाकर्णी और ७ सहँजनेकी छाल इन सात औषधोंका काढा पीपलका चूर्ण वा वायविडंगका चूर्ण मिलायके पीवे तो कृमिज्वर और विवर्णतादि जंतुविकार दूर होंय ।

फलत्रिकादिकाढा कामला पांडुरोगपर ।

फलत्रिकामृतातिक्तानिंबकैरातवासकैः ॥
जयेन्मधुयुतः क्वाथः कामलां पांडुतां तथा ॥ ७१ ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ गिलोय ५ कुटकी ६ नीमकी छाल ७ चिरायता और ८ अडूसेके पत्ते इन आठ औषधोंका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो कामला और पांडुरोगको दूर करे ।

पुनर्नवादिकाढा पांडुकासादिरोगोंपर ।

पुनर्नवाभयानिंबदार्वीतिक्तापटोलकैः ॥ गुडूचीनागरयुतैः क्वाथो गोमूत्रसंयुतः ॥ ७२ ॥ पांडुकासोदरश्वासशूलसर्वांगशोथहा

अर्थ–१ सोंठकी जड, २ हरड, ३ नीमकी छाल, ४ दारुहलदी, ५ कुटकी, ६ पटोल ७ गिलोय और ८ सोंठ इनका काढा गोमूत्र मिलायके पीवे तो पांडुरोग, खाँसी, उदर, श्वास, शूल और सर्वांगकी सूजनको नष्ट करे ।

वासादिकाढा ।

वासाद्राक्षाभयाक्वाथः पीतः सक्षौद्रशर्करः ॥ ७३ ॥
निहन्ति रक्तपित्तार्तिश्वासकासान्सुदारुणान् ॥

---

१ किसी २ आचार्यने कटुपटोल फल कहे हैं परंतु "पटोलपत्रं पित्तघ्नं नाडी तस्य कफापहा" इस प्रमाणसे इस जगह परवलके पत्तेही लेने चाहिये ।

अर्थ–१ अडूसा २ दाख ३ हरड इनके काढेमें सहत और मिश्री मिलायके पीवे तो रक्तपित्तकी पीडा श्वास और दारुण खाँसी इन सबको दूरकरे ।

बांसेका काढा रक्तपित्तक्षयादिपर ।

रक्तपित्तक्षयंकासंश्लेष्मपित्तज्वरंतथा ॥ ७४ ॥
केवलोवासककाथःपीतःक्षौद्रेणनाशयेत् ॥

अर्थ–केवल अडूसेके काढेमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त क्षय खाँसी और श्लेष्मपित्तज्वरको दूरकरे ।

वासादिकाढा ज्वरखाँसीपर ।

वासाक्षुद्रामृताकाथःक्षौद्रेणज्वरकासहा ॥ ७५ ॥

अर्थ–१ अडूसा २ कटेरी और ३ गिलोय इनके काढेमें सहत मिलायके पीवे तो ज्वर खाँसी दूर होवे ।

क्षुद्रादिकाढा खाँसीपर ।

कासघ्नःपिप्पलीचूर्णयुक्तःक्षुद्राशृतस्तथा ॥

अर्थ–कटेरीके काढेमें पीपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो खाँसी दूर होवे ।

क्षुद्रादिकाढा श्वासखाँसीपर ।

क्षुद्राकुलित्थावासाभिर्नागरेणचसाधितः ॥ ७६ ॥
क्राथःपौष्करचूर्णाढ्यःश्वासकासौनिवारयेत् ॥

अर्थ–१ कटेरी २ कुलथी ३ अडूसा और ४ सोंठ इनके काढेमें पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो श्वास खाँसीको दूरकरे ।

रेणुकादिकाढा हिक्कापर ।

रेणुकापिप्पलीक्काथोहिंगुकल्केनसंयुतः ॥ ७७ ॥
पानादेवहिपंचापिहिक्कानाशयतिक्षणात् ॥

अर्थ–१ रेणुका और २ पीपल इनके काढेमें हींगका कल्क मिलायके पीवे तो पांच प्रकारकी हिचकियोंको तत्काल दूरकरे ।

हिंग्वादिकाढा गृध्रसीरोगपर ।

हिंगुपुष्करचूर्णाढ्यंदशमूलशृतंजयेत् ॥ ७८ ॥
गृध्रसींकेवलःक्काथःशेफालीपत्रजस्तथा ॥

अर्थ–१ दशमूलके काढेमें भुनी हींग और पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो गृध्रसीनाम

धातका रोग दूर होवे अथवा केवल निर्गुंडीके पत्तोंके काढेमें भुनी हींग और पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो भी गृध्रसी वायु दूरहोवे ।

बिल्वादि वा गुडूच्यादि काथ ।

बिल्वत्वचोगुडूच्यावाक्काथःक्षौद्रेणसंयुतः ॥ ७९ ॥
जयेत्त्रिदोषजांछर्दिंपर्पटःपित्तजांतथा ॥

अर्थ—बेलकी छाल अथवा गिलोयके काढेमें सहत डालके पीवे तो संनिपातकी छर्दि (वमनरोग) को दूरकरे अथवा पित्तपापडेका काढा सहत मिलायके पीनेसे पित्तजन्य छर्दिको दूरकरे।

रास्नादि–पंचककाथ सर्वांगवातपर ।

रास्नामृतामहादारुनागरैरंडजंशृतम् ॥ ८० ॥
सप्तधातुगतेवातेसामेसर्वांगजेपिबेत् ॥

अर्थ—१रास्ना २ गिलोय ३ देवदारु ४ सोंठ और ५ अण्डकी जड इनका काढा सप्तधातुगत वायु, आमवात और सर्वांगगतवातके रोगमें पीना चाहिये ।

रास्नासप्तक ।

रास्नागोक्षुरकैरंडदेवदारुपुनर्नवाः ॥ ८१ ॥
गुडूच्यारग्वधौचैवक्काथएषांविपाचयेत् ॥
शुण्ठीचूर्णेनसंयुक्तः पिबेज्जंघाकटिग्रहे ॥ ८२ ॥
पार्श्वपृष्ठोरुपीडायामामवातेसुदुस्तरे ॥

अर्थ—१ रास्ना २ गोखरू ३ अण्ड ४ देवदारु ५ पुनर्नवा ६ गिलोय और ७ अमलतासका गूदा इनके काढेमें सोंठका चूर्ण मिलायके जंघा और कमरके रहजानेमें एवं पसवाडे, पीठ, जांघ और आमवात इन रोगोंमें यह काढा पीना चाहिये तो उक्त रोग दूर हों ।

महारास्नादिकाढा संपूर्णवायुपर ।

रास्नाद्विगुणभागास्यादेकभागास्तथापरे ॥ ८३ ॥ धन्वयासबलैरंडदेवदारुशठीवचा ॥ वासकोनागरंपथ्याचव्यामुस्तापुनर्नवा ॥ ८४ ॥ गुडूचीवृद्धदारुश्चशतपुष्पाचगोक्षुरः ॥ अश्वगंधाप्रतिविषाकृतमालःशतावरी ॥ ८५ ॥ कृष्णासहचरश्चैवधान्यकं बृहतीद्वयम् ॥ एभिःकृतंपिबेत्काथंशुंठीचूर्णेनसंयुतम् ॥ ८६ ॥

कृष्णचूर्णेनवायोगराजगुग्गुलुनाथवा॥अजमोदादिनावापितैलैनैरंडजेनवा ॥८७॥ सर्वांगकंपकुब्जत्वेपक्षाघातेपबाहुके॥ गृध्रस्यामामवातेचश्लीपदेचापतानके॥८८॥ अंडवृद्धौतथाध्मानेजंघाजानुगदार्दिते॥शुक्रामयेमेढ्ररोगेवंध्यायोन्याशयेषु च॥८९॥ महारास्नादिराख्यातोब्रह्मणागर्भकारणम्॥

अर्थ–१ रास्ना दो तोले और २ धमासा ३ खिरेंटी ४ अंडकी जड ५ देवदारु ६ कचूर ७ वच ८ अडूसेका पंचांग ९ सोंठ १० हरडकी छाल ११ चव्य १२ नागरमोथा १३ सोंठकी जड़ १४ गिलोय १५ विधायरा १६ सौंफ १७ गोखरू १८ असगंध १९ अतीस २० अमलतासका गूदा २१ शतावर २२ पीपल छोटी २३ पियाबांसा २४ धनियां और २५–२६ दोनों छोटीबडी कटेरी एक २ तोले। इन छब्बीस औषधोंके काढेमें सोंठका चूर्णमिलायके अथवा पीपलके चूर्णको मिलायके अथवा योगराजगूगलके साथ अथवा अजमोदादिचूर्णके साथ अथवा अंडीके तेलके साथ इस काढेको पीवे तो सर्वांगकंप, कुबडापना, पक्षाघात, अपबाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद, अपतानवायु, अंडवृद्धि, अफरा, जंघा जानुकी पीडा, शुक्रके दोष, लिंगके रोग, वंध्याके योनि और गर्भाशयके रोग इन सबको दूर करे। ब्रह्मदेवने गर्भस्थापनके कारण यह महारास्नादि क्काथ कहा है।

एरंडसप्तक स्तनादिगतवायुपर।

एरंडोबीजपूरश्चगोक्षुरोबृहतीद्वयम्॥९०॥ अश्मभेदस्तथा बिल्वएतन्मूलैःकृतःशृतः॥ एरंडतैलहिंग्वाढ्यःसयवक्षारसैंधवः॥९१॥ स्तनस्कंधकटीमेढ्रहृदयोत्थव्यथांजयेत्॥

अर्थ–१ अंडकी जड २ बिजोरेकी जड ३ गोखरू ४ छोटी कटेरी ५ बडी कटेरी ६ पाषाणभेद और ७ बेलगिरि इन सात औषधोंकी जडके काढेमें अंडीका तेल और भुनी हींग तथा जवाखार और सैंधानमक इनका चूर्ण मिलायकर पीवे तो स्तन, कन्धा, कमर, लिंग और छाती इन ठिकानोंपर होनेवाली वातसंबंधी पीडाको दूरकरे।

नागरादिकाढा वातशूलपर।

नागरैरंडयोःक्काथःक्काथइंद्रयवस्यवा॥९२॥ हिंगुसौवर्चलोपेतोवातशूलनिवारणः॥

अर्थ–१ सोंठ २ अंडकी जड इन दोनों औषधोंका काढा करके उसमें भुनी हींग और कालानमक मिलायके पीवे तो अथवा इन्द्रजौके काढेमें कालानमक और हींग मिलायके पीवे तो वातसंबंधी पीडा दूर होवे।

त्रिफलादिकाढा पित्तशूलपर ।

त्रिफलारग्वधक्काथःशर्कराक्षौद्रसंयुतः ॥ ९३ ॥
रक्तपित्तहरोदाहपित्तशूलनिवारणः ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आमला और ४ अमलतास इन चार औषधोंके काढेमें खांड और सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त दाह और पित्तशूल ये दूर हों ।

एरंडमूलकादिकाढा कफशूलपर ।

एरंडमूलंद्विपलंजलेऽष्टगुणितेपचेत् ॥ ९४ ॥
तत्क्काथोयावशूकाढ्यःपार्श्वहृत्कफशूलहा ॥

अर्थ–१ अंडकी जड दोपैल ले उसमें आठपल पानी मिलायके काढा करे जब अष्टावशेष काढा होजावे तब उतार छान उसमें जवाखार मिलायके पीवे तो पसवाडे और हृदयमें होनेवाला कफके शूलका नाश होवे ।

दशमूलादिकाढा हृद्रोगादिकोंपर ।

दशमूलकृतःक्काथः सयवक्षारसैंधवः ॥ ९५ ॥
हृद्रोगगुल्मशूलार्तिकासश्वासांश्चनाशयेत् ॥

अर्थ–दशमूलका काढा कर उसमें जवाखार और सैंधानमक मिलायके पीवे तो हृद्रोग गोला, शूल, श्वास और खाँसी इनका नाश करे ।

हरीतक्यादिकाढा मूत्रकृच्छ्रपर ।

हरीतकीदुरालभाकृतमालकगोक्षुरैः॥९६॥पाषाणभेदसहितैः क्काथोमाक्षिकसंयुतः ॥विबंधेमूत्रकृच्छ्रेचसदाहेसरुजेहितः ॥९७॥

अर्थ– १ छोटीहरड २ धमासा ३ अमलतासका गूदा ४ गोखरू और ५ पाषाणभेद इन पांच औषधोंका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो दाह मूत्रका रुकना तथा वायुका रोग इन उपद्रवयुक्त मूत्रकृच्छ्र दूर होवे ।

वीरतर्वादिकाढा मूत्राघातादिकोंपर ।

वीरतरुर्वृक्षवंदाकाशःसहचरत्रयम् ॥ कुशद्वयनलोगुंद्राबकपुष्पोऽग्निमंथकः ॥ ९८ ॥ मूर्वापाषाणभेदश्चस्योनाकोगोक्षुरस्तथा ॥ अपामार्गश्चकमलंब्राह्मीचेतिगणोवरः ॥ ९९ ॥वी-

---

१ मागधपरिभाषाके मानसे दो पलके व्यावहारिक आठ तोले होते हैं ।

रतवीदिरित्युक्तः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ॥ मूत्राघातंवायुरोगा-न्नाशयेन्निखिलानपि ॥ १०० ॥

अर्थ–१ कोहवृक्षकी छाल २ बाँदा ३ कांस ४ सफेद ५ पीला और ६ काला ऐसा पियाँ-बाँसा ७ कुशा ८ डाभ ९ देवनल १० गुंद्रा (पटेरे) ११ बकपुष्प (शिवलिंगी) १२ अरनीकी जड १३ मूर्वा १४ पाषाणभेद १५ टेंटूकी जड १६ गोखरू १७ ओंगा (चिरचिटा) १८ कमल और १९ ब्राह्मीके पत्ते इन उन्नीस औषधोंका काढा करके पीवे तो यह वीरतर्वादिक्काथ शर्करा पथरी मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात और सर्व प्रकारके वादीके रोगोंको दूर करे।

एलादिकाढा पथरीशर्करादिकपर।

एलामधुकगोकंटरेणुकैरंडवासकः ॥कृष्णाश्मभेदसहितःक्वाथ एषांसुसाधितः॥१०१॥शिलाजतुयुतःपेयःशर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ॥

अर्थ–१ इलायची छोटीके बीज २ मुलहटी ३ गोखरू ४ रेणुकाबीज ५ अंडकी जड ६ अडूसा ७ पीपर और ८ पाषाणभेद इन आठ औषधोंका काढा करके उसमें शिलाजीत मिलायके पीवे तो शर्करा पथरी और मूत्रकृच्छ्र इनको दूर करे।

समूलगोक्षुरक्काथःसितामाक्षिकसंयुतः ॥ १०२ ॥
नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणितथाचोष्णसमीरणम् ॥

अर्थ–जडसहित गोखरूके वृक्षका काढा कर उसमें खाँड और सहत मिलायके पीवे तो मूत्र-कृच्छ्र और उष्णवात (गरमीका रोग) दूर होताहै।

त्रिफलादिकाढा प्रमेहपर।

वरदार्व्यब्ददारूणांक्वाथःक्षौद्रेणमेहहा ॥ १०३ ॥
वत्सकात्रिफलादार्वीमुस्तकोबीजकस्तथा ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ दारुहलदी ५ नागरमोथा और ६ देवदारु इनका काढा सहत मिलायके पीवे तो प्रमेह दूर हो। १ कुडाकी छाल २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ दारुहलदी ६ नागरमोथा ७ बीजक इन सात औषधोंका काढा सहत मिलायके पीवे तो प्रमेहको दूर करे।

---

१ गुन्द्राको हिन्दीमें पटेरे और मरैठीमें गोंदणी गवत कहते हैं। २ ब्राह्मी रूखडी गंगायमुनानदीके खादरमें बहुत होती है। इसका पृथ्वीमें फैला हुआ छत्ता होता है। पत्ते गोल कुछ सुकडे हुए होते हैं। इसके दो भेद हैं एक ब्राह्मी दूसरी मंडूकपर्णी। ३ रेणुकाबीज प्रसिद्ध है. इसके काले २ दाने होते हैं।

दूसरा फलत्रिकादिकाढा प्रमेहपर ।

फलत्रिकाब्ददार्वीणांविशालायाःशृतंपिबेत् ॥ १०४ ॥
निशाकल्कयुतंसर्वप्रमेहविनिवृत्तये ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ दारुहल्दी ५ नागरमोथा और ६ इन्द्रायनकी जड इन छः औषधोंके काढेमें हल्दी मिलायके पीवे तो सर्व प्रकारके प्रमेह दूर होवें ।

दार्व्यादिकाढा प्रदररोगपर ।

दार्वीरसांजनंमुस्तंभल्लातःश्रीफलंवृषः ॥ कैरातश्चपिबेदेषांक्वाथं शीतंसमाक्षिकम् ॥ जयेत्सशूलंप्रदरंपीतश्वेतासितारुणम् ॥१०५॥

अर्थ–१ दारुहल्दी २ रसोत ३ नागरमोथा ४ भिलावा ५ बेलगिरी ६ अडूसा और ७ चिरायता इन सात औषधोंके काढेको शीतल करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो शूलसहित पीला सफेद काला और लाल ऐसे रंगवाला स्त्रियोंका प्रदररोग दूर हो ।

न्यग्रोधादिकाढा व्रणादिरोगोंपर ।

न्यग्रोधप्लक्षकोशाम्रवेतसोबदरीतुणिः ॥ मधुयष्टिप्रियालुश्चलोध्रद्वयमुदुंबरः ॥१०६॥ पिप्पलयश्चमधूकश्चतथापारिसपिप्पलः ॥ सल्लकीतिंदुकीजंबूद्वयमाम्रतरुः शिवा ॥ १०७ ॥ कदंबककुभौचैवभल्लातकफलानिच ॥ न्यग्रोधादिगणक्वाथंयथालाभंच कारयेत् ॥ १०८ ॥ अयंक्वाथोमहाग्राहीव्रण्योभग्नंचसाधयेत्॥ योनिदोषहरोदाहमेदोमेहविषापहः ॥ १०९ ॥

अर्थ–१ बडकी छाल २ पाखरकी छाल ३ अंबाडेकी छाल ४ वेतकी छाल ५ बेरकी छाल ६ तुनी (तूत वृक्षकी छाल) ७ मुलहठी ८ चिरोंजी ९ लाल लोध्र १० सफेद लोध्र ११ गूलरकी छाल १२ पीपलकी छाल १३ महुआकी छाल १४ पारिसपीपलकी छाल १५ सालवृक्षकी छाल १६ तेंदू १७ छोटी जामुन १८ बडी जामुनकी छाल १९ आम २० छोटी हरड २१ कदंबकी छाल २२ कोहकी छाल और २३ भिलाए इन तेईस औषधोंका काढा करके पीवे तो मलका अवष्टंभ होकर व्रणरोग, अस्थिभंग, योनिदोष, दाह, मेदोरोग और विषदोष नष्ट होवें ।

बिल्वादिकाढा मेदोरोगपर ।

बिल्वोग्निमंथः स्योनाकः काश्मरी पाटला तथा ॥

क्वाथएषांजयेन्मेदोदोषंक्षौद्रेणसंयुतः ॥ ११० ॥

अर्थ-१ बेलागिरी २ अरनी ३ टेंटू ४ कंभारी ५ पाढल इस बृहत्पंचमूलका काढा करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो सब शरीरमें मेद बढकर जो पीडा होती है वह दूर होवे ।

दूसरा त्रिफलादिकाढा ।

क्षौद्रेणत्रिफलाक्वाथःपीतोमेदोहरःस्मृतः ॥
शीतीभूतंतथोष्णांबुमेदोहृत्क्षौद्रसंयुतम् ॥ १११ ॥

अर्थ-त्रिफलाका काढा करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो मेदरोग नष्ट होवे उसी प्रकार औटेहुए जलको शीतकर उसमें सहत मिलायके पीवे तो मेदरोग दूर होवे ।

चव्यादिकाढा उदररोगपर ।

चव्यचित्रकविश्वानांसाधितोदेवदारुणा ॥
क्वाथस्त्रिवृच्चूर्णयुतोगोमूत्रेणोदराञ्जयेत् ॥ ११२ ॥

अर्थ-१ चव्य २ चीतेकी छाल ३ सोंठ और ४ देवदारु इन चार औषधोंका काढा कर उसमें निशोथका चूर्ण और गोमूत्र मिलायके पीवे तो संपूर्ण उदररोग दूर होवें ।

पुनर्नवादिकाढा शोथोदरपर ।

पुनर्नवामृतादारुपथ्यानागरसाधितः ॥
गोमूत्रगुग्गुलुयुतः क्वाथःशोथोदरापहा ॥ ११३ ॥

अर्थ-१ साँठीकी जड २ गिलोय ३ देवदारु ४ जंगीहरड और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा करके उसमें गूगल और गोमूत्र मिलायकर पीनेसे सूजनवाला उदररोग नष्ट होवे ।

पथ्यादिकाढा यकृत्प्लीहादिकोंपर ।

पथ्यारोहीतकक्वाथंयवक्षारकणायुतम् ॥
प्रातःपिबेद्यकृत्प्लीहगुल्मोदरानिवृत्तये ॥ ११४ ॥

अर्थ-१ जंगीहरड २ रक्तरोहिडा[1] इनदोनों औषधोंका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण और जवाखार मिलायके प्रातःकाल पीवे तो यकृत्[2] रोग और प्लीहाका रोग तथा गुल्मोदर इनको दूर करे ।

---

१ रक्तरोहिडा प्रसिद्ध वृक्ष है । २ यकृत् और प्लीहा ये दोनों मांसकेपिंड हैं । (जिनको इनके विशेष लक्षण जानने होवें प्रथम खंडमें शारीरकमें देखलेवें) सूजन आयकर जिसमें रुधिर नष्ट होजावे तथा राध वगैरह होय उस रोगको क्रमसे प्लीहोदर और यकृदाल्युदर कहते हैं ।

पुनर्नवादिकाढा सूजनपर ।

पुनर्नवादारुनिशानिशाशुंठीहरीतकी ॥ गुडूचीचित्रको भार्ङ्गीदेवदारुचतैःशृतः ॥ ११५ ॥ पाणिपादोदरमुखप्राप्तशोफंनिवारयेत् ॥

अर्थ-१ सोंठकी जड २ दारुहल्दी ३ हल्दी ४ सोंठ ५ जंगीहरड ६ गिलोय ७ चीतेकी छाल ८ भारंगी ९ देवदारु इन नौ औषधोंका काढा करके पीवे तो संपूर्ण अंगकी सूजन दूर होवे ।

त्रिफलादिकाढा वृषणशोथपर ।

फलत्रिकोद्भवंक्काथंगोमूत्रेणैवपाययेत् ॥ ११६ ॥ वातश्लेष्मकृतंहंतिशोथंवृषणसंभवम् ॥

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आँवला इन तीन औषधोंका काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवे तो वातकफजन्य जो अंडकोषोंकी सूजन है वह दूर होवे ।

रास्नादिकाढा अंत्रवृद्धिपर ।

रास्नाऽमृताबलायष्टीगोकंटैरंडजःशृतः ॥ ११७ ॥ एरंडतैलसंयुक्तोवद्धिमन्त्रोद्भवांजयेत् ॥

अर्थ-१ रास्ना २ गिलोय ३ खरैंटी ४ मुलहटी ५ गोखरू ६ अंडकी जड इन छः औषधोंका काढा करके उसमें अंडीका तेल मिलायके पीवे तो अंत्रवृद्धि (अर्थात् अन्तर्गत वायुकि जिससे अण्डकोश बडे होते हैं) रोग दूरहोवे ।

कांचनारादिकाढा गंडमालापर ।

कांचनारत्वचःक्काथःशुण्ठीचूर्णेननाशयेत् ॥ ११८ ॥ गण्डमालांतथा क्काथःक्षौद्रेणवरुणत्वचः ॥

अर्थ-कचनार वृक्षकी छालका काढा कर उसमें सोंठका चूर्ण मिलायके पीवे तो गंडमाला उसी प्रकार बरना वृक्षकी छालका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो गंडमाला दूर होवे ।

शाखोटकादिकाढा गंडमालापर ।

शाखोटवल्कलक्काथंगोमूत्रेणयुतंपिबेत् ॥ ११९ ॥ श्लीपदानांविनाशायमेदोदोषनिवृत्तये ॥

अर्थ-सहोडाकी छालका काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवे तो श्लीपदरोग (कि जो विशेष करके पैरोंमें होताहै जिसको पीलपाव कहतेहैं वह) और मेदोरोग ये दूर हों।

पुनर्नवादिकाढा अंतर्विद्रधिपर।

पुनर्नवावरुणयोःक्काथोंतर्विद्रधीञ्जयेत् ॥ १२० ॥
तथाशिग्रुमयः क्काथो हिंगुकल्केनसंयुतः ॥

अर्थ-१ पुनर्नवा २ वरना इन दोनों औषधोंका काढा पीनेसे अंतर्विद्रधिको दूर करे। अथवा सहँजनेकी छालका काढा करके उसमें भुनी हींग डालके पीवे तो भी अंत विंद्रधि रोग दूर होय।

वरणादिकाढा मध्यविद्रधिपर।

वरुणादिगणक्काथमपक्वेमध्याविद्रधौ ॥ १२१ ॥
ऊषकादिरजोयुक्तंपिबेच्छमनहेतवे ॥

अर्थ-वरुणादिक औषधोंका गण जो आगे कहेंगे उसका काढा करके तथा ऊषकादि औषधोंका चूर्ण जो आगे कहेंगे उसका चूर्ण करके उस काढेमें मिलायके पीवे तो पक्व नहीं हुआ जो विद्रधिरोग सो दूर होवे।

वरुणादिकाढा।

वरुणोबकपुष्पश्चबिल्वापामार्गचित्रकाः ॥ १२२॥ अग्निमंथद्वयंशिग्रुद्वयंचबृहतीद्वयम् ॥ सैरेयकत्रयंमूर्वामेषशृंगीकिरातकः ॥ १२३ ॥ अजशृंगीचाबिंबीचकरञ्जश्चशतावरी ॥ वरुणादिगणक्काथःकफमेदोहरःस्मृतः ॥ १२४ ॥ हंतिगुल्मंशिरःशूलं तथाभ्यंतरविद्रधीन् ॥

अर्थ-१ वरनाकी छाल २ शिवलिंगी ३ कोमल बेलफल ४ ओंगा ५ चित्रक ६ छोटी अरनी ७ बडी अरनी ८ कडुआ सहँजना ९ मीठा सहँजना १० छोटीकटेरी ११ बडी कटेरी १२ पीले फूलका पियाबांसा १३ सफेद फूलका पियाबांसा १४ काले फूलका पियाबांसा १५ मूर्वा १६ काकडासिंगी १७ चिरायता १८ मेंढासिंगी १९ कडुई कंदूरीकी जड अथवा पत्ते २० कंजा और २१ शतावर इन इक्कीस औषधोंका काढा करके पीवे तो कफमेदरोग, मस्तकशूल और गोलाका रोग ये दूर हों अंतर्विद्रधि नामका

१ इस जगह बकपुष्प करके कमल लेना अथवा फूलप्रियंगु लेना चाहिये।
२ मेषशृंगी प्रसिद्ध है इसकी बेल होती है उसको लौकिकमें मेढासिंगी कहते हैं।

रोग होताहै वह दूर हो, मूलके श्लोकमें (तथा विद्रधिपीनसान्) ऐसाभी पाठ है उस पक्षमें पीनसरोगकोभी दूरकरे ऐसा अर्थ जानना।

ऊषकादिगण।

ऊषकस्तुत्थकंहिंगुकाशीसद्वयसैंधवम् ॥ १२५ ॥
सशिलाजतुकृच्छ्राश्मगुल्ममेदःकफापहम् ॥

अर्थ—१ खारीमिट्टी २ मोचरस शुद्धकिया हुआ ३ भुनी हींग ४ सफेद हीराकसीस ५ पीला हीराकसीस (इसको शुद्धकरके लेना चाहिये) ६ सैंधानमक और ७ शिलाजीत इन सात औषधोंका चूर्ण सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र, पथरी, गोला और मेदरोगको दूरकरे।

खादिरादिकाढा भगंदररोगपर।

खदिरत्रिफलाक्काथोमहिषीघृतसंयुतः ॥ १२६ ॥
विडंगचर्णयुक्तश्चभगंदरविनाशनः ॥

अर्थ—१ खैरसार २ हरड ३ बहेडा ४ आमला इन चार औषधोंका काढा कर उसमें भैंसका घी और वायविडंगका चूर्ण मिलाय पीवे तो भगंदर रोग दूर होवे।

पटोलादिकाढा उपदंशपर।

पटोलत्रिफलानिंबकिरातखदिरासनैः १२७ ॥
क्काथःपीतोजयेत्सर्वानुपदंशान्सगुग्गुलः ॥

अर्थ—१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ नीमकी छाल ६ चिरायता ७ खैरसार और ८ विजैसार इन आठ औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके पीवे संपूर्ण उपदंश (गरमीके रोग) दूर हों।

अमृतादिकाढा वातरक्तपर।

अमृतैरंडवासानांक्काथएरंडतैलयुक्तं ॥ १२८ ॥
पीतःसर्वांगसंचारिवातरक्तंजयेद्ध्रुवम् ॥

अर्थ—१ गिलोय २ अंडकी जड और ३ अडूसा इन तीन औषधोंका काढा कर उसमें अंडीका तेल मिलायके पीवे तो संपूर्ण अंगमें विचरनेवाला वातरक्त रोग दूर होवे।

दूसरा पटोलादिकाढा।

पटोलंत्रिफलातिक्तागुडूचीचशतावरी ॥ १२९ ॥

---

१ असन शब्दके दो अर्थ हैं एक विजैसार दूसरा वनकुलथी परंतु इस जगह विजैसार लेना चाहिये।

एषक्काथोजयेत्पीतोवातास्रंदाहसंयुतम् ॥

अर्थ-१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ गिलोय और ७ सतावर इन सात औषधोंका काढा करके पीवे तो दाहयुक्त जो वातरक्त सो दूर हो।

अवल्गुजादिकाढा श्वेतकुष्ठपर।

क्काथोऽवल्गुजचूर्णाख्योधात्रीखदिरसारयोः ॥ १३० ॥
जयेत्सशीलितोनित्यंश्वित्रंपथ्याशिनांनृणाम् ॥

अर्थ-आमला और खैरसार इन दोनों औषधोंका काढा करके उसमें बावचीका चूर्ण मिलायके पीवे तो पथ्यसे रहनेवाले मनुष्यका सफेद कुष्ट दूर हो।

लघुमंजिष्ठादिकाढा वातरक्तकुष्ठादिकोंपर।

मंजिष्ठात्रिफलातिक्तावचादारुनिशामृता ॥ १३१ ॥
निंबश्चैषांकृतःक्काथोवातरक्तविनाशनः ॥
पामाकपालिकाकुष्ठरक्तमंडलजिन्मतः ॥ १३२ ॥

अर्थ-१ मंजीठ २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ वच ७ दारुहल्दी ८ गिलोय और ९ नीमकी छाल इन नौ औषधोंका काढा करके पीवे तो वातरक्त खाज और कापालिककुष्ट तथा रुधिरके विकार (देहमें काले चकत्तोंका होना) इतने रोग दूर होवें।

बृहन्मंजिष्ठादिकाढाकुष्ठादिकोंपर ।

मंजिष्ठामुस्तकुटजगुडूचीकुष्ठनागरैः ॥ भार्ङ्गीक्षुद्रावचानिंबनिशाद्वयफलत्रिकैः ॥ १३३ ॥ पटोलकटुकीमूर्वाविडंगासनचित्रकैः ॥ शतावरीत्रायमाणाकृष्णेंद्रयववासकैः ॥ १३४ ॥ भृंगराजमहादारुपाठाखदिरचंदनैः ॥ त्रिवृद्वरुणकैरातबाकुचीकृतमालकैः ॥ १३५ ॥ शाखोटकमहानिंबकरंजातिविषाजलैः ॥ इंद्रवारुणिकानंतासारिवापर्पटैः समैः ॥१३६॥ एभिः कृतंपिबेत्क्काथंकणागुग्गुलसंयुतम् ॥ अष्टादशसुकुष्ठेषुवातरक्तार्दितेतथा ॥ १३७ ॥ उपदंशेश्लीपदेचप्रसुप्तौपक्षघातके ॥ मेदोदोषेनेत्ररोगेमंजिष्ठादिप्रशस्यते ॥ १३८ ॥

अर्थ–१ मंजीठ २ नागरमोथा ३ कूंडोकी छाल ४ गिलोय ५ कूठ ६ सोंठ ७ भारंगी ८ कटेरीका पंचांग ९ वच १० नीमकी छाल ११ हल्दी १२ दारुहल्दी १३ हरड १४ बहेडा १५ आँवला १६ पंटोलपत्र १७ कुटकी १८ मूर्वा १९ वायविडंग २० विजैसार २१ चीतेकी छाल २२ शतावर २३ त्रायमाण २४ पीपल २५ इन्द्रजव २६ अडूसेके पत्ते २७ भाँगरा २८ देवदारु २९ पाठ ३० खैरसार ३१ लालचंदन ३२ निसोत ३३ वरनाकी छाल ३४ चिरायता ३५ बावची ३६ अमलतासका गूदा ३७ सहोंडाकी छाल ३८ बकायन ३९ कंजा ४० अतीस ४१ नेत्रवाला ४२ इन्द्रायनकी जड ४३ धमासा ४४ सारवा और ४५ पित्तपापडा इन पैंतालीस औषधोंको कूट पीस जवकूट कर २ तोलेका काढाकर उसमें पीपलका चूर्ण और गूगल मिलायके पीवे तो अठारह प्रकारके कोढरोग वातरक्त उपदंश अर्थात् गरमींका रोग श्लीपदरोग अंगशून्य होना पक्षाघात मेदरोग और नेत्ररोग ये सब दूर हों ।

यदि इसम कचनारकी छाल बंबूलकी छाल सालसाकी लकडी और सरफोंका ये मिलाय काढा करे अथवा इसका भमकेमें अर्क निकाल लेवे तो यह खूनकी सब बीमारियोंको दूर करे यदि इसमें सहत अथवा उन्नावका शरबत मिलाय लिया जावे तो परमोत्तम है यह हमारा अनुभव कियाहुआ है ।

पथ्यादिकाढा शिरोरोगादिकोंपर ।

पथ्याक्षधात्रीभूनिंबनिशानिंबामृतायुतैः ॥ कृतःक्काथः षडंशोयंसगुडःशीर्षशूलहा ॥ १३९ ॥ भ्रूशंखकर्णशूलौचतथार्धशिरसोरुजम् ॥ सूर्यावर्तशंखकंचदंतघातंचतद्रुजम् ॥ १४० ॥ नक्तांध्यंपटलंशुक्रंचक्षुःपीडांव्यपोहति ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ चिरायता ५ हल्दी ६ नीमकी छाल ७ गिलोय इन सात औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके पीवे तो मस्तकशूल, भौंहँ, शंख (कनपटी) और कानसंबंधी शूल, आधाशीशी, सूर्यावर्त (सूर्यके उदयसे दो पहरपर्यंत जो शूल मस्तकमें बढता है वह हैं,) शंखका शूल, दाँतोंके हिलनेसे जो पीडा होती है वह, साधारण दंतशूल, रतौंध नेत्रोंके पटलगत रोग होते हैं नेत्रका फूला तथा नेत्रोंका दूखना इन सब उपद्रवसहित रोगोंको यह पथ्यादि काढा दूर करता है ।

वासादिकाढा नेत्ररोगपर ।

वासाविश्वामृतादार्वीरक्तचंदनचित्रकैः ॥ १४१ ॥ भूनिंबनिंब-

१ कूडकी जड लेना ऐसाभी किसी २ आचार्यका मत है ।

कटुकापटोलत्रिफलांबुदैः ॥ यवकालिंगकुटजैःक्वाथःसर्वाक्षिरोगहा ॥१४२॥ वैस्वर्यंपीनसंश्वासंनाशयेदुरसःक्षतम् ॥

अर्थ-१ अडूसा २ सोंठ ३ गिलोय ४ दारुहल्दी ५ लालचंदन ६ चीतेकी छाल ७ चिरायता ८ नीमकी छाल ९ कुटकी १० पटोलपत्र ११ हरड १२ बहेडा १३ आमला १४ नागरमोथा १५ जौ १६ इन्द्रजौ और १७ कुडाकी छाल इन सत्रह औषधोंका काढा करके पीवे तो संपूर्ण नेत्रके रोग, स्वरभंग, पीनसरोग, श्वास और उरःक्षत ये संपूर्ण रोग दूर होवैं।

दूसराअमृतादिकाढा।

अमृतात्रिफलाक्वाथःपिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥ १४३ ॥
सक्षौद्रःशीलितोनित्यंसर्वनेत्रव्यथांजयेत् ॥

अर्थ-१ गिलोय २ हरड ३ बहेडा ४ आमला इन चार औषधोंका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण और सहत मिलायके पीवे तो संपूर्ण नेत्रके रोग दूर होते हैं।

व्रणादिकप्रक्षालनकरनेका काढा।

अश्वत्थोदुंबरप्लक्षवटवेतसजंशृतम् ॥ १४४ ॥
व्रणशोथोपदंशानांनाशनंक्षालनात्स्मृतम् ॥

अर्थ-१ पीपल २ गूलर ३ पाखर ४ बड और ५ वेत[1] इन पाँच औषधोंके छालके काढेसे व्रण, सूजन, गर्मीका रोग (जो लिंगमें होता है) तीनवार धोनेसे नष्ट होता है।

प्रमथ्यादिकषायभेद।

प्रमथ्याप्रोच्यतेद्रव्यपलात्कल्कीकृताच्छृतात् ॥ १४५ ॥
तोयेष्टगुणितेतस्याःपानमाहुःपलद्वयम् ॥

अर्थ-एकपल औषध लेकर उसको कूटपीस कर कल्क करे। यदि औषध सूखी हुई हो तो उसको भिगोकर कल्क करे। उसमें आठगुना जल डालके औटावे। जब दो पल जल शेष रहे तब उतारले इसको प्रमथ्या कहते हैं। इसके सेवन करनेका प्रमाण दो पल है।

मुस्तादिप्रमथ्यारक्तातिसारपर।

मुस्तकेंद्रयवैःसिद्धाप्रमथ्याविपलोन्मिता ॥ १४६ ॥
सुशीतामधुसंयुक्तारक्तातीसारनाशिनी ॥

अर्थ-१ नागरमोथा और २ इन्द्रजौ इन दोनों औषधोंको १ पल ले कूट पीसके कल्क-

[1] यदि वेत न मिले तो जलवेतस लेनी चाहिये।

करै । उसमें आठगुना जल मिलायके २ पल शेष रहने पर्यंत औटावे । फिर उतार शीतल कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे ।

यवागूका विधान ।

साध्यंचतुष्पलंद्रव्यंचतुःषष्टिपलेजले ॥ १४७ ॥
तत्क्काथेनार्धशिष्टेनयवागूंसाधयेद्बुधः ॥

अर्थ–चारपल औषध लेकर कुछ थोडीसी कूटके उसमें ६४ चौसठ पल पानी मिलाके औटावे । जब आधा जल शेष रहे तब उतार ले । फिर उसको छानके उसमें दूसरे द्रव्य चा- आदि जो कहे हैं वे मिलायके फिर औटावे और जब गाढी होजावे तब उतार ले । इसे य- कहते हैं ।

आम्रादियवागू संग्रहणीपर ।

आम्राम्रातकजंबूत्वक्कषायेविपचेद्बुधः ॥ १४८ ॥
यवागूंशालिभिर्युक्तांतांभुक्त्वाग्रहणींजयेत् ॥

अर्थ–१ आम २ अंबाडा ३ जामुन इन तीन वृक्षोंकी चार पल छालको जव कूट कर चौ- ठगुने पानीमें डालके औटावे । जब आधा पानी रह जावे तब उतारके इस जलको छानके फिर उसमें चार पल चावल डालके फिर औटावे । जब औटाते २ गाढा होजावे तब उतार ले इसे आम्रादि यवागू कहते हैं इस यवागूके भोजन करनेसे संग्रहणी रोग दूर होवे ।

कल्कद्रव्यपलंशुंठीपिप्पलीचार्धकार्षिकी ॥ १४९ ॥
वारिप्रस्थेनविपचेत्सद्रवोयूषउच्यते ॥

अर्थ–कल्कको औषध सामान्यता करके १ पल लेय । तथा जिस प्रयोगमें सोंठ और पी- हो उस जगह वह तीक्ष्ण होनेके कारण आधा २ कर्ष लेवे अथवा दोनो मिलाकर अर्ध कर्ष फिर उनका कल्क करके उसमें जल एकप्रस्थ (सेरभर) डालके मिलाय लेवे । उसको पत- रखके पेजके समान गाढी करे उसको यूष ऐसे कहते हैं ।

सप्तमुष्टिकयूषसंनिपातादिकोंपर ।

कुलित्थयवकोलैश्चमुद्गैर्मूलकग्रन्थिकैः ॥ १५० ॥

---

१ मागध परिभाषाके मानसे पलके व्यावहारिक चार तोले जानने ।

२ औषधोंका काढा करे जब आधा रहे तब उसको छानके उसमें चांवल डालके यवागू करे । दूसरे प्रकारकी यवागू जो कहेंगे उसमें चावल और दूसरे धान्य जो कहेंगे इनमें पानी छःगुना डाल यवागू बनावे इतनाही भेद है ।

शुण्ठीधान्यकयुक्तैश्चयूषःश्लेष्मानिलापहः ॥
सप्तमुष्टिकइत्येषसन्निपातज्वरंजयेत् ॥ १५१ ॥
आमवातहरःकण्ठहृद्वक्त्राणांविशोधनः ॥

अर्थ–१ कुलथी २ जौ ३ बेर ४ मूँग ५ छोटी मूली ६ सोंठ और ७ धनियां इन सात औषधोंको एक २ पल लेकर सोलह गुने गाढा होने पर्यंत औटावे। इसको सप्तमुष्टिक यूष कहते हैं। यह यूष पीनेसे कफ वायु संनिपात ज्वर और आमवात इनको दूर करे तथा कंठ हृदय मुख इनको शुद्ध करे।

पानादिककल्पना।

क्षुण्णंद्रव्यंपलंसाध्यंचतुःषष्टिपलेऽम्बुनि ॥ १५२ ॥
अर्धशिष्टंचतद्देयंपानेभक्तादिसंनिधौ ॥

अर्थ-एकपल औषध ले जवकूट कर उसको ६४ चौसठ पल जलमें डालके औटावे। जब औटते २ आधा पानी रहजावे तब उतारके कपडेसे छान ले। इसको जब २ प्यास लगे तब और भोजनके समय थोडा २ पीवे। वह प्रकार आगे लिखा जाताहै।

उशीरादिपानक पिपासाज्वरपर।

उशीरपर्पटोदीच्यमुस्तनागरचंदनैः ॥ १५३ ॥
जलंशृतंहिमंपेयंपिपासाज्वरनाशनम् ॥

अर्थ–१ खस २ पित्तपापडा ३ नेत्रवाला ४ नागरमोथा ५ सोंठ और रक्तचंदन इन छः औषधोंको मिलाय चार तोले लेवे। जवकूट करके उसको २५६ तोले जलमें डालके आधा पानी रहते पर्यंत औटावे फिर उसको उतारके छान लेवे। शीतल होनेपर जिस ज्वरमें प्यास अत्यंत लगती हो उसमें थोडा २ क्रमसे पीनेको देवे तो प्यास और ज्वर ये दूर हों।

गरमजलकी विधि ज्वरादिकोंपर।

अष्टमेनांशशेषेणचतुर्थेनार्धकेनवा ॥ १५४ ॥
अथवाक्वथनेनैवासिद्धमुष्णोदकंवदेत् ॥

अर्थ-पानीको औटायके आठवाँ हिस्सा चौथा हिस्सा अथवा अर्धावशेष रक्खे अथवा उत्तम रीतिसे खूब औटावे। इसको उष्णोदक (गरमजल) कहते हैं।

रात्रिमें गरमजलपीनेकी विधि।

श्लेष्मामवातमेदोघ्नंबस्तिशोधनदीपनम् ॥ १५५ ॥

कासश्वासज्वरहरंपीतमुष्णोदकंनिशि ॥

अर्थ–रात्रिमें गरमजल पीनेसे कफ आमवात मेदरोग खाँसी श्वास और ज्वर नष्ट होवे तथा शुद्ध होकर अग्नि प्रदीप्त होय।

दूधके पाककी विधि आमशूलपर।

क्षीरमष्टगुणंद्रव्यात्क्षीरान्नीरंचतुर्गुणम् ॥ १६६ ॥
क्षीरावशेषन्तत्पीतंशूलमामोद्भवंजयेत् ॥

अर्थ–औषधोंका आठगुणा गौका दूध लेवे और दूधसे चौगुणा पानी ले सबको एकत्र कर दूध शेष रहनेपर्यंत औटावे फिर उस दूधको पीवे तो आमशूल दूरहोवे।

पंचमूलीक्षीरपाक सर्वजीर्णज्वरोंपर।

सर्वज्वराणांजीर्णानांक्षीरंभैषज्यमुत्तमम् ॥ १६७ ॥
श्वासात्कासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलात्सपीनसात् ॥
मच्यतेज्वरितःपीत्वापंचमूलीशृतंपयः ॥ १६८ ॥

अर्थ–१ शालपर्णी २ पृष्ठपर्णी ३ छोटी कटेरी ४ बडी कटेरी और ५ गोखरू इन औषधोंकी जडको जौकट कर आठगुने दूधमें और दूधसे चौगुने पानीमें डालके औटावे जब औटते २ केवल दूधमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसके पीनेसे श्वास, खाँसी, मस्तकशूल, पसवाडोंका शूल, पीनस और जीर्णज्वर ये दूर हों। यह दूध संपूर्ण जीर्णज्वरोंको उत्तम औषधि है।

त्रिकंटकादिक्षीरपाक।

त्रिकंटकबलाव्याघ्रीकुष्ठनागरसाधितम् ॥
वर्चोमूत्रविबंधघ्नंकफज्वरहरंपयः॥ १६९ ॥

अर्थ–१ गोखरू २ खरेंटी ३ कटेरीकी जडका बक्कल ४ कुष्ठ और ५ सोंठ इन पांच औषधोंको आठगुने दूध और दूधसे चौगुने पानीमें औटावे। जब दूधमात्र

---

१ "कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासवे। पित्तमद्यविशेषोत्थे तिक्तकैः शृतशीतलम् ॥" अर्थ–तिक्त कहिये १ नागरमोथा २ पित्तपापडा ३ नेत्रवाला ४ चंदन ५ खस और ६ सोंठ इन छः औषधोंको कूटके औटते हुए पानीमें डालके उतारले फिर शीतल करके इसे पित्त और मद्य प्रगट ज्वर प्यास कफज्वर वातज्वर और कफवातज्वर इनमें देवे ऐसाही ग्रंथान्तरमें पाठ है।

२ औषध इस जगह अनुक्त हैं इस वास्ते १ सोंठ २ भूयआँवला और ३ अडके बीज इन औषधोंसे आठगुना जल लेना चाहिये।

हे तब उतार दे। इस दूधको पीनेसे मल और मूत्र ये उत्तम रीतिसे उतरें तथा कफज्वर दूर होवे।

अन्नस्वरूप यवागू।

अथान्नप्रक्रियात्रैवप्रोच्यतेनातिविस्तरात् ॥ यवागूःषड्गुणजले सिद्धास्यात्कृशराघना ॥ १६० ॥ तंदुलैर्माषमुद्गैश्चतिलैर्वासाधिताहिता ॥ यवागूर्ग्राहिणीबल्यातर्पिणीवातनाशिनी ॥ १६१ ॥

अर्थ-अन्नप्रक्रिया कहिये अन्नस्वरूप यवागू, विलेपी और पेया इनके तैयारकरनेकी विधि संक्षेप करके कहताहूं। चावल अथवा मूंग किंवा उडद न होय तो तिल इनमेंसे जिस द्रव्यकी यवागू बनानी हो उसको लेकर उसमें उससे छःगुना पानी डालके जबतक गाढी न होवे तबतक औटावे उसको अन्नयवागू कहते हैं। उस यवागूके दो नाम हैं एक कृसरा और दसरी घना। वह मलादिकोंका स्तंभन करनेवाली बल देनेवाली शरीरको पुष्ट करनेवाली तथा वायुका नाश करनेवाली जाननी।

विलेपीके लक्षण और गुण।

विलेपीचघनासिक्थासिद्धानीरेचतुर्गुणे ॥
बृंहणीतर्पणीहृद्याधामधुरापित्तनाशिनी ॥ १६२ ॥

अर्थ-द्रव्यसे चौगुना पानी डालके औटावे। जब लहापसीके समान गाढी और लिपटनेवाली होजावे उसको विलेपी कहते हैं। यह धातुकी वृद्धि करनेवाली शरीरपुष्टिकर्त्ता, हृदयको हितकारी मधुर और पित्तका नाश करनेवाली है।

पेयालक्षण।

द्रवाधिकास्वल्पसिक्थाचतुर्दशगुणेजले ॥ सिद्धापेयाबुधैर्ज्ञेयायूषःकिंचिद्घनःस्मृतः ॥ १६३॥ पेयालघुतराज्ञेयाग्राहिणीधातुपुष्टिदा॥यूषोबल्यस्ततःकंठ्योलघूपायःकफापहः ॥ १६४ ॥

अर्थ-द्रव्यसे चौदहगुने पानीमें डालके पतली पेजके समान और कुछ लसदार होनेपर्यंत औटानेसे उसको पेया कहते हैं। पेयाकी अपेक्षा कुछ गाढीको यूष कहते हैं। वह पेया बहुत हलकी होकर मलादिकोंका स्तंभन करनेवाली और धातु पुष्ट करनेवाली है। और यूष बलको देनेवाली, कंठको हितकारी, हलकी तथा कफको दूर करनेवाली जानना।

भातकरनेका प्रकार।

जलेचतुर्दशगुणेतन्दुलानांचतुःपलम् ॥

विपचेत्स्रावयेन्मंडंसभक्तोमधुरोलघुः ॥ १६५ ॥

अर्थ–चारपल वीने फटके बारीक चावलोंको चौदहगुने जलमें डालके औटावे जब सीजजावें तब मांड निकाल ले यह चावलोंका भात मधुर तथा हलका होता है ।

शुद्धमंड ।

नीरेचतुर्दशगुणेसिद्धोमंडस्त्वसिक्थकः ॥
शुंठीसैंधवसंयुक्तःपाचनोदीपनःपरः ॥ १६६ ॥

अर्थ–शुद्ध चावलोंको चौदहगुने पानीमें डालके औटावे । जब चावल सीजजावें तब मांड निकाल लेवे । इस मांडको शुद्धमंड कहते हैं । इसमें सोंठ और सेंधानमक मिलायके पीवे तो अन्नका पचन और अग्निका दीपन होवे ।

अष्टगुणमण्ड ।

धान्यत्रिकटुसिंधूत्थमुद्गतंदुलयोजितः ॥ भृष्टश्चहिंगुतैलाभ्यां समंडोऽष्टगुणःस्मृतः ॥ १६७ ॥ दीपनःप्राणदोबस्तिशोधनो रक्तवर्धनः ॥ ज्वरजित्सर्वदोषघ्नोमंडोऽष्टगुणउच्यते ॥१६८॥

अर्थ–१ धनियाँ २ सोंठ ३ मिरच ४ पीपल ५ सेंधानमक ६ मूँग ७ चावल ८ हींग और ९ तेल इन नौ औषधोंमेंसे प्रथम तेलमें हींग मिलायके उसमें मूँग एकपल तथा चावल पल लेकर दोनोंको भूने । फिर दूसरी औषध रहीहुई वह थोडी २ खारी और चरपरी न होवे इसप्रकार मूँग चावलोंमें मिलायके चौदहगुने पानीमें डालके औटावे । जब सीजजावें तब उतारके कपडेसे छान लेवे । इसको पीनेसे अग्नि प्रदीप्त होकर प्राणोंमें तेज आताहै तथा बस्तिका शोधन होकर रुधिरकी वृद्धि होतीहै ज्वर और वातादि तीन दोष ये दूर होवें । इसको अष्टगुण मंड कहते हैं ।

वाट्यमंडकफपित्तादिरोगोंपर ।

सुकंडितैस्तथाभृष्टैर्वाट्यमंडोयवैर्भवेत् ॥
कफपित्तहरःकंठचोरक्तपित्तप्रसादनः ॥ १६९ ॥

अर्थ–उत्तम जवोंको उत्तम रीतिसे कूट फटककर भूने फिर बीन फटककर उनमें चौदह गुने पानी चढायके सिजावे फिर उस पानीको छानके सेवनकरे इसको वाटयमंड कहते हैं जो यह मंड पीवे तो कफ पित्तका प्रकोप दूर होवे कंठको हितकारक होय है तथा रक्तपित्तका प्रकोप दूर होय । है

---

१ क्षुधानाशक २ मूत्रबस्तिशोधक ३ बलवर्द्धक ४ रक्तवर्द्धक ५ ज्वरनाशक ६ कफनाशक ७ पित्तनाशक तथा ८ वायुनाशक ऐसे इसमें आठ गुण जानने ।

लाजामंड कफपित्तज्वरादिकोंपर ।

लाजैर्वातंडुलैर्भृष्टैर्लाजमंडः प्रकीर्तितः ॥
श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन्मतः ॥ १७० ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने काथादिकल्पनानाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अर्थ—धानकी मुनी खील अथवा चावलोंको भूनके उसमें चौदहगुना पानी डालके औटावे । फिर उसको पसायके मांड निकाल लेवे इसे लाजमंड कहते हैं । यह मंड पीवे तो कफपित्तका प्रकोप दूर होकर संग्रहणी और अतिसार इनका स्तंभन होय, तथा जिस ज्वरमें प्यास अधिक लगे सो दूर होय ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामानिर्मितमाथुरीभाषाटीकायांचिकित्सास्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् ॥ मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥ १ ॥ सस्याच्चूर्णद्रवः फांटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् ॥ मधुश्वेतागुडादींश्च क्काथवत्तत्र निक्षिपेत् ॥२॥

अर्थ—एकपल औषधोंको लेकर अच्छी रीतिसे कूट एक कुडव[1] प्रमाण जलको किसी पात्रमें भरके जब अच्छीतरह गरम होजावे तब पूर्वोक्त कूटी हुई औषधोंको डालके खूब औटावे । फिर उस पानीको कपडेसे छान लेवे । इसको फांट तथा चूर्णद्रव कहते हैं । इस फांटके पीनेका प्रमाण दो पल है । तथा उस फांटमें सहत, मिश्री, खाँड, गुड आदिशब्दसे अन्य पदार्थ डालना होय तो जिसप्रकार काढेमें सहत मिश्री आदिका डालना लिखाहै उसी प्रमाण इस जगह फांटमें डालना चाहिये ।

मधूकादिफांट वातपित्तज्वरपर ।

मधूकपुष्पं मधुकं चंदनं सपरूषकम् ॥ मृणालं कमलं लोध्रं गंभारीं नागकेशरम् ॥ ३ ॥ त्रिफलां सारिवां द्राक्षां लाजान्कोष्णे जले क्षिपेत् ॥ सितामधुयुतं पेयः फांटो वा सौद्भिमोऽथवा ॥ ४ ॥

[1] कुडवके व्यावहारिक तोले १६ सोलह होतेहैं ।

वातपित्तज्वरंदाहंतृष्णामूर्च्छारतिभ्रमान् ॥
रक्तपित्तंमदंहन्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥ ५ ॥

अर्थ—१ महुआके फूल २ मुलहटी ३ लालचंदन ४ फालसे[1] ५ कमलकी डंडी ६ ... ७ लोध ८ कंभारी ९ नागकेशर १० त्रिफला ११ सारिवा १२ मुनक्कादाख और १३ धानकी खील । इन तेरह औषधोंको कूटकर इसमेंसे १ पल लेवे । फिर चार पल पानीको ... चढायके खूब गरम करे । जब जल खदबदाने लगे तब उक्त कूटीहुई १ पल औषधोंको ... गेरदेवे । जब खूब औटजावे तब उस पानीको उतारके छान लेवे । इसको मधुकादि फांट कहते हैं । यह फांट खाँड और सहत मिलायके पीवे तो वातपित्तज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, अरति भ्रम, रक्तपित्त और मदरोग ये दूर होवें इसमें संदेह नहीं है । तथा ये तेरह औषध रात्रिमें पानीमें भिगोदेवे । प्रातः काल उस पानीको छानके सेवन करे इसको हिमविधि कहते हैं । इस हिमके पीनेसे यहभी फांटके समान गुण करता है ।

आम्रादिफांट पिपासादिकोंपर ।

आम्रजंबूकिसलयैर्वटशुंगप्ररोहकैः ॥
उशीरेणकृतःफांटःसक्षौद्रोज्वरनाशनः ॥ ६ ॥
पिपासाच्छर्द्यतीसारान्मूर्च्छांजयतिदुस्तराम् ॥

अर्थ—१ आम और २ जामुन इनके कोमल पत्ते और बडकी कळीके भीतरके पत्ते ... उसके कोमल २ पत्ते और नेत्रवाला इन औषधोंका पूर्वरीतिसे फांट करके पीवे तो ज्वर, प्यास, वमन, अतिसार तथा कष्टसाध्य मूर्च्छाके रोग दूर हों ।

मधुकादिफांट पित्ततृष्णादिकोंपर ।

मधूकपुष्पगंभारीचंदनोशीरधान्यकैः ॥ ७ ॥
द्राक्षयाचकृतःफांटःशीतःशर्करयायुतः ॥
तृष्णापित्तहरःप्रोक्तोदाहमूर्च्छाभ्रमाञ्जयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—१ महुआके फूल २ कंभारी ३ लालचंदन ४ नेत्रवाला ५ धनियाँ और ६ दाख इन छः औषधोंका फांटकरके पीवे तो प्यास पित्त दाह मूर्च्छा और भ्रम ये दूर हों ।

मंथकल्पना ।

मंथोऽपिफांटभेदःस्यात्तेनचात्रैवकथ्यते ॥

अर्थ—मंथभी फांटका ही भेद है इसीसे उसकोभी इसी जगह कहते हैं ।

---

[1] फालसे मेवामें प्रसिद्ध हैं ।

मन्थकी विधि।

जलेचतुष्पलेशीतेक्षुण्णंद्रव्यपलंपिबेत्॥ ९॥
मृत्पात्रेमन्थयेत्सम्यक्तस्माच्चद्विपलंपिबेत्॥

अर्थ-पल औषधको अच्छी रीतिसे कूटे। फिर चार पल शीतल पानीको मटकेमें भरके उसमें उस कूटी हुई औषधको डालके रईसे मंथन करे। जब अत्यन्त झाग उठें तब उसको छानले इसे मन्थ कहते हैं। इस मन्थके पीनेकी मात्रा दो पलकी है।

खर्जूरादिमन्थ सर्वमद्यविकारोंपर।

खर्जूरदाडिमद्राक्षातिंतिडीकाम्लिकामलैः॥ १०॥
सपरूषैःकृतोमन्थःसर्वमद्यविकारनुत्॥

अर्थ-१ खर्जूर २ अनारदाने ३ दाख ४ तंतडीक ५ इमली ६ आमले और ७ फालसे इन सात औषधोंको कूटके एकपल लेवे। फिर चार पल शीतल जलको मटकेमें भरके उस कूटी हुई औषधको डालके रईसे खूब मथे। फिर उस पानीको नितारके छान लेय। इसको पीवे तो संपूर्ण मद्यविकार, सुपारीका मद, कोदोंधान्यका मद तथा आसवोंका मद ये सब मद दूर होयँ।

मसूरादिमंथ वमनरोगपर।

क्षौद्रयुक्तामसूराणांसक्तवोदाडिमांभसा॥ ११॥
मथितावारयंत्याशुछर्दिंदोषत्रयोद्भवाम्॥

अर्थ-साबत मसूरको भुनायके चून कराय ले। फिर पकेहुये अनार दानेका पानी करके उसमें उस मसूरके चूनको मिलायके पीवे तो वातपित्तसे उत्पन्न हुई जो वमन वह दूर हो।

यवोंका मन्थ तृष्णादिकोंपर।

द्राविंतैःशीतनीरेणसघृतैर्यवसक्तुभिः॥ १२॥
मथितावारयंत्याशुच्छर्दिंदोषत्रयोद्भवाम्॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचि-
कित्सास्थानेफांटादिकल्पनाध्यायस्तृतीयः॥ ३॥

अर्थ--साबत जवोंको भुनायके चून पिसवाय ले उसको शीतल जलमें इस प्रकार मिलावे जिसमें न बहुत पतला होवे न बहुत गाढा होवे। फिर मंथके उसमें घी मिलायके पीवे तो प्यास दाह और रक्तपित्त ये दूर हों।

इति श्रीमाथुरदत्तरामनिर्मितशार्ङ्गधरमाथुरीभाषाटीकायां
चिकित्सास्थाने तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.

हिमकल्पना ।

क्षुण्णंद्रव्यपलंसम्यक्षड्भिर्नीरपलैःप्लुतम् ॥
निःशोषितंहिमःसस्यात्तथाशीतकषायकः ॥ १ ॥
तन्मानंफांटवज्ज्ञेयंसर्वत्रैषविनिश्चयः ॥

अर्थ–एक पल औषधको जवकूट कूटके फिर छः पल जलको किसी मटकेमें भरके उस कूटी हुई औषधको मिलायके रात्रिमें भिगो देवे । प्रातःकाल उस पानीको छानके पीवे इसको हिम अथवा शीत काढा इस प्रकार कहते हैं । इसके पीनेका मान फांटके समान पल जानना ।

आम्रादिहिम रक्तपित्तपर ।

आम्रंजंबूचककुभंचूर्णीकृत्यजलेक्षिपेत् ॥ २ ॥
हिमंतस्यपिबेत्प्रातःसक्षौद्रंरक्तपित्तजित् ॥

अर्थ–१ आमकी छाल २ जामुनकी छाल और ३ कोहकी छाल इन तीन छालोंको एक प्रमाण लेकर चूर्ण करे । फिर छःपल पानी किसी मिट्टीके पात्रमें भरके पूर्वोक्त कूटीहुई चूर्णको उसमें भिगोदेवे रात्रिभर भीगने दे प्रातःकाल उस पानीको छान सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त दूर होवे ।

मरीचादिहिम तृष्णादिकोंपर ।

मरीचंमधुयष्टिंचकाकोदुंबरपल्लवैः ॥
नीलोत्पलंहिमस्तज्जस्तृष्णाछर्दिनिवारणः ॥ ३ ॥

अर्थ–१ काली मिरच २ मुलहटी ३ कठूमरके पत्ते और ४ नीला कमल इन चार औषधोंको एक पल ले सबको जौकूट करे । फिर छः पल पानीको एक पात्रमें भरके उसमें पूर्वोक्त औषधोंको भिगोय देवे । प्रातःकाल उस पानीको छानके पीवे तो प्यास और वमन इनको दूर करे ।

नीलोत्पलादिहिम वातपित्तज्वरपर ।

नीलोत्पलंबलाद्राक्षामधूकंमधुकंतथा ॥४॥ उशीरंपद्मकंचैवकाश्मरीचपरूषकम् ॥ एतच्छीतकषायश्चवातपित्तज्वराञ्जयेत् ॥ ५ ॥ सप्रलापभ्रमच्छर्दिमोहतृष्णानिवारणः ॥

अर्थ–१ नीलाकमल २ खरेंटीकी छाल ३ दाख ४ महुआ ५ मुलहटी ६ नेत्रबाला

७ पद्माख ८ कंभारी और ९ फालसे इन नौ औषधोंको पूर्व विधिसे हिम बनायके पीवे तो वात-पित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मूर्च्छा और प्यास ये रोग दूर होवें।

अमृतादिहिम जीर्णज्वरपर।

अमृतायाहिमःपेयोजीर्णज्वरहरःस्मृतः ॥ ६ ॥

अर्थ-पूर्वोक्त विधिसे गिलोयका हिम करके पीवे तो जीर्णज्वर दूर होवे।

वासाहिम रक्तपित्तज्वरपर।

वासायाश्चाहिमःकासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ॥

अर्थ-अडूसेका हिम करके पीवे तो खाँसी और रक्तपित्तज्वर ये दूर हों।

धान्यादिहिम अन्तर्दाहपर।

प्रातःसशर्करःपेयोहिमोधान्याकसंभवः ॥ ७ ॥
अन्तर्दाहंतथातृष्णांजयेत्स्रोतोविशोधनः ॥

अर्थ-रात्रिको पानीमें धनियेको भिगोय देवे प्रातःकाल उस पानीको खाँड मिलायके पीवे तो शरीरके भीतरका दाह और प्यास ये दूर हों तथा मूत्रादि मार्गोंका शोधन होय।

धान्यादिहिम रक्तपित्तादिकोंपर।

धान्याकधात्रीवासानांद्राक्षापर्पटयोर्हिमः ॥ ८ ॥
रक्तपित्तज्वरंदाहंतृष्णांशोथंचनाशयेत् ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने हिमकल्पनाध्यायश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

अर्थ-१ धनियाँ २ आंवले ३ अडूसा ४ दाख और ५ पित्तपापडा इन पांचोंका हिम करके पीवे तो रक्तपित्तज्वर, दाह, प्यास और शोष इनको दूर करे।

इति श्रीशार्ङ्गधरे चिकित्सास्थाने माथुरीभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

कल्ककी कल्पना।

द्रव्यमार्द्रंशिलापिष्टंशुष्कंवासजलंभवेत् ॥ प्रक्षेपावापकल्कास्तेतन्मानंकर्षसंमितम् ॥ १ ॥ कल्केमधुघृतंतैलंदेयन्द्विगुणमात्रया ॥ सितागुडौसमौदद्याद्द्रवादेयाश्चतुर्गुणाः ॥ २ ॥

अर्थ—गीली औषधको चटनीकी समान बारीक पीसे । यदि सूखी औषध होय तो उसमें पानी डालके पीसनी चाहिये इसको कल्क कहते हैं । इसके सेवन करनेकी मात्रा १ कर्ष अर्थात् एक तोले कही है, तथा उसके दो नाम हैं एक प्रक्षेप और दूसरा आवाप । कल्कमें सहत घी और तेल डालने हों तो कल्कसे दुगुने डाले खाँड गुड ये पदार्थ डालने हों तो कल्कके समान डाले । दूध पानी आदिशब्दसे पतले पदार्थ डालने हों तो कल्कके चौगुने डाले चाहिये ।

वर्धमानपिप्पली पांडुरोगादिकोंपर ।

त्रिवृद्ध्यापंचवृद्ध्यावासप्तवृद्ध्याथवाकणाः ॥ पिबेत्पिष्टादश दिनंतास्तथैवापकर्षयेत् ॥ ३ ॥ एवंविंशद्दिनैःसिद्धं पिप्पली-वर्द्धमानकम् ॥ अनेनपांडुवातास्रकासश्वासरुचिज्वराः ॥४॥ उदरार्शःक्षयश्लेष्मवातानश्यंत्युरोग्रहाः ॥

अर्थ—आज तीन, कल्ह छः, परसों नौ, इस प्रकार वृद्धि करके अथवा पांचसे व सातसे वृद्धि करके पीपर बारीक कल्क करे । उस कल्कमें कल्कसे चौगुना दूध अथवा पानी मिलाय दश दिनपर्यंत पीवे । फिर जिस क्रमसे बढाई हो उसी क्रमसे दश दिनमें घटावे । इस प्रकार बीस दिन पीपल पीवे तो पांडुरोग, वातरक्त, खाँसी, श्वास, अरुचि, ज्वर, उदररोग, बवासीर, क्षय, कफ, वायु और उरोग्रह ये रोग दूर होवें । इस औषधको वर्धमानपीपल कहते हैं । मथुराआदिके प्रान्तोंमें उस पीपलको विषमज्वरमें दूधमें औटाके देते हैं ।

निंबकल्क व्रणादिकोंपर ।

लेपान्निंबदलैःकल्कोव्रणशोधनरोपणः ॥ ५ ॥ भक्षणाच्छर्दिकुष्ठानिपित्तश्लेष्मक्रमीञ्जयेत् ॥

अर्थ—नीमके पत्तोंको पानीसे बारीक पीस कल्क करे । उस कल्कका लेप व्रण (घाव) पर करनेसे तथा इसकी टिकिया बाँधनेसे उस व्रणका शोधन होकर घाव भर जाता है तथा इस कल्कको खानेसे वमन, कुष्ठ और पित्त कफकी बीमारी सम्बधी कृमिरोग दूर हों ।

---

१ दूध अथवा पानीमें पीपल पीसके कल्ककरे फिर उसमें दूध अथवा पानी डालनेका हो वह दो दिन चार २ तोले मिलावे फिर कल्कसे चौगुणा मिलावे परंतु वैद्यकी संप्रदाय दूध मिलानेकी है । मथुरा आगरेके वैद्य पीपलोंको क्रमसे बढाय आधा दूध और आधा पानी डालके औटाते हैं, जब जल जरजावे तव उस दूधमेंही उन पीपलोंको पीसके देते हैं, कोई पीपलोंको निकालके फेंक देते हैं परंतु फेंकनेसे कुछ गुण नहीं होता । यह विधि प्रायः विषमज्वर और मंदाग्निपर करते हैं ।

महानिम्बकल्क गृध्रसीपर।

महानिंबजटाकल्कोगृध्रसीनाशनःस्मृतः ॥६॥

अर्थ–बकायनकी जडको पानीसे पीस कल्क करके पीवे तो गृध्रसी वायु जो वादीके रोगोंमें कही है वह दूर होये।

रसोनकल्क वायु और विमषज्वरपर।

शुद्धकल्कोरसोनस्यतिलतैलेनमिश्रितः ॥
वातरोगाञ्जयेत्तीव्रान्विषमज्वरनाशनः ॥ ७ ॥

अर्थ–लहसनका कल्करके उसमें तिलका तैल मिलायके पीवे तो दारुण वायुका रोग और विषमज्वर दूर होवे।

दूसरा रसोनकल्क वातरोगपर।

पक्कंकंदरसोनस्यगुलिकानिस्तुषीकृता ॥ पाटयित्वाचमध्यस्थं दूरीकुर्यात्तदंकुरम् ॥ ८ ॥ तदुग्रगंधनाशायरात्रौतक्रेविनिक्षिपेत् ॥ अपनीयचतन्मध्याच्छिलायांपेषयेत्ततः ॥ ९ ॥ तन्मध्येपंचमांशेनचूर्णमेषांविनिक्षिपेत् ॥ सौवर्चलंयवानीचभार्जितंहिंगुसैंधवम् ॥ १० ॥ कटुत्रिकंजीरकंचसमभागानिचूर्णयेत् ॥ एकीकृत्यततःसर्वंकल्कंकर्षप्रमाणतः ॥ ११ ॥ खादेदग्निबलापेक्षीऋतुदोषाद्यपेक्षया ॥ अनुपानंततःकुर्यादेरंडशृतमन्वहम् ॥ १२ ॥ सर्वांगैकाङ्गजंवातमर्दितंचापतंत्रकम् ॥ अपस्मारमथोन्मादमूरुस्तंभंचगृध्रसीम् ॥ १३ ॥ उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडांकृमीञ्जयेत् ॥ अजीर्णमातपंरोषमतिनीरंपयोगुडम् ॥ १४ ॥ रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतन्निरंतरम् ॥ मद्यंमांसंतथाम्लंचसंसेवेतनित्यशः ॥ १५ ॥

अर्थ–उत्तम इकपोती लहसनकी गांठोंको लाकर उनके ऊपरका छिलका उतारके दूर करे। फिर उस लहसनकी बास दूर करनेको रात्रिमें छाछमें भिगोकर रख छोडे। प्रातःकाल उनको निकाल शिलं और लोढेसे बारीक पीसकर कल्क करे। फिर १ संचर नोंन २ अजमोद ३ भुनीहुई हींग ४ सैंधानमक ५ सोंठ ६ कालीमिरच ७ पीपल और ८ जीरा इन आठ औषधोंके चूर्णको उस लहसनके कल्कका पांचवाँ हिस्सा लेकर मिलावे। सबको एकत्र कर अंडीके जडका काढा करके उस कल्कमें १ तोले मिलायके पीवे तथा

अपनी शक्तिको विचारके और ऋतु कौन है उसका विचार करके जैसा आपको हित होवे उसी प्रकार सेवन करे, तो सर्वांगवात, एकांगवात, मुखका टेढा होना ऐसी अर्दित वायु, धनुर्वात, मृगी, उन्माद, ऊरुस्तंभ, वायु, गृध्रसी वायु, उर, पीठ, कमर तथा पसवाडा इन सबका शूल और कृमिरोग इनको दूर करे । लहसनका खानेवाला अजीर्णकारी पदार्थ, धूपमें रहना, क्रोध करना, अत्यंत, जल पीना, दूध गुड इन सब पदार्थोंको सर्वथा त्याग देवे । तथा मद्यपान, मांसभक्षण, खटाईवाले पदार्थ इनको सदैव सेवन करा करे ये पथ्य हैं ।

पिप्पल्यादिकल्क ऊरुस्तंभादिकोंपर ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंभल्लातकफलानिच ॥
एतत्कल्कश्चसक्षौद्रऊरुस्तंभनिवारणः ॥ १६ ॥

अर्थ–१ पीपर २ पीपरामूल ३ भिलायेके फल इन तीन औषधोंको पानीमें पीस कल्क करके उसमें सहत मिलायके सेवन करनेसे ऊरुस्तंभ वायु दूर हो ।

विष्णुक्रान्ताकल्क परिणामशूलपर ।

विष्णुक्रांताजटाकल्कःसिताक्षौद्रघृतैर्युतः ॥
परिणामभवंशूलंनाशयेत्सप्तभिर्दिनैः ॥ १७ ॥

अर्थ–विष्णुक्रांता (कोयल) की जडका कल्क करके उसमें खाँड और सहत तथा घी मिलायके सेवन करे तो परिणाम शूल दूर होवे । यह सात दिन रहता है ।

दूसरा शुंठीकल्क ।

शुंठीतिलगुडैःकल्कंदुग्धेनसहयोजयेत् ॥
परिणामभवंशूलमामवातंचनाशयेत् ॥ १८ ॥

अर्थ–१ सोंठ २ तिल समान ले दोनोंकी बराबर गुड लेवे इन तनि औषधोंका कल्क करके गौके चौगुने दूधमें मिलायके सेवन करे तो परिणामशूल तथा आमवात ये दूर होवें । अन्नके पचनेके समय जो शूल होताहै उसको परिणामशूल कहते हैं ।

अपामार्गकल्क रक्तार्शपर ।

अपामार्गस्यबीजानांकल्कस्तंडुलवारिणा ॥
पीतोरक्तार्शसांनाशंकुरुतेनात्रसंशयः ॥ १९ ॥

अर्थ–औंगा (चिरचिरा) के बीजोंको कल्ककरके चावलोंके धोवनके पानीसे[1] पीवे तो खूनी बवासीर दूर होय ।

१ चावलधोवनमें पीसे अथवा कल्कका चौगुना चावलोंका धोवन लेवे ।

बदरीमूलकल्क रक्तातिसारपर।

बदरीमूलकल्केनतिलकल्कश्चयोजितः ॥
मधुक्षीरयुतःकुर्याद्रक्तातीसारनाशनम् ॥ २० ॥

अर्थ–झरबेरीकी जड और तिल इनके कल्क पृथक् पृथक् तैयार करके दोनोंको मिलाय उसमें सहत मिलाय गौके दूधमें अथवा बकरीके दूधमें मिलायके पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे।

लाक्षाकल्क रक्तक्षयादिकोंपर।

कूष्मांडकरसोपेतांलाक्षांकर्षद्वयंपिबेत् ॥
रक्तक्षयमुरोघातंक्षयरोगंचनाशयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ–बेरकी अथवा पीपरकी लाख दो तोलेका बारीक चूर्णकर चौगुना पेठेका रस मिलायके पीवे तो रक्तक्षय तथा जिस रोगसे छाती दूखे वह और क्षयरोग दूर होय।

तंदुलीयकल्क रक्तप्रदरपर।

तंदुलीयजटाकल्कःसक्षौद्रःसरसांजनः ॥
तंदुलोदकसंपीतोरक्तप्रदरनाशनः ॥ २२ ॥

अर्थ–चौलाईकी जडको पीस कल्ककरके उसमें सहत और रसोत मिलाय चावलोंके धोवनसे पीवे तो स्त्रियोंका रक्तप्रदर नष्ट होवे (इस रोगमें स्त्रीकी योनिसे लाल २ पानी गिरा करता है)।

अंकोलकल्क अतिसारपर।

अंकोलमूलकल्कश्चसक्षौद्रस्तंदुलांबुना ॥
अतिसारहरःप्रोक्तस्तथाविषहरः स्मृतः ॥ २३ ॥

अर्थ–अंकोल वृक्षकी जडको कूट पीस कल्क करे उसमें सहत मिलायके चावलोंके धोवनके[1] जलसे पीवे तो अतिसार दूर होय। तथा सिंगिया विषादिका विष और सर्पादिकोंका विष ये भी दूर हों।

कर्कोटिकाकल्क विषोंपर।

वंध्याकर्कोटिकामूलंपाटलायाजटातथा ॥
घृतेनबिल्वमूलंवाद्विविधंनाशयेद्विषम् ॥ २४ ॥

अर्थ–१ बाँझककोडाकी जड २ पाढपाटलाकी जड ३ बेलकीजड इन तीन जडोंमेंसे जो मिले उस जडको कूट पीस कल्ककरके घीमें मिलायके पीवे तो बच्छनागादिक विष तथा सर्पादिकोंका विष दूर होवे।

---

[1] कल्ककी अपेक्षा धोवन चौगुना लेवे, इस प्रकारका पानी दूध इत्यादिक सर्वत्र चौगुनेलेने।

अभयादिकल्क दीपनपाचनपर ।

अभयासैंधवकणाशुंठीकल्कस्त्रिदोषहा ॥
पथ्यासैंधवशुंठीभिः कल्कोदीपनपाचनः ॥ २५ ॥

अर्थ—१ जंगीहरड २ सैंधानमक ३ पीपल और ४ सोंठ इन चार औषधोंके चूर्णको पानीमें पीसके कल्ककरे । इस कल्कके पीनेसे वात, पित्त, कफ इनका प्रकोप दूर होय । उसीप्रकार १ छोटीहरड २ सेंधानमक और ३ सोंठ इन तीन औषधोंका कल्ककरके पीवे तो अन्नका पचन होय तथा अग्नि प्रदीप्त होवे ।

त्रिवृतादिकल्क कृमिरोगपर ।

त्रिवृत्पलाशबीजानिपारसीययवानिका ॥
कंपिल्लकंविडंगंचगुडश्चसमभागकः ॥ २६ ॥
तक्रेणकल्कमेतेषांपिबेत्कृमिगणापहम् ॥

अर्थ—१ निसोथ २ पलास (ढाक) के बीज ३ किरनी अजमायन ४ कबीला[1] और ५ बायविडंग इन पांच औषधोंका चूर्णकर उसके समान गुड मिलायके सबको मिलायके कल्ककरे । इसको छाछमें मिलायके पीवे तो कृमिरोग दूर होय । ग्रंथान्तरमें इस प्रकार है कि किरमानी अजमायनको प्रातःकाल शीतल जलसे पीवे तो कृमिविकार दूर होय ।

नवनीतकल्क रक्तातिसारपर ।

नवनीततिलैःकल्कोजेतारक्तार्शसांस्मृतः ॥ २७ ॥
नवनीतसितानागकेशरैश्चापितद्विधः ॥

अर्थ--तिलोंको पीस उसका मक्खनमें कल्ककरके सेवन करे । अथवा नागकेशरको पीस मक्खन और मिश्रीमें कल्क करके पीवे तो खूनी बवासीरके कारण जो रुधिर निकले वह बंद होजावे ।

मसूरकल्क संग्रहणीपर ।

पीतोमसूरयूषेणकल्कःशुंठीशलाटुजः ॥
जयेत्संग्रहणींतद्वत्तक्रेणबृहतीभवः ॥ २८ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने कल्ककल्पनाध्यायः पंचमः ॥ ५ ॥

---

१ कबीला लालवर्णका मिट्टीकासा चूर्ण होता है ।

२ कल्क एकभाग लेके दुगुनी लोनीमें मिलायके सेवन करे ।

अर्थ-१ सोंठ और २ छोटा कच्चा बेलका फल इन दोनों औषधोंका कल्क करे फिर मसूरका यूष जो प्रथम कह आए हैं उस प्रकार बनाय उसमें इस कल्कको मिलायके पीवे। इसी प्रकार कटेरीके फलका कल्क करके छाछ मिलायके पीवे तो संग्रहणीका रोग दूर होवे।

इति श्रीशार्ङ्गधरे चिकित्सास्थाने माथुरीभाषाटीकायां
पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ६.

चूर्णकी कल्पना।

अत्यंतशुष्कंयद्द्रव्यंसुपिष्टंवस्त्रगालितम्॥तत्स्याच्चूर्णरजःक्षोदस्तन्मात्राकर्षसंमिता ॥ १ ॥ चूर्णेगुडःसमोदेयःशर्कराद्विगुणाभवेत् ॥ चूर्णेषुभर्जितंहिंगुदेयंनोत्क्लेदकृद्भवेत् ॥ २ ॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः॥ पिबेच्चतुर्गुणैरेवंचूर्णमालोडितंद्रवैः ॥ ३ ॥ चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम् ॥ पित्तवातकफातंकेत्रिद्व्येकपलमाहरेत् ॥ ४ ॥ यथा तैलंजलेक्षिप्तंक्षणेनैवप्रसर्पति॥ अनुपानबलादंगेतथासर्पतिभेषजम् ॥ ५ ॥ द्रवेणयावतासम्यक्चूर्णंसर्वंप्लुतंभवेत् ॥ भावनायाःप्रमाणंतुचूर्णप्रोक्तंभिषग्वरैः ॥ ६ ॥

अर्थ-अत्यन्त सूखी औषधको कूट पीस कपडछान करे उसको चूर्ण कहते हैं। उस चूर्णके दो नाम हैं एक रज, दूसरा क्षोद, इस चूर्णके भक्षणकी मात्रा एक कर्ष अर्थात् तोलेभरकी है। यदि चूर्णमें गुड मिलाना होय तो चूर्णकी बराबर डालना चाहिये। यदि हींग डालनी होय तो घीमें भूनके हींग डाले तो विकलता नहीं करे। घी और सहत आदि चिकने पदार्थके साथ चूर्ण लेना होय तो वे पदार्थ चूर्णसे दुगुणे लेवे। तथा दूध गोमूत्र पानी और अन्य पतली वस्तु चूर्णमें डालनी होय तो चूर्णसे चौगुनी लेकर उसमें चूर्ण मिलायके पीवे। चूर्ण, अवलेह, गुटिका और कल्क इनके जो अनुपान कहे हैं वे यदि पित्तरोग होय तो तीन पल लेवे।वातरोग होय तो दो पलके अनुमान लेवे।

और कफके रोगमें एकपल लेवे तो औषधि उत्तमताके साथ देहमें फैल जाती है । इस विषयमें दृष्टांत देते हैं कि जैसे जलमें तेलकी बूँद डालनेसे फैल जाती है उसी प्रकार अनुपानके बलसे देहमें औषध फैलजाती है । तथा चूर्णमें नींबूके रसके अथवा दूसरी वनस्पतिके रसका पुट देना होवे तो चूर्ण रसमें बूडजाय तवतक पुट देवे । इस प्रकार सब चूर्णोंके बनानेकी विधि जाननी ।

आमलक्यादिचूर्ण सर्वज्वरोंपर ।

आमलंचित्रकःपथ्यापिप्पलीसैंधवंतथा ॥ चूर्णितोऽयं गणोज्ञेयःसर्वज्वरविनाशनः ॥ ७ ॥ भेदीरुचिकरः श्लेष्माजेतादीपनपाचनः ॥

अर्थ–१ आमले २ चीतेकी छाल ३ जंगी हरड ४ पीपल और ५ सैंधानमक ये पांच वस्तु समान भाग लेकर चूर्ण करके सेवन करे तो संपूर्ण ज्वर दूर हों । यह दस्तावर है, रुचि प्रकाशकर्त्ता है, तथा कफको दूर करे, अग्नि प्रदीप्त हो और अन्नका पचन होवे ।

पिप्पलीचूर्ण ज्वरपर ।

मधुनापिप्पलीचूर्णंलिहेत्कासज्वरापहम् ॥ ८ ॥ हिक्काश्वासहरंकंठ्यंप्लीहघ्नंबालकोचितम् ॥

अर्थ–एक मासे पीपलके चूर्णको सहतमें मिलायके चाटे तो खाँसी, ज्वर, हिचकी प्यास ये दूर हों । यह चूर्ण कंठको हितकारी है, प्लीह रोगको दूर करे तथा बालकोंको उपयोगी पडता है ।

त्रिफलादिचूर्ण ज्वरपर ।

एकाहरीतकीयोज्याद्वौचयोज्यौबिभीतकौ ॥ ९ ॥ चत्वार्यामलकान्येवत्रिफलैषाप्रकीर्तिता ॥ त्रिफलामेहशोथघ्नीनाशयेद्विषमज्वरान् ॥ १० ॥ दीपनीश्लेष्मपित्तघ्नीकुष्ठहंत्रीरसायनी ॥ सर्पिर्मधुभ्यांसंयुक्तासैवनेत्रामयाञ्जयेत् ॥ ११ ॥

अर्थ–हरड एक बहेडा दो आमले चार इन तीन औषधोंका चूर्ण करे । इसे त्रिफला कहते हैं । इस त्रिफला चूर्णके सेवन करनेसे प्रमेह, सूजन, विषमज्वर, कफ, पित्त और कुष्ठ

---

१ तात्पर्य यह है कि उत्तम मोटी हरड दो कर्षकी होती है, बहेडा एक कर्षका होता है और आमला अर्धकर्षका तोलमें होता है इसीसे एक हरड दो बहेडे चार आमले लेनेसे समभाग होजाता है । यह मत बहुवैद्यसंमत है । कोई एकभाग हरड दोभाग बहेडा और चारभाग आँवले लेते हैं ।

ये दूर हों अग्नि प्रदीप्त हो । यह त्रिफला रसायन[1] है । घी और सहत ये दोनों विषम[2] भाग ले एकत्रकर उसमें इस त्रिफलेके चूर्णको मिलाय सेवन करे तो संपूर्ण नेत्रके विकार दूर हों ।

त्र्यूषणचूर्ण कफादिकोंपर ।

पिप्पलीमरिचंशुंठीत्रिभिस्त्र्यूषणमुच्यते ॥
दीपनंश्लेष्ममेदोघ्नंकुष्ठपीनसनाशनम् ॥ १२ ॥
जयेदरोचकंसाममेहगुल्मगलामयान् ॥

अर्थ–१ पीपल २ काली मिरच और ३ सोंठ इन तीन औषधोंको त्र्यूषण ऐसा कहते हैं इसका चूर्ण करके सेवन करे तो अग्नि प्रदीप्त हो कफ, मेद, कुष्ट, पीनस, अरुचि, आमदोष प्रमेह, गोला, और कंठरोग ये दूर हों ।

पंचकोलचूर्ण अरुच्यादिकोंपर ।

पिप्पलीचव्यविश्वाह्वपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ १३ ॥
पंचकोलमितिख्यातंरुच्यंपाचनदीपनम् ॥
आनाहप्लीहगुल्मघ्नंशूलश्लेष्मोदरापहम् ॥ १४ ॥

अर्थ–१ पीपल २ चव्य ३ सोंठ ४ पीपरामूल और ५ चीतेकी छाल इन पांच औषधोंको पंचकोल कहते हैं । इस पंचकोलका चूर्ण करके सेवन करे तो यह पाचन और दीपन है । इससे अफरा, प्लीह, गोलेका रोग, शूल और कफोदर ये दूर होयँ ।

त्रिगंध तथा चतुर्जातचूर्ण ।

त्रिगंधमेलात्वक्पत्रैश्चतुर्जातंसकेशरम् ॥
त्रिगंधंसचतुर्जातंरूक्षोष्णंलघुपित्तकृत् ॥ १५ ॥
वर्ण्यंरुचिकरंतीक्ष्णंपित्तश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥

अर्थ–छोटी इलायची दालचीनी और पत्रज इन तीन औषधोंको त्रिगंध कहते हैं इसमें चौथी केशर मिलावे तो इसीको चतुर्जात कहते हैं। तहां त्रिगंध और चतुर्जात इनका चूर्ण जीर्ण करके रूक्ष, गरम, पाककालमें हलका, पित्तको बढानेवाला, कांतिका दाता, रुचिकारी, तीक्ष्ण और पित्तकफ संबंधी रोगोंको दूर करनेवाला है ।

---

१ जो देहकी वृद्धावस्था और रोगोंका नाश करे उसको रसायन कहते हैं ।
२ घी और सहत समान लेनेसे विष होजाता है वह देहमें अनेक विकार करता है । अतएव विषमभाग करके लेना चाहिये ।

कृष्णादिचूर्ण बालकोंके ज्वरातिसारपर ।

कृष्णारुणामुस्तकशृंगिकाणांतुल्येनचूर्णेनसमाक्षिकेण ॥ १६ ॥
ज्वरातिसारःप्रशमंप्रयातिसश्वासकासःसवमिःशिशूनाम् ॥

अर्थ—१ पीपल २ अतीस ३ नागरमोथा और ४ काकडासिंगी इन चार औषधोंके चूर्णको सहतमें मिलायके बालकको चटावे तो श्वास, खाँसी, वमन इन उपद्रवोंकरके युक्त ज्वरातिसार नष्ट होय ।

जीवनीयगण तथा उसके गुण ।

काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकौतथा ॥ १७ ॥
मेदाचान्यामहामेदाजीवन्तीमधुकन्तथा ॥
मुद्गपर्णीमाषपर्णीजीवनीयोगणस्त्वयम् ॥ १८ ॥
जीवनीयोगणःस्वादुर्गर्भसंधानकृद्गुरुः ॥
स्तन्यकृद्बृंहणोवृष्यःस्निग्धःशीतस्तृषापहः ॥ १९ ॥
रक्तपित्तंक्षयंशोषंज्वरदाहानिलाञ्जयेत् ॥

अर्थ—१ काकोली २ क्षीरकाकोली ३ जीवक ४ ऋषभक ५ मेदा ६ महामेदा ७ जीवन्ती ८ मुलहटी ९ मुद्गपर्णी १० माषपर्णी इन दश औषधोंके समुदायको जीवनीयगण कहते हैं । यह जीवनीयगण मधुर, गर्भस्थापक, भारी, स्तनोंमें दूध उत्पन्न करने वाला, शरीको पुष्ट करनेवाला, स्त्री-मनमें हर्ष देनेवाला स्निग्ध तथा शीतल होकर प्यास, रक्तपित्त, क्षय, शोष, ज्वर, दाह और वायु इनका नाशकरे ।

अष्टवर्ग तथा उनके गुण ।

द्वेमेदेद्वेचकाकोल्यौजीवकर्षभकौतथा ॥ २० ॥ ऋद्धिवृद्धीचतैःसर्वैरष्टवर्गउदाहृतः ॥ अष्टवर्गोबुधैःप्रोक्तोजीवनीयसमोगुणैः ॥ २१ ॥

अर्थ—१ मेदा २ महामेदा ३ काकोली ४ क्षीरकाकोली ५ जीवक ६ ऋषभक ७ ऋद्धि और ८ वृद्धि ये आठ औषधें समीप नहीं मिलतीं किन्तु कश्मीर काबुल आदि देशोंमें और हिमालयपर्वत पर तलाश करनेसे मिलती हैं अतएव इनके अभावमें औषध कहते हैं—मेदा और महामेदा इन दोनोंके अभावमें मुलहटी लेनी, काकोली और क्षीरकाकोली इन दोनोंके अभावमें असगंध लेनी, जीवक और ऋषभकके अभावमें विदारीकंद लेना और ऋद्धि तथा वृद्धि इन दोनोंके अभावमें वाराहीकन्द वैद्यको लेना चाहिये । इस अष्टवर्गकेभी गुण जीवनीयगणके समान जानने ।

लवणपंचकचूर्ण तथा गुण।

सिंधुसौवर्चलंचैवविडंसामुद्रिकंगडम् ॥ एकद्वित्रिचतुःपंचलवणानिक्रमाद्विदुः ॥ २२ ॥ तेषुमुख्यंसैंधवंस्यादनुक्तेतच्च योजयेत् ॥ सैंधवाद्यंरोमकांतंज्ञेयंलवणपंचकम् ॥ २३ ॥ मधुरंसृष्टविण्मूत्रंस्निग्धंसूक्ष्मंमलापहम् ॥ वीर्योष्णंदीपनंतीक्ष्णंकफपित्तविवर्धनम् ॥ २४ ॥

अर्थ–१ सैंधानमक २ संचरनमक ३ विडनमक[1] ४ सामुद्रनमक[2] और ५ साम्हरनमक इन पांचोंमें पहिला एक लवण, पहिला और दूसरा इनको द्विलवण, पहला दूसरा और तीसरा इनको त्रिलवण, पहला दूसरा तीसरा और चतुर्थ इनको चतुर्लवण एवं पहला दूसरा तीसरा चतुर्थ और पाँचवा इनको पंचलवण कहते हैं। तथा इन पाँचोंमें सैंधानमक उत्तम है। अतएव जिस जगह लवण डाले ऐसा बिना नामके कहाहो वहांपर सैंधानमक डालना चाहिये। यह लवणपंचक मधुर है। इससे मूत्र और मल अच्छी रीतिसे उतरते हैं। ये (पंचलवण) स्निग्ध और सूक्ष्म होकर बलहीन करते हैं। उष्ण वीर्यवाले होनेसे अग्नि प्रदीप्त करते हैं तथा तीक्ष्ण हैं अतएव कफ पित्तको वढाते हैं।

क्षार गुल्मादिकोंपर।

स्वर्जिकायावशूकश्चक्षारयुग्ममुदाहृतम् ॥
ज्ञेयौवह्निसमौक्षारौस्वर्जिकायावशूकजौ ॥ २५ ॥
क्षाराश्चाऽन्येपिगुल्मार्शोग्रहणीरुक्छिदःसराः ॥
पाचनाःकृमिपुंस्त्वघ्नाःशर्कराश्मरिनाशनाः ॥ २६ ॥

अर्थ--१ सज्जीखार २ जवाखार ये दोनों खार अग्निके समान पाचक हैं इस प्रकार जानना। तथा आक, इमली, ओंगा, थूहर, केला, अमलतास, मोखा इत्यादिक जो अन्य औषधोंके खार हैं वे गोला, बवासीर और संग्रहणी इनको दूर करतेहैं। दस्तकारक होकर अग्निको दीप्त करते हैं तथा कृमिविकार पुरुषत्व और शर्करापथरीको नष्ट करते हैं।

सुदर्शनचूर्ण सब ज्वरोंपर।

त्रिफलारजनीयुग्मंकंटकारीयुगंसटी ॥ त्रिकटुग्रंथिकंमूर्वागुडूचीधन्वयासकः ॥२७॥ कटुकापर्पटोमुस्तंत्रायमाणाच बाल-

१ प्रसारणीका कल्क करके नमकके साथ अग्निके संयोग करके जो होवे वह कृत्रिम विडनमक कहलाता है। २ दक्षिण समुद्रके समीप उत्पन्न होनेवालेको सामुद्रनमक कहते हैं।

कम् ॥ निंबःपुष्करमूलंचमधुयष्टीचवत्सकम् ॥ २८ ॥ यवानींद्रयवोभांर्गीशिग्रुबीजंसुराष्ट्रजा ॥ वचात्वक्पद्मकोशीरचंदनातिविषाबलाः ॥ २९ ॥ शालिपर्णीपृष्ठपर्णीविडंगंतगरंतथा ॥ चित्रकोदेवकाष्ठंचचव्यंपत्रंपटोलजम् ॥ ३० ॥ जीवकर्षभकौचैवलवंगंवंशरोचना ॥ पुंडरीकंचकाकोलीपत्रकंजातिपत्रकम् ॥ ३१ ॥ तालीसपत्रंचतथासमभागानि चूर्णयेत् ॥ सर्वचूर्णस्यचार्धांशंकिरातंप्रक्षिपेत्सुधीः ॥ ३२ ॥ एतत्सुदर्शनंनामचूर्णंदोषत्रयापहम् ॥ ज्वरांश्चनिखिलान्हन्यान्नात्रकार्याविचारणा॥३३॥पृथग्द्वंद्वागंतुजांश्चधातुस्थान्विषमज्वरान् ॥ सन्निपातोद्भवांश्चापिमानसानपिनाशयेत् ॥ ३४ ॥ शीतज्वरैकाहिकादीन्मोहंतंद्रांभ्रमंतृषाम् ॥ श्वासंकासंचपांडुंचहृद्रोगंहंतिकामलाम् ॥ ३५ ॥ त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलनिवारणम् ॥ शीतांबुनापिबेद्धीमान्सर्वज्वरनिवृत्तये ॥३६॥ सुदर्शनंयथाचक्रंदानवानांविनाशनम् ॥ तद्वज्ज्वराणांसर्वेषामिदंचूर्णविनाशनम् ॥ ३७ ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ हल्दी ५ दारुहल्दी ६ छोटी कटेरी ७ बडी कटेरी ८ कचूर ९ सोंठ १० मिरच ११ पीपल १२ पीपरामूल १३ मूर्वा १४ गिलोय १५ धमासा १६ कुटकी १७ पित्तपापडा १८ नागरमोथा १९ त्रायमाण २० नेत्रबाला २१ नीमकी छाल २२ पुहकरमूल २३ मुलहटी २४ कुडाकी छाल २५ अजमायन २६ इन्द्रजौ २७ भारंगी २८ सहजनेके बीज २९ फिटकरी ३० वच ३१ दालचीनी ३२ पद्माख ३३ चंदन ३४ अतीस ३५ खरेंटी ३६ शालपर्णी ३७ पृष्टपर्णी ३८ वायविडंग ३९ तगर ४० चीतेकी छाल ४१ देवदारु ४२ चव्य ४३ पटोलपत्र ४४ जीवक[1] ४५ ऋषभक ४६ लौंग ४७ वंशलोचन ४८ सफेद कमल ४९ काकोली[2] ५० पत्रज ५१ जावित्री तथा ५२ तालीसपत्र इन सब औषधोंको समान भाग ले और सब औषधोंका आधा चिरायता मिलावे सबको कूटके दरदरा करे, इसको सुदर्शन कहतेहैं। इस चूर्णको शीतल जलसे सेवन करे तो वात पित्त कफ द्वंद्व

१ जविक ऋषभक ये दोनों नहीं मिलते अतएव इनके प्रतिनिधिमें विदारीकंद लेवे।
२ काकोलीके अभावमें मुलहटी डालनी चाहिये।

वात इनसे होनेवाले ज्वर विषमज्वर आगंतुक ज्वर धातुजन्यज्वर मानसज्वर इत्यादि संपूर्णज्वर शीतज्वर एकाहिक आदि ज्वर मोह तंद्रा भ्रम तृषा श्वास खाँसी पांडुरोग हृद्रोग कामला त्रिक पीठ कमल जानु पसवाडा इनका शूल ये सब दूर होवें । जैसे सुदर्शनचक्र दैत्योंका नाश करता है उसी प्रकार यह सुदर्शन चूर्ण सब ज्वरोंका नाश करता है ।

त्रिफलापिप्पलीचूर्ण श्वासखाँसीपर ।

कासश्वासज्वरहरात्रिफलापिप्पलीयुता ॥
चूर्णितामधुनालीढाभेदिनीचाग्निबोधिनी ॥ ३८ ॥

अर्थ--१ हरड २ बहेडा ३ आँवला और ४ पीपर इन चार औषधोंका चूर्ण कर सहतमें मिलायके चाटे तो मलका भेद हो (दस्त साफ हो) कर अग्नि प्रदीप्त होवे और श्वास खाँसी तथा ज्वर ये दूर हों ।

कट्फलादिचूर्ण ज्वरादिकोंपर ।

कट्फलंमुस्तकंतिक्ताशुंठीशृंगीचपौष्करम् ॥ चूर्णमेषांचमधुनाशृंगवेररसेनवा ॥ ३९ ॥ लिहेज्ज्वरहरंकंठ्यंकासश्वासारुचीर्जयेत् ॥ वायुंछर्दितथाशूलंक्षयंचैवव्यपोहति ॥४०॥

अर्थ--१ कायफर २ नागरमोथा ३ कुटकी ४ सोंठ ५ काकडासिंगी और ६ पुहकरमूल इन छः औषधोंका चूर्ण करके सहत अथवा अदरखके रससे सेवन करे तो ज्वर दूर होवे, तथा खाँसी, श्वास, अरुचि, बादी, वमन, शूल और क्षयका रोग दूर होवें ।

दूसरा कट्फलादिचूर्ण कफशूलादिकोंपर ।

कट्फलंपौष्करंशृंगीमुस्तात्रिकटुकंशठी ॥ समस्तान्येकशो वापिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥४१॥ आर्द्रकस्वरसक्षौद्रैर्लिह्यात्कफविनाशम् ॥ शूलानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासक्षयापहम् ४२

अर्थ--१ कायफर २ पुहकरमूल ३ काकडासिंगी ४ नागरमोथा ५ सोंठ ६ मिरच ७ पीपल और ८ कचूर इन आठ औषधोंको पृथक् २ कूटके अथवा सबको एकही जगह कूट चूर्ण करे । फिर अदरखके रससे अथवा सहतके साथ मिलाकर दे तो कफ, शूल बादी, अरुचि, ओकारी, खाँसी, श्वास और क्षयरोग ये दूर होवें ।

तथा कट्फलादिचूर्ण कफादिकोंपर ।

कट्फलंपौष्करंकृष्णाशृंगीचमधुनासह ॥
कासश्वासज्वरहरःश्रेष्ठोलेहःकफांतकृत् ॥४३॥

अर्थ–१ कायफर २ पुहकरमूल ३ पीपल ४ काकडासिंगी इन चार औषधोंका चूर्ण सहतसे चाटे तो श्वास, खाँसी और कफज्वर इनको नष्ट करे।

शृंग्यादिचूर्ण बालकोंके कासज्वरपर।

शृंगीप्रतिविषाकृष्णाचूर्णितामधुनालिहेत् ॥
शिशोःकासज्वरच्छर्दिशांत्यैवाकेवलाविषा ॥ ४४ ॥

अर्थ–१ काकडासिंगी २ अतीस और ३ पीपर इन तीन औषधोंका चूर्ण कर सहत मिला बालकोंको चटावे। अथवा एक अतीसकाही चूर्ण करके सहत मिलायके चटावे तो बालक खाँसी, ज्वर और वमन ये दूर होवें।

यवक्षारादिचूर्ण बालकोंके पांचोंखाँसीपर।

यवक्षारविषाशृंगीमागधीपौष्करोद्भवम् ॥
चूर्णंक्षौद्रयुतंलीढंपंचकासाञ्जयेच्छिशोः ॥ ४५ ॥

अर्थ–१ जवाखार २ अतीस ३ काकडासिंगी ४ पीपल ५ पुहकरमूल इन पांच औषधोंका चूर्ण बालकोंको सहतमें चटावे तो पांचप्रकारकी खाँसीका रोग दूर हो।

शुंठ्यादिचूर्ण आमातिसारपर।

शुंठीप्रतिविषाहिंगुमुस्ताकुटजचित्रकैः ॥
चूर्णमुष्णांबुनापीतमामातीसारनाशनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ–१ सोंठ २ अतीस ३ हींग ४ नागरमोथा ५ इन्द्रजौ और ६ चीतेकी छाल इन औषधोंके चूर्णको चौगुने गरमजलसे पीवे तो आमातिसार दूरहो।

दूसरा हरीतक्यादिचूर्ण।

हरीतकीप्रतिविषासिंधुसौवर्चलंवचा ॥ हिंगुचेतिकृतंचूर्णंपिबे-
दुष्णेनवारिणा॥४७॥आमातिसारशमनंग्राहिचाग्निप्रबोधनम्॥

अर्थ–१ जंगीहरड २ अतीस ३ सैंधानमक ४ संचरनमक ५ वच और ६ भुनीहींग इन छः औषधोंका चूर्ण करके गरमजलके साथ पीवे तो आमातिसार दूर होवे, तथा मल अवष्टंभ होकर अग्नि प्रदीप्त होतीहै।

लघुगंगाधरचूर्ण सर्व अतिसारोंपर।

मुस्तमिंद्रयवंबिल्वंलोध्रंमोचरसंतथा ॥ ४८ ॥ धातकींचूर्ण-
येत्तक्रगुडाभ्यांपाययेत्सुधीः ॥ सर्वातिसारशमनंनिरुणद्धि

---

१ इस योगको कोई २ वैद्य हरडके विनाभी बनाते हैं।
२ (तक्रशुंठीभ्यां) ऐसाभी पाठान्तर है।

प्रवाहिकाम् ॥ ४९ ॥ लघुगंगाधरंनामचूर्णंसंग्राहकंपरम् ॥

अर्थ-१ नागरमोथा २ इन्द्रजौ ३ बेलगिरी ४ लोध पठानी ५ मोचरस और ६ धायके फूल इन छःऔषधोंका चूर्णकर छाछमें गुड मिलाय उसके साथ इस चूर्णको पीवे तो संपूर्ण अतिसार तथा प्रवाहिका रोग दूर होवें। इस चूर्णको लघुगंगाधर चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण मलका अवष्टंभ करनेवालाहै।

वृद्धगंगाधरचूर्ण सर्वअतिसारोंपर।

मुस्तारलूकशुंठीभिर्धातकीलोध्रवालकैः ॥ ५० ॥ बिल्वमोचरसाभ्यांचपाठेंद्रयववत्सकैः ॥ आम्रबीजंप्रतिविषालज्जालुरितिचूर्णितम् ॥ ५१ ॥ क्षौद्रतंडुलपानीयैःपीतैर्यातिप्रवाहिका ॥ सर्वातिसारग्रहणीप्रशमंयातिवेगतः ॥ ५२ ॥ वृद्धगंगाधरंचूर्णसरिद्वेगविबंधकम् ॥

अर्थ-१ नागरमोथा २ टेंटू ३ सोंठ ४ धायके फूल ५ लोध ६ नेत्रवाला ७ बेलगिरी ८ मोचरस ९ पाढ १० इन्द्रजौ ११ कुडाकी छाल १२ आमकी गुँठली १३ अतीस और १४ लजालु इन चौदह औषधोंका चूर्ण करके चावलोंके धोवनके जलमें सहत मिलाय इसके साथ पीवे तो प्रवाहिका रोग, संपूर्ण अतिसार और संग्रहणी ये शीघ्र दूरहों। इस चूर्णको वृद्धगंगाधर चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण अतिसारके नदी समान वेगकोभी दूर करता है।

अजमोदादिचूर्ण अतिसारपर।

अजमोदामोचरसंसशृंगवेरंसधातकीकुसुमम् ॥ मथितेनयुतंपीतंगंगामपिवाहिनींरुंध्यात् ॥ ५३ ॥

अर्थ-१ अजमोदा २ मोचरस ३ अदरख और ४ धायके फूल इन चार औषधोंका चूर्ण करके विनापानीके जमाये हुए गौके दहीमें मिलायके पीवे तो गंगाके समान भी दस्तोंके वेगको यह बंद करता है।

मरिच्यादिचूर्ण संग्रहणीपर।

तक्रेणयःपिबेन्नित्यंचूर्णमरिचसंभवम् ॥ ५४ ॥ चित्रसौवर्चलोपेतं ग्रहणीतस्यनश्यति ॥ उदरप्लीहमंदाग्निगुल्मार्शोनाशनंभवेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ-१ कालीमिरच २ चीतेकी छाल ३ संचरनमक इन तीन औषधोंका चूर्ण छाछमें

मिलायके नित्य पीवे तो संग्रहणी, उदर, प्लीह, मंदाग्नि, गोला और बवासीर इनको दूर करे ।

कपित्थाष्टकचूर्ण संग्रहणीआदिपर ।

अष्टौभागाःकपित्थस्यषड्भागाशर्करामता ॥ दाडिमंतिंतिडी-कंचश्रीफलंधातकीतथा ॥ ५६ ॥ अजमोदाचपिप्पल्यःप्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः ॥ मरिचंजीरकंधान्यंग्रंथिकंवालकं तथा॥५७॥ सौवर्चलंयवानीचचातुर्जातंसाचित्रकम् ॥ नागरंचैकभागाः स्युःप्रत्येकंसूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ५८ ॥ कपित्थाष्टकसंज्ञंस्या च्चूर्णमेतद्गलामयान् ॥ अतिसारंक्षयंगुल्मंग्रहणींचव्यपोहति॥५९॥

अर्थ–कैथका गूदा ८ तोले मिश्री ६ तोले और १ अनारदाना २ इमली ३ बेलगिरी ४ धायके फूल ५ अजमोद और ६ पीपली इन छः औषधोंको तीनं २ तोले ले १ कालीमिरच २ जीरा ३ धनिया ४ पीपरामूल ५ नेत्रवाला ६ संचरनोन ७ अजवायन ८ दालचीनी ९ इलायचीके बीज १० तमालपत्र ११ नागकेशर १२ चीतेकी छाल और १३ सोंठ इन तेरह औषधोंको एक एक तोले लेवे । सबका बारीक चूर्ण करे । इस चूर्णको कपित्थाष्टक चूर्ण कहते हैं इसके सेवनकरनेसे कंठके रोग अतिसार क्षय गोला और संग्रहणी ये दूर होंय ।

पिप्पल्यादिचूर्ण संग्रहणीपर ।

पिप्पलीबृहतीव्याघ्रीयवक्षारकलिंगकाः ॥ चित्रकंसारिवा पाठासठीलवणपंचकम् ॥ ६० ॥ तच्चूर्णपाययेद्दध्नासुरयो-ष्णांबुनापिवा ॥ मारुतग्रहणीदोषशमनंपरमंहितम् ॥ ६१ ॥

अर्थ–१ पीपल २ कटेरी ३ बडी कटेरी ४ जवाखार ५ इन्द्रजौ ६ चीतेकी छाल ७ सारिवन ८ पाढ ९ कपूरकचरी और १४ पांचोंनमक इन चौदह औषधोंका चूर्ण कर दही मद्य अथवा गरम जलके साथ पीवे तो वातकी संग्रहणी नष्ट होय ।

दाडिमाष्टकचूर्ण संग्रहण्यादिकोंपर ।

दाडिमीद्विपलाग्राह्याखंडाचाष्टपलानिवा ॥ त्रिगंधस्यपलंचैकं त्रिकटुस्यात्पलत्रयम् ॥ ६२ ॥ एतदेकीकृतंसर्वंचूर्णंस्याद्दा-डिमाष्टकम् ॥ रुचिकृद्दीपनंकंठ्यंग्राहिकासज्वरापहम् ॥६३॥

अर्थ– अनारदाना २ पल, मिश्री ८ पल, दालचीनी इलायची और तमालपत्र ये तीनों मिलायके १ पल लेवे, तथा सोंठ कालीमिरच और पीपल ये तीनों औषध एक एक पल ले सबको कूट पीस चूर्ण करे । इसको दाडिमाष्टक चूर्ण कहते हैं इस चूर्णके

सेवन करनेसे मुखमें रुचि आवे, अग्नि प्रदीप्त होवे, कंठको हितकारी और मलका अवष्टंभकर्ता होकर खाँसी और ज्वरको दूर करे।

वृद्धदाडिमाष्टक अतिसारादिकोंपर।

दाडिमस्यपलान्यष्टौशर्करायाः पलाष्टकम्॥पिप्पलीपिप्पली-मूलंयवानीमरिचंतथा ॥ ६४ ॥ धान्यकंजीरकंशुंठीप्रत्येकं पलसंमितम् ॥ कर्षमात्रातुगाक्षीरीत्वक्पत्रैलाश्चकेसरम् ॥ ६५ ॥ प्रत्येकंकोलमात्राः स्युस्तच्चूर्णदाडिमाष्टकम् ॥ अतिसारंक्षयंगुल्मंग्रहणींचगलग्रहम् ॥ ६६ ॥ मंदाग्निंपीनसं कासंचूर्णमेतद्व्यपोहति ॥

अर्थ–अनारदाना और मिश्री प्रत्येक आठ २ पल लेवे १ पीपल २ पीपरामूल ३ अजमोदा ४ कालीमिरच ५ धनिया ६ जीरा ७ सोंठ पत्येक एक एक पल लेवे। वंशलोचन १ तोले ले और १ दालचीनी २ तमालपत्र ३ इलायची ४ नागकेशर ये चार औषध आठ २ मासे लेवे। इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे। इसको वृद्धदाडिमाष्टक कहते हैं। इस चूर्णके सेवन करनेसे अतिसार, क्षय, गुल्म, संग्रहणी, कंठरोग, मंदाग्नि, पीनस और खाँसी ये रोग दूर हों।

तालीसादिचूर्ण अरुचिआदिरोगोंपर।

तालीसंमरिचंशुंठीपिप्पलीवंशरोचना ॥ ६७ ॥ एकद्वित्रि-चतुःपंचकर्षैर्भागान्प्रकल्पयेत् ॥ एलात्वचोस्तुकर्षार्धंप्रत्येकं भागमावहेत् ॥ ६८ ॥ मृतवंगंमृतंताम्रंसमभागानिकारयेत्॥ द्वात्रिंशत्कर्षतुलिताप्रदेयाशर्कराबुधैः ॥ ६९ ॥ तालीसाद्य-मिदंचूर्णंरोचनंपाचनंस्मृतम् ॥ कासश्वासज्वरहरंछर्द्यतीसार-नाशनम् ॥ ७० ॥ शोषाध्मानहरंप्लीहग्रहणीपांडुरोगजित् ॥

अर्थ–१ तालीसपत्र एक तोले, २ सोंठ तीन तोले ३ पीपल चार तोले ४ वंशलोचन पांच तोले ५ इलायचीके दाने और ६ दालचीनी छः छः मासे ७ वंगभस्म और ८ ताम्रभस्म ये दोनों आठ ८ तोले और मिश्री ३२ तोले ले। सबका चूर्णकर मिश्री मिलाय सेवन करे तो यह तालीसचूर्ण रोचक, पाचक हो, खाँसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, अफरा, प्लीह, संग्र-हणी और पांडुरोग इनको नष्टकरता है।

---

१ मागध परिभाषाके मान अनुसार एककर्षका व्यावहारिक १ तोला होता है। पलके चार तोले होते हैं।

लवंगादिचूर्ण हृद्रोगादिपर ।

लवंगशुद्धकर्पूरमेलात्वङ्नागकेशरम् ॥७१॥ जातीफलमुशीरं चनागरंकृष्णजीरकम् ॥कृष्णागुरुस्तुगाक्षीरीमांसीनीलोत्पलं कणा ॥७२॥चंदनंतगरंवालंकंकोलंचेतिचूर्णयेत् ॥ समभागानिसर्वाणिसर्वेभ्योर्धासिताभवेत् ॥७३॥ लवंगाद्यमिदंचूर्णं राजार्हंवह्निदीपनम्॥रोचनंतर्पणंवृष्यंत्रिदोषघ्नंबलप्रदम्॥७४॥ हृद्रोगंकण्ठरोगंचकासंहिक्कांचपीनसम् ॥ यक्ष्माणंतमकंश्वासमतीसारमुरःक्षतम् ॥ ७५ ॥ प्रमेहारुचिगुल्मादीन्ग्रहणीमपिनाशयेत् ॥

अर्थ–१ लौंग २ भीमसेनीकपूर ३ इलायची ४ दालचीनी ५ नागकेशर ६ जायफल ७ खस ८ सोंठ ९ कालाजीरा १० कालीअगर ११ वंशलोचन १२ जटामांसी १३ नीलाकमल १४ पीपल १५ सफेद चंदन १६ तगर १७ नेत्रवाला और १८ कंकोल इन अठारह औषधोंको समान भाग लेकर चूर्ण करे चूर्णसे आधी मिश्री मिलावे इस चूर्णको लवंगादि चूर्ण कहते हैं यह चूर्ण राजाओंको देनेके योग्य है । इस चूर्णसे अग्निप्रदीप्त होय और यह रुचिकारी है शरीर पुष्ट होवे, स्त्रीभोगनेकी शक्ति हो, वात पित्त कफ इनके प्रकोपको दूर करे, बलकरे, हृदयरोग, कंठरोग, खाँसी, हिचकी, पीनस, क्षय, तमकश्वास, अतिसार, अरुचि, प्रमेह, गोला और संग्रहणी इन सब रोगोंको दूर करता है ।

जातीफलादिचूर्ण संग्रहणीआदिपर ।

जातीफललवंगैलापत्रत्वङ्नागकेशरम् ॥७६॥ कर्पूरचंदनतिलत्वक्क्षीरीतगरामलैः ॥ तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः॥७७॥शुंठीविडंगमरिचान्समभागान्विचूर्णयेत्॥यावंत्येतानिसर्वाणिकुर्याद्भंगांचतावतीम्॥ ७८॥ सर्वचूर्णसमादेयाशर्कराचभिषग्वरैः ॥ कर्षमात्रंततःखादेन्मधुनाप्लावितं सुधीः ॥ ७९ ॥ अस्यप्रभावाद्ग्रहणीकासश्वासारुचिक्षयाः ॥ वातश्लेष्मप्रतिश्यायाःप्रशमंयांतिवेगतः ॥ ८० ॥

अर्थ–१ जायफल २ लौंग ३ इलायची ४ तमालपत्रक ५ दालचीनी ६ नागकेशर ७ कपूर ८ सफेदचंदन ९ कालेतिल १० वंशलोचन ११ तगर १२ आँवले

१ कपूरके तीन भेद हैं ईशावास हिम और पोताश्रित परंतु राजनिघंटमें बरास, चीनिया और पत्र कपूर भेद माने हैं । शुद्ध कपूरको भीमसेनी कपूरको बरास कहते हैं ।

१३ तालीसपत्र १४ पीपल १५ हरड १६ कालाजीरा १७ चीतेकी छाल १८ सोंठ १९ वायविडंग और २० काली मिरच ये बीस औषध समान भाग लेवे तथा इन सब औषधोंके समान भाग शुद्ध भाँग मिलाकर सबका चूर्ण कर चूर्णकी बराबर सफेद मिश्री मिलावे सबको एकत्रकर १ तोले नित्य सहतके साथ सेवन करे तो संग्रहणी, खाँसी, श्वास, अरुचि, क्षय, वातकफके विकार और पीनस ये रोग शीघ्र दूर होवें ।

महाखांडवचूर्ण अरुचिआदिपर ।

मरिचंनागपुष्पाणितालीसंलवणानिच ॥ प्रत्येकमेकभागाःस्युः पिप्पलीमूलचित्रकैः ॥८१॥ त्वक्कणातिंतिडीकंचजीरकंचद्विभागकम् ॥ धान्याम्लवेतसौविश्वभद्रैलाबदराणि च॥८२॥ अजमोदाजलधरःप्रत्येकंस्युस्त्रिभागिकाः ॥ सर्वौषधचतुर्थांशंदाडिमस्यफलंभवेत् ॥ ८३ ॥ द्रव्येभ्योनिखिलेभ्यश्चसितादेयार्धमात्रया ॥ महाखांडवसंज्ञंस्याच्चूर्णमेतत्सुरोचनम् ॥ ८४ ॥ अग्निदीप्तिकरंहृद्यंकासातीसारनाशनम् ॥ हृद्रोगकंठजठरमुखरोगप्रणाशनम् ॥ ८५ ॥ विषूचिकांतथाध्मानमर्शोगुल्मक्रुमीनाप ॥ छर्दिंपंचविधांश्वासंचूर्णमेतद्व्यपोहति ॥ ८६ ॥

अर्थ-१ काली मिरच २ नागकेशर ३ तालीसपत्र ४ सैंधानमक ५ संचरनमक ६ विडनमक ७ समुद्रनमक और ८ रेहकानमक ये आठ औषध एक एक तोले लेवे । तथा १ पीपरामूल २ चित्रक ३ दालचीनी ४ पीपल ५ इमलीकी छाल ६ जीरा ये औषध दो दो तोले लेवे। १ धनिया २ अमलवेत ३ सोंठ ४ बडी इलायचीके दाने ५ छोटे बेर ६ अजमोद और ७ नागरमोथा ये सातों औषध तीन २ तोले लेवे और सब औषधोंका चतुर्थ भाग अनारदाना ले फिर सब औषधोंका चूर्ण कर इस चूर्णसे आधी सफेद मिश्री मिलावे, सबको एकत्र करे इसको महाखांडवचूर्ण कहते हैं इस चूर्णके सेवन करनेसे रुचि हो, अग्नि यथा प्रदीप्त हो, यह हृदयको हितकारी, खाँसी, अतिसार, हृद्रोग, कंठरोग, उदररोग, मुखरोग, विषूचिका (हैजा) अफरा, बवासीर, गोला, कृमिरोग, पांच प्रकारका छर्दिरोग तथा श्वास ये दूर होवें ।

नारायणचूर्ण उदररोगपर ।

चित्रकस्त्रिफलाव्योषंजीरकंहपुषावचा ॥ यवानीपिप्पलीमूलंश-

१ अमलवेत सर्वत्र प्रसिद्ध है । यदि कहीं न मिले तो उसके अभावमें चूका अथवा चनाकी खटाई डालनी चाहिये ।

तपुष्पाजगंधिका ॥ ८७ ॥ अजमोदाशठीधान्यंविडंगंस्थूलजीरकम् ॥ हेमाह्वापौष्करंमूलंक्षारौलवणपंचकम् ॥ ८८ ॥ कुष्ठंचेतिसमांशानिविशालास्याद्विभागिका ॥ त्रिवृत्त्रिभागाविज्ञेयादंत्याभागत्रयंभवेत् ॥८९॥ चतुर्भागाशातलास्यात्सर्वाण्येकत्रचूर्णयेत्॥पाचनंस्नेहनाद्यैश्चस्निग्धकोष्ठस्यरोगिणः॥९०॥ दद्याच्चूर्णविरेकायसर्वरोगप्रणाशनम् ॥ हृद्रोगेपांडुरोगेचकासेश्वासेभगंदरे ॥ ९१ ॥ मंदेग्नौचज्वरे कुष्ठेग्रहण्यांचगलग्रहे ॥ दद्याद्युक्तानुपानेनतथाध्मानेसुरादिभिः ॥ ९२ ॥ गुल्मेबदरनीरेणविड्भेदेदधिमस्तुना ॥ उष्णांबुभिरजीर्णेचवृक्षाम्लैःपरिकर्तिषु ॥ ९३ ॥ उष्ट्रीदुग्धेनोदरेषुतथातक्रेणवागवाम् ॥ प्रसन्नयावातरोगेदाडिमांभोभिरर्शसि ॥ ९४ ॥ द्विविधेचविषेदद्याद्घृतेनविषनाशनम् ॥ चूर्णनारायणंनामदुष्टरोगगणापहम्॥९५॥

अर्थ–१ चीतेकी छाल २ हरड ३ बहेडा ४ आँवला ५ सोंठ ६ मिरच ७ पीपल ८ जीरा ९ हाऊबेर १० वच ११ अजमायन १२ पीपरामूल १३ सौंफ १४ वर्वरी (वनतुलसी) १५ अजमोदा १६ कचूर १७ धनिया १८ वायविडंग १९ मगरेला (कलौंजी) २० पुहकरमूल २१ सज्जीखार २२ जवाखार २३ सैंधानमक २४ संचरनमक २५ बिडनमक २६ समुद्रनमक २७ काचिया नमक और २८ कूट इन अठ्ठाईस औषधोंको एक एक तोले लेवे । इन्द्रायणकी जड २ तोले निसोथ ३ तोले और दंतीकी जड ३ तोले एवं पीली थूहर ४ तोले । इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करें फिर पाचन करके और स्नेहनादि करके जिस मनुष्यका चिकना कोठा होगया हो उस मनुष्यको दस्त होनेके वास्ते यह चूर्ण देवे तो संपूर्ण रोग दूर होवें, हृदयरोग, पांडुरोग, खाँसी, श्वास, भगंदर, मंदाग्नि, ज्वर, कोढ, संग्रहणी इन रोगोंमें मद्य आदि अनुपानके साथ देवे । पेटके फूलनेपर दारूके साथ देवे । गोलेके रोगमें बेरके काढेके साथ देवे । मल बद्धवालेको दहीके जलसे देवे । अजीर्णरोगीको गरम जलके साथ देवे । गुदामें कतरनीकीसी पीडा होती होवे तो तंतडीके काढेके साथ देवे । उदररोग (जलंधर) में ऊँटनीके दूधके साथ अथवा गौके तक्रके साथ देवे । बादीके रोगोंमें

१ मनुष्यको आरग्वधादि पंचकके काढेसे पाचन देकर तथा उत्तर खंडमें जो घृतपानकी विधि कही है उसी प्रकार घी पीनेको देकर कोठेको चिकना करे पीछे चूर्णको देवे ।

प्रसन्ना मद्यके साथ देवे। बवासीरमें अनारदानेके जलके साथ देवे तो सर्व रोग नष्ट हों। स्थावर और जंगम विषोंमें घृतके साथ देवे तो दोनों प्रकारके विष दूर हों इसको नारायणचूर्ण कहते हैं, इससे संपूर्ण दुष्ट रोग दूर होते हैं।

हपुषादिचूर्ण अजीर्णउदरादिकोंपर।

हपुषात्रिफलाचैवत्रायमाणाचपिप्पली॥हेमक्षीरीत्रिवृच्चैवशातलाकटुकावचा॥९६॥ नीलिनीसैंधवंकृष्णलवणंचेतिचूर्णयत्॥ उष्णोदकेनमूत्रेणदाडिमत्रिफलारसैः॥ ९७ ॥ तथामांसरसेनापियथायोग्यंपिबेन्नरः॥ अजीर्णप्लीहगुल्मेषुशोफार्शोविषमाग्निषु॥ ९८॥ हलीमकामलापांडुकुष्ठाध्मानोदरेष्वपि॥

अर्थ--१ हाऊबेर २ हरड ३ बहेडा ४ आँवला ५ त्रायमाण ६ पीपल ७ चोक ८ निसोथ ९ पीली थूंहर १० कुटकी ११ वच १२ नीली १३ सैंधानमक १४ कालानमक प्रत्येक समान भाग लेवे सबका चूर्ण कर गरम जलके साथ वा गोमूत्रके साथ वा अनारदानेके रससे अथवा त्रिफलाके कोढके साथ अथवा वनके हरिणादिकोंके मांसरससे योग्यता विचारके देवे तो अजीर्ण, प्लीहा, गोला, सूजन, बवासीर, मंदाग्नि, हलीमक, कामला, पांडुरोग, कुष्ठ, अफरा और उदररोग इन सबको दूरकरे।

पंचसम[3]चूर्ण शूलआदिपर।

शुंठीहरीतकीकृष्णात्रिवृत्सौवर्चलंतथा॥ ९९ ॥ समभागानि सर्वाणिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत्॥ ज्ञेयंपंचसमंचूर्णमेतच्छूलहरं परम्॥ १००॥ आध्मानजठरार्शोघ्नमामवातहरंस्मृतम्॥

अर्थ--१ सोंठ २ हरड ३ पीपल ४ निसोथ और ५ संचरनमक, ये पांचों औषधि समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे। इसको पंचसम चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण सेवन करनेसे शूलरोग, पेटका फूलना, मंदाग्नि, बवासीर, आमवायु ये रोग दूर हों।

पिप्पल्यादिचूर्ण अफराआदिपर।

कर्षमात्राभवेत्कृष्णात्रिवृतास्यात्पलोन्मिता॥१०१॥खंडात्पलंच विज्ञेयंचूर्णमेकत्रकारयेत्॥ कर्षोन्मितंलिहेदेतत्क्षौद्रेणाध्माननाशनम्॥ १०२॥ गाढविट्कोदरकफान्पित्तंशूलंचनाशयेत्॥

---

१ त्रायमाण इसी नामसे प्रसिद्ध है। इसके पत्ते जामुनकेसे होते हैं।
२ नीलीके छोटे २ होते हैं, यह नीलवृक्षके नामसे प्रसिद्ध है इसमेंसे नीला रंग उत्पन्नहोता है।
३ यह पंचसमचूर्ण प्रायः शूलरोगपर बहुत चलता है और गुणभी शीघ्र दिखलाता है।

अर्थ–पीपल १ तोला, निसोथ ४ तोले, मिश्री ४ तोले इनका एकत्र चूर्ण कर सहतसे सेवन करे तो पेटका अफरा दूर होय। तथा मलबद्धता, उदररोग, कफ, पित्त और शूलको नाशकरे।

लवणत्रितयादिचूर्ण यकृत्प्लीहादिकोंपर।

लवणत्रितयंक्षारौशतपुष्पाद्वयंवचा ॥१०३॥ अजमोदाजगंधाचह्रपुषाजीरकद्वयम् ॥ मरिचंपिप्पलीमूलंपिप्पलीगजपिप्पली ॥ १०४ ॥ हिंगुश्चहिंगुपत्रीचशठीपाठोपकुंचिका ॥ शुण्ठीचित्रकचव्यानिविडंगंचाम्लवेतसम् ॥ १०५ ॥ दाडिमं तिंतिडीकंचत्रिवृद्दंतीशतावरी ॥ इन्द्रवारुणिकाभार्ङ्गीदेवदारुयवानिका ॥१०६॥ कुस्तंबुरुस्तुंबुरूणिपौष्करंबदराणिच ॥ शिवाचेतिसमांशानिचूर्णमेकत्रकारयेत् ॥ १०७ ॥ भावयेदार्द्रकरसैर्बीजपूररसैस्तथा ॥ तत्पिबेत्सर्पिषाजीर्णमद्येनोष्णोदकेनवा ॥ १०८ ॥ कोलांभसावातकेणदुग्धेनोष्ट्रेणमस्तुना ॥ यकृत्प्लीहकटीशूलगुदकुक्षिहृदामयान् ॥ १०९ ॥ अर्शोविष्टंभमन्दाग्निगुल्माष्ठीलोदराणिच ॥ हिक्काध्मानश्वासकासाञ्जयेदेतान्नसंशयः ॥ ११० ॥ एतैरेवौषधैः सम्यक्घृतंवासाधयेद्भिषक् ॥

अर्थ–१ सैंधानमक २ संचनमक ३ बिडनोन ४ सज्जीखार ५ जवाखार ६ सौंफ ७ मगरेल (कलोंजी) ८ वच ९ अजमोद १० बर्बरी (वनतुलसी) ११ हाऊबेर १२ सफेदजीरा १३ कालाजीरा १४ कालीमिरच १५ पीपलामूल १६ पीपर १७ गजपीपर १८ हींग भुनी १९ हिंगुपत्री २० कचूर २१ पाढ २२ छोटी इलायची २३ सोंठ २४ चव्य २५ चीतेकी छाल २६ वायविडंग २७ अमलवेत[1] २८ अनारदाना २९ तन्तडीक ३० निशोथ ३१ दन्ती ३२ सतावर ३३ इन्द्रायणका[2] गूदा ३४ भारंगी ३५ देवदारु ३६ अजमायन ३७ धनिया ३८ चिरफल ३९ पुहकरमूल ४० बेर और ४१ छोटीहरड ये

---

१ अमलवेत सर्वत्र प्रसिद्ध है यदि कहीं न मिलता होवे तो अमलवेतके अभावमें चूका डाले अथवा चनाखार डाले।

२ इन्द्रायणको हमारे इस मथुराप्रान्तके मनुष्य फरफैंदू कहते हैं। इसकी बेल होती है और पीले रंगका बडा बेलकी बराबर फल लगता है, यह अत्यंत कडुआ होताहै, यदि इसका फल न मिलै तो इस की जड लेना चाहिये।

इकतालीस औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे। फिर उस चूर्णको अदरखके रसकी एक तथा बिजोरेके रसकी एक पुट देकर सुखाय लेवे। इस चूर्णको घी, पुराना मद्य, गरम जल अथवा बेरका काढा, गौकी छाछ, ऊँटनीका दूध, दहीका पानी इनमेंसे जो अनुपान रोगीको हितकारी होय वह उसके साथ देवे तो कलेजेका रोग, प्लीहा (फीहा), कमरका दर्द, गुदाका रोग, कूखका शूल, हृदयरोग, बवासीर, मलका अवरोध, मंदाग्नि, गोला, अष्ठीला, उदर, हिचकी, अफरा, श्वास और खांसी ये रोग दूर होवें। अथवा इस चूर्णमें कहीहुई औषधोंका काढा करके उसमें घी मिलायके साधन करे। जब घी सिद्ध होजावे तब उतारले। इस घृतके सेवन करनेसे ऊपर कहे हुए संपूर्ण रोग दूर होंय।

तुंबर्वादिकचूर्ण शूलादिकोंपर।

तुंबरूणित्रिलवणंयवानीपुष्कराह्वयम् ॥१११॥ यवक्षाराभयाहिंगुविडंगानिसमानिच ॥ त्रिवृत्त्रिभागाविज्ञेयासूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥११२॥ पिबेदुष्णेनतोयेनयवक्काथेनवापिबेत् ॥ जयेत्सर्वाणिशूलानिगुल्माध्मानोदराणिच ॥ ११३ ॥

अर्थ–१ धनिया अथवा चिरफल २ सैंधानमक ३ संचरनमक ४ विडनमक ५ अजमोद ६ पुहकरमूल ७ जवाखार ८ हरड ९ भुनीहुई हींग और १० वायविडंग इन दश औषधोंको समान भाग लेवे। तथा निसोथ तीन भाग ले सब औषधोंका बारीक चूर्णकर गरम जलसे अथवा जवोंके काढेसे सेवन करे तो सर्व प्रकारके शूल, गोला, अफरा और उदररोग दूर होवें।

चित्रकादिचूर्ण गुल्मादिकोंपर।

चित्रकोनागरंहिंगुपिप्पलीपिप्पलीजटा ॥ चव्याजमोदामरिचं प्रत्येकंकर्षसंमितम् ॥ ११४ ॥ स्वर्जिकाचयवक्षारः सिंधुसौवर्चलंविडम् ॥ सामुद्रकंरोमकंचकोलमात्राणिकारयेत् ॥ ११५ ॥ एकीकृत्वाखिलंचूर्णभावयेन्मातुलुंगजैः ॥ रसैर्दाडिमजैर्वापिशोषयेदातपेनच ॥ ११६ ॥ एतच्चूर्णं जयेद्गुल्मंग्रहणीमामजांरुजम् ॥ अग्निंचकुरुतेदीप्तंरुचिकृत्कफनाशनम् ॥ ११७ ॥

अर्थ–१ चीतेकी छाल २ सोंठ ३ भुनीहुई हींग ४ पीपर ५ पीपरामूल ६ चव्य ७ अजमोद ८ कालीमिरच इन आठ औषधोंको तोले २ भर लेवे। तथा १ सज्जीखार २ जवाखार ३ सैंधानमक ४ संचरनमक ५ विडनोन ६ समुद्रनमक और ७ रेहका-

नमक इन सात खारोंको आठमासे लेवे। फिर सब औषधोंका चूर्णकर बिजोरेके रसकी एक भावना देवे। अथवा अनारदानेके रसका एक पुट देवे। फिर धूपमें धरके सुखाय लेवे। इस चूर्णके सेवन करनेसे गोला, संग्रहणी, आम ये दूर हों तथा अग्नि प्रदीप्त हो, रुचि करे तथा कफ दूर होय।

वडवानलचूर्ण मंदाग्निआदिरोगोंपर।

**सैंधवंपिप्पलीमूलंपिप्पलीचव्यचित्रकम्॥
शुण्ठीहरीतकीचेतिक्रमवृद्ध्याविचूर्णयेत्॥ ११८॥
वडवानलनामैतच्चूर्णंस्यादग्निदीपनम्॥**

अर्थ—१ सैंधानमक एकभाग २ पीपरामूल दोभाग ३ पीपर तीन भाग ४ चव्य चारभाग ५ चीतेकी छाल पांच भाग ६ सोंठ छः भाग ७ जंगी हरड सातभाग इस क्रमसे ये औषध लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णको वडवानलचूर्ण कहते हैं इसका सेवन करनेसे अग्नि दीप्त होय।

अजमोदादिचूर्ण आमवातपर।

अजमोदाविडंगानिसैंधवन्देवदारुच ॥११९॥ चित्रकःपिप्पलीमूलं शतपुष्पाचपिप्पली ॥ मरिचंचेतिकर्षांशंप्रत्येककारयेद्बुधः॥ १२०॥ कर्षास्तुपंचपथ्यायादशस्युर्वृद्धदारुकात्॥ नागराच्चदशैवस्युःसर्वाण्येकत्रकारयेत् ॥१२१॥ पिबेत्कोष्णजलेनैवचूर्णंश्वयथुनाशनम् ॥ आमवातरुजंहंतिसंधिपीडांच गृध्रसीम्॥ १२२॥ कटिपृष्ठगुदस्थांचजंघयोश्चरुजंजयेत्॥ तूणीप्रतूणीविश्वाचीकफवातामयाञ्जयेत् ॥ समेनवा गुडेना स्यवटकान्कारयेत्सुधीः॥ १२३॥

अर्थ—१ अजमोदा २ वायविडंग ३ सैंधानमक ४ देवदारु ५ चित्रक ६ पीपलामूल ७ सौंफ ८ पीपर और ९ कालीमिरच इन नौ औषधोंको तोले २ लेवे। तथा जंगीहरड ५ तोले ले विधायरा १० तोले और सोंठ दश तोले सब औषधोंको कूटपीस और छानके चूर्णकरे इसको गरम जलके साथ लेय तो सूजन, आमवात संधियोंका दूखना गृध्रसी वायु (जो कमरसे लेकर पैरपर्यंत पीडा होती है वह), कमर, पीठ, गुदा, जंघा और पोडरिओंके पीडा, तूणी वायु, प्रतूणी वायु तथा विश्वची वायु तथा कफवायुके विकार ये संपूर्ण रोग दूर होवें। अथवा इस चूर्णके समान भाग गुड मिलायके गोली बनायके खाय तो चूर्ण खानेसे जो रोग नष्टहोते हैं वेही इस गोलीके सेवनेसे नष्ट होंय।

शुंठ्यादिचूर्ण श्वासादिकपर।

शुंठीसौवर्चलंहिंगुदाडिमंचाम्लवेतसम् ॥
चूर्णमुष्णाम्बुनापेयंश्वासहृद्रोगशांतये ॥ १२४ ॥

अर्थ-१ सोंठ २ संचरनमक ३ भुनीहुई हींग ४ अनारदाना और ५ अमलवेत इनका चूर्ण गरम जलके साथ लेय तो श्वास और हृदयरोग नष्ट होवें।

हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर।

हिंगूग्रगंधाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ॥
पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराह्वंहिमांभसाशूलहृदामयघ्नम् ॥ १२५ ॥

अर्थ-१ हींग २ वच ३ विडनोन ४ सोंठ ५ पीपल ६ कूठ ७ हरड ८ चीतेकी छाल ९ जवाखार १० संचरनमक और ११ पुहकरमूल इन ग्यारह औषधोंका चूर्णकर शीतल जलके साथ पीवे तो शूल और हृदयरोग शांत होवे।

हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर।

हिंगुपाठाभयाधान्यंदाडिमंचित्रकंशठी ॥ अजमोदात्रिकटुकं हपुषाचाम्लवेतसम् ॥ १२६ ॥ अजगंधातिंतिडीकंजीरकंपौ-ष्करंवचा ॥ चव्यंक्षारद्वयंपंचलवणानीतिचूर्णयेत् ॥ १२७ ॥ प्राग्भोजनस्यमध्येवाचूर्णमेतत्प्रयोजयेत् ॥ पिबेद्वाजीर्णमद्ये-नतक्रेणोष्णोदकेनवा ॥ १२८ ॥ गुल्मेवातकफोद्भूतेविड्ग्रहे-ष्ठीलिकासुच ॥ हृद्वस्तिपार्श्वशूलेषु शूलेचगदयोनिजे ॥ ॥ १२९ ॥ मूत्रकृच्छ्रेतथानोहपांडुरोगेरुचौतथा ॥ हिक्कायां यकृतिप्लीह्निश्वासेकासेगलग्रहे ॥ १३० ॥ ग्रहण्यर्शोविकारे-षुचूर्णमेतत्प्रशस्यते ॥ भावितंमातुलुंगस्यबहुशः स्वरसेनवा ॥ १३१ ॥ कुर्याद्वागुटिकाः पथ्यावातश्लेष्मामयापहाः ॥

अर्थ-१ भुनीहींग २ पाढ ३ जंगीहरड ४ धनियां ५ अनारदाना ६ चीतेकी छाल ७ कचूर ८ अजमोदा ९ सोंठ १० मिरच ११ पीपल १२ हाऊबेर १३: अमलवेत १४ वन-तुलसी १५ तंतडीक अथवा इमली १६ जीरा १७ पुहकरमूल १८ वच १९ चव्य २० सज्जीखार २१ जवाखार २२ सैंधानोन २३ संचरनोन २४ बिडनोन २५ बांगड खार

और २६ समुद्रका नोन । इन छब्बीस औषधोंको कूट पीसके चूर्ण करै इसको भोजनके आदिमें अथवा भोजनके मध्यमें खाय अथवा बहुत दिनके पुराने मद्यके साथ सेवन करे अथवा गौकी छाछ एवं गरम जलके साथ सेवन करे तो वात कफसे उत्पन्न होनेवाला गोलेका रोग, हृद्रोग, अष्ठीला इस नामसे पेटमें होनेवाला वादीका रोग, हृदय, कूख इनका शूल, तथा गुदाका शूल, योनिशूल, मूत्रकृच्छ्र, मलबद्धता, पांडुरोग, अरुचि, हिचकी, यकृत्‌रोग, तिल्लीका रोग, श्वास, खांसी, कंठरोग, संग्रहणी, बवासीर ये संपूर्ण रोग दूर हों। इस चूर्णमें बिजोरेके रसके सातपुट देकर गोली बनाके सेवन करे तो वात कफसे होने वाले रोग दूर होवें।

यवानीखांडवचूर्ण अरुचिआदिपर।

यवानीदाडिमंशुंठीतिंतिडीकाम्लवेतसौ ॥ १३२ ॥ बदराम्लं च कुर्वीतचतुःशाणमितानिच॥ सार्द्धद्विशाणंमरिचंपिप्पलीदश-शाणिका ॥ १३३ ॥ त्वक्सौवर्चलधान्याकंजीरकंद्विद्विशा-णिकम् ॥ चतुःषष्टिमितैःशाणैःशर्करामत्रयोजयेत् ॥ १३४॥ चूर्णितंसर्वमेकत्रयवानीखांडवाभिधम् ॥ चूर्णंजयेत्पांडुरोगंहृ-द्रोगंग्रहणीज्वरम् ॥ १३५ ॥ छर्दिशोषातिसारांश्चप्लीहानाहवि-बंधताम् ॥ अरुचिशूलमंदाग्नीअर्शांसिजिह्वागलामयान् ॥१३६॥

अर्थ–१ अजमोद २ अनारदाना ३ सोंठ ४ तंतडीक अथवा इमली ५ अमलवेत और ६ बेर खट्टे। ये छः औषध चार २ शाण लेवे। काली मिरच ढाई शाण, पीपर दश शाण, दाल-चीनी संचरनमक धनियां जीरा ये प्रत्येक दो दो शाण और मिश्री चौंसठ शाण ले। फिर इन औषधोंको कूटकर चूर्ण करे। इस चूर्णको यवानीखांडव चूर्ण कहते हैं। इस चूर्णके सेवन करनेसे पांडुरोग, हृद्रोग, संग्रहणी, ज्वर, वमन, शोष, अतिसार, तिल्ली, मलबद्धता, अरुचि, शूल, मंदाग्नि, बवासीर, जीभके रोग, कंठके रोग ये सब दूर होते हैं।

तालीसादिचूर्ण अरुचिआदिरोगोंपर।

तालीसंमरिचंशुंठीपिप्पलीवंशरोचना ॥ एकद्वित्रिचतुःपञ्चक-र्षैर्भागान्प्रकल्पयेत् ॥१३७॥ एलात्वचोस्तुकर्षार्धंप्रत्येकंभा-गमावहेत् ॥ द्वात्रिंशत्कर्षतुलिताप्रदेयाशर्कराबुधैः ॥ १३८॥ तालीसाद्यमिदंचूर्णंरोचनंपाचनंस्मृतम् ॥ कासश्वासज्वरहरं

छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ १३९ ॥ शोषाध्मानहरंप्लीहग्रहणीपांडुरोगजित् ॥ पक्त्वावाशर्करांचूर्णंक्षिपेत्स्याद्गुटिकाततः ॥१४०॥

अर्थ–तालीसपत्र १ तोले कालीमिरच २ तोले सोंठ ३ तोले पीपर ४ तोले वंशलोचन ५ तोले छोटी इलायची और दालचीनी दोनों छः छः मासे मिश्री ३२ तोले ले फिर सबको कूट पीस चूर्ण करके सेवन करे तो रुचि होय, अन्न पचे तथा खाँसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, अफरा, तिल्ली, संग्रहणी और पांडुरोग ये दूर हों। अथवा मिश्रीकी चासनी करके उसमें इस चूर्णको डाल गोली बनाय लेवे तो यह भी चूर्णके समान गुण करती है।

सितोपलादिकचूर्ण खांसीक्षयपित्तादिकोंपर।

सितोपलाषोडशस्यादष्टौस्याद्वंशरोचना ॥ पिप्पलीस्याच्चतुःकर्षास्यादेलाचद्विकर्षिकी ॥ १४१॥ एकःकर्षस्त्वचः कार्यश्चूर्णयेत्सर्वमेकतः ॥ सितोपलादिकंचूर्णमधुसर्पिर्युतंलिहेत् ॥१४२॥ श्वासकासक्षयहरंहस्तपादांगदाहजित् ॥ मंदाग्निंशून्यजिह्वत्वंपार्श्वशूलमरोचकम् ॥१४३॥ ज्वरमूर्ध्वगतंरक्तंपित्तमाशुव्यपोहति ॥

अर्थ–मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपर ४ तोले, छोटी इलायचीके बीज २ तोले, दालचीनी १ तोला इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे इसको सितोपलादिचूर्ण कहते हैं और इस चूर्णको सहत और घीके साथ मिलायके खाय तो श्वास, खाँसी, क्षय, हाथ पैरोंका तथा अंगोंका दाह, मंदाग्नि, जीभकी शून्यता, पसलीका शूल, अरुचि, ज्वर, ऊर्ध्वगत रक्तपित्त (नाकमुखसे रुधिर आना) ये सब तत्काल दूर होवें।

लवणभास्करचूर्ण संग्रहणीगुल्मादिकोंपर।

सामुद्रलवणंकार्यमष्टकर्षमितंबुधैः॥१४४ ॥पंचसौवर्चलंग्राह्यं विडंसैंधवधान्यके ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंकृष्णजीरकपत्रकम् ॥१४५॥नागकेसरतालीसमम्लवेतसकंतथा ॥ द्विकर्षमात्राण्येतानिप्रत्येकंकारयेद्बुधः ॥ १४६ ॥ मरिचंजीरकंविश्वमेकैकंकर्षमात्रकम् ॥ दाडिमंस्याच्चतुःकर्षंत्वगेलाचार्धकर्षिकी ॥

१ शोफाध्मानहरं, कहीं ऐसा पाठ है तहां शोफ कहिये सूजन ऐसा अर्थ जानना।
२ 'मधुसर्पिर्युतं लिहेत्' क्वचित् ऐसा पाठ है तहां सहत और घी दोनों विषम भाग ले इसमें चूर्णको मिलायके सेवन करे ऐसा अर्थ जानना।

॥ १४७ ॥ बीजपूररसेनैवभावितंसप्तवारकम् ॥ एतच्चूर्णीकृतं सर्वलवणंभास्कराभिधम् ॥ शाणप्रमाणंदेयंतुमस्तुतक्रसुरासवैः ॥१४८॥ वातश्लेष्मभवंगुल्मंप्लीहानमुदरंक्षयम् ॥ अर्शांसि ग्रहणींकुष्ठंविबंधंचभगंदरम् ॥१४९॥ शोफंशूलंश्वासकासमामदोषंचहृद्रुजम्॥मंदाग्निंनाशयेदेतद्दीपनंपाचनंपरम्॥१५०॥ सर्वलोकहितार्थायभास्करेणोदितंपुरा ॥

अर्थ–सामुद्रनमक ८ तोले, संचरनोन ५ तोले, १ बिडनोन २ सैंधानमक ३ धनि ४ पीपल ५ पीपरामूल ६ कालाजिरा ७ पत्रज ८ नागकेशर ९ तालीसपत्र और १० अमलवेत ये दश औषधी प्रत्येक दो दो तोले लेय; कालीमिरच जीरा और सोंठ तीन औषधि एक २ तोले लेय, तथा अनारदाना ४ तोले, दालचीनी और इलायची छः छः मासे। इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्णकरे। इसके दहीके जलसे वा दहीकी मलाई ऐसे छाछ और मद्य (दारू) इनमेंसे रोगानुसार अनुपानके साथ ४ मासे देवे तो वातकफसे उत्पन्न होनेवाला गोला, फीहा, उदर, क्षय, बवासीर, संग्रहणी, कोढ, मल- बद्धता (बद्धकोष्ठ), भगंदर, सूजन, शूल, श्वास, खाँसी, आमवात, हृद्रोग और मंदाग्नि ये सब रोग दूर हों। अग्नि प्रदीप्त हो तथा अन्नका परिपाक होवे। यह चूर्ण लोकोंके हितके वास्ते सूर्यने कहा है इसीसे इसका नाम लवणभास्कर चूर्ण विख्यात है।

एलादिचूर्ण वमनपर ।

एलाप्रियंगुमुस्तानिकोलमज्जाचपिप्पली ॥ १५१ ॥ श्रीचंदनं तथालाजालवंगंनागकेसरम् ॥ एतच्चूर्णीकृतंसर्वंसिताक्षौद्रयुतं लिहेत् ॥ १५२ ॥ वातपित्तकफोद्भूतांछर्दिंहंत्यतिवेगतः ॥

अर्थ–१ छोटी इलायचीके बीज २ फूलप्रियंगु ३ नागरमोथा ४ बेरकी गुठली ५ पीपर ६ सफेदचंदन ७ खील ८ लौंग ९ नागकेशर इन नौ औषधोंको कूट पीस [illegible] करके सहत और मिश्रीके साथ खाय तो वात पित्त और कफसे उत्पन्नहुआ वमन (छर्दि) ये सब रोग तत्काल दूरहों।

पंचनिंबचूर्ण कुष्ठादिकोंपर ।

मूलंपत्रंफलंपुष्पंत्वचंनिंबात्समाहरेत् ॥ १५३ ॥ सूक्ष्मचूर्णमिदंकुर्यात्पलैःपंचदशोन्मितैः ॥ लोहभस्महरीतक्योचक्रमर्दकचित्रकौ ॥१५४॥ भल्लातकविडंगानिशर्करामलकंनिशा॥

पिप्पलीमरिचंशुंठीबाकुचीकृतमालकः ॥ १५५ ॥ गोक्षुरश्चपलोन्मानमेकैकंकारयेद्बुधः ॥ सर्वमेकीकृतंचूर्णंभृंगराजेनभावयेत् ॥१५६॥ अष्टभागावशिष्टेनखदिरासनवारिणा ॥ भावयित्वाचसंशुष्कंकर्षमात्रंततःक्षिपेत् ॥ १५७ ॥ खदिरासनतोयेन सर्पिषापयसाथवा ॥ मासेनसर्वकुष्ठानिविनिहंतिरसायनम् ॥ ॥ १५८ ॥ पंचनिंबमिदंचूर्णंसर्वरोगप्रणाशनम् ॥

अर्थ–१ जड २ पत्ते ३ फल ४ फूल और ५ छाल ये पांच अंग नीमके १५ पल लेय उनका चूर्ण करे उसमें १ लोहकी भस्म २ जंगीहरड ३ पँवाडके बीज ४ चीतेकी छाल ५ मिलाये ६ वायविडंग ७ मिश्री ८ आमल ९ हल्दी १० पीपर ११ कालीमिरच १२ सोंठ १३ बावची १४ अमलतासका गूदा और १५ गोखरू ये पंद्रह औषध प्रत्येक एक एक पल लेकर इन सबका चूर्ण करे। फिर पूर्वोक्त नीमका चूर्ण और पंद्रह औषधोंका चूर्ण मिलाय एकत्र करके भाँगरेके रसकी भावना देकर सुखाय ले। पश्चात् खैरकी छालका काढा करके उसका एक पुट दे। फिर विजैसारकी छालका काढा करके एक पुट देकर सुखाय लेवे। १ तोले इस चूर्णको खैरकी छालके काढेसे पीवे। अथवा विजैसारके काढेसे वा घी या गौके दूधसे पीवे तो एक महिनेमें संपूर्ण कोढ दूर होवें। इस चूर्णको पंचनिंबचूर्ण कहते हैं, यह चूर्ण रसायन है।

शतावरीचूर्ण वाजीकरणपर।

शतावरीगोक्षुरश्चबीजंचकपिकच्छुजम् ॥ १५९ ॥ गांगेरुकी चातिबलाबीजमिक्षुरकोद्भवम् ॥ चूर्णितंसर्वमेकत्रगोदुग्धेनपिबेन्निशि ॥ १६० ॥ नतृप्तियातिनारीभिर्नरश्चूर्णप्रभावतः ॥

अर्थ–१ शतावर २ गोखरू ३ कौंचके बीज ४ गंगेरनकी छाल ५ कँगहीकी छाल ६ तालमखाना इन छःऔषधोंका चूर्ण कर रात्रिमें गौके दूधके साथ सेवन करे तो बहुत स्त्रीगमनेसे भी इच्छाकी तृप्ति नहीं हो ऐसा इस चूर्णका प्रभाव है।

अश्वगंधादिचूर्ण पुष्टाईपर।

अश्वगंधादशपलातन्मात्रोवृद्धदारकः ॥ १६१ ॥ चूर्णीकृत्योभयंविद्वान्घृतभांडेनिधापयेत् ॥ कर्षंकंपयसापीत्वानारीभिर्नैवतृप्यति ॥१६२॥ अगत्वाप्रमदांभूयोवलीपलितवर्जितः ॥

अर्थ–असगंध १० पल, विधायरा ११ पल, इन दोनोंका चूर्णकर घीके बासनमें

भरके रात्रिको रख देवे फिर इसमेंसे २ तोले चूर्णको गौके दूधसे सेवन करे तो बहुतसी स्त्रियोंसे भोग करनेपरभी तृप्त नहीं हो और यदि स्त्रीसेवनको त्यागके इस चूर्णको सेवन करे तो अंगमें गुजलटोंका पडना और बालोंका सफेद होना ये रोग दूरहों और बुड्ढे जवान हो ।

मूसलीचूर्ण धातुवृद्धिपर ।

मुसलीकंदचूर्णंतुगुडूचीसत्वसंयुतम् ॥ १६३ ॥ सक्षीरीगोक्षुराभ्यांचशाल्मलीशर्करामलैः ॥ आलोडचघृतदुग्धेनपाययेत्कामवर्धनम् ॥ १६४ ॥

अर्थ–१ सफेद मूसली २ गिलोयका सत्व ३ कौंछके बीज ४ गोखरू ५ सेमरके मूसला ६ मिश्री और ७ आँवले इन सात औषधोंका चूर्ण करके गौके दूधमें घी मिलाय इस चूर्णको पीवे तो धातुकी वृद्धि होकर काम बढे ।

नवायसचूर्ण पांडुरोगादिकोंपर ।

चित्रकंत्रिफलामुस्तंविडंगंत्र्यूषणानिच ॥ समभागानिसर्वाणि नवभागोहतायसः ॥ १६५ ॥ एतदेकीकृतंचूर्णंमधुसर्पिर्युतंलिहेत ॥ गोमूत्रमथवातक्रमनुपानेप्रशस्यते ॥ १६६ ॥ पांडुरोगंजयत्युग्रंत्रिदोषंचभगंदरम् ॥ शोथकुष्ठोदरार्शांसिमंदाग्निमरुचिंकृमीन् ॥ १६७ ॥

अर्थ–१ चीतेकी छाल २ हरड ३ बहेडा ४ आंवला ५ नागरमोथा ६ वायविडंग ७ सोंठ ८ कालीमिरच और ९ पीपल ये नौ औषध समानभाग ले चूर्णकरके उस चूर्णके समान लोहभस्म मिलावे । फिर इस चूर्णको सहत और घीके साथ अथवा गोमूत्रसे अथवा गौकी छाछसे सेवन करे तो बडाभारी घोर पांडुरंग, त्रिदोष, भगंदर, सूजन, कोढ, उदररोग, बवासीर, मंदाग्नि, अरुचि, और कृमिरोग इन सबको नष्ट करे ।

अकारकरभादिचूर्ण स्तंभनपर ।

अकारकरभःशुंठीकंकोलंकुंभकंकणा ॥ जातीफलंलवंगंचचंदनंचेतिकार्षिकान् ॥ १६८ ॥ चूर्णानिमानतःकुर्यादहिफेनंपलोन्मितम् ॥ सर्वमेकीकृतंसूक्ष्मंमाषैकंमधुनालिहेत् ॥ १६९ ॥ शुक्रस्तंभकरंचूर्णंपुंसामानंदकारकम् ॥ नारीणांप्रीतिजननंसेवेतनिशिकामुकः ॥ १७० ॥

अर्थ–१ अकरकरा २ सोंठ ३ कंकोल ४ केशर ५ पीपल ६ जायफल ७ लौंग और ८ सफेदचंदन ये आठ औषध एक एक तोले लेवे तथा अफीम चार तोले लेवे इन सबका एकत्र चूर्ण करके १ मासेके अनुमान इस चूर्णको सहतसे रात्रिके समय सेवन करे तो धातुका स्तंभन होकर पुरुषको आनंद होय तथा स्त्रियोंमें प्रीति उत्पन्न होवे।

मंजन।

बकुलत्वग्भवंचूर्णंघर्षयेद्दंतपंक्तिषु ॥
वज्रादपिदृढीभूतादंताःस्युश्चपलाध्रुवम् ॥ १७१ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने चूर्णकल्पनाध्यायःषष्ठः ॥ ६ ॥

अर्थ–मौलसिरीकी छालके चूर्णको दाँतोंमें घिसाकरे तो हिलते हुएभी दांत वज्रके समान दृढ होवें इसमें संदेह नहीं।

इति श्रीमाथुरीभाषाटीकायां द्वितीयखंडे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

वटिकाश्चाथकथ्यंतेतन्नामगुटिकावटी ॥ मोदकोवटिकापिंडी गुडोवर्तिस्तथोच्यते ॥ १ ॥ लेहवत्साध्यतेवह्नौगुडोवाशर्कराथवा ॥ गुग्गुलंवाक्षिपेत्तत्रचूर्णंतन्निर्मितावटी ॥ २ ॥ प्रकुर्याद्वह्निसिद्धेनक्वचिद्गुग्गुलुनावटी ॥ द्रवेणमधुनावापिगुटिकांकारयेद्बुधः ॥ ३ ॥ सिताचतुर्गुणादेया वटीषुद्विगुणोगुडः ॥ चूर्णाच्चूर्णसमःकार्योगुग्गुलुर्मधुतत्समम् ॥ ४ ॥ द्रवंचद्विगुणंदेयं मोदकेषुभिषग्वरैः ॥ कर्षप्रमाणातन्मात्राबलंदृष्ट्वाप्रयुज्यताम् ॥ ५ ॥

अर्थ–१ गुटिका २ वटी ३ मोदक ४ वटिका ५ पिंडी ६ गुड और ७ बत्ती ये सात वटिका अर्थात् गोलीके पर्याय शब्द हैं। इनका बनाना इस प्रकार है कि गुड, खांड अथवा गूगलका पाक करके उसमें चूर्ण मिलायकर गोली बनानी चाहिये। यदि पाक करे विना गोली बनानी होवे तो गूगलको शोध पीस उसमें चूर्ण मिलायके घीसे गोली बनाय लेवे। अथवा जल दूध सहत आदि पतली वस्तुओंमें चूर्ण डालके खरलकर गोली बनाय लेवे। यदि खांड मिश्री आदि डालके गोली बनानी होवे तो चूर्णसे चौगुनी मिश्री मिलायके गोली बनावे। यदि गुड

मिलायके गोली करनी होवे तो चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे। कभी गूगल और सहत दोनों डालके गोली बनानी हो तो गूगल और सहत ये दोनों चूर्णके समान भाग लेकर गोली बनावे । और पानी दूध इत्यादि द्रव पदार्थसे गोली बनानी होवे तो चूर्णसे दूना डालके गोली बनानी चाहिये। चूर्णके सेवनकी मात्राका प्रमाण १ तोला है अथवा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार वैद्यको मात्रा देनी चाहिये ।

बाहुशालगुड बवासीरपर ।

इंद्रवारुणिकामुस्तंशुंठीदंतीहरीतकी ॥ त्रिवृत्सटीविडंगानिगोक्षुरश्चित्रकस्तथा ॥ ६ ॥ तेजोह्वाचद्विकर्षाणिपृथग्द्रव्याणिकारयेत् ॥ सूरणस्यपलान्यष्टौवृद्धदारुचतुष्पलम् ॥ ७ ॥ चतुःपलंस्याद्भल्लातःक्वाथयेत्सर्वमेकतः ॥ जलद्रोणेचतुर्थांशंगृह्णीयात्क्वाथमुत्तमम् ॥ ८ ॥ क्वाथ्यद्रव्यात्त्रिगुणितंगुडंक्षिप्त्वा पुनःपचेत् ॥ सम्यक्पक्कंचविज्ञायचूर्णमेतत्प्रदापयेत् ॥ ९ ॥ चित्रकस्त्रिवृतादंतीतेजोह्वापलिकाःपृथक् ॥ पृथक्त्रिपलिकाः कार्य्यास्त्र्योषैलामरिचत्वचः ॥ १० ॥ निक्षिपेन्मधुशीतेचतस्मिन्प्रस्थप्रमाणतः ॥ एवंसिद्धोभवेच्छ्रीमान्बाहुशालगुडःशुभः ॥ ११ ॥ जयेदर्शांसिसर्वाणिगुल्मंवातोदरंतथा ॥ आमवातंप्रतिश्यायंग्रहणीक्षयपीनसान् ॥ १२ ॥ हलीमकंपांडुरोगंप्रमेहंचरसायनम् ॥

अर्थ–१ इन्द्रायनकी जड २ नागरमोथा ३ सोंठ ४ दंती ५ जंगीहरड ६ निसोथ ७ कचूर ८ वायविडंग ९ गोखरू १० चीतेकी छाल ११ तेजबल ये ग्यारह औषध प्रत्येक दो दो तोले लेवे. जमीकन्द (सूरन) आठ पल, विधायरा १६ तोले, भिलाए ४ पल ले । इन सब औषधोंको एकत्र कूट पीस उसमें दो द्रोण जल डालके अग्निपर चढाय मंदी २ आँचसे चतुर्थांश जल शेष रहे पर्यंत काढा करे । और सब औषधोंसे तिगुना गुड डालके फिर औटायके पाक करे फिर इस पाकमें आगे कहा हुआ औषधोंका चूर्ण डाले । जैसे–चीतेकी छाल, निशोथ, दन्ती और तेजबल ये चार औषध एक २ पल ले सोंठ, मिरच, पीपल, आंवले, दालचीनी ये पांच तीन तीन पल ले । सबका चूर्ण कर उस पाकमें मिलावे । इसको बाहुशाल गुड कहते हैं। इस गुडके खानेसे संपूर्ण बवासीर, गुल्म, वातोदर, बादीसे अंगोंका जकडना, आमवात, सरेकमा, संग्रहणी, क्षय, पीनस, हलीमक, पांडुरोग और प्रमेह दूर होवें । यह बाहुशालगुड रसायन है ।

मरिचादिगुटिका खाँसीपर।

मरिचंकर्षमात्रंस्यात्पिप्पलीकर्षसंमिता ॥ १३ ॥ अर्धकर्षोय- वक्षारःकर्षयुग्मंचदाडिमम् ॥ एतच्चूर्णीकृतंयुंज्यादष्टकर्षगुडेन हि ॥ १४ ॥ शाणप्रमाणांगुटिकांकृत्वावक्रेविधारयेत् ॥ अ- स्याःप्रभावात्सर्वेपिकासायांत्येवसंक्षयम् ॥ १५ ॥

अर्थ–कालीमिरच और पीपल २ तोले, जवाखार आधा तोला अनारकी छाल २ तोले इन चार औषधोंका चूर्णकर ८ आठ तोले गुड मिलायके ४ मासेकी गोली बनावे फिर इस गोलीको मुखमें रक्खे तो संपूर्ण जातिकी खाँसी दूर होवें इसमें संशय नहीं।

व्याघ्रीआदिगुटिका ऊर्ध्ववातपर।

व्याघ्रीजीरकधात्रीणांचूर्णमधुयुतंलिहेत् ॥
ऊर्ध्ववातमहाश्वासतमकैर्मुच्यतेक्षणात् ॥ १६ ॥

अर्थ–१ कटेरी २ जीरा और ३ आँवला इन तीन औषधोंका चूर्णकरके सहत मिलायके चाटे तो ऊर्ध्ववायु, महाश्वास और तमकश्वास ये सब रोग तत्काल दूर हों।

गुडादिगुटिका श्वासखाँसीपर।

गुडशुंठीशिवामुस्तैर्गुटिकांधारयेन्मुखे ॥
श्वासकासेषुसर्वेषुकेवलंवाविभीतकम् ॥ १७ ॥

अर्थ–१ सोंठ २ जंगी हरड और ३ नागरमोथा इन तीन औषधोंको कूट पीस इसमें दूना गुड मिलायके गोली बनावे। फिर एक गोलीको मुखमें रक्खे तो संपूर्ण खाँसी और श्वास ये दूर हों। अथवा साबत बहेडेकी छालका मुखमें रखनेसे श्वास और खाँसी दूर होवे।

आमलक्यादिगुटिका मुखशोषादिपर।

आमलंकमलंकुष्ठंलाजाश्ववटरोहकम् ॥ एतच्चूर्णस्यमधुनागु- टिकांधारयेन्मुखे ॥ १८ ॥ तृष्णांप्रवृद्धांहंत्येषामुखशोषंचदा- रुणम् ॥

अर्थ–१ आमला २ कमल ३ कूठ ४ खील और ५ बडकी कोंपल इन पांच औषधोंको सहतमें मिलायके गोली बनावे। इसको मुखमें रक्खे तो अत्यंत प्यासका लगना और मुखके घोर शोषको यह दूरकरे।

संजीवनीगुटिका सन्निपातादिकोंपर।

विडंगंनागरंकृष्णापथ्यामलबिभीतकौ ॥ १९ ॥ वचागुडूचीभल्ला-

तंसविषंचात्रयोजयेत् ॥ एतानिसमभागानिगोमूत्रेणैवपेषयेत् ॥ ॥ २० ॥ गुंजाभागुटिकाकार्यादद्यादार्द्रकजैरसैः ॥ एकामजीर्णगुल्मेषुद्वेविषूच्यांचदापयेत् ॥ २१ ॥ तिस्रश्चसर्पदष्टेतुचतस्रःसंनिपातके ॥ वटीसंजीवनीनाम्नासंजीवयतिमानवम् ॥ २२ ॥

अर्थ–१ वायविडंग २ सोंठ ३ पीपल ४ जंगीहरड ५ आँवला ६ बहेडा ७ वच ८ गिलोय ९ भिलाए १० बच्छनाग (शुद्ध किया हुआ) इन दश औषधोंको समानभाग लेकर गौके मूत्रमें पीसके एक २ रत्तीकी गोली बनावे । फिर इसको अदरखके रससे अजीर्ण रोगमें तथा गोलाके रोगमें १ गोली सेवनकरे, विषूचिका (हैजा) में दो गोली, सर्पके विषपर तीन गोली, सन्निपातमें चार गोली सेवनकरे । यह गोली मनुष्योंको संजीवनकरनेवाली है इसीसे इसको संजीवनी गुटिका कहते हैं ।

व्योषादिगुटिका पीनसपर ।

व्योषाम्लवेतसंचव्यंतालीसंचित्रकस्तथा ॥ जीरकंतिंतिडीकं चप्रत्येकंकर्षभागिकम् ॥ २३ ॥ त्रिसुगंधंत्रिशाणंस्याद्गुडः स्यात्कर्षविंशतिः ॥ व्योषादिगुटिकासामपीनसश्वासकासजित् ॥ २४ ॥ रुचिस्वरकराख्याताप्रतिश्यायप्रणाशिनी ॥

अर्थ–१ सोंठ २ कालीमिरच ३ पीपल ४ अमलवेत ५ चव्य ६ तालीसपत्र ७ चित्रक ८ जीरा ९ इमलीकी छाल इन नौ औषधोंको एक २ तोले लेवे । तथा दालचीनी २ इलायचीके दाने ३ पत्रज ये तीन औषध तीन २ शाण लेवे । फिर सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण कर इसमें २० तोले गुड मिलायके गोली बनाय लेवे यह व्योषादि गुटिका आमपीनसका रोग, श्वास, खाँसी इन सब रोगोंको दूर करे तथा मुखमें रुचि प्रगट करे इससे स्वर (आवाज) शुद्ध हो तथा सरेकमा दूर होय ।

गुडवटिकाचतुष्टय आमादिकोंपर ।

आमेषुसगुडांशुंठीमजीर्णेगुडपिप्पलीम् ॥ २५ ॥
कृच्छ्रेजीरगुडंदद्यादर्शःसुचगुडाभयाम् ॥

अर्थ–सोंठके चूर्णमें गुडमिलायके गोली बनाकर भक्षणकरे तो आँव दूर होवे । गुड और पीपल एकत्रकरके गोली बनावे इसके सेवनसे अजीर्ण दूरहो । गुड और जीरेको एकत्र कूट पीस गोली बनावे तो मूत्रकृच्छ्र दूर हो । एवं छोटी हरडके चूर्णमें गुड मिलायके गोली बनावे इसको सेवन करे तो बवासीरका रोग दूर होवे ।

वृद्धदारकमोदक बवासीरपर ।

वृद्धदारकभल्लातशुंठीचूर्णेनयोजितः ॥ २६ ॥
मोदकःसगडोहन्यात्षड्विधार्शःकृतांरुजम् ॥

अर्थ–१ विधायरा २ भिलाये और ३ सोंठ इन तीन औषधोंके समान भागका चूर्ण–१ चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे । इसके खानेसे छः प्रकारका बवासीररोग नष्ट होय ।

सूरणवटक बवासीरपर ।

शुष्कसूरणचूर्णस्यभागान्द्वात्रिंशदाहरेत् ॥ २७ ॥
भागान्षोडशचित्रस्यशुंठ्याभागचतुष्टयम् ॥
द्वौभागौमरिचस्यापिसर्वाण्येकत्रकारयेत् ॥ २८ ॥
गुडेनपिंडिकांकुर्यादर्शसांनाशिनींपराम् ॥

अर्थ–१ जमीकंदको सुखायके चूर्ण कर ३२ तोले ले । चीतेकी छाल १६ तोले, सोंठ ४तौले और काली मिरच २ तोले ले । सबको कूट पीस चूर्ण करे । चूर्णके समान गुड मिलायके गोली बनावे इस गोलीको नित्य खानेसे छः प्रकारकी बवासीर नष्ट होवे । यह सूरणवटक कहाता है ।

बृहत्सूरणवटक बवासीरपर ।

सूरणोवृद्धदारुश्चभागैःषोडशभिःपृथक् ॥ २९ ॥ मुसलीचित्रकौज्ञेयावष्टभागमितौपृथक् ॥ शिवाबिभीतकौधात्रीविडंगनागरंकणा ॥ ३० ॥ भल्लातःपिप्पलीमूलंतालीसंचपृथक्पृथक् ॥ चतुर्भागप्रमाणानित्वगेलामरिचंतथा ॥ ३१ ॥द्विभागमात्राणि पृथक्ततस्त्वेकत्रचूर्णयेत् ॥ द्विगुणेनगुडेनाथवटकान्धारयेद्बुधः ॥ ३२ ॥ प्रबलाग्निकराह्येषातथार्शोनाशनाःपरम् ॥ ग्रहणीं वातकफजांश्वासंकासंक्षयामयम् ॥ ३३ ॥ प्लीहानंश्लीपदंशोफं हिक्कांमेहंभगंदरम् ॥ निहन्युः पलितंवृष्यास्तथामेध्यारसायनाः ॥ ३४ ॥

अर्थ--जमीकंद १६ तोले, विधायरा १६ तोले, मसूरी ८ तोले, चीतेकी छाल ८ तोले लेवे । १ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ वायविडंग ५ सोंठ ६ पीपल ७ भिलाएँ ८ पीपरामूल और ९ तालीसपत्र ये नौ औषध चार २ तोले लेय । एवं १ दालचीनी २ इलायची

३ काली मिरच ये तीन औषध दो दो तोले लेय । इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण कर इसमें सब चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे इसको सेवन करे तो अग्नि प्रदीप्त होय और बवासीरका रोग, वात कफसे उत्पन्न हुई संग्रहणी, श्वास, खाँसी, क्षय, पेटमें होनेवाला प्लीहाका रोग, श्लीपदरोग, सूजन, हिचकी, प्रमेह, भगंदर और जिससे सफेद बाल होवे ऐसा पलित रोग ये सब दूर होवें । यह गोली स्त्रीगमनकी इच्छा करती है तथा बुद्धि देती है एवं शरीरकी वृद्धावस्थाको दूर करती है ।

मंडूरवटक कामलादिकोंपर ।

त्रिफलंत्र्यूषणंचव्यंपिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ दारुमाक्षिकधातुस्त्वग्दार्वीमुस्तंविडंगकम् ॥ ३५ ॥ प्रत्येकंकर्षमात्राणिसर्वद्विगुणितंतथा ॥ मंडूरंचूर्णयेत्सर्वंगोमूत्रेऽष्टगुणेक्षिपेत् ॥ ३६ ॥ पक्त्वाचवटकान्कृत्वादद्यात्तक्रानुपानतः ॥ कामलापांडुमेहार्शःशोथकुष्ठकफामयान् ॥ ३७ ॥ ऊरुस्तंभमजीर्णंचप्लीहानंनाशयंतिच॥

अर्थ--१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ सोंठ ५ मिरच ६ पीपल ७ चव्य ८ पीपरामूल ९ चीतेकी छाल १० देवदारु ११ सुवर्णमाक्षिककी भस्म १२ दालचीनी १३ दारुहल्दी १४ नागरमोथा और १५ वांयविडंग इन पंद्रह औषधोंको तोले २ भर लेकर चूर्ण करे इस चूर्णसे दूनी मंडूर मिलावे और सबसे आठगुना गोमूत्र लेकर उसमें उस चूर्ण और मंडूरको डालके औटाकर गाढा करे जब गोली बंधनेयोग्य होय तब गोली बनाय लेवे इस गोलीको छाछके साथ सेवन करे तो नेत्रोंमें जो कमलवायुरोग (पीलियाका भेद) होता है सो दूर होवे । तथा पांडुरोग, प्रमेह, बवासीर, सूजन, कोढ, कफके विकार जिस करके जाँघोंका स्तंभन होय वह वायु, अजीर्ण और प्लीहा इन सबको दूर करे ।

पिप्पलीमोदक धातुज्वरादिकोंपर ।

क्षौद्राद्द्विगुणितंसर्पिर्घृताद्द्विगुणपिप्पली ॥ ३८ ॥ सिताद्द्विगुणितातस्याःक्षीरंदेयंचतुर्गुणम् ॥ चातुर्जातंक्षौद्रतुल्यंपक्त्वाकुर्याच्चमोदकान् ॥ ३९ ॥ धातुस्थांश्चज्वरान्सर्वान्छ्वासंकासंचपांडुताम् ॥ धातुक्षयंवह्निमांद्यंपिप्पलीमोदकोजयेत् ॥ ४० ॥

अर्थ—सहतसे दूना घी और घीसे दूनी पीपल, पीपलकी दूनी मिश्री, मिश्रीका चौगुना दूध ले तथा १ दालचीनी २ तमालपत्र ३ इलायचीके बीज और ४ नागकेशर इन चारोंका चूर्ण सहतके समान लेना चाहिये । फिर सबका पाक करके लड्डू बनावे । एक लड्डू नित्य सेवन करे तो धातुगतज्वर, श्वास, खाँसी, पांडुरोग, धातुक्षय, मंदाग्नि इन सब विकारोंको नष्ट करता है ।

चन्द्रप्रभागुटिका प्रमेहादिकोंपर ।

चन्द्रप्रभावचामुस्तंभूनिंबामृतदारुकम् ॥ हरिद्रादिविषादार्वी पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥४१॥ धान्याकंत्रिफलंचव्यंविडंगंगज-पिप्पली ॥ व्योषंमाक्षिकधातुश्चद्वौक्षारौलवणत्रयम् ॥ ४२ ॥ एतानिशाणमात्राणिप्रत्येकंकारयेद्बुधः ॥ त्रिवृद्दंतीपत्रकंचत्व-गेलावंशरोचना ॥ ४३ ॥ प्रत्येकंकर्षमात्रंचकुर्यादेतानिबुद्धि-मान् ॥ द्विकर्षहतलोहंस्याच्चतुःकर्षासिताभवेत् ॥ ४४ ॥ शि-लाजत्वष्टकर्षस्यादष्टौकर्षास्तुगुग्गुलोः ॥ एभिरेकत्रसंक्षुण्णैः कर्तव्यागुटिकाशुभा ॥४५॥ चन्द्रप्रभेतिविख्यातासर्वरोगप्र-णाशिनी ॥ प्रमेहान्विंशतिंकृच्छ्रंमूत्राघातंतथाश्मरीम् ॥४६॥ विबंधानाहशूलानिमेहनग्रंथिमर्बुदम् ॥ अंडवृद्धिंतथापांडुंका-मलांचहलीमकम् ॥४७॥ अंत्रवृद्धिंकटिशूलंकासंश्वासंविच-र्चिकाम् ॥ कुष्ठान्यर्शांसिकंडूंचप्लीहोदरभगंदरे ॥४८॥ दन्त-रोगंनेत्ररोगंस्त्रीणामार्तवजांरुजम् ॥ पुंसांशुक्रगतान्दोषान्म-न्दाग्निमरुचिंतथा ॥ ४९ ॥ वायुंपित्तंकफंहन्याद्बल्यावृष्या-रसायनी ॥ चन्द्रप्रभायांकर्षस्तुचतुःशाणोविधीयते ॥ ५० ॥

अर्थ–१ कचूर २ वच ३ नागरमोथा ४ चिरायता ५ गिलोय ६ देवदारु ७ हल्दी ८ अती-स ९ दारुहल्दी १० पीपरामूल ११ चीतकी छाल १२ धनिया १३ हरड १४ बहेडा १५आ-मला १६ चव्य १७ वायविडंग १८ गजपीपल १९ सोंठ २० कालीमिरच २१ पीपल २२ सुवर्णमाक्षिककी भस्म २३ सज्जीखार २४ जवाखार २५ सैंधानमक २६ संचरनमक २७ और विडनमक ये सत्ताईस औषध एक एक शाण प्रमाण लेवे । तथा १ निसोथ २ दंती ३ तमालपत्र ४दालचीनी ५इलायचीके दाने और ६वंशलोचन ये छः औषध सोलह २ मासे लेकर इन सबका चूर्ण करे । फिर लोहभस्म दो तोले, मिश्री चार तोले, शिलाजीत ८ तोले लेवे इन सब औषधोंको एक जगह कूट पीस एकजीव करके एक कर्ष अर्थात् चार शाणकी गोली बनावे । इस रसायनके विषयमें कर्षशब्द चार शाणका बोधक है । इस योगको 'चन्द्रप्रभा' इस प्रकार कहते हैं । यह संपूर्ण रोगोंको दूर करनेमें विख्यात है । इससे २० प्रकारके प्रमेहके रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात,

पथरी, मलवद्धता, पेटका फूलना, शूल, प्रमेहपिडिका, जिसकरके अंडकोश बढजावें वह रोग, पांडुरोग, कामला, हलीमक, अन्त्रवृद्धि, कमरकी पीडा, श्वास, खाँसी, विचर्चिका, कोढ, बवासीर, खुजली, प्लीहोदर, भगंदर, दाँतके रोग, नेत्रके रोग, स्त्रियोंके रजोधर्मसंबंधी रोग पुरुषोंके वीर्यके विकार, मंदाग्नि, अरुचि, वात, पित्त और कफ इनका प्रकोप ये संपूर्ण रोग दूर होवें तथा यह चन्द्रप्रभावटी बल देनेवाली, स्त्रीगमनकी इच्छा करनेवाली तथा रसायन है ।

कांकायनगुटिका गुल्मादिरोगोंपर ।

यवानीजीरकंधान्यंमरीचंगिरिकर्णिका ॥ अजमोदोपकुंचीच चतुःशाणापृथक्पृथक् ॥ ५१ ॥ हिंगुषट्शाणिकंकार्यंक्षारौ लवणपञ्चकम् ॥त्रिवृच्चाष्टमितैःशाणैःप्रत्येकंकल्पयेत्सुधीः५२ दन्तीशटीपौष्करंचविडंगंदाडिमंशिवा ॥ चित्रोम्लवेतसःशुंठी शाणैःषोडशभिःपृथक् ॥५३ ॥ बीजपूररसेनैषांगुटिकाःका- रयेद्बुधः ॥ घृतेनपयसामद्यैरम्लैरुष्णोदकेनवा ॥५४॥ पिबे- त्कांकायनप्रोक्तांगुटिकांगुल्मनाशिनीम् ॥ मद्येनवातिकंगु- ल्मंगोक्षीरेणचपैत्तिकम् ॥५५॥ मूत्रेणकफगुल्मंचदशमूलैस्त्रि- दोषजम् ॥ उष्ट्रीदुग्धेननारीणांरक्तगुल्मंनिवारयेत् ॥ ५६॥ हृद्रोगंग्रहणींशूलंक्रमीनर्शांसिनाशयेत् ॥

अर्थ–१ अजमायन २ जीरा ३ धनिया ४ कालीमिरच ५ विष्णुक्रांता (कोयल) ६ अज- मोदा और ७ कलौंजी ये सात औषध चार २ शाण लेवे । भुनी हींग छः शाण लेवे । १ जवा- खार २ सज्जीखार ३ सैंधानमक ४ संचरनमक ५ बिडनोन ६ समुद्रका नमक ७ बांगडका नमक ८ निसोथ ये आठ औषधि आठ २ शाण लेवे । तथा १ दन्ती २ कचूर ३ पुहकरमूल ४ बायविडंग ५ अनारकी छाल ६ जंगीहरड ७ चीतेकी छाल ८ अमलवेत ९ सोंठ ये औषध कूटी हुई सोलह २ शाण लेवे । फिर सब औषधोंको कूटपीस चूर्ण करे इस चूर्णको बिजोरेके रसमें खरलकर गोली बनाय लेवे । इसको (कांकायनगुटिका) कहते हैं । यह गुटिका घी, गौका दूध, खट्टा, मद्य अथवा गरम पानी इनमेंसे किसीएकके साथ अनुपान माफिक गोला दूर होनेके वास्ते देवे । यह गोली मद्यके साथ लेनेसे वायुगोला दूर होय । गौके दूधसे सेवन करे तो पित्त- का गोला नष्ट होवे । गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे कफगुल्म दूर होवे । दशमूलके काढेके साथ सेवन करे तो त्रिदोष अर्थात् सन्निपातका गोला दूर होवे । ऊँटनीके दूधके साथ खानेसे स्त्रियोंका

रक्तगुल्म दूर होवे। तथा यथायोग्य अनुपानके साथ सेवन करनेसे यह हृदयरोग, संग्रहणी, शूल, कृमिरोग और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करे।

योगराजगूगल वातादिरोगोंपर।

नागरंपिप्पलीचव्यंपिप्पलीमूलचित्रकौ॥ ५७ ॥भृष्टंहिंग्वजमोदंचसर्षपाजीरकद्वयम् ॥ रेणुकेंद्रयवापाठाविडंगंगजपिप्पली ॥ ५८ ॥ कटुकातिविषाभार्ङ्गीवचामूर्वेतिभागतः ॥ प्रत्येकंशाणिकानिस्युर्द्रव्याणीमानिविंशतिः ॥ ५९ ॥ द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्चत्रिफलाद्विगुणाभवेत् ॥ एभिश्चूर्णीकृतैःसर्वैःसमोदेयस्तुगुग्गुलुः॥६०॥ वंगंरौप्यंचनागंचलोहसारंतथाभ्रकम् ॥ मंडूरंरससिंदूरंप्रत्येकंपलसंमितम् ॥ ६१ ॥ गुडपाकसमंकृत्वाइमंदद्याद्यथोचितम् ॥एकपिंडंततःकृत्वाधारयेद्घृतभाजने ॥ ६२ ॥ गुटिकाःशाणमात्रास्तुकृत्वाग्राह्यायथोचिताः ॥ गुग्गुलुर्योगराजोयंत्रिदोषघ्नोरसायनम् ॥६३॥ मैथुनाहारपानानांत्यागोनैवात्रविद्यते ॥ सर्वान्वातामयान्कुष्ठानर्शांसिग्रहणीगदम् ॥ ६४ ॥ प्रमेहंवातरक्तंच नाभिशूलंभगंदरम् ॥ उदावर्तंक्षयंगुल्ममपस्मारमुरोग्रहम् ॥ ६५ ॥ मन्दाग्निंश्वासकासांश्चनाशयेदरुचिंतथा ॥ रेतोदोषहरःपुंसांरजोदोषहरः स्त्रियाम् ॥ ६६ ॥ पुंसामपत्यजनकोवंध्यानांगर्भदस्तथा ॥ रास्नादिक्काथसंयुक्तोविविधंहंतिमारुतम् ॥६७॥ काकोल्यादिशृतात्पित्तंकफमारग्वधादिना ॥दार्वीशृतेनमेहांश्चगोमूत्रेणैवपांडुताम् ॥ ६८ ॥ मेदोवृद्धिंचमधुनाकुष्ठंनिंबशृतेन वा ॥ छिन्नाक्काथेनवातास्रंशोथंशूलंकणाशृतात् ॥ ६९ ॥ पाटलाक्काथसहितोविषंमूषकजंजयेत् ॥ त्रिफलाक्काथसहितोनेत्रार्तिंहंतिदारुणाम् ॥ ७० ॥ पुनर्नवादेःक्काथेनहन्यात्सर्वोदराण्यपि ॥

अर्थ–१ सोंठ २ पीपल ३ चव्य ४ पीपरामूल ५ चीतेकी छाल ६ भुनीहुई हींग ७ अजमोद

८ सरसों ९ जीरा १० कालाजीरा ११ रेणुका १२ इन्द्रजौ १३ पाठ १४ वायविडंग १५ गजपी-पल १६ कुटकी १७ अतीस १८ भारंगी १९ वच और २० मूर्वा ये बीस औषध एक एक शाण लेवे । इन औषधोंके दुगुना त्रिफला लेवे । फिर इन सब औषधोंको कूटकर चूर्ण करके इस चूर्णके समानभाग शुद्ध गूगल लेकर खरलमें डालके खूब बारीक पीसके गुडके पाकसमान पतला करके उसमें पूर्वोक्त चूर्णको मिलाय देवे । पश्चात् बंग, रूपरस, नागेश्वर, लोह सार, अभ्रक, मण्डूर और रससिंदूर इन सातोंकी भस्म चार २ तोले लेकर उस गूगलमें मिलाय देवे । सबका एक गोला बनावे फिर इसमेंसे चार २ मासेकी गोलियाँ बनावे । इनको घीके चिकने वासनमें भरके धर रक्खे इसको योगराजगूगल कहते हैं । यह गूगल सेवन करनेसे त्रिदोषको दूर करे तथा रसायन है । इसके ऊपर मैथुन करना खाना पीना इनका निषेध नहीं है । विना पथ्यकेभी गुण करता है । इससे संपूर्ण वादीके रोग, कोढ, बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह, वातरक्त, नाभिका शूल, भगंदर, उदावर्त्त, क्षयरोग, गोलेका रोग, मृगीरोग, उरोग्रह, मंदाग्नि, खाँसी, श्वास और अरुचि ये सब रोग नष्ट होते हैं । यह योगराजगूगल पुरुषोंके धातुविकारको दूर करताहै और स्त्रियोंके रजोदर्शनसंबंधी रोगोंको दूर करता है । पुरुषोंके धातुकी वृद्धि करके पुत्र देता है वाँझ स्त्रियोंको गर्भ देता है । रास्नादि काढेके साथ सेवन करनेसे अनेक प्रकारके वायु दूर होंय । काकोल्यादि काढेसे सेवन करे तो पित्तरोग दूर होवे । आरग्वधादि काढेके साथ सेवन करे तो कफविकार दूर हो । दारुहल्दीके काढेसे सेवन करे तो प्रमेहको दूर करे । गोमूत्रसे सेवन करे तो पांडुरोगको नष्ट करे । जो प्राणी मेदाके बढनेसे अधिक मुटा हो गया हो वह सहतके साथ इसे सेवन करे । कुष्ठरोगमें नीमकी छालके काढेसे सेवन करे । वातरक्तरोगमें गिलोयके काढेसे खाय । शूल और सूजन इनमें पीपलके काढेसे सेवन करे । मूसेके विषयपर पाडलके काढेसे सेवन करे नेत्ररोगमें त्रिफलाके काढेसे सावन करे । और पुनर्नवादि काढेके साथ संपूर्ण उदरके रोगोंपर सेवन करना चाहिये । इस प्रकार इस योगराजगूगलके अनुपान हैं बाकी अपनी बुद्धिसे वैद्य कल्पना करे ।

कैशोरगूल वातरक्तादिकोंपर ।

त्रिफलायास्त्रयःप्रस्थाः प्रस्थैकाचामृताभवेत् ॥ ७१ ॥ संकुट्यलोहपात्रेषुसार्धद्रोणांबुनापचेत् ॥ जलमर्धशृतंज्ञात्वागृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ ७२ ॥ क्वाथेक्षिपेत्तःशुद्धंचगुग्गुलुंप्रस्थसंमितम् ॥ पुनः पचेदयःपात्रेदर्व्यासंघट्टयेन्मुहुः ॥७३॥ सांद्रीभूतंचतंज्ञात्वागुडपाकसमाकृतिम् ॥ चूर्णीकृत्यततस्तत्रद्रव्याणीमानिनिक्षिपेत्॥७४॥त्रिफलार्द्धपलाज्ञेयागुडूचीपलिकाम-

ता ॥ षडसंन्त्र्यूषणंप्रोक्तंविडंगानांपलार्धकम् ॥ ७५ ॥ दन्ती कर्षमिताकार्यात्रिवृत्कर्षमितास्मृता ॥ ततःपिंडीकृतंसर्वंघृत-पात्रेविनिक्षिपेत् ॥७६॥ गुटिकाशाणिकाकार्यायुंज्याद्दोषाद्य-पेक्षया ॥अनुपानेभिषग्दद्यात्कोष्णनीरंपयोथवा॥७७॥मंजि-ष्ठादिशृतंवापियुक्तियुक्तमतःपरम् ॥ जयेत्सर्वाणिकुष्ठानिवात रक्तंत्रिदोषजम् ॥७८॥ सर्वंव्रणांश्चगुल्मांश्चप्रमेहापिडिकास्त-था ॥ प्रमेहोदरमंदाग्निकासश्वयथुपांडुजान्॥७९॥हन्तिसर्वा-मयान्नित्यमुपयुक्तोरसायनम् ॥ कैशोरकाभिधानोयंगुग्गुलुः कांतिकारकः ॥ ८० ॥ वासादिनानेत्रगदान्गुल्मादीन्वरुणा-दिना ॥ क्राथेनखदिरस्यापि व्रणकुष्ठानिनाशयेत् ॥ ८१ ॥ अम्लंतीक्ष्णमजीर्णंचव्यवायंश्रममातपम् ॥ मद्यंरोपंत्यजेत्स-म्यग्गुणार्थीपुरसेवकः ॥ ८२ ॥

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ गिलोय ये चारों औषध एक २ प्रस्थ लेवे । इनको कु-टकर लोहेकी कढाईमें डेढ द्रोण पानी डालके उसमें इन औषधोंको डालके आधा पानी रहनेपर्यं औटावे फिर इसको दूसरे पात्रमें कपडेमें छानके इसमें शुद्ध किया हुआ गूगल १ प्रस्थ प्रमाण ले-कर बारीक कूटके मिलायदेवे फिर इस गूगलयुक्त काढेको अग्निपर लोहेकी कढाईमें चढायके लो-हेकी कलछीसे वारंवार चलता जावे इसप्रकार गुडके पाकसमान होनेपर्यंत गाढा करे । फिर इस आगे लिखी हुई औषधोंका चूर्ण करके डाले । उन औषधोंको कहते हैं-१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४गिलोय ये चार औषध आधे २पल लेय. १ सोंठ२कालीमिरच और ३ पीपल ये ती-औषध दो दो अक्ष लेवे, वायविडंग अध पल लेय, दंती एककर्ष, निसोथ एक कर्ष, इन सव औ-षधोंका चूर्ण कर उस गूगलके पाकमें मिलायके कूट डाले। जब एक जीव होजावें तब एक शाणकी गोली बनाय लेवे। इनको घीके चिकने वासनमें रखदेवे। इसको कैशोरगूगल कहते हैं गूगलको गरम जलके साथ अथवा दूधके साथ अथवा मंजिष्ठादि काढेसे सेवन करे। यह ग रोगीकी शक्तिका तथा रोगका तारतम्य देखके अनुपानके साथ देवे तो संपूर्ण कुष्ठ तथा त्रिदे-उत्पन्न हुए वातरक्त तथा संपूर्ण व्रणगोला, प्रमेह, उदर, मंदाग्नि, खाँसी, श्वास और पांडु ये दूर होवें। यह कैशोरगूगल कांतिको देता है वासकादि काढेके साथ सेवन करनेसे नेत्रके दूरहों तथा वरुणादि काढेके साथ सेवन करनेसे गुल्मादिक रोग दूर हों। खदिरादि काढे-सेवन करनेसे व्रण और कुष्ठरोग दूर होवें ।

अब गूगलसेवनकर्त्ता प्राणीको इसका पथ्य कहते हैं । जैसे कि खटाई, तीक्ष्ण पदार्थ, अजीर्ण, स्त्रीसे मैथुन करना, परिश्रम करना, धूपमें रहना, मद्य पीना तथा क्रोध करना ये सब वस्तु गूगलसेवनकर्त्ता जिस प्राणीको गुणकी इच्छा हो उसको त्याज्य हैं । जो अपथ्यको त्याग पथ्यके साथ गूगल सेवन करता है उसकोहा गुण होता है अन्यथा गुणके बदले अवगुण होता है।

इति कैशोरगुग्गुलुः ॥

त्रिफलागूगल भगंदररोगादिकोंपर ।

त्रिफलंत्रिफलाचूर्णंकृष्णाचूर्णपलोन्मितम् ॥गुग्गुलुःपंचपलिकःक्षोदयेत्सर्वमेकतः ॥ ८३ ॥ ततस्तुगुटिकांकृत्वाप्रयुंज्याद्वह्न्यपेक्षया॥ भगंदरंगुल्मशोथावर्शांसिचविनाशयेत् ॥ ८४॥

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आंवला और ४ पीपल ये चार औषध एक २ पल लेकर चूर्ण करे फिर शुद्ध किया हुआ गूगल ५ पल ले इन सबको बारीक कूट पीसके गोली बनावे। रोगीके जठराग्निका बलाबल विचारके इसे देवे तो भगंदररोग, गोलेका रोग, सूजन और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करे ।

गोक्षुरादिगूगल प्रमेहादिरोगोंपर ।

अष्टाविंशतिसंख्यानिपलन्यानीयगोक्षुरात् ॥ विपचेत्षड्गुणेनीरेक्वाथोग्राह्योऽर्धशेषितः ॥ ८५ ॥ ततःपुनःपचेत्तत्रपुरं सप्तपलंक्षिपेत्॥गुडपाकसमाकारंज्ञात्वातत्रविनिक्षिपेत्॥८६॥ त्रिकटुत्रिफलामुस्तंचूर्णितंपलसप्तकम् ॥ ततःपिंडीकृतंचास्य गुटिकामुपयोजयेत्॥ ८७ ॥ हन्यात्प्रमेहंकृच्छ्रंचप्रदरंमूत्रघातकम् ॥ वातास्रंवातरोगांश्चशुक्रदोषंतथाश्मरीम् ॥ ८८ ॥

अर्थ-अट्ठाईसपल (११२ तोले) गोखरू लेकर जवकूट करके छः गुने पानीमें चढाके जबतक आधा न जले तबतक औटावे । जब आधा जल रहे तब शुद्धकिया गूगल पल प्रमाण लेकर उत्तम रीतिसे कूट पीसके उस काढेमें मिलाय देवे । फिर उस काढेका के समान पाक करे । जब गाढा होजावे तब आगे लिखीहुई औषधोंको मिलावे । जैसे १ २ कालीमिरच ३ पीपल ४ हरड ५ बहेडा ६ आँवला ७ नागरमोथा ये सात औषध एक पल प्रमाण लेवे । सबका चूर्ण करके उस पाककी चासनीमें मिलायके एक गोला बनाय ले। इसकी गोली बनाय ले । इसके सेवन करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, स्त्रियोंका प्रदररोग, मूत्रा- वातरक्त, बादीके रोग, धातुके विकार अर्थात् वीर्यसंबंधीरोग और पथरी इन सब को दूरकरे ।

चंद्रकलागुटिका प्रमेहपर।

एलासकर्पूरसितासधात्रीजातीफलंगोक्षुरशाल्मलीत्वक्॥ सूतं-द्रवंगायसभस्मसर्वमेतत्समानंपरिभावयेच्च ॥ ८९ ॥ गुडूचि-काशाल्मलिकाकषायैर्निष्कार्धमात्रामधुनाततश्च॥ बद्धागुटी चंद्रकलेतिनाम्नामेहेषुसर्वेषुचयोजनीया ॥ ९० ॥

अर्थ-१ इलायचीके दाने २ कपूरशुद्ध ३ मिश्री आंवले ४ जायफल ५ गोखरू ६ कांटेदार सेमरकी छाल ७ रससिंदूर ८ वंगभस्म और ९ लोहभस्म ये नौ औषध समान भाग लेकर इनको गिलोय और सेमरके काढेकी भावना देकर दो दो मासेकी गोली बनावे। इनको सहतमें मिलायके खावे तो सर्व प्रकारके प्रमेह नष्ट होवें।

त्रिफलादिमोदक कुष्ठादिकोंपर।

त्रिफलात्रिपलाकार्याभल्लातानांचतुःपलम् ॥ बाकुचीपंचपलि-काविडंगानांचतुःपलम् ॥ ९१ ॥ हतलोहंत्रिवृच्चैवगुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ एकैकंपलमात्रंस्यात्पलार्धंपौष्करंभवेत् ॥ ९२ ॥ चित्रकस्यपलार्धंस्यात्त्रिशाणंमरिचंभवेत्॥नागरंपिप्पलीमुस्ता त्वगेलापत्रकुंकुमम् ॥ ९३ ॥ शाणोन्मितंस्यादेकैकंचूर्णयेत्स-र्वमेकतः ॥ ततस्तत्प्रक्षिपेच्चूर्णपक्वखंडेचतत्समे ॥९४॥ मो-दकान्पलिकान्कृत्वाप्रयुंजीतयथोचितम्॥ हन्युःसर्वाणिकुष्ठा-नित्रिदोषप्रभवामयान् ॥९५॥ भगंदरप्लीहगुल्माञ्जिह्वातालुग-लामयान् ॥ शिरोक्षिभ्रूगतान्रोगान्मन्यापृष्ठगतानपि ॥ ९६ ॥ प्राग्भोजनस्यदेयंस्यादधःकायस्थितेगदे ॥ भेषजं भक्तमध्ये चरोगेजठरसंस्थिते॥९७॥भोजनस्योपरिग्राह्यमूर्ध्वंजत्रुगदेषुच॥

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आमला ये तीन औषध आठपल लेय। भिलाये चारपल, बावची पांचपल, वायविडंग चारपल प्रमाण और १ लोहभस्म २ निसोथ ३ गूगल ४ शिलाजीत ये चार औषध एक २ पल प्रमाण लेनी चाहिये। गांठदार पुहकरमूल आधापल, चीतेकी छाल आधापल, कालीमिरच दो शाण, एवं १ सोंठ २ पीपल ३ नागरमोथा ४ दालचीनी ५ इला-यची ६ तमालपत्र और ७ नागकेशर ये सात औषधि एक २ शाण लेवे। सबको कूट पीस चूर्ण करे इस चूर्णके समान मिश्री लेके पाककरे। उसमें इस चूर्णको डालके सबको एकजीव

करके एक एक पलके मोदक बनावे। इस मोदकके सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठरोग दूर हों, त्रिदोषसे उत्पन्न भगंदर रोग, नेत्रोंके रोग, प्लीहरोग, गोलेका रोग, जीभ तालु गला शिर के भौंह इनके रोग, गरदन पीठ इनके रोग इत्यादिक सब दूर होवें। कमरसे लेकर नीचे पैरोंतक रोग होवे तो प्रातःकाल औषध सेवन करे। यदि पेटके रोग होवें तो भोजनके समय ग्रास (गस्सा) के साथ सेवन करे। छातीसे लेकर माथे पर्यंतके रोगोंमें भोजन करनेके पश्चात् इस त्रिफलादि मोदकको सेवन करना चाहिये।

कांचनारगूगल गंडमालादिकोंपर।

कांचनारत्वचोग्राह्यंपलानांदशकंबुधैः ॥ ९८ ॥ त्रिफलाषट्पलाकार्यात्रिकटुस्यात्पलत्रयम् ॥ पलैकंवरुणंकुर्यादेलात्वक्पत्रकंतथा॥९९॥ एकैकंकर्षमात्रंस्यात्सर्वाण्येकत्रचूर्णयेत्॥ यावच्चूर्णमिदंसर्वंतावन्मात्रस्तुगुग्गुलुः॥१००॥संकुट्यसर्वमेकत्रपिंडंकृत्वाचधारयेत्॥गुटिकाःशाणिकाःकार्याःप्रातर्ग्राह्या यथोचिताः ॥ १०१ ॥ गंडमालांजयत्युग्रामपचीमर्बुदानि च ॥ ग्रंथीन्व्रणांश्चगुल्मांश्चकुष्ठानिचभगंदरम् ॥ १०२ ॥ प्रदेयश्चानुपानार्थंक्वाथोमुंडानिकाभवः ॥ क्वाथःखदिरसारस्य पथ्याक्वाथोष्णकंजलम् ॥ १०३ ॥

अर्थ—कचनार वृक्षकी छाल १० पल लेवे तथा १ हरड २ बहेडा ३ आंवला ये तीन औषध दो दो पल प्रमाण अर्थात् सब छः पल ले। और १ सोंठ २ मिरच ३ पीपल ये तीनों औषध एक २ पल प्रमाण लेनी। तथा बरना एकपल १ इलायची २ दालचीनी ३ तमालपत्र ये तीन औषध एक २ कर्ष लेनी चाहिये। फिर सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे। इस चूर्णके समान भाग शुद्ध किएहुए गूगलको कूट पीसके उस चूर्णमें मिलाय देवे। फिर कूटके एक गोला करके एक २ शाणकी गोलियाँ बनावे। प्रातःकाल मुंडी[1] अथवा खैरसार अथवा हरडके काढे या गरम जलके साथ एक एक गोली सेवन करे तो घोर दुर्धर गंडमालाका रोग तथा गंडमालाका भेद, अपची रोग, अर्बुद, गाँठ, व्रण, गोला, कोढ, भगंदर ये सब रोग दूर होवें।

माषादिमोदक धातुपुष्टिपर।

निस्तुषंमाषचूर्णंस्यात्तथागोधूमसंभवम् ॥ निस्तुषंयवचूर्णंच

[1] इसको गोरखमुंडी कहते हैं।

शालितंडुलजंतथा ॥ १०४ ॥ सूक्ष्मंचपिप्पलीचूर्णंपलिकान्युपकल्पयेत् ॥ एतदेकीकृतंसर्वंभर्जयेद्गोघृतेनच ॥ १०५ ॥ अर्धमात्रेणसर्वेभ्यस्ततःखंडंसमंक्षिपेत् ॥ जलंचद्विगुणंदत्त्वापाचयेच्चशनैःशनैः ॥ १०६ ॥ ततःपक्वंसमुद्धृत्यवृत्तान्कुर्वीतमोदकान् ॥ भुक्त्वासायंपलैकंचपिबेत्क्षीरंचतुर्गुणम् ॥ १०७ ॥ वर्जनीयौविशेषेणक्षाराम्लौद्वौरसावपि ॥ कृत्वैवंरमयेन्नारीर्बह्वीर्नक्षीयतेनरः ॥ १०८ ॥

इति श्रीदामोदरसूनु शार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने वटककल्पनानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ-उडदकी दालका चून, गेहूँका चून, तुषरहित जौका चून, चावलोंका चून और पीपलका चूर्ण ये सब औषधि एक एक पल लेवे। सबको एकत्र करके इन सबका आधा शुद्ध गौका घी कडाहीमें डालके उन सबको मन्द २ अग्निसे भूने। फिर सबकी बराबर खाँडकी चासनी दुगुना जल डालके करे। उसमें पूर्वोक्त भुने हुए चूनको मिलायके एक एक पल अर्थात् चार २ या पांच ५ तोलेके लड्डू बनाय लेवे। इसको रात्रिके समय खायकर ऊपरसे पावभर दूध पीवे तथा खटाई और खारी पदार्थ न खाय इस प्रकार करनेसे मनुष्य बहुत स्त्रियोंसे भोग करनेपरभी क्षीणता नहीं होता।

इति शार्ङ्गधरभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ८.

अवलेहोंकी योजना।

क्वाथादीनांपुनःपाकाद्घनत्वंसारसक्रिया ॥ सोवलेहश्चलेहःस्यात्तन्मात्रास्यात्पलोन्मिता ॥ १ ॥ सिताचतुर्गुणाकार्याचूर्णाच्चद्विगुणोगुडः ॥ द्रवंचतुर्गुणंदद्यादितिसर्वत्रनिश्चयः ॥ २ ॥ सुपक्वेतंतुमत्त्वंस्यादवलेहोप्सुमज्जति ॥ खरत्वंपीडितमुद्रागंधवर्णरसोद्भवः ॥ ३ ॥ दुग्धमिक्षुरसंयूषंपंचमूलकषायजम् ॥ वासाक्वाथंयथायोग्यमनुपानंप्रशस्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–औषधोंके कषाय और फांट आदिकोंको पुनः औटायके गाढा करनेसे जो होता है उसको अवलेह और लेह कहते हैं । उस अवलेहकी मात्रा १ पल अर्थात् ४ चार तो भरकी है उसमें खाँड डालनी होवे तो जितना चूर्ण होवे उससे चौगुनी डालनी और गुड़ डालना होवे तो जितना चूर्ण होवे उससे दुगुना डालना दूध, मूत्र, पानी आदिक पतले पदार्थ डालने हों तो जितना चूर्ण हो उससे चौगुने डालना । ऐसा सर्व अवलेह प्रकरणमें निश्चय सो जानना । वह अवलेह अच्छा पकाया नहीं इसकी परीक्षा कहते हैं । उस अवलेहका अच्छी रीतिसे पाक होजानेसे ताँत छूटते हैं और पानीमें वह अवलेह डालनेसे डूब जाता है और अंगु‌लियों करके दबानेसे करडा और चिकना होता है, तथा उसमें दूसरेही किसी एक प्रकारका अपूर्व गंध, वर्ण और स्वाद उत्पन्न होते हैं इन लक्षणोंसे अवलेह परिपक्व हुआ ऐसा जानना दूध, ईखका रस, पंचमूलके काढेका यूष और अडूसेका काढा इस अवलेहके अनुपान हैं इन मेंसे रोगकी योग्यता विचारके जो अनुपान देनेका होवे सो देना चाहिये ।

कंटकारीअवलेह हिचकीश्वासकासोंके ऊपर ।

कंटकारीतुलांनीरद्रोणेपक्त्वाकषायकम् ॥ पादशेषंगृहीत्वाच तस्मिंश्चूर्णानिदापयेत् ॥ ५॥ पृथक्पलानिचैतानिगुडूचीच व्यचित्रकाः ॥ मुस्तंकर्कटशृंगीचत्र्यूषणंधन्वयासकः ॥ ६॥ भार्ङ्गीरास्नाशटीचैवशर्करापलविंशतिः ॥ प्रत्येकंचपलान्यष्टौ प्रदद्याद्घृततैलयोः ॥७॥ पक्त्वालेहत्वमानीयशीतेमधुपला ष्टकम् ॥ चतुःपलंतुगाक्षीर्याः पिप्पलीनांचतुःपलम् ॥ ८॥ क्षिप्त्वानिदध्यात्सुदृढेमृन्मयेभाजनेशुभे ॥ लेहोऽयंहंतिहिक्कां तिंश्वासकासानशेषतः ॥ ९ ॥

अर्थ–भटकटैया ४०० तोले प्रमाण लेके थोडी २ कूटकर उसमें एक द्रोण (१०२४ तोले) पानी डालके चौथाई पानी शेष रहे तबतक कषाय करके उस काढेको छानना । और उसमें इन औषधोंका चूर्ण मिलाना गिलोय, चव्य, चीता, नागरमोथा, काकडासिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा, भारंगी, रास्ना, कचूर ये बारह औषध चार २ तोले लेके इनका चूर्ण कर उस काढेमें डाले खांड ८० तोले घृत और तेल ३२ तोले डालना । ये सब औषध डालके औटायके अवलेह करके ठंढा करना फिर उसमे बत्तीस तोले सहत और सोलह २ तोले वंशलोचन, तथा पीप‌लियोंका चूर्ण उस अवलेहमें मिलायके दृढ मिट्टीके पात्रमें डालके अच्छी रीतिसे

यह अवलेह नित्य सेवन करनेसे हिचकीकी पीडा, श्वास और कास इन सब रोगोंको दूर कर देता है।

क्षयादिकोंपर च्यवनप्राशावलेह।

पाटलारणिकाश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः ॥ पर्ण्यौबृहत्यौपिप्पल्यःशृंगीद्राक्षामृताभयाः॥ १० ॥ बलाभूम्यामलीवासाऋद्धिर्जीवंतिकाशटी ॥ जीवकर्षभकौमुस्तंपौष्करंकाकनासिका ॥ ११ ॥ मुद्गपर्णीमाषपर्णीविदारीचपुनर्नवा ॥ काकोल्यौकमलंमेदेसूक्ष्मैलागरचंदनम् ॥ १२ ॥ एकैकंपलसंमानंस्थूलचूर्णितमौषधम् ॥ एकीकृत्यबृहत्पात्रेपंचामलशतानिच ॥ १३ ॥ पचेद्द्रोणजलेक्षिप्त्वाग्राह्यमष्टांशशेषितम् ॥ ततस्तुतान्यामलानिनिष्कुलीकृत्यत्रासरसा ॥१४॥ दृढहस्तेनसंमर्द्य क्षिप्त्वाततत्रततोघृतम् ॥ पलसप्तमितंतानिकिंचिद्भ्रष्टाल्पवह्निना ॥ १५ ॥ ततस्तत्र क्षिपेत्काथंखंडंचार्धतुलोन्मितम् ॥ लेहवत्साधयित्वाचचूर्णानीमानिदापयेत् ॥ १६ ॥ पिप्पलीद्विपलाज्ञेयातुगाक्षीरीचतुःपला ॥ प्रत्येकंचत्रिशाणाःस्युस्त्वगेलापत्रकेसराः ॥ १७ ॥ ततस्त्वेकीकृतेतस्मिन्क्षिपेत्क्षौद्रंचषट्पलम् ॥ इत्येवच्यवनप्रोक्तंच्यवनप्राशसंज्ञकम् ॥ १८ ॥ लेहंवह्निबलंदृष्ट्वाखादेत्क्षीणोरसायनम् ॥ बालवृद्धक्षतक्षीणा नारीक्षीणाश्चशोषिणः ॥ १९ ॥ हृद्रोगिणःस्वरक्षीणायेनरास्तेषुयुज्यते ॥ कासंश्वासंपिपासांचवातास्रमुरसोग्रहम् ॥ २० ॥ वातंपित्तंशुक्रदोषंमूत्रदोषंचनाशयेत् ॥ मेधांस्मृतिंस्त्रीषुहर्षकान्तिवर्णप्रसन्नताम् ॥ २१ ॥ अस्यप्रयोगादाप्नोतिनरोऽजीर्णविवर्जितः ॥

अर्थ-सिरस, अरनी, काश्मर्य, बेलवृक्षकी जड, स्योनापाढा, गोखरू, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, दोनों कटेली, तीनों पीपल, काकडासिंगी, दाख, गिलोय, हरड, खरेंटी, भूमिआंवला, अडूसा ऋद्धि, जीवंतिका, कचूर, जीवक, ऋषभक, नागरमोथा, पोहकरमूल, कौआठोडी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, विदारीकंद, साँठी काकोली, कमल, मेदा, महामेदा, छोटी इलायची अगर, चंदन ये सब औषध चार २ तोले लेकर थोडा २ कूट इकट्ठा करे। फिर बडे २

आँवले ५०० लेकर बडे मटकेमें डाल तिसमें १०२४ सौ तोले पानी डालके पकावे । जब उसका आठवाँ हिस्सा शेष रहे तब उन औषधोंमेंसे ५०० सौ आँवलोंको निकाल लेवे । पीछे, उन आँवलोंको छीलकर कलई किये हुए पात्रके ऊपर वस्त्रको दृढ बांधिके उसके ऊपर धरके करडे हाथसे अत्यंत मर्दन करे । तिस पीछे नीचे उतरेहुए आवलोंको मगजमें २४ तोलेभर घृत डालके मंद अग्निके ऊपर थोडासा भूनकर पीछे तिसमें पूर्व कियाहुआ क्वाथ और अर्धतुला परिमाण खाँड डालना । जबतक वह कठिन होवे तबतक उसे पकाना । पीछे इसको लेहकी रीतिसे सिद्ध करे । पीछे ये औषध डाले, पीपल ८ तोलाभार वंशलोचन ४ तोलाभार और दालचीनी इलायची और तेजपात ये औषध ३ शाण परिमाण । तब सबको इकट्ठा करके उसमें २४ तोले सहत मिलावे । यह च्यवनऋषिका कहा हुआ च्यवनप्राश संज्ञक अवलेह है क्षीण हुए पुरुषको रसायनरूप लेहको अग्निका बलाबल देखके खाना चाहिये। यह च्यवनप्राशावलेह बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण, नपुंसक, शोष रोगी, हृद्रोगी, स्वरक्षीण पुरुषोंमें युक्त है । और यह, श्वास, कास, पिपासा, वातरक्त, उरोग्रह, वात, पित्त, वीर्यके दोष, मूत्रके दोष, इतने रोगोंका नाश करता है इस अवलेहके प्रयोगसे पुरुष बुद्धि, स्मरणशक्ति स्त्रीके साथ संग करनेकी इच्छा, शरीरकी कांति और वर्ण, अंतःकरणका संतोष प्राप्त होता है और अजीर्ण करके रहित होता है ।

कूष्मांडकावलेह रक्तपित्तादिकोंपर ।

निष्कुलीकृतकूष्मांडखंडान्पलशतंपचेत् ॥ २२ ॥ निक्षिप्य द्वितुलंनीरमर्धशिष्टंचगृह्यते ॥ तानिकूष्मांडखंडानिपीडयेद्दृढवाससा ॥ २३ ॥ आतपेशोषयेत्किंचिच्छूलाग्रैर्बहुशोव्यधेत क्षिप्त्वाताम्रकटाहेचदद्यादष्टपलंघृतम् ॥ २४ ॥ तेनार्कैर्विद्र्जयित्वापूर्वोक्तंचजलंक्षिपेत्।।खंडंपलशतंदत्वासर्वमेकत्रपाचयेत् ॥ २५ ॥ सुपक्केपिप्पलीशुंठीजीराणांद्विपलंपृथक् ॥पृथक्पलार्धंधान्याकंपत्रैलामरिचंत्वचम् ॥२६॥चूर्णीकृत्याक्षिपेत्त्रघृतार्धंक्षौद्रमावपेत् ॥ खादेदग्निबलंदृष्ट्वारक्तपित्तीक्षयज्वरी ॥ २७ ॥ शोषतृष्णातमश्छर्दिकासश्वासक्षतातुरः ॥ कूष्मांडकावलेहोऽयंबालवृद्धेषुयुज्यते ॥ २८ ॥ उरःसंधानकृद्दृष्यो बृंहणोबलकृन्मतः ॥

अर्थ—उत्तम पकेहुये पेठेके ऊपरका छिल्का कतरके तथा भीतरके बीजोंको निकाल

ओटे २ टुकडे कर १०० पल लेवे । उनमें दो तुला जल डालके औटावे जब आधा अर्थात् एक तुला जल रहे तब उतारले । उस जलको छानके एक जगह रख देवे । फिर उन पेठेके टुकडोंको कपडेमें बांधके निचोड लेवे । पश्चात् उनको कुछ गरम बाफ देकर सूएसे अत्यंत छेदे । तांबेके पात्रमें ८ पल घी डाल उन टुकडोंको धीमी आँचपर भूने । पश्चात् पूर्वोक्त पेठेके निचुडेहुए पानीमें इस भुने पेठेको डाले तथा १०० पल मिश्री मिलायके पाक करे । जब पाक सिद्ध होनेपर आवे तब आगे लिखी औषधें डाले । जैसे—१ पीपल २ सोंठ ३ जीरा ये तीन औषध दो दो पल, तथा १ धनिया २ पत्रज ३ इलायचीके दाने ४ काली मिरच ५ दालचीनी ये पांच औषध आधे २ पल लेवे । फिर सबका चूर्ण करके पाकमें मिलाय देवे और सहत ४ पल मिलावे । इसको कूष्मांडावलेह कहते हैं । यह अवलेह रोगीको अपना बलाबल विचारके सेवन करना चाहिये इससे रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, शोष, तृषा, नेत्रोंके आगे अंधेरीका आना, वमन, खाँसी, श्वास और उरःक्षत ये रोग दूर होवें । यह अवलेह बालक और बुड्ढोंके उपयोगी है । छातीमें अन्नका रस आता है उसको साधक होता है । स्त्रीप्रसंगकी इच्छा प्रगट करे धातुवृद्धि करे तथा बल बढावे ।

कूष्मांडखंडलेह बवासीरपर ।

युक्त्याकूष्मांडखंडंचसूरणंविपचेत्सुधीः ॥ २९ ॥
अर्शसांमूढवातानांमंदाग्नीनांचयुज्यते ॥

अर्थ—पेठेके बारीक २ टुकडे तथा सूरण (जमींकंद) का सीरा इन दोनोंको मिलायके घीमें भून दुगुनी मिश्री मिलायके पाक करे अर्थात् अवलेह बनावे । इससे बवासीर, मूढबादी (अधोवायुका नीचे न उतरना) ये दूर हों तथा जठराग्नि प्रदीप्त हो ।

अगस्त्यहरीतकी क्षयादिकोंपर ।

हरीतकीशतंभद्रंयवानामाढकंतथा ॥ ३० ॥ पलानिदशमूलस्यविंशतिश्चनियोजयेत् ॥ चित्रकःपिप्पलीमूलमपामार्गःशटीतथा ॥ ३१ ॥ कपिकच्छूःशंखपुष्पीभार्ङ्गीचगजपिप्पली ॥ बलापुष्करमूलंचपृथग्द्विपलमात्रया ॥ ३२ ॥ पचेत्पंचाढकेनीरेयवैःस्विन्नैःशृतंनयेत् ॥ तच्चाभयाशतंदद्यात्क्वाथेतस्मिन्विचक्षणः ॥ ३३ ॥ सर्पिस्तैलाष्टपलकंक्षिपेद्गुडतुलांतथा ॥ पक्त्वालेहत्वमानीयसिद्धशीतेपृथक्पृथक् ॥ ३४ ॥ क्षौद्रंच पिप्पलीचूर्णंदद्यात्कुडवमात्रया ॥ हरीतकीद्वयंखादेत्तेनलेहे-

नानित्यशः ॥ ३५ ॥ क्षयंकासंज्वरंश्वासंहिक्काशोंऽरुचिपीनसान् ॥ ग्रहणींनाशयत्येषवलीपलितनाशनः ॥ ३६ ॥ बलवर्णकरःपुंसामवलेहोरसायनम् ॥ विहितोऽगस्त्यमुनिनासर्वरोगप्रणाशनः ॥ ३७ ॥

अर्थ–१ आढक जव ले उनको यवकूट करके चौगुना जल मिलायके औटावे। जब चौथाई जल रहे तब उतार छानके धर रक्खे और उन औटेहुए जवोंको फेंक देवे। फिर दशमूलकी औषध बीसपल लेय, १ चित्रक २ पीपरामूल ३ ओंगा ४ कचूर ५ कौंचके बीज ६ शंखपुष्पी ७ भारंगी ८ गजपीपल ९ खरेटीकी जड और १० गांठदार पुष्करमूल ये दश औषध दो दो पल लेय। इस प्रकार बीसों औषधोंको एकत्र करके जवकूटकर लेवे। इनमें ५ आढ़क जल मिलायके औटावे। जब जल चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको पूर्वोक्त जौके काढेमें मिलाय देवे पीछे इसमें बडी २ हरड १०० नग डाले। घी और तिलोंका तेल आठ २ पल लेवे, गुड १ तुलाभर ले, सबको काढेमें मिलाय पाक करे। जब गाढा होय तब उतार ले। फिर शीतल होनेपर पीपलका चूर्ण और सहत ये दोनों कुडव २ अर्थात् पाव पाव भर लेकर उस पाकमें मिलाय देवे इस प्रकार अगस्त्यऋषिके कहेहुए अवलेहको अगस्त्यहरीतकी कहतेहैं। इसमेंसे दो हरड़ अवलेहके साथ खाय तो क्षय, खांसी, ज्वर, श्वास, हिचकी, मूलव्याधि (बवासीर) अरुचि, पीनसरोग जो नाकमें होताहै वह तथा संग्रहणी ये रोग दूर होंय। तथा देहमें गुजलट पडे वे दूर हों सफेद बाल काले होंय बल और कांति आवे यह अवलेह रसायन है इससे संपूर्ण रोग दूर होंय।

कुटजावलेह अर्शादिकपर।

कुटजत्वक्तुलांद्रोणेजलस्यविपचेत्सुधीः ॥ कषायंपादशेषंच गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ ३८ ॥ त्रिंशत्पलंगुडस्यात्रदत्त्वाचविपचेत्पुनः ॥ सांद्रत्वमागतंज्ञात्वाचूर्णानीमानिदापयेत् ॥ ३९ ॥ रसांजनंमोचरसंत्रिकटुत्रिफलांतथा ॥ लज्जालुंचित्रकंपाठांबिल्वंभिद्रयवंवचाम् ॥ ४० ॥ भल्लातकंप्रतिविषांविडंगानिचवालकम् ॥ प्रत्येकंपलसंमानंघृतस्यकुडवंतथा ॥ ४१ ॥ सिद्धशीतेततोदद्यान्मधुनःकुडवंतथा ॥ जयेदेषोवलेहस्तुसर्वाण्यर्शांसिवेगतः ॥ ४२ ॥ दुर्नामप्रभवान्रोगानतीसारमरोचकम् ॥ ग्रहणींपांडुरोगंचरक्तपित्तंचकामलाम् ॥ ४३ ॥ अम्लपित्तं-

थाशोषंकार्श्यंचैवप्रवाहिकाम् ॥ अनुपाने प्रयोक्तव्यमाजंतक्रंपयोदधि ॥ ४४ ॥ घृतंजलंवाजीर्णेचपथ्यभोजीभवेन्नरः ॥

अर्थ–कूडाकी छाल एक तुला (४०० तोले) लेवे उसको जवकूटकर एक द्रोण जलमें डालके काढा करे। जब जल चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे। इसमें गुड ३० पल डालके फिर औटावे। जब गाढा होनेपर आवे तब आगे लिखी औषध मिलावे। जैसे–१ रसोत २ मोचरस ३ सोंठ ४ मिरच ५ पीपल ६ हरड ७ बहेडा ८ आँवला ९ लजालु १० चीतेकी छाल ११ पाठ १२ कच्चा बेलफल १३ इन्द्रजौ १४ वच १५ मिलाए १६ अतीस १७ वायविडंग १८ नेत्रवाला। ये अठारह औषध एक २ पल लेवे। सबका चूर्ण करके पाकमें मिलावे। घी एक कुडव डाले। जब पाक शीतल होजावे तब सहत एक कुडव मिलावे पश्चात् इस अवलेहको बकरीके दूध छाँछ दही अथवा घी मिलायके लेवे तथा औषध पचनेपर उत्तम भोजन करे तो सम्पूर्ण बवासीरके तथा बवासीरके कारणसे होनेवाले दूसरे भगन्दरादि रोग, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, पांडुरोग, रक्तपित्त, नेत्रोंमें कामला रोग होता है वह, अम्लपित्त, सूजन, कृशता और प्रवाहिका रोग, अतिसारका भेद ये सब रोग दूर होवें।

दूसरा कुटजावलेह अतिसार आदिरोगोंपर।

कुटजत्वक्तुलामार्द्रांद्रोणनीरेविपाचयेत् ॥ ४५ ॥ पादशेषं शृतंनीत्वाचूर्णान्येतानिदापयेत् ॥ लज्जालुर्धातकीबिल्वंपाठा मोचरसस्तथा ॥ ४६ ॥ मुस्तंप्रतिविषाचैवप्रत्येकंस्यात्पलं पलम् ॥ ततस्तुविपचेद्भूयोयावद्दर्वीप्रलेपनम् ॥४७॥ जलेन च्छागदुग्धेनपीतोमंडेनवाजयेत् ॥ सर्वातिसारान्घोरांस्तुनानावर्णान्सवेदनान् ॥ असृग्दरंसमस्तंचसर्वार्शांसिप्रवाहिकाम् ॥४८॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने अवलेहकल्पनानामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अर्थ–कूडाकी गीली छाल १ तुला प्रमाण लेय उसको जवकूटकरके एक द्रोण जल मिलाय काढा करे। जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके उसके जलको कपडेमें छान लेवे। इसमें डालनेकी औषध इस प्रकार हैं-१ लजालु २ धायके फूल ३ कोमल बेलगिरी ४ पाठ ५ मोचरस ६ नागरमोथा ७ अतीस ये सात औषध एक २ पल प्रमाण लेय सबका चूर्ण करके उस काढेमें मिलाय देवे। फिर उस काढेको लोहेकी कढाईमें चढायके पाककरे अवलेह कलछीमें लिपटने

लगे इतना गाढा करे फिर यह अवलेह जल अथवा बकरीके दूधसे किंवा मंडके साथ सेवन करे तो वेदनायुक्त तथा नीलपीतादिक अनेक प्रकारके रंगका घोर अतिसार रोग संपूर्ण दूर होवे। स्त्रियोंके सर्व प्रकारके असृग्दरादि रोग संपूर्ण मूलव्याधि (बवासीर) और प्रवाहिका रोग जो अतिसारका भेद है ये सब दूर होवें ।

इति श्रीशार्ङ्गधरेभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ९.

घृततैलआदिस्नेहोंका साधनप्रकार ।

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्यघृतंवातैलमेववा ॥ चतुर्गुणेद्रवेसाध्यंतस्य मात्रापलोन्मिता ॥ १ ॥ निक्षिप्यक्राथयेत्तोयंक्राथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ॥ पादशिष्टंगृहीत्वाचस्नेहंतेनैवसाधयेत् ॥ २ ॥ चतुर्गुणंमृदुद्रव्येकठिनेऽष्टगुणंजलम् ॥ तथाचमध्यमेद्रव्येदद्यादष्टगुणंपयः ॥ ३ ॥ अत्यंतकठिनेद्रव्येनीरंषोडाशिकंमतम् ॥ कर्षादितःपलंयावत्क्षिपेत्षोडशिकंजलम् ॥ ४ ॥ तदूर्ध्वंकुडवंयावत्क्षिपेदष्टगुणंपयः ॥ प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरंखारीयावच्चतुर्गुणम् ॥५॥ अंबुक्राथरसैर्यत्रपृथक्स्नेहस्यसाधनम् ॥ कल्कस्यांशंतत्रदद्याच्चतुर्थंषष्ठमष्टमम् ॥ ६ ॥ दुग्धेदधिरसेतक्रेकल्कोदेयोऽष्टमांशकः ॥ कल्कस्यसम्यक्पाकार्थंतोयमत्रचतुर्गुणम् ॥ ७ ॥ द्रव्याणियत्रस्नेहेषुपंचादीनिभवंतिहि॥ तत्रस्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वंचतुर्गुणम् ॥ ८ ॥ द्रव्येणकेवलेनैव स्नेहपाकोभवेद्यदि ॥ तत्राम्बुपिष्टःकल्कःस्याज्जलंचात्रचतुर्गुणम् ॥ ९ ॥ क्राथेनकेवलेनैवपाकोयत्रेरितःक्वचित् ॥ क्राथ्यद्रव्यस्यकल्कोपितत्रस्नेहेप्रयुज्यते ॥ १० ॥ कल्कहीनस्तुयःस्नेहःससाध्यःकेवलद्रवे ॥ पुष्पकल्कस्तुयःस्नेहस्तत्रतोयंचतुर्गुणम्॥ ११॥ स्नेहस्नेहाष्टमां-

१ चावलोंमें चौदहगुना जल डालके औटावे । जब चावल गल जावें तब उसके मांडको निकाल लेवे इसको मंड कहते हैं ।

शश्वपुष्पकल्कःप्रयुज्यते ॥ वर्तिवत्स्नेहकल्कःस्याद्यदांगुल्या विमर्दितः॥१२॥ शब्दहीनोग्निनिक्षिप्तःस्नेहःसिद्धोभवेत्तदा ॥ यदाफेनोद्भवस्तैलफेनशांतिश्चसर्पिषि ॥१३॥ गंधवर्णरसोत्प त्तिःस्नेहसिद्धिस्तदाभवेत्॥स्नेहपाकस्त्रिधाप्रोक्तोमृदुर्मध्यःखर स्तथा॥१४॥ईषत्सरसकल्कस्तुस्नेहपाकोमृदुर्भवेत् ॥मध्यपा कस्यसिद्धिश्चकल्केनीरसकोमले ॥ १५ ॥ ईषत्कठिनकल्क श्चस्नेहपाकोभवेत्खरः ॥ तदूर्ध्वंदग्धपाकःस्याद्दाहकृन्निष्प्रयो जनः॥१६ आमपाकश्चनिर्वीर्योवह्निमांद्यकरोगुरुः ॥नस्यार्थे स्यान्मृदुःपाकोमध्यमःसर्वकर्मसु ॥ १७ ॥ अभ्यंगार्थेखरः प्रोक्तो युंज्यादेवंयथोचितम् ॥ घृततैलगुडादींश्चसाधयेन्नैकवा सरे ॥ १८ ॥ प्रकुर्वंत्युषिताह्येतेविशेषाद्गुणसंचयम् ॥

अर्थ-कल्ककी औषधोंसे चौगुना घृत अथवा तेल लेवे, तथा उस घृत तेलका चौगुना दूध गौ आदिका मूत्र इत्यादिक द्रवपदार्थ ले सबको एकत्रकर अग्निके संयोगसे उस द्रव्यपदार्थको जला यके घृत तथा तेल शेष रक्खे । उसी प्रकार सिद्ध हुए घृत और तेलकी भक्षण करनेकी मात्रा वातादि रोगोंपर १ पलकी जाननी । काढेकी औषधोंमें चौगुना पानी डालके औटावे जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार लेय। उसमें घृत अथवा तेल डालके औटावे । जब घृत तथा तेल मात्र बाकी रहे तब सिद्ध हुआ जानना यदि नरम गुडूच्यादि औषध हों तो उनमें चौगुना पानी डाले । अम- लतास आदि कठिन औषधोंमें तथा दशमूलादि जो मध्यम औषध हैं उनमें काढेके वास्ते आठगुना जल मिलावे । पद्माखादि जो अत्यंत कठोर औषधि हैं उनमें जल सोलहगुना डालना चाहिये । कर्षसे लेकर पलपर्यंत मान कही हुई औषधोंका यदि काढा करना होय तो जल सोलहगुना डाले पलसे लेकर कुडवमान पर्यंत औषधोंका काढा करना होय तो पानी आठगुना मिलावे । प्रस्थसे लेकर खारीमान पर्यंत औषधोंका काढा करना होय तो चौगुना जल डाले। केवल जलमें स्नेह सिद्ध करना होय तो स्नेहका चतुर्थांश कल्क डाले । काढेमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेह का षष्ठांश कल्क मिलावे । मांसके रसमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेहका अष्टमांश कल्क डाले । दूध, दही अथवा धतूरे आदिके रसमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेहका अष्टमांश कल्क मिलावे । कल्कका उत्तम पाक होनेकेवास्ते स्नेहका चौगुना जल डाले । स्नेहमें दूध गोमूत्र इत्यादि पांच द्रव पदार्थोंसे अधिक द्रवपदार्थ डालने होंय तो दूध और गोमूत्रादिकस्नेहके समानभाग

लेवे। यदि द्रवपदार्थ पांचसे न्यून होवें तो स्नेहके चौगुने ले। जिस ठिकाने केवल एकही द्रव्यसे स्नेहपाक साधन लिखा होय वहाँकल्कको पानीमें पीसके उसका चौगुना पानी डाले। यदि काढेमें स्नेह सिद्ध करना होय तो कल्क द्रव्यको पानीमें पीस कल्क कर स्नेहमें डाल उसमें स्नेहका चौगुना जल डाले। अथवा किसी प्रयोगमें काढेमें स्नेह सिद्ध करना होय तो काढेकी औषधोंका कल्क करके स्नेहमें मिलाय उसमें पानी चौगुना डाले औटावे जब द्रवपदार्थ जल जावे और स्नेहका चौगुना जल डाले। फूलोंका कल्क स्नेहका अष्टमांश डालना। अब इसके उपरांत उत्तम सिद्धहुए स्नेहके लक्षणोंको लिखते हैं। जो स्नेह उँगलीके पोरुओंके लगानेसे औरभिडनेसे बत्ती-सा होजावे तथा उस कल्ककोअग्निपर गेरनेसे चटचटाहट शब्द न करे, तेलके पाकमें झाग आनेसे तथा घृतके पाकमें झाग आकर शांत होजानेसे, तथा उस पाकके सुगंध करके रक्तादिवर्ण करके, मधुरादि रसोंकरके युक्त होनेसे स्नेह सिद्ध होगया इस प्रकार वैद्य जाने।

स्नेहका पाक तीन प्रकारका है। जैसे—नम्र मध्यम और काठिन उनके लक्षण कहतेहैं कि,जिस स्नेहमें कल्ककी कुछ २ आर्द्रता बनीरहै अर्थात् वह कल्क समग्र न जले उसको नम्रपाक हुआ जानना।

जिस स्नेहमें कल्ककी मृदुता होनेसे जलका अंश सर्वथा न रहे उस पाकको मध्यम पाक जानना। और जिस स्नेहका पाक किंचित् अर्थात् कल्क सर्वथा जलकरभी कुछ तेल जलगयाहो वह स्नेह दाहकारी और निष्प्रयोजक है अर्थात् कुछ कामका नहीं है।

कच्चापाक रहनेसे उसमें पराक्रम नहीं रहता, अग्निको मंद करता है तथा भारी होताहै स्नेहका पाक नरम होनेसे वह स्नेह नाकमें नस्य देनेके विषयमें योग्य होताहै। मध्यमपाक वह स्नेह सर्व कर्ममें वर्तना चाहिये काठिन पाक होनेसे उस स्नेहको देहमें मालिश करनेमें लेवें।

घृत तेल गुडादि ये बनाने होय तो एक दिनमेंही सिद्ध न करे। इनके संपूर्ण द्रव्योंको एकत्र कर एकरात्रि भिगो देवे दूसरे दिन सिद्ध करे इस प्रकार स्नेहके साधनकी क्रिया जाननी। इसमेंभी प्रथमघृत और पश्चात् तेल बनाना इस अध्यायमें कहा जावेगा।

---

१ वैद्यको उचित है कि जब तेल घृत आदि कोईसी वस्तु बनानीहोयतो इस स्नेह साधनके अनुसार कल्क काढा दूध गोमूत्रादिक डाले तो ठीक बनेगा अन्यथा बिगड जावेगा।

घृतका साधनप्रकार तिनमें प्रथम क्षीरघृत प्लीहादिकोंपर ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्याचित्रकनागरैः ॥१९॥ ससैंधवैश्च-पलिकैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ क्षीरंचतुर्गुणंदत्त्वातत्सिद्धंप्लीह-नाशनम् ॥ २० ॥ विषमज्वरमंदाग्निहरंरुचिकरंपरम् ॥

अर्थ–१ पीपल २ पीपरामूल ३ चव्य ४ चित्रक ५ सोंठ ६ सैंधानमक ये छः औषध एक २ पल ले कल्क करके एक प्रस्थ गौके घीमें मिलावे । और घीसे चौगुना जल मिलाय फिर गौका दूध उसमें मिलावे । कल्कका पाक उत्तम होनेके वास्ते घृतसे चौगुना पानी डालके पाक करे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसके सेवन करनेसे पेटमें बांई तरफ जो प्लीहा (तिल्ली) का रोग होताहै वह और विषमज्वर मंदाग्नि ये रोग दूर होवें मुखमें उत्तम रुचि आवे ।

चांगेरीघृत अतिसारसंग्रहणीपर ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली ॥२१॥ श्वदंष्ट्रानागरंधान्यंपाठाबिल्वंयवानिका॥द्रव्यैश्चपलिकैरेतैश्चतुःषष्टिपलंघृतम्॥ २२ ॥ घृताच्चतुर्गुणंदद्याच्चांगेरीस्वरसंबुधः ॥ तथा चतुर्गुणंदत्वादधिसर्पिर्विपाचयेत् ॥२३॥ शनैःशनैर्विपक्वंच चांगेरीघृतमुत्तमम् ॥ तद्घृतंकफवातघ्नंग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ २४ ॥ हंत्यानाहंगुदभ्रंशंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम् ॥

अर्थ–१ पीपल २ पीपरामूल ३ चित्रक ४ गजपीपर ५ गोखरू ६ सोंठ ७ धनिया ८ पाठ ९ बेलगिरी १० अजमोद ये दश औषध एक २ पल लेवे । कल्क करके चौंसठ पल घी लेवे । उसमें इस कल्कको मिलाय तथा घृतसे चौगुना चूकेका रस और दहीकी छाछ डालके मंदाग्निसे परिपक्व करे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार छानके धर रक्खे । इसको चांगेरीघृत कहते हैं । इसका सेवन करनेसे कफवायु, संग्रहणी, मूल व्याधि (बवासीर) मलबद्धता, कांचका निकलना, मूत्रकृच्छ्र और प्रवाहिका ये संपूर्ण रोग दूर होते हैं ।

मसूरादिघृत अतिसारआदिपर।

मसूराणांपलशतंनीरद्रोणेविपाचयेत् ॥ २५ ॥ पादशेषंशृतं नीत्वादत्त्वाबिल्वपलाष्टकम् ॥ घृतप्रस्थंपचेत्तेनसर्वातीसार-नाशनम् ॥ २६॥ ग्रहणींभिन्नविट्कांश्चनाशयेच्चप्रवाहिकाम् ॥

अर्थ—मसूर सौ पलमें एकद्रोण जल डालके औटावे जब चौथाई जल रहे तब उतारके जल को छान लेवे । इसमें आठपल बेलगिरीका बारीक चूर्ण करके डाले तथा घी एक प्रस्थ मिलाय पाक करे । जब घृतमात्रशेष रहे तब उतारके घीको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके रख देवे इस घृतके सेवन करनेसे संपूर्ण अतिसार, संग्रहणी, मलके चिथडे और टुकडे २ गिरें और प्रवाहिका ये संपूर्ण रोग दूर होंय ।

कामदेवघृत रक्तपित्तादिकोंपर ।

अश्वगंधातुलैकास्यात्तदर्धोगोक्षुरःस्मृतः ॥ २७ ॥ बलामृता शालिपर्णीविदारीचशतावरी ॥ पुनर्नवाश्वत्थशुंठीकाश्मर्यास्तु फलान्यपि ॥ २८ ॥ पद्मबीजंमाषबीजंदद्याद्दशपलंपृथक् ॥ चतुर्द्रोणांभसापक्त्वापादशेषंशृतंनयेत् ॥ २९ ॥ जीवनीयगणःकुष्ठंपद्मकंरक्तचंदनम् ॥ पत्रकंपिप्पलीद्राक्षाकपिकच्छुफलंतथा ॥ ३० ॥ नीलोत्पलंनागपुष्पंसारिवेद्वेबलेतथा ॥ पृथक्कर्षसमाभागाःशर्करायाःपलद्वयम् ॥ ३१ ॥ रसश्चपौंड्रकेक्षूणामाढकैकंसमाहरेत् ॥ घृतस्यचाढकंदत्त्वापाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ३२ ॥ घृतमेतन्निहंत्याशुरक्तपित्तमुरःक्षतम् ॥ हलीमकंपांडुरोगंवर्णभेदंस्वरक्षयम् ॥ ३३ ॥ वातरक्तंमूत्रकृच्छ्रंपार्श्वशूलंचकामलाम् ॥ शुक्रक्षयमुरोदाहंकार्श्यमोजःक्षयंतथा ॥ ३४ ॥ स्त्रीणांचैवाप्रजातानांगर्भदंशुक्रदंनृणाम् ॥ कामदेवघृतंनामहृद्यंबल्यंरसायनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—असगंध १ तुला, गोखरू दक्षिणी अर्द्धतुला और १ चीतेकी छाल २ गिलोय ३ शालपर्णी ४ विदारीकंद ५ शतावर ६ पुनर्नवा (सौंठ) ७ पीपरामूल ८ सोंठ ९ कंभारीके फल १० कमलगट्टा और ११ उडद ये ग्यारह औषध दश २ पल लेकर एकत्र कूट इसमें चार द्रोण जल मिलाकर काढा करे । जब चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतारके इसको छान लेवे । फिर १० जीवनीयगणकी औषधि ११ कूठ १२ पद्माख १३ लालचंदन १४ तमालपत्र १५ पीपल १६ दाख १७ कौंचके बीज १८ नीलाकमल १९ नागकेशर २० कालीसारिवा २१ सफेदसारिवा २२ बला २३ नागबला ये तेईस औषध एक २ कर्ष ले । कल्क करके पूर्वोक्त काढेमें मिलाय देवे । खाँड दोपल डाले । सफेद ईखका रस और घृत ये दोनों एक एक आढक लेके उस काढेमें मिलाय देवे । फिर

भट्टीपर चढाय मंदाग्निसे घृतका पाक करे । जब सब पदार्थ जळके घृतमात्र रहे तब उतारके इसको छान लेवे । इसके सेवन करनेसे रक्तपित्त, उरःक्षत रोग, पांडुरोगका भेद, हलीमक रोग, स्वरभंग, वातरक्त, मूत्रकृच्छ्र, पीठका दर्द, नेत्रोंका पीला होना, धातुक्षय, उरः (छाती) का दाह, शरीरकी कृशता, शरीरके तेजका क्षय ये संपूर्ण रोग दूर होवें । यह घृत जिस स्त्रीके संतान न होतीहो उसके वास्ते देनेसे पुत्र देवे पुरुषोंके वीर्य प्रगट करे, हृदयको हितकारी बल देवे तथा यह रसायन है इसको कामदेवघृत ऐसा कहते हैं ।

पानीयकल्पनाघृत अपस्मारादिकोंपर ।

त्रिफलाद्वेनिशेकौंतीसारिवेद्वेप्रियंगुका ॥ शालिपर्णीपृष्ठपर्णी देवदार्व्येलवालुकम् ॥ नतंविशालादंतीचदाडिमंनागकेशरम् ॥ ३६ ॥ नीलोत्पलैलामंजिष्ठाविडंगंकुष्ठपद्मकम् ॥ जाती-पुष्पंचंदनंचतालीसंबृहतीतथा ॥ एतैःकर्षसमैःकल्कैर्जलंद-त्वाचतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ घृतप्रस्थंपचेद्धीमानपस्मारेज्वरेक्षये ॥ उन्मादेवातरक्तेचकासेमंदानलेतथा॥३८॥प्रतिश्यायेकटीशूले तृतीयकचतुर्थके॥मूत्रकृच्छ्रेविसर्पेचकंड्वांपांड्वामयेतथा॥३९॥ विषद्वयेप्रमेहेषुसर्वथैवोपयुज्यते ॥ वंध्यानांपुत्रदंभूतयक्षरक्षो-हरंस्मृतम् ॥ ४० ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ हल्दी ५ दारुहल्दी ६ रेणुकाबीज ७ कालीसारिवा ८ सफेदसारिवा ९ फूलप्रियंगु १० शालपर्णी ११ पृष्ठपर्णी १२ देवदारु १३ एलवालुक १४ तगर १५ इन्द्रायणकी जड १६ अनारकी छाल १७ दंती १८ नागकेशर १९ नीले कमल २० इलायची २१ मजीठ २२ बायविडंग २३ कूठ २४ पद्माख २५ चमेलीके फूल २६ चंदन २७ तालीसपत्र और २८ कटेरी ये अट्ठाईस औषध एक एक कर्ष लेवें । कल्क कर इसमें कल्कका चौगुना जल मिलायदे । फिर १ प्रस्थ घी मिलायके मंदाग्निसे पचन करावे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान ले और उत्तम पात्रमें भरके रख देवे । इसके सेवन करनेसे मृगी, ज्वर, क्षयरोग, उन्माद, वातरक्त, खाँसी, मंदाग्नि, पीनस, कमरका शूल, तृतीयक ज्वर, चातुर्थिक ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्परोग जो पैरोंमें होता है, खुजली, पांडुरोग, सर्पादिकोंके विषविकार, बच्छ नागादि स्थावर विषोंके विकार, तथा प्रमेह ये सब रोग दूर हों । यह घृत वंध्या स्त्रियोंको पुत्र देता है । इस घृतके सेवन करनेसे भूतबाधाभी दूर होती है ।

अमृताघृत वातरक्तपर ।

अमृताक्काथकल्काभ्यांसक्षीरंविपचेद्घृतम् ॥
वातरक्तंजयत्याशुकुष्ठंजयतिदुस्तरम् ॥ ४१ ॥

अर्थ–गिलोयको जबकूटकर उसमें चौगुना पानी डालके औटावे । जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेवे फिर इस काढेमें इस काढका चतुर्थांश घी मिलावे और घीका चतुर्थांश गिलोयका कल्क डाले । दूध घृतसे चौगुना डाले । फिर अग्निपर चढायके सिद्ध करे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसके सेवन करनेसे वातरक्त और कुष्ठ ये रोग बहुत जल्दी दूर होवें ।

महातिक्तकघृत वातरक्तकुष्ठादिकोंपर ।

सप्तच्छदःप्रतिविषाशम्याकःकटुरोहिणी ॥ पाठामुस्तमुशीरं चत्रिफलापर्पटस्तथा ॥४२॥पटोलनिंबमंजिष्ठाःपिप्पलीपद्म-कंशटी ॥ चंदनंधन्वयासश्चविशालाद्वेनिशेतथा ॥४३॥ गुडू-चीसारिवेद्वेचमूर्वावासाशतावरी ॥त्रायंतींद्रयवायष्टीभूनिंबश्चा-क्षभागिकाः ॥ ४४ ॥ घृतंचतुर्गुणंदद्याद्घृतादामलकीरसः ॥ द्विगुणःसर्पिषश्चात्रजलमष्टगुणंभवेत् ॥ ४५ ॥ तत्सिद्धंपाययेत्सर्पिर्वातरक्तेषुसर्वथा ॥ कुष्ठानिरक्तपित्तंचरक्तार्शांसिचपांडु-ताम् ॥ ४६ ॥ हृद्रोगगुल्मवीसर्पप्रदरान्गंडमालिकाम्॥क्षुद्र-रोगान्ज्वरांश्चैवमहातिक्तमिदंजयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ–१ सतोना २ अतीस ३ अमलतासका गुदा ४ कुटकी ५ पाढ ६ नागरमोथा ७ खस ८ हरड ९ बेहडा १० आँवला ११ पित्तपापडा १२ पटोलपत्र १३ नीमकी छाल १४ मजीठ १५ पीपल १६ पद्माख १७ कचूर १८ सफेद चन्दन १९ धमासा २० इन्द्रायणकी जड २१ हल्दी २२ दारुहल्दी २३ गिलोय २४ काली सारिवा २५ सफेद सारिवा २६ मूर्वा २७ अडूसा २८ सतावर २९ त्रायमाण ३० इन्द्रजौ ३१ मुलहटी और ३२ चिरायता ये बत्तीस औषध एक एक एक कर्ष लेवे । कल्क कर कल्कका चौगुना घी लेकर उसमें कल्कको मिलाय दे और घीसे दुगुना आँवलोंका रस एवं आठगुना जल डालके मंदाग्निपर परिपक करे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेय और उत्तम पात्रमें भरके रख देवे । इसके सेवन करनेसे वातरक्त अवश्य दूर होवे तथा कुष्ठ, रक्तपित्त, रक्तमूलव्याधि अर्थात् खूनी बवासीर, पांडुरोग, हृदयरोग, गोला, विसर्परोग, प्रदररोग, गंडमाला, क्षुद्ररोग और ज्वर ये रोग दूर हों ।

सूर्यपाकसिद्ध कासीसाद्यघृत कुष्ठदद्रुपामा इत्यादिकोंपर ।

कासीसंद्वेनिशेमुस्तंहरतालंमनःशिलाम् ॥ कंपिल्लकंगंधकंचविडंगंगुग्गुलुंतथा ॥ ४८ ॥ सिक्थकंमरिचंकुष्ठंतुत्थकंगौरसर्षपान् ॥ रसांजनंचसिंदूरंश्रीवासंरक्तचंदनम् ॥ ४९ ॥ अरिमेदंनिंबपत्रंकरंजंसारिवांवचाम् ॥ मंजिष्ठांमधुकंमांसींशिरीषंलोध्रपद्मकम् ॥ ५० ॥ हरीतकींप्रपुन्नाटंचूर्णयेत्कार्षिकान्पृथक ॥ ततश्चचूर्णमालोड्यत्रिंशत्पलमितेघृते ॥५१॥ स्थापयेत्ताम्रपात्रेचघर्मेसप्तदिनानिच ॥ अस्याभ्यंगेनकुष्ठानिदद्रुपामाविचर्चिकाः ॥५२॥ शूकदोषाविसर्पाश्चविस्फोटावातरक्तजाः ॥ शिरःस्फोटोपदंशाश्चनाडीदुष्टव्रणानिच ॥ ५३ ॥ शोथोभगंदरश्चैवलूताःशाम्यंतिदेहिनाम्॥शोधनंरोपणंचैवसुवर्णकरणंघृतम् ५४॥

अर्थ–१ हीराकसीस २ हल्दी ३ दारुहल्दी ४ नागरमोथा ५ हरताल ६ मनसिल ७ कपीला ८ गंधक ९ वायविडंग १० गूगल ११ मोम १२ काली मिरच १३ कूठ १४ सफेद सरसों १५ रसांजन १६ सिंदूर १७ गंधाविरोजा १८ लाल चंदन १९ खैरकी छाल २० नीमके पत्ते २१ कंजाके बीज २२ सारिवा २३ वच २४ मजीठ २५ मुलहटी २६ जटामांसी २७ सिरसकी छाल २८ लोध २९ पद्माख ३० जंगी हरड और ३१ पमारके बीज ये एकतीस औषध एक एक कर्ष लेवे । सबका चूर्ण कर तीस पल घी ताँबेके पात्रमें डाल चूर्ण मिलाय सात दिन धूपमें धरा रहने देवे । फिर इस घीको देहमें लगावे तो सर्व कुष्ठ, दाह, खाज, जिससे पैर फट जाते हैं ऐसी विचर्चिका, लिंगेन्द्रियका शूकसंज्ञक रोग, विसर्परोग, वातरक्तसे जो विस्फोटक रोग होता है वह, मस्तकके फोडे, उपदंश (गरमीका रोग), नाडीव्रण (नासूरका घाव), दुष्टव्रण, सूजन, भगंदर और लूता ये संपूर्ण रोग दूर होवें । यह घृत व्रणादिकोंका शोधन करके व्रणको भरलाता है तथा त्वचाकी कांति जैसी प्रथम थी उसी प्रकारकी करता है ।

जात्यादिघृत व्रणपर ।

जातिनिंबपटोलाश्चद्वेनिशेकटुकीतथा ॥ मंजिष्ठामधुकंसिक्थंकरंजोशीरसारिवाः ॥ ५५ ॥ तुत्थंचविपचेत्सम्यक्कल्कैरेभिर्घृतंबुधः ॥ अस्यलेपात्प्ररोहंतिसूक्ष्मनाडीव्रणाअपि ॥ ५६ ॥ मर्माश्रिताःक्लेदिनश्चगंभीराःसरुजोव्रणाः ॥

अर्थ—१ चमेलीके पत्ते २ नीमके पत्ते ३ पटोलपत्र ४ हल्दी ५ दारुहल्दी ६ कुटकी ७ मजीठ ८ मुलहटी ९ मोम १० कंजा ११ खस १२ सारिवा और १३ लीलाथोथा ये तेरह औषध एक एक कर्ष प्रमाण लेनी । इनका कल्क करके उस कल्कका चौगुना घी ले उसमें कल्कको मिलाय धूपमें एक दिन धरा रहने दे फिर अग्निपर धरके घृतको सिद्ध करे । इस घृतको नाडीव्रण कहिये नासूरके घावमें लेप करे तथा मर्मस्थलमें होय और राध आदि करके गंभीर और पीडायुक्त ऐसे व्रणोंमें इसका लेप करे तो व्रण भरके अच्छा होय ।

बिंदुघृत उदरादिकोंपर ।

चित्रकःशंखिनीपथ्याकंपिल्लस्त्रिवृतायुगम् ॥५७॥ वृद्धदारश्चशम्याकोदंतीदंतीफलंतथा ॥ कोशातकीदेवदालीनीलिनीगिरिकर्णिका॥५८॥ सातलापिप्पलीमूलंविडंगंकटुकीतथा॥ हेमक्षीरीचविपचेत्कल्कैरेतैःपिचून्मितैः ॥ ५९ ॥ घृतप्रस्थंस्नुहीक्षीरेषट्पलेतुपलद्वये ॥ अर्कक्षीरस्यमतिमांस्तत्सिद्धंगुल्मकुष्ठनुत् ॥ ६० ॥ हंतिशूलमुदावर्तंशोथाध्मानंभगंदरम्॥ शमयत्युदराण्यष्टौनिपीतंबिंदुसंख्यया ॥ ६१ ॥ गोदुग्धेनोष्ट्रदुग्धेनकौलत्थेनशृतेनवा॥ उष्णोदकेनवापीत्वाबिंदुवेगैर्विरिच्यते ॥ ६२ ॥ एतद्बिंदुघृतंनामनाभिलेपाद्विरेचयेत् ॥

अर्थ—१ चीतेकी छाल २ शंखपुष्पी (शंखाहूली) ३ हरड ४ कपीला ५ सफेद निसोथ ६ कालीनिसोथ ७ विधायरा ८ अमलतासका गूदा ९ दंतीकी जड १० जमालगोटा ११ कडवी तोरई १२ बंदाल १३ नील १४ विष्णुक्रांता (कोयल) १५ पीले रंगकी थूहर १६ पीपरामूल १७ वायविडंग १८ कुटकी १९ चूक ये उन्नीस औषध एक एक कर्ष प्रमाण ले सबका कल्क कर एक प्रस्थ घीमें उसको मिलाय थूहरका दूध छः पल और आकका दूध दो पल मिलावे । कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते उस घीका चौगुना जल डालके मंदाग्निसे शेष रक्खे । इस प्रकार जब घृत सिद्ध होजावे तब इसको छानके किसी उत्तम पात्रमें धररक्खे । इसको बिंदुघृत कहतेहैं इसके सेवन करनेसे गोला, कोढ, शूल, उदावर्त, सूजन, अफरा, भगंदर, आठ प्रकारके उदररोग ये संपूर्ण रोग दूर होवें । इसका अनुपान गौका दूध, ऊँटनीका दूध, कुलथीका काढा अथवा गरम जल इतने अनुपानोंमेंसे जैसा रोगका बलाबल देखे उसी प्रकार देवे । इस घृतके जितने बिंदु (बूँद) डालके पीवे उतनेही दस्त होते हैं । घृतको नाभिपर लेप करनेसे भी दस्त होते हैं ।

त्रिफलाघृत नेत्ररोगपर।

त्रिफलायारसप्रस्थंप्रस्थंवासारसोद्भवम् ॥ ६३ ॥ भृंगराजरस-प्रस्थंप्रस्थमाजंपयःस्मृतम् ॥ दत्त्वातत्रघृतप्रस्थंकल्कैःकर्ष-मितैःपृथक् ॥ ६४ ॥ त्रिफलापिप्पलीद्राक्षाचंदनंसैंधवंबला ॥ काकोलीक्षीरकाकोलीमेदामरिचनागरम् ॥ ६५ ॥ शर्करापुंड-रीकंचकमलंचपुनर्नवा ॥ निशायुग्मंचमधुकंसर्वैरेभिर्विपाचये-त् ॥ ६६ ॥ नक्तांध्यंनकुलांध्यंचकंडूंपिल्लंतथैवच ॥ नेत्रस्रावं चपटलंतिमिरंचाजकंजयेत् ॥ ६७ ॥ अन्येपिप्रशमंयांतिनेत्र-रोगाःसुदारुणाः ॥ त्रैफलंघृतमेतद्धिपानेनस्यादिसूचितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ–१हरड २ बहेडा ३ आँवला इन तीनोंका स्वरस पृथक् २ एक एक प्रस्थ लेवे । यदि स्वरस न मिल सके तो इनको आठगुने जलमें डालके चतुर्थांश शेष काढा लेवे । इसकी स्वरस संज्ञा है। यह एक २ प्रस्थ लेवे । अरूसेका स्वरस १ प्रस्थ भांगरेका स्वरस १ प्रस्थ बकरीका दूध १ प्रस्थ ये संपूर्ण रस और दूधको एकत्र करके इसमें घी एक प्रस्थ डाले फिर कल्क करके डालनेकी जो औषधि हैं उनको कहता हूं। जैसे–१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ पीपल ५ दाख ६ सफेद चन्दन ७ सैंधानिमक ८ गंगेरन ९ काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनों-के अभावमें असगन्ध लेवे) १० मेदाके अभावमें मुलहटी ११ काली मिरच १२ सोंठ १३ खांड १४ सफेद कमल १५ कमळ १६ पुनर्नवा (सौंठ) १७ हल्दी १८ दारुहल्दी और १९ मुलहटी ये उन्नीस औषध प्रत्येक कर्ष २ लेवे । कल्क करके इसको १ प्रस्थ घीमें मिलाय मन्दाग्निपर घीको सिद्ध करे । जब तैयार हो जावे तब उतारके छान लेवे इसको त्रिफलाघृत कहते हैं। इस घृतके सेवन करनेसे रतौंध, तथा नोलाकेसे नेत्र चमके उसको नकुलांध्य कहते हैं, नेत्रोंकी खुजली, पिल्लरोग, नेत्रोंके जलका गिरना, नेत्रोंके पटलमें तिमिररोग होता है वह, मोति-याबिन्दु नेत्ररोगका भेद, अजक रोग ये संपूर्ण दूर होवें । इसके सिवाय और जो छोटे बडे नेत्रोंके रोग वे भी दुर हों । यह घृत नाकमें डालनेके भी उपयोगी है ।

मतांतरसे लिखते हैं कि, त्रिफलाका रस १ प्रस्थ और भांगरेका रस १ प्रस्थ अडूसेका रस १ प्रस्थ सतावरका रस १ प्रस्थ बकरीका दूध १ प्रस्थ गिलोयका रस १ प्रस्थ आंवलोंका रस १ प्रस्थ इन सब रसोंको एकत्रकर घी १ प्रस्थ डालके पक करे । यह वंगसेन ग्रन्थमें लिखा है । यहभी पूर्वोक्त नेत्र रोगोंपर देवे ।

गौर्याद्यघृत व्रणादिकोंपर ।

द्वेहरिद्रेस्थिरेमूर्वासारिवाचंदनद्वयैः ॥ मधुपर्णीचमधुकंपद्मकेसरपद्मकैः ॥ ६९ ॥ उत्पलोशीरमेदाभिस्त्रिफलापंचवल्कलैः॥ कल्कैःकर्षमितैरेतैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ७० ॥ विसर्पलूताविस्फोटविषकीटव्रणापहम् ॥ गौर्याद्यमितिविख्यातंसार्पिर्विषहरंपरम् ॥ ७१ ॥

अर्थ–१ हल्दी २ दारुहल्दी ३ शालपर्णी ४ मूर्वा ५ सारिवा ६ सफेदचन्दन ७ लालचंदन ८ माषपर्णी ९ मुलहटी १० कमलके भीतरकी केशर ११ पद्माख १२ कमल १३ खस १४ मेदाके अभावमें मुलहटी १५ हरड १६ बहेडा १७ आँमला १८ बडकी छाल १९ गूलरकी छाल २० पीपरकी छाल २१ पापरीकी छाल और २२ वेत ये बाईस औषध प्रत्येक एक १ कर्ष लेवे सबका कल्क करके इसका चौगुना इसमें जल मिलावे । फिर इसमें १ प्रस्थ घी डालके घी शेष रहने पर्यंत पचन करे । जब सिद्ध होजावे तब उतारके घीको छान लेय । इस घृतके सेवन करनेसे विसर्परोग, लूता, विस्फोटक, विषदोष, क्षुद्र कुष्ठ, व्रण ये रोग दूर होवें । इस घृतके सेवनसे प्रायः विषबाधा दूर होती है ।

मयूरघृत शिरोरोगादिकोंपर ।

बलामधुकरास्नाभिर्दशमूलफलत्रिकैः ॥ पृथग्द्विपलिकैरेभिर्द्रोणनीरेणपाचयेत् ॥ ७२ ॥ मयूरंपक्षपित्तांत्रयकृत्पादास्यवर्जितम् ॥ पादशेषंशृतंनीत्वाक्षीरंदत्त्वाचतत्समम् ॥ ७३ ॥ घृतप्रस्थंपचेत्सम्यग्जीवनीयैःपिचून्मितैः ॥ तत्सिद्धंशिरसःपीडांमन्याग्रीवाग्रहंतथा ॥ ७४ ॥ अर्दितंकर्णनासाक्षिजिह्वागलरुजोजयेत् ॥ पानेनस्येतथाभ्यंगेकर्णपूरेषुयुज्यते ॥ ७५ ॥ हेमन्तकालशिशिरवसंतेषुचशस्यते ॥

अर्थ–१ गंगेरनकी छाल २ मुलहटी ३ रास्ना १० मूलोंकी जड ३ त्रिफला इस प्रकार मिलायके १६ औषध दो दो पल लेकर जवकूट करके एक द्रोण जलमें डाल देवें । फिर मोरको मारके उसके पंख दूर करके कलेजेमें पित्त होता है वह आँतडे और दहनी तरफ जो (कलेजा) पैर और मुख ये सब दूर करके उस मोरका शुद्ध मांस लेवे । तथा दूध काढेके

के घी १ प्रस्थ ले एवं जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क करके उसमें डाल देय । फिर घृतमात्र शेष रहे इस प्रकार मंदाग्निपर पचन कर उतारके छान लेवे । पीनेमें, नाकमें डालनेके विषयमें, देहमें लगाने और कानमें डालनेमें इनमें रोगका तारतम्य देखकर इसकी योजना करे इसका सेवन हेमंत कालमें शिशिर कालमें तथा वसन्त कालमें करे तो मस्तककी पीडा दूर होय । गर्दन और गला इनका स्तंभ तथा मुख टेढा होजावे ऐसी अर्दित वायु, कर्णशूल, नाक, नेत्र, जीभ और गला इनकी पीडाको दूर करे । इसे 'मयूरघृत' कहते हैं ।

फलघृत वंध्यारोगपर ।

त्रिफलामधुकंकुष्ठंद्वेनिशेकटुरोहिणी ॥ ७६ ॥ विडंगंपिप्पली मुस्ताविशालाकट्फलंवचा ॥ द्वेमेदेद्वेचकाकोल्यौसारिवेद्वेप्रियंगुका॥७७॥ शतपुष्पाहिंगुरास्नाचंदनंरक्तचंदनम्॥जातीपुष्पं तुगाक्षीरीकमलंशर्करातथा ॥७८॥ अजमोदाचदन्तीचकल्कैरेतैश्चकार्षिकैः॥जीवद्वत्सैकवर्णायाघृतप्रस्थंचगोःक्षिपेत्॥७९॥ चतुर्गुणेनपयसापचेदारण्यगोमयैः ॥ सुतिथौपुण्यनक्षत्रेमृद्भांडेताम्रजेतथा ॥८०॥ ततःपिबेच्छुभदिनेनारीवापुरुषोऽथवा ॥ एतत्सर्पिर्नरःपीत्वास्त्रीषुनित्यंवृषायते ॥ ८१ ॥ पुत्रानुत्पादयेद्धीमान्वंध्यापिलभतेसुतम् ॥ अनायुषंयाजनयेद्याचसूता पुनःस्थिता ॥ ८२ ॥ पुत्रंप्राप्नोतिसानारीबुद्धिमंतंशतायुषम् ॥ एतत्फलघृतंनामभारद्वाजेनभाषितम् ॥ ८३ ॥ अनुक्तंलक्ष्मणामूलंक्षिपेत्तत्रचिकित्सकः ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ मुलहटी ५ कूठ ६ हल्दी ७ दारुहल्दी ८ कुटकी ९ वायविडंग १० पीपल ११ नागरमोथा १२ इन्द्रायणकी जड १३ कायफल १४ वच १५ मेदा और महामेदा (इन दोनोंके अभावमें मुलहटी) १६ कालोली और क्षीरकाकोली इन दोनोंके अभावमें (असगंध) १७ सफेद सारीवा १८ काली सारीवा १९ फूलप्रियंगु २० सौंफ २१ भुनीहींग २२ रास्ना २३ सफेदचन्दन २४ लालचन्दन २५ जावित्री २६ वंशलोचन २७ कमल २८ खाँड २९ अजमोदा ३० दन्ती ये तीस औषध एक एक कर्ष प्रमाण लेवे । सबका कल्ककर जिसके बछडा होवे तथा एकवर्णवाली गौका घी एक प्रस्थ लेवे, उसमें इस कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते घीसे चौगुना गौका

दूध डाले । फिर सबको एक ताँबेके पात्रमें भरके अथवा मिट्टीके बासनमें भरके जिसदिन पुष्यनक्षत्र होवे अथवा शुभदिन होय उस दिन आरने उपलोंकी मंद २ अग्नि देवे जब घृत शेष रहे तब उतारके छान लेवे इसको फलघृत कहते हैं यह घृत भारद्वाज ऋषिने कहा है इसको उत्तम दिनमें पुरुषोंको अथवा स्त्रियोंको देवे पुरुषोंको देनसे उनका काम वढकर स्त्रीकेसाथ नित्य रमणकरे उसके पुत्र बुद्धिमान् होवे बाँझ स्त्री इसका सेवनकरे तो पुत्र प्रगटकरे जिस स्त्रीके बालक होकर मरजावे ऐसी स्त्रीके इसके सेवन करनेसे जो बालक होवे वह सौ बर्ष जीवे तथा बुद्धिमान् होय इस घृतमें जो लक्ष्मणामूल कहा नहीं है परंतु ये गर्भदाता है इसवास्ते इसकोभी डाले (कई सफेद कटेलीको लक्ष्मणा कहते हैं) ।

पंचतिक्तघृत विषमज्वरादिकोंपर ।

वृषनिंबामृताव्याघ्रीपटोलानांशृतेनच ॥ ८४ ॥
कल्केनपक्वंसर्पिस्तुनिहन्याद्विषमज्वरान् ॥
पांडुकुष्ठंविसर्पंचकृमीनर्शांसि नाशयेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ–१ अडूसा २ नीमके पत्ते ३ गिलोय ४ कटेरी और ५ पटोलपत्र इन पांच औषधोंका काथकर उसके चौगुना घी लेवे उसमें उसीके कल्कको मिलावे फिर भट्टीपर चढायके मन्दमन्द अग्निसे घृत सिद्ध करे । फिर इसको छानके धरलेवे इसके सेवन करनेसे विषमज्वर, पांडुरोग, कोढ, विसर्प, कृमिरोग और बवासीर ये सब रोग दूर होवें ।

लघुफलघृत योनिरोगपर ।

सहाचरेद्वेत्रिफलांगुडूचींसपुनर्नवाम् ॥ शुकनासांहरिद्रेद्वेरास्नां मेदांशतावरीम्॥ ८६ ॥ कल्कीकृत्यघृतप्रस्थंपचेत्क्षीरेचतुर्गुणे ॥ तत्सिद्धंपाययेन्नारींयोनिशूलनिपीडिताम् ॥८७॥ पीडिताचलितायाचानिःसृताविवृताचया ॥ पित्तयोनिश्चविभ्रांता षंढयोनिश्चयास्मृता ॥ ८८ ॥ प्रपद्यंतेहिताःस्थानंगर्भंगृह्णंति चासकृत् ॥ एतत्फलघृतंनामयोनिदोषहरंपरम् ॥ ८९ ॥

अर्थ–१पियावाँसा २ कालेफूलका पियावाँसा ३ हरड ४ बहेडा ५ आमला ६ गिलोय ७ पुनर्नवा ८ टेंटू ९ हलदी १० दारुहलदी ११ रास्ना १२ मेदाके अभावमें मुलहटी तथा १३ सतावर इन तेरह औषधोंका कल्ककर एकप्रस्थ प्रमाण घी लेवे । उसमें पूर्वोक्त कल्क मिलावे । गौका दूध घीसे चौगुना लेय तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते घीसे चौगुना जल मिलावे । फिर

चूल्हेपर चढाय मन्द २ अग्नि देवे जब सब वस्तु जलके केवल घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छानलेवे । इसको जिस स्त्रीके योनिशूल है उसको देवे । मैथुनादिक करके जिसकी योनि पीडित है, जिस स्त्रीकी योनि चलकर पुष्पस्थान भ्रष्टहुई, तथा योनिका मुख बडा होगयाहो उसको देवे । पित्तयोनि विभ्रांतयोनि तथा षंढयोनि (जो गर्भधारण न करे) ऐसी स्त्रीको यह घृत देनेसे संपूर्ण योनिके रोग दूर होकर योनि ठिकानेपर आवे और गर्भ धारण करे। इस घृतको लघुफलघृत कहते हैं । यह घृत योनिके दोष हरणकरनेमें श्रेष्ठ है ।

अथ तैलसाधनप्रकारो लिख्यते लाक्षादितैल ।

लाक्षाढकंक्काथयित्वाजलस्यचतुराढकैः ॥ चतुर्थांशंशृतंनीत्वा तैलप्रस्थंविनिक्षिपेत् ॥ ९० ॥ मस्त्वाढकंचगोदध्नस्तत्रैववि- नियोजयेत् ॥ शतपुष्पामश्वगंधांहरिद्रांदेवदारुच ॥ ९१ ॥ कटुकींरेणुकांमूर्वांकुष्ठंचमधुयष्टिकाम् ॥ चंदनंमुस्तकंरास्नां पृथक्कर्षप्रमाणतः ॥ ९२ ॥ चूर्णयेत्तत्रनिक्षिप्यसाधयेन्मृदुव- ह्निना ॥ अस्याभ्यंगात्प्रशाम्यंतिसर्वेऽपिविषमज्वराः ॥ ९३॥ कासश्वासप्रतिश्यायत्रिकपृष्ठग्रहास्तथा ॥ वातंपित्तमपस्मा- रमुन्मादंयक्षराक्षसान् ॥ ९४ ॥ कंडूंशूलंचदौर्गंध्यंगात्राणां स्फुरणंजयेत् ॥पुष्टगर्भाभवेदस्यगर्भिण्यभ्यंगतोभृशम् ॥९५॥

अर्थ–बेरकी अथवा कूडाकी लाख १ आढक लेके उसमें जल चार आढक डालके औटावे । जब सेरभर जल रहे तब उतारके छान लेवे । इसमें तिल्लीका तेल १ प्रस्थ डाले तथा दहीका तोड़ एक आढक मिलावे । फिर चूर्णकरके डालनेकी औषध इस प्रकार डाले–१ सौंफ २ असगंध ३ हल्दी ४ देवदारु ५ कुटकी ६ रेणुकाबीज ७ मूर्वा ८ कूठ ९ मुलहटी १० सफेद- चंदन ११ नागरमोथा और १२ रास्ना ये बारह औषध एक एक कर्ष लेवे । सबका चूर्णकरके उस तेलमें डालके मंदाग्निसे पचन करावे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके तेलको छान लेवे । इसकी देहमें मालिस करनेसे संपूर्ण विषमज्वर, खाँसी, श्वास, पीनस, कमरका तथा पीठका शूल, वादीका कोप, पित्तका कोप, मृगी, उन्मादरोग, क्षयरोग, राक्षसादिककी पीडा, खुजली, देहमें दुर्गंधका आना, शूल, अंगस्फुरण ये संपूर्ण रोग दूर होंय । गर्भवती स्त्री भी इसे मर्दन करसकती है इससे गर्भ पुष्ट होता है ।

अंगारतैल सर्वज्वरपर ।

मूर्वालाक्षाहरिद्रेद्वेमंजिष्ठासेंद्रवारुणी ॥ बृहतीसैंधवंकुष्ठंरास्ना मांसीशतावरी॥९६॥आरनालाढकेतत्रतैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ तैलमंगारकंनामसर्वज्वरविमोक्षणम् ॥ ९७ ॥

अर्थ-१ मूर्वा २ लाख ३ हल्दी ४ दारुहल्दी ५ मजीठ ६ इन्द्रायणकी जड ७ कटेरी ८ सैंधानमक ९ कूठ १० रास्ना ११ जटामांसी और १२ शतावर ये बारह औषधि समान भाग अर्थात् एक एक कर्ष प्रमाण लेवे सबका चूर्ण करे चार सेर काँजी तथा एक प्रस्थ तिलका तेल इनमें पूर्वोक्त चूर्णको मिलायके औटावे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार ले इस तेलको अंगारतैल कहते हैं इसको मालिश करनेसे सर्वज्वर दूर होवें ।

नारायणतैल सर्ववातपर ।

अश्वगंधाबलाबिल्वंपाटलाबृहतीद्वयम् ॥ श्वदंष्ट्रातिबलेनिंबं स्योनाकंचपुनर्नवाम् ॥ ९८ ॥ प्रसारिणीमग्निमंथंकुर्यादश- पलंपृथक् ॥ चतुर्द्रोणेजलेपक्त्वापादशेषंशृतंनयेत् ॥ ९९ ॥ तैलाढकेनसंयोज्यशतावर्यारसाढकम् ॥ क्षिपेत्तत्रचगोक्षीरं तैलात्तस्माच्चतुर्गुणम् ॥१००॥ शनैर्विपाचयेदेभिःकल्कैर्द्विप- लिकैःपृथक् ॥ कुष्ठैलाचंदनंमूर्वावचामांसीससैंधवैः ॥१०१॥ अश्वगंधाबलारास्नाशतपुष्पेंद्रदारुभिः ॥ पर्णीचतुष्टयेनैवत- गरेणैवसाधयेत् ॥ १०२ ॥ तत्तैलंनावनेऽभ्यंगेपानेबस्तौच- याजयेत् ॥ पक्षाघातंहनुस्तंभंमन्यास्तंभंकटिग्रहम् ॥१०३॥ खल्लत्वंबधिरत्वंचगतिभंगंगलग्रहम् ॥ गात्रशोषेंद्रियध्वंसाव- सृक्छुक्रज्वरक्षयान् ॥ १०४ ॥ अंडवृद्धिंकुरंडंचदंतरोगंशिरो- ग्रहम् ॥ पार्श्वशूलंचपांगुल्यंबुद्धिहानिंचगृध्रसीम् ॥ १०५ ॥ अन्यांश्चविषमान्वाताञ्जयेत्सर्वांगसंश्रयान् ॥ अस्यप्रभावा- द्वंध्यापिनारीपुत्रंप्रसूयते ॥१०६॥ मर्त्योगजोवातुरगस्तैला- भ्यंगात्सुखीभवेत् ॥ यथानारायणोदेवोदुष्टदैत्यविनाशनः ॥ १०७ ॥ तथैववातरोगाणांनाशनंतैलमुत्तमम् ॥

अर्थ-१ असगंध २ गंगेरनकी छाल ३ बेलगिरी ४ पाठ ५ कटेरी ६ बडी कटेरी

७ गोखरू ८ प्रतिबला ९ नीमकी छाल १० टेंटू ११ पुनर्नवा १२ प्रसारणी और १३ अरनी ये तेरह औषध दश २ पल लेवे । इनको जवकूटकरके चार द्रोण जलमें डालके काढा करे। जब चतुर्थांश रहे तब उतारके काढेको छान लेवे । इसमें तिल्लीका तेल १ आढक डाले । शतावरीका रस १ आढक तथा गौका दूध ४ आढक ले उस तेलमें मिलायदेवे । आगे कल्ककरके डालनेकी औषध लिखते हैं जैसे—१ कूठ २ इलायची ३ सफेद चंदन ४ मूर्वा ५ वच ६ जटामांसी ७ सैंधानिमक ८ असगंध ९ गंगेरनकी छाल १० रास्ना ११ सौंफ १२ देवदारु १३ शालपर्णी १४ पृष्ठपर्णी १५ माषपर्णी १६ मुद्गपर्णी और १७ तगर ये सब सतरह औषध दो दो पल लेवे । सबका कल्क करके उस तेलमें मिलाय देवे । फिर इस तेलको चूल्हेपर चढाय मंद मंद अग्निपर रखके परिपाक करे । जब तेलमात्र आयरहे तब उतारके छान लेवे । इस तेलको नारायणतेल कहते हैं । इस तेलको नाकमें डालना, देहमें लगाना, पीना तथा बस्तिकर्म विषयमें योजना करे । इस तेलसे पक्षाघात कहिये अर्धांगवायु, हनुस्तंभ, मन्यास्तंभ, कटिग्रहवायु, खल्लीत्व, बहरापन, पैरोंकी वायु, गलग्रह, कमरकी वायु, हाथ पैर आदि गात्रोंका शोषणकर्ता वायु, चक्षुरादिइन्द्रियोंका नाशकर्ता वायु, रुधिरविकार, धातुक्षयरोग, अंत्रवृद्धि, कुरंड (जिससे अंडकोश बढजावें), दंतरोग, मस्तकका वायु, पार्श्वशूल जिससे पँगुरापना होय वह वायु, बुद्धिभ्रंश और कमरसे लेकर पैर पर्यन्त गृध्रसी इन नामकी वायु होती हैं वह ये संपूर्ण बादीके विकार दूर हों । तथा इसके सिवाय दूसरे विषमवायु छोटे बडे सर्वांगमें अथवा अर्द्धांगमें जो हो वेभी दूर होंय । इस तेलके प्रभावसे वंध्या स्त्रियोंके पुत्र होय । यह तेल अंगमें लगानेसे मनुष्योंको सुख होता है, हाथीके तथा घोडोंके अंगमें लगानेसे उनकेभी बादीके रोग दूर होते हैं । इसमें दृष्टांत है कि जैसे नारायण दैत्योंका नाश करते हैं उसी प्रकार यह नारायणतैल संपूर्ण वातरोगोंका नाश करता है ।

वारुण्यादितैल कंपवायुपर ।

वारुण्याह्योत्तरंमूलंकुट्टितंतुपलत्रयम् ॥ १०८ ॥ पलद्वादशकं तैलंक्षणंवह्नौविपाचितम् ॥ निष्कत्रयंभक्तयुतंसेवेतास्माद्विनश्यति ॥ १०९ ॥ हस्तकंपःशिरःकंपःकंपोमन्याशिराभवः ॥

अर्थ—इन्द्रायणकी उत्तर दिशाके तरफ होनेवाली जड ३ पल ले जवकूटकरके कल्ककरले फिर बारह पल तिलोंके तेलमें इस कल्कको मिलाय औटावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे यह तेल (बलाबलविचारके) तोले तोले भातके साथ खाय तो हस्तकंप शिरःकंप गरदनका हिलना इत्यादिक वातरोग दूर हों ।

---

१ जिस वातमें पैर पिंडरी जाँघ और पहुचा मुरजावें उसको खल्लीवात कहते हैं ।

बलातैल वातादिकोंपर ।

बलामूलकषायेणदशमूलश्रृतेनच ॥ ११० ॥ कुलत्थयवकोलानांक्वाथेनपयसातथा ॥ अष्टाष्टभागयुक्तेनभागमेकंचतैलकम् ॥ १११ ॥ गणेनजीवनीयेनशतावर्यैन्द्रवारुणा ॥ मंजिष्ठाकुष्ठशैलेयतगरागरुसैंधवैः ॥ ११२ ॥ वचापुनर्नवामांसीसारिवाद्वयपत्रकैः॥शतपुष्पाश्वगंधाभ्यामेलयाचविपाचयेत्॥११३॥ गर्भार्थिनीनांनारीणांपुंसांचक्षीणरेतसाम्॥व्यायामक्षीणगात्राणांसूतिकानांचयुज्यते ॥ ११४ ॥ राजयोग्यमिदंतैलंसुखिनांचविशेषतः ॥ बलातैलमितिख्यातंसर्ववातामयापहम् ॥११५॥

अर्थ—खरेंटीकी जड ८ प्रस्थ ले उसमें जल बत्तीस प्रस्थ डाले । फिर चूल्हेपर चढाके चौथाई शेष रहे इस प्रकार काढा करे । इसको छानके धर देवे । तथा दश मूलकी दश औषधोंको मिलायके आठ प्रस्थ लेय उनमें ३२ प्रस्थ जल डालके काढा करे जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेवे तथा १ कुलथी २ जौ और ३ बेरके भीतरका बीज ये तीन औषध पृथक् २ आठ २ प्रस्थ लेके बत्तीस २ प्रस्थ जल डालके चतुर्थावशेष काढा करे और पृथक् २ छानके धर लेवे फिर इन पाचों काढोंको मिलाय इसमें गौका दूध आठ प्रस्थ डाले और तिलीका तेल एक प्रस्थ मिलावे । फिर चूर्ण करके डालनेकी औषध इस प्रकार ले । जैसे ७ जीवनीयगणकी औषध सात, ८ सतावर ९ देवदारु १० मजीठ ११ कूठ १२ पत्थरका फूल १३ तगर १४ अगर १५ सैंधानमक १६ वच १७ पुनर्नवा १८ जटामांसी १९ सफेद सारिवा २० काली सारिवा २१ पत्रज २२ सौंफ २३ असगंध और २४ इलायची ये चौबीस औषध तेलके चतुर्थांश लेकर कल्क करके उस तेलमें डाल देवे । फिर अग्निपर चढायके तेल शेष रहनेपर्यंत औटावे । फिर इसको छान लेवे इसको बलातैल कहते हैं । यह तेल जिस स्त्रीके गर्भकी इच्छा है उसके देहमें लगावे । तथा जिस पुरुषकी धातु क्षीण है उसके तथा बहुत दूर जाने आनेके परिश्रम करके क्षीण है देह जिसका उसके तथा प्रसूता स्त्रियोंके लगावे । यह तेल विशेष करके राजाओं और सुखी मनुष्य सेठसाहूकारोंके योग्य है । इससे संपूर्ण बादीके विकार दूर होते हैं ।

प्रसारिणीतैल वातकफजन्यविकार तथा बादीपर ।

प्रसारिणीपलशतंजलद्रोणेनपाचयेत् ॥ पादशिष्टःश्रृतोग्राह्यस्तैलंदधिचतत्समम् ॥ ११६ ॥ कांजिकंचसमंतैलात्क्षीरंतै-

लाच्चतुर्गुणम् ॥ तैलात्तथाष्टमांशेनसर्वकल्कांश्चयोजयेत्॥११७॥ मधुकंपिप्पलीमूलंचित्रकःसैंधववंचा ॥ प्रसारिणीदेवदारुरा-स्नाचगजपिप्पली ॥ ११८ ॥ भल्लातःशतपुष्पाचमांसीचैभि-र्विपाचयेत् ॥ एतत्तैलंवरंपक्वंवातश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥११९॥ कौब्जखंजत्वपंगुत्वगृध्रसीमर्दिततंतथा ॥ हनुपृष्ठशिरोग्रीवाक-टिस्तंभंचनाशयेत् ॥ १२० ॥ अन्यांश्चविषमान्वातान्सर्वा-नाशुव्यपोहति ॥

अर्थ–प्रसारिणी औषध १०० पल ले उसमें १ द्रोण जल डालके काढा करे । जब चौथाई जल रहे तब उतारके छान लेय । इसमें तेल दही और काँजी ये काढेके समान पृथक् २ लेके मिलावे । फिर तेलसे चौगुना गौका दूध डाले तथा कल्क करके डालनेकी औषधि इस प्रकार लेनी जैसे १ मुलहटी २ पीपरामूल ३ चीतेकी छाल ४ सैंधानमक ५ वच ६ प्रसारणी ७ देवदारु ८ रास्ना ९ गजपीपल १० भिलाए ११ सौंफ और १२ जटामांसी ये बारह औषध तेलके अष्टमांश ले । कल्क करके तेलमें मिलाय देवे । फिर अग्निपर चढायके तेलमात्र शेष रक्खे इसको छानके धर ले इसको देहमें मालिश करे तो वात कफके विकार, जिससे मनुष्य कुबडा होता है वह वायु, खंजवायु, जिससे मनुष्य पांगुला होय सो पंगवायु, गृधसी वायु, हनु (ठोडी) पृष्ठ (पीठ), शिर, गरदन और कमर इनका जकडना ये सब वायु दूर होवें । इसके सिवाय दूसरे विषम वायु जो छोटे बडे हैं वे इस तेलके लगानेसे दूर होवें ।

माषादितैल ग्रीवास्तंभादिकोंपर ।

माषायवातसीक्षुद्रामर्कटीचकुरंटकः॥१२१॥ गोकंटष्टुंटुकश्चै-षांकुर्यात्सप्तपलंपृथक् ॥ चतुर्गुणांबुनापक्त्वापादशेषंशृतंन-येत् ॥ १२२ ॥ कार्पासास्थीनिबदरंशणबीजंकुलत्थकम् ॥ पृथक्चतुर्दशपलंचतुर्द्रोणजलेपचेत् ॥ चतुर्थांशावशिष्टंचगृ-ह्णीयात्काथमुत्तमम् ॥१२३ ॥ प्रस्थैकंछागमांसस्यचतुःषष्टि-पलेजले ॥ निक्षिप्यपाचयेद्धीमान्पादशेषंरसंनयेत् ॥१२४ ॥ तैलप्रस्थेततःक्वाथान्सर्वानेतान्विनिक्षिपेत् ॥ कल्कैरेभिश्चवि-पचेदमृताकुष्ठनागरैः ॥ १२५ ॥ रास्नापुनर्नवैरंडैःपिप्पल्या शतपुष्पया ॥ बलाप्रसारिणीभ्यांचमांस्याकटुकयातथा॥१२६॥

पृथगर्धपलैरेतैःसाधयेन्मृदुवह्निना ॥ हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं ग्रीवास्तंभापबाहुकौ ॥१२७॥ अर्धांगशोषमाक्षेपमूरुस्तंभापतानकौ ॥ शाखाकंपंशिरःकंपंविश्वाचीमर्दितंतथा ॥ १२८॥ माषादिकमिदंतैलंसर्ववातविकारनुत् ॥

अर्थ—१ उडद २ जव ३ अलसीके बीज ४ कटेरी ५ कौंचके बीज ६ पियावांसा ७ गोखरू और ८ टेंटू ये आठ औषध सात २ पल लेवे । सबको जवकूटकर सब औषधोंसे चौगुना जल डालके औटावे । जब चौथाई शेष रहे तब उतारके छान लेवे । १ कपासके बिनौले २ बेलकी गुंठली ३ सनके बीज ४ कुलथी ये चार औषध चौदह २ पल लेवे । इनमें चौगुना जल मिलायके चौथाई जल रहने पर्यंत काढा करे । फिर छानके इसको धर लेवे । पश्चात् बकरेका मांस १ प्रस्थ ले उसमें चौसठ पल जल डालके औटावे । जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेय । फिर तिल्लीका तेल १ प्रस्थ ले और पूर्वोक्त संपूर्ण काढेको एकत्र करके उसमें तेलको मिलाय देवे । इसमें कल्क करके डालनेकी औषध इस प्रकार लेनी—१ गिलोय २ कूठ ३ सोंठ ४ रास्ना ५ पुनर्नवा ६ अंडकी जड ७ पीपल ८ सोंफ ९ खरेंटीकी छाल १० प्रसारणी ११ जटामांसी १२ कुटकी ये बारह औषध आधे २ पल लेय सबका कल्क करके तेलमें मिलाय देवे फिर इसको चूल्हेपर चढाय मंदाग्निसे पचन करे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको माषादि तेल कहते हैं । यह तेल देहमें लगानेसे ग्रीवास्तंभ वायु, अपबाहुकवायु, अर्धांग वायु, आक्षेपक वायु, ऊरुस्तंभ वायु, अपतानक वायु, हस्तपादादि शाखाओंको कँपानेवाला वायु, मस्तक कपानेवाला वायु, विश्वाची वायु, अर्दित वायु, ये संपूर्ण दूर होवें ।

शतावरी तैल शूलादि वाय्वादिकोंपर ।

शतावरीबलायुग्मंपर्ण्यौगंधर्वहस्तकः ॥ १२९ ॥ अश्वगंधाश्वदंष्ट्राचबिल्वःकाशःकुरंटकः ॥ एषांसार्धपलान्भागान्कल्पयेच्च विपाचयेत् ॥ १३० ॥ चतुर्गुणेननीरेणपादशेषंशृतंनयेत् ॥ नियोज्यतैलप्रस्थेचक्षीरप्रस्थंविनिक्षिपेत् ॥१३१॥ शतावरीरसप्रस्थंजलप्रस्थंचयोजयेत् ॥ शतावरीदेवदारुमांसीतगरचंदनम् ॥ १३२ ॥ शतपुष्पाबलाकुष्ठमेलाशैलेयमुत्पलम् ॥ ऋद्धिर्मेदाचमधुकंकाकोलीजीवकस्तथा ॥ १३३ ॥ एषांकर्षसमैःकल्कैस्तैलंगोमयवह्निना ॥ पचेत्तेनैवतैलेनस्त्रीषुनित्यं

वृषायते ॥ १३४ ॥ नारीचलभतेपुत्रंयोनिशूलंचनश्यति ॥ अंगशूलंशिरःशूलंकामलांपांडुतांगरम् ॥ १३५ ॥ गृध्रसींप्लीहशोषांश्चमेहान्दंडापतानकम् ॥ सदाहंवातरक्तंचवातपित्तगदार्दितम् ॥ १३६ ॥ असृग्दरंतथाध्मानंरक्तपित्तंचनश्यति ॥ शतावरीतैलमिदंकृष्णात्रेयेणभाषितम् ॥ १३७ ॥ नारायणायस्वाहा ॥ उत्तराभिमुखोभूत्वाखनेत्खदिरशंकुना ॥ सर्वव्याधिनाशनीयेस्वाहाइतिउत्पाटनमंत्रः ॥ कुमारजीवनीयेस्वाहा ॥ इति पाचनमंत्रः ॥

अर्थ–१ शतावर २ खरेंटीकी जड ३ गंगेरन ४ शालपर्णी ५ पृष्ठपर्णी ६ अंडकी जड ७ असगंध ८ गोखरू ९ बेलकी जड १० काँसकी जड ११ पियावांसा ये ग्यारह औषध डेढ २ पल लेवे उनमें चौगुनाजल डालके औटावे जब चौथाई जल रहे तब उतारके छान लेवे। इसमें तिलका तेल १ प्रस्थ, गौका दूध १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ और जल १ प्रस्थ सबको मिलायके एकत्र करे। इसमें कल्क करके डालनेकी औषधि लिखता हूं–१ शतावर २ देवदारु ३ जटामांसी ४ तगर ५ सफेद चंदन ६ सोंफ ७ खरेंटीकी जड ८ कूट ९ इलायची १० पथरका फूल ११ कमल १२ ऋद्धिके अभावमें वाराहीकंद १३ मेदाके अभावमें मुलहटी १४ मुलहटी १५ काकोलीके अभावमें असगंध १६ जीवकके अभावमें विदारीकंद ये सोलह औषधि एक २ कर्ष ले सबका कल्क करके उस तेलमें डालके गौके आरने उपलोंकी मंदाग्निसे तेलको सिद्ध करे। जब तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेवे इसको शतावरी तेल कहते हैं यह तेल कृष्णात्रेय ऋषिनें कहा है। इसको मालिस करनेसे पुरुष स्त्रियोंको नित्य अत्यंत प्रीतिके साथ भोगे तथा स्त्रियोंके देहमें लगानेसे पुत्रकी प्राप्ति होय, योनिशूल, अंगशूल, मस्तकशूल, कामला, पांडुरोग, ज्वरबाधा, गृध्रसीरोग, तिल्ली, शोष, प्रमेह, दंडापतानक, वायु, दाहयुक्त वातरक्त तथा वातपित्तज्वर करके स्त्रियोंको प्रदर होता है सो, पेटका फूलना और रक्तपित्त ये संपूर्ण रोग दूर हों। अब वनमेंसे शतावर लानेका प्रकार कहते हैं कि,–(नारायणाय स्वाहा) इस प्रकार कहके और नमस्कार कर उत्तरकी तरफ मुख करके खैरकी कीलके समान लकडीसे शतावरको खोद। तथा (सर्वव्याधिनाशिनीये स्वाहा) इस प्रकार कहके और नमस्कार करके उसको उखाडे तथा (कुमारीजीवनींये स्वाहा) ऐसे कहके और नमस्कार करके इसका पाककरे। इतिशतावरी तैलम्।

कासीसादितैल बवासीरपर।

कासीसंलांगलीकुष्ठंशुंठीकृष्णाचसैंधवम्॥१३८॥मनःशिला

श्वमारश्चविडंगंचित्रकोवृषः ॥ दंतीकोशातकीबीजहेमाह्वाहरि-
तालकाः ॥१३९॥ कल्कैःकर्षमितैरेतैस्तैलप्रस्थंविपाचयेत्॥
सुधार्कपयसीदद्यात्पृथग्द्विपलसंमिते ॥ १४० ॥ चतुर्गुणंग-
वांमूत्रंदत्त्वासम्यक्प्रसाधयेत् ॥ कथितंखरनादेनतैलमर्शोवि-
नाशनम् ॥१४१॥ क्षारवत्पातयत्येतदर्शांस्यभ्यंगतोभृशम् ॥
वलीर्नदूषयत्येतत्क्षारकर्मकरंस्मृतम् ॥ १४२ ॥

अर्थ—१ हीराकसीस २ कलयारी ३ कूठ ४ सोंठ ५ पीपल ६ सैंधानमक ७ मनसिल ८ सफेद कनेर ९ वायविडिंग १० चीतेकी छाल ११ अडूसा १२ दंती १३ कडुईतोरईके बीज १४ चौक और १५ हरताल ये १५ औषध एकएक कर्षभर ले सबका कल्क करके तिलके १ प्रस्थ तेलमें मिलाय देवे । थूहरका दूध तथा आकका दूध ये दोनों दो दो पल ले सबको तेलमें मिलाय देवे और तेलसे चौगुना गौका मूत्र ले इसको भी तेलमें मिलाय अग्निपर चढायके पाक करे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे यह तेल खरनादऋषिने कहाहै यह बवासीरके मस्सोंपर क्षार लगानेके समान लगावे । इसके लेपसे गुदाके भीतरके मस्से बिना उपद्रवके जडसे उखडके गिर जावें और यह क्षारके समान गुदाकी वलीनको नहीं बिगाड़ता ।

पिंडतेल वातरक्तपर ।

मंजिष्ठासारिवासर्जयष्टीसिक्थैःपलोन्मितैः ॥
पिंडाख्यंसाधयेत्तैलमैरंडंवातरक्तनुत् ॥ १४३ ॥

अर्थ—१ मजीठ २ सारिवा ३ रार ४ मुलहटी ५ मोम इन औषधोंको एक २ पल ले कल्क करे चौगुना अंडीका तेल लेकर पूर्वोक्त कल्कको मिलायदे और पाक होनेके वास्ते कल्कसे चौगुना जल डाले । फिर अग्निपर रखके तेल सिद्ध करे तथा इसमें मोम डाले । जब तेल मात्र रहे तब उतारके छानलेवे । यह मल्हम जिस मनुष्यके वातरक्त रोग होय उसके लगाना चाहिये तो वातरक्त रोग दूर होवे ।

अर्कतैल खुजली और फोडाआदिपर ।

अर्कपत्ररसेपक्वंहरिद्राकल्कसंयुतम् ॥
नाशयेत्सार्षपंतैलंपामांकच्छूंविचर्चिकाम् ॥ १४४ ॥

अर्थ—हल्दीका कल्क करके उस कल्कका चौगुना सरसोंका तेललेवे । उसमें कल्कसे

मिलाय तथा तेलसे चौगुना आकके पत्तोंका रस डालके तेलको परिपक्वकरे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छानलेवे इसको देहमें लगानेसे खुजली कच्छू दाद पैर फूटकर दरा पडजावे वो और विचर्चिका रोग दूर होय।

मरिचादितैल कुष्ठादिकोंपर।

मरिचंहरितालंचत्रिवृतंरक्तचंदनम् ॥ १४५ ॥ मुस्तंमनःशिलामांसीद्वेनिशेदेवदारुच ॥ विशालाकरवीरंचकुष्ठमर्कपयस्तथा ॥ १४६ ॥ तथैवगोमयरसंकुर्यात्कर्षमितान्पृथक् ॥ विषंचार्धपलंदेयंप्रस्थंचकटुतैलकम् ॥ १४७ ॥ गोमूत्रंद्विगुणंदद्याज्जलंचद्विगुणंभवेत्॥मरिचाद्यमिदंतैलंसिध्मकुष्ठहरंपरम् ॥१४८॥ जयेत्कुष्ठानिसर्वाणिपुंडरीकंविचर्चिकाम् ॥ पामांसिध्मानिरक्तंचकंडूंकच्छूंप्रणाशयेत् ॥ १४९ ॥

अर्थ–१ कालीमिरच २ हरताल ३ निशोथ ४ लालचन्दन ५ नागरमोथा ६ मनसिल ७ जटामांसी ८ हल्दी ९ दारुहल्दी १० देवदारु ११ इन्द्रायनकी जड १२ कनेरकी जड १३ कूठ १४ आकका दूध १५ गौके गोबरका रस ये पंद्रह औषध एक एक कर्ष लेवे, तथा शुद्धकिया हुआ बच्छनागविष आधापल लेवे सबको एकत्रपीस कल्ककरके सरसोंके १ प्रस्थ तेल में मिलायदे। तथा तेलसे दुगुना गोमूत्र और पानी डालके औटावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसकी देहमें मालिस करनेसे सिध्म कुष्ठ आदि संपूर्ण कुष्ठ दूर हों पुंडरीक नामक कुष्ठ, विचर्चिका, खुजली, चित्रकुष्ठ, कंडू, रक्तकुष्ठ और फोडा ये संपूर्ण रोग दूर होवें।

त्रिफलातैल व्रणपर।

**त्रिफलारिष्टभूनिंबद्वेनिशेरक्तचंदनम् ॥
एतैःसिद्धमहर्षीणांतैलमभ्यंजनेहितम् ॥ १५० ॥**

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ नीमके छाल ५ चिरायता ६ हल्दी ७ दारुहल्दी और लाल चंदन इन आठ औषधोंका कल्क करके तथा कल्कसे चौगुना तिलका तेल लेवे इसमें कल्कको डाले। कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते कल्कसे चौगुना जल डालके औटावे। जब केवल तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेय जिस मनुष्यके अंगपर बहुत व्रण (फोडे) हों तथा मुंडमें फोडा होवे उसके लगावे तो सर्व व्रण दूर हों।

निंबबीजतैल पलित रोगपर।

भावयेन्निंबबीजानिभृंगराजरसेनहि ॥ तथासनस्यतोयेनतत्तैलं

हन्तिनस्यतः॥१६१॥अकालपलितंसद्यःपुंसांदुग्धान्नभोजिनाम्॥

अर्थ-नीमके बीजोंमें भाँगरेके रसकी पुट दे तथा विजैसारकी छालका रस निकालके पुट देवे फिर उनका यंत्रद्वारा तेल निकाल लेवे। इस तेलकी नस्य लेय और पथ्यमें गौका दूध और भात देवे तो जिस मनुष्यके अकालमें सफेद बाल होगएहों वे तत्काल काले भौंराके समान होजावें।

मधुयष्टीतैल बालआनेपर।

यष्टीमधुकक्षीराभ्यांनवधात्रीफलैःशृतम्॥ १६२॥
तैलंनस्यकृतंकुर्यात्केशान्छमश्रूणिसर्वशः॥

अर्थ-मुलहटी और नवीन गीले आँवले इन दोनोंका कल्क करे तथा कल्कसे चौगुना तिलोंका तेल लेवे। कल्कको मिलायके तेलसे चौगुना गौका दूध तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल डाले। सबको एकत्र कर अग्निपर चढायके पाक करे। जब तेल मात्र रहे तब उतारके तेलको छान ले। इसकी नस्य देनेसे इस प्राणीके मस्तकके तथा मूँछ डाढीके बाल जो उडगए हैं वह जम जावें।

करंजादितैल इन्द्रलुप्तपर।

करंजश्चित्रकोजातिकरवीरश्चपाचितम्॥ १६३॥
तैलमेभिर्द्रुतंहन्यादभ्यंगादिंद्रलुप्तकम्॥

अर्थ-१ करंजेकी छाल २ चीतेकी छाल ३ चमेलीके पत्ते ४ कनेरकी जड ये चार औषध ले कल्क करे तथा कल्कका चागुना तिल्लीका तेल ले उसमें कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेकेवास्ते तेलसे चौगुना जल डालके औटावे। जब तेल मात्र शेषरहे तब छानके धर रक्खे यह तेल जिस मनुष्यके मस्तकके अथवा डाढी मूँछके बाल जाते रहे (उस रोगको इन्द्रलुप्त कहते हैं उसपर लगानेसे तत्काल बाल जम जावें।

नीलिकादितैल पलितदारुणआदि रोगोंपर।

नीलिकाकेतकीकन्दंभृंगराजःकुरंटकः॥ १६४॥ तथार्जुनस्य पुष्पाणिबीजकात्कुसुमान्यपि॥ कृष्णास्तिलाश्चतगरंसमूलंकमलंतथा॥ १६५॥ अयोरजःप्रियंगुश्चदाडिमत्वग्गुडूचिका॥ त्रिफलापद्मपंकश्चकल्कैरेभिःपृथक्पृथक्॥ १६६॥ कर्षमात्रंपचेत्तैलंत्रिफलाक्वाथसंयुतम्॥ भृंगराजरसेनैवासिद्धंकेशास्थिरीकृतम्॥ १६७॥ अकालपलितंहंतिदारुणंचोपजिह्विकम्॥

अर्थ-१ नीलके पत्ते २ केतकीका कंद ३ भाँगरा ४ पियावांसा ५ कोहवृक्षके फूल ६ बिजैसारके फूल ७ काले तिल ८ तगर ९ कंदसहित कमल १० लोहचूर्ण ११ फूलप्रियंगु १२ अनारकी छाल १३ गिलोय १४ हरड १५ बहेडा १६ आंवला और १७ कमलसंबंधी कीच ये सत्रह औषध एक एक प्रमाण लेवे । कल्क करके कल्कका चौगुना तिलका तेल लेवे । इसमें वह कल्क डालके तिलके चौगुना त्रिफलेका काढा तथा भांगरेका रस मिलायके औटावे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको बालोंमें लगावे तो जमरूर दृढ होवें । जिस प्राणीके बाल कुसमयमें सफेद हो गये हों वह इस तेलको लगावे तो काले होजावें और मस्तकमें जो दारुण रोग होता है वह उपजिह्व रोग ये दूर होवें । यह बालोंमें लगानेसे कल्पके समान चमत्कार दिखाता है ।

भृंगराजतैल पलितादिरोगोंपर ।

भृंगराजरसेनैवलोहकिट्टंफलत्रिकम् ॥ १५८ ॥ सारिवांच-पचेत्कल्कैस्तैलंदारुणनाशनम् ॥ अकालपलितंकंडूमिंद्रलु-प्तंचनाशयेत् ॥ १५९ ॥

अर्थ-१ लोहकी कीट अर्थात् मल २ हरड ३ बहेडा ४ आँवला और ५ सारिवा इन पांच औषधोंका कल्क करे । इस कल्कसे चौगुना तिलका तेल ले उसमें कल्कको मिलाय भाँगरेका रस डालके पकावे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेय । इस तेलको मस्तकमें लगानेसे दारुण रोग दूर हो । तथा जिस मनुष्यके छोटी अवस्थामें सफेद बाल होगए हों वह इस तेलके लगानेसे काले हों, कंडूरोग दूर हो, मस्तकके डाढीके और मूँछोंके बार जो झड गये हों वह ठौर चिकनी होगई हो उस जगहपर भी बाल जम जावें वही कल्प है ।

अरिमेदादितैल मुखदंतादिरोगोंपर ।

अरिमेदत्वचंक्षुण्णांपचेच्छतपलोन्मिताम्॥जलेद्रोणेततःक्वाथं गृह्णीयात्पादशेषितम् ॥ १६० ॥ तैलस्यार्धाढकंदत्त्वाकल्कैः कर्षमितैःपचेत्॥अरिमेदलवंगाभ्यांगैरिकागरुपद्मकैः॥१६१॥ मंजिष्ठालोध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः ॥ त्वग्जातिफलक-र्पूरकंकोलखदिरैस्तथा॥१६२॥ पतंगधातकीपुष्पसूक्ष्मैलाना-गकेशरैः ॥ कट्फलेनचसंसिद्धंतैलंमुखरुजंजयेत् ॥ १६३ ॥ मदुष्टमांसंपलितंशीर्णदंतंचसौषिरम्॥ शीतादंदंतहर्षंचविद्रधिं

कृमिदंतकम्॥१६४॥दंतस्फुटनदौर्गंध्येजिह्वाताल्वोष्ठजांरुजम्॥

अर्थ–१ काले खैरकी छाल १०० पलको जवकूट करके १ द्रोण जल डालके औटावे जब चतुर्थांश रहे तब उतारके छान लेय । इसमें तिलका तेल आधा आढक डाले । तथा इसमें चूर्ण करके डालनेकी औषधि इस प्रकार ले–१ काले खैरकी छाल २ लौंग ३ गेरू ४ अगर ५ पद्माख ६ मजीठ ७ लोध ८ मुलहटी ९ लाख १० नागरमोथा ११ वडकी छाल १२ दालचीनी १३ जायफल १४ कपूर १५ कंकोल १६ सफेद खैरकी छाल १७ पतंग १८ धायके फूल १९ इलायची २० नागकेशर और २१ कायफल ये इक्कीस औषध एक एक कर्ष लेवे । इनका कल्क करके उसको १ प्रस्थ तेलमें मिलायके औटावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको मुखसंबंधी पीडापर, दाँतोंका मांस दुष्ट होनेसे उसपर, दाँतोंके हिलनेपर तथा दाँतोंमें छिद्र पडके दूखते हों उसपर, दाँतोंकी सूजन होनेसे लाल होजावें उस पर, श्यावदन्तरोग, दाँतोंसे शीतल रूखा खट्टा पदार्थ तथा घोर वायु न सही जावे ऐसा प्रहर्ष नामक दंतरोग है वह तथा दंतविद्रधिपर, दंतसंबंधी रक्त कृमिरोग इनके दुष्ट होनेसे डाढोंमें काले छिद्र होकर उनसे राध आदि निकलना उसपर, कृमिदंतके रोगपर दंतस्फुटन रोग, दाँतोंमें दुर्गंधका आना तथा जीभ तालु होठ इनके रोगपर भी लगावे तो ये संपूर्ण विकार दूर होवें ।

जात्यादितैल नाडीव्रणादिकोंपर ।

जातिनिंबपटोलानांनक्तमालस्यपल्लवाः॥१६५॥ सिक्थंसमधुकंकुष्ठंद्वेनिशेकटुरोहिणी॥ मंजिष्ठापद्मकंलोध्रमभयानीलमुत्पलम् ॥ १६६ ॥ तुत्थकंसारिवाबीजंनक्तमालस्यदापयेत् ॥ एतानिसमभागानिपिष्ट्वातैलंविपाचयेत् ॥ १६७ ॥ नाडीव्रणेसमुत्पन्नेस्फोटकेकच्छुरोगिषु ॥ सद्यःशस्त्रप्रहारेषुदग्धविद्धेषुचैवहि ॥ १६८ ॥ नखदंतक्षतेदेहेव्रणेदुष्टेप्रशस्यते ॥

अर्थ–चमेली नीम परवल और कंजा इनके कोमल २ पत्ते और मोम मुलहटी कूठ हलदी दारुहल्दी कुटकी मजीठ पद्माख लोध हरड नीलेकमल सारिवा अमलतासके बीज ये सब एक २ तोले लेवे । सबका चूर्णकर १ प्रस्थ तिल्लीके तेलमें इनको पूर्वोक्त विधिसे पचावे । इस तेलकी मालिससे नाडीव्रण (नासूर), फोडा, जखम, शस्त्रप्रहारजन्य घाव, दग्ध व्रण, नखादिकसे हुआ व्रण इत्यादि सब नष्ट होवें ।

हिंग्वादितैल कर्णशूलपर ।

हिंगुतुंबरुशुंठीभिःकटुतैलंविपाचयेत् ॥ १६९ ॥

तस्यपूरणमात्रेणकर्णशूलंप्रणश्यति ॥

अर्थ–१ हींग २ धनिया ३ सोंठ इन तीन औषधोंका कल्क करके उस कल्कसे चौगुना सरसोंका तेल ले उसमें कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। सबको मिलायके पाक करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको कानमें डाले तो कर्णशूल दूर होय।

बिल्वादितैल बधिरपनपर।

बालबिल्वानिगोमूत्रेपिष्ट्वातैलंविपाचयेत् ॥ १७० ॥ साजक्षीरंचनीरंचबाधिर्यंहंतिपूरणात् ॥

अर्थ–कोमल २ बेलके फलोंको गोमूत्रमें पीस कल्क करे उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल ले उसमें बेलफलके कल्कको मिलावे। तथा तेलसे चौगुना बकरीका दूध एवं कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। फिर चूल्हेपर चढायके पारिपाक करे। जब तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेय। इसको कानमें डाले तो बहरापन दूर होवे।

क्षारतैल कर्णस्रावादिकोंपर।

बालमूलकशुंठीनांक्षारःक्षारयुतंतथा ॥ १७१ ॥ लवणानिचपंचैवहिंगुशिग्रुमहौषधम् ॥ देवदारुवचाकुष्ठंशतपुष्पारसांजनम् ॥ १७२ ॥ ग्रंथिकंभद्रमुस्तंचकल्कैःकर्षमितैःपृथक् ॥ तैलंप्रस्थंचविपचेत्कदलीबीजपूरयोः ॥ १७३ ॥ रसाभ्यांमधुसूक्तेनचातुर्गुण्यमितेनच ॥ पूयस्रावंकर्णनादंशूलंबधिरतां कृमीन्॥१७४॥अन्यांश्चकर्णजान्रोगान्मुखरोगांश्चनाशयेत् ॥

अर्थ–१ कोमल मूलियोंका खार २ सज्जीखार ३ जवाखार ४ सैंधानमक ५ सोंचर निमक ६ समुद्रका निमक ७ बिडनोन ८ बांगडकाखार ९ हींग १० सहजनेकी छाल ११ सोंठ १२ देवदारु १३ सौंफ १४ बच १५ रसोत १६ पीपरामूल १७ नागरमोथा ये सत्रह औषध एक एक कर्ष लेकर सबका कल्क करे। उस कल्कका चौगुना तिलका तेल ले इसमें कल्कको मिलावे। और तेलसे चौगुना केलाके कंदका रस तथा बिजोरेका रस एवं मधुसूक्त[1] ये उस तेलमें मिलाय चूल्हेपर चढायके पाक करे। जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको कानमें डालनेसे कानसे रायका बहना दूर होय तथा कर्णनाद कर्णशूल और

---

१ कागदी नींबूका रस १ प्रस्थ तथा एक कुडव सहत उसमें डाले एवं पीपलका चूर्ण एक पल डाल किसी मिट्टीके पात्रमें भरके उसका मुख बंद करे मिट्टीसे लहेश देवे। फिर एक महीने पर्यंत धानकी राशिमें धरा रहने दे इसको मधुसूक्त कहते हैं।

बधिरता (बहरापन) दूर होय। इसके शिवाय और जो अनेक प्रकारके कर्णरोग उत्पन्न होते हैं वे तथा मुखके रोग इससे दूर होते हैं॥

पाठादितैल पीनसरोगपर।

पाठाद्वेचनिशेमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः॥ १७५॥
दंत्याचतैलंसंसिद्धंनस्यंस्याद्दुष्टपीनसे॥

अर्थ–१ पाठकी जड २ हल्दी ३ दारुहल्दी ४ मूर्वा ५ पीपल ६ चमेलीके पत्ते ७ दंतीकी जड ये सात औषध समान भाग ले कल्क करे। उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल लेके कल्क मिलाय देवे। तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल मिलावे फिर चूल्हेपर चढायके मंदाग्निसे पचावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान ले। इसकी नस्य देय तो घोर दुर्धर पीनसका रोग दूर होवे।

व्याघ्रीतैल पूय और पीनसरोगपर।

व्याघ्रीदंतीवचाशिग्रुतुलसीव्योषसैंधवैः॥ १७६॥
कल्कैश्चपाचितंतैलंपूतिनासागदापहम्॥

अर्थ–१ कटेरी २ दंतीकी जड ३ वच ४ सहजनेकी छाल ५ तुलसीके पत्ते ६ सोंठ ७ काली मिरच ८ पीपर और ९ सैंधानमक इन नौ औषधोंको समान भाग ले कल्क करे। कल्कसे चौगुना तिल्लीका तेल लेवे उसमें कल्कको मिलाय देवे। तथा कल्कका उतम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल मिलावे। फिर इसको मंदाग्निपर पचन करे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। जिस मनुष्यके नाकमें पीनस रोग होनेसे राध बहती होय उसको इसकी नस्य देवे तो पीनसका रोग दूर होय।

कुष्ठतैल छींकआनेपर।

कुष्ठंबिल्वकणाशुंठीद्राक्षाकल्ककषायवत्॥ १७७॥
साधितंतैलमाज्यंवानस्यात्क्षवथुनाशनम्॥

अर्थ–१ कूठ २ कोमल बेलफल ३ पीपर ४ सोंठ ५ दाख ये पांच औषध समान भाग ले कल्क करके उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल अथवा घी ले उसमें कल्कको मिलादे कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल मिलावे फिर इसको मधुरी अग्निसे सिद्धकरे जब तेलमात्र रेह तब उतारके छान लेवे इस तेलको जिस प्राणीको अत्यंत छींक आतीहोय उसके नाकमें डाले तो बहुत छींकोंका आना बंद होये।

गृहधूमादितैल नासार्शपर।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैंधवैः॥ १७८॥
सिद्धंशिखरिबीजैश्चतैलंनासार्शसांहितम्॥

अर्थ-१ चूल्हेके ऊपरका धूआँ २ पीपल ३ देवदारु ४ जवाखार ५ कंजेकी छाल ६ सैंधा-नमक और ७ ओंगाके बीज ये सात औषध समानभाग ले कल्क करे। कल्कका चौगुना तिल-का तेल लेके उसमें कल्कको मिलाय देवे तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। फिर मधुरी अग्निसे सिद्धकरे। जब केवल तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेवे। इसको जिस मनुष्यकी नाकमें मांसका मस्सा होय उसको नस्य देवे तो मस्सा टूटके गिरजावे। इस नाकके मस्सेको नासार्श अर्थात् नाककी बवासीर कहते हैं।

वज्रीतैल सर्वकुष्ठोंपर।

वज्रीक्षीररविक्षीरंद्रवंधत्तूरचित्रकम् ॥१७९॥ महिषीविड्भवंद्रा-वंसर्वांशंतिलतैलकम् ॥ पचेत्तैलावशेषंचगोमूत्रेऽथचतुर्गुणे ॥ ॥१८०॥ तैलावशेषंपक्त्वाचतत्तैलंप्रस्थमात्रकम् ॥गंधकाग्नि-शिलातालंविडंगातिविषाविषम्॥१८१॥ तिक्तकोशातकीकुष्ठं वचामांसीकटुत्रयम् ॥पीतदारुचयष्ट्याह्वंसर्जिकाक्षारजीरकम् ॥१८२॥ देवदारुचकर्षांशंचूर्णंतैलेविनिक्षिपेत्॥ वज्रतैलमिति ख्यातमभ्यंगात्सर्वकुष्ठनुत् ॥ १८३ ॥

अर्थ-थूहरका दूध, आकका दूध, धत्तूरेका रस, चीतेका रस, भैंसके गोबरका रस ये संपूर्ण रस समानभाग, तथा तिलोंका तेल सब रसोंके समान ले। इसमें पूर्वोक्त रसोंको मिलायके मंदा-ग्निपर पचन करे। जब तेलमात्र रहे तब तेलसे चौगुना गोमूत्र डालके औटावे। जब तेलमात्र रहे तब उतारके छानलेय। फिर इसमें इतनी औषध मिलावे सो लिखते हैं-१ गंधक २ चीतेकी छाल ३ मनशिल ४ हरताल ५ वायविडंग ६ अतीस ७ शुद्धकियाहुआ सिंगिया विष ८ कडुई तोरई ९ कूट १० वच ११ जटामांसी १२ सोंठ १३ कालीमिरच १४ पीपल १५ दारुहल्दी १६ मुलहटी १७ सज्जीखार १८ जीरा १९ देवदार ये उन्नीस औषध एक एक कर्ष ले सबका बारीक चूर्ण करके उस तेलमें मिलायके तेलकी मालिश करे तो संपूर्ण कुष्ठ दूर होवे।

करवीरादितैल लोमशातनपर।

करवीरंशिफांदंतींत्रिवृत्कोशातकीफलम् ॥ रंभाक्षारोदकेतैलंप्रशस्तंलोमशातनम् ॥ १८४ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने तैलकल्पनानाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अर्थ–१ कनेरकी जड २ दंतीकी जड ३ निसोथ ४ कडुई तोरई इन चारऔषधोंका कल्क करके उसमें चौगुना तिलोंका तेल मिलायदे फिर केलाके कंदकी राख करके उसका क्षार निकाल लेवे। उस क्षारको तेलसे चौगुना जल डालके औटावे। जब तेलमात्र रहे तब उतारके छानलेय। इस तेलको जिस जगहके बाल दूरकरने हों उस जगह लगावे तो बाल उखडकर गिरजावें।

इति श्रीशार्ङ्गधरे श्रीमाथुरीभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.

द्रवेषुचिरकालस्थंद्रव्यंयत्संधितंभवेत् ॥ आसवारिष्टभेदैस्तत्प्रोच्यतेभेषजोचितम् ॥ १ ॥ यदपक्कौषधांबुभ्यांसिद्धंमद्यं स आसवः ॥ अरिष्टःक्काथसिद्धःस्यात्तयोर्मानंपलोन्मितम्॥२॥ अनुक्तमानारिष्टेषुद्रवद्रोणेतुलागुडम् ॥ क्षौद्रंक्षिपेद्गुडादर्धंप्रक्षेपंदशमांशकम् ॥ ३ ॥ ज्ञेयःशीतरसःसीधुरपक्कमधुरद्रवैः ॥ सिद्धःपक्करसः सीधुः संपक्कमधुरद्रवैः ॥४॥ परिपक्कान्नसंधानसमुत्पन्नांसुरांजगुः ॥ सुरामंडः प्रसन्नास्यात्ततःकादंबरीघना॥ ॥ ५ ॥ तदधोजगलोज्ञेयोमेदकोजगलाद्घनः ॥ पुक्कसोहृतसारः स्यात्सुराबीजंचकिण्वकम् ॥ ६ ॥ यत्तालखर्जूररसैः संधितासाहिवारुणी ॥ कंदमूलफलादीनिसस्नेहलवणानिच॥७॥ यत्रद्रवेऽभिषूयंतेतत्सूक्तमभिधीयते ॥ विनष्टमम्लतांयातंमद्यंवामधुरद्रवः ॥ ८॥ विनष्टः संधितोयस्तुतच्चुक्रमभिधीयते ॥ गुडांबुनासतैलेनकंदमूलफलैस्तथा॥ ९ ॥संधितंचाम्लतांयातंगुडसूक्तंतदुच्यते ॥ एवमेवेक्षुसूक्तंस्यान्मृद्वीकासंभवंतथा ॥ ॥ १० ॥ तुषांबुसंधितंज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः ॥ यवैस्तुनिस्तुषैः पक्कैःसौवीरंसंधितंभवेत् ॥ ११ ॥कुल्माषधान्यमंडादिसंधितंकांजिकंविदुः ॥ शंडाकीसंधिताज्ञेयामूलकैःसर्षपादिभिः॥१२॥

अर्थ-जल आदि द्रव (पतले) पदार्थोंमें औषधको भिगो देवे। फिर उसके मुखको बंद कर मुद्रा देकर १ महीने वा १५ दिनतक उसी रीतिसे धरा रहने देवे तो यह उत्कृष्ट औषध हो वह आसव अरिष्ट इत्यादि भेदोंसे प्रसिद्ध है ये सब भेद इस प्रकार जानने । १ जल और औषध इनका विना पाक करेही पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध करे उसको आसव कहते हैं। २ काढा करके उसमें औषधोंको डालके पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध किया जावे उसको अरिष्ट कहते हैं । इनकी मात्रा १ पलप्रमाण है । जिस अरिष्ट प्रयोगमें जलादिकोंका मान (तोले) नहीं कहा उसमें जलादिक द्रव पदार्थ एक द्रोण डालने चाहियें और उसमें गुड १ तुला (१०० पल) डाले। तथा सहत अर्ध तुला (५० पल) डाले । एवं यदि औषधोंका चूर्ण डालना होय तो गुडके दशमांश डालके अरिष्टको सिद्ध करे । ३ अपक्व ईखके रस आदि मधुर पदार्थोंसे सिद्ध किये हुये मद्यको शीतरस सीधु कहते हैं । ईख आदि मधुर द्रव पदार्थोंको पकायके जो मद्य बनाते हैं उसको पक्वरस सीधु कहते हैं। ५ तंडुल (चावल) आदि धान्यको उबालके अग्निसंयोग करके यंत्रद्वारा जो मद्य बनाते हैं उसको शास्त्रमें सुरा (दारू) कहते हैं। ६ उस सुराके घन (संघट्ट) भागको कादंबरी कहते हैं । ७ और उस सुराके नीचे भागमें जो द्रव (पतला) पदार्थ है उसको जगल कहते हैं । ८ उस जगलमें जो घन (गाढा) भाग है उसको मेदक कहते हैं । ९ मेदकका सार (सत्व) निकले हुए भागको पुक्कस कहते हैं। १० सुराबीजको किण्वक कहते हैं। ११ ताड अथवा खजूरके रससे अग्निसंयोगसे यंत्रद्वारा जो रस खींचते हैं उसको मद्य और वारुणी कहते हैं । लौकिकमें इसको ताडी और खिजूरी दारू कहते हैं। १२ कंदमूल फलादिकको उबालके तैलादिक स्नेह करके मिश्रित कर जल अथवा सिरका आदिमें डालते हैं उसको सूक्त कहते हैं । और लौकिकमें इसको आचारसंधान कहते हैं। १३ जो मद्य विना खटाईके आए अथवा विना खट्टे हुए मधुर द्रव पदार्थोंको पात्रमें भरके उनका मुख बंद कर उसपर मुद्रा देकर १ महीने अथवा पंद्रह दिन धरा रहनेसे सिद्ध हुए मद्यको चुक्र ऐसे कहते हैं। १४ गुड जल तेल कंद मूल और फल इन सबको किसी पात्रमें भरके उसके मुखको बंद कर मुद्रा देकर महिने या पक्ष मात्र धरा रहने देवे । जब खट्टा होजाय तब अपने कार्यमें लावे उसे गुडसूक्त कहते हैं। इसी प्रकार ईख और दाखका सूक्त बनाना चाहिये । १५ कच्चे जवोंको भूनके किसी पात्रमें भरके उसमें पानी डालके उस पात्रके मुखपर मुद्रा देकर कुछ दिन धरा रहने दे उसको तुषांबु कहते हैं । १६ जवोंके तुष दूर करके उनको अग्निपर पकावे । फिर उनमें पानी डालके उस पात्रका मुख बंद कर मुद्रा कर कुछ दिन धरा रहने देवे। उसको सौवीर कहते हैं। १७ कुलथी अथवा चावलोंमें पानी डालके सिजाय उसका मंड (माँड) काढ उसमें सोंठ राई जीरा हींग सैंधानमक हल्दी इत्यादिक पदार्थ डालके मुख मूँदके मुद्रा कर तीन दिन या चार दिन धरा रहने दे उसको काँजी कहते हैं। १८ मूलीको कतरके उसमें पानी डालके हल्दी हींग

राई सैंधानमक जीरा सोंठ इत्यादिकोंका चूर्ण डाल पात्रका मुख बंदकर ३–४दिन धरा रहनेदे उसको शंडाकी कहते हैं । इस प्रकार आसव और आरिष्टादिकोंकी कल्पना जाननी ।

उशीरासव रक्तपित्तादिकोंपर ।

उशीरंवालकंपद्मंकाश्मरींनीलमुत्पलम् ॥ प्रियंगुंपद्मकंलोध्रंमंजिष्ठांधन्वयासकम् ॥१३॥ पाठांकिराततिक्तंचन्यग्रोधोदुंबरंशटीम् ॥ पर्पटंपुंडरीकंचपटोलंकांचनारकम् ॥ १४ ॥ जंबूशाल्मलिनिर्यासंप्रत्येकंपलसंमितान् ॥ भागान्सुचूर्णितान्कृत्वाद्राक्षायाःपलविंशतिम् ॥ १५ ॥ धातकींषोडशपलं जलद्रोणद्वयेक्षिपेत् ॥ शर्करायास्तुलांदत्त्वाक्षौद्रस्यैकतुलां तथा ॥ १६ ॥ मासंचस्थापयेद्भांडेमांसीमरिचधूपिते ॥उशीरासवइत्येषरक्तपित्तनिवारणः ॥ १७ ॥ पांडुकुष्ठप्रमेहार्शःकृमिशोथहरस्तथा ॥

अर्थ–१ खस २ नेत्रवाला ३ लाल कमल ४ कंभारी ५ नीले कमल ६ फूलप्रियंगु पद्माख ८ लोध ९ मजीठ १० धमासा ११ पाठ १२ चिरायता १३ कुटकी १४ छाल १५ गूलरकी छाल १६ कचूर १७ पित्तपापडा १८ सफेद कमल १९ पटोलपत्र कचनारकी छाल २१ जामुनकी छाल २२ सेमरका गोंद ये बाईस औषध एक एक पल वीस पल और धायके फूल १६ पल इन सबको कूट चूर्ण कर दो द्रोण जलमें भिगो और खाँड १ तुला डाले । एवं सहत १ तुला डालके प्रथम उस पात्रमें और काली मिरचकी धूनी देकर सब वस्तु भरके मुखको खाँम दे उसको एक पर्यंत रहने देवे पश्चात् मुद्राको खोलके उस रसको छानके निकास लेवे । इसको उशीरासव हैं । इसको पीवे तो रक्तपित्त, पांडुरोग, कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, कृमिरोग और सूजन इन रोगोंको दूर करे ।

कुमार्यासव क्षयादिकोंपर ।

सुपक्वरससंशुद्धंकुमार्याःपत्रमाहरेत् ॥ १८ ॥ यत्नेनरसमादायपात्रेपाषाणमृन्मये॥द्रोणगुडतुलांदत्त्वाघृतभांडेनिधापयेत्॥१९॥ माक्षिकंपक्वलोहंचतस्मिन्नर्धतुलंक्षिपेत् ॥ कटुत्रिकंलवंगंचचा-

तुर्जातकमेवच॥२०॥ चित्रकंपिप्पलीमूलंविडंगंगजपिप्पली॥ चव्यकंहपुषाधान्यंक्रमुकंकटुरोहिणी ॥२१॥ मुस्ताफलंत्रिकं रास्नादेवदारुनिशाद्वयम्॥ मूर्वामधुरसादंतीमूलंपुष्करसंभवम् ॥२२बलाचातिबलाचैवकपिकच्छुस्त्रिकंटकम् ॥ शतपुष्पाहिंगुपत्रीद्याकल्लकसुर्टिगणम्॥२३॥ पुनर्नवाद्वयंलोध्रंधातुमाक्षिकमेवच ॥ एषांचार्धपलंदत्त्वाधातक्यास्तुपलाष्टकम् ॥२४॥ पलंचार्धपलंचैवपलद्वयमुदाहृतम्॥वपुर्वयःप्रमाणेनबलवर्णाग्निदीपनम् ॥ २५ ॥ बृंहणंरोचनंवृष्यंपक्तिशूलनिवारणम् ॥ अष्टावुदरजान्रोगान्क्षयमुग्रंचनाशयेत् ॥ २६ ॥ विंशतिंमेहजान्रोगानुदावर्तमपस्मृतिम् ॥ मूत्रकृच्छ्रमपस्मारंशुक्रदोषं तथाश्मरीम् ॥ २७ ॥ कृमिजंरक्तपित्तंचनाशयेत्तुनसंशयः ॥

अर्थ-पुराने घीगुवारके पट्ठेका रस १ द्रोण, पुराना गुड १०० पल, सहत और लोहचूर ये दोनों औषध आधे तोले, १ सोंठ २ कालीमिरच ३ पीपल ४ लौंग ५ दाळचीनी ६ पत्रज ७ इलायचीके दाने ८ नागकेशर ९ चित्रक १० पीपरामूल ११ वायविडंग १२ गजपीपल १३ चव्य १४ हीबेर (हाऊबेर) १५ धनिया १६ सुपारी १७ कुटकी १८ नागरमोथा १९ हरड २० बहेडा २१ आँवला २२ देवदारु २३ हल्दी २४ दारुहल्दी २५ मूर्वा २६ प्रसारणी २७ दन्ती २८ पुहकरमूल २९ खरेंटी ३० नागबला ३१ कौंचके बीज ३२ गोखरू ३३ सौंफ ३४ हिंगुपत्री ३५ अकरकरा ३६ उटंगनके बीज ३७ सफेद सौंठ (विषखपरा) ३८ सोंठ ३९ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ये उनतालीस औषध दो दो तोले लेवे । माक्षिक भस्मके सिवाय सबका चूर्ण करे । फिर ऊपर कहीहुई औषध तथा धायके फूल ८ पल इनको एकत्र करके घीके चिकने बरतनमें भरके (१ महीनेपर्यंत या पंद्रह दिन) धरीरहने दे तो यह कुमार्यासव बनके तैयार होवे । इसको बलाबल विचारके १ पल अथवा आधापल रोगीको देवे तो बल वर्ण और अग्निको बढावे, शरीर पुष्ट होवे, पक्ति (परिणाम) शूल सर्व प्रकारके उदररोग, क्षय, प्रमेह, उदावर्त, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदोष, पथरी, कृमिरोग और रक्तपित्त ये सब दूर होवें ।

पिप्पल्यासव क्षयादिरोगोंपर ।

पिप्पलीमरिचंचव्यंहरिद्राचित्रकोघनः ॥ २८ ॥ विडंगंक्रमु-

कोलोध्रःपाठाधात्र्येलवालुकम् ॥ उशीरंचन्दनंकुष्ठंलवंगंतगरं तथा ॥ २९ ॥ मांसीत्वगेलापत्रंचप्रियंगुर्नागकेशरम् ॥ एषामर्धपलान्भागान्सूक्ष्मचूर्णीकृतान्छुभान् ॥ ३० ॥ जलद्रोणद्वयेक्षिप्त्वादद्याद्गुडतुलात्रयम् ॥ पलानिदशधातक्यांद्राक्षाषष्टिपलाभवेत् ॥ ३१ ॥ एतान्येकत्रसंयोज्यमृद्भांडेचविनिक्षिपेत् ॥ ज्ञात्वागतरसंसर्वंपाययेदग्न्यपेक्षया ॥३२॥ क्षयंगुल्मोदरेकार्श्यंग्रहणींपांडुतांतथा ॥ अर्शांसिनाशयेच्छीघ्रंपिप्पल्याद्यासवस्त्वयम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—१ पीपल २ काली मिरच ३ चव्य ४ हल्दी ५ चीतेकी छाल ६ नागरमोथा ७ बायविडं ८ सुपारी ९ लोध १० पाढ ११ आँवले १२ एलवालुक १३ खस १४ सफेद चन्दन १५ कू १६ लौंग १७ तगर १८ जटमांसी १९ दालचीनी २० इलायचीके दाने २१ पत्रज २२ फू लप्रियंगु और नागकेशर ये तेईस औषध आधे २ पल लेवे। सबका बारीक चूर्ण करके दो द्रो जलमें डालदेवे। और गुड तीन तुला डाले। तथा धायके फूल दश पल और दाख सा पल इन दोनोंको बारीक कूटके उसी जलमें डाल देवे। फिर उस पात्रके मुखको बंद करके ए महीने धरा रहने दे जब जाने कि उन औषधोंका उत्तम रस तैयार होगया है तब उस मुख खोलके रसको निकास लेवे। इसको पिप्पल्यासव कहते हैं। इस आसवको जठराग्निका बला विचारके पीवे तो क्षय, गोला, उदर, शरीरकी कृशता, संग्रणी, पांडुरोग और बवासीर ये स रोग तत्काल दूर हों।

लोहासवपांडुरोगादिकोंपर।

लोहचूर्णंत्रिकटुकंत्रिफलांचयवानिकाम् ॥ विडंगंमुस्तकंचित्रं चतुःसंख्यापलंपृथक् ॥३४॥ धातकीकुसुमानांतुप्रक्षिपेत्पलविंशतिम् ॥ चूर्णीकृत्यततःक्षौद्रंचतुःषष्टिपलंक्षिपेत् ॥ ३५ ॥ दद्याद्गुडतुलांतत्रजलद्रोणद्वयंतथा ॥ घृतभांडेविनिक्षिप्यानिदध्यान्मासमात्रकम् ॥३६॥ लोहासवममुंमर्त्यः पिबेदग्निकरंपरम् ॥ पांडुश्वयथुगुल्मानिजठराण्यर्शसांरुजम् ॥ ३७ ॥ कुष्ठंप्लीहामयंकंडूंकासंश्वासंभगंदरम् ॥ अरोचकंचग्रहणींहृद्रोगंचविनाशयेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ-१ लोहभस्म २ सोंठ ३ कालीमिरच ४ पीपल ५ हरड ६ बहेडा ७ आँवला ८ अजमोदा ९ वायविडंग १० नागरमोथा और ११ चीतेकी छाल ये ग्यारह औषध चार २ पल लेवे तथा धायके फूल बीस पल ले सबका चूर्ण करे । ६४ पल सहत तथा एक तुला (१०० पल) गुड इन सबको एकत्र करके पूर्वोक्त औषधोंके चूर्णको उसमें मिलायके दो द्रोण जलमें डालके किसी घीके चिकने पात्रमें भरके मुख बंद कर मुद्रा देकर १ महीनेपर्यंत रक्खारहनेदे । पश्चात् मुद्रा खोलके निकास लेवे इसको लोहासव कहते हैं । इस आसवका सेवनकरनेसे गुल्म (गोलेकारोग) बवासीर, कोढ तथा पेटमें बाँई तरफ फीहारोग होता है वह, खुजली, खाँसी, श्वास, भगंदर, अरुचि, संग्रहणी, हृदयरोग ये सब दूर होवें ।

मृद्वीकासव ग्रहण्यादिरोगोंपर ।

मृद्वीकायाःपलशतंचतुर्द्रोणेंभसःपचेत् ॥ द्रोणशेषेसुशीतेचपूतेतस्मिन्प्रदापयेत् ॥ ३९ ॥ तुलेद्वेक्षौद्रखंडाभ्यांधातक्याःप्रस्थमेवच ॥ कंकोलकंलवंगंचफलंजात्यास्तथैवच ॥ ४० ॥ पलांशकंचमरिचंत्वगेलापत्रकेसराः ॥ पिप्पलीचित्रकंचव्यं पिप्पलीमूलरेणुके ॥ ४१ ॥ घृतभांडेविनिक्षिप्यचंदनागरुधूपिते ॥ कर्पूरवासितोह्येषग्रहण्यांदीपनः परः ॥ ४२ ॥ अर्शसां नाशनेश्रेष्ठउदावर्तस्यगुल्मनुत् ॥ जठरेकृमिकुष्ठानिव्रणानि विविधानिच ॥ अक्षिरोगशिरोरोगगलरोगांश्च नाशयेत् ॥ ४३ ॥

अर्थ-१०० पल मुनकादाख ले चार द्रोण जलमें औटावे जब १ द्रोण जल रहे तब उतार लेवे । जब शीतल होजावे तब छान लेय । फिर आगे लिखीहुइ औषध इसमें डाले । सहत और खांड प्रत्येक सौ सौ पल धायके फूल १ प्रस्थ १ कंकोल २ लौंग ३ जायफल ४ कालीमिरच ५ दालचीनी ६ इलायचीके बीज ७ पत्रज ८ नागकेशर ९ पीपल १० चीतेकी छाल ११ चव्य १२ पीपरामूल १३ रेणुका ये तेरह औषध एक २ पल लेवे । सबका चूर्ण करके चंदनकी धूनी दियेहुए घीके चिकने बासनमें सबको भरदेवे । मुखपर मुद्रा देकर (पन्द्रहदिन) धरा रहनेदे तो यह द्राक्षासव बनके तैयार हो । इसको शुद्धकपूर करके वासित करनेसे संग्रहणीवालेकी अग्नि प्रदीप्त हो । उसी प्रकार बवासीर, उदावर्त्त, गोला, उदर, कृमिरोग, कोढ, व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग और गलेके रोग दूर होवें ।

लोध्रासव प्रमेहादिकोंपर।

लोध्रंशटीपुष्करमूलमेलामूर्वाविडंगंत्रिफलायवानी ॥ चव्यं प्रियंगुंक्रमुकंविशालांकिराततिक्तंकटुरोहिणींच ॥४४॥ भार्ङ्गीनतंचित्रकपिप्पलीनांमूलंचकुष्ठातिविषांचपाठाम् ॥ कलिंगकंकेसरमिंद्रसाह्वानंतासिपत्रंमरिचप्लवंच ॥४५॥ द्रोणेंऽभसःकर्षसमांश्चपक्त्वापूतेचतुर्भागजलावशेषे॥रसार्धभागंमधुनःप्रदाय पक्षंनिधेयोघृतभाजनस्थः ॥ ४६ ॥ लोध्रासवोऽयंकफपित्तमेहान्क्षिप्रंनिहन्याद्द्विपलप्रयोगात् ॥ पांड्वामयार्शांस्यरुचिंग्रहण्यादोषंबलासंविविधंचकुष्ठम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—१लोध २ कचूर ३ पुहकरमूल ४ इलायची ५ मूर्वा ६ वायविडंग ७ त्रिफला ८ अजमायन ९ चव्य १० फूलप्रियंगु ११ सुपारी १२ इन्द्रायन १३ चिरायता १४ कुटकी १५ भारंगी १६ तगर १७ चीतेकी छाल १८ पीपरामूल १९ कूट २० अतीस २१ पाढ २२ इन्द्रजव २३ नागकेशर २४ कोहकी छाल २५ धमासा २६ ईख २७ कालीमिरच २८ क्षुद्रमोथा ये अट्ठाईस औषधि प्रत्येक एक एक तोले लेवे। सबका चूर्ण करके एक द्रोण जलमें डालके पकावे फिर चतुर्थांश रहनेपर छानके शीतल होनेपर काढेका आधाभाग सहत मिलावे। पश्चात् घीके चिकने बासनमें भरके मुखपर मुद्रा देकर १५ दिनपर्यन्त धरा रहने देवे तो यह लोध्रासव तैयार होवे। इसको देहका बलाबल विचारके दोपलपर्यन्त देवे तो कफ पित्तके विकार, प्रमेह, पांडुरोग, बवासीर, अरुचि, संग्रहणी, अनेक प्रकारके कफ और सर्व प्रकारके कुष्टरोग दूर होवें।

कुटजारिष्ट सर्वज्वरोंपर।

तुलांकुटजमूलस्यमृद्वीकार्धतुलांतथा ॥ ४८ ॥ मधुकंपुष्पकाश्मर्यौभागान्दशपलोन्मितान् ॥चतुर्द्रोणेंऽभसःपक्त्वाक्वाथेद्रोणावशेषिते ॥४९॥ धातक्याविंशतिपलंगुडस्यचतुलांक्षिपेत् ॥ मासमात्रंस्थितोभांडेकुटजारिष्टसंज्ञितः ॥ ५० ॥ ज्वरान्प्रशमयेत्सर्वान्कुर्यात्तीक्ष्णंधनञ्जयम् ॥

अर्थ—कूडाकी जड १ तुला, दाख आधे तुला, महुआके फूल और कंभारीकी जड दश दश पल लेवे। इस प्रमाणसे सब औषधोंको ले जवकूटकरके ४ द्रोण जलमें डालके औटावे। जब १ द्रोण जल रहे तब उतारके कपडेसे छान लेय। उस जलमें धायके फूलोंका चूर्ण २०

पल डाले तथा गुड एक तुला डालके सबको मिलाय चिकने पात्रमें भरके मुखको बंद कर मुद्रा देकर एक महीने पर्यंत धरा रहनेदे । फिर मुद्राको दूर कर इसको निकास लेवे । इसे "कुटजारिष्ट" कहते हैं । यह अरिष्ट पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर दूर होवें और अग्नि प्रदीप्त होवे ।

विडंगारिष्ट विद्रधिआदिपर ।

विडंगग्रंथिकंरास्नाकुटजत्वक्फलानिच ॥९१॥ पाठैलवालुकं धात्रीभागान्पंचपलान्पृथक्॥अष्टद्रोणेऽभसःपक्त्वाकुर्याद्द्रोणावशेषितम् ॥९२॥ पूतेशीतेक्षिपेत्तत्रक्षौद्रंपलशतत्रयम् ॥ धातकींविंशतिपलांत्रिजातंद्विपलंतथा ॥ ९३ ॥ प्रियंगुकांचनाराणांसलोध्राणांपलंपलम् ॥ व्योषस्यचपलान्यष्टौचूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ॥९४ ॥ घृतभांडेविनिक्षिप्यमासमेकंविधारयेत् ॥ ततःपिबेद्यथार्हंतुजयेद्विद्रधिमूर्च्छितम् ॥९५॥ ऊरुस्तंभाश्मरीमेहान्प्रत्यष्ठीलाभगंदरान् ॥ गंडमालांहनुस्तंभंविडंगारिष्टसंज्ञितः ॥ ९६ ॥

अर्थ–१ वायविडंग २ पीपरामूल ३ रास्ना ४ कूडाकी छाल ५ इन्द्रजौ ६ पाढ ७ एलवालुक और ८ आमले ये आठ औषधी पाँच २ पल लेवे जवकूटकरके इसमें आठ द्रोण जल डालके औटावे । जब एक द्रोण जल रहे तब उतारके छान लेवे । जब शीतल होजावे तब ३०० तीनसो पल सहत बीस पल धायके फूल १ दालचीनी २ छोटी इलायचीके दाने ३ पत्रज ये तीन औषध एक एक पल लेवे तथा १ सोंठ २ काली मिरच ३ पीपल इन तीन औषधोंको मिलायके आठ पल लेवे । इस प्रमाणसे सब औषधोंको लेकर चूर्ण करके उस काढेमें मिलाय उसको घीके चिकने बरतनमें भरके मुख बंद कर मुद्रा देकर १ महीने पर्यन्त धरा रहने दे फिर मुद्राको दूर कर निकाल लेवे । इसको विडंगारिष्ट कहते हैं । इस अरिष्टके पीनेसे विद्रधिरोग, ऊरुस्तंभ रोग, पथरीका रोग, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, बादीका रोग, गंडमाला तथा हनुस्तंभ (बादीका रोग) इन सबको यह दूर करता है ।

देवदार्वरिष्ट प्रमेहादिकोंपर ।

तुलार्धंदेवदारुःस्याद्वासाचपलाविंशतिः ॥ मंजिष्ठेंद्रयवादंतीतगरंरजनीद्वयम् ॥ ९७ ॥ रास्नाकृमिघ्नमुस्तंचशिरीषंखदिरार्जु-

नौ ॥ भागान्दशपलान्दद्याद्यवान्यावत्सकस्यच ॥५८॥ चंदनस्यगुडूच्याश्चरोहिण्याश्चित्रकस्यच ॥ भागानष्टपलानेतानष्टद्रोणेंभसः पचेत् ॥५९॥ द्रोणशेषेकषायेचपूतेशीतेप्रदापयेत् ॥ धातक्याःषोडशपलंमाक्षिकस्यतुलात्रयम् ॥ ६० ॥ व्योषस्यद्विपलंदद्यात्त्रिजातस्यचतुष्पलम् ॥ चतुष्पलंप्रियंगुश्च द्विपलंनागकेशरम् ॥ ६१ ॥ सर्वाण्येतानिसंचूर्ण्यघृतभांडेनिधापयेत् ॥ मासादूर्ध्वंपिबेदेनंप्रमेहंहंतिदुर्जयम् ॥ ६२ ॥ वातरोगान्ग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणिनाशयेत् ॥ देवदार्वादिकोऽरिष्टो दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ ६३ ॥

अर्थ–देवदारु ५० पल, जडूसा २० पल और १ मजीठ २ इन्द्रजौ ३ दंती ४ तगर ५ हल्दी ६ दारुहल्दी ७ रास्ना ८ वायविडंग ९ नागरमोथा १० शिरस ११ खैरकी छाल १२ कोहकी छाल ये बारह औषध दश दश पल लेवे । १ अजमोद २ कूडेकी छाल ३ सफेद चंदन ४ गिलोय ५ कुटकी ६ चीतेकी छाल ये छः औषध आठ आठ पल लेवे । फिर सब औषधोंको कूट करके उसमें आठ द्रोण जल डालके औटावे । जब १ द्रोण मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब आगे लिखी औषधोंको डाले । धायके फूल १६ पल, सहत तीन तुला और सोंठ मिर्च पीपल, ये तीनों औषध मिलाय दो पल लेय । दालचीनी, इलायचीके दाने पत्रज ये तीन औषध चार पल लेवे । फूलप्रियंगु और नागकेशर दो दो पल लेवे । सब औषधोंका चूर्ण करके उस काढेमें डाल देव । फिर सहतको मिलायके एकत्र कर घीके चिकने वासनमें भर मुख बंद कर मुद्रा देके रख दे जब एक महीना हो जावे तब मुद्राको दूर कर रस निकाल ले । इसको "देवदार्वारिष्ट" कहते हैं । इसको पीवे तो घोर प्रमेहका रोग दूर हो तथा यह वादीका रोग, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, दाह और कोढके रोगको नष्ट करे ।

खदिरारिष्ट कुष्ठादिकोंपर ।

खदिरस्यतुलार्धंतुदेवदारुचतत्समम् ॥ बाकुचीद्वादशपलादार्वीस्यात्पलविंशतिः॥६४॥त्रिफलाविंशतिपलाह्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ कषायेद्रोणशेषेचपूतशीतेविनिक्षिपेत् ॥ ६५ ॥ तुलाद्वयंमाक्षिकस्यपलैकाशर्करामता॥धातक्याविंशतिपलंकंकोलं

नागकेशरम् ॥ ६६ ॥ जातीफलंलवंगैलात्वक्पत्राणिपृथ-क्पृथक् ॥ पलोन्मितानिकृष्णायादद्यात्पलचतुष्टयम् ॥६७॥ घृतभांडेविनिक्षिप्यमासादूर्ध्वंपिबेत्ततः ॥ महाकुष्ठानिहृद्रोगं पांडुरोगार्बुदंतथा ॥ ६८ ॥ गुल्मंग्रंथिंकृमीन्श्वासंकासंप्लीहो-दरंतथा ॥ एषवैखदिरारिष्टःसर्वकुष्ठनिवारणः ॥ ६९ ॥

अर्थ–खैरकी छाल ५० पल देवदारु ५० पल बावची १२ पल दारुहल्दी २० पल हरड बहेडा और आमला ये तीनों मिलायके २० पल इस प्रकार संपूर्ण औषध लेकर कूट करके उसको आठ द्रोण जलमें डालके काढा करे । जब एक द्रोणमात्र जल शेष रहे तब उतारके छान लेय। जब शीतल हो जावे तब इसमें २०० पल सहत डाले, खाँड १०० पल ले, धायके फूल २० पल, १कंकोल २नागकेशर ३जायफल ४ लौंग ५ इलायची ६ दालचीनी ७ पत्रज ये सात औषधि एक एक पल और पीपल ४ पल इस प्रकार सबको एकत्र करके चूर्ण कर उसको पूर्वोक्त काढेमें मिलाय दे फिर सबको घीके चिकने पात्रमें भर मुखपर मुद्रा दे १ महीने पर्यंत धरा रहने दे फिर बाद १ महीनेके निकालके पीवे तो इस खदिरारिष्टसे महाकुष्ठ, हृदयरोग, पांडुरोग, अर्बुदरोग, गोलेका रोग, ग्रंथि (गाँठ), कृमिरोग, श्वास, खाँसी, पेटमें बाँईतरफ होनेवाला फियाका रोग ये सब रोग दूर हों ।

बब्बूलारिष्ट क्षयादिकोंपर ।

तुलाद्वयंचबब्बूल्याश्चतुर्द्रोणेजलेपचेत् ॥द्रोणशेषेरसेशीतेगुड-स्यत्रितुलांक्षिपेत्॥७०॥ धातकींषोडशपलांकृष्णांचद्विपलां-तथा ॥ जातीफलानिकंकोलमेलात्वक्पत्रकेशरम् ॥ ७१ ॥ लवंगंमरिचंचैवपलिकान्युपकल्पयेत् ॥ मासंभांडेस्थितस्त्वे-षबब्बूलारिष्टकोजयेत् ॥ ७२ ॥ क्षयंकुष्ठमतीसारंप्रमेहंश्वास-कासनुत् ॥

अर्थ–बबूर (कीकर) की छाल दो तुला (२० फल) लेवे । उसका जवकूट करके ४ द्रोण पानी डालके काढा करे । जब १ द्रोण शेष रहे तब उतारके छान लेवे जब शीतल होजावे तब गुड ३०० तीनसौ पल मिलावे । धायके फूल सोलह पल डाले। पीपल २ पल, १ जायफल २ कंकोल ३ इलायची दाने ४ दालचीनी ५ पत्रज ६ नागकेशर ७ लौंग ८ काली मिरच ये आठ औषध एक एक पल प्रमाण लेवे । सबका चूर्ण कर उस काढेमें डालके सबको घीके चिकने बासनमें भरके मुखपर मुद्रा दे १ महीने पर्यन्त धरा रहने दे । फिर मुद्राको दूर कर रसको

छानके निकाल लेवे । इसको बब्बूलारिष्ट कहते हैं । इसको पीवे तो क्षय, कुष्ठ, अतिसार, प्रमेह, खाँसी, श्वास इन सब रोगोंको दूर करे ।

द्राक्षारिष्ट उरःक्षतादिकोंपर ।

द्राक्षातलार्धद्विद्रोणेजलस्यविपचेत्सुधीः ॥ ७३ ॥ पादशेषे कषायेचपूतेशीतेविनिक्षिपेत्॥गुडस्यद्वितुलांतत्रत्वगेलापत्रके-शरम् ॥ ७४ ॥ प्रियंगुमरिचंकृष्णांविडंगंचेतिचूर्णयेत् ॥ पृथ-क्पलोन्मितैर्भागैस्ततोभांडेनिधापयेत् ॥ ७५ ॥ स्थापयित्वा ततोमासंततोजातरसंपिबेत्॥ उरःक्षतंक्षयंहंतिकासश्वासगला-मयान् ॥ ७६ ॥ द्राक्षारिष्टाह्वयःप्रोक्तोबलकृन्मलशोधनः ॥

अर्थ—मुनक्कादाख ५० पल लेवे । उसमें दो द्रोण पानी डालके औटावे । जब चौथाई जल रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे । जब शीतल होजावे तब गुड दो तुला डाले । और दाल-चीनी २ इलायची दाने ३ पत्रज ४ नागकेशर ५ फूलप्रियंगु ६ काली मिरच ७ पीपल ८ वायविडंग ये आठ औषधि एक एक पल ले सब चूर्ण कर उस काढेमें मिला देवे । फिर सबको एक चिकने पात्रमें भरके मुख बंद कर मुद्रा देवे और उसको १ महीने (अथवा एक पखवारे) धरा रहने दे सिद्ध होनेके पश्चात् मुद्राको दूर करके रसको छानके निकास ले इसको द्राक्षारिष्ट कहते हैं । इस अरिष्ट पीनेसे उरःक्षतरोग, क्षयरोग, खाँसी, श्वास, कंठका रोग ये संपूर्ण दूर होवें। यह बल बढाता और मलको साफ करता है ।

रोहितारिष्ट अर्शादिरोगोंपर ।

रोहीतकतुलामेकांचतुर्द्रोणेजलेपचेत् ॥ ७७ ॥ पादशेषरसे शीतेपूतेपलशतद्वयम् ॥ दद्याद्गुडस्यधातक्याःपलषोडशिका मता ॥ ७८ ॥ पंचकोलत्रिजातंचत्रिफलांचविनिक्षिपेत् ॥ चूर्णयित्वापलांशेनततोभांडेनिधापयेत् ॥ ७९ ॥ मासादूर्ध्वं चपिबतांगुदजायांतिसंक्षयम् ॥ ग्रहणीपांडुहृद्रोगप्लीहगुल्मो-दराणिच ॥ कुष्ठशोफारुचिहरोरोहितारिष्टसंज्ञकः ॥ ८० ॥

अर्थ—लालरोहिडा १ तुला ले जवकूट करके चार द्रोण जलमें डालके काढा करे जब एक द्रोण जल शेष रहे तब उतारके छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब गुड

गुड़ १०० पल मिलावे । धायके फूल १६ पल, १ पीपल २ पीपरामूल ३ चव्य ४ चीतेकी जड़ ५ सोंठ ६ दालचीनी ७ इलायचीके बीज ८ पत्रज ९ हरड १० बहेडा ११ आँवला ये बारह औषध एक एक पल ले सबका चूर्ण करके पूर्वोक्त काढेमें डालके उसको किसी चिकने पात्रमें भर मुखपर मुद्रा देकर एक महीने पर्यन्त धरा रहने दे पश्चात् मुद्राको दूरकरे । इसको रोहितारिष्ट कहतेहैं । इसके पीनेसे बवासीर, संग्रहणी, पांडुरोग, हृदयरोग, प्लीहा, गोलेका रोग, उदररोग, कुष्ठ, सूजन और अरुचिरोग ये सब रोग दूर होंय ।

दशमूलारिष्ट क्षयप्रमेहादिकोंपर ।

पर्ण्यौबृहत्यौगोकंटोबिल्वोग्निमंथकोरलुः ॥ पाटलाकाश्मरी चेतिदशमूलमिहोच्यते ॥ ८१ ॥ दशमूलानिकुर्वीतभागैःपंच पलैःपृथक् ॥ पंचविंशत्पलंकुर्याच्चित्रकंपौष्करंतथा ॥ ८२ ॥ कुर्याद्विंशत्पलंलोध्रंगुडूचीतत्समाभवेत् ॥ पलैःषोडशभिर्धा-त्रीरविसंख्यैर्दुरालभा ॥ ८३ ॥ खदिरोबीजसारश्चपथ्याचेति पृथक्पलैः ॥ अष्टभिर्गुणितंकुष्ठंमंजिष्ठादेवदारुच ॥ ८४ ॥ विडंगंमधुकंभार्ङ्गीकपित्थोऽक्षःपुनर्नवा ॥ चव्यंमांसीप्रियंगुश्च सारिवाकृष्णजीरकः ॥ ८५ ॥ त्रिवृतारेणुकारास्नापिप्पलीक्र-मुकःशटी ॥ हरिद्राशतपुष्पाचपद्मकंनागकेशरम् ॥ ८६ ॥ मुस्तमिंद्रयवाःशृंगीजीवकर्षभकौतथा ॥ मेदाचान्यामहामे-दाकाकोल्यौऋद्धिवृद्धिके ॥८७॥ कुर्यात्पृथग्द्विपलिकान्पचे-दष्टगुणेजले॥ चतुर्थांशंशृतंनीत्वामृद्भांडेसन्निधापयेत् ॥८८॥ चतुःषष्टिपलांद्राक्षांपचेन्नीरेचतुर्गुणे ॥ त्रिपादशेषंशीतंचपूर्व-क्वाथेशृतंक्षिपेत् ॥ ८९ ॥ द्वात्रिंशत्पलिकंक्षौद्रंदद्याद्गुडचतुः-शतम् ॥ त्रिंशत्पलानिधातक्याःकंकोलंजलचंदनम् ॥ ९० ॥ जातीफलंलवंगंचत्वगेलापत्रकेशरम् ॥ पिप्पलीचेतिसंचूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैःपृथक् ॥ ९१ ॥ शाणमात्रांचकस्तूरींसर्वमेक-त्रनिःक्षिपेत् ॥ भूमौनिखातयेद्भांडंततोजातरसंपिबेत् ॥ ९२॥ कतकस्यफलंक्षिप्त्वारसंनिर्मलतांनयेत् ॥ ग्रहणीमरुचिंश्वासं कासंगुल्मंभगंदरम् ॥ ९३ ॥ वातव्याधिंक्षयंछर्दिंपांडुरोगं

चकामलाम् ॥ कुष्ठान्यर्शांसिमेहांश्चमंदाग्निमुदराणिच ॥ ॥ ९४ ॥ शर्करामश्मरींमूत्रकृच्छ्रंधातुक्षयंजयेत् ॥ कृशानां पुष्टिजननोवंध्यानांगर्भदःपरः ॥ अरिष्टोदशमूलाख्यस्तेजः शुक्रबलप्रदः ॥ ९५ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायां चिकित्सास्थाने आसवारिष्टकल्पनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ–दशमूल प्रत्येक आधे २ पल, चीतेकी छाल २५ पल, पुहकरमूल २५ पल, ले २० पल, गिलोय २० पल, आंवले १६ पल, धमासा १२ पल, खैरकी छाल ८ प विजैसार ८ पल और हरड ८ पल । १ कूठ २ मजीठ ३ देवदारु ४ वायविडंग ५ मु हटी ६ भारंगी ७ कैथ ८ बहेडा ९ पुनर्नवा १० चव्य ११ जटामांसी १२ प्रियंगुफूल १ सारिवा १४ कालाजीरा १५ निसोथ १६ रेणुकबीज १७ रास्ना १८ पीपल १९ सुपारी कचूर २१ हल्दी २२ सौंफ २३ पद्माख २४ नागकेशर २५ नागरमोथा २६ इन्द्रजौ काकडासिंगी और २८ जीवक ऋषभक (इन दोनोंके अभावमें विदारीकंद लेवे) २९ और महामेदा (इन दोनोंके अभावमें मुलहटी लेय) ३० काकोली और क्षीरकाकोली (दोनोंके अभावमें असगन्ध लेय) तथा ३१ ऋद्धि और वृद्धि (इनके अभावमें वाराही लेवे) ये इकत्तीस औषध दो दो पल लेवे । फिर सबको जवकूट करके सब औषधोंका गुना जल मिलायके काढा करे । जब चौथाई रहे तब उतारके छान ले और इसको घीके चिकने पात्रमें भर देवे । फिर दाख ६४ पल ले उनमें चौगुना पानी डालके जब तीन हिस्सा पानी शेष रहे तब उतारके छान लेय । इसकोभी पहले काढेमें मि देवे । पश्चात् ३२ पल सहत और ४०० चारसौ पल गुड एवं ३० तीस पल फूल डालने चाहिये । १ कंकोल २ नेत्रवाला ३ सफेदचंदन ४ जायपल ५ लौंग ६ दाल ७ इलायची दाने ८ पत्रज ९ नागकेशर और १० पीपल ये दश औषधी दो दो लेकर चूर्णकरके पूर्वोक्त काढेमें मिलावे । एवं १ शाण कस्तूरीका चूर्ण करके पूर्वोक्त मिलायदे फिर उस पात्रका मुख बंदकर मुद्रादे । इसको १ एक महीने अथवा पंद्रह पर्यंत पृथ्वीमें गडा रहने देवे । जब उन औषधोंका उत्तम रस होजावे तब उसको निकालके मुद्रा दूर करे । फिर इसमें निर्मलीके बीजोंका चूर्ण कर थोडासा डाल देवे निर्मल होजावे । इसको दशमूलारिष्ट कहतेहैं । इस अरिष्टके पीनेसे संग्रहणी, श्वास, खाँसी, गोळा, भगंदर, बादीका रोग, क्षयरोग, वमन, पांडुरोग, कामलारोग, कुष्ठ, बवासीर, प्रमेह, मंदाग्नि, उदररोग, शर्करा (पथरीका

मूत्रकृच्छ्र और धातुक्षय ये संपूर्ण रोग दूर होवें। यह अरिष्ट दुर्बल मनुष्यको पुष्ट करे और वंध्यास्त्रीको पुत्र देवे, तेज धातु (वीर्य) और बल देता है।

इति श्रीशार्ङ्गधरे माथुरीभाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः ११.

स्वर्णादिधातु और उनका शोधन।

स्वर्णतारंताम्रमारंनागवंगौचतीक्ष्णकम् ॥ धावतःसप्तविज्ञेया-स्ततस्तान्छोधयेद्बुधः ॥ १ ॥ स्वर्णताराताम्राणांपत्राण्यग्नौप्रतापयेत् ॥ निषिंचेत्तप्ततप्तानितैलेतक्रेचकांजिके ॥२॥ गो-मूत्रेचकुलत्थानांकषायेचात्रिधात्रिधा॥एवंस्वर्णादिलोहानांवि-शुद्धिःसंप्रजायते ॥ ३ ॥ नागवंगौप्रतप्तौचगालितौतौनिषेचये-त् ॥ त्रिधात्रिधाविशुद्धिःस्याद्रविदुग्धेनचात्रिधा ॥ ४ ॥

अर्थ-१ सुवर्ण २ रूपा (चाँदी) ३ ताँबा ४ जस्त[1] अथवा पीतल ५ शीसा ६ राँगा और पोलाद आदि लोह इन सातोंको धातु[2] कहते हैं। ये सातों धातु पर्वतसे उत्पन्न होती हैं इस वास्ते इनमें थोडा बहुत मेल रहता है इस वास्ते इनका बुद्धिमान वैद्य शोधन इस प्रकार करे। सुवर्ण (सोना) रूपा जस्त ताम्र (ताँबा) इनके बारीक कंटकवेधी पत्र कर अग्निमें वारंवार तपाय २ के तेल छाछ काँजी[3] गोमूत्र और कुलथीका काढा इन प्रत्येकमें तीन २ वार बुझावे। इस प्रकार सुवर्णादि सात धातु-

---

१ जस्तके स्थानमें कोई पीतल लेता है परंतु पीतल मिश्रित धातु है इसवास्ते हमको वह मत मंतव्य नहीं है।

२ वृद्धत्व (सफेद बालोंका होना) कृशत्व और बलहीनता इत्यादि रोगोंका निवारण कर ये देहको धारण करती हैं इसीसे सुवर्णादि धातु कहते हैं।

३ काँजी बनानेकी क्रिया- मिट्टीकी मथानीको सरसोंके तेलसे पोत कर उसमें निर्मल पानी भरे तथा १ राई २ जीरा ३ सैंधानिमक ४ हींग ५ सोंठ और ६ हल्दी इन छः औषधोंका चूर्णकर चावलोंका भात युक्त माँड तथा कुलथीका काढा थोडे बाँसके पत्ते ये सब पात्रमें डाल दे तथा पानीके अनुमान माफिक दश पांच उडदके बडे बनाकर डालकर उसका मुख बंद करके तीन दिन धरा रहने दे जब खट्टी बास आने लगे तब जाने कि काँजी बनगई यह काँजी बनानेकी विधि है।

ओंकी शुद्धि होती है । शीशा और राँगा ये दोनों धातु नम्र हैं इसवास्ते इनकी विशेष: शुद्धि कहते हैं शीशे और राँगेको अग्निमें तपावे । जब गल जावे तब तैलादिकोंमें तीन २ बार उडेल (गेर) देवे । तथा आकके दूधमें गलाय २ के बुझावे तो इनकी शुद्धि होवे । विशेष शुद्धि देखना होय तो हमारे निर्माण कियेहुए रसराजसुन्दर ग्रंथके प्रथम भागमें देखो ।

सुवर्णभस्मकी प्रथम विधि ।

स्वर्णाच्चद्विगुणंसूतमम्लेनसहमर्दयेत् ॥ तद्गोलकेसमंगंधंनिदध्यादधरोत्तरम् ॥ ५ ॥ गोलकंचततोरुंध्याच्छरावदृढसंपुटे ॥ त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटान्येवंचतुर्दश ॥ ६ ॥ निरुत्थंजायतेभस्मगंधोदेयःपुनःपुनः ॥

अर्थ–सुवर्णका बारीक चूर्ण करके १ भाग तथा शुद्ध किया हुआ पारा २ भाग ले दोनोंको खरलमें डालके कागदी नींबूके रसमें खरल करे । जब संपूर्ण पारा सुवर्णके चूर्णपर चढ जावे और उसका गोलासा बँध जावे तब गोलाके समान भाग शुद्ध की हुई आंवलासारगंधकमें बारीक चूर्ण करे । फिर मिट्टीके दो शरावे ले प्रथम शरावेमें आधी गंधकको बिछायके उसपर उस सुवर्ण और पारेके गोलेको रखदेवे, फिर बाकी गंधक जो बची है उसको उस गोलेके ऊपर बुरकके दूसरे शरावेसे बंद कर देवे और इसके ऊपर सात कपड मिट्टी करे फिर ३० आरने उपलेनको आधे नीचे रक्खे, और आधे ऊपर रक्खे, बीचमें संपुट रख फूक देवे । जब स्वांग शीतल होजावे तब संपुटसे उसको निकालके फिर पारेमें घोंटके फिर इसी प्रकार आँचदेवे । इस प्रकार १४ चौदह आँच देवे तो सुवर्णकी निरुत्थ भस्म होवे । अर्थात् फिर घृत सुहागे आदि डालनेसे भी नहीं जीवे । यह सुवर्णमारणकी प्रथम विधि कही ।

सुवर्णमारणकी दूसरी विधि ।

कांचनेगालितेनागंषोडशांशेननिक्षिपेत् ॥ ७ ॥ चूर्णयित्वाततथाम्लेनघृष्ट्वाकृत्वाचगोलकम् ॥ गोलकेनसमंगंधंदत्वाचैवाधरोत्तरम् ॥ ८ ॥ शरावसंपुटेधृत्वापुटेत्रिंशद्वनोपलैः ॥ एवंसप्तपुटैर्हेमनिरुत्थंभस्मजायते ॥ ९ ॥

---

१ शीशा अथवा राँगेका रसकरके तैल काँजी आदिमें बुझाना चाहे तो प्रथम उस तेल काँजीके पात्रको ढिली (छिद्रदार पात्र) से ढक देवे फिर उस छिद्रद्वारा शीशे आदिको गेरे अन्यथा वह रसकी छीया आदि उछलकर वैद्यके देहपर पडनेसे मारडालेगा ।

अर्थ-सुवर्णको अग्निके संयोगसे रस करके उसमें सोलहवाँ हिस्सा शीशा डालके ढाल देवे। फिर उसका रेतीसे चूर्ण करके नींबूके रसमें खरल कर गोला बनावे। उस गोलाके समानभाग शुद्ध गंधक लेकर चूर्ण करे। मिट्टीके दो सरावे लेकर एक सरावेमें आधा गंधक नीचे बिछावे और आधा ऊपर बिछाय बीचमें उस गोलेको रखके दूसरे सरावेसे मुख बंद करके कपरमिट्टी कर तीव्र आरने उपलोंकी आँचमें रखके फूंक देवे। इस प्रकार बारंबार घोटे और बारंबार अग्निदेवे। ऐसे सात अग्नि देनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होतीहै और यह मित्रपंचक मिलाकर जिवानेसेभी नहीं जीवे।

सुवर्णभस्मकी तीसरी विधि।

कांचनाररसैर्घृष्ट्वासमसूतकगंधयोः॥ कज्जलीहेमपत्राणिलेपयेत्सममात्रया ॥ १० ॥ कांचनारत्वचःकल्कंमूषायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥धृत्वातत्संपुटेगोलंमृन्मूषासंपुटेचतत् ॥ ११ ॥ निधायसंधिरोधंचकृत्वासंशोष्यगोमयैः॥ वह्निंखरतरंकुर्यादेवंदद्यात्पुटत्रयम् ॥१२॥ निरुत्थंजायतेभस्मसर्वकार्येषुयोजयेत् ॥ कांचनारप्रकारेणलांगलीहन्तिकांचनम् ॥१३॥ ज्वालामुखीयथाहन्यात्तथाहांतिमनःशिला ॥

अर्थ-पारा और गंधक दोनों समान भाग लेवे। दोनोंको खरलमें डाल कचनारके रससे खरल करके कजली करे। उस कजलीको समानभाग सुवर्णके पत्रोंपर लेप करे। फिर कचनारकी छालको पीस कल्क करके उसकी दो मूस बनावे। उस एक मूसमें सोनेके पत्र रखके उसपर दूसरी मूसको रख दोनोंकी संधि मिलाय एक गोला बनावे। उस गोलेको मिट्टीके सरावेमें रख दूसरेसे बंद करके कपडमिट्टी कर देवे। फिर धूपमें सुखाय तीव्र आरने उपलोंकी अग्नि देवे। इसप्रकार तीन अग्निके पुट देवेतो सुवर्णकी उत्तम भस्म होय फिर किसी प्रकार नहीं जीवे। यह भस्म संपूर्ण रोगोंपर देनी चाहिये। इसी प्रकार कलयारीके रसमें पारे गंधकको खरल कर कजली करे और सुवर्णके पत्रोंपर लेपकर कलयारीकी मूसमें रख सरावसंपुटमें धरके फूंक देवे तो सुवर्णकी भस्म होय। इसी प्रकार ज्वालामुखीके रसमें घोट पत्रोंपर लेप कर मूसमें रख सरावसंपुटमें फूंके तो भस्म होय। तथा मनशिलमें कजली कर लेप करे और मूसाद्वारा सरावसंपुटमें फूंक देय तो भी सुवर्णकी उत्तम भस्म होय।

सुवर्णभस्मकी अन्य विधि।

शिलासिंदूरयोश्चूर्णसमयोरर्कदुग्धकैः ॥ १४ ॥ सप्तैवभावना

---

१ "कोकिलैः" ऐसाभी पाठांतर है तहाँ कोकिल कहिये कौले।

दद्याच्छोषयेच्चपुनःपुनः ॥ ततस्तुगालितेहेम्निकल्कोयंदीयते समः ॥१५॥ पुनर्धमेदतितरांयथाकल्कोविलीयते ॥ एवंवेलात्रयंदद्यात्कल्कंहेममृतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—मनशिल और सिंदूर समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके आकके दूधमें खरल कर धूपमें सुखायले इस प्रकार सात पुट देवे । फिर सुवर्णको गलायके उस सुवर्णके समान ऊपर लिखा मनसिल और सिंदूरका चूर्ण डाले जब यह चूर्ण मिलकर नष्ट होजावे तबतक अग्निमें रख धौकनीसे अत्यंत धमावे । फिर समान भाग मनशिलादिकोंका चूर्ण डाले और धमावे । इसप्रकार तीन बार करनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होवे ।

सुवर्णभस्मका प्रकारांतर।

पारावतमलैर्लिंपेदथवाकुक्कुटोद्भवैः॥ हेमपत्राणितेषांचप्रदद्यादधरोत्तरम् ॥ १७ ॥ गंधचूर्णसमंदत्वाशरावयुगसंपुटे ॥ प्रदद्यात्कुक्कुटपुटंपंचभिर्गोमयोपलैः ॥१८॥ एवंनवपुटान्दद्याद्दशमंचमहापुटम्॥त्रिंशद्वनोपलैर्देयंजायतेहेमभस्मकम्॥१९॥ सुवर्णंचभवेत्स्वादुतिक्तंस्निग्धंहिमंगुरु ॥ बुद्धिविद्यास्मृतिकरं विषहारिरसायनम् ॥ २० ॥

अर्थ—सुवर्णके पत्र करके उनपर कबूतर अथवा मुरगेकी बींटका लेप करके उन पत्रोंके समानभाग गंधकका चूर्ण करके मिट्टीके सरावेमें आधी बिछावे । उसपर सुवर्णके पत्र रखके फिर आधी गंधक ऊपरसे डालदेवे फिर दूसरे सरावेसे बंदकरके कपडमिट्टी कर धूपमें सुखायले । फिर इसको गौके गोबरके बडे २ पांच उपले लेके अग्नि देवे । ऐसे नौपुट देकर दशवा तीस उपलेका महापुट देवे इसप्रकार महापुट देनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होवे । अब इस भस्मके गुण कहतेहैं ।

यह मधुर (मीठी) तिक्त (कडवी) स्निध (चिकनी) शीतल और भारी है । यह भस्म बुद्धिकर्त्ता, विद्याकर्त्ता, स्मरणशक्ति बढानेवाली, तथा विषबाधाका नाशकरनेवाली और रसायन है।

रौप्य (चाँदी)की भस्म।

भागैकंतालकंमर्द्यंयाममम्लेनकेनचित् ॥ तेनभागत्रयंतारपत्राणिपरिलेपयेत्॥२१॥धृत्वामूषापुटेरुद्ध्वापुटेत्रिंशद्वनोपलैः ॥

समुद्धृत्यपुनस्तालंदत्वारुद्धापुटेपचेत् ॥ २२ ॥
एवंचतुर्दशपुटैस्तारंभस्मप्रजायते ॥

अर्थ–एकभाग हरताल लेकर कागदी नींबूके रसमें १ प्रहर खरल करे । फिर हरतालके तीन भाग रूपेके पत्र लेकर उनपर उस हरतालके कल्कका लेप करे। फिर उनको एकके ऊपर एक रखके मिट्टीके सरावसम्पुटमें रख कपडमिट्टी करके धूपमें सुखायले । फिर तीस आरनेउपलों-के बीचमें उस सरावसंपुटको रखके फूंक देवे । इसप्रकार चौदह अग्निपुट देवे तो रूपेकी उत्तम भस्म होवे ।

रूपेके भस्मकरनेकी दूसरी विधि।

स्नुहीक्षीरेणसंपिष्टंमाक्षिकंतेनलेपयेत् ॥ २३ ॥
तालकस्यप्रकारेणतारपत्राणिबुद्धिमान् ॥
पुटेच्चतुर्दशपुटैस्तारंभस्मप्रजायते ॥ २४ ॥

अर्थ–सुवर्णमाक्षिक एक भाग लेकर चूर्ण करे । फिर उसको थूहरके दूधमें १ प्रहर खरल कर सुवर्णमाक्षिकसे तिगुने चांदाके पत्र ले उनपर पूर्वोक्त सुवर्णमाक्षिकके कल्कका लेपकरके मिट्टी-के सरावसंपुटमें रखके कपडामिट्टीकर धूपमें सुखायले । पश्चात् उसको आरने उपलोंके बीचमें रखके अग्नि देवे । इसप्रकार चौदह पुट देवे तो रूपेकी भस्म होय ।

ताम्रभस्मकी विधि।

सूक्ष्माणिताम्रपत्राणिकृत्वासंस्वेदयेद्बुधः ॥ वासरत्रयमम्लेनत-तःखल्वेविनिक्षिपेत् ॥ २५ ॥ पादांशंसूतकंदत्वायाममम्लेनम-र्दयेत्॥ततउद्धृत्य पत्राणिलेपयेद्द्विगुणेनच ॥२६॥ गंधकेनाम्ल-घृष्टेनतस्यकुर्याच्चगोलकम् ॥ ततःपिष्ट्वाचमीनाक्षींचांगेरींवापु-नर्नवाम् ॥ २७ ॥ तत्कल्केनबहिर्गोलंलेपयेदंगुलोन्मितम् ॥ धृत्वातद्गोलकंभांडेशरावेणचरोधयेत् ॥ २८ ॥ वालुकाभिः प्रपूर्याथविभूतिलवणांबुभिः ॥ दत्वाभांडमुखेमुद्रांततश्चुल्ह्यां विपाचयेत् ॥२९॥ क्रमवृद्धयाग्निनासम्यग्यावद्यामचतुष्टयम् ॥ स्वांगशीतलमुद्धृत्यमर्दयेत्सूरणद्रवैः ॥ ३० ॥ दिनैकंगोलकं कुर्यादर्धगंधेनलेपयेत् ॥ सघृतेनततो मूषापुटेगजपुटेप

चेत् ॥ ३१ ॥ स्वांगशीतंसमुद्धृत्यमृतंताम्रंशुभंभवेत् ॥ वांतिभ्रांतिक्लमंमूर्च्छांनकरोतिकदाचन ॥ ३२ ॥

अर्थ–तांबेके कंटकवेधी पत्रोंके बहुत बारीक नखके समान छोटे २ टुकडेकर उनको नींबूके रसमें डालके तीनवार थोडा २ स्वेदन करके पचावे । फिर उन पत्रोंको बाहर निकालके उन पत्रोंका चतुर्थांश पारा लेकर दोनोंको खरलमें डालके नींबूके रससे १ प्रहर घोटे । फिर उन तांबेके पत्रोंको खरलसे निकालके उनकी दूनी गंधक लेके उसको नींबूके रससे खरल करके उन तांबेके पत्रोंपर लेप करके एक गोला बनावे । फिर मीनाक्षी[१] (मछली) अथवा चूका अथवा पुनर्नवा (साँठ) इन तीनों वनस्पतियोंमेंसे जो मिले उसको पीसके उस ताम्रगोलके चारोंतरफ एक २ अंगुल मोटा लेप करे । उस गोलेको किसी पात्रमें धरके उसपर मिट्टीका शराव उलटा ढकके उसके ऊपर मुखपर्यंत बालू भर देवे । फिर राख और नमकको जलमें मिलायके उसकी उस पात्रके मुखपर मुद्रा देकर उस पात्रको चूल्हेपर चढाय क्रमसे मंद, मध्य और तेज अग्नि चार प्रहर देय । जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके सूरण (जमीकंद) के रससे १ दिन खरल करे । फिर इसका गोला बनाय उसकी आधी गंधकको घीमें पीसके उस गोलेके चारों तरफ लेप करे फिर मिट्टीके दो सराव लेय गोलेको एक सरावेमें रखके दूसरेसे बंद करके कपडमिट्टीकरके आरने उपलोंके गजपुटमें[२] रखके फूँक देवे । जब शीतल हो जावे उस सरावसंपुटको बाहर निकाल उसमेंसे ताम्रभस्मको बुद्धिमानीसे निकाल लेवे । यह भस्म परमोत्तम गुण देनेवाली है इससे वमन, भ्रांति, अग्नि और मूर्च्छा कदापि नहीं होती है ।

जस्तकी भस्म ।

अर्कक्षीरेणसंपिष्टोगंधकस्तेनलेपयेत् ॥ समेनारस्यपत्राणिशुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः ॥ ३३ ॥ ततोमूषापुटेधृत्वापुटेद्गजपुटेनच ॥ एवंपुटद्वयेनैवभस्मारंभवतिध्रुवम् ॥ ३४ ॥ आरवत्कांस्यमप्येवंभस्मतांयातिनिश्चितम् ॥ अर्कक्षीरं[३]वटक्षीरंनिर्गुंडीक्षीरिका तथा ॥ ३५ ॥ ताम्ररीतिध्वनिवधेसमगंधकयोगतः ॥

---

१ मीनाक्षीको मत्स्याक्षी कहते हैं अर्थात् कुटकी जानना ऐसा किसीका मत है ।

२ सवा हाथ गहरा सवा हाथ चौडा और इतनेही लंबे गड्ढेमें आरने उपलोंको भरके बीचमें औषधिके संपुटको रखके अग्नि देनेको गजपुट कहते हैं । परन्तु यह प्रमाण ठीक नहीं है रसराजसुंदरके मध्यभागमें यन्त्राध्यायमें लिखा है सो देखो ।

३ अर्कक्षीरवदाज्यं स्यात्क्षीरं निर्गुंडिका तथा । इति पाठांतरम् ।

अर्थ–जस्तेके अथवा पीतलके पत्र करके अग्निमें तपाय सातवार अथवा तीनवार नींबूके रसमें बुझाके शुद्ध करे। फिर उन पत्रोंके समान भाग गंधक लेकर आकके दूधमें खरल कर उन तांबेके पत्रोंपर लेप कर मिट्टीकी मूसमें रखके दूसरी मूसमें उसका मुख बंद कर देवे और कपड मिट्टी करके आरने उपलोंके गजपुटमें धरके फूंक देवे। इस प्रकार दो अग्निपुट देनेसे शीशाकी अथवा पीतलकी निश्चय भस्म होवे। इसी प्रकार काँसेकी भस्म होती है। ताँबा पीतल और काँसा इनके मारनेकी दूसरी विधि कहते हैं।

ताँबा पीतल और काँसा इनमेंसे जिसकी भस्म करनी होय उसकी बराबर गंधक लेकर आकके अथवा वडके अथवा गौके दूधमें खरल करे। अथवा निर्गुंडीके रसमें खरल करके उन पत्रोंपर पृथक् २ लेप करे। पृथक् आरने उपलोंके दो पुट देवे तो उक्त ताम्र आदि धातुओंकी भस्म होय।

शीशेकी भस्म।

तांबूलीरससंपिष्टशिलालेपात्पुनःपुनः ॥ ३६ ॥
द्वात्रिंशद्भिःपुटैर्नागोनिरुत्थोयातिभस्मताम् ॥

अर्थ–नागरवेलके पानोंका रस निकालके उसमें मनशिलको पीसे इस मनशिलके समानभाग शीशेके पत्रोंपर उस (मनशिल) का लेप करे मिट्टीके दो शरावे ले एकमें उन शीशेके पत्रोंको रखके दूसरेसे उसको बंद करके कपडमिट्टीकर धूपमें सुखाय फिर गड्ढा खोदके आरने उपलोंसे भरके गजपुटकी अग्नि देवे। इस प्रकार बत्तीस अग्नि देवे तो शीशेकी भस्म होय फिर नहीं जीवे। इसको नागभस्म अथवा नागेश्वर कहते हैं।

शीशेमारणका दूसराप्रकार।

अश्वत्थचिंचात्वक्चूर्णंचतुर्थांशेननिक्षिपेत् ॥ ३७ ॥ मृत्पात्रे द्रावितेनागे लोहदर्व्याप्रचालयेत् ॥ यामैकेनभवेद्भस्मतत्तुल्यां चमनःशिलाम् ॥ ३८ ॥ कांजिकेनद्वयंपिष्ट्वापचेद्दृढपुटेनच॥ स्वांगशीतंपुनःपिष्ट्वाशिलयाकांजिकेनच ॥ ३९ ॥ पुनःपुटे-च्छरावाभ्यामेवंषष्टिपुटैर्मृतिः ॥

अर्थ–मिट्टीके खिपडेको चूल्हेपर चढाय उसमें शीशाको डालके पिंघलावे (टघरावे) जब रसरूप होजावे तब पीपलकी छाल, इमलीकी छाल इन दोनोंका चूर्ण शीशेके चौथाई लेवे उसको उस तरह हुए शीशेके रसपर थोडा २ बुरकता जावे और लोहेकी कलछीसे चलाता जावे इस प्रकार १ प्रहर करनेसे शीशेकी भस्म होय। उस भस्मके समान मनशिल लेकर दोनोंको काँजीमें

खरल करे । फिर मिट्टीके दो शरावे ले एकमें उस भस्मको रक्खे और दूसरेसे उसका मुख बंद कर कपडमिट्टी करके गड्ढा खोद उसमें आरने उपले भरे और बीचमें शरावसंपुटको रखके ऊपरसे फिर आरने उपले भरे । इस प्रकार गजपुटकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकाल लेवे । फिर इसमें समानभाग मनशिल मिलायके दोनोंको काँजीमें खरल कर मिट्टीके शरावसंपुटमें डालके कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय आरने उपलोंकी अग्नि देवे । इस प्रकार ६० साठपुट देनेसे शीशेकी उत्तम भस्म हो ।

राँगभस्मप्रकार ।

मृत्पात्रेद्राविते वंगे चिंचाश्वत्थत्वचोरजः ॥ ४० ॥ क्षिप्त्वातेनचतुर्थांशमयोदर्व्याप्रचालयेत् ॥ ततोद्वियाममात्रेणवंगभस्मप्रजायते ॥ ४१ ॥ अथभस्मसमंतालंक्षिप्त्वाम्लेनप्रमर्दयेत् ॥ ततोगजपुटेपक्त्वापुनरम्लेनमर्दयेत् ॥ ४२ ॥ तालेनदशमांशेन याममेकंततःपुटेत् ॥ एवंदशपुटैःपक्वोवंगस्तुम्रियतेध्रुवम् ॥ ४३ ॥

अर्थ–मिट्टीके खिपडेको चूल्हेपर चढाय उसमें राँगेको डालके तपावे । जब रसरूप होजाय तब इमलीकी छाल और पीपलकी छाल इन दोनोंका चूर्ण राँगेसे चतुर्थांश लेकर उस गलेहुए राँगपर थोडा २ डालता जावे और लोहेकी कछलीसे चलाता जाय । इस प्रकार दो प्रहर करे तो राँगेकी भस्म होय । फिर इस भस्मके समान हरताल लेकर दोनोंको नींबूके रसमें खरल करके मिट्टीके शरावेमें संपुट करके ऊपरसे कपडमिट्टी कर देवे । गड्ढा खोदकर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूँख देवे । जब स्वांगशीतल होजावे तब बाहर निकालके उस भस्मका दशवाँ हिस्सा हरताल ले नींबूके रसमें दोनोंको खरल कर शरावसंपुटमें रख कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय ले । फिर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंख देव । इस प्रकार इसमें दश अग्निपुट देवे तो राँगकी निश्चय उत्तम भस्म होवे । इसको वंगभस्म कहते हैं । और इसी राँगमें प्रथम गलायके पारा मिलावे फिर उसके पत्र करके भस्म करे तो वह वंगेश्वर कहाता है ।

लोहभस्मप्रकार ।

शुद्धंलोहभवंचूर्णंपातालगरुडीरसैः ॥ मर्दयित्वापुटेद्वह्नौदद्यादेवंपुटत्रयम् ॥ ४४ ॥ पुटत्रयंकुमार्याश्चकुठारच्छिन्नकारसैः ॥ पुटषट्कंततोदद्यादेवंतीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ–पोलाद अथवा खेरी लोहका रेतीसे चूरा करके पातालगरुडी (छिलहिंटा) के रसमें खरल कर शरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंके संपुटमें रखके

फूंक देवे। इसप्रकार तीन अग्निपुट देवे। तथा घीगुवारके रसकी तीन अग्निपुट देवे एवं वन-तुलसीके रसकी (अथवा कसोंदी के) रसकी छः अग्निपुट देय। इसप्रकार बारह पुट देनेसे पोलाद आदि लोहोंकी उत्तम भस्म होय। इसमें जो बारह पुट कहे हैं उन्हें गजपुट जानना।

लोहभस्मका दूसराप्रकार।

क्षिपेद्द्वादशकांशेनपारदंतीक्ष्णलोहतः ॥ मर्दयेत्कन्यकाद्रावैर्यामयुग्मंततः पुटेत् ॥४६॥ एवंसप्तपुटैर्मृत्युंलोहचूर्णमवाप्नुयात् ॥ रसैःकुठारच्छिन्नायाःपातालगरुडीरसैः ॥४७॥ स्तन्येनचार्कदुग्धेनतीक्ष्णस्यैवंमृतिर्भवेत् ॥

अर्थ–खेडीलोहको रेतीसे चूर्णकर उस चूर्णका बारहवाँ हिस्सा हींगलू लेकर घीगुवारके रसमें दोनोंको दोप्रहर खरल करे तब मिट्टीके सरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टीकर आरनेउपलोंके बीचमें रखके फूंकदेवे। इसप्रकार सात पुट देय तो पोलाद और खेडी आदि लोहकी उत्तम भस्म होय। लोहभस्म करनेका दूसरा प्रकार और कहते हैं।

छिलहिंटाके रस अथवा स्त्रीके दूधमें तथा गौके दूधमें अथवा पियांवासा अथवा आकके दूधमें सिंगरफ मिलाय पोलाद लोहेको घोटके पृथक् २ सात अग्नि देवे तो तीक्ष्ण लोहेकी उत्तम भस्म होय।

लोहभस्मका तीसराप्रकार।

सूतकाद्द्विगुणंगंधंदत्वाकुर्याच्चकज्जलीम् ॥४८॥ द्वयोःसमंलोहचूर्णंमर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ यामयुग्मंततःपिंडंकृत्वाताम्रस्य पात्रके ॥४९॥ घर्मेधृत्वाक्रवूकस्यपत्रैराच्छादयेद्बुधः ॥ यामार्धेनोष्णताभूयाद्धान्यराशौन्यसेत्ततः ॥५०॥ तस्योपरिशरावंतुत्रिदिनांतेसमुद्धरेत् ॥ पिष्ट्वाचगालयेद्वस्त्रादेवंवारितरंभवेत् ॥५१॥ एवंसर्वाणिलोहानिस्वर्णादीन्यपिगालयेत् ॥शिलागंधार्कदुग्धाक्ताःस्वर्णवासर्वधातवः ॥५२॥ म्रियंतेद्वादशपुटैःसत्यंगुरुवचोयथा ॥

अर्थ–पारा एकभाग और गंधक दो भाग लेके दोनोंकी कजली करे। फिर उस कजलीके समानभाग पोलादका चूरा लेवे। सबको घीगुवारके रसमें दोप्रहर पर्यन्त खरलकरके गोला बनावे।

उसको तांबेके पात्रमें रखके उसके ऊपर अंडके पत्ते दो अथवा तीन ढकके चारघडीपर्यंत धूपमें रखदेवे जब वह गोला गरम होजावे तब मिट्टीके शरावेसे उस तांबेके पात्रका मुख बंद करके धानकी राशि (अन्नकी खत्ती) में तीनदिन पर्यन्त गाडदेवे । फिर चौथे दिन बाहर निकालके उस लोहकी भस्मको कपडछान करके इसको पानीमें डाले । यदि पानीमें तरने लगे तो उस भस्मको उत्तम हुई जाननी । इसप्रकार संपूर्ण लोहोंकी भस्म कपडेसे छानके पानीमें डालके देखे। यदि पानीमें तरनेलगे तो उत्तम भस्म हुई जाननी । अब दूसरे प्रकारसे संपूर्ण धातुओंकी भस्म करनेकी विधि ।

मनशिल और गंधक इन दोनोंको आकके दूधमें पीसके सुवर्णआदि संपूर्ण धातुओंपर लेप करके आरनेउपलोंकी बारह गजपुट अग्नि देवे तो संपूर्ण धातुओंकी भस्म होवे । इस विषयमें दृष्टांत है जैसे गुरुका वचन सत्य होताहै उसी प्रकार इस प्रयोग करके संपूर्ण धातुओंकी निश्चय भस्म होवे ।

सात उपधातु ।

माक्षिकंतुत्थकाभ्रौचनीलांजनशिलालकाः ॥ ९३ ॥
रसकश्चेतिविज्ञेयाएतेसप्तोपधातवः ॥

अर्थ–१ सुवर्णमाक्षिक (सोनामक्खी) २ लीलाथोथा ३ अभ्रक ४ सुरमा ५ मनशिल ६ हरताल और ७ खपरिया ये सात उपधातु जाननी ।

सुवर्णमाक्षिकका शोधन और मारण ।

माक्षिकस्यत्रयोभागाभागैकंसैंधवस्यच ॥ ९४ ॥ मातुलुंगद्रवैर्वाथजंबीरोत्थद्रवैःपचेत्॥ चालयेल्लोहजेपात्रेयावत्पात्रंसुलोहितम् ॥९५॥ भवेत्ततस्तुसंशुद्धिंस्वर्णमाक्षिकमृच्छति ॥ कुलत्थस्यकषायेणघृष्ट्वातैलेनवापुटेत् ॥ ९६ ॥ तक्रेणवाजमूत्रेणम्रियतेस्वर्णमाक्षिकम् ॥

अर्थ–सुवर्णमाक्षिक तीन भाग और सैंधानमक एक भाग दोनोंका चूर्ण कर दोनोंको लोहकी कडाहीमें डालके चूल्हेपर चढायके नीचे अग्नि जलावे फिर इसमें बिजोरेका रस अथवा जंभीरीका रस डालके लोहकी कलछोंसे घोटे । जब कढाई लाल होजावे तब नीचे उतार लेय । जब शीतल होजावे तब सुवर्णमाक्षिककी भस्मको उसमेंसे निकाल लेवे । इस प्रकार शोधन करके उस सोनामक्खीको कुलथीके काढेमें, तिलके तेलमें, छाँछमें अथवा गोमूत्रमें खरलकर सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टीकर आरनेउपलोंकी अग्निमें फूंक देय तो सुवर्णमाक्षिककी भस्म होय ।

रौप्यमाक्षिकका शोधन और मारण ।

कर्कोटीमेषशृंग्युत्थैर्द्रवैर्जंबीरजैर्दिनम् ॥ ५७ ॥
भावयेदातपेतीव्रेविमलाशुद्धचतिध्रुवम् ॥

अर्थ-रूपामाखीका चूर्ण कर ककोडा मेंढासिंगी और जंभीरी इन तीनोंके रसमें एक २ दिन खरलकर धूपमें धरनेसे रौप्यमाक्षिक (रूपामाखी) शुद्ध होय । इसका मारण सुवर्णमाक्षिकके समान जानना ।

लीलेथोथेका शोधन ।

विष्ठयामर्दयेत्तुत्थंमार्जारककपोतयोः ॥ ५८ ॥ दशांशंटंकणं दत्वापचेन्मृदुपुटेततः ॥ पुटंदध्नःपुटेक्षौद्रैर्देयंतत्थविशुद्धये ॥५९॥

अर्थ-बिल्ली और कबूतर (अथवा पिंडुकिया) इनकी विष्ठा लीलेथोथेके समान तथा लीलेथोथेका दशवाँ हिस्सा सुहागा लेकर सबको एकत्र करके खरल करे और मिट्टीके शरावसंपुटमें भर कपडमिट्टीकर आरने उपलोंकी हलकी अग्निदेवे । फिर बाहर निकाले दहीमें खरलकर इसी प्रकार अग्नि देवे । फिर सहतमें खरल करके अग्नि देय तो लीलेथोथेकी शुद्धि होवे ।

अभ्रकका शोधन और मारण ।

कृष्णाभ्रकंधमेद्वह्नौततःक्षीरेविनिक्षिपेत् ॥ भिन्नपत्रंतुतत्कृत्वा तंदुलीयाम्लयोर्द्रवैः ॥ ६० ॥ भावयेदष्टयामंतदेवंशुद्धचति चाभ्रकम् ॥ कृत्वाधान्याभ्रकंतत्तुशोषयित्वाथमर्दयेत् ॥६१॥ अर्कक्षीरैर्दिनंखल्वेचक्राकारंचकारयेत् ॥ वेष्टयेदर्कपत्रैश्चसम्यग्गजपुटेपचेत ॥ ६२॥ पुनर्मर्द्यपुनःपाच्यंसप्तवारंप्रयत्नतः ॥ ततोवटजटाक्वाथैस्तद्वद्देयंपुटत्रयम् ॥६३ ॥ म्रियतेनात्रसंदेहः सर्वरोगेषुयोजयेत्॥मृतंत्वभ्रंहरेन्मृत्युंजरापलितनाशनम्॥६४॥ अनुपानैश्चसंयुक्तंतत्तद्रोगहरंपरम् ॥

अर्थ-काली अभ्रक अर्थात् वज्राभ्रकको कोलेमें डालके धोंकनीसे अथवा फूंकनीसे फूककर तपावे । जब लाल होजावे तब निकालके दूधमें बुझाय दे । फिर उसके पृथक् २ पत्र करके चौलाईका रस और नींबूका रस दोनोंको एकत्र करके उसमें उन पत्रोंको आठ प्रहर पर्यंत भिगोय देवे तो अभ्रक शुद्ध होय ।

फिर उस अभ्रकको उस रसमेंसे निकालके उसका धान्याभ्रक कर उसको आकके दूधमें एक प्रहर पर्यंत खरलकर गोल २ चक्रके आकार टिकिया बनावे । उनके चारोंतरफ आकके पत्ते लपेटके मिट्टीके सरावसंपुटमें भर उस पर कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय लेवे । फिर उसको आरनेउपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे । इस प्रकार आकके दूधमें १ एक दिन खरल करे और रात्रिमें पुट देवे. ऐसे सात पुट देय । फिर बडकी जटाके काढेमें उस अभ्रकको एक २ दिन खरल करे और अग्नि देवे इस प्रकार तीन गजपुट देय । ऐसी अग्नि देय तो अभ्रककी उत्तम भस्म होय इसमें संशयं नहीं है । इस अभ्रकसे संपूर्ण रोग दूर होवें तथा अकाल मृत्युका भी निवारण हो बुढापा दूर हो, सफेद बालोंके काले बाल हों तथा इसको जैसे २ अनुपानके साथ जिस २ रोगमें देय तो यह वैसे २ गुणोंको करता है ।

दूसरी विधि ।

शुद्धंधान्याभ्रकंमुस्तंशुंठीषड्भागयोजितम् ॥ ६५ ॥ मर्दये त्कांजिकेनैवदिनंचित्रकजैरसैः ॥ ततोगजपुटंदद्यात्तस्माद्धृ त्यमर्दयेत् ॥ ६६ ॥ त्रिफलावारिणातद्वत्पुटदेवंपुटैस्त्रिभिः ॥ बलगोमूत्रमुसलीतुलसीसूरणद्रवैः॥ ६७ ॥ मर्दितंपुटितंवह्नौ त्रिस्त्रिवेलंव्रजेन्मृतिम् ॥

अर्थ–जिस प्रकार प्रथम विधिकी टिप्पणीमें धान्याभ्रक करनेकी विधि कह आयेहैं उस प्रकारसे शुद्ध कियाहुआ धान्याभ्रक लेवे उस धान्याभ्रकका छठा हिस्सा नागरमोथा और सोंठ इनका चूर्ण करके उसमें मिलावे । फिर उसको कांजीमें १ दिन खरल करे । पश्चात् एकदिन चीतेकी रसमें खरल करके मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी कर आरनेउपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे । जब शीतल होजावे तब उसको बाहर निकालके त्रिफलेके काढेमें नित्य प्रति मर्दन करे इस प्रकार तीन दिन करे और तीनही गजपुटकी आंच देवे । पश्चात् खरेंटीका रस अथवा खरेंटीका काढा, गोमूत्र, मुसलीका काढा, तुलसीके, पत्तोंका रस और जमीकन्द इन पांचोंके रसमें अभ्रकको पृथक् खरल करावे । एक एकके तीन २ गजपुट देवे । इस प्रकार गजपुटकी अग्नि देनेसे अभ्रककी परमोत्तम भस्म होय ।

---

१ धान्याभ्रककी यह विधि है कि, कतरीहुई अभ्रकको लेकर चतुर्थांश चावलोंके धानको मिलायके उनको कंबलमें पोटली बाँधके परातमें रखदे । फिर उसपर जल डालताजाय और हाथोंसे उन पोटलीको : मीडताजावे । इस प्रकार करनेसे उस कंबलमें जितना अभ्रक होगा वह बह बह कर उस परातके पानीमें आजावेगा । जब जाने कि सब अभ्रक परातमें आगया तब उस परातके पानीको नितारके पटकदेवे और उस अभ्रकके चूरेको लेकर धूपमें सुखायले । इसे धान्याभ्रक कहते हैं।

सुरमा और गैरिकादिकोंका शोधन।

नीलांजनंचूर्णयित्वाजंबीरद्रवभावितम् ॥ ६८॥ दिनैकमातपे शुद्धंभवेत्कार्येषुयोजयेत् ॥ एवंगैरिककाशीसटंकणानिवराटिका ॥ ६९ ॥ तुवरीशंखकंकुष्ठंशुद्धिमायातिनिश्चितम् ॥

अर्थ–सुरमाका चूर्ण करके जंभीरीके रसमें खरलकर एक दिन धूपमें राखे तो सुरमा शुद्ध होय। फिर इसको रोगादिकोंपर देना चाहिये । इसीप्रकार गेरू हीराकसीस सुहागा कौडी फिटकरी शंख और मुरदासंग इन सबकी शुद्धि करनी चाहिये ।

मनशिलका शोधन।

पचेत्त्र्यहमजामूत्रैर्दोलायंत्रेमनःशिलाम् ॥ ७० ॥
भावयेत्सप्तधापित्तैरजायाःशुद्धिमृच्छति ॥

अर्थ–मनशिलको दोलायंत्रमें डालके बकरीके मूत्रमें तीन दिन पचावे । फिर बाहर निकालके खरलमें डाल सात पुट बकरीके पित्तेकी देवे तो मनशिल शुद्ध होवे ।

हरतालका शोधन।

तालकंकणशःकृत्वातच्चूर्णकांजिकेक्षिपेत् ॥७१॥ दोलायंत्रेण यामैकंततःकूष्मांडजैर्द्रवैः॥ तिलतैलेपचेद्यामंयामंचत्रिफलाजलैः ॥ ७२ ॥ एवंयंत्रेचतुर्यामंपाच्यंशुद्धयतितालकम् ॥

अर्थ–हरतालके छोटे २ बारीक टुकडे कर उनको कपडेकी पोटलीमें बाँध दोलायंत्रद्वारा कांजीमें एकप्रहर, पेठेके रसमें एकप्रहर, तिलके तेलमें १ प्रहर, तथा त्रिफलाके काढेमें १ प्रहर पचावे । इसप्रकार दोलायंत्रमें हरतालको चारप्रहर पक्क करनेसे शुद्ध होती है ।

खपरियाका शोधन।

नृमूत्रेवाथगोमूत्रेसप्ताहंरसकंक्षिपेत् ॥ ७३ ॥
दोलायंत्रेणशुद्धिःस्यात्ततःकार्येषुयोजयेत् ॥

अर्थ–खपरियाको दोलायंत्रमें डालके मनुष्यके मूत्रमें सात दिन अथवा गोमूत्रमें सात दिन पचानेसे खपरिया शुद्ध हो तब इसको औषधोंमें मिलावे ।

अभ्रकहरतालआदिसे सत्वनिकालनेकी विधि।

लाक्षामीनपयश्छागंकंकणंमृगशृंगकम् ॥७४॥ पिण्याकंसर्ष-

१ काढे आदि पतली वस्तुको किसी गगरे आदिमें भरके जो औषध शोधनी होवे उसकी पोटली बांधके लटकाय देवे इस प्रकार स्वेदनविधि करनेको दोलायंत्र कहते हैं ।

पाःशिग्रुर्गुंजोर्णागुडसैंधवाः ॥ यवास्तिक्ताघृतंक्षौद्रंयथालाभं विचूर्णयेत् ॥७५॥ एभिर्विमिश्रिताःसर्वेधातवोगाढवह्निना॥ मूषाध्माताःप्रजायंतमुक्तसत्त्वानसंशयः ॥ ७६ ॥

अर्थ–१ लाख २ छोटी मछली ३ बकरीका दूध ४ सुहागा ५ हारिणका सींग ६ तिलोंकी खल ७ सरसों ८ सहजनके बीज ९ घूंघची (चिरमिठी) १० मेंढाके बाल (ऊन) ११ गुड़ १२ सैंधानिमक १३ जौ १४ कुटकी १५ घी और १६ सहत ये सोलह वस्तु, हरताल आदि जिस वस्तुका सत्व निकालना होवे उस धातुका आठवाँ हिस्सा एक २ औषध लेकर सबका चूर्ण कर एकत्र गोलासे बनाय मूसमें रखके कोलोंकी आँचमें धोंकनीसे खूब धमावे तो हरताल अथवा अभ्रक आदि उपधातुओंका सत्व निकले । इस प्रकार जिस वस्तुका सत्व निकालना हो निकाल लेवे । धातुओंका द्रवीकरण आदि विधि रसराजसुन्दर ग्रंथमें देखो ।

हीराका शोधन और मारण ।

कुलित्थकोद्रवक्वाथैर्दोलायंत्रेविपाचयेत् ॥ व्याघ्रीकंदगतंवज्रंत्रिदिनंशुद्धिमृच्छति ॥ ७७ ॥ तप्तंतप्तंतुतद्वज्रंखरमूत्रेनिषेचयेत् ॥ पुनस्ताप्यंपुनःसेच्यमेवंकुर्यात्त्रिसप्तधा ॥ ७८ ॥ मत्कुणैस्तालकंपिष्ट्वायावद्भवतिगोलकम् ॥ तद्गोलेनिहितंवज्रंतद्गोलंवह्निनाधमेत् ॥ ७९ ॥ सेचयेदश्वमूत्रेणतद्गोलेचक्षिपेत्पुनः ॥ रुद्ध्वाध्मातंपुनःसेच्यमेवंकुर्याच्चसप्तधा ॥ ८० ॥ एवंचम्रियतेवज्रंचूर्णंसर्वत्रयोजयेत् ॥

अर्थ–व्याघ्रीकंदको कूट पीस लुगदीकर उसमें हीराको रखके उसकी वस्त्रसे पोटली बनाय दोलायंत्रमें डालके कुथलीके काढेमें तीन दिन तथा कोदोंधान्यके काढेमें तीनदिन पचावे तो हीरा शुद्ध होय

फिर उस हीराको अग्निमें तपाय २ के गधेके मूत्रमें बुझावे इसप्रकार इक्कीसवार बुझावे । फिर खटमलोंमें मिलायके हरतालको पीस उसका गोला करके उस गोलेके बीचमें हीरेको रखके उसको मूसमें रखके कोलोंकी तीव्र अग्निसे धमावे । जब अच्छा गरम होजावे तब उसको घोडेके मूत्रसे बुझाय देवे । फिर उस हीरेको निकाल के

१ संपूर्ण औषधोंकी अपेक्षा सुहागा सत्व निकालनेवाली धातुका चतुर्थांश लेवे ऐसा किसी आचार्यका मत है ।

और पूर्वोक्त विधिसे हरतालको खटमलोंके रुधिरमें घोट गोला बनाय उसमें हीराको रखके उसीप्रकार कोलमें धमावे। जब अत्यंत गरम होजाय तब घोडेके मूत्रमें बुझाय देवे इस प्रकार सातवार करे तो हीराकी उत्तम भस्म होय। फिर इस भस्मको संपूर्ण रोगोंमें देवे। (व्याघ्रीकंदको दक्षिणमें गुहेरीकंद कहते हैं और कोई कटेरीकी जड कोही व्याघ्रीकंद कहते हैं)।

हीरेकी भस्मकी दूसरी विधि।

हिंगुसैंधवसंयुक्तेकाथेकौलत्थजेक्षिपेत् ॥ ८१ ॥
तप्तंतप्तंपुनर्वज्रंभूयाच्चूर्णंत्रिसप्तधा ॥

अर्थ—हींग सैंधानमक और कुलथी इन तीनोंका काढाकर उसमें हीरेको तपाय २ के इकीसवार बुझावे तो हीरेकी भस्म होवे।

तीसरी विधि।

मडूकंकांस्यजेपात्रेनिगृह्यस्थापयेत्सुधीः ॥ ८२ ॥
सभीतोमूत्रयेत्तत्रतन्मूत्रेवज्रमावपेत्॥
तप्तंतप्तंचबहुधावज्रस्यैवंमृतिर्भवेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ—मेंढकको काँसेके पात्रमें रक्खे जब वह डरकेमारे मूते तब उस मूत्रमें हीरेको तपाय २ के अनेकवार बुझावे तो हीरेकी भस्म होय।

वैक्रांतका शोधन और मारण।

वैक्रांतंवज्रवच्छोध्यंनीलंवालोहितंतथा॥ हयमूत्रेतुतत्सेच्यंतप्तंतप्तंद्विसप्तधा ॥ ८४ ॥ ततस्तुमेषदध्युरूपंचांगेगोलकेक्षिपेत् ॥ पुटेन्मूषापुटेरुद्धाकुर्यादेवंचसप्तधा ॥ ८५ ॥ वैक्रांतंभस्मतांयातिवज्रस्थानेनियोजयेत् ॥

अर्थ—वैक्रांत[1] (कासुला) मणि नीलमणि तथा पद्मराग (लल) मणि इनका शोधन हीराके समान करे। फिर उस वैक्रांतमणिको तपाय २ के घोडेके मूत्रमें १४ चौदहवार बुझावे। पश्चात् मेंढासिंगीके पंचांगको कूट पीस उसकी लुगदी करके उसमें इस वैक्रांतमणिको रखके सरावसंपुटमें धरके कपडमिट्टीकर आरनेउपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। इस प्रकार सात अग्नि देवे तो वैक्रांत मणिकी भस्म होय: यह भस्म हीराकी भस्मके अभावमें देनी चाहिये।

---

[1] उत्पन्न होते समय विकृतताको प्राप्तहोनेसे उसी हीराको वैक्रांत कहते हैं।

संपूर्ण रत्नोंका शोधन मारण ।

स्वेदयेद्दोलिकायंत्रेजयंत्याःस्वरसेनच ॥ ८६ ॥ मणिमुक्ताप्रवालानांयामैकंशोधनंभवेत् ॥ कुमार्यातंदुलीयेनस्तन्येनच निषेचयेत् ॥८७॥ प्रत्येकंसप्तवेलंचतप्ततप्तानिकृत्स्नशः ॥ मौक्तिकानिप्रवालानितथारत्नान्यशेषतः ॥ ८८ ॥ क्षणाद्विविध वर्णानिम्रियंतेनात्रसंशयः ॥ उक्तमाक्षिकवन्मुक्ताःप्रवालानिच मारयेत् ॥ ८९ ॥ वज्रवत्सर्वरत्नानिशोधयेन्मारयेत्तथा ॥

अर्थ–सूर्यकांतमणि मोती और मूंगा इनको दोलायंत्रमें डालके भरना अथवा जाईके रसमें एक प्रहर पचावे तो ये शुद्ध होवें । फिर इनका मारण इसप्रकार करे । घीगुवारका रस चौलाईका रस तथा स्त्रीका दूध इन तीनोंमें उन मणि मोती और मूंगा तथा और अन्य प्रकारके रत्नोंको तपाय २ एक एकमें सात २ वार बुझावे तो क्षणमात्रमें सबकी भस्म होवे इस विषयमें संदेह नहींहै । तथा इनके मारणकी दूसरी विधि कहते हैं ।

सुवर्णमाक्षिकका जिस प्रकार मारण कहा है उसी प्रकार मोतियोंका और मूंगका मारण करे। हीराके शोधन और मारणके सदृश संपूर्ण रत्नोंका शोधन मारण करना चाहिये ।

शिलाजीतका शोधन ।

शिलाजतुसमानीयग्रीष्मतप्तशिलाच्युतम् ॥ ९० ॥ गोदुग्धैस्त्रिफलाक्काथैर्भृंगद्रावैश्चमर्दयेत् ॥ आतपेदिनमेकैकंतच्छुष्कंशुद्धतांव्रजेत् ॥ ९१ ॥

अर्थ–ग्रीष्म ऋतुमें गरमी अधिक होती है इसीसे पर्वतमें जो बडी २ शिला होती हैं गरमीसे अत्यंत तपतीहैं तब उनसे रस गलकर जमजाताहै उसको शिलाजीत कहतेहैं उस शिलाजीतको लायके गौके दूधमें, त्रिफलेके काढेमें तथा भाँगरेके रसमें पृथक् २ एक एक दिन खरलकर धूपमें धरके सुखाय लेवे तो शिलाजीत शुद्ध होवे ।

तथा दूसरा प्रकार ।

मुख्यांशिलाजतुशिलांसूक्ष्मखंडप्रकल्पिताम् ॥ निक्षिप्यात्युष्णपानीययामैकंस्थापयेत्सुधीः ॥ ९२ ॥ मर्दयित्वाततोनीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥स्थापयित्वाचमृत्पात्रेधारयेदातपेबुधः ॥९३॥ उपरिस्थंघनंचस्यात्तात्क्षिपेदन्यपात्रके ॥ धारयेदातपेधीमानुपरिस्थंघनंनयेत् ॥९४॥ एवंपुनःपुनर्नीत्वाद्विमासा-

ष्यांशिलाजतु ॥ भूयात्कार्यक्षमंवह्नौक्षिप्तंलिंगोपमंभवेत् ॥ ॥ ९५ ॥ निर्धूमंचततःशुद्धंसर्वकर्मसुयोजयेत् ॥ अधःस्थितं चयच्छेषंतस्मिन्नीरंविनिक्षिपेत् ॥ ९६ ॥ विमर्द्यधारयेद्धर्मेपू- र्ववच्चैवतन्नयेत् ॥

अर्थ-जिस पाषाणसे शिलाजीत उत्पन्न होता है उस पाषाणको उत्तम देखके लेवे उस पाषा-णके बारीक २ टुकडे करके खलबलातेहुए गरम पानीमें एकप्रहर पर्यन्त भिगोवे । पश्चात् उन टुकडोंको उसी पानीमें बारीक पसिके कपडेमें छान उस पानीको मिट्टीकी नाँदमें डालके धूपमें रख देवे । जब उस पानीपर मलाई आयजावे उसको उतारके दूसरे पात्रमें डालताजाय । इसप्रकार पृथक् २ पात्रमेंसे वारंवार सब मलाई उतारके दूसरे पात्रमें इकट्ठीकरे फिर उस दूसरे पात्र-मेंभी गरम जल डालके उस शिलाजीतकी मलाईको मिलायके धूपमें धर देवे । जब उसमें मलाई पडे तब उतार २ के तीसरी नाँदमें डाले और उसमेंभी गरम जल डालके धूपमें धर देवे । जब उसमें मलाई आवे तब फिर पहली शुद्ध की हुई नाँदमें मलाईको इकट्ठीकरे । इस क्रमसे बराबर एक मेंसे निकाल कर दूसरेमें एकत्रकरे और पहिली नाँदमें जो नीचे गाद बैठ जावे उसको जलमें पीसके छान लेवे और इसी क्रमसे उसको धूपमें रखके मलाई उतार लियाकरे । इसप्रकार दोमहीने पर्यंत करे तो शिलाजतिकी उत्तम शुद्धि होवे ।

इसकी परीक्षा इसप्रकार करे कि इसमेंसे थोडासा टुकडा तोडके अग्निमें डाले तो उसका लिंगके समान धूमरहित आकार होताहै उसको शुद्ध शिलाजीत जानना । इसको सर्व कार्योंमें देवे ।

मंडूरबनानेकी विधि ।

अक्षांगारैर्धमेत्किट्टंलोहजंतद्गवांजलैः॥९७॥सेचयेत्तप्ततप्तंतत्स- सवारंपुनःपुनः ॥ चूर्णयित्वाततःक्काथैर्द्विगुणैस्त्रिफलाभवैः ॥ ॥ ९८ ॥ आलोडयभर्जयेद्वह्नौमंडूरंजायतेवरम् ॥

अर्थ-बहेडेकी लकडियोंके कोलेकरके उसमें पुराने लोहकी कीटी डालके धोंके जब लालहो-जावे तब उस कीटीको गोमूत्रमें बुझाय देवे । इसप्रकार सातवार तपाय २ के गोमूत्रमें बुझावे । फिर उस कीटीका बारीक चूर्ण करके उसका दूना त्रिफलेका काढा हाँडीमें भर उसमें उस कीटीके चूर्णको डालके अच्छी रीतिसे उस हाँडीके मुखको ढक मुखपर कपडमिट्टीकर देवे । पश्चात् उसको आरनेउपलोंकी गजपुटमें रखके फूंक देय । जब शीतल होजावे तब उस हाँडीको बाहर निकाल उसमें उस कीटका जो शुद्ध मंडूर बनके तैयार होवे उसको निकाललेय तो परमोत्तम बने । इसे सब योगोंमें मिलावे ।

क्षारबनानेकी विधि।

क्षारवृक्षस्यकाष्ठानिशुष्कान्यग्नौप्रदीपयेत् ॥ ९९ ॥ नीत्वातद्भस्ममृत्पात्रेक्षिप्त्वानीरेचतुर्गुणे ॥ विमर्द्यधारयेद्रात्रौप्रातरच्छजलं नयेत् ॥१००॥ तन्नीरंक्काथयेद्वह्नौयावत्सर्वंविशुष्यति ॥ ततःपात्रात्समुल्लिख्यक्षारोग्राह्यःसितप्रभः ॥१०१॥चूर्णाभःप्रतिसार्यःस्यात्पेयःस्यात्क्काथवत्स्थितः ॥इतिक्षारद्वयंधीमान्युक्तकार्येषुयोजयेत् ॥ १०२ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने मध्यमखंडेधातुशोधनमारणंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्थ–जिन वृक्षोंसे खार निकलता है उन वृक्षोंकी लकडी पंचांग लाकर सुखायके जलाय लेवे। जब राख हो तब उस राखको मिट्टीके गगरेमें भर राखसे चौगुना जल डालके उस राखको उस पानीमें मिलायके रखदेवे। सुश्रुतमें ६ गुना जल डालना लिखाहै इसप्रकार रात्रिभर धरी रहनेदे प्रातःकाल उस घडेमेंसे ऊपर ऊपरका नितराहुआ जल लोहेकी कढाईमें निकाल लेवे फिर उस कढाईको अग्निपर चढायके नीचे अग्नि जलायके उस पानीको जलाय देवे। इस प्रकार करनेसे पानी जल जावेगा उस कढाईमें चारोंतरफ सफेद [१] खार चूर्णके समान लगाहुआ रह जावेगा उसको निकाल लेवे। इस क्षारको प्रतिसार्य कहते हैं। इसको श्वासादि रोगोंपर देवे। तथा काढेके समान पतला जो क्षार रहता है उसको पेय कहते हैं। उस क्षारको गुल्मादिक रोगोंपर देवे। इस प्रकार पतला और चूर्णके समान ऐसे दो प्रकारका क्षार जानना।

इति श्रीशार्ङ्गधरेमाथुरीभाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः १२.

पारदके नाम तथा सूर्यादिनवग्रहोंके नामकरके ताम्रादिनवधातुओंकी संज्ञा।

पारदः[२]सर्वरोगाणांजेतापुष्टिकरःस्मृतः ॥ सुज्ञेनसाधितःकुर्या-

१ ओंगा इमली केला पलास थूहर चीता कटेरी मोखवृक्ष इत्यादि क्षारवृक्ष जानने।
२ पारदः सर्वरोगाणां नेता इति पाठांतरम्।

रससिद्धिंदेहलोहयोः ॥ १ ॥ रसेंद्रःपारदः सूतो हरजः सूतको रसः ॥ मुकुंदश्चेतिनामानिज्ञेयानिरसकर्मसु ॥ २ ॥ ताम्रतारनागाश्चहेमवंगौचतीक्ष्णकम् ॥ कांस्यकंकांतलोहंचधातवोनवयेस्मृताः ॥ ३ ॥ सूर्यादीनांग्रहाणांतेकथितानामभिः क्रमात् ॥

अर्थ-पारा संपूर्ण रोगोंका जीतनेवाला और देहको पुष्ट करनेवाला है वह चतुर मनुष्य करके बनाया हुआ देहकी और लोहकी तत्काल सिद्धि करता है अर्थात् खानेसे देहको अजर अमर करे और लोह (ताँबा राँगा आदि) में डालनेसे सुवर्ण करता है । पारदके नाम १ रसेंद्र २ पारद ३ सूत ४ हरज ५ सूतक ६ रस और ७ मुकुंद ये सात नाम रस कर्ममें जहां २ आवें तहां पारदके जानने । १ ताम्र २ रूपा ३ जस्त ४ शीशा ५ सुवर्ण ६ राँगा ७ पोलाद ८ काँसा और ९ कांतलोह ये नौ धातु क्रमसे सूर्यादि नवग्रहोंके नाम करके जानने । जैसे— जितने सूर्यके नाम हैं वे सब ताँबेके जानने, जितने चन्द्रमाके नाम वे सब रूपेके जानने, जितने मंगलके नाम हैं वे सब जस्तके अथवा पीतलके जानने । इसी क्रमसे नवग्रहोंके नाम हैं वे नौ धातुओंके जानना ।

पारेका शोधन ।

राजीरसोनमूषायांरसंक्षिप्त्वाविबंधयेत् ॥४॥ वस्त्रेणदोलिकायंत्रेस्वेदयेत्कांजिकैस्त्र्यहम् ॥ दिनैकंमर्दयेत्सूतंकुमारीसंभवैर्द्रवैः ॥ ५ ॥ तयाचित्रकजैःक्वाथैर्मर्दयेदेकवासरम् ॥ काकमाचीरसैस्तद्वद्दिनमेकंचमर्दयेत् ॥ ६ ॥ त्रिफलायास्ततःक्वाथैरसोमर्द्यःप्रयत्नतः ॥ ततस्तेभ्यःपृथक्कुर्यात्सूतंप्रक्षाल्यकांजिकैः ॥ ७ ॥ ततःक्षिप्त्वारसंखल्वेरसादर्धंचसैंधवम् ॥ मर्दयेन्निंबुकरसैर्दिनमेकमनारतम् ॥ ८ ॥ ततोराजीरसोनश्चमुख्यश्चनवसादरः ॥ एतैरससमैस्तद्वत्सूतोमर्द्यस्तुषांबुना ॥ ९ ॥ ततःसंशोष्यचक्राभंकृत्वाक्षिप्त्वाचहिंगुना ॥ द्विस्थालीसंपुटेधृत्वापूरयेल्लवणेनच ॥ १० ॥ अथस्थाल्यांततोमुद्रांदद्याद्द-

१ सुदिने साधितोति पाठांतरम् । २ बुधैस्तस्येतिनामानीति पाठांतरम् । ३ सूर्याचन्द्रमसौ भौमः शशिजो जीवभार्गवौ ॥ सूर्यसुतः सैंहिकेयः केतुश्चेति नवग्रहाः ।

ढतरांबुधः ॥ विशोष्याग्निंविधायाधोनिषिंचेदंबुचोपरि॥११॥ ततस्तुकुर्यात्तीव्राग्निंतदधःप्रहरत्रयम्॥एवंनिपातयेदूर्ध्वेरसोदोषविवर्जितः ॥ १२॥ अथार्धपिठरीमध्येलग्नोग्राह्योरसोत्तमः॥

अर्थ–राई और लहसन दोनोंको एकत्र पीसके उसकी मूस बनावे । उसमें पारा डालके उसकी कपडेमें पोटली बाँध दोलायन्त्र करके काँजीमें तीन दिन पचावे । फिर उस पारेको निकाल खरलमें डालके घीगुवारके रसमें एक दिन खरल करे । फिर चीतेके और काँगुनीके रसमें और त्रिफलाके काढेमें एक एक दिन खरल करे । फिर काँजीमें इस पारेको धोयके उस औषधोंके रससे पृथक् करके फिर खरलमें डालके उस पारेका आधा सैंधानमक मिलायके दोनोंको नींबूके रसमें १ दिन खरल करे । फिर राई लहसन और नौसादर ये तीन औषध पारेके समान भाग लेके उसमें पारेको मिलाय धानके तुषोंके काढेमें सबको खरल करै । जब शुष्क होजावे तब उसकी गोल २ टिकियासी बनावे । उनके चारों तरफ हींगका लेप करके उन टिकियाओंको एक घडेमें रखके उसमें नमक डालके घडेके मुखपर दूसरा घडा उलटा जोडके कपडमिट्टीकर दृढ करके धूपमें सुखाय देवे । फिर इसको चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि जलावे और ऊपरके घडेपर गीले कपडेका पुचारा फेरता जावे कि जिससे ऊपरका घडा शीतल रहे और उड़ा हुआ पारा नीचे न गिरे अथवा उसपर शीतल जल भर देवे । फिर उस नीचेके घडेके नीचे ३ प्रहर तेज अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब घडोंको अलग २ करके हलके हाथसे उस ऊपरके लगे हुए पारेको निकाल लेवे । यह पारा परम शुद्ध और दोषरहित होता है ।

गंधकका शोधन ।

लोहपात्रेविनिक्षिप्यघृतमग्नौप्रतापयेत् ॥ १३ ॥ तप्तेघृतेतत्समानंक्षिपेद्गंधकजंरजः॥ विद्रुतंगंधकंज्ञात्वादुग्धमध्येविनिक्षिपेत् ॥ १४ ॥ एवंगंधकशुद्धिःस्यात्सर्वकार्येषुयोजयेत् ॥

अर्थ–लोहेके कडछुलेमें घी डालके मंदाग्निसे तपाय उस घीकी बराबर आमलासार गंधकका बारीक चूर्ण करके उस घीमें डाल देवे । फिर गंधक घीमें तपकर जब रसरूप होजावे तब एक दूधके पात्रपर बारीक कपडा बाँधके उसमें उस गंधकको उडेल देवे । जब शीतल होजाय तब उस गंधकको निकाल ले । यह शुद्ध गंधक सर्व कार्योंमें लावे ।

हिंगलूसे पारा काढनेकी विधि ।

निंबूरसैर्निंबपत्ररसैर्वायाममात्रकम् ॥ १५ ॥ पिष्टादरदमूर्ध्व

चपातयेत्सूतयुक्तिवत् ॥ ततःशुद्धरसंतस्मान्नीत्वाकार्येषुयोजयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ-नींबूके रसमें अथवा नीमके पत्तोंके रसमें हींगलूको १ प्रहर खरल कर डमरूयंत्रमें भर नीचे अग्नि जलावे उसमेंसे पारा उडके ऊपरकी हाँडीमें जायके जमजावे उसे धोकर पारा निकालले यह शुद्ध जानना इसको सर्व कार्यमें लेय।

हींगलूका शोधन।

मेषीक्षीरेणदरदमम्लवर्गैश्चभावितम् ॥
सप्तवारंप्रयत्नेनशुद्धिमायातिनिश्चितम् ॥ १७ ॥

अर्थ-हींगलूको खरलमें डालके भेडका दूधकी सात पुट देवे तथा नींबूके रसकी सात पुट, ऐसे चौदह पुट देय तो हींगलू निश्चय शुद्ध होवे।

शुद्धहुए पारेके मुखकरनेकी विधि।

कालकूटोवत्सनाभःशृंगकश्चप्रदीपकः॥हालाहलोब्रह्मपुत्रोहारिद्रःसक्तुकस्तथा ॥ १८॥ सौराष्ट्रिकइतिप्रोक्ताविषभेदाअमीनव ॥ अर्कसेहुंडधत्तूरलांगलीकरवीरकम् ॥ १९॥ गुंजाहिफेनावित्येताःसप्तोपविषजातयः ॥ एतैर्विमर्दितःसूतश्छिन्नपक्षःप्रजायते ॥ २० ॥ मुखंचजायतेतस्यधातूँश्चग्रसतेक्षणात्॥

अर्थ-१कालकूट २ वत्सनाभ (बच्छनाग) ३ शृंगक (सिंगिया) ४ प्रदीपक ५ हालाहल ६ ब्रह्मपुत्र ७ हारिद्र ८ सक्तुक और ९ सौराष्ट्रिक ये नौ महाविष हैं। १ आक २ थूहर ३ धतूरा ३ कलयारी ५ कनेर ६ गुंजा और ७ अफीम ये सात उपविष हैं ऐसे सब मिलके १६ हुए इनमेंसे एक एक विषमें पारेका सात २ दिन एकके पीछे दूसरेमें इस प्रकार पृथक् २ खरल करके धोयलेवे पारेके पक्ष (पर) कटजावें अर्थात् उडे नहीं तथा उसके मुख होकर सुवर्णादि धातुओंको तत्काल ग्रसे अर्थात् खाय जावे। इस वास्ते इन कालकूटादि महाविषोंके लक्षण ग्रंथान्तरमें जो लिखेहैं उनको टीकाकार प्रसंगवश लिखते हैं।

१ कालकूट विष सफेद वर्णका होताहै तथा उसपर लाल २ बिंदु बहुत होते कीचडके समान नम्र होताहै । यह विष देवता और दैत्योंके युद्धमें मलिनामक दैत्यके रुधिरसे उत्पन्न हुआ है । यह पीपलके वृक्षके समान एक वृक्ष होताहै उसका गोंद है। इसकी उत्पत्ति अहिच्छत्र मलय कोंकण और शृंगबेर इन पर्वतोंपर अत्यंत होती है।

२ वत्सनाभ विषके निर्गुंडीके पत्तोंके समान पत्र होते हैं और आकृति (स्वरूप) में वत्सनाभ के समान होता है । इसके आसपासं वृक्ष बेल घास ये बढते नहीं हैं । वह विष द्रोणाचलपर्वतपर अत्यंत उत्पन्न होता है ।

३ शृंगकविष गौके सींगके समान होकर उसके दो भाग होते हैं । इस विषको गौके सींगसे बाँधे तो गौका दूध रुधिरके समान होताहै । इसके पत्ते अदरखके पत्तेके समान होते हैं । यह नदीके किनारे जिस जगहपर कीचड होती है उस जगह बहुधा प्रगट होता है ।

४ प्रदीपक विष चकचकाता हुआ अंगारेके समान लाल रंगकी कांतिवाला होताहै और इसके पत्ते खजूरके समान होते हैं । इसके सूँघनेसे प्राणीके देहमें दाह प्रगट होकर तत्काल मरजाते। यह समुद्रके किनारे बहुत होता है ।

५ हालाहल विष ताडके पत्तेके समान होताहै । इसके पत्ते नीले रंगके होते हैं और फल इसके गौके स्तनके समान लंबे और सफेद होते हैं । तथा इसका कंदभी गौके थनके समान होता है । इसके आस पास वृक्षादिक नहीं होते । इसकी बास सूँघतेही मनुष्य तत्काल मर जाता है ।

६ ब्रह्मपुत्र विष ब्रह्मपुत्रनामक नदके किनारे बहुत होता है । इसके पत्ते पलाशके समान होते हैं और फलभी पलाश (ढाक) के समान होते हैं । कंद इसका बडा तथा पराक्रम बडा होता है । यह विष रोगहरणमें और रसायन क्रियामें अत्युपयोगी है ।

७ हारिद्र विष हल्दीके खेतोंमें उत्पन्न होता है । उसके पत्ते हल्दीके समान होतेहैं और गाँठ भी हल्दीके समान होती है । यह विष रसायन विषयमें समर्थ है ।

८ सक्तुक विष जौके समान आकृतिमें होता ह और भीतरसे सफेद होताहै । यह लोकपर्वतमें बहुत उत्पन्न होता है ।

९ सौराष्ट्रिक विष सोरठ (गुजरात) देशमें उत्पन्न होता है । इसका कंद कछुआके मस्तक समान मोटा होता है। तथा कृष्णागरुके समान कालावर्ण होता है और इसके पत्ते पलासके समान होते हैं इसका पराक्रमभी बडा उत्कट है ।

मुख और पक्षच्छेदनका दूसरा प्रकार ।

अथवात्रिकटुक्षारैराजीलवणपंचकम् ॥२१॥ रसोनोनवसारश्चशिग्रुश्चैकत्रचूर्णितैः ॥ समांशैःपारदादेतैर्जंबीरेणद्रवेणवा ॥ ॥२२॥ निंबुतोयैःकांजिकैर्वासोष्णखल्वेविमर्दयेत् ॥ अहोरात्रत्रयेणस्याद्रसेधातुचरंमुखम् ॥२३॥ अथवाबिंदुलीकीटैरसोमर्द्यस्त्रिवासरम्॥लवणाम्लैर्मुखंतस्यजायतेधातुवस्मरम् ॥२४॥

अर्थ-१ सोंठ २ कालीमिरच ३ पीपल ४ जवाखार ५ सज्जीखार ६ सैंधानमक ७ संचरनमक ८ बिडखार ९ समुद्रनमक १० रेहका खार ११ लहसन १२ नौसादर और १३ सहजनेकी छाल ये तेरह औषध समान भाग लेकर चूर्ण करके पारेके समान भाग ले सबको तप्तखल्व (जो रसराजसुंदर ग्रंथके प्रथम खंडमें लिखा है ।) उसमें डालके जंभीरी अथवा नींबूके रससे अथवा कांजीमें तीन दिनरात्र खरल करे तो स्वर्णादिधातु भक्षण करनेवाला पारेके मुख होय । अथवा वीरबहुटी (जिसको इन्द्रवधूभी कहते हैं) इस नामका कीडा चातुर्मास्यमें होता है उसको लायके उसके साथ पारेको तीन दिन खरल करे । फिर नींबूका रस और सैंधानमक दोनोंको एकत्र करके पारा डाल तीनोंको खरल करे तो स्वर्णादि धातुओंको खानेवाला पारेके मुख होवे ।

कच्छपयंत्रकरके गंधकजारण ।

मृत्कुंडेनिक्षिपन्नीरंतन्मध्येचशरावकम् ॥ महत्कुंडपिधानाभं मध्येमेखलयायुतम् ॥ २५ ॥ लिप्त्वाचमेखलामध्यंचूर्णेनात्ररसंक्षिपेत् ॥ रसस्योपरिगंधस्यरजोदद्यात्समांशकम् ॥ २६ ॥ दत्त्वोपरिशरावंचभस्ममुद्रांप्रदापयेत् ॥ ततोपरिपुटंदद्याच्चतुर्भिर्गोमयोपलैः ॥ २७ ॥ एवंपुनःपुनर्गंधंषड्गुणंजारयेद्बुधः॥ गंधजीर्णंभवेत्सूतस्तीक्ष्णाग्निःसर्वकर्मकृत् ॥ २८ ॥

अर्थ-मिट्टीका एक पात्र कूँडेके समान ऊँचे मुखका लेकर उसमें जल भरके उसपर ढकनेकी ऐसी कूँडी लेवे जो उस पात्रके मुखपर आय जावे । उसको लेकर पानीसे न लगे इस प्रकार अलग रक्खे । फिर उस कूँडीमें मिट्टीका गोल एक अंगुल ऊँचा गढेला करके उसमें चूना बिछायके पारा भर देवे । फिर पारेके समान भाग गंधकका चूर्ण उस पारेपर डाले । फिर मिट्टीकी दूसरी कूँडी उलटी ढकके उसके संधियोंको नमक मिलीहुई राखसे बंदकर मुद्रा देदेवे । उसके ऊपर गौके गोबरके ४ उपले रखके अग्नि देवे । इस प्रकार उस पारेपर छः वार गंधक डाल २ के अग्नि देकर गंधकजारण करे तो यह पारा देदीप्यमान अग्निके समान होकर सर्व कार्यकर्त्ता होवे ।

पारामारणकी विधि ।

धूमसाररसंतोरींगंधकंनवसादरम् ॥ यामैकंमर्दयेदम्लैर्भागंकृत्वासमंसमम् ॥ २९ ॥ काचकुप्यांविनिक्षिप्यतांचमृद्वस्त्रमुद्रिताम् ॥ विलिप्यपरितोवक्त्रंमुद्रांदत्त्वाचशोषयेत् ॥३०॥ अधः

सच्छिद्रपिठरीमध्येकूपींनिवेशयेत् ॥ पिठरीवालुकापूरैर्भृत्वा चाकुपिकागलम् ॥ ३१ ॥ निवेश्यचुल्यांतदधःकुर्याद्वह्निंशनैःशनैः ॥ तस्माद्प्यधिकंकिंचित्पावकंज्वालयेत्क्रमात् ॥ ३२ ॥ एवंद्वादशभिर्यामैर्म्रियतेसूतकोत्तमः ॥ स्फोटयेत्स्वांगशीतं चऊर्ध्वगंगंधकंत्यजेत् ॥ ३३ ॥ अधःस्थंमृतसूतंचसर्वकर्मसुयोजयेत्

अर्थ–१ घरका धूआं २ पारा ३ फिटकरी ४ गंधक ५ नौसादर ये पांच औषध समान भाग लेकर नींबूके रसमें १ प्रहर खरलकर कांचकी शीशीमें भरके उसपर कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय ले । फिर मुखपर डाट देकर बंद कर देवे । फिर एक मिट्टीका बडा पात्र लेके उसकी पेंदीमें छेद करके उसके बीचमें एक ठीकरी रखके उसके ऊपर कांचकी शीशीको रखके उसके शीशीके गले पयत वालू भर देवे । शीशीकी नलीको खाली रक्खे । इस यंत्रको वालुकायंत्र कहते हैं । फिर उस पात्रको चूल्हेपर रखके नीचे प्रथम हलकी फिर मध्म और अन्तमें तेज इस प्रकार बारह प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब शीशीको बाहर निकाल युक्तिसे फोडे उसके मुखपर जो गंधक लगी हुई है उसको दूर करके नीचे पारेकी भस्म जो रहती है उसको निकालके कार्यमें लावे ।

पारदभस्म करनेका दूसरा प्रकार ।

अपामार्गस्यबीजानांमूषायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥ ३४ ॥ तत्संपुटे न्यसेत्सूतंमलयूदुग्धमिश्रितम् ॥ द्रोणपुष्पीप्रसूनानिविडंगामरिमेदकः ॥ ३५ ॥ एतच्चूर्णमधोर्द्ध्वंचदत्वामुद्राप्रदीयताम् ॥ तंगोलंसंधयेत्सम्यङ्मृन्मूषासंपुटेसुधीः ॥ ३६ ॥ मुद्रांदत्वाशोषयित्वाततोगजपुटेपचेत् ॥ एवमेकपुटेनैवजायतेभस्मसूतकम् ३७

अर्थ–ओंगा (चिरचिटा) के बीजोंको बारीक पीसके दो मूष बनावे । फिर द्रोणपुष्पी (गोमा) के फूल वायविडंग आर खैरकी छाल इन औषधोंका चूर्ण करके आधा चूर्ण एक मूषमें भरे उसके ऊपर पारा रखके उस पारेके ऊपर कठूमरका दूध भरके ऊपर आधे चूर्णको रख देवे । फिर दूसरी मूषको उस पहली मूषपर रखके संधिको लेप कर अच्छी तरह बंद कर देवे । फिर गोला बनाय मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके उसपर भी कपडमिट्टी करके आरनेउपलोंके गजपुटमें फूंक देवे तो एकही पुट करके पारदकी भस्म होवे ।

तीसराप्रकार।

काकोदुंबरिकादुग्धैरसंकिंचिद्विमर्दयेत् ॥ तद्दुग्धघृष्टहिंगोश्चमूषायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥ ३८ ॥ क्षिप्त्वातत्संपुटेसूतंतत्रमुद्रांप्रदापयेत् ॥ धृत्वातंगोलकंप्राज्ञोमृन्मूषासंपुटेऽधिके ॥ ३९ ॥ पचेन्मृदुपुटेनैवसूतकोयातिभस्मताम् ॥

अर्थ–कठूमरके दूधमें पारेको थोडी देर खरलकरे। फिर कठूमरके दूधमें हींगको खरल करके दो मूष बनावे। एक मूषमें पारेको रखके दूसरी मूषसे उसका मुख बंद करके अच्छे प्रकार संधियोंको बंद कर देवे। फिर ऊपरसे पोतकर गोला बनायले, इस गोलेको मिट्टीके शरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टीकर आरने उपलोंकी हलकीसी अग्निमें रखके फूंक देवे तो पारेकी भस्म होय।

चौथाप्रकार।

नागवल्लीरसैर्घृष्टःकर्कोटीकंदगर्भितः ॥ ४० ॥
मृन्मूषासंपुटेपक्त्वासूतोयात्येवभस्मताम् ॥

अर्थ–नागरवेलके पानोंके रसमें पारेको खरलकर ककोडेके कंदमें पारेको रखके उसकेही टुकडेसे बंदकरके सांधि मिलायके कपडमिट्टी करे फिर उसको धूपमें सुखाय मिट्टीके सरावसंपुटमें रख उसपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंमें रखके हलकी अग्नि देवे तो पारेकी अवश्य भस्म होय, इसको कार्यमें लावे।

ज्वरांकुशो रसः।

खंडितंमृगशृंगंचज्वालामुख्यारसैःसमम् ॥४१॥ रुद्ध्वाभांडेपचेच्चुल्यांयामयुग्मंततोनयेत् ॥ अष्टांशंत्रिकटुंदद्यान्निष्कमात्रंचभक्षयेत् ॥४२॥ नागवल्ल्यारसैःसार्धंवातपित्तज्वरापहम् ॥ अयंज्वरांकुशोनामरसःसर्वज्वरापहः ॥ ४३ ॥

अर्थ–हरिणके सींगके बारीक टुकडे करके पात्रमें रख उसमें ज्वालामुखीका रस डालके उसके मुखपर सराव ढकके कपडमिट्टीकरे। उसको चूल्हेपर रखके नीचे दो प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब उन टुकडोंकी भस्मको बाहर निकालके उस भस्मका आठवाँ भाग सोंठ मिरच और पीपल इनका चूर्ण करके उस भस्ममें मिलायदे। फिर इसमेंसे ४ मासेके अनुमान पानके रसमें मिलायके पीवे। इसको ज्वरांकुश कहतेहैं। यह संपूर्ण ज्वरोंको दूरकरे।

ज्वरारिरस ।

पारदंरसकंतालंतुत्थंटंकणगंधकं॥सर्वमेतत्समंशुद्धंकारवेल्ल्या रसैर्दिनम् ॥ ४४ ॥ मर्दयेल्लेपयेत्तेनताम्रपात्रोदरंभिषक् ॥ अंगुल्यर्धप्रमाणेनततोरुद्ध्वाचतन्मुखम् ॥४५॥ पचेत्तंवालुकायंत्रे क्षिप्त्वाधान्यानितन्मुखे॥यदास्फुटंतिधान्यानितदासिद्धंविनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥ ततोनयेत्स्वांगशीतंताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥ रसंज्वरारिनामानंविचूर्ण्यमरिचैःसमम् ॥ ४७ ॥ माषैकंपर्णखंडेनभक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् ॥ त्रिदिनैर्विषमंतीव्रमेकाद्वित्रिचतुर्थकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ--१ पारा २ खपरिया ३ हरताल ४ लीलाथोथा ५ सुहागा और ६ गंधक इन छओंको शोधकर समान भाग लेवे। सबको खरलमें डाल करेलेके पत्तोंके रससे १ दिन खरलकरे। फिर ताँबेकी डिब्बीमें अर्द्ध अंगुल लेपकरके उसपर ढकना देकर उसे वालुकायंत्रमें डालके चूल्हेपर रखके नीचे अग्नि जलावे और उस पात्रके मुखपर धान रख देवे। जब वह धानके खील होजावे तब जाने कि औषध सिद्ध होगई। फिर अग्निको बंद करे। जब शीतल होजावे तब बाहर काढके उस डिब्बीसे औषधको निकाल लेवे। इसको ज्वरारिरस कहतेहैं। फिर इसके समान काली मिरच मिलाय बारीक पीसलेवे। इसमेंसे १ मासे पानमें रखके खाय तो यह ज्वरारिरस ऐकाहिक[1], द्व्याहिक[2], त्र्याहिक[3] और चातुर्थिक[4] विषमज्वर दारुणभी दूर होवे।

शीतज्वरारिरस ।

तालकंतुत्थकंताम्रंरसंगंधंमनःशिलाम्॥कर्षंकर्षंप्रयोक्तव्यंमर्दयेत्त्रिफलांबुभिः॥४९॥ गोलंन्यसेत्संपुटकेपुटंदद्यात्प्रयत्नतः॥ ततोनीत्वार्कदुग्धेनवज्रीदुग्धेनसप्तधा॥५०॥क्वाथेनदंत्याश्यामायाभावयेत्सप्तधापुनः ॥ माषमात्रंरसंदिव्यंपंचाशन्मरिचैर्युतम् ॥५१॥ गुडगद्याणकंचैवतुलसीदलयुग्मकम् ॥ भक्षयेत्त्रिदिनंशक्त्याशीतारिर्दुर्लभःपरः ॥ ५२ ॥ पथ्यंदुग्धौदनंदेयं

---

१ दिनरात्रिमें एकवार आवे। २ दिनरात्रिमें दो वार आवे। ३ तीसरे दिन आवे जिसको तिजारी कहतेहैं। ४ जो चतुर्थदिन आवे उसको चौथैय्या कहते हैं।

विषमंशीतपूर्वकम् ॥दाहपूर्वंहरत्याशुतृतीयकचतुर्थकौ ॥९३॥ द्व्याहिकंसंततंचैववैवर्ण्यंचनियच्छति ॥

अर्थ-१ हरताल २ लीलाथोथा ३ ताम्रभस्म ४ पारा ५ गंधक ६ मैनसिल ये छः औषधि एक एक कर्ष लेय। सबको त्रिफलेके काढेमें खरलकर गोला बनाय मिट्टीके सरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टीकरके धूपमें सुखायले। फिर इसको आरनेउपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। जब शीतल होजाय तब बाहर निकाल लेवे। फिर खरलमें डालके आकके दूधकी सात पुट देवे तथा थूहरके दूधकी सात पुट देय। एवं दंतीके काढेकी सात पुट और निसोथके काढेकी सातपुट देकर मासे मासेकी गोली बनावे। पचास मिरच, गुड छः मासे और तुलसीके पत्ते दो इन सबको एकत्रकरके उसमें एक एक गोली बलाबल विचारके तीन दिन सेवन करे और पथ्यमें दूध भात खानेको देय तो शीतपूर्वकविषमज्वर, दाहपूर्वक ज्वर, तृतीयक, चातुर्थिक और दिन रात्रमें दो बार आनेवाला द्व्याहिक ज्वर तथा देहमें एकसा रहनेवाला ज्वर और विलक्षण ज्वर ये सब दूर हों।

ज्वरघ्नी गुटिका।

भागैकःस्याद्रसाच्छुद्धादेलायाःपिप्पलीशिवा॥९४॥आका-रकरभोगंधःकटुतैलेनशोधितः॥फलानिचेंद्रवारुण्याश्चतुर्भाग-मिताग्यमी॥ ९५ ॥ एकत्रमर्दयेच्चूर्णमिंद्रवारुणिकारसे ॥ माषोन्मितांगुटींकृत्वादद्यात्सर्वज्वरेबुधः॥९६॥ छिन्नारसा-नुपानेनज्वरघ्नीगुटिकामता ॥

अर्थ-शुद्ध किया हुआ पारा एक भाग औ १ एलुआ २ पीपल ३ जंगीहरड ४ अकरकरा ५ सरसोंके तेलमें सुधी हुई गंधक और ६ इन्द्रायनके फल ये छः औषध चार २ भाग लेवे। सबका चूर्ण करके पारो समेत खरलमें डालके इन्द्रायनके फलके रसमें खरल करके एक एक मासेकी गोली बनावे। एक गोली गिलोयके रससे सेवन करे तो संपूर्ण ज्वर दूर होंय।

लोकनाथरस क्षयादिरोगोंपर।

शुद्धोबुभुक्षितःसूतोभागद्वयमितोभवेत् ॥९७॥ तथागंधस्य भागौद्वौकुर्यात्कज्जलिकांतयोः॥ सूताच्चतुर्गुणेष्वेव कपर्देषुवि-

१ पारा और गंधक इनको प्रथम खरलकर पश्चात् उसमें चूर्ण मिलाय गोली बनायले।

निक्षिपेत् ॥ ५८ ॥ भागैकंटंकणंदत्वागोक्षीरेणविमर्दयेत् ॥ तथाशंखस्यखंडानांभागानष्टौप्रकल्पयेत् ॥ ५९ ॥ क्षिपेत्सर्वंपुटस्यांतश्चूर्णलिप्तशरावयोः ॥ गर्तेहस्तोन्मितेधृत्वापचेद्गजपुटेनच ॥६०॥ स्वांगशीतंसमुद्धृत्यपिष्टातत्सर्वमेकतः ॥ षड्गुंजासंमितंचूर्णमेकोनात्रिंशदूषणैः॥६१॥ घृतेनवातजेदद्यान्नवनीतेनपित्तजे॥क्षौद्रेणश्लेष्मजेदद्यादतीसारेक्षयेतथा॥६२॥ अरुचौग्रहणीरोगेकार्श्येमंदानलेतथा॥ कासेश्वासेषुगुल्मेषुलोकनाथोरसोहितः ॥ ६३ ॥ तस्योपरिघृतान्नंचभुंजीतकवलत्रयम् ॥ मंचेक्षणैकमुत्तानःशयीतानुपधानके ॥६४॥ अनम्लमन्नंसघृतंभुंजीतमधुरंदधि ॥ प्रायेणजांगलंमांसंप्रदेयंघृतपाचितम् ॥ ६५ ॥ सदुग्धभक्तंदद्याच्चजातेऽग्नौसांध्यभोजने ॥ सघृतान्मुद्गवटकान्व्यंजनेष्वेवचारयेत् ॥ ६६ ॥ तिलामलककल्केनस्नापयेत्सर्पिषाथवा॥अभ्यंजयेत्सर्पिषाचस्नानंकोष्णोदकेनच ॥ ६७ ॥ क्वचित्तैलंनगृह्णीयान्नबिल्वंकारवेल्लकम् ॥ वार्ताकंशफरींचिंचांत्यजेद्व्यायाममैथुनम् ॥ ६८ ॥ मद्यंसंधानकंहिंगुशुंठींमाषान्मसूरकान् ॥ कूष्मांडंराजिकांकोपंकांजिकंचैववर्जयेत् ॥६९ ॥ त्यजेदयुक्तनिद्रांचकांस्यपात्रेचभोजनम् ॥ ककारादियुतंसर्वंत्यजेच्छाकफलादिकम् ॥ ७० ॥ पथ्योऽयंलोकनाथस्तुशुभनक्षत्रवासरे॥पूर्णातिथौशुक्लपक्षेजातेचंद्रबलेतथा ॥ ७१ ॥ पूजयित्वालोकनाथंकुमारींभोजयेत्ततः ॥ दानंदद्याद्द्विघटिकामध्येग्राह्योरसोत्तमः ॥७२॥ रसात्संजायतेतापस्तदाशर्करयायुतम् ॥ सत्त्वंगुडूच्यागृह्णीयाद्वशरोचनयायुतम् ॥ ७३ ॥ खर्जूरंदाडिमंद्राक्षामिक्षुखंडानिचारयेत् ॥ अरुचौनिस्तुषंधान्यंघृतभृष्टंसशर्करम् ॥ ७४ ॥ दद्यात्तथाज्वरेधान्यंगुडूचीक्वाथमाहरेत् ॥ उशीरवासकक्वाथं

द्यात्समधुशर्करम् ॥ ७५ ॥ रक्तपित्तेकफेश्वासेकासेचस्वरसंक्षये ॥ अग्निभृष्टजयाचूर्णंमधुनानिशिदीयते ॥७६॥निद्रानाशेऽतिसारेचग्रहण्यांमंदपावके ॥ सौवर्चलाभयाकृष्णाचूर्णमुष्णजलैःपिबेत् ॥ ७७ ॥ शूलेऽजीर्णेतथाकृष्णामधुयुक्ताज्वरेहिता ॥ प्लीहोदरेवातरक्तेछर्द्यांचैवगुदांकुरे ॥७८॥ नासिकादिषुरक्तेषुरसंदाडिमपुष्पजम् ॥ दूर्वायाःस्वरसंनस्येप्रदद्याच्छर्करायुतम् ॥ ७९ ॥ कोलमज्जाकणाबर्हिपक्षभस्मसशर्करम्॥मधुनालेहयेच्छर्दिहिक्काकोपस्यशांतये ॥८०॥ विधिरेषप्रयोज्यस्तुसर्वस्मिन्पोटलीरसे॥ मृगांकेहेमगर्भेचमौक्तिकाख्येरसेषुच ॥८१॥इत्ययंलोकनाथाख्योरसःसर्वरुजोजयेत् ॥

अर्थ–शुद्ध और बुभुक्षित ऐसा पारा दो भाग तथा शुद्ध की हुई गंधक दो भाग इन दोनोंकी एक जगह कजली करके पारेसे चौगुनी कौडीनमें उस कजलीको भरे । फिर सुहागा एक भाग लेकर गौके दूधमें खरल कर उससे कौडियोंके मुखको मूँद देवे पश्चात् शंखके टुकडे आठभाग लेकर मिट्टीके दो शरावे लेकर एकमें चूना पोतकर उसमें शंखके टुकडे आधे धरे और उनके ऊपर इन कौडियोंको रक्खे । फिर बाकी रहेहुए आधे शंखके टुकडोंको रख देवे । फिर इसके ऊपर दूसरा शरावा ढकके कपडमिट्टीकर एक हाथ गद्ढा खोदके आरने उपलोंके गजपुटमें रखके अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकाल उस शरावमेंसे औषधोंको निकाल लेवे । फिर इसको खरल करके धर रक्खे । इसे लोकनाथरस कहते हैं। यह लोकनाथरस छः रत्ती उनतीस काली मिरचके चूर्णमें मिलायके जिसके बादीका रोग होय उसको घीके साथ देवे । पित्तरोग होय तो मक्खनके साथ देवे, कफरोग होय तो सहतसे देवे, और अतिसार, क्षय, अरुचि, संग्रहणी, कृशता, मंदाग्नि, खाँसी, श्वास और गोलेका रोग ये सब दूर होनेमें यह लोकनाथ रस परम प्रशस्त है । इसकी मात्रा सेवन करके इसके ऊपर घी और भातके तीन ग्रास देने चाहिये । फिर शय्यापर विना बछैयाके एक क्षणमात्र सीधा लेटे और खट्टे पदार्थोंको त्यागके घृतके साथ भोजन करे । उत्तम मीठा दही भोजनमें सेवन करे । जंगली जीवोंमें हरिणादिकोंका

१–गंधकादिकोंका जारण करके सुवर्णादि धातु ग्रसनेके विषयमें योग्य हुआ जो पारा उसको बुभुक्षित पारा कहते हैं।

मांस घीमें तलके खाय । संध्याके समय भूख लगे तो दूधभात खाय तथा मूँगके वडे घीमें तलके खाय । तिल और आमलोंका कल्ककर देहमें मालिश करे अथवा घीकी मालिश करके स्नान करे । स्नानके सिवाय अंगमें लगाना होय तो घीकाही मालिश करे । स्नानका जल कुछ २ गरम होना चाहिये । बेलफल, करेले, बैंगन, छोटी मछली, इमली, श्रम, मैथुन, मद्य, संधान (सधाने), हींग, सोंठ, उडद, मसूर, पेठा, राई, काँजी और कोप इनको लोकनाथ रसका सेवन करनेवाला त्याग देवे, दिनमें न सोवे । काँसके पात्रमें भोजन न करे । ककार जिनके आदिमें है ऐसे शाक (जैसे करेला ककडी आदि) को तथा फलोंको त्याग देय । इस प्रकार लोकनाथरसका पथ्य कहा है । उत्तम दिन उत्तम वार पूर्णा तिथि (पंचमी दशमी और पूर्णिमा) शुक्ल पक्ष तथा उत्तम चंद्रमाका बल विचारके लोकनाथ रसका पूजन कर फिर कुमारी (कन्याओं) को भोजन कराय तथा यथाशक्ति सुवर्णादिका दान देकर इस रसका सेवन करे । इस रसके सेवन करनेसे दो घडी देहमें संताप होता है, उसके शांति करनेको मिश्री गिलोयका सत और वंशलोचन इन तीनोंको एकत्र करके सेवन करे तो संताप दूर होवे । खजूर (छुहारे) विलायती अनार दाख (अंगूर) और ईखके टुकडे ये पदार्थ थोडे २ खाय तो इसका संताप और अरुचि दूर हो । धनियेको कूट उसके तुषोंको दूर करके घीमें भूनके उसमें मिश्री मिलायके इसके साथ लोकनाथरसका भक्षण करे तो अरुचि दूर होय । धनिया और गिलोय इनका काढा करके उसमें इस लोकनाथरसको मिलायके पीवे तो ज्वर दूर होवे । नेत्रवाला और अडूसा इन दोनोंका काढा करके सहत और मिश्री मिलाय इसके साथ लोकनाथरस खाय तो रक्तपित्त कफ श्वास खाँसी स्वरभंग ये रोग दूर होवें । थोडी भाँगको भून चूर्ण कर उसमें इस रसको मिलाय इसको सहतमें मिलाय रात्रिके समय सेवन करे तो गई हुई निद्रा आवे, अतिसार और संग्रहणी ये रोग दूर हों तथा अग्नि प्रदीप्त होय । कालानमक जंगी हरड और पीपल इन औषधोंका चूर्ण करके इसमें लोकनाथरस मिलायके गरम पानीसे सेवन करे तो शूल और अजीर्ण रोग दूर हों । सहत और पीपलके साथ लोकनाथरस सेवन करे तो पेटमें बाँई तरफ फियाका रोग होता है वह तथा वातरक्त वमन मूर्च्छाव्याधि और नाकके द्वारा रुधिरका गिरना ये संपूर्ण रोग दूर होंय । दूबके रसमें मिश्री मिलायके लोकनाथरस डाल उसकी नस्य देवे तो नाकसे रुधिरका गिरना बंद होय । बेरकी गुँठली पीपल और मोरपाँखकी भस्म इन तीन औषधोंको एकत्र करके उसमें मिश्री और सहत मिलाय लोकनाथरसको एकत्र कर सेवन करे तो ओकारी तथा हिचकी ये दूर होवें । इस प्रमाण संपूर्ण पोटलीरस इनमेंसे श्रेष्ठ उनमें और मृगांक रस हेमगर्भ रस तथा मौक्तिकाख्य रसायन

विधि करनी चाहिये । इस प्रकार लोकनाथरस कहा है यह लोकनाथरस संपूर्ण रोगोंको दूर करता है ।

लघुलोकनाथरस क्षयपर ।

वराटभस्ममंडूरंचूर्णयित्वाघृतेपचेत् ॥ ८२ ॥ तत्सममंमारिचं चूर्णनागवल्ल्याविभावितम्॥तच्चूर्णमधुनालेह्यमथवानवनीतकैः ॥ ८३ ॥ माषमात्रंक्षयंहंतियामेयामेचभक्षितम् ॥ लोकनाथरसेह्येषमंडलाद्राजयक्ष्मनुत् ॥ ८४ ॥

अर्थ–कोडियोंकी भस्म एक भाग, मंडूर एक भाग, कालीमिरच दो भाग ले, इन तीनों औषधोंको एकत्र करके घीमें खरलकरे । जब घी करडा होजावे तब नाग वेलके पानोंके रसमें खरल करके एक एक मासेकी गोली बनावे । इसको लघु लोकनाथरस कहते हैं । इसे सहतके साथ अथवा मक्खनके साथ एक एक प्रहरके अंतरसे खाय तो सामान्य क्षयरोग दूर हो । इस प्रकार १ मंडल पर्यंत सेवन करे तो राजयक्ष्माकोभी दूर करता है ।

मृगांकपोटलीरस क्षयादिरोगोंपर ।

भूर्जवत्तनुपत्राणिहेम्नःसूक्ष्माणिकारयेत् ॥तुल्यानितानिसूतेनखल्वेक्षिप्त्वाविमर्दयेत् ॥ ८५ ॥ कांचनाररसेनैवज्वालामुख्यारसेनवा॥ लांगल्यावारसैस्तावद्यावद्भवतिपिष्टिका॥८६॥ ततोहेम्नश्चतुर्थांशंटंकणंतत्रनिक्षिपेत् ॥ पिष्टमौक्तिकचूर्णंचहेमद्विगुणमावपेत् ॥ ८७ ॥ तेषुसर्वसमंगंधंक्षिप्त्वाचैकत्रमर्दयेत् ॥ तेषांकृत्वाततोगोलंवासोभिःपरिवेष्टयेत् ॥८८॥ पश्चान्मृदावेष्टयित्वाशोषयित्वाचधारयेत् ॥ शरावसंपुटस्यांतेतत्रमुद्रांप्रदापयेत् ॥ ८९ ॥ लवणापूरितेभांडेधारयेत्तंचसंपुटम्॥ मुद्रांदत्वाशोषयित्वाबहुभिर्गोमयैःपुटेत् ॥ ९० ॥ ततःशीतेसमाहृत्यगंधसूतसमंक्षिपेत् ॥ घृष्ट्वाचपूर्ववत्खल्वेपुटेद्गजपुटेन च ॥ ९१ ॥ स्वांगशीतंततोनीत्वागुंजायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥ अष्टभिर्मरिचैर्युक्तःकृष्णात्रययुतोऽथवा ॥ ९२ ॥ विलोक्यदेयो

१ मंडल चालीस दिवसका होता है ।

दोषादीनेकैकारसरक्तिका ॥ सर्पिषामधुनावापिदद्यादोषाद्यपेक्षया ॥ ९३॥ लोकनाथसमंपथ्यंकुर्यात्स्वस्थमनाः शुचिः ॥ श्लेष्माणंग्रहणींकासंश्वासंक्षयमरोचकम् ॥ ९४॥ मृगांकोऽयंरसो हन्यात्कृशत्वंबलहीनताम् ॥

अर्थ-सोनेके भोजपत्रके समान पतले पत्र करके उसके समानभाग शुद्ध पारा लेकर दोनोंको एक जगह कचनारके रससे अथवा ज्वालामुखीके रससे जबतक मिलकर पिट्ठी समान न होवें तबतक खरल करे । पश्चात् सोनेका चतुर्थांश सुहागा तथा सोनेसे दूना मोतियों का चूरा और सबकी बराबर गंधक ले सबको एक जगह खरल करके एक गोला बनावे । उसके चारोंतरफ कपडा लपेटकर ऊपरसे मिट्टी लहेस देवे । फिर इसको धूपमें सुखायले । फिर मिट्टीके दो सरावे ले एकमें इस गोलेको रखके दूसरा उसके मुखपर रखके उसपर कपडमिट्टी कर देवे । फिर एक हाँडी लेवे । उसको पिसे हुए नमकसे आधी भरके बीचमें इस संपुटको रखके उसको नमकसेही फिर भरके बंद कर देवे और उसके मुख कोपरियासे बंद करके मुखपरभी कपड़मिट्टी कर देय । इसको गजपुटकी अग्निसे कुछ अधिक अग्नि आरने उपलोंकी देवे । जब स्वांग शीतल होजावे तब बाहर निकाल औषधको खरलमें डालके फिर पारेके समान गंधक लेके कचनार अथवा ज्वालामुखीके रसमें खरल करे । पूर्वोक्त विधिसे गजपुटकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब निकाल लेय । इस रसको मृगांकपोटलीरस कहते हैं । यह पोटली रस दो रत्ती प्रमाण आठ मिरचोंके साथ अथवा तीन पीपलोंके साथ देवे । दोषोंका तारतम्य देखकर एक रत्ती देय । दोषोंकी अपेक्षानुसार घी और सहतसे देवे । इस रसका सेवन करनेवाला प्राणी अंतःकरणको स्वस्थ करके पवित्र हो । लोकनाथ रसके समान पथ्य करे । इस प्रकार आचरण करनेसे इस रसायनसे कफके रोग, संग्रहणी, खाँसी, श्वास, क्षयरोग, अरुचि, शरीरकी कृशता और बलहानि ये संपूर्ण रोग दूर होवें ।

हेमगर्भपोटलीरस कफक्षयादिकोंपर ।

सूतात्पादप्रमाणेनहेम्नःपिष्टंप्रकल्पयेत् ॥ ९५ ॥ तयोःस्याद्द्विगुणोगंधोमर्दयेत्कांचनारिणा॥ कृत्वागोलंक्षिपेन्मूषासंपुटेमुद्रयेत्ततः ॥ ९६ ॥ पचेद्भूधरयंत्रेणवासरत्रितयंबुधः ॥ ततउद्धृत्यतत्सर्वंदद्याद्गंधंचतत्समम् ॥ ९७ ॥ मर्दयेच्चार्द्रकरसैश्चित्रकस्वरसेनच ॥ स्थूलपीतवराटांश्चपूरयेत्तेनयुक्तितः ॥ ९८ ॥ए-

तस्मादौषधात्कुर्यादष्टमांशेनटंकणम् ॥ टंकणार्धंविषंदत्त्वापि-ह्यासेहुंडदुग्धकैः ॥ ९९ ॥ मुद्रयेत्तेनकल्केनवराटानांमुखानि च ॥ भांडेचूर्णप्रलिप्तेऽथधृत्वामुद्रांप्रदापयेत् ॥१००॥ गर्तेहस्तोन्मिते धृत्वापुटेद्गजपुटेनच ॥ स्वांगशीतंरसंज्ञात्वाप्रदद्याल्लोकनाथवत् ॥ १०१ ॥ पथ्यंमृगांकवज्ज्ञेयंत्रिदिनंलवणंत्यजेत् ॥ यद्यच्छर्दिर्भवेत्तस्यदद्याच्छिन्नाशृतंतदा ॥ १०२ ॥ मधुयुक्तंतथाश्लेष्मकोपेदद्याद्गुडार्द्रकम् ॥ विरेकेभर्जितांभंगांप्रदेयाद्दधिसंयुता ॥ १०३ ॥ जयेत्कासंक्षयंश्वासंग्रहणीमरुचिं तथा ॥ अग्निंचकुरुतेदीप्तंकफवातंनियच्छति ॥ १०४ ॥ हेमगर्भःपरोज्ञेयोरसः पोटलिकाभिधः ॥

अर्थ–शुद्धपारा १ भाग ले उसका चतुर्थांश खरल कियाहुआ सुवर्णका चूरा अथवा सोनेके वर्क लेवे । एवं पारे और सुवर्ण दोनोंसे दूनी शुद्ध करीहुई गंधक लेवे । तीनोंको कचनाके रसमें खरल कर उसका गोला करके मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी कर देवे । फिर एक हाथका गड्ढा खोद उसमें दूसरा गड्ढा छोटासा खोदके उसमें पूर्वोक्त शरावसंपुटको रखके ऊपर मिट्टी बिछायके दाब देवे । फिर उसके चारोंतरफ आरने उपलेके बारीक २ टुकडे डालके तीन दिन अग्नि देवे (इस क्रियाको भूधरयन्त्र कहते हैं) जब शीतल होजावे तब बाहर निकाल शरावेमेंसे रसको ले समानभाग गंधक मिलाय दोनोंको अदरखके रसमें खरल करके फिर चीतेके रसमें खरल करे । पश्चात् बडी २ पीली कौडी लायके उनमें इस घुटीहुई दवाईको भरदेवे । फिर सब औषधोंका आठवाँ भाग सुहागा और सुहागेका आधा भाग विष ले दोनोंको थूहरके दूधमें खरल करके उन कौडियोंकों मुखको बंद कर देवे । फिर एक हाँडीमें चूना लेपकर इन कौडियोंको रख देवे । उस हाँडीके मुखपर दूसरी हाँडी जोडके उसकी संधियोंको कपडमिट्टी करके हाथ भरके गड्ढेमें आरने उपले भरके गजपुटकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब निकाल लेय । इसको हेमगर्भपोटलीरस कहतेहैं हेमगर्भ पोटलीरस लोकनाथरसकी विधिसे सेवन करे और मृगांकरसायनके समान पथ्य करे इसमेंभी विशेष पथ्य यह है कि तीन दिन नमकरहित भोजन करे । इस औषधके सेवनसे यदि उलटी आवे तो गिलोयका काढा करके उसमें सहत डालके पीवे तो ओकारियोंका आना दूर होय । कफके प्रकोपमें गुड और अदरखको एकत्र करके सेवन करे तो कफ दूर होय । यदि इस रसके प्रभावसे दस्त होने लगे तो भाँगको थोडी भूनके दहीमें मिलायके खाय तो दस्तोंका होना दूर होय

इस हेमगर्भ पोटली रससे खाँसी क्षय श्वास संग्रहणी और अरुचि ये रोग दूर हों । अग्नि प्रदीप्त होय तथा कफवायुका प्रकोप दूर हो ।

दूसरीविधि ।

रसश्चभागाश्चत्वारस्तावंतःकनकस्यच ॥१०५॥ तयोश्चपिष्टिकांकृत्वागंधोद्वादशभागिकः ॥ कुर्य्यात्कज्जलिकांतेषांमुक्ताभागाश्चषोडश ॥१०६॥ चतुर्विंशच्चशंखस्यभागैकंटंकणस्य च ॥ एकत्रमर्दयेत्सर्वंपक्वनिंबूकजैरसैः ॥ १०७ ॥ कृत्वातेषां ततोगोलंमूषांसंपुटकेन्यसेत् ॥मुद्रांदत्वाततोहस्तमात्रेगर्तेचगोमयैः ॥ १०८ ॥ पुटेद्गजपुटेनैवस्वांगशीतंसमुद्धरेत्॥ पिष्ट्वागुंजाचतुर्मानंदद्याद्गव्याज्यसंयुतम् ॥ १०९ ॥ एकोनत्रिंशदुन्मानमरिचैःसहदीयताम्॥राजतेमृन्मयेपात्रेकाचजेवावलेहयेत् ॥११० ॥ लोकनाथसमंपथ्यंकुर्य्याच्चस्वस्थमानसः॥ कासेश्वासेक्षयेवातेकफे ग्रहणिकागदे ॥ १११ ॥ अतीसारेप्रयोक्तव्यापोटलीहेमगर्भिका ॥

अर्थ–पारा चार भाग तथा सुवर्णका बारीक चूर्ण चार भाग दोनोंको एक जगह उत्तम पिट्टी होनेपर्यंत खरल करे । फिर बारह भाग गंधक लेके खरल कर कज्जली करे पश्चात् सोलह भाग मोती, चौवीस भाग शंख और एक भाग सुहागा लेके पूर्वोक्त कजलीमें मिलाय पकेहुए नींबूके रसमें खरल करके उसका गोला बनाय मिट्टीके शरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी कर देवे फिर १ हाथका गहरा और लंबा चौडा गड्ढा खोदे उसमें गौके गोबरके उपले भर बीचमें शरावसंपुटको रखके गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको ले खरलकरके धर रक्खे । इसको हेमगर्भपोटली रस कहते हैं । यह हेमगर्भ चार रत्ती लेकर उनतीस काली मिरचके चूर्णके साथ रूपेके अथवा मिट्टीके अथवा काँचके प्यालेमें गौका घी डालके स्वस्थचित्त करके पीवे और इसके ऊपर लोकनाथ रसायनेके समान पथ्य करे तो खाँसी श्वास क्षयरोग कफ ग्रहणी और अतिसार ये संपूर्ण रोग दूर होवें ।

महाज्वरांकुश विषमज्वरपर ।

शुद्धसूतोविषंगंधःप्रत्येकंशाणसंमितः ॥११२॥ धूर्तबीजंत्रि-

शाणंस्यात्सर्वेभ्योद्विगुणाभवेत् ॥ हेमाह्वाकारयेदेषांसूक्ष्मचूर्णं प्रयत्नतः ॥११३॥ देयंजंबीरमज्जाभिश्चूर्णंगुंजाद्वयोन्मितम् ॥ आर्द्रकस्वरसैर्वापिज्वरंहंतित्रिदोषजम् ॥ ११४ ॥ एकाहिकं द्व्याहिकंवात्र्याहिकंवाचतुर्थकम् ॥ विषमंचज्वरंहन्याद्विख्यातोयंज्वरांकुशः ॥ ११५ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा तीन मासे, शुद्ध किया हुआ विष तीन मासे, गंधक तीन मासे, धतूरेके बीज नौ मासे, और चोक सबसे दूना लेवे। सबको एकत्र कर बारीक चूर्ण करके जंभीरीके रसमें अथवा अदरखके रसमें दोरत्ती देवे तो त्रिदोषज्वर और नित्य आनेवाला दिनरात्रिमें दोबार आनेवाला एकतरा तिजारी और चातुर्थिक ज्वर ये सब ज्वर दूर हों। यह ज्वरांकुश विषमज्वर दूर करनेमें विख्यात है।

आनंदभैरवरस अतिसारादिकोंपर।

दरदंवत्सनाभंचमरिचंटंकणंकणा ॥ चूर्णयेत्समभागेनरसो ह्यानंदभैरवः ॥ ११६ ॥ गुंजैकंवाद्विगुंजंवाबलंज्ञात्वाप्रयोजयेत् ॥ मधुनालेहयेच्चानुकुटजस्यफलंत्वचम् ॥ ११७ ॥ चूर्णितंकर्षमात्रंतुत्रिदोषोत्थातिसारनुत् ॥ दध्यन्नंदापयेत्पथ्यंगोघृतंतक्रमेवच॥११८॥पिपासायांजलंशीतंविजयाचहितानिशि ॥

अर्थ–१ हींगलू २ शुद्ध किया हुआ वत्सनाभ विष ३ काली मिरच ४ सुहागा और ५ पीपल ये पांच औषध समान भाग लेके एकत्र चूर्ण करे। इसको आनंदभैरवरस कहते हैं। यह आनंदभैरव रस इंद्रजौ और कूडाकी छाल ये दोनों एक २ कर्ष प्रमाण लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णके साथ रोगोंका बलाबल विचारके १ रत्ती प्रमाण अथवा दोरत्ती प्रमाण सहतसे देवे तो त्रिदोषसे प्रगट अतिसारका रोग दूर होवे। पथ्यमें गौका दही और भात, घी भात अथवा छाछ भात देवे। प्यास लगे तो शीतल जल पीवे। रात्रिमें थोडी भांग शुद्ध करके घोटके पीवे तो यह भांग अतिसार रोगपर अति हितकारी होती है।

लघुसूचकाभरणरस संनिपातपर।

विषंपलमितंसूतःशाणिकश्चूर्णयेद्द्वयम् ॥११९॥ तच्चूर्णंसंपुटेक्षिप्त्वाकाचलिप्तशरावयोः ॥ मुद्रांदत्त्वाचसंशोष्यततश्चुल्ल्यांनिवेशयेत्॥१२०॥वह्निंशनैःशनैःकुर्यात्प्रहरद्वयसंख्यया॥

ततउद्घाटयेन्मुद्रामुपरिस्थांशरावकात् ॥ १२१ ॥ संलग्नोयो भवेत्सूतस्तंगृह्णीयाच्छनैःशनैः ॥वायुस्पर्शोयथानस्यात्तथाकूप्यांनिवेशयेत् ॥ १२२ ॥ यावत्सूच्यामुखेलग्नःकूप्यानिर्यातिभेषजम् ॥ तावन्मात्रोरसोदेयोमूर्च्छितेसंनिपातिनि ॥१२३॥ क्षीरेणप्रस्थितेमूर्ध्नितत्रांगुल्याचघर्षयेत् ॥ रक्तभेषजसंपर्कान्मूर्च्छितोपिहिजीवति ॥ १२४ ॥ तथैवसर्पदष्टस्तुमृतावस्थोऽपिजीवति ॥ १२५ ॥ यदातापोभवेत्तस्यमधुरंतत्रदीयते ॥

अर्थ–बच्छनागविष १ पल, शुद्ध किया हुआ पारा ३ मासे, दोनोंको एकत्र खरल करके चूर्ण करे। फिर काचसे लिपे (काचचढे) हुए दो मट्टीके सकोरे ले उनमें चूर्णको रख दोनोंको मिलाय मुखबंदकर ऊपर कपडमिट्टीकर देवे। फिर धूपमें सुखायके चूल्हेपर रखके दो प्रहरतक मंद अग्नि देवे तब उसको नीचे उतारके मुद्रा दूर कर ऊपरके शरावेमें लगेहुए पारेको हलके हाथसे अचकेसी युक्तिसे निकाल शीशीमें भरके धररक्खे। पश्चात् उस शीशीमें सूई डालके जितना रस सूईके अग्र भागमें लगे इतना बाहर निकाले। जिस मनुष्यको संनिपातके होनेसे मूर्च्छा आयरही हो उस मनुष्यके मस्तकमें तालुएके स्थानमें उस्तरेसे बालोंको मूँडके फिर उस जगहकी खालको छीलके उस घावमें इस औषधको लगाय उंगलीसे यहांतक मलतारहे कि जबतक वह औषध रुधिरसे न मिले। जब रुधिरमें यह औषध अच्छे प्रकार मिल जावेगी उसी समय उस प्राणीकी मूर्च्छा जाती रहेगी और वह प्राणी होसमें आयजावेगा। उसी प्रकार जिस प्राणीको साँपके काटनेसे मूर्च्छा आगईहो और मरा चाहताहो वो भी इस क्रियाके करनेसे बचजावे। इस उपायके करनेसे देहमें दाह विशेष होता है उसके दूर करनेको गुलकंद दाख इत्यादिक मधुर पदार्थ भक्षणको देवे तो दाह शांत होय।

जलचूडामणिरस संनिपातपर।

सूतभस्मसमंगंधंगंधात्पादंमनःशिला ॥ माक्षिकंपिप्पलीव्योषंप्रत्येकंशिलयासमम् ॥ १२६ ॥ चूर्णयेद्भावयेत्पित्तैर्मत्स्यमायूरसंभवैः॥सप्तधाभावयेच्छुष्कंदेयंगुंजाद्वयंहितम् ॥१२७॥ तालपर्णीरसश्चानुपंचकोलशृतोऽथवा ॥ जलचूडोरसोनामसन्निपातंनियच्छति ॥१२८॥जलयोगश्चकर्त्तव्यस्तेनवीर्यंभवेद्रसे

अर्थ-पारेकी भस्म १ भाग और गंधक १ भाग गंधकका चतुर्थांश मनशिल १ सुवर्णमाक्षिककी भस्म २ पीपल ३ सोंठ ४ कालीमिरच और ५ पीपल ये पांच औषध मनशिलके समान ले चूर्णकरे। फिर खरलमें डालके मछलीके कलेजेमें पित्त होताहै उसके सातपुट देवै। फिर मोरके पित्तके सात पुट देकर सुखाय लेवे. इसको जलचूडामणिरस कहते हैं। यह जलचूडामणिरस दो रत्तीके अनुमान मूसलीके रसमें अथवा पंचकोलके काढेमें देवे। जब इसकी गरमी होय तब उस रोगीके मस्तकपर शीतल जलका तरडा देवे तो रसमें वीर्य बढे। इसप्रकार करनेसे संनिपात दूर होवे। कोई कहते हैं उस रोगीके पास शीतल जलकी परात रखे परंतु यह बात ठीक नहीं है।

पंचवक्ररस सन्निपातपर।

शुद्धसूतंविषंगंधंमरिचंटंकणंकणा॥ १२९ ॥ मर्दयेद्धत्तजद्रावैर्दिनमेकंतुशोषयेत् ॥ पंचवक्रोरसोनामद्विगुंजःसन्निपातहा ॥१३०॥ अर्कमूलकषायंतुसत्र्यूषमनुपाययेत् ॥ युक्तंदध्योदनंपथ्यंजलयोगंचकारयेत् ॥ १३१ ॥ रसेनानेनशाम्यंतिसक्षौद्रेणकफादयः ॥ मध्वार्द्रकरसंचानुपिबेदग्निविवृद्धये ॥ १३२ ॥ यथेष्टं घृतमांसाशीशक्तोभवतिपावकः ॥

अर्थ-१ शुद्ध किया हुआ पारा २ शुद्ध किया हुआ बच्छनाग विष ३ गंधक ४ कालीमिरच ५ सुहागा ६ पीपल इन छः औषधोंको धतूरेके रसमें एकदिन खरलकर दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे और इनको धूपमें सुखायले। इसको पंचवक्ररस कहते हैं। इस रसको आककी जडका काढाकर उसमें सोंठ मिरच पीपलका चूर्ण मिलाय उसके साथ देवे और पथ्यमें दहीभात देवे। तथा रोगीको जब गरमी होय तब शीतल जलका तरडा देवे तो संनिपात दूर होय। इस रसको सहतके साथ सेवन करनेसे कफादिक रोग दूर हों, अदरखके रसमें सहत मिलायके सेवन करे तो जठराग्निकी वृद्धि होवे। घी और मांस यथेष्ट भोजन करनेसे पचजावे।

उन्मत्तरस सन्निपातपर।

रसगंधौसमानांशौधत्तूरफलजैरसैः॥ १३३ ॥ मर्दयेद्दिनमेकंचतत्तुल्यंत्रिकटुक्षिपेत् ॥ उन्मत्ताख्योरसोनामनस्येस्यात्सन्निपातजित् ॥ १३४ ॥

अर्थ-शुद्ध किया पारा १ भाग गंधक १ भाग १ सोंठ २ कालीमिरच ३ पीपल ये तीन औषधि पारा गंधक दोनोंके समान लेवे। सबका चूर्ण कर धतूरेके फलके रसमें एकदिन खरल

करे । फिर सुखायके चूर्ण बनाय धूपमें सुखायले । इसको उन्मत्तरस कहते हैं । जिसको संनिपात होय उसकी नाकमें इसकी नस्य देय तो रोगीका संनिपात दूर होय ।

सन्निपातपर अंजन ।

निस्त्वग्जेपालबीजंचदशनिष्कंविचूर्णयेत् ॥ मरिचंपिप्पलींसूतंप्रतिनिष्कंविमिश्रयेत् ॥ १३५ ॥ भाव्योजंबीरजैर्द्रावैः सप्ताहंसंप्रयत्नतः ॥ रसोऽयमंजनेदत्तःसन्निपातंविनाशयेत् ॥ १३६ ॥

अर्थ–छिलकेरहित जमालगोटेके बीज १० निष्क लेवे और कालीमिरच पीपल और पारा ये औषध निष्कप्रमाण लेवे । इन चारोंको जंभीरीके रसमें सात दिन खरलकर उसकी गोलियां बनावे । संनिपातवाले रोगीके नेत्रमें इस गोलीको जलमें घिसके लगावे तो संनिपात दूर होय ।

नाराचरस शूलादिरोगोंपर ।

सूतटंकणकेतुल्येमरिचंसूततुल्यकम् ॥ गंधकंपिप्पलींशुंठींद्वौद्वौभागौविचूर्णयेत् ॥ १३७ ॥ सर्वतुल्यंक्षिपेद्दंतीबीजंनिस्तुषितंभिषक् ॥ द्विगुंजंरेचनंसिद्धंनाराचोऽयंमहारसः ॥ १३८ ॥ आध्मानंशूलविष्टंभानुदावर्त्तंचनाशयेत् ॥

अर्थ–पारा सुहागा और कालीमिरच ये समभाग ले । गंधक पीपल और सोंठ ये तीन औषध पारेसे दूनी ले तथा शुद्ध कियाहुआ जमालगोटा सबकी बराबर लेय सबको एकत्र कर चूर्ण कर लेवे । इसको नाराचरस कहते हैं । यह रस दस्त होनेके वास्ते २ रत्ती देवे तो होवे और पेटका फूलना शूलरोग मलका अवरोध और वायुकी ऊर्ध्व गति ये सब रोग दूर होंय । इस नाराचरसको गरम जलके साथ वा तुलसीके रससे वा सहत तथा अदरखके रसके साथ देते हैं । और जब दस्त बंद करने होंय तब शीतल जल पीवे तो दस्त बंद होजावे ।

इच्छाभेदीरस शूलादिकोंपर ।

दरदंटंकणंशुंठीपिप्पलीचेतिकार्षिकाः ॥ १३९ ॥ हेमाह्वापलमात्रास्याद्दंतीबीजंचतत्समम् ॥ विशोष्यैकत्रसर्वाणिगोदुग्धेनैवपाययेत् ॥ १४० ॥ त्रिगुंजंरेचनंदद्याद्विष्टंभाध्मानरोगिषु ॥

अर्थ–हींगलू सुहागा सोंठ और पीपल ये चार औषधि एक एक तोले लेवे और चोक तथा शुद्ध कियाहुआ जमालगोटा चार २ तोले लेय । सब औषधोंको

पीस चूर्ण करे । इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं । यह रस दस्त होनेके वास्ते गौके दूधमें तीन रत्ती देय तो दस्त होकर मलका अवरोध तथा पेटका फूलना इत्यादि रोग दूर होते हैं । यह प्राणीको इच्छाके माफिक दस्त कराता है इससे इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं ।

वसंतकुसुमाकररस प्रमेहादिकोंपर ।

द्वौभागौहेमभूतेश्चगगनंचापितत्समम् ॥ १४१ ॥लोहभस्मत्रयोभागाश्चत्वारोरसभस्मतः ॥ वंगभस्मत्रिभागंस्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ १४२ ॥ प्रवालंमौक्तिकंचैवरससात्म्येनदापयेत् ॥ भावनागव्यदुग्धेनरसैर्घृष्टाटरूषकैः ॥ १४३ ॥ हरिद्रावारिणा चैवमोचकंदरसेनच ॥ शतपत्ररसेनापिमालत्याःस्वरसेनच ॥ ॥ १४४ ॥ पश्चान्मृगमदश्चंद्रस्तुलसीरसभावितः॥कुसुमाकरइत्येषवसंतपदपूर्वकः ॥ १४५ ॥ गुंजाद्वयंददीतास्यमधुना सर्वमेहनुत्॥सिताचंदनसंयुक्तश्चाम्लपित्तादिरोगजित्॥१४६॥

अर्थ–सुवर्णकी भस्म २ भाग अभ्रककी भस्म २ भाग लोहभस्म ३ भाग पारेकी भस्म ४ भाग वंगभस्म ३ भाग मूँगा और मोतीकी भस्म ४ भाग इनको गौके दूधकी १ अडूसेके पत्तोंके रसकी १ हल्दीके रसकी १ केलेके कंदके रसकी १ गुलाबजलकी १ मालतीकी १ कस्तूरीकी १ भीमसेनी कपूरकी १ तुलसीके रसकी एक एक भावना देकर गोली बनाय सुखाय लेवे इसको वसंतकुसुमाकर रस कहते हैं । इसकी दो रत्ती मात्रा सर्व प्रमेहोंपर देवे । मिश्री और सफेद चंदनके चूरेके साथ देनेसे सर्व पित्तके रोग दूर होते हैं (यह रस शार्ङ्गधरका नहीं है प्रक्षिप्त पाठ है) ।

राजमृगांकरस क्षयरोगपर ।

सूतभस्मत्रिभागंस्याद्भागैकंहेमभस्मकम् ॥ मृताभ्रस्यचभागैकंशिलागंधकतालकम् ॥१४७॥ प्रतिभागद्वयंशुद्धमेकीकृत्यविचूर्णयेत् ॥ वराटान्पूरयेत्तेनछागीक्षीरेणटंकणम्॥१४८॥ पिष्टातेनमुखंरुद्धामृद्भांडेतन्निरोधयेत् ॥ शुष्कंगजपुटेपक्त्वा चूर्णयेत्स्वांगशीतलम् ॥१४९॥ रसोराजमृगांकोऽयंचतुर्गुंजः क्षयापहः ॥ दशपिप्पलिकाक्षौद्रैरेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ १५० ॥

१ मृतताम्रस्य इति पाठातरम् ।

अर्थ–पारेकी भस्म २ भाग सुवर्णकी तथा अभ्रककी भस्म एक एक भाग १ मनशिल २ गंधक और २ हरताल ये तीनों शुद्ध की हुई दो दो भाग ले सबको एकत्र खरल कर चूर्ण कर लेवे । फिर बडी २ पीली कौडी ले उनमें इस चूर्णको भरके मुखको बकरीके दूधमें पिसे हुए सुहागेसे बंद कर देवे । फिर उन कौडियोंको हाँडीमें रखके उस हाँडीके मुखपर दूसरी छोटी हाँडी रखके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीसे बंद करदेवे । धूपमें सुखायके आरने उपलोंके गजपुटमें धरके फूंक देय जब शीतल होजाय तब उस संपुटमें रस निकालके धर रक्खे । इसको राजमृगांक कहते हैं । यह राजमृगांक चार रत्ती, दश पीपलें और उन्तीस काली मिरच इन दोनोंके चूर्णमें मिलाय सहतमें चाटे तो क्षयरोग दूर होवे ।

स्वयमग्निरस क्षयादिकोंपर ।

शुद्धंसूतंद्विधागंधंकुर्य्यात्खल्वेनकज्जलीम् ॥ तयोःसमंतीक्ष्णचूर्णमर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥१५१॥ द्वियामांतेकृतंगोलंताम्रपात्रे विनिक्षिपेत् ॥ आच्छाद्यैरंडपत्रेणयामार्धेऽत्युष्णताभवेत् ॥ ॥ १५२ ॥ धान्यराशौन्यसेत्पश्चादहोरात्रात्समुद्धरेत् ॥ संचूर्ण्यगालयेद्वस्त्रेसत्यंवारितरंभवेत् ॥ १५३ ॥ भावयेत्कन्यकाद्रावैःसप्तधाभृंगजैस्तथा ॥ काकमाचीकुरंटोत्थद्रवैर्मुंडचापुनर्नवैः ॥ १५४ ॥ सहदेव्यमृतानीलीनिर्गुंडीचित्रजैस्तथा ॥ सप्तधातुपृथग्द्रावैर्भाव्यंशोष्यंतथातपे ॥ १५५ ॥ सिद्धयोगो ह्ययंख्यातःसिद्धानांचमुखागतः ॥ अनुभूतोमयासत्यंसर्वरोगगणापहः ॥ १५६॥ स्वर्णादीन्मारयेदेवंचूर्णीकृत्यतुलोहवत्॥ त्रिफलामधुसंयुक्तःसर्वरोगेषुयोजयेत् ॥ १५७ ॥ त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवंगकैः॥नवभागोन्मितैरेतैःसमःपूर्वरसो भवेत् ॥१५८॥ संचूर्ण्यालोडयेत्क्षौद्रैर्भक्ष्यंनिष्कद्वयंद्वयम् ॥ स्वयमग्निरसोनाम्नाक्षयकासनिकृंतनः ॥ १५९ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग तथा शुद्ध गंधक दो भाग लेकर दोनोंकी कजली करे फिर इसमें समान भाग पोलाद लोहका चूर्ण मिलायके घीगुवारके रसमें दो प्रहर पर्यन्त खरल करे । फिर इसका गोला बनाय ताम्रके कटोरेमें उस गोलेको रखके उसके ऊपर अंडीके

१ यदि यह चूर्ण एकवारमें न खाया जाय तो दो तीनवार मिलायके खाय ।

के पत्ते ढकके चार घडी पर्यंत धूपमें रखदेवे। जब गोला अत्यंत गरम होजावे तब उसको धानकी राशिमें गाड देवे। एक दिनरात्रिके पश्चात् उसको निकाल कर उसको कपडेमें छान लेय और पानीमें डाले तो यह भस्म निश्चय पानीमें तरने लगे। इस भस्मको खरलमें डालके आगे कही हुई औषधोंके रसकी भावना देवे। जैसे घीगुवार भाँगरा मकोय पियावांसा मुंडी पुनर्नवा सहदेई गिलोय नीली निर्गुण्डी और चित्रक इनके पृथक् २ सातपुट देवे (ऊपर कही हुई औषधोंके रसमें खरलकर धूपमें सुखाय ले यह एक पुट हुई इस प्रकार सात २ पुट देवै) तो यह रसायन सिद्ध होय। इसको स्वयमग्निरस कहते हैं। यह रस सर्वत्र प्रसिद्ध बडे २ पुरुषोंने कहा है इस वास्ते मैंने अनुभव करके कहा है। यह स्वयमग्निरस संपूर्ण रोग दूर करनेको त्रिफलेका चूर्ण और सहत इस अनुपानके साथ दो निष्कप्रमाण लेवे तो संपूर्ण रोग दूर होय १ सोंठ २ मिरच ३ पीपल ४ हरड ५ बहेडा ६ आँवला ७ इलायची ८ जायफल और ९ लौंग इन नौ औषधोंको समान भाग ले चूर्ण करे। इस चूर्णके समान यह स्वयमग्नि रस लेवे। दोनोंको एकत्र कर सहतमें मिलायके दो निष्कप्रमाण सेवन करेतो क्षय रोग और खाँसीका रोग ये नष्ट होंय। रसायनकी रीतिसे स्वर्णादिक धातुका लोहके समान चूर्ण करके भस्म करे तो उनकीभी भस्म होय।

सूर्यावर्त्तरस श्वासपर।

सूतार्धोंगंधकोमर्द्योयामैकंकन्यकाद्रवैः॥ द्वयोस्तुल्यंताम्रपत्रं पूर्वकल्केनलेपयेत्॥१६०॥दिनैकंस्थालिकायंत्रेपक्त्वाचादायचूर्णयेत्॥ सूर्यावर्तोरसोह्येषद्विगुंजःश्वासजिद्भवत्॥१६१॥

अर्थ–शुद्धपारा १ भाग और गंधक पारेसे आधी ले, दोनोंको एकत्रकरके घीगुवारके रससे एक प्रहर खरलकरके कल्क करावे। फिर दोनोंके समान तांबेके पत्र लेकर उनपर इस कल्कका लेपकरके उन पत्रोंको मिट्टीके पात्रमें रखके उस पात्रके मुखपर दूसरा पात्र ओंधा रखके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीसे बंदकर देवे। फिर उसको धूपमें सुखायके चूल्हेपर रखके एक दिनकी अग्नि देवे। इसको स्थालिका यंत्र कहते हैं। फिर शीतल होनेपर उन पत्रोंको बाहर निकाल खरलकरके बारीक चूर्णकर लेवे। इसको सूर्यावर्त्तरस कहते हैं यह दोरत्तीके अनुमान श्वासरोगवालेको देय तो उसकी श्वासको दूरकरे।

स्वच्छन्दभैरवरस वातरोगपर।

शुद्धंसूतंमृतंलोहंताप्यंगंधकतालकम्॥ पथ्याग्निमंथनिर्गुंडीत्र्यूषणंटंकणंविषम्॥१६२॥ तुल्यांशंमर्दयेत्खल्वेदिनंनिर्गु-

डिकाद्रवैः ॥ मुंडीद्रावैर्दिनैकंतुद्विगुंजंवटकीकृतम् ॥ १६३ ॥ भक्षयेद्वातरोगार्तोनाम्नास्वच्छंदभैरवः ॥ रास्नामृतादेवदारु शुंठीवातारिजंशृतम् ॥ १६४ ॥ सगुग्गुलुंपिबेत्कोष्णमनुपानसुखावहम् ॥

अर्थ–१ शुद्धपारा २ लोहभस्म ३ स्वर्णमाक्षिककी भस्म ४ गंधक ५ हरताल ६ जंगीहरड ७ अरनी ८ निर्गुण्डी ९ सोंठ १० कालीमिरच ११ पीपल १२ सुहागा १३ शुद्धबच्छनाग विष ये तेरह औषधि समान भाग लेकर निर्गुंडीके रसमें एकदिन खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे। इसको स्वच्छंदभैरवरस कहते हैं यह रस और १ रास्ना २ गिलोय ३ देवदारु ४ सोंठ ५ अंडकी जड इन पांच औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके सेवन करे तो बादीका रोग दूर होय।

हंसपोटलीरस संग्रहणीपर।

दग्धान्कपर्दिकान्पिष्ट्वात्र्यूषणंटंकणंविषम् ॥ १६५ ॥ गंधकं शुद्धसूतंचतुल्यंजंबीरजैर्द्रवैः ॥ मर्दयेद्भक्षयेन्माषंमरिचाज्यं लिहेदनु ॥ १६६ ॥ निहंतिग्रहणीरोगंपथ्यंतक्रौदनंहितम् ॥

अर्थ–१ कौडीकी भस्म २ सोंठ ३ कालीमिरच ४ पीपल ५ फूलाहुआ सुहागा ६ शुद्ध बच्छनाग ७ गंधक और ८ शुद्ध किया हुआ पारा इन आठ औषधोंको कूट पीस जंभीरीके रसमें खरलकर एक एक मासेकी गोली बनावे इसको हंसपोटलीरस कहते हैं। इसको काली मिरचके चूर्णसे सहत मिलायके भक्षण करे इसपर छांछ और भातका खाना पथ्य है यह संग्रहणी रोगको दूर करता है।

त्रिविक्रमरस पथरीरोगपर।

मृतंताम्रमजाक्षीरेपाच्यंतुल्येगतद्रवम् ॥ १६७ ॥ तत्ताम्रं शुद्धसूतंचगंधकंचसमंसमम् ॥ निर्गुंडीस्वरसैर्मर्द्यंदिनंतद्गोलकं कृतम् ॥१६८॥ यामैकंवालुकायंत्रेपाच्यंयोज्यंद्विगुंजकम् ॥ बीजपूरस्यमूलंतुसजलंचानुपाययेत् ॥ १६९ ॥ रसस्त्रिविक्रमोनाम्नामासैकेवाश्मरीप्रणुत् ॥

अर्थ–ताम्रभस्मके समान बकरीका दूध ले उसमें तांबेकी भस्मको मिलायके औटायके गाढी करे। यह ताम्रभस्म शुद्ध किया पारा और गंधक ये तीनों औषध समान भाग लेके निर्गुंडीके रससे एक दिन खरल कर उसकी गोली करके उसको

वालुकायंत्रमें डालके एक प्रहर अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उस संपुटसे औषधोंको निकाल लेवे। इसको त्रिविक्रम रस कहते हैं। यह रस दो रत्तीके अनुमान विजोरेकी जडके रसमें अथवा काढा करके उसके साथ सेवन करे तो पथरीका रोग एक महीनेमें दूर होवे।

महातालेश्वररस कुष्ठादिकोंपर।

तालंताप्यंशिलांसूतंशुद्धंसैंधवटंकणे॥ १७०॥ समांशंचूर्ण-येत्खल्वेसूताद्द्विगुणगंधकम्॥ गंधतुल्यंमृतंताम्रंजंबीरैर्दिनपं-चकम्॥ १७१॥ मर्द्यंषड्भिःपुटैःपाच्यंभूधरेसंपुटोदरे॥ पुटेपुटेद्रवैर्मर्द्यंसर्वमेतच्चषट्पलम्॥ १७२॥ द्विपलंमारितं ताम्रंलोहभस्मचतुःपलम्॥ जंबीराम्लेनतत्सर्वंदिनंमर्द्यंपुटे-लघु॥ १७३॥ त्रिंशदंशंविषंचास्यक्षिप्त्वासर्वंविचूर्णयेत्॥ माहिषाज्येनसंमिश्रंनिष्कार्धंभक्षयेत्सदा॥ १७४॥ मध्वा-ज्यैर्बाकुचीचूर्णंकर्षमात्रंलिहेदनु॥ सर्वकुष्ठान्निहंत्याशुमहाता-लेश्वरोरसः॥ १७५॥

अर्थ–१ हरताल २ सुवर्ण माक्षिक ३ मनशिल ४ शुद्ध कियाहुआ पारा ५ सेंधानमक और ६ सुहागा ये छः औषधि समान भाग तथा पारेसे दूनी गंधक लेवे। तथा गंधकके समान ताम्रभस्म ले सबको खरलकर जंभीरीके रसमें ५ दिन पर्यंत घोटे। फिर इसका गोला बनाय उसको शरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी करके भूधर यंत्रमें उस सरावसंपुटको धरके आरने उपलोंकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब निकाल फिर जंभीरीके रसमें पांच दिन खरल कर पूर्वरीतिसे भूधरयंत्रमें धरके अग्नि देवे। इस प्रकार छः बार भूधरयंत्रमें डालके अग्नि देय तो भस्म होय। इस प्रकार की हुई भस्म छः पल, ताम्रभस्म दो पल और लोहभस्म चार पल इन तीनों भस्मोंको एकत्र खरल कर जँभीरीके रसमें एक दिन खरल करे। मिट्टीके शरावसंपुटमें डालके कपडमिट्टीकर आरने उपलोंकी हलैकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके इस भस्मका तीसवाँ हिस्सा शुद्ध किया बच्छनाग विष बारीक करके मिलावे। इसको महातालेश्वर रस कहते हैं। यह महातालेश्वर रस अर्द्धनिष्कप्रमाण लेके

---

१ भूधरयंत्रका स्वरूप प्रथम हेमगर्भपोटलीमें कह आए हैं।

२ एक बिलस्त लंबर चौडा गड्ढा खोद उसमें आरनेउपले भरके हलकी अग्नि देवे इसको कुक्कुटपुट कहते हैं।

भैंसके घीके साथ सेवन करे और उसी समय घी और सहत दोनों विषम भाग ले एकत्र करे उसमें बाकुचीका चूर्ण एक कर्ष मिलायके इसके साथ सेवन करे तो यह संपूर्ण कुष्ठोंको तत्काल दूर करे ।

कुष्ठकुठाररस कुष्ठरोगपर ।

सूतभस्मसमोगंधोमृतायस्ताम्रगुग्गुलू ॥ त्रिफलाचमहानिंबश्चित्रकश्चशिलाजतु ॥ १७६ ॥ इत्येतच्चूर्णितंकुर्यात्प्रत्येकंशाणषोडशम् ॥ चतुःषष्टिकरंजस्यबीजचूर्णंप्रकल्पयेत् ॥ १७७ ॥ चतुःषष्टिमृतंचाभ्रंमध्वाज्याभ्यांविलोडयेत् ॥ स्निग्धभांडेघृतंखादेद्द्विनिष्कंसर्वकुष्ठनुत् ॥ १७८ ॥ रसःकुष्ठकुठारोऽयंगलत्कुष्ठनिवारणः ॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म २ गंधक ३ लोहभस्म ४ ताम्रभस्म ५ गूगल ६ हरड ७ बहेडा ८ आँवला ९ बकायनकी छाल १० चीतेकी छाल और ११ शिलाजीत ये ग्यारह औषध प्रत्येक सोलह २ शाण लेवे तथा कंजाके बीज ६४ शाण लेय सबका बारिक चूर्ण करके अभ्रक भस्म ६४ शाण लेके उस चूर्णमें मिलाय देवे । इसको कुष्ठकुठाररस कहते हैं । यह रस दो निष्कप्रमाण सेवन करे तो संपूर्ण कुष्ठ और गलत्कुष्ठ ये दूर हों ।

उदयादित्यरस कुष्ठपर ।

शुद्धंसूतंद्विधागंधंमर्द्यकन्याद्रवैर्दिनम् ॥ १७९ ॥ तद्गोलंपिठरीमध्येताम्रपात्रेणरोधयेत् ॥ सूतकाद्द्विगुणेनैवशुद्धेनाधोमुखेनच ॥ १८० ॥ पार्श्वेभस्मनिधायाथपात्रोर्ध्वंगोमयंजलम् ॥ किंचित्प्रदातव्यमग्निंचुल्ल्यांयामद्वयंपचेत् ॥ १८१ ॥ चंडाग्निनातदुद्धृत्यस्वांगशीतंविचूर्णयेत् ॥ काष्ठोदुंबरिकावह्नित्रिफलाराजवृक्षकम् ॥ १८२ ॥ विडंगबाकुचीबीजंक्काथयेत्तेनभावयेत् ॥ दिनैकमुदयादित्योरसोदेयोद्विगुंजकः ॥ १८३ ॥ विचर्चिकांदद्रुकुष्ठंवातरक्तंचनाशयेत् ॥ अनुपानंचकर्तव्यंबाकुचीफलचूर्णकम् ॥ १८४ ॥ खदिरस्यकषायेणसमेनपरिपाचितम् ॥ त्रिशाणंतद्भवंक्षीरैःक्काथैर्वात्रिफलैःपिबेत् ॥ १८५ ॥ त्रिदिनांते

भवेत्स्फोटः सप्ताहाद्धाकिलासके ॥ नीलीगुंजाश्वकाशीसंघत्तरं हंसपादिकम् ॥१८६॥ सूर्यभक्ताचचांगेरीपिष्टामूलानिलेपयेत् ॥ स्फोटस्थानप्रशांत्यर्थंसप्तरात्रंपुनःपुनः ॥ १८७ ॥ श्वेतकुष्ठान्निहंत्याशुसाध्यासाध्यंनसंशयः ॥ अपरःश्वित्रलेपोऽपि कथ्यतेऽत्रभिषग्वरैः ॥१८८॥ गुंजाफलाग्निचूर्णंचप्रलेपःश्वेतकुष्ठनत्॥शिलापामार्गभस्मानिलिप्तंश्वित्रंविनाशयेत्॥१८९॥

अर्थ–शुद्ध किया पारा ४ पल और गंधक दो भाग लेके घीगुवारके रसमें दोनोंका खरल करके दोनोंका गोला बनावे । उस गोलेको घडेमें रखके पारेका तिगुना शुद्ध किया हुआ ताँवा लेकर उसकी कटोरी बनायके उस पूर्वोक्त गोलेके ऊपर ढक देवे और उसकी संधियोंको उपलोंकी राखसे बंदकर देय । गौका गोवर और जल दोनोंको मिलाय उस कटोरीके चारों तरफ लेपकर देवे । उस घडेको चूल्हेपर चढायके प्रचंड अग्नि दो प्रहर देवे । जब स्वांगशीतल हो जावे तब संपुटमेंसे औषधको निकालके खरलकर आगे लिखे औषधोंके रसकी पुट देवे । जैसे १ कठूमर २ चित्रक ३ हरड ४ बहेडा ५ आमला ६ अमलतासका गूदा ७ वायविडंग और ८ बावची इन आठ औषधोंका काढा करके उक्त रसमें डालके एक दिन खरल करे । फिर इसको गाढी कर गोली बनाय ले इसे उदयादित्यरस कहते हैं । यह रस रत्ती लेकर खैरकी छालके काढेमें बावचीका चूर्ण २ शाण मिलायके उसके साथ लेवे । अथवा गौके दूधसे अथवा त्रिफलाके काढेसे सेवन करे विचर्चिका रोग दाद कुष्ठ और वातरक्त ये रोग दूर होवें । इस उदयादित्यरसका तीन दिन सेवन करनेसे उस चित्रकुष्ठी मनुष्यके देहमें चौथे दिन वा सातवें दिन फोडे उत्पन्न होतेहैं उनके दूर होनेका औषध कहते हैं ।

१ नीलपुष्पी २ घूँघची ३ हीराकसीस ४ धतूरा ५ हंसपदी ६ हुलहुल और ७ चूका इन सात औषधोंकी जड समान भाग लेके बारीक पीसलेवे । फिर इसका उन फोडोंपर सातदिन लेप करे तो फोडे अच्छे होकर सफेद कुष्ठ साध्य अथवा असाध्य होय तोभी दूर होवे इसमें संशय नहीं है ।

दूसरा प्रकार यह है कि घूँघची (चिरमिठी) और चित्रक इनका बारीक चूर्ण करके पानीमें मिलाय देहमें मालिश करे । उसी प्रकार मनशिल और औंगाकी राख इन दोनोंको खरल करके देहमें मालिशकरे तो सफेद कुष्ठ दूर हो ।

सर्वेश्वररस कुष्ठादिकोंपर ।

शुद्धंसूतंचतुर्गंधंपलंयामंविचूर्णयेत् ॥ मृतताम्राभ्रलोहानांदर-

दस्यपलंपलम् ॥ १९० ॥ सुवर्णरजतंचैवप्रत्येकंदशनिष्ककम् ॥ माषैकंमृतवज्रंचतालंशुद्धंपलद्वयम् ॥ १९१ ॥ जंबीरोन्मत्तवासाभिःस्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ॥ मर्दयेद्धयारिजैर्द्रावैःप्रत्येकेनदिनंदिनम् ॥१९२॥ एवंसप्तदिनंमर्द्यंतद्गोलंवस्त्रवेष्टितम्॥ वालुकायंत्रगंस्वेदंत्रिदिनंलघुवह्निना ॥ १९३ ॥ आदायचूर्णयेच्छ्लक्ष्णंपलैकंयोजयेद्विषम्॥ द्विपलंपिप्पलीचूर्णंमिश्रंसर्वेश्वरोरसः ॥ १९४ ॥ द्विगुंजोलिह्यतेक्षौद्रैःसुप्तिमंडलकुष्ठनुत् ॥ बाकुचीदेवकाष्ठं चकर्षमात्रंसुचूर्णयेत् ॥ १९५ ॥ लिहेदेरंडतैलाक्तमनुपानंसुखावहम् ॥

अर्थ—शुद्धकियाहुआ पारा ४ पल गंधक १ पल दोनोंको एकत्रकर एकप्रहर पर्यंत खरल करे फिर तामेकी भस्म अभ्रकभस्म लोहभस्म और हींगलू ये चार वस्तु चार २ पलले, सुवर्णभस्म और रूपेकी भस्म दोनों दश २ निष्क लेवे और हीरेकी भस्म १ मासे तथा हरतालका सत्व २ पल ये सब औषध उस पारेगन्धककी कजलीमें मिलाय नींबू धतूरा अडूसा बकायन और कनेर इनकी जडके रसमें तथा थूहर और आक इनके दूधमें पृथक् २ एक २ दिन खरलकरके गोला करे। उसके चारों तरफ कपडा लपेट वालुकायंत्रमें रखके चूल्हेपर चढावे और उसके नीचे मंद २ अग्नि तीन दिन देवे । जब शीतल होजावे तब उस संपुटमेंसे रसको निकालके उसमें शुद्धकियाहुआ बच्छनाभविषका चूर्ण १ पल और पीपलका चूर्ण दो पल मिलाय देवे । इसे सर्वेश्वररस कहते हैं। यह रस दो रत्तीके अनुमान सहतके साथ सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल बावची और देवदारु इनका चूर्ण एक कर्ष अंडीके तेलमें मिलायके सेवन करे तो सुप्तिकुष्ठ और मंडल कुष्ठ दूर हों ।

स्वर्णक्षीरीरस सुप्तिकुष्ठपर ।

हेमाह्वांपंचपलिकांक्षिप्त्वातक्रघटेपचेत् ॥ १९६ ॥ तक्रेजीर्णेसमाहृत्यपुनःक्षीरघटेपचेत् ॥ क्षीरेजीर्णेसमुद्धृत्यक्षालयित्वाविशेषतः ॥१९७॥तच्चूर्णंपंचपलिकंमरिचानांपलद्वयम्॥ पलैकंमूर्च्छितंसूतमेकीकृत्यतुभक्षयेत् ॥ १९८ ॥ निष्कैकंसुप्तिकुष्ठार्तःस्वर्णक्षीरीरसोह्ययम् ॥

अर्थ–चोक ९ पल लेकर एक घडामें छाछ भरके उसमें उस चोकको डालके औटावे जब छाछ सूख जाय तब चोकको निकाल लेय फिर उसको दूधके घडेमें डालके औटावे जब दूधभी सूख जाय तब उसको निकाल कर धोय लेवे । फिर उसका चूर्ण करके दो पल लेय और पारेकी भस्म १ पल प्रमाण लेके दोनोंको एकत्र पीस लेवे । इसे स्वर्णक्षीरी रस कहते हैं । यह रस १ निष्क नित्य सेवन करे तो सुप्तिकुष्ठ दूर होय । किसी किसी वैद्यकी यह संमति है कि चोक नाम उसारे रेवनको कहते हैं ।

प्रमेहबद्धरस प्रमेहरोगपर।

मतभस्ममृतंकांतंमुंडभस्मशिलाजतु ॥ १९९ ॥ शुद्धंताप्यं शिलाव्योषंत्रिफलांकोलबीजकम् ॥ कपित्थंरजनीचूर्णंभृंगराजे नभावयेत् ॥ २०० ॥ विंशद्वारंविशोष्याथमधुयुक्तंलिहेत्सदा ॥ निष्कमात्रंहरेन्मेहान्मेहबद्धरसोमहान्॥२०१॥महानिंबस्यबीजा- निपिष्ट्वाषट्संमितानिच ॥ पलंतंदुलतोयेनघृतनिष्कद्वयेनच ॥ ॥२०२॥ एकीकृत्यपिबेच्चानुहंतिमेहंचिरंतनम् ॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म २ कांतलोहकी भस्म ३ लोहभस्म ४ शुद्धकियाहुआ शिलाजीत ५ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ६ मनशिल ७ सोंठ ८ मिरच ९ पीपल १० हरड ११ बहेडा १२ आँवला १३ अंकोलके बीज १४ कैथका गूदा और १५ हल्दी ये पंद्रह औषध समान भाग ले । इनमें भस्मके सिवाय जो औषधी हैं उनका चूर्ण कर उसमें सब भस्मोंको मिलायके फिर भाँगरेके रसकी २० पुट देवे । इसको मेहबद्ध रस कहते हैं यह रस १ निष्क प्रमाण सहतके साथ सेवन करे तो घोर प्रमेहका रोग नष्ट होय । यदि बकायनके छः बीजका चूर्ण करके चावलोंका धोवन एक पल लेके उसमें उस बकायनके चूर्णको मिलावे और दो निष्क घी मिलाय इस अनुपानके साथ इस मेहबद्धरसको भक्षण करे तो बहुत दिनका पुराना प्रमेहभी दूर होय ।

महावह्निरस सर्वउदररोगोंपर।

चतुःसूतस्यगंधाष्टौरजनीत्रिफलाशिवा ॥ २०३ ॥ प्रत्येकंच द्विभागंस्यात्रिवृज्जैपालचित्रकाः ॥प्रत्येकंचत्रिभागंस्यात्र्यूषणं दंतिजीरकम् ॥ २०४॥ प्रत्येकमष्टभागंस्यादेकीकृत्यविचूर्ण- येत् ॥ जयंतीस्नुकपयोभृंगवह्निवातारितैलकैः ॥ २०५ ॥

प्रत्येकेनक्रमाद्भाव्यंसप्तवारंपृथक्पृथक् ॥ महावह्निरसोनाम निष्कमुष्णजलैःपिबेत् ॥ २०६ ॥ विरेचनंभवेत्तेनतक्रभक्तंसुसैंधवम् ॥ दिनांतेदापयेत्पथ्यंवर्जयेच्छीतलंजलम् ॥ २०७॥ सर्वोदरहरःप्रोक्तोमूढवातहरःपरः ॥

अर्थ–पारा चार भाग, गंधक ८ भाग, १ हल्दी २ हरड ३ बहेडा ४ आँवला और ५ छोटी हरड ये पांच औषध दो दो भाग लेवे । १ निशोथ २ शुद्ध किया हुआ जमालगोटा और ३ चित्रक ये तीन औषध तीन २ भाग लेवे तथा १ सोंठ २ मिरच ३ पीपल ४ दंती और ५ जीरा ये पांच औषधी आठ २ भाग लेवे । सब औषधोंका चूर्ण करके अरणीका रस थूहरका दूध भांगरेका रस चित्रक और अंडीका तेल इन प्रत्येककी पृथक् १ सात २ भावना देवे । फिर एक २ निष्ककी गोलियाँ बांध लेवे । इसमेंसे १ गोली गरम जलके साथ सेवन करे तो इससे दस्त हो । जब दस्त होचुके तब सायंकालको पथ्यमें छाछ और भात देना चाहिये और नमकोंमें सैंधानमक खाय जब २ जल पीवे तब २ गरम जल पीवे शीतल न पीवे इस रसायनसे दस्त होकर संपूर्ण उदरके विकार तथा मूढवात दूर होवे ।

विद्याधररस गुल्मादिरोगोंपर ।

गंधकंतालकंताप्यंमृतताम्रंमनःशिलाम् ॥ २०८ ॥ शुद्धंसूतंचतुल्यांशंमर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥ पिप्पल्यस्तुकषायेणवज्रीक्षीरेणभावयेत् ॥ २०९ ॥ निष्कार्धंभक्षयेत्क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकंजयेत् ॥ रसोविद्याधरोनामगोमूत्रंचपिबेदनु ॥ २१० ॥

अर्थ–१ गंधक २ हरताल ३ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ४ ताम्रभस्म ५ मनशिल और शुद्ध कियाहुआ पारा ये छः औषध समान भाग लेकर खरलमें डालके पीपलके काढेसे १ दिन खरल करे । फिर २ दिन थूहरके दूधसे खरल करे । इसको विद्याधर रस कहते हैं। यह रस आधा निष्क लेकर सहतमें मिलायके सेवन करे तो गुल्म (गोलेका) रोग और प्लीहादिक रोग दूर होवें ।

त्रिनेत्ररस पक्ति (परिणाम) शूलादिकोंपर ।

टंकणंहारिणंशृंगंस्वर्णंशुल्बंमृतंरसम् ॥ दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यंरुद्ध्वापुटेपचेत् ॥ २११ ॥ त्रिनेत्राख्यरसस्यैकंमाषंमध्वाज्यकैर्लिहेत् ॥ सैंधवंजीरकंहिंगुमध्वाज्याभ्यांलिहेदनु ॥ २१२॥ पक्तिशूलहरःख्यातोमासमात्रान्नसंशयः ॥

अर्थ–१ सुहागा २ हरिणका सींग ३ सुवर्णभस्म ४ ताम्रभस्म और ५ पारेकी भस्म इन पांच औषधोंको अदरखके रसमें एकदिन खरलकर मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके उसपर कपड-मिट्टीकरके गड्ढा खोद उसमें आरने उपलोंकी हलकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको निकाल ले। इसको त्रिनेत्र रस कहते हैं। यह रस एकमासेके अनुमान लेके सहत और घी दोनोंको मिलायके इसको भक्षण करे और इसके ऊपर तत्काल १ सैंधानमक २ जीरा ३ भुनी हींग इन तीन औषधोंका चूर्ण करके घी और सहतमें मिलायके खाय तो पक्ति (परिणाम) शूल एक महीनेमें दूर होय।

शूलगजकेसरीरस शूलादिकोंपर।

शुद्धसूतंद्विधागंधंयामैकंमर्दयेद्दृढम् ॥२१३॥ द्वयोस्तुल्यंशुद्धताम्रंसंपुटेतंनिरोधयेत् ॥ ऊर्ध्वाधोलवणंदत्वामृद्भांडेधारयेद्भिषक् ॥ २१४ ॥ ततोगजपुटेपक्त्वास्वांगशीतंसमुद्धरेत् ॥ संपुटंचूर्णयेत्सूक्ष्मंपर्णखंडेद्विगुंजकम् ॥ २१५ ॥ भक्षयेत्सर्वशूलार्तोहिंगुशुंठीसजीरकम् ॥ वचामरिचजंचूर्णंकर्षमुष्णजलैःपिबेत् ॥ २१६ ॥ असाध्यंनाशयेच्छूलंरसोऽयंगजकेसरी ॥

अर्थ–शुद्ध कियाहुआ पारा १ भाग, गंधक २ भाग दोनोंको मिलायके १ प्रहर पर्यंत खरलकरके दोनोंके समान शुद्ध किया ताँबा लेवे। उसकी कटोरी बनायके उसमें पारा गंधककी कजलीको रखके दूसरी कटोरीसे ढकके मिट्टीकी हाँडीको आधी नमकसे भर बीचमें इस तांबेकी कटोरीको रख ऊपर फिर पिसे हुए नमकसे भरदेवे फिर उस हांडीके मुखपर दूसरी छोटी पारी ढकके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीकरके सुखाय लेवे। फिर गड्ढा खोदके उसमें आरने उपले भरके बीचमें संपुटको रखके ऊपर उपले भरके गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब निकालके उस कटोरीको बारीक पीसके चूर्ण करे। इसको शूलगजकेसरी रस कहते हैं जिस मनुष्यको सर्व प्रकारका शूल हो उसको पानके बीडेमें दो रत्ती यह रखके खिलाय और इसके ऊपर तत्काल १ भुनी हींग २ सोंठ ३ जीरा ४ बच और ५ कालीमिरच इन पांच औषधोंका चूर्ण एक कर्ष प्रमाण ले पानीमें मिलायके पिलावे तो असाध्यभी शूल दूर होय।

सूतादिवटी मंदाग्निआदिरोगोंपर।

शुद्धसूतंविषंगंधमजमोदांफलत्रयम् ॥२१७॥ सर्जक्षारंयवक्षारंवह्निसैंधवजीरकौ ॥ सौवर्चलंविडंगानिसामुद्रंत्र्यूषणंसमम् ॥

॥ २१८ ॥ विषमुष्टिंसर्वतुल्यांजंबीराम्लेनमर्दयेत् ॥ मरिचा-
भांवटींखादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ २१९ ॥

अर्थ–१ शुद्धकिया पारा २ शुद्धकिया बच्छनाग विष ३ गंधक ४ अजमोद ५ हरड ६ बहेडा ७ आंवला ८ सज्जीखार ९ जवाखार १० चित्रक ११ सैंधानमक १२ जीरा १३ काला-नमक १४ बिडनमक १५ सामुद्रनमक १६ सोंठ १७ मिरच १८ पीपल ये अठारह औषध समान भाग ले। और बकायनके बीज सब औषधोंके बराबर ले सबका चूर्ण कर जंभीरीके रसमें खरलकर मिरचके समान गोली बांधे। इसमेंसे एक २ गोली नित्य खाय तो सर्व प्रकारके अजीर्ण दूर होंय।

अजीर्णकंटकरस अजीर्णपर।

शुद्धसूतंविषंगंधंसमंसर्वंविचूर्णयेत् ॥मरिचंसर्वतुल्यांशंकंटका-
र्याःफलद्रवैः ॥२०० ॥ मर्दयेद्भावयेत्सर्वमेकाविंशतिवारकम् ॥
वटींगुंजात्रयंखादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये॥ २२१ ॥अजीर्णकंटक-
श्चायंरसोहंतिविषूचिकाम् ॥

अर्थ–१ शुद्धकिया पारा २ शुद्ध बच्छनागविष और ३ गंधक ये तीन औषध समान भाग लेवे और तीनोंके समान काली मिरच लेवे। सबको खरलकरके कटोरीके फलोंके रसमें पृथक् २ इक्कीस भावना देके तीन २ रत्तीकी गोली बनावे। इसको अजीर्णकंटकरस कहते हैं। इस रसकी एक एक गोली सेवनकरनेसे सर्व प्रकारके अजीर्ण तथा विषूचिका (हैजा) दूर होवे।

मंथानुभैरवरस कफरोगपर।

मृतंसूतंमृतंताम्रंहिंगुपुष्करमूलकम् ॥ २२२ ॥ सैंधवंगंधकं
तालंकटुकींचूर्णयेत्समम् ॥ पुनर्नवादेवदालीनिर्गुंडीतंडुलीय-
कैः ॥ २२३ ॥ तिक्तकोशातकीद्रावैर्दिनैकंमर्दयेद्दृढम् ॥ माष-
मात्रंलिहेत्क्षौद्रैरसंमंथानुभैरवम् ॥ २२४ ॥ कफरोगप्रशांत्य-
र्थंनिंबक्काथंपिबेदनु ॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म २ तामेकी भस्म ३ हींग ४ पुहकरमूल ५ सैंधानमक ६ गंधक ७ हरताल और ८ कुटकी ये आठ औषध समान भाग ले। भस्मके बिना सब औषधोंका चूर्ण करके फिर पूर्वोक्त भस्म मिलायके पुनर्नवा (साँठ) के रससे एक दिन खरल करे। फिर बंदाल, निर्गुंडी, चौलाई और कडवी तोरई इन एक एकके रस

में एक एक दिन खरल कर गोली बनावे । इसको मंथानुभैरव रस कहते हैं यह रस १ मासा सहतमें मिलायके सेवन करे और उसके ऊपर तत्काल कड़ुए नीमकी छालका काढा पीवे तो कफरोग दूर होय ।

वातनाशनरस वातविकारपर ।

सूतहाटकवज्राणिताम्रंलोहंचमाक्षिकम् ॥ २२५ ॥ तालंनीलांजनंतुत्थमहिफेनंसमांशकम् ॥ पंचानांलवणानांचभागमेकंविमर्दयेत् ॥ २२६ ॥ वज्रीक्षीरैर्दिनैकंतुरुद्धाधोभूधरेपचेत् ॥ माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम् ॥ २२७ ॥ पिप्पलीमूलजक्वाथंसकृष्णमनुपाययेत् ॥ सर्वान्वातविकारांस्तुनिहंत्याक्षेपकादिकान् ॥ २२८ ॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म २ सुवर्णभस्म ३ हीरेकी भस्म ४ ताँबेकी भस्म ५ लोहेकी भस्म ६ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ७ हरतालकी भस्म ८ शुद्ध सुरमा ९ लीलाथोथा और १० अफीम ये दश औषध समान भाग ले । १ सैंधानमक २ संचरनमक ३ बिड़नोन ४ खारीनोन और ५ समुद्रनमक ये पांच क्षार मिलाकर एक भाग लेवे अर्थात् दश औषध दश तोले होंय तो पांचो क्षार मिलायके १ तोले लेय । सबको एकत्र करके थूहरके दूधसे १ दिन खरल कर मिट्टीके शरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी कर भूधरयंत्रमें रखके अग्नि देवे । जब स्वांग शीतल होजावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको निकाल लेवे । इसको वातनाशन रस कहते हैं । यह रस एक मासेके अनुमान अदरखके रससे सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल पीपलामूलका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो संपूर्ण आक्षेपकादिक बादी दूर होय ।

कनकसुंदररस ।

कनकस्याष्टशाणाःस्युःसूतोद्वादशभिर्मतः ॥ गंधोऽपिद्वादशप्रोक्तस्ताम्रंशाणद्वयोन्मितम् ॥ २२९ ॥ अभ्रकस्यचतुःशाणं माक्षिकंचद्विशाणिकम् ॥ वंगोद्विशाणःसौवीरंत्रिशाणंलोहमष्टकम् ॥ २३० ॥ विषंत्रिशाणिकंकुर्याल्लांगलीपलसंमिता ॥ मर्दयेद्दिनमेकंचरसैरम्लफलोद्भवैः ॥ २३१ ॥ दद्यान्मृदुपुटंवह्नौततःसूक्ष्मंविचूर्णयेत् ॥ माषमात्रोरसोदेयःसन्निपातेसुदारुणे ॥ २३२ ॥ आर्द्रकस्वरसेनैवरसोनस्यरसेनवा ॥ किलासं

सर्वकुष्ठानिविसर्पंचभगंदरम् ॥ २३३ ॥ ज्वरंगरमजीर्णंचजयेद्रोगहरोरसः ॥

अर्थ–धतूरेके बीज आठ शाण, पारा बारह शाण, गंधक बारह शाण, तामेकी भस्म दो शाण, अभ्रकभस्म चार शाण, स्वर्णमाक्षिकभस्म दो शाण, वंगभस्म दो शाण, शुद्ध सुरमा तीन शाण, लोहभस्म आठ शाण, शुद्ध बच्छनाग विष तीन शाण और कलयारी विषकी जड एक पल । इन सबको बारीक पीसके नींबूके रससे एक दिन पर्यन्त खरल कर मिट्टीके शराव-संपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंके हलकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके बारीक पीसके धर रक्खे । इसको कनकसुंदर रस कहते हैं । इसको एक मासे लेके अदरखके रससे खाय अथवा लहसुनके रसमें मिलायके खाय तो घोर दुर्घट सन्निपात दूर होय किलासकुष्ठ और अन्य प्रकारके सर्व कुष्ठ विसर्प भगंदर ज्वर विषदोष और अजीर्ण ये रोग दूर होंय ।

सन्निपातभैरवरस ।

रसोगंधस्त्रिस्त्रिकर्षौकुर्यात्कज्जलिकांद्वयोः ॥ २३४ ॥ ताराभ्रताम्रवंगाहिसाराश्चैकैककार्षिकाः ॥ शिग्रुज्वालामुखीशुंठीबिल्वेभ्यस्तंडुलीयकात् ॥ २३५ ॥ प्रत्येकंस्वरसैःकुर्याद्यामैकैकंविमर्दयेत्॥कृत्वागोलंवृतंवस्त्रेलवणापूरितेन्यसेत्॥२३६॥ काचभांडेततःस्थाल्यांकाचकूपींनिवेशयेत् ॥ वालुकाभिःप्रपूर्याथवह्नियामद्वयंभवेत् ॥ २३७ ॥ ततउद्धृत्यतंगोलंचूर्णयित्वाविमिश्रयेत् ॥ प्रवालचूर्णकर्षेणशाणमात्राविषेणच ॥ ॥२३८॥कृष्णसर्पस्यगरलैर्दिवसंभावयेत्तथा॥तगरंमुसलीमांसीहेमाह्वावेतसःकणा॥ २३९ ॥नीलिनीपत्रकंचैलाचित्रकश्चकुठेरकः ॥ शतपुष्पादेवदालीधत्तूरागस्त्यमुंडिकाः ॥२४०॥ मधूकजातिमदनारसैरेषांविमर्दयेत् ॥ प्रत्येकमेकवेलंचततःसंशोष्यधारयेत् ॥ २४१ ॥ बीजपूरार्द्रकद्रावैर्मरिचैःषोडशोन्मितैः ॥ रसोद्विगुंजाप्रमितःसन्निपातस्यदीयते ॥ २४२ ॥ प्रसिद्धोऽयंरसोनाम्नासन्निपातस्यभैरवः ॥

अर्थ–शुद्धपारा ३ कर्ष और गंधक तीन कर्ष दोनोंको खरल करके कजली करे । फिर रूपेकी भस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, नागभस्म और लोहभस्म ये छ

भस्म एक एक कर्ष लेवे । सबको पूर्वोक्त पारे गंधककी कजलीमें मिलाय देवे । फिर सहजनेकी छालके रसमें १ प्रहर खरल करे । पश्चात् ज्वालामुखीके रसमें सोंठके काढेमें बेलफलके रसमें और चौलाईके रसमें पृथक् २ एक २ प्रहर खरल करके गोला बनाय ले । उस गोलेके आस पास कपडा लपेटके उस गोलेको काँचके प्यालेमें रखके उसके ऊपर दूसरा प्याला औंधा ढकके कपडमिट्टीकर देवे । फिर एक हाँडी ले उसमें पिसाहुआ नमक आधा भरके बीचमें उस संपुटको रख ऊपरसे फिर पिसाहुआ नमक उस हाँडीके मुखपर्यंत भर देवे । फिर उस हाँडीको चूल्हेपर चढाय नीचे दो प्रहरपर्यंत अग्नि जलावे । फिर शीतल होनेपर उस संपुटमेंसे औषधको काढ लेवे। तब उस गोलेका चूर्ण करके उसमें मूँगेका चूरा एक कर्ष तथा शुद्ध बच्छनाग चूर्ण १ शाण मिलाय काले सर्पका विष डालके एकदिनपर्यन्त खरल करे। फिर इस रसको काँचकी आतसी शीशीमें भरके उस शीशीपर कपडमिट्टी करके उस शीशीके मुखपर ईटकी डाट देकर कपडमिट्टी करदे । इसको धूपमें सुखायके वालुकायंत्रमें रखके चूल्हेपर चढाय दो प्रहरपर्यन्त अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब शीशीसे औषधको बाहर निकाल खरल करके आगेलिखी हुई औषधोंकी पुट देवे। जैसे १ तगर २ मुसली ३ जटामांसी ४ चोक ५ वेत ६ पीपल ७ नीलपुष्पी ८ पत्रज ९ इलायची १० चित्रक ११ वनतुलसी १२ सौंफ १३ बंदाल १४ धतूरा १५ अगस्तिया १६ मूंडी १७ महुआ १८ चमेली और १९ मैनफल इन उन्नीस औषधोंके स्वरसमें घोटे । अर्थात् एक औषधका रस निकालके घोटे जब वह सूख जावे तब दूसरी औषधका रस डालके खरल करे इसप्रकार पृथक् २ घोटे। जिस औषधमेंसे रस निकलता होवे उसका काढा करके उस काढेमें खरल करे। जब सूखजाय तब गोली बाँधलेवे। इस रसको सन्निपातभैरवरस कहते हैं इस रसको दो रत्ती प्रमाण: बिजोरेके रस और अदरखके रसमें मिलाय तथा उसमें सोलह कालीमिरचका चूर्ण डालके सन्निपातवाले मनुष्यको देवे तो इससे सन्निपात दूर होय। यह सन्निपातभैरवरस प्रसिद्ध है।

ग्रहणीकपाटरस संग्रहणीपर ।

तारमौक्तिकहेमानिसारश्चैकैकभागिकाः ॥२४३॥ द्विभागोगंधकःसूतस्त्रिभागोमर्दयेदिमान् ॥ कपित्थस्वरसैर्गाढंमृगशृंगे ततःक्षिपेत् ॥ २४४ ॥ पुटेन्मध्यपुटेनैवततउद्धृत्यमर्दयेत् ॥ बलारसैःसप्तवेलमपामार्गरसैस्त्रिधा ॥२४५॥ लोध्रंप्रतिविषा मुस्तंधातकींद्रयवाःस्मृताः ॥ प्रत्येकमेषांस्वरसैर्भावनास्यात्रिधात्रिधा ॥२४६॥ माषमात्रोरसोदेयोमधुनामरिचैस्तथा॥

हन्यात्सर्वानतीसारान्ग्रहणींसर्वजामपि ॥ २४७ ॥ कपाटो ग्रहणीरोगेरसोऽयंवह्निदीपनः ॥

अर्थ-१ रूपेकी भस्म २ मोती ३ सुवर्णभस्म और ४ लोहभस्म ये चार औषध एक २ भाग लेवे । गंधक दो भाग और शुद्ध पारा तीन भाग सबको खरल करके कैथके रसमें घोटके हरिणके सींगमें खूब दाब २ के भरे । फिर उस सींगपर कपडमिट्टी करके आरनेउपलोंकी मध्यमाग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके खरलमें डालके खेरेटीके रसकी ७ पुट देवे । फिर ओंगा लोध अतीस नागरमोथा धायके फूल इन्द्रजौ और गिलोय इनके पृथक् २ स्वरसको निकालके एक २ की न्यारी न्यारी तीन २ भावना देवे । जिस औषधका स्वरस न निकले उसका काढा करके इस रसको घोटे । जब सूखनेपर आवे तब एक मासेकी गोलियाँ बनावे । इसको ग्रहणीकपाटरस कहते हैं । इस रसकी एक गोली काली मिरचके चूर्णके साथ सहतमें मिलायके सेवन करे तो संपूर्ण अतिसार तथा संपूर्ण संग्रहणीके रोग दूर होवें और अग्नि प्रदीप्त होती है ।

ग्रहणीवज्रकपाटरस संग्रहणीपर ।

मृतसूताभ्रकेगंधंयवक्षारंसटंकणम् ॥ २४८ ॥ अग्निमंथंवचां कुर्यात्सूततुल्यानिमान्सुधीः ॥ ततोजयंतीजंबीरभृंगद्रावैर्विमर्दयेत् ॥ २४९ ॥ त्रिवासरंततोगोलंकृत्वासंशोष्यधारयेत् ॥ लोहपात्रेशरावंचदत्त्वोपरिविमुद्रयेत् ॥ २५० ॥ अधोवह्निंशनैःकुर्याद्यामार्धंततउद्धरेत् ॥ रसतुल्यांप्रतिविषांदद्यान्मोचरसंतथा ॥२५१॥ कपित्थविजयाद्रावैर्भावयेत्सप्तधाभिषक् ॥ धातकींद्रयवामुस्तालोध्रंबिल्वंगुडूचिका ॥ २५२ ॥ एतद्रसैर्भावयित्वावेलैकैकंचशोषयेत् ॥ रसंवज्रकपाटाख्यंशाणैकंमधुनालिहेत् ॥ २५३ ॥ वह्निशुंठीबिडंबिल्वंलवणंचूर्णयेत्समम् ॥ पिबेदुष्णांबुनाचानुसर्वजांग्रहणींजयेत् ॥ २५४ ॥

अर्थ-१ पारेकी भस्म २ अभ्रकभस्म ३ गंधक ४ जवाखार ५ सुहागा ६ अरनीकी जड और ७ वच ये सात औषध समान भाग लेवे । सबको पीसके अरनीके रसमें एक दिन खरल करे । फिर जंभीरीके रसमें एक दिन तथा भाँगरेके रसमें एक दिन इस प्रकार इन तीनोंके रसमें तीन दिन खरल करके गोला बनावे । उसको सुखायके

लोहेकी कढाहीमें रख उसके ऊपर मिट्टीका सरावा ढकके उसकी संधियोंको मिट्टीकी मुद्रा देके बंदकर देवे। फिर उस काढाहीको चूल्हेपर चढायके नीचे मन्दमन्द अग्नि चार घडीपर्यंत देवे। जब शीतल हो जावे तब गोलेको बाहर निकाल लेय फिर इसके समान भाग अतीसका चूर्ण और मोचरसका चूर्ण मिलायके खरलमें डाल कैथके रसकी सात पुट देवे तथा भाँगके रसकी सात पुट देवे। पश्चात् धायके फूल इन्द्रजौ नागरमोथा लोध बेलफल और गिलोय इन औषधोंको पृथक् २ रसमें पृथक् २ घोटे। जब जाने कि कुछ थोडी गोली है तब एक २ शाणकी गोली बनावे इसको ग्रहणीवज्रकपाट रस कहते हैं जिसके संग्रहणीका विकार हो उसको मधके साथ यहगोली देवे और इसके ऊपर तत्काल चित्रक सोंठ बिडनमक बेलगिरी सैंधानमक इन पांच औषधोंका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीवे तो सर्व प्रकारकी संग्रहणी दूर होवे।

मदनकामदेवरस वाजीकरणपर।

तारंवज्रंसुवर्णंचताम्रंसूतकगंधकम् ॥ लोहंक्रमविवृद्धानिकुर्या-देतानिमात्रया ॥ २५५ ॥ विमर्द्यकन्यकाद्रावैर्न्यसेत्काचमये घटे ॥ विमुच्यपिठरीमध्येधारयेत्सैंधवावृते ॥ २५६ ॥ पिठ-रींमुद्रयेत्सम्यक्ततश्चुल्ल्यांनिवेशयेत्॥वह्निंशनैःशनैःकुर्याद्दि-नैकन्ततउद्धरेत्॥२५७॥ स्वांगशीतंचसंचूर्ण्यभावयेदर्कदुग्ध-कैः ॥ अश्वगंधाचकाकोलीवानरीमुसलीक्षुरा ॥ २५८ ॥ त्रिस्त्रिवेलंरसैरेषांशतावर्याश्चभावयेत् ॥ पद्मकन्दकसेरूणांरसैः काशस्यभावयेत् ॥२५९॥ कस्तूरीव्योषकर्पूरकंकोलैलालवं-गकम् ॥ पूर्वचूर्णादष्टमांशमेतच्चूर्णंविमिश्रयेत्॥२६०॥ सर्वैः समांशर्करांचदत्त्वाशाणोन्मितंपिबेत् ॥ गोदुग्धद्विपलेनैवमधु राहारसेवकः॥२६१॥अस्यप्रभावात्सौंदर्यंसलभेन्नात्रसंशयः॥ तरुणीरमयेद्बह्वीःशुक्रहानिर्नजायते ॥ २६२ ॥

अर्थ—रूपेकी भस्म १ भाग, हीरेकी भस्म २ भाग, सुवर्णकी भस्म ३ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, शुद्धपारा ५ भाग, गंधक ६ भाग, और लोहभस्म ७ भाग इस प्रकार संपूर्ण औषध लेवे। सबको खरलमें डालके घीगुवारके रससे खरल करके कांचकी आतसीशीशीमें भर उसपर कपडमिट्टीकरे और मुखपर मुद्रा करके सूखनेपर उस शीशीको हांडीमें रखके शीशीके गलेपर्यंत पिसाहुआ नमकभरके

गला खुला रहनेदे । फिर उस हांडीको परियासे ढकके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीसे बंदकर देवै। फिर धूपमे सुखाय चूल्हेपर रखके नीचे मंद २ एकदिनतक अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब शीशीसे औषध निकालके खरलमें डाल आकके दूधकी तीन पुट देय । पश्चात् १ असगंध २ काकोलीके अभावमें असेगंध ३ कौंचके बीज ४ मूसली ५ तालमखाने ६ शतावर ७ कमलगट्टा ८ कसेरू और ९ कसोंदी इन नौ औषधोंके पृथक् २ रस निकालके एक एककी तीन २ भावना देवे तो यह रस सिद्ध हुआ ऐसा जानना । १ कस्तूरी २ सोंठ ३ कालीमिरच ४ पीपल ५ कपूर ६ कंकोल ७ इलायची और ८ लौंग इन आठ औषधोंका चूर्ण करके इस रसका आठवें भाग लेके मिलावे । फिर इसमेंसे १ शाण रस लेके उसकी बराबरकी मिश्री मिलाय दो पल (८ तोले) गौके दूधसे पीवे तो देह अत्यंत सुंदर होय, बलवान् तथा तेजस्वी होय एवं अनेक तरुण स्त्रियोंसे संभोग करनेसेभी वीर्यका क्षय नहींहो । इस रसपर खटाई आदिका पथ्य करे और मिष्ट पदार्थ भोजन करे । इसे मदनकामदेवरस कहते हैं ।

कन्दर्पसुन्दररस वाजीकरणपर ।

सूतोवज्रमहिर्मुक्तातारंहेमसिताभ्रकम् ॥ रसैःकर्षांशकानेतान्मर्दयेदिरिमेदजैः ॥२६३॥ प्रवालचर्णगंधश्चद्विद्विकर्षविमिश्रयेत् ॥ ततोऽश्वगंधास्वरसैर्विमर्द्यमृगशृंगके ॥२६४॥ क्षिप्त्वा मृदुपुटेपक्त्वाभावयेद्वातकीरसैः ॥ काकोलीमधुकंमांसीबलात्रयविसंगुदम् ॥ २६५ ॥ द्राक्षापिप्पलिवंदाकंवरीपर्णीचतुष्टयम् ॥ परूषकंकसेरुश्चमधूकंवानरीतथा ॥ २६६ ॥ भावयित्वारसैरेषांशोषयित्वाविचूर्णयेत् ॥ एलात्वक्पत्रकंवंशीलवंगागरुकेशरम् ॥ २६७ ॥ मुस्तंमृगमदःकृष्णाजलंचंद्रश्चमिश्रयेत् ॥ एतच्चूर्णैःशाणमितैरसंकंदर्पसुंदरम् ॥२६८॥ खादेच्छाणमितंरात्रौसिताधात्रीविदारिका ॥ एतेषांकर्षचूर्णेनसर्पिःकर्षसुसंयुतम् ॥ २६९ ॥ तस्यानुद्विपलंक्षीरंपिबेत्सुस्थितमानसः ॥ रमणीरमयेद्बह्वीःशुक्रहानिर्नजायते ॥ २७० ॥

---

१ आकके दूधकी तीन पुट देना जो कहा है सो घी गुवाराका पुट देकर पश्चात् देना फिर उस औषधको शीशीमें भरके सिद्ध करे । जब सिद्ध होजावे तब पश्चात् पुट देनेसे कदाचित् वमन होजावे इस वास्ते टीकाकारने पहले पुट देना कहा है ।

२ असगंध दोवार आई इस वास्ते इसकी पुट दूनी देवे ।

अर्थ-१ पारेकी भस्म २ हीरेकी भस्म ३ नागभस्म ४ मोतभिस्म ५ रूपेकी भस्म ६ सुवर्ण भस्म और ७ सफेद अभ्रककी भस्म ये सात औषध एक एक कर्ष लेवे। सबको खरलमें डालके ...की छालके रसमें खरलकर मूँगाका चूर्ण और गंधक ये दो दो कर्ष लेकर उस औषधमें मिला-... असगंधके रससे खरलकरे। फिर उसको हरणके सींगमें भरके उसपर कपडमिट्टीकर आरने ...लोंकी मंदाग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब बाहर निकाल खरलमें डालके आगे लिखी औष-...की पुट देवे। जैसे-१ धायके फूल २ कंकोलके अभावमें असगंध ३ मुलहटी ४ जटामांसी ५ खेंटीकी छाल ६ कँगही ७ गंगेरण ८ भसोंडा (कमलका कंद) ९ इंगुदी (हिंगोट) १० दाख ११ पीपल १२ बाँदा १३ सतावर १४ माषपर्णी १५ मुद्गपर्णी १६ पृष्टपर्णी १७ शालपर्णी १८ फालसे १९ कसेरू २० महुआ २१ कौंचके बीज इन इक्कीस औषधोंका पृथक् २ रस निकालके इस रसमें न्यारी २ भावना देके सुखाय ले। इस रसको कंदर्पसुंदररस कहते हैं। पश्चात् १ इलायची २ दालचीनी ३ तमालपत्र ४ वंशलोचन ५ लौंग ६ अगर ७ केशर ८ नागरमोथा ९ कस्तूरी १० पीपल ११ नेत्रबाला और १२ भीमसेनी कपूर इन बारह औषधोंके एक शाण चूर्णमें इस कंदर्पसुंदररसको एक शाण मिलायके एकत्रकरे। इसको एक कर्ष घीमें मिलायके आँवला और विदारीकंद इनका चूर्ण तथा मिश्री ये एक २ कर्ष लेके उस घीमें मिलायके रात्रिमें पीवे। और उसी समय प्रसन्न चित्तसे दो पल गौका औटाहुआ दूध पीवे तो अनेक स्त्री भोगने परभी धातुक्षीण नहीं हो। अर्थात् अपार वीर्यवान् हो।

लोहरसायन क्षयादिरोगोंपर।

शुद्धंरसेंद्रंभागैकंद्विभागंशुद्धगंधकम् ॥ क्षिपेत्कज्जलिकांकुर्या-त्तत्रतीक्ष्णभवंरजः ॥ २७१ ॥ क्षिप्त्वाकज्जलिकातुल्यंप्रहरैकं विमर्दयेत् ॥ तत्रकन्याद्रवैःखल्वेत्रिदिनंपरिमर्दयेत् ॥ २७२॥ ततःसंजायतेतस्यसोष्णोधूमोद्गमोमहान् ॥ अत्यंतंपिंडितंकृ-त्वाताम्रपात्रेनिधायच ॥ २७३॥ मध्येधान्यैकशूकस्यत्रिदि-नंधारयेद्बुधः ॥ उद्धृत्यतस्मात्खल्वेचक्षिप्त्वाघर्मेनिधायच ॥ ॥२७४॥ रसैःकुठारच्छिन्नायास्त्रिवेलंपरिभावयेत् ॥ संशोष्य घर्मेक्वाथैश्चभावयेत्त्रिकटोस्त्रिधा ॥२७५॥ वासामृताचित्रका-णांरसैर्भाव्यंक्रमात्त्रिधा॥ लोहपात्रेततःक्षिप्त्वाभावयेत्त्रिफला-जलैः ॥ २७६ ॥ निर्गुंडीदाडिमत्वग्भिर्विसभृंगकुरंटकैः ॥ प-

लाशकदलीद्रावैर्बीजकस्यशृतेनवा ॥२७७॥ नीलिकालंबुषाद्रावैर्बब्बूलफलिकारसैः॥ त्रिस्त्रिर्लेयथालाभंभावयेदेभिरौषधैः ॥ २७८॥ ततःप्रातर्लिहेत्क्षौद्रघृताभ्यांकोलमात्रकम् ॥ पलमात्रंवराक्काथंपिबेदस्यानुपानकम् ॥२७९॥ मासत्रयंशीलितंस्याद्वलीपलितनाशनम् ॥ मंदाग्निंश्वासकासौचपांडुताकफमारुतौ ॥२८०॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तंहन्यादेतन्नसंशयः॥ वातास्रंमूत्रदोषांश्चग्रहणींतोयजांरुजम् ॥ २८१ ॥ अंडवृद्धिंजयेदेतच्छिन्नासत्त्वमधुप्लुतम् ॥ बलवर्णकरंवृष्यमायुष्यंपरंस्मृतम् ॥२८२॥ कूष्मांडंतिलतैलंचमाषान्नंराजिकातथा॥ मद्यमम्लरसंचैवत्यजेल्लोहस्यसेवकः ॥ २८३ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने मध्यमखंडे रसकल्पना नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अर्थ–शुद्धपारा १ भाग तथा शुद्ध गंधक २ भाग दोनोंको खरलमें डालके कजली करै इसके समान पोलाद लोहका चूर्ण लेकर उस कजलीमें मिलाय एक प्रहरपर्यंत खरल करके घी-वारके रसमें तीन दिनपर्यंत खरल करे। पश्चात् उस औषधमेंसे गरम २ अत्यंत धूआँ निकलने लगे तब उसका गोला करके तांबेके बासनमें रखके उसको धानकी राशिमें गाड देवे। तीन दिनके बाद चौथे दिन निकालके उस गोलेका चूर्ण कर धूपमें रखके वनतुलसीके रसकी १ देय। फिर सोंठ कालीमिरच और पीपल इनका पृथक् २ काढा करके एक २ की तीन १ देवे। पश्चात् अडूसा गिलोय और चित्रक इन तीनोंका पृथक् २ रस निकाल क्रमसे तीन १ देय। पीछे इस रसायनको लोहकी कडाहीमें डालके आगे लिखी हुई औषधोंकी पुट देवें। १ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ निर्गुंडी ५ अनारकी छाल ६ भसीडा (कमलकंद) ७ ८ पियावांसा ९ पलाश १० केलाका कंद ११ बिजेसार १२ नीलपुष्पी १३ मुंडी और १४ बबूलकी छाल इन चौदह औषधोंका पृथक् २ रस निकाल क्रमसे एक एकके रसकी तीन पुट देवे पश्चात् इस रसायनको, कोल प्रमाण सहत और घी एकत्र मिलाय उसमें डालके सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल त्रिफलाका काढा १ पल पीवे इसप्रकार इस रसायनको तीन महीने सेवन करे तो देहमें अत्यंत पुरुषार्थ हो सफेद बाल काले होवें सहत और पीपलके साथ लेवे तो मंदाग्नि

पांडुरोग कफवायु ये दूर होवें। गिलोयसत्वके साथ मिलायके लेवे तो वात मूत्रदोष जलसे उत्पन्न हुई संग्रहणी अंडवृद्धि ये रोग दूर होवें। यह रसायन बल कांतिकर्त्ता स्त्रीगमनविषयमें इच्छा देय है तथा आयुष्यकी वृद्धिकरे इस रसके सेवन करनेवालेको पेठा तिल्लीका तेल उडद राई सहत खट्टे पदार्थ ये संपूर्ण खाना मना है।

इति श्रीशार्ङ्गधरे माथुरीभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

क्षेपकश्लोकाः

जैपालंरहितंत्वगंकुररसज्ञाभिर्मलेमाहिषेनिक्षिप्तंत्र्यहमुष्णतोयविमलंखल्वेसवासोर्दितम् ॥ लिप्तंनूतनखर्परेषुविगतस्नेहंरजःसंनिभंनिंबूकांबुविभावितंचबहुशःशुद्धंगुणाढ्यंभवेत् ॥ १ ॥

अर्थ-जमालगोटेके बीज लेकर उनके ऊपरकी छाल निकाल अंकुरके भीतरकी जिह्वाको दूरकर कपडेमें पोटली बाँधके तीन दिन भैंसके गोबरमें रक्खे। चौथे दिन निकालके उस जमालगोटेको गरम जलसे धोयडाले। फिर उसको दूसरे उत्तम कपडेमें बाँधके कपडेसहित खरल करे। जब बारीकचूर्ण होजावे तब निकालके नए खिपडेपर उसको पोत देवे तो वह चिकनाईरहित होकर धूलके समान होजावेगा। फिर इसको नींबूके रसकी दो पुट देवे तो वह शुद्ध जमालगोटा विशेष गुण करनेवाला होता है।

बच्छनाग वा सिंगीमुहराविषकी शुद्धि।

विषंतुखंडशःकृत्वावस्त्रखंडेनबंधयेत् ॥ गोमूत्रमध्येनिक्षिप्यस्थापयेदातपेत्र्यहम् ॥ २ ॥ गोमूत्रंचप्रदातव्यंनूतनंप्रत्यहंबुधैः ॥ त्र्यहेऽतीतेसमुद्धृत्यशोषयेन्मृदुपेषयेत् ॥ ३ ॥ शुध्यत्येवंविषंतत्प्रयोग्यंभवतिचार्तिजित् ॥

अर्थ-बच्छनाग विषके टुकडे करके उसकी कपडेमें पोटली बाँधके एक घडेमें डूब जावे इस माफिक गोमूत्र भरके उसको तीन दिन धूपमें रखके धूपदेवे और नित्य पुराणे गोमूत्रको निकाल लिया करे; उसमें नवीन गोमूत्र भरदिया करे। फिर चौथे दिन उस बच्छनागको बाहर निकालके धूपमें सुखाय लेवे। फिर बारीक चूर्ण करे तो उत्तम शुद्ध रोगदूरकर्त्ता होय बच्छनाग और सिंगिया विषमें केवल नामभेद है।

१ सवस्त्र खरल करनेका यह प्रयोजन है, कि वह कपडा उन जमालगोटोंकी चिकनाई को सोख लेवे।

विषशोधनका दूसरा प्रकार ।

खंडीकृत्यविषंवस्त्रपरिबद्धंतुदोलया ॥ ४ ॥ अजापयसिसंस्वि न्नंयामतःशुद्धिमाप्नुयात् ॥ अजादुग्धैर्भावितस्तुगव्यक्षीरेण शोधयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ - बच्छनाग विषके टुकडे करके कपडेकी पोटलीमें बाँधके दोलायंत्र करके बकरीके दूधमें एकप्रहर पर्यंत औटावे यदि बकरीका दूध न मिले तो गौके दूधमें औटावे तो शुद्ध होवे परंतु यह औरभी याद रहे कि १ तोले बच्छनागको सेरभर दूधमें औटावे और मंदाग्निसे पचन करावे ।

इति शार्ङ्गधरसंहितास्थद्वितीयखण्डं संपूर्णम् ।

श्रीः ।

शार्ङ्गधरसंहिता.

भाषाटीकासमेता ।

(तृतीयखण्ड ३.)

प्रथमोऽध्यायः १.

प्रथम स्नेहपानविधि ।

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तोघृतंतैलंवसातथा ॥
मज्जाचतंपिबेन्मर्त्यःकिंचिदभ्युदितेरवौ ॥ १ ॥

अर्थ-स्नेह चार प्रकारका है । जैसे घी तेल वसा (चरबी) मज्जा (हड्डीके भीतरका तेल) ये चार स्नेह यत्किंचित्सूर्योदय होनेपर पीने चाहिये ।

स्थावरोजंगमश्चैवद्वियोनिःस्नेहउच्यते ॥
तिलतैलंस्थावरेषुजंगमेषुघृतंवरम् ॥ २ ॥

अर्थ-फिर स्नेह दो प्रकारका है एक स्थावर (जो वृक्षादिकसे उत्पन्न हो) और दूसरा जंगम (जो पशुमनुष्यादिकसे प्रगट होवे) स्थावर पदार्थोंके स्नेह अनेक हैं तिनमें तिलोंका तेल श्रेष्ठ है और जंगम पदार्थोंमें घृत आदि शब्दसे वसादिक स्नेह अनेक हैं उन्होंमें घी श्रेष्ठ है । इसप्रकार स्नेहके दो भेद जानने ।

स्नेहके भेद ।

द्वाभ्यांत्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतोमहान् ॥

अर्थ-घी और तेल दोनोंको एकत्र करनेसे उसकी यमक संज्ञा है । घी तेल और वसा (मांसका तेल) ये तीन एकत्र होनेसे उसको त्रिवृत कहतेहैं । और घी तेल मांस स्नेह तथा वसा ये चार स्नेह एकत्र होनेसे उसको महान् कहते हैं । इसप्रकार स्नेहके ये तीन भेद जानने चाहिये ।

---

१ मांसकी अपेक्षा अष्टगुण घी है इस वास्ते प्रथम घृत कहा है । तथा घृतमें यह गुण अधिक है कि जिसके साथ रसका संयोग करो उसके गुणोंको करे और अपने गुणोंको भी नहीं त्यागे इस वास्ते प्रथम घृतको धरा है ।

स्नेहपीनेका काल ।

पिबेत्त्र्यहंचतुरहंपंचाहंषडहंतथा ॥ ३ ॥

अर्थ–घी तीन दिन, तेल चार दिन, मांसस्नेह पांच दिन और हड्डीका तेल छः दिन पीवै। इसप्रमाण क्रमसे घृतादि स्नेह पीनेका क्रम जानना ।

स्नेहका सात्म्य कितने दिनमें होना ।

सप्तरात्रात्परंस्नेहःसात्मीभवतिसेवितः ॥

अर्थ–सातदिनके पश्चात् घृतादिक स्नेह पीनेसे आहारके समान सात्म्य होताहै फिर उसमें गुण और अवगुण कुछ नहीं होता ।

स्नेहकी स्थलविशेषमें योजना ।

दोषकालाग्निवयसांबलंदृष्ट्वाप्रयोजयेत् ॥ ४ ॥
हीनांचमध्यमांज्येष्ठांमात्रांस्नेहस्यबुद्धिमान् ॥

अर्थ–वातादिक दोष काल अग्नि अवस्था इनका बलाबल विचारके घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा हीन (दो कर्ष) मध्यम (तीन कर्ष) और ज्येष्ठ (एक पल) इनका तारतम्य देखके योजना करनी चाहिये ।

स्नेहकी मात्राका प्रमाण त्यागके स्नेहपीनेके दोष ।

अमात्रयातथाकालेमिथ्याहारविहारतः ॥ ५ ॥
स्नेहःकरोतिशोफार्शस्तंद्रानिद्राविसंज्ञताः ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीनेके कहेहुए परिमाणको त्यागकर न्यूनाधिक पीनेसे अथवा पीनेके काल त्यागके पहले या पीछे पीवे अथवा घृतादिक स्नेह पीकर मिथ्याहार[1] और मिथ्याविहार[2] करनेसे सूजन बवासीर तंद्रा निद्रा और संज्ञानाश होते हैं । इसवास्ते यथार्थ समयमें ठीक २ स्नेहमात्राका सेवन करे ।

दीप्ताग्निमध्यमाग्नि और अल्पाग्निमें स्नेहकी मात्रा देनेका प्रमाण ।

देयादीप्ताग्नयेमात्रास्नेहस्यपलसंमिता ॥ ६ ॥
मध्यमायात्रिकर्षास्याज्जघन्यायाद्विकार्षिकी ॥

---

१ अकालमें थोडा अथवा बहुत भोजन करना तथा अपनी प्रकृतिको जो पदार्थ अच्छा न लगे उसको भक्षण करना तथा देशविरुद्ध अथवा कालविरुद्ध पदार्थ तथा संयोगाविरुद्ध पदार्थोंका भक्षण करना मिथ्याहार कहाता है ।

२ जिस कर्मको करनेकी सामार्थ्य न होनेपरभी बलात्कार करना उसको मिथ्याविहार जानना ।

अर्थ-जिस मनुष्यकी दीप्ताग्नि है उसको घृतादिक स्नेहकी एक पल मात्रा देवे । मध्यमाग्नि है उस मनुष्यको तीन कर्ष प्रमाण देवे और जिसकी मंदाग्नि है उस मनुष्यको दो कर्ष प्रमाण स्नेहकी मात्रा देनी चाहिये ।

स्नेहकी मात्राओंका भेद ।

अथवास्नेहमात्राःस्युस्तिस्रोन्याःसर्वसंमताः ॥ ७ ॥
अहोरात्रेणमहतीजीर्यत्यह्नितुमध्यमा ॥
जीर्यत्यल्पादिनार्धेनसाविज्ञेयासुखावहा ॥ ८ ॥

अर्थ-संपूर्ण वैद्योंको मान्य ऐसे घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा तीन हैं उनको कहते हैं जो मात्रा आठ प्रहरमें पचे उसको महती अर्थात् बडी मात्रा कहते हैं। इसे वह एक पलकी होती है। जो मात्रा एक दिनमें पचे उसको मध्यम कहते हैं, यह तीन कर्षकी जाननी । और जो मात्रा दो प्रहरमें पचे उसको अल्प अर्थात् छोटी मात्रा कहते हैं। यह दो कर्षकी मात्रा सुखकी देनेवाली है ।

अल्पादिमात्राओंके गुण ।

अल्पास्याद्दीपनीवृष्यावातदोषेसुपूजिता ॥
मध्यमास्नेहनीज्ञेयाबृंहणीभ्रमहारिणी ॥ ९ ॥
ज्येष्ठाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेमें जो कर्षप्रमाणकी अल्प मात्रा है यह जठराग्निको प्रदीप्त करके स्त्रीसंगमें इच्छा प्रगट करती है तथा वातादिक दोषोंके अल्प प्रकोपका नाश करे । तीन कर्षकी जो मध्यम मात्रा है वह देहको पुष्ट करके धातुकी वृद्धि करे तथा भ्रमको दूर करे । और पल प्रमाणको जो ज्येष्ठ मात्रा है वह कुष्ठरोग विषदोष उन्माद भूतादिक ग्रह तथा अपस्मार इन रोगोंको दूर करे।

दोषोंमें अनुपानविशेष ।

केवलंपैत्तिकेसर्पिर्वातिकेलवणान्वितम् ॥ १० ॥
पेयंबहुकफेवापिव्योषक्षारसमन्वितम् ॥

अर्थ-पित्तमें केवल घी पीनेको देवे । बादीका कोप होनेसे घीमें सैंधानमक मिलायके देवे । कफका कोप होय तो व्योष (सोंठ मिरच पीपल) और जवाखार इनका चूर्ण कर घीमें मिलायकेपिलावे ।

घीपिलानेयोग्य प्राणी ।

रूक्षक्षतविषार्तानांवातपित्तविकारिणाम् ॥ ११ ॥

हीनमेधास्मृतीनांचसर्पिःपानंप्रशस्यते ॥

अर्थ–रूक्ष उरःक्षतरोगी तथा विषदोष इन करके पीडित है शरीर जिनका ऐसे मनुष्योंको तथा जिन मनुष्योंको वात पित्तका विकार है उनको एवं हीन है धारणारूप और स्मरणरूप बुद्धि जिनकी इतने मनुष्योंको घृतपान उत्तम कहा है ।

तैल पिलानेयोग्य रोगी ।

कृमिकोष्ठानिलाविष्टाःप्रवृद्धकफमेदसः ॥ १२ ॥
पिबेयुस्तैलसात्म्यायेतैलंदीप्ताग्नयस्तुये ॥

अर्थ–जिनके उदरमें कृमिविकार है, बादी करके व्याप्त है शरीर जिनका, अत्यन्त बढा हुआ है कफ और मेद जिन्होंके, ऐसे मनुष्योंको तेल पिलावे । एवं जिनकी प्रकृतिको तेल रुचे अर्थात् झिलता हो उनको और प्रदीप्ताग्निवाले मनुष्योंको तेल पिलाना चाहिये ।

वसा (मांसस्नेह) पिलानेयोग्य रोगी ।

व्यायामकर्षिताःशुष्करेतोरक्तमहारुजः ॥ १३ ॥
महाग्निमारुतप्राणावसायोग्यानराःस्मृताः ॥

अर्थ–मल्लादि युद्ध (दंडकसरत कुस्ती आदि) तथा धनुष आदिका खींचना इन करके पीडित है शरीर जिन्होंका, क्षीण है वीर्य तथा रक्त जिनका, देहमें घोर है पीडा जिनके, तथा अग्नि और वायु तथा बल हो अधिक जिनके ऐसे मनुष्योंको बसा (मांसका स्नेह) पीने योग्य जानने चाहिये ।

मज्जापिलानेयोग्य रोगी ।

क्रूराशयाःक्लेशसहावातार्तादीप्तवह्नयः ॥ १४ ॥
मज्जानंचपिबेयुस्तेसर्पिर्वासर्वतोहितम् ॥

अर्थ–करडा है कोष्ठ जिनका, दुःख सहन करता, तथा जो बादीसे पीडित है, एवं प्रदीप्त है अग्नि जिनकी, ऐसे मनुष्योंको मज्जा (हड्डीका तेल) अथवा घी पिलानेसे देहको पुष्ट करता देता है ।

स्नेहपीनेमें कालनियम ।

शीतकालेदिवास्नेहमुष्णकालेपिबेन्निशि ॥ १५ ॥

---

१ जिस मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त है वायु शरीरमें जैसा वर्तना चाहिये ऐसा वर्तता हो अग्निके तथा हो अन्नका पचन करता है इसीसे अग्नि और वायु ये शक्तिके देनेवाले हैं यदि ये अनुकूल होंवें तो मांसका स्नेह पचे अन्यथा नहीं पचे ।

२ आम अग्नि पक्व मूत्र इनके आशय यकृत् और प्लीहा छः स्थान तथा हृदय उंडुक और फुप्फुस ये नौ स्थानोंको कोष्ठ कहते हैं ।

वातपित्ताधिकेरात्रौवातश्लेष्माधिकेदिवा ॥

अर्थ–शीतकालमें घृतादिक स्नेह दिनमें पीवे, गरमीकी ऋतुमें वात पित्त प्रबल होनेसे रात्रिके समय पीवे, तथा कफ और बादी जिनके प्रबल हो वे घृतादिस्नेह दिनमेंही पीवे। इसप्रकार स्नेहपानका क्रम जानना।

स्थलविशेषमें स्नेहोंकी योजना।

नस्याभ्यंजनगंडूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणे ॥ १६ ॥
तैलंघृतंवायुंजीतदृष्ट्वादोषबलाबलम् ॥

अर्थ–नस्य (नाकमें डालना) अभ्यंजन (देहमें मालिश करना) गंडूष (कुरले करना) तथा मस्तक कर्ण और नेत्रोंमें तर्पणमें वातादि दोषोंका बलाबल विचारके वैद्य तेल अथवा घीकी योजना करे।

स्नेहोंके पृथक् २ अनुपान।

घृतेकोष्णंजलंपेयंतैलेयूषःप्रशस्यते ॥ १७ ॥
वसामज्ज्ञोःपिबेन्मंडमनुपानंसुखावहम् ॥

अर्थ–घी पीकर उसपर गरम जल पीवे एवं तेल पीकर उसके ऊपर यूष[१] पीवे। मांसस्नेह तथा हड्डीका तेल पीकर उसके ऊपर मंड[२] पीवे तो सुखकारी होय। इसप्रकार स्नेहोंके अनुपान जानने।

भातके साथ स्नेहपिलानेयोग्य।

स्नेहद्विषःशिशून्वृद्धान्सुकुमारान्कृशानपि ॥ १८ ॥
तृष्णातुरानुष्णकालेसहभक्तेनपाययेत् ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेहोंसे द्वेष है जिनको, तथा बालक वृद्ध और सुकुमार (नाजुक) मनुष्य तथा तृषाकरके पीडित ऐसे मनुष्योंको गरमीकी ऋतुमें भातके साथ घृतादिक स्नेह पिलावे।

स्नेहके विना यवागूसे सद्यः स्नेहन होनेवाले।

सर्पिष्मतीबहुतिलायवागूःस्वल्पतंडुला ॥ १९ ॥
सुखोष्णासेव्यमानातुसद्यःस्नेहनकारिणी ॥

अर्थ–तिलोंको कूटकर उनमें थोडेसे चावल मिलाय घी और पानी डालके चूल्हे पर चढायके औटावे। जब चावल सीजजावें और लहपसीके समान पतली होजावे उसको

१ यूषका बनाना मध्यखंडमें लिख आए हैं सो देख लेना।
२ भातके मांडको मंड कहते हैं। इसकी विधि द्वितीय खंडमें काढोंके प्रकरणमें लिखी है।

यवागू कहते हैं । इस यवागूको सुहाती २ गरम २ पीनेसे सद्यः स्नेहन करनेवाली जाननी ।

धारोष्णदूधसे तत्काल धातु उत्पन्नहोवे ।

शर्कराचूर्णसंभृष्टेदोहनस्थेघृतेतुगाम् ॥ २० ॥
दुग्ध्वाक्षीरंपिबेदुष्णंसद्यःस्नेहनमुच्यते ॥

अर्थ–मिश्रीको पीसके घीमें मिलावे । फिर इस घीको थोडा गरम कर दूध निकालनेके बरतनमें डाले । फिर उस बरतनमें गौका दूध निकाले और उसी समय गरमागरम पीवे तो सद्यः स्नेहन होवे ।

मिथ्या आचारसे न पचे स्नेहका यत्न ।

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वायस्यस्नेहोनजीर्यति ॥ २१ ॥
विष्टभ्यवापिजीर्येतवारिणोष्णेनवामयेत् ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीकर उसपर व्यायामादिक परिश्रम होनेसे तथा कफकारी पदार्थ भोजनमें आनेसे वह स्नेह नहीं पचता है अथवा अत्यंत पीनेसे नहीं पचता अथवा मलका अवरोध करके पचे । ऐसे मनुष्योंको गरमजल पिलायके उलटी करावे तो स्नेहाजीर्णका दोष दूर होवे ।

स्नेहजन्य अजीर्णका यत्न ।

स्नेहस्याजीर्णशंकायांपिबेदुष्णोदकंनरः ॥ २२ ॥
तेनोद्गारोभवेच्छुद्धोभक्तंप्रतिरुचिस्तथा ॥

अर्थ–घृतादि स्नेह पीकर अजीर्ण होनेकी शंका होनेसे उसपर गरम जल पीवे तो शुद्ध उत्तम डकार आकर अन्नपर इच्छा जाननेसे अजीर्ण दूर हुआ ऐसा जाने ।

स्नेहअजीर्णका द्वितीय यत्न ।

स्नेहनपैत्तिकस्याग्निर्यदातीक्ष्णतरीकृतः ॥ २३ ॥
तदास्योदीरयेत्तृष्णांविषमांतस्यपाययेत् ॥
शीतंजलंवामयेच्चपिपासातेनशाम्यति ॥ २४ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यकी पित्तकी प्रकृति होती है उस मनुष्यकी अग्नि घृतादिक स्नेह पीनेसे अत्यंत तीक्ष्ण होकर तृषाको अत्यंत बढाती है । ऐसी अवस्थामें शीतल जल पिलाना और वमन कराना चाहिये जिससे तृषा शांत होवे ।

स्नेहपानके अयोग्य मनुष्य ।

अजीर्णीवर्जयेत्स्नेहमुदरीतरुणज्वरी ॥

दुर्बलोरोचकीस्थूलोमूर्च्छार्तोमदपीडितः ॥ २५ ॥
दत्तबस्तिर्विरिक्तश्चवांतितृष्णाश्रमान्वितः ॥
अकालप्रसवानारीदुर्दिनेचविवर्जयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ–अजीर्णका विकार और उदररोगहै जिसके,तथा तरुणज्वर दुर्बल अरुचि रोगी,स्थूल मनुष्य मूर्च्छा और मद इन करके पीडित, बस्तिकर्म कियाहुआ, तथा जिसको दस्त होते हों, या विरेचन लिया हो, वमन तथा प्यास इन करके युक्त, एवं प्रसूत होनेके कालको छोडकर अन्य कालमें प्रसूता स्त्री इतने रोगियोंको दुर्दिनमें कोईसा घृतादि स्नेहपान नहीं करना चाहिये ।

स्नेहपान योग्य मनुष्य ।

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचिंतकाः॥ वृद्धाबालाःकृशा रूक्षाःक्षीणास्राःक्षीणरेतसः ॥ २७ ॥ वातार्तितिमिरार्तायेतेषां स्नेहनमुत्तमम् ॥

अर्थ–औषधाधिक करके जिनका पसीना निकला है ऐसे शोधन किये हुए मनुष्य,मद्य पीनेवाले, स्त्रीमें आसक्त, परिश्रम कर चुके हों, चिन्ता करके व्याप्त, वृद्ध, बालक, कृश, रूक्ष, क्षीण हैं रुधिर और धातु (वीर्य) जिन्होंके, वादीसे पीडित और तिमिर रोगसे व्याप्त ऐसे प्रकारके मनुष्य घृतादिक स्नेह पीनेके योग्य हैं ऐसा जानना ।

सम्यक्स्नेहपानके लक्षण ।

वातानुलोम्यंदीप्तोग्निर्वर्चःस्निग्धमसंहतम् ॥ २८ ॥ मृदुस्निग्धांगताग्लानिःस्नेहोऽवेंगोऽथलाघवम् ॥ विमलेंद्रियतासम्यक्स्निग्धेरूक्षेविपर्ययः ॥ २९ ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीनेसे अंगकी रूक्षता दूर होकर मनुष्य उत्तम स्निग्ध होता है उसके लक्षण–वायुका अनुलोमन होवे, अग्नि प्रदीप्त हो, मल स्निग्ध तथा साफ होय,शरीर नम्र सचिक्कण और ग्लानिरहित होता है।घृतादि स्नेहोंके सेवन न करनेसे उनको उपद्रव नहीं होते, शरीर हलका होवे तथा इन्द्री निर्मल होवे इस प्रकार उत्तम स्नेहपान गुण करता है। एवं रूक्ष मनुष्य ऊपर कहे हुए लक्षणोंसे विपरीत लक्षणवाला होता है अर्थात् शरीरमें स्नेह करके स्नेह न होनेसे जो रूक्ष होता है उसके विपरीत लक्षण होते हैं ।

अत्यन्तस्नेहपानके उपद्रव।

भक्तद्वेषोमुखस्रावोगुदेदाहःप्रवाहिका ॥
तंद्रातिसारःपांडुत्वंभृशंस्निग्धस्यलक्षणम् ॥ ३० ॥

अर्थ–जो मनुष्य घृतादिक स्नेह बहुत पीता है। उसके लक्षण–भोजनमें अप्रीति मुखसे लारका गिरना, गुदामें दाह होना, प्रवाहिका, नेत्रोंमें तन्द्रा, अतिसार और देह पीला पड जावे ये लक्षण बहुत स्नेहपान करनेके जानने।

रूक्षको स्निग्ध और स्निग्धको रूक्ष करना।

रूक्षस्यस्नेहनंस्नेहैरतिस्निग्धस्यरूक्षणम् ॥
श्यामाकचणकाद्यैश्चतक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥ ३१ ॥

अर्थ–रूक्षमनुष्यको स्निग्ध पदार्थ जैसे तत्काल मक्खन निकाली हुई छाछ, तिलका कल्क, चूर्ण करके स्निग्ध करे। एवं स्निग्ध मनुष्यको रूक्षपदार्थ जैसे सामखिया और चने आदिसे रूक्ष करना चाहिये।

स्नेहादिकसेवनके गुण।

दीप्ताग्निःशुद्धकोष्ठश्चपुष्टधातुर्जितेंद्रियः ॥
निर्जरोबलवर्णाढ्यःस्नेहसेवीभवेन्नरः ॥ ३२ ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेहोंके सेवन करनेसे मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त होती है, कोठा शुद्ध होता है, शरीरकी रसादिक धातु पुष्ट होती हैं। वह मनुष्य जितेन्द्री होवे वृद्धावस्थारहित तथा बल कांति इनकरके युक्त होता है। ये गुण स्नेह सेवन करनेसे होते हैं।

स्नेहपानमें वर्ज्य पदार्थ।

स्नेहेव्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान् ॥
दिवास्वप्नमभिष्यंदिरूक्षान्नंचविवर्जयेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ–स्नेह पीनेवाले मनुष्यको परिश्रम करना, अत्यंत शीतल पदार्थ, मलमूत्रादि वेगोंका धारण, जागना, दिनमें सोना, कफकारी पदार्थ तथा रूक्षान्न इतनी वस्तु वार्जित हैं।

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायां चिकित्सास्था उत्तरखंडस्य प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः २.

स्नेहपानानन्तर पसीनेकाढनेकी विधि तहांउसके भेदकहते हैं।

स्वेदश्चतुर्विधःप्रोक्तस्तापोष्मौस्वेदसंज्ञितौ॥
उपनाहोद्रवःस्वेदःसर्वेवातार्तिहारिणः॥१॥

अर्थ–पसीने निकालनेकी विधि चार प्रकारकी है। जैसे–१ तीप २ ऊष्म ३ उपनाह और ४ द्रवं ये चारों बादीकी पीडा दूर करनेवाले हैं।

स्वेदौतापोष्मजौप्रायःश्लेष्मघ्नौसमुदीरितौ॥
उपनाहस्तुवातघ्नःपित्तसंगेद्रवोहितः॥२॥

अर्थ–ताप और ऊष्म इन नामोंवाले जो स्वेद निकालनेके प्रकारहैं वे दोनों कफके नाशक हैं। उपनाह नामक जो स्वेद काढनेका प्रकार है वह बादीका नाश करता है और द्रवसंज्ञक स्वेद निकालनेका जो प्रकार है वह पित्त और वादीको नष्ट करता है।

बादीकीतारतम्यताकेसाथन्यूनाधिकस्वेदकी योजना।

महाबलेमहाव्याधौशीतेस्वेदोमहान्स्मृतः॥
दुर्बलेदुर्बलःस्वेदोमध्येमध्यतमोमतः॥३॥

अर्थ–जिस प्राणीके देहमें घोर बादीका रोग है उसके देहसे शीतकालमें बहुत पसीने निकालने चाहिये। थोडा रोग होय तो देहसे थोडे पसीने निकाले एवं देहमें मध्यम रोग होय तो वैद्य उस रोगीके देहसे मध्यम पसीने निकाले। इसमेंभी देश काल आदिका विचार वैद्यको करना मुख्य है।

रोगविशेषकरके स्वेदविशेषकी योजना।

बलासेरूक्षणःस्वेदोरूक्षस्निग्धःकफानिले॥
कफमेदोवृतेवातेकोष्णगेहंरवेःकरान्॥४॥
नियुद्धंमार्गगमनंगुरुप्रावरणंध्रुवम्॥
चिंताव्यायामभारांश्चसेवेतामयमुक्तये॥५॥

१ वालुकादिकोंकी पोटलीसे शरीरको तपायकर पसीने निकालनेको ताप कहते हैं।
२ काढेआदिका बफारा देकर पसीने निकालनेको ऊष्म कहते हैं।
३ रोगके स्थानपर औषधादिकोंकी पिंडी बाँधके पसीने निकालनेको उपनाह कहते हैं।
४ पतले द्रव्यके योग करके पसीने काढे उसको द्रव कहते हैं।

अर्थ–कफका रोग होनेसे रूक्षपदार्थ जैसे वालुकादिक इनसे अंगका पसीना निकाले। कफवायुके रोगमें स्निग्ध तथा रूक्ष इन दोनों पदार्थोंकरके पसीने निकाले । एवं कफमेदोयुक्त वादीका रोग होय तो जिस घरमें गरमी होय उस जगह बैठकर अंगको सहन होय ऐसी थोडी २ गरमीको सहन करे, तथा सूर्यकी किरण (धूप) खाय, कुस्ती लडे कुछ थोडा मार्ग चले, कम्बल सौड रजाई इत्यादि ओढे, चिंता करे, प्रातःकाल बैठा न रहे, परिश्रम करे तथा किसी एक अंगपर बोझा धारण करे । इतने उपाय पसीने निकालनेको करे तो कफ और मेदोयुक्त वादीका रोग दूर होय ।

जिनके प्रथम पसीने काढना ।

येषांनस्यंविधातव्यंबस्तिश्चापिहिदेहिनाम् ॥
शोधनीयाश्चयेकेचित्पूर्वंस्वेद्याश्चतेमताः ॥ ६ ॥

अर्थ–जो मनुष्य नस्यकर्मके योग्य हैं तथा बस्तिकर्मके योग्य हैं तथा दस्तदेने योग्य हैं इनके मनुष्योंके अंगसे प्रथम पसीने काढकर फिर नस्यादि यत्न करने चाहिये ।

भगंदरादिरोगमें स्वेदनकी आज्ञा ।

स्वेद्याःपूर्वंत्रयोऽपीहभगंदर्यर्शसस्तथा ॥
अश्मर्याश्चातुरोजंतुःशमयेच्छस्त्रकर्मणा ॥ ७ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके भगंदर रोग हो तथा बवासीरवाला और पथरीरोग करके पीडित ऐसे तीन प्रकारके मनुष्योंके अंगका प्रथम पसीना निकालके फिर शस्त्रकर्म करके इन रोगोंको शमन करे । अर्थात् इन रोगोंमें स्वेदन करनेसे वह नम्र होकर शस्त्र कर्मके योग्य हो जाता है ।

पश्चात पसीने निकालनेयोग्य प्राणी ।

पश्चात्स्वेद्यागतेशल्येमूढगर्भगदेतथा ॥
कालेप्रजाताकालेवापश्चात्स्वेद्यानितंबिनी ॥ ८ ॥

अर्थ–जिस स्त्रीके उदरमें गर्भका शूल होवे उसका पतन होनेके पश्चात्, मूढगर्भका पतन होनेके पश्चात्, तथा नौमहिनेके पश्चात्, अथवा नौ महिनके पूर्व प्रसूत होनेसे उस स्त्रीके देहके पसीने निकाले ।

---

१ घृतादिक स्निग्ध और वालुकादिक रूक्ष इन दोनोंकी एकत्र पोटली बनायके देहको सेके । ये संपूर्ण उपाय तापसंज्ञक पसीनेके जानने ।

२ नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्य कर्म कहते हैं ।

३ गुदामें पिचकारी मारनेके कर्मको बस्ति कहते हैं ।

पसीने निकालनेमें देश और काल।

सर्वान्स्वेदान्निवातेचजीर्णाहारेचकारयेत् ॥

अर्थ–ये चारों प्रकारके पसीने मनुष्योंके आहार पचनेके पश्चात् जिस स्थानमें वायुका लेशमात्र न आता होवे। उस जगह करने चाहिये।

पसीने काढनेपर किस मार्गसे दोष दूर होते हैं।

स्वेदाद्धातुस्थितादोषाः स्नेहस्निग्धस्यदेहिनः ॥ ९ ॥
द्रवत्वंप्राप्यकोष्ठांतर्गतायांतिविरेकताम् ॥

अर्थ–औषधादिकों करके मनुष्यके अंगसे पसीने निकालनेसे तथा किसी बडे बरतनमें तेल[१] भरके उसमें मनुष्य बैठनेसे उसके रसादिकधातुओंमें रहनेवाले वातादिक दोष कोष्ठमें जायकर पतले हो गुदाके द्वारा गिरते हैं।

पसीने निकालनेके पश्चात दस्त होनेसे उसकी चिकित्सा।

स्विद्यमानशरीरस्यहृदयंशीतलैःस्पृशेत् ॥ १० ॥
स्नेहाभ्यक्तशरीरस्यशीतैराच्छाद्यचक्षुषी ॥

अर्थ–मनुष्यके पसीने निकालनेसे उस रोगीके दोष पेटमें पतले होकर गुदाके द्वारा निकाले जावें तब उसकी छातीमें चंदनका लेप करे तो प्रकृति स्वस्थ होय। तथा जो मनुष्य तेलमें बैठा हो उसके दोष पतले होकर गुदाके द्वारा निकाले जावें तब नेत्रोंपर कमलके पत्ते अथवा केलाके पत्ते शीतल करनेको रक्खे तो ग्लानि दूर होकर प्रकृति स्वस्थ होवे।

स्वेदके अयोग्य मनुष्य।

अजीर्णीदुर्बलोमेहीक्षतक्षीणःपिपासितः ॥ ११ ॥ अतिसारी रक्तपित्तीपांडुरोगीतथोदरी ॥ मदार्तोगर्भिणीचैवनहिस्वेद्याविजानता ॥ १२ ॥ एतानपिमृदुस्वेदैःस्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥

अर्थ–अजीर्ण दुर्बलता प्रमेह उरःक्षत अत्यंत तृषा अतिसार रक्तपित्त पांडुरोग उदर और मद इनमेंसे कोईसा विकार जिस मनुष्यके होवे वह तथा गर्भिणी स्त्री ये रोगी पसीने काढनेके योग्य नहीं हैं अर्थात् इनके देहसे पसीने न निकाले। यदि ये रोगी पसीने निकालनेसे ही अच्छे होते दीखें तो हलके उपाय करके थोडे पसीने निकाले।

अल्पपसीने निकालनेयोग्यरोगीके अग।

मृदुस्वेदंप्रयुंजीततथाहृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ १३ ॥

---

१ नाभीके नीचे चार अंगुल तेल आवे इतना तेल उस पात्रमें भरके बैठे।

अर्थ—हृदय अंडकोश और नेत्र इनका पसीना होय तो थोडा निकाले ।

अत्यंतपसीनेनिकालनेके उपद्रव ।

अतिस्वेदात्संधिपीडादाहस्तृष्णाक्लमोभ्रमः ॥
पित्तासृक्पिटिकाकोपस्तत्रशीतैरुपाचरेत् ॥ १४ ॥

अर्थ—देहसे अत्यंत पसीने निकालनेसे सर्व संधियोंमें पीडा हो, तृषा, ग्लानि, भ्रम और रक्तपित्त ये इपद्रव हों । तथा देहपर फुन्सी प्रगट होवे । इनके नष्ट करनेको शीतल उपाय करे तो स्वेदके उपद्रव दूर होवें ।

चारप्रकारके पसीनोंमें तापसंज्ञकपसीनेके लक्षण

तेषुतापाभिधःस्वेदोवालुकावस्त्रपाणिभिः ॥
कपालकंदुकांगारैर्यथायोग्यंप्रजायते ॥ १५ ॥

अर्थ—चार प्रकारके पसीने हैं उनमें ताप इस नाम करके पसीना है वह १ वालु २ वस्त्र ३ हाथ ४ खिपडा ५ कपडेकी गेंद और ६ अंगार इन करके वालुकादिक जैसी २ शक्ति है उसी २ प्रकारका उत्पन्न होता है ।

उष्मसंज्ञकपसीनेके लक्षण ।

ऊष्मस्वेदःप्रयोक्तव्योलोहपिंडेष्टिकादिभिः ॥ प्रतप्तैरम्लसिक्तैश्चकायेरल्लकवेष्टिते ॥ १६ ॥ अथवा वातनिर्णाशिद्रव्याध्यायरसादिभिः ॥ उष्णैर्घटंपूरयित्वापार्श्वेछिद्रंनिधायच ॥ १७॥ विमृद्यास्यंत्रिखंडांचधातुजांकाष्ठवंशजाम् ॥ षडंगुलास्यांगोपुच्छांनलींयुंज्याद्विहस्तिकाम् ॥ १८॥ सुखोपविष्टंस्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम् ॥ हस्तिशुंडिकयानाड्यास्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥ १९ ॥ पुरुषायाममात्रांवाभूमिमुत्कीर्यखादिरैः ॥ काष्ठैर्दग्ध्वातथाभ्युक्ष्यक्षीरधान्याम्लवारिभिः ॥ २० ॥ वातघ्नपत्रैराच्छाद्यशयानंस्वेदयेन्नरम् ॥ एवंमाषादिभिःस्विन्नैःशयानःस्वेदमाचरेत् ॥ २१ ॥

---

१ ये छः प्रकार कहे हैं । इनकी क्रिया इस प्रकार है कि खैरके अथवा कणखर लकडीके धुआँ राहित तथा दहकते हुए अंगारे करके उनपर वालूको तपावे फिर उस वालूको अंडके पत्तोंपर रखके उसकी पुडिया बाँधके मनुष्यकी देहको सेके तो अंगोंसे पसीने निकले । यह पसीने निकालनेका एक प्रकार है ।

अर्थ–ऊष्मा इस नाम कर जो पसीना है उसकी क्रिया लोहेका गोला अथवा ईंटको तपाय उसपर थोडा खट्टी पदार्थका छिडकाव करके रोगीको कंबल उढायके उस गोलासे अथवा ईंटसे उस रोगीके अंगोंको सेके तो पसीने निकलै। यह एक प्रकार है। अथवा दशमूलादिक वातनाशक औषधोंके काढेसे अथवा उन औषधोंके रसको गरम कर मिट्टीको गागरमें भरके उस गागरके मुखपर मुद्रा देकर मुखको बंद कर देवे। फिर उस गागरके कूखमें छिद्र कर धातुकी अथवा लकडीकी अथवा बाँसकी दो हाथकी नली बनावे उस नलीमें तीन संधि करे उनका मुख छः अंगुल लंबा और ऊँचा अथवा गौकी पूंछके समान करे। इस नलीका आकार हाथीकी सूंडके सदृश होनेसे इसको हस्तिशुंडिकानाडी कहते हैं। फिर इस नलीको गागरकी कूखमें उस छिद्रमें जडके फसाकर संधियोंको बंद कर देवे। फिर बादीसे पीडित जो मनुष्य उसको स्वस्थ बैठाके देहमें घी अथवा तेलको मालिश करके सोड रजाई अथवा कंबल ओढा उस कपडेके भीतर उस नलीका मुख करके देहसे पसीने निकाले। अथवा मनुष्यके साढेतीन हाथ अथवा चार हाथ लंबी जमीन खोद उसमें खैरकी लकडी भरके जलावे। कोला होजावें तब तत्काल उनको निकालके उस जमीनमें दूध धान्योदक छाछ अथवा काँजी इनसे छिडक कर तथा उस जमीनमें बादीहरण करता औषधोंके पत्ते बिछाय उसपर रोगीके सुलायको रोगीके देहके पसीने निकाले। इसी प्रकार उडदोंको ले उनको थोडेसे उबाल जब अधकचे होजावें तब उनको तपी हुई पृथ्वीमें फैलायके उनके ऊपर अंडके पत्ते आदि वातहारक औषधोंके पत्ते डालके उसपर रोगीको सुलायके ऊपरसे कंबल उढायके अंगके पसीने निकाले। इस प्रकार ऊष्म संज्ञक पसीनेके लक्षण जानने।

उपनाहसंज्ञकस्वेदके लक्षण।

अथोपनाहस्वेदंचकुर्याद्वातहरौषधीः॥ प्रदिह्यदेहंवातार्तंक्षीरमांसरसान्वितैः॥२२॥अम्लपिष्टैःसलवणैःसुखोष्णैःस्नेहसंयुतः॥

---

१ छाछ काँजी इत्यादिक खट्टे पदार्थ।

२ उस गागरके मुखपर डाट देके उसको दहकते हुए कोलोंपर धरे तो उस नलीके रास्ते बाफ उत्तम प्रकारसे बाहर निकले।

३ ताम्र लोह इत्यादि धातुओंकी नली बनावे।

४ अंडके पत्ते आकके पत्ते निर्गुंडी इत्यादिकोंके पत्तोंको वातहर जानने। अथवा अंगारोंपर अपने हाथ गरम २ करके रोगीके अंगोंको सेके तथा कपडेकी गेंद करके अंगारोंपर गरम कर उस गेंदसे रोगीके अंगोंको सेके। अथवा केवल कपडेकोही अंगारोंसे गरम करके उस कपडेसे अंगोंको सेके। इतने अंगारोंको खिपडेमें भर उस खिपडेसे युक्तिके साथ रोगीके अंगमें सेक लगे इस प्रकार रक्खे। इतने उपायोंसे पसीना निकलता है।

अर्थ—उपनाह नामक स्वेदकी क्रिया कहते हैं । दशमूलादि वायुहारक औषधोंको कूटकर चूर्ण कर उसमें दूध और हरिणादिकोंके मांसका स्नेह ये दोनों मिलायके कुछ गरम करके वायुपीडित जो अंग, उस अंगको सहन होय ऐसा गाढा लेप करके वस्त्रादिक पट्टीसे बाँध अंगका पसीना निकाले । अथवा वातहर औषधोंको कूटकर चूर्ण करे उसको छाछमें अथवा काँजीमें पीसके उसमें थोडा सैंधानमक और तिलका तेल मिलाय कुछ गरम करके बादीसे पीडित अंगपर सहता २ गाढा लेप करके वस्त्रादिकसे बाँधकर अंगका पसीना निकाले । इसको उपनाहसंज्ञक क्रिया कहते हैं ।

दूसराप्रकार महाशाल्वणप्रयोग ।

उपग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेनच ॥ २३ ॥
दधिसौवीरकक्षारैर्वीरतर्वादिनातथा ॥
कुलित्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः ॥ २४ ॥
शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः ॥
एरंडमूलबीजैश्चरास्नामूलकशिग्रुभिः ॥ २५ ॥
मिशिकृष्णाकुठेरैश्चलवणैरम्लसंयुतैः ॥
प्रसारिण्यश्वगंधाभ्यांबलाभिर्दशमूलकैः ॥२६॥
गुडूचीवानरीबीजैर्यथालाभंसमाहृतैः ॥
क्षुण्णैःस्विन्नैश्चवस्त्रेणबद्धैःसंस्वेदयेन्नरम् ॥ २७ ॥
महाशाल्वणसंज्ञोऽयंयोगःसर्वानिलार्तिजित् ॥

अर्थ—ग्राम्यमांस[1] आनूपमांस[2] जीवनीयगणकी[3] औषधि गौका दही सौवीर[4] सर्जीखार जवाखार रेहका खार वीरतर्वादिगणकी[5] औषधि कुलथी उडद गेहूँ अलसी तिल सरसों सौंफ देवदारु निर्गुंडी कलौंजी अंडकी जड अंडके बीज रास्ना मूली सहजना हाऊबेर पीपल वनतुलसी पांचो नमक अनारदाना प्रसारिणी असगंध गंगेरनकी छाल दश-मूलकी सब औषधि गिलोय और कौंचके बीज इन संपूर्ण औषधियोंमेंसे जो मिले उ-

१ मुरगा बकरा भेड इत्यादिकोंके मांसको ग्राम्यमांस कहते हैं ।
२ जलमुरगावी बतक चकवा और मछली आदि जलचरोंके मांसको आनूपमांस कहते हैं।
३ जीवनीयगणकी औषधें दूसरे खंडमें लिखी हैं ।
४ कच्चे अथवा पक्के जवोंको कूट तुस निकाल पानी डालके तीन दिन धरा रहने दे उसको सौवीर कहते हैं । इसी प्रकार गेहूँकाभी जानना ।
५ येभी वीरतर्वादि काढेमें देखो ।

सबको लायके कूट डाले । फिर कुछ गरम करके कपडेकी पोटली बाधके उस पोटलीसे रोगीके अंगोंको सेके तो संपूर्ण बादीकी पीडा दूर होय । इस प्रयोगको महाशाल्वण प्रयोग कहते हैं इसप्रकार उपनाहसंज्ञक स्वेदके लक्षण जानने।

द्रवसंज्ञकस्वेदके लक्षण ।

द्रवस्वेदस्तुवातघ्नद्रव्यक्काथेनपूरिते ॥ २८ ॥ कटाहेकोष्ठकेवा-पिसूपविष्टोऽवगाहयेत्॥सौवर्णेराजतेवापिताम्रआयसदारुजे॥२९ कोष्ठकंतत्रकुर्वीतोच्छ्रायेषट्त्रिंशदंगुलम्॥ आयामेनतदेवस्या-च्चतुष्कंस्राणितथा ॥ नाभेःषडंगुलंयावन्मग्नःक्काथस्यधारया॥ ॥ ३० ॥ कोष्ठकेस्कंधयोःसिक्तातिष्ठेत्स्निग्धतनुर्नरः ॥ एवंतै-लेनदुग्धेनसर्पिषास्वेदयेन्नरम् ॥ ३१ ॥ एकांतरेद्व्यंतरेवास्नेहो युक्तोऽवगाहने ॥ शिरामुखैरोमकूपैर्धमनीभिश्चतर्पयेत् ॥३२॥ शरीरेबलमाधत्तेयुक्तःस्नेहावगाहने॥ जलसिक्तस्यवर्धंतेयथामू-लेंऽकुरास्तरोः ॥३३॥ तथाधातुविवृद्धिर्हिस्नेहसिक्तस्यजाय-ते ॥ नातःपरतरःकश्चिदुपायोवातनाशनः ॥ ३४ ॥

अर्थ—द्रव इस नाम करके जो स्वेद है उसकी क्रिया अर्थात् काढनेकी विधि कहते हैं । दशमूलादि वातहारक औषधोंका काढा करके रोगीके देहमें घी अथवा तेलकी मालिश करे । उसको कढाहीमें अथवा ताँबेके बडे पात्रमें बैठायके पूर्वोक्त काढेकी गरमागरम सुहाते २ की धार उस मनुष्यके कंधोंपर डाले । यह धार टूँडी (नाभि) पर छः अंगुलपर्यंत चढे तहांतक डालता रहे । इसी प्रकार तेलकी दूधकी अथवा घीकी धार डाले और उसको घर्मयुक्त करे । इसप्रकार एकदिनका बीच देकर अथवा दो दिन बीचमें देकर करे तो शिराओंके मुखद्वारा रोमोंके छिद्रोंमें होकर तथा नाडीके मार्गोंमें होकर ये स्नेहादि पदार्थ शरीरके अभ्यंतर प्रविष्ट होकर शरीरमें बल उत्पन्न करते हैं इस विषयमें दृष्टांत है कि जैसे वृक्षकी जड़में बारंबार जलसेचन करनेसे वृक्ष बढता है उसी प्रकार तेलादिकोंमें बैठनेसे मनुष्यके रसादि सात धातु बढती हैं और बादीका नाश होता है । इस उपायकी अपेक्षा वायुनाशक दूसरा उपाय नहीं है ।

पसीनेनिकालनेकी अवधि ।

शीतशूलाद्युपरमेस्तंभगौरवनिग्रहे ॥
दीप्तेऽग्नौमार्दवेजातेस्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ३५ ॥

अर्थ—अंगसे सरदी और शूल (दर्द) इनकी शांति होनेपर अंगका स्तंभ तथा भारीपन ये

दूर होनेसे तथा अग्नि प्रदीप्त होनेसे अंगोंमें नम्रता आनेपर रोगीकी देहसे पसीने निकालना बंद करे ।

स्वेदनिकालनेके पश्चात् उपचार ।

सम्यक्स्विन्नंविमर्दितंस्नानमुष्णांबुभिःशनैः ॥
भोजयेच्चानभिष्यंदिव्यायामंचनकारयेत् ॥ ३६ ॥

इति शार्ङ्गधरसंहितायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके अंगसे पसीने निकाले हैं उसको और जिसके देहमें तेलकी मालिश की है उसको धीरे २ गरम जलसे स्नान करावे । कफकारी पदार्थ खानेको न देवे तथा परिश्रम न करे । इसप्रकार द्रवसंज्ञक स्वेदके लक्षण जानने ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितभाषामाथुरीटीकायामुत्तरखंडस्य द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ३.

वमनविरेचनकाल ।

शरत्कालेवसंतेचप्रावृट्कालेचदेहिनाम् ॥
वमनंरेचनंचैवकारयेत्कुशलोभिषक् ॥ १ ॥

अर्थ–शरद्[1] कालमें वसंत[2] कालमें और प्रावृट्[3]कालमें कुशल वैद्य मनुष्यको वमनकी औषध देकर रद करावे और दस्तकारी औषधि (जुलाब) देवे तो प्रकृति ठीकरहे कुशल वैद्यके कहनेसे यह प्रयोजन है कि वमन और विरेचन मूढ वैद्यसे न करावे । क्योंकि मूढ वैद्यद्वारा वमन विरेचन करानेसे प्राणबाधाका भय रहता है ।

वमनकरानेयोग्य रोगी।

बलवंतंकफव्याप्तंहृल्लासार्तिनिपीडितम् ॥ तथावमनसात्म्यंच धीरचित्तंचवामयेत् ॥ २ ॥ विषदोषस्तन्यरोगमंदेऽग्नौश्लीपदेऽर्बुदे ॥ हृद्रोगकुष्ठवीसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषुच ॥३ ॥ विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु ॥ अपस्मारज्वरोन्मादेतथारक्तातिसारिषु ॥ ४ ॥ नासाताल्वोष्ठपाकेषुकर्णस्रावेद्रिजिह्वके ॥

१ तुला वृश्चिक संक्रांतिसे शरत्काल होता है ।
२ कुंभ मीनकी संक्रांतिका वसंतकाल होता है ।
३ वर्षाकालके प्रारंभको प्रावृट्काल कहते हैं । सो मिथुन कर्कसंक्रांतिका जानना ।

गलशुंड्यामतीसारेपित्तश्लेष्मगदेतथा ॥ ५ ॥
मेदोगदेऽरुचौचैववमनंकारयेद्भिषक् ॥

अर्थ–बलवान् मनुष्य जो कफसे व्याकुल है, जिसके मुखसे लार बहती हो, जिसको वमन करना सहजाता हो धीर चित्तवाला, विषदोष, स्तन्यरोग, मंदाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृद्रोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रम, विदारिका, गंडमालाका भेद, अपचीरोग, खाँसी, श्वास, पीनस, अंडवृद्धि, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्ठपाक, कर्णस्राव, अधिजिह्वक, गलशुंडी, अतिसार, पित्त श्लेष्मके रोग, मेदोरोगमें और अरुचि इनमेंसे रोग जिसके होंय, उस रोगीको वैद्य वमन करावे ।

वमनमें अयोग्य प्राणी ।

नवामनीयस्तिमिरीनगुल्मीनोदरीकृशः ॥ ६ ॥ नातिवृद्धोग-
र्भिणीचनचस्थूलःक्षतातुरः॥मदार्तोबालकोरूक्षःक्षुधितश्चनि-
रूहितः ॥ ७ ॥ उदावर्त्यूर्ध्वरक्तीचदुश्छर्दिःकेवलानिली ॥
पांडुरोगीकृमिव्याप्तःपठनात्स्वरघातकः ॥ ८ ॥ एतेऽप्यजी-
र्णव्यथितावाम्यायेविषपीडिताः ॥ कफव्याप्ताश्चतेवाम्यामधु-
कक्वाथपानतः ॥ ९ ॥

अर्थ–तिमिर गोला और उदर इन रोगवाले मनुष्य तथा अतिकृश, अतिवृद्ध, गर्भिणी स्त्री, बडे स्थूल पुरुष, उरःक्षतकरके तथा मद करके पीडित, बालक, रूक्ष, क्षुधित (भूखा), निरूहित (गुदाद्वारा पिचकारी दीनी जिसके), जिसके उदावर्त रोग हो ऊर्ध्वरक्ती जिसको वमन नहीं होती हो जिसके केवल बादीका रोग होय पांडुरोगी, कृमिरोगी, तथा वेदशास्त्रके अत्यंत उच्चस्वर पढनेसे जिसका कंठ बैठगयाहो इतने रोगियोंको वमन नहीं कराना चाहिये, यदि ये रोगी अजीर्ण करके अथवा कफ करके व्याप्त होवें तो इनको मुलहटीकी अथवा महुआकी छालका काढा पिलायके वमन करावे ।

वमनके अयोग्य प्राणी ।

सुकुमारंकृशंबालंवृद्धंभीरुंनवामयेत् ॥

१ ये संपूर्ण रोग प्रथमखंडकी सातवीं अध्यायमें कहे हैं उनसे जानलेना ।
२ रक्तपित्तके कोपकरके जिनके ऊर्ध्व (मुख नासिका आदि होकर) रुधिर गिरे उसको ऊर्ध्व रक्तपित्ती जानना ।

अर्थ–सुकुमार (नाजुक) मनुष्य कृश बालक वृद्ध डरपोक इन पांच मनुष्योंको वमन कर्मी नहीं देनी चाहिये ।

वमनमें विहितपदार्थोंको कहते हैं ।

पीत्वायवागूमाकंठंक्षीरतक्रदधीनि च ॥ १० ॥ असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लिश्यदेहिनः ॥ स्निग्धस्विन्नायवमनं दत्तंसम्यक्प्रवर्तते ॥ ११ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यको वमन करना होवे उसको प्रथम पेट भरके यवागू दूध छाछ अथवा दही पीनेको देवे । जो पदार्थ अपनी प्रकृतिको न भावते हों वे पदार्थ तथा कफकारी पदार्थ खानेको देकर मनुष्योंके दोषोंको उत्क्लेशित करे तो उस मनुष्यको भले प्रकार वमन होवे । जिस मनुष्यने घृतपान और स्वेदकर्म किया है उस मनुष्यको एक दिन बीचमें देकर वमन कराना उत्तम है अर्थात् इस प्रकार करनेसे उत्तम रद्दी होती है ।

वमनमें सहायकपदार्थ ।

**वमनेषुचसर्वेषुसैंधवंमधुवाहितम् ॥
बीभत्संवमनंदद्याद्विपरीतंविरेचनम् ॥ १२ ॥**

अर्थ–जितने वमनकारक प्रयोग उन सबमें सैंधानमक अथवा सहत इनको मिलाके देवे हितकारी है । वमन देवे तो बीभत्स (अरोचक वस्तु) देवे और विरेचनमें रोचक पदार्थ (औषध) देवे ।

वमनप्रयोगमें काढेकरनेका प्रमाण ।

**क्वाथ्यद्रव्यस्यकुडवंश्रपयित्वाजलाढके ॥
अर्धभागावशिष्टंचवमनेष्ववचारयेत् ॥ १३ ॥**

अर्थ–काढेकी औषधी १ कुँडव ले कुछ कूटके उसमें एक आँढक जल डालके औटावे जब आधा जल रह जावे तब उतार छनके वमन वास्ते पीनेको देवे ।

---

१ कृश बालक और वृद्ध इनको वमन न करावे ऐसा प्रथमही लिख आए हैं परंतु निश्चयार्थ फिर लिखा है ऐसे जानना चाहिये ।

२ चावलोंको कूटके उसमें छः गुना जल मिलायके औटावे जब एक जीव होजावे तब उतार लेवे इसको यवागू कहते हैं ।

३ वमन करानेवाली औषधोंमें घी मिलायके वमन देनेको बभित्स वमन कहते हैं ।

४ चार पलोंका कुडव जानना उस कुडवके व्यावहारिक तोले १६ होते हैं ।

५ चार प्रस्थका एक आढक जानना उस आढकके तोले २५६ होते हैं ।

वमनमें काढा पीनेका प्रमाण ।

क्वाथपानेनवप्रस्थाज्येष्ठामात्राप्रकीर्तिता ॥
मध्यमाषण्मिताप्रोक्तात्रिप्रस्थाचकनीयसी ॥ १४ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यको वमन करना है उसको नौप्रस्थे काढा पीना बडी मात्रा जाननी । छः प्रस्थ काढा पीना मध्यम मात्रा है और तीन प्रस्थ काढेकी मात्रा लघुमात्रा जाननी चाहिये ।

वमनमें कल्कादिकोंका प्रमाण ।

कल्कचूर्णावलेहानांत्रिपलंश्रेष्ठमात्रया ॥
मध्यमंद्विपलंविद्यात्कनीयस्तुपलंभवेत् ॥ १५ ॥

अर्थ–कल्क चूर्ण और अवलेह ये तीन २ पल लेना बडी मात्रा कहलाती है । दो पलकी मध्यम मात्रा जाननी तथा एक पलकी छोटी मात्रा जाननी चाहिये ।

वमनमें उत्तम मध्यम और कनिष्ठ वेगोंका प्रमाण ।

वमनेचापिवेगाःस्युरष्टौपित्तांतमुत्तमाः ॥
षड्वेगामध्यवेगाश्चचत्वारस्त्ववरामताः ॥ १६ ॥

अर्थ–इस प्राणीको वमनकारक औषधि देनेसे सातवेग पर्यंत संपूर्ण दोष निकाल कर आठवें वेगमें पित्त निकले तो उत्तम वेग जानने । उसी प्रकार पांच वेग पर्यंत दोष निकलके छठे वेगमें पित्त पडनेसे वे मध्यम वेग जानने । एवं तीन वेग पर्यन्त दोष निकलके चतुर्थ वेगमें पित्त निकले तो उस प्राणीको वमनके हीनवेग हुए ऐसे जानना ।

वमनके विषयमें प्रस्थका प्रमाण ।

वमनेचविरेकेचतथाशोणितमोक्षणे ॥
सार्धत्रयोदशपलंप्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥ १७ ॥

अर्थ–वमन होनेके विषयमें तथा दस्त होनेमें जो औषध प्रस्थप्रमाण लेनीकही है वहांपर १३॥ साढेतेरह पलका प्रस्थ लेना चाहिये और फस्त खोलनेमेंभी १३॥ पलका प्रस्थ लेना ऐसी शास्त्राज्ञा है ।

वमनमें औषधविशेषकरके कफादिकका जय ।

कफंकटुकतीक्ष्णेनपित्तंस्वादुहिमैर्जयेत् ॥

---

१ वमन विषयमें जो काढा लेना कहा है तहां १३॥ पलका एक प्रस्थ जानना इस हिसाबसे नौ प्रस्थका काढा लेवे ।
२ सूखी औषधमें जल डालके चटणीके समान पीसे उसको कल्क कहते हैं ।

सस्वादुलवणाम्लोष्णैःसंसृष्टंवायुनाकफम् ॥ १८ ॥

अर्थ—कटु और तीक्ष्ण[१] औषधोंसे कफको जीत मधुर[२] और शीतल औषधोंसे पित्त तथा मधुर क्षार अम्ल और उष्ण औषधोंसे वातमिश्रित कफको जीते ।

कफादिकोंको वमनद्वारा निकालनेवाली औषध ।

कृष्णाराठफलैःसिंधुकफेकोष्णजलैःपिबेत् ॥ पटोलवासानिंबै-श्चपित्तेशीतजलंपिबेत् ॥ १९ ॥ सश्लेष्मवातपीडायांसक्षीरंम-दनंपिबेत् ॥ अजीर्णेकोष्णपानीयंसिंधुंपीत्वावमेत्सुधीः ॥२०॥

अर्थ—कफ दोषमें पीपल मैनफल और सैंधानमक इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पिलावे तो वमनके साथ कफ निकले । तथा पित्तदोषमें पटोलपत्र अडूसा और कटुनिंबके पत्तोंका चूर्ण करके शीतल जलमें मिलायके पीवे तो वमनमें पित्त निकले । तथा कफवायुकी पीडा होय तो मैनफलके चूर्णको दूधमें डालके पीवे तो वमन करनेसे कफवायुकी पीडा दूर होवे । तथा अजीर्णमें गरम जलमें सैंधानमक डालके पीवे तो वमन होनेसे इस प्राणीका अजीर्ण दूर होवे ।

वमन करनेमें बाह्योपचार ।

वमनंपाययित्वाचजानुमात्रासनेस्थितम् ॥
कंठमेरंडनालेनस्पृशंतंवामयेद्भिषक् ॥ २१ ॥
ललाटंवमतःपुंसःपार्श्वौद्वौचप्रबोधयेत् ॥

अर्थ—मनुष्यको वमनकारक औषधि देकर घोंटू २ ऊँचे आसनपर बैठावे । और अंडकी नालको लेकर उसको मुखमें डालके हलके हाथसे जैसे कफको स्पर्श करे इस प्रकार कंठको सिरावे इस प्रकार भीतर बाहरसे कंठको सिराय २ के वैद्य मनुष्यको रद्द करावे तथा उस रद्द करनेवालेके मस्तकको तथा उसकी दोनों कूख (पसलियोंको) धीरे २ हाथसे सिराना चाहिये ।

उत्तम वमन न होनेसे उपद्रव ।

प्रसेकोहृद्ग्रहःकोढः[३]कंडूर्दुश्छर्दितान्द्भवेत् ॥ २२ ॥

---

१ सोंठ मिरच पीपल राई आदि तीक्ष्ण औषध कहलाती हैं ।
२ अनार मुनक्का दाख मिश्री आदि मधुर औषधि जाननी ।
३ मोहारकी मक्खीके काटनेसे जैसा चकत्ता देहमें हो जाते हैं उसी प्रकारके चकते उठ क्षणमात्रमें नष्ट होजावें और उनमें खुजली होकर लालवर्ण हो जावें उसे कोढ कहते हैं ।

अर्थ–वमनका उत्तमयोग न होनेसे मुखसे लार गिरे हृदयमें पीडा होवे देहमें कोढ और खुजली होय।

अत्यंतवमनहोनेके उपद्रव।

अतिवांतेभवेत्तृष्णाहिक्कोद्गारौविसंज्ञता॥
जिह्वानिःसर्पणंचाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंहतिः॥ २३॥
रक्तच्छर्दिःष्ठीवनंचकंठेपीडाच जायते॥

अर्थ–मनुष्यको अत्यंत वमन होनेसे अत्यंत तृषा लगे, हिचकी डकार आना, संज्ञाका नाश जीभ मुखसे बाहर निकलपडे, नेत्र फटेसे होकर चंचल होवें, भ्रम, ठोडीका जकडना, अथवा, पीडाका होना, मुखसे रुधिरका गिरना, वारंवार थूकना, तथा कंठमें पीडा ये उपद्रव अत्यंत वमन होनेसे होतेहैं।

अत्यंतवमनहोनेकी चिकित्सा।

वमनस्यातियोगेनमृदुकुर्याद्विरेचनम्॥ २४॥

अर्थ–यदि मनुष्यको अत्यंत रद्द होती होवे तो उसको हलकासा जुल्लाब करावे।

रद्दकरते करते जीभ भीतर चलीगईहो उसकी चिकित्सा।

वमनांतःप्रविष्टायांजिह्वायांकवलग्रहः॥
स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः॥ २५॥
फलान्यम्लानिखादेयुस्तस्यचान्येऽग्रतोनराः॥

अर्थ–अत्यंत उलटी करते २ यदि मनुष्यकी जीभ भीतर धसगईहो तो मनको प्रसन्नता करनेवाले खट्टे तीक्ष्ण मीठे नमकीन पदार्थ भातके साथ भोजनको देवे मुहमें धारणकरै तथा घी और दूध ये भातके साथ देवे तथा उस रोगीके सामने दूसरा मनुष्य निंबू अथवा नारंगीको चूस २ कर खाय तो मनुष्यकी जीभ ठिकानेपर आनकर प्रकृति स्वच्छ होय।

रद्द करते २ जीभ बाहर निकलपडी होय उसका उपाय।

निःसृतांतुतिलद्राक्षाकल्कलिप्त्वाप्रवेशयेत्॥ २६॥

अर्थ–मनुष्यकी जीभ रद्द करते २ यदि बाहर निकल आई हो तो उसको तिल और दाख इनका कल्क करके उसकी जीभपर वैद्य लेप करके जीभको भीतर प्रविष्ट करे।

वमनसे नेत्रोंमें विकारहोनेका उपचार।

व्यावृत्ताक्ष्णिघृताभ्यक्तेपीडयेच्चशनैःशनैः॥

अर्थ–जिस मनुष्यके उलटी करते २ नेत्र फटेसे होगएहों उसके नेत्रोंमें हलके हाथसे घी लगायके ठिकानेपर करे।

उलटीकरते २ ठोडीरहगईहो उसका उपचार।

हनुमोक्षेस्मृतःस्वेदोनस्यंचश्लेष्मवातहृत् ॥ २७॥

अर्थ–मनुष्यकी उलटी करते २ ठोडी रहजावे उसके अंगोंका पसीना निकाले तथा कफ वायुनाशक औषधी नाकमें डाले तो ठोडीका स्तंभ दूर होवे।

उलटीकरते २ रुधिरगिरनेलगे उसका उपाय।

रक्तपित्तविधानेनरक्तच्छर्दिमुपाचरेत् ॥

अर्थ–मनुष्यको अत्यंत रद होनेसे अंतमें रुधिर गिरने लगे तो जो रक्तपित्त रोगपर उपाय कहेहैं उन उपायोंको करके रुधिरकी उलटीको शांतकरे।

अत्यंतवमनहोनेसे अधिकतृषालगनेका यत्न।

धात्रीरसांजनोशीरलाजाचंदनवारिभिः ॥ २८॥
मंथंकृत्वापाययेच्चसघृतक्षौद्रशर्करम् ॥
शाम्यंत्यनेनतृष्णाद्याःपीडाश्छर्दिसमुद्भवाः ॥ २९॥

अर्थ–१ आँवले २ रसोत[१] ३ खस ४ साली चावलोंकी खील ५ लालचंदन और ६ नेत्रवाला इन छः औषधोंका मंथ[२] करके उसमें घी सहत और मिश्री डालके पीवे तो वमनके कारण जो तृषादिक उपद्रव होते हैं वे दूर होवें।

उत्तमवमनहोनेके लक्षण।

हृत्कंठशिरसांशुद्धिर्दीप्ताग्नित्वंचलाघवम् ॥
कफपित्तविनाशश्चसम्यग्वांतस्यचेष्टितम् ॥ ३०॥

अर्थ–जो प्राणी उत्तम प्रकारकी उलटी करता है उसके लक्षण कहते हैं कि हृदय कंठ और मस्तक इनमें जो कफादिक दोष उनको दूरकर उनकी शुद्धि होवे। अग्नि प्रदीप्त हो अंग हलके हों तथा कफदोष और पित्तदोष ये दोनों दूर होवे।

ततोऽपराह्णेदीप्ताग्निंमुद्गषष्टिकशालिभिः ॥
हृद्यैश्चजांगलरसैःकृत्वायूषंचभोजयेत् ॥ ३१॥

---

१ दारुहल्दीका काढा करके उसके समान बकरीका दूध उसमें मिलायके औटावे जब खोहा होजावे तब सुखायके चूर्ण करलेवे। इसको रसोत वा रसांजन कहते हैं।

२ आँवले आदि छः औषधोंको एक पल ले जवकूट करके ४ पल जल हाँडीमें डाल औषधी मिलायके मथ डाले फिर नितारके पानी छानलेवे इसको मंथ कहते हैं।

अर्थ-जब मनुष्य भले प्रकार वमन कर चुके तब तीसरे प्रहर अग्नि प्रदीप्त होवे । तब मूँग और साठी चाँवल[1] मनको प्रियकर्त्ता ऐसे वनके हरिणादिकोंके मांसका रस इन सबका यूष[2] बनायके उसके साथ भोजन करे ।

उत्तमवमनका फल।

तंद्रानिद्रास्यदौर्गंध्यंकंडूंचग्रहणीविषम् ॥
सुवांतस्यनपीडायैभवंत्येतेकदाचन ॥ ३२ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यने उत्तम प्रकार वमन किया है उसके तंद्रा निद्रा मुखकी दुर्गंधि खाज संग्रहणीरोग और विषदोष ये उपद्रव कदाचित् भी नहीं होते ।

अजीर्णंशीतपानीयंव्यायामंमैथुनंतथा ॥
स्नेहाभ्यंगंप्रकोपंचादिनैकंवर्जयेत्सुधीः ॥ ३३ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायामुत्तरखण्डे वमनविधिवर्णनोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अर्थ-अजीर्णकर्त्ता (भारी) पदार्थ, शीतल पानी, दंड कसरत, मैथुन, देहमें तेलकी मालिस करना, तथा क्रोध करना, ये सब कर्म जिस दिन वमनकारी औषध लेवे उस दिन त्यागदेय ।

इति माथुरीभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.

वमनके पश्चातविरेचन।

स्निग्धस्विन्नस्यवांतस्यदद्यात्सम्यग्विरेचनम् ॥ अवांतस्यत्वधःस्रस्तोग्रहणींछादयेत्कफः ॥ १ ॥ मंदाग्निंगौरवंकुर्याज्जनयेद्वाप्रवाहिकाम् ॥ अथवापाचनैरामंबलासंचविपाचयेत् ॥ २ ॥

---

[1] जो धान साठ दिनमें पक जाते हैं उनके चाँवलोंको साठीचावल कहते हैं ।
[2] मूँग और साठी चावल १ पल ले जल १ प्रस्थ डालके औटावे जब औटके पेयाके समान होजावे उसको यूष कहते हैं । इसी प्रकार हरिणादिकोंके मांसमें जल डालके यूष बनावे इसको मांसरस कहते हैं ।

अर्थ–प्रथम मनुष्यको स्निग्ध करे अर्थात् पूर्वोक्त विधिसे स्नेहपान करावे, फिर उसके देहसे पसीने निकाले, पश्चात् वांति (उलटी) करावे । जब भले प्रकार वमन कर चुके तब उत्तम प्रकारसे विरेचन देवे । इसका कारण यह है विना वमन कराये दस्तकरावे तो उसके अधोभागमें गयाहुआ कफ वह ग्रहणी (छटवी पित्तधरा तथा अग्निधरा कला) का आच्छादन करता है कि जिससे मंदाग्नि गौरव (देहमें भारीपना) प्रवाहिका ये रोग उत्पन्न होते हैं अथवा अधोगत कफ और आमको शुष्क एरण्डमूलादिक करके पचावे ।

दस्तकी दूसरी विधि ।

स्निग्धस्यस्नेहनैःकार्यस्वेदैःस्विन्नस्यरेचनम् ॥

अर्थ–घृत दुग्धादिक स्नेहद्रव्य तिनकरके स्निग्ध मनुष्य उसको और पिंडेष्टिकादि करके देहका पसीना निकालेहुए मनुष्यको दस्त करने चाहिये । यह वमनके विनाविरचन देनेका दूसरा प्रकार है ।

दस्तोंका सामान्यकाल ।

शरद्दतौवसंतेचदेहशुद्धौविरेचयेत् ॥ ३ ॥
अन्यदात्ययिकेकालेशोधनंशीलयेद्बुधः ॥

अर्थ–शरद् ऋतुमें तथा वसन्त ऋतुमें मनुष्योंकी शरीरशुद्धिके लिये जुलाब देवे तो देहकी शुद्धि होकर देह उत्तम होय । तथा उक्तकालके सिवाय दूसरे कालमें यदि रोग उत्पन्न होय तो उस कालमेंभी वैद्य रोगीका विचार करके दस्तकारी औषध देवे ।

विरेचनयोग्य रोगी ।

पित्तेविरेचनंदद्यादामोद्भूतेगदेतथा ॥ ४ ॥
उदरेचतथाध्मानेकोष्ठशुद्धौविशेषतः ॥

---

१ वमनके पश्चात् दस्त कैसे देवे ऐसी शंका होनेसे भेड चरक सुश्रुत और वाग्भट इत्यादि ग्रंथोंका अभिप्राय है कि, वमन देकर छःदिन व्यतीत होनेपर पश्चात् तीन दिन स्निग्ध करे। तीन दिन देहसे पसीने निकाले । फिर तीन दिन हलका भोजन (खिचडीआदि) देकर सोल्हवें दिन जुल्लाब कर्त्ता औषधि देवे । यह ग्रंथकारका अभिप्राय है इसलिये श्लोकमें सम्यक् पद धरा है ।

२ मिट्टीका गोला ईटआदि ।

३ शरद् ऋतु कार कार्तिकके दिन ।

४ वसंत ऋतु चैत्रके दिन ।

अर्थ–पित्तविकार आमवात उदररोग अफरा और बद्धकोष्ठ इन रोगोंमें वैद्य विशेष करके विरेचन देवे ।

दोषदूरकरनेमें विरेचनकी उत्कृष्टता ।

दोषाःकदाचित्कुप्यंतिजितालंघनपाचनैः ॥ ५ ॥
येतसंशोधनैःशुद्धानतेषांपुनरुद्भवः ॥

अर्थ–वातादिक दोष लंघन और पाचन करनेपर शमन होकर कदाचित् फिरभी कुपित हो जाते हैं परंतु जो संशोधन (वमनविरेचनादि) द्वारा शुद्ध हुए हैं । उनका फिर उद्भव (उत्पति) नहीं है ।

दस्तकरानेयोग्य रोगी ।

जीर्णज्वरीगरव्याप्तोवातरक्तीभगंदरी ॥ ६ ॥ अर्शःपांडूदरग्रंथिहृद्रोगारुचिपीडिताः ॥ योनिरोगप्रमेहार्तागुल्मप्लीहव्रणार्दिताः ॥ ७ ॥ विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविषूचीकुष्ठसंयुताः ॥ कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेढ्रामयान्विताः ॥ ८ ॥ यकृच्छोथाक्षिरोगार्ताःकृमिक्षारानिलार्दिताः॥शूलिनोमूत्रघातार्ताविरेकार्हानरामताः ॥ ९ ॥

अर्थ–जीर्णज्वर सिंगिया आदि विषदोष वातरक्त भगंदर बवासीर पांडुरोग उदररोग गाँठ हृदयरोग अरुचि प्रमेह योनिरोग गोला प्लीहा व्रण विद्रधि वमन विस्फोटक विषूचिका कोढ कर्णरोग नासारोग मस्तकरोग मुखरोग गुदाके रोग लिंगेन्द्रीके (उपदंशादि) रोग यकृत् सूजन नेत्ररोग कृमिरोग सोमल तथा क्षारजन्य विकार वादीके रोग शूलरोग तथा मूत्राघातरोग इन रोगोंसे यदि प्राणी अत्यन्त व्याप्त होवे तो उसको विरेचन (दस्त करानेकी औषधि) देवे ।

दस्तकरानेमें अयोग्य ।

बालवृद्धावतिस्निग्धक्षतक्षीणोभयान्वितः॥श्रांतस्तृषार्तःस्थूलश्चगर्भिणीचनवज्वरी ॥१०॥ नवप्रसूतानारीचमंदाग्निश्चमदात्ययी ॥ शल्यार्दितश्चरूक्षश्चनविरेच्याविजानता ॥ ११ ॥

---

१ उदररोगीको दस्त करावे यह प्रथम कह आये हैं परंतु विशेष करके देना, इस वास्ते फिर उदररोगीको कहा है ।

अर्थ–बालक, वृद्ध, अतिस्निग्ध, उरःक्षत करके क्षीण, भयकरके पीडित, थकाहुआ, प्यासा, स्थूलपुरुष, गर्भिणी, नवज्वर करके पीडित, नवप्रसूता स्त्री, मंदाग्नि, मदात्ययरोग करके पीडित, शल्य[1] करके पीडित और रूक्ष इतने मनुष्योंको विद्वान् वैद्य दस्त न करावे ।

दस्तोंमें मृदु मध्य और क्रूर कोष्ठ ।

बहुपित्तोमृदुःप्रोक्तोबहुश्लेष्माचमध्यमः ॥ बहुवातःक्रूरकोष्ठोदुर्विरेच्यःसकथ्यते ॥ १२ ॥ मृद्वीमात्रामृदौकोष्ठेमध्यकोष्ठेचमध्यमा ॥ क्रूरेतीक्ष्णामतातज्ज्ञैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥ १३ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यका कोठा अत्यंत पित्त करके व्याप्त होय उसे मृदुकोष्ठ जानना । एवं जिसके कोठेमें अत्यंत कफ होय उसे मध्यम कोष्ठ एवं जिसके कोठेमें अत्यन्त बादी है उसे क्रूरकोष्ठ जानना, । जिस मनुष्यका क्रूर कोठा है ऐसे मनुष्यको दस्तकारी औषध देनेसे शीघ्र दस्त नहीं होते । जिस प्राणीका मृदु कोष्ठ है उसको मृदु औषधकी मृदु मात्रा देनी एवं जिन मनुष्योंका कोठा मध्यम है उनको मध्यम औषधकी मध्यम मात्रा देवे । तथा जिस प्राणीका अत्यंत क्रूर कोष्ठ है उसको तीक्ष्ण औषधकी तीक्ष्ण मात्रा देनी चाहिये ।

मृदुमध्यमादिकोष्ठोंमें मृदुमध्यादिक औषधि ।

मृदुर्द्राक्षापयश्चंचुतैलैरपिविरिच्यते ॥ मध्यमस्त्रिवृतातिक्ताराजवृक्षैर्विरिच्यते ॥१४॥क्रूरःस्नुकपयसाहेमक्षीरीदंतीफलादिभिः ॥

अर्थ–जिनका मृदु (नरम) कोठा है उनको दाख दूध और अंडीका तेल इनसे ही दस्त हो सकते हैं । मध्यम कोष्ठवालेको निशोथ कुटकी और अमलतासका गूदा इनसे दस्त हो सकते हैं । तथा क्रूर कोठेवालेको थूहरका दूध तथा चौक जमालगोटाके बीज आदि शब्दसे इन्द्रायनकी जड इत्यादिक देनेसे रेचन होता है ।

उत्तमादिभेदकरके दस्तोंके प्रमाण ।

मात्रोत्तमाविरेकस्यत्रिंशद्वेगैःकफांतिका ॥ १५ ॥ वेगैर्विंशतिभिर्मध्याहीनोक्तादशवेगिका ॥

अर्थ–तीसवार दस्त होकर अन्तमें कफ (आम) गिरे तो उसे उत्तम मात्रा जाननी । और बीसवेग होकर कफ गिरने लगे तो उसे मध्यम मात्रा जाननी तथा दशवेगके अन्तमें कफ गिरनेसे हीन मात्रा जाननी । वेगनाम दस्तोंका है ।

---

१ काँच अथवा नाखून अथवा बाल काँटा इत्यादिक शरीरमें रहनेसे पीडित जो मनुष्य हो उसको शल्यार्दित जानना ।

दस्त होनेमें कषायादिकी मात्राका प्रमाण।

द्विपलंश्रेष्ठमाख्यातंमध्यमंचपलंभवेत्॥ १६॥
पलार्धंचकषायाणांकनीयस्तुविरेचनम्॥

अर्थ–दस्त होनेसे दो पल प्रमाण कषाय (काढा) देनेसे जो दस्त होवे वे दस्त उत्तम जानने। एक पल प्रमाण काढा देनेसे दस्त होय तो मध्यम जानने। एवं अर्ध पलके प्रमाण काढेसे दस्त होना कनिष्ठ जानना।

दस्त होनेमें कल्कादिकोंके प्रमाण।

कल्कमोदकचूर्णानांकर्षमध्वाज्यलेहतः॥ १७॥
कर्षद्वयंपलंवापिवयोरोगाद्यपेक्षया॥

अर्थ–कल्क मोदक और चूर्ण ये कर्ष प्रत्येक सहत घीमें मिलाय दस्त होनेमें देवे। अथवा अवस्था और रोगका तारतम्य देखके दो कर्ष अथवा एक पल देवे।

दोषोंके अनुकूल रेचन।

पित्तोत्तरेत्रिवृच्चूर्णंद्राक्षाक्काथादिभिःपिबेत्॥ १८॥
त्रिफलाक्काथगोमूत्रैःपिबेद्व्योषंकफार्दितः॥
त्रिवृत्सैंधवशुंठीनांचूर्णमम्लैःपिबेन्नरः॥ १९॥
वातार्दितोविरेकायजांगलानांरसेनवा॥

अर्थ–पित्तके आधिक्यमें निसोथका चूर्ण करके दाखके काढेमें मिलायके देवे। आदि शब्द करके गुलकंद गुलाबके फूल और सोंफ इत्यादिकोंके काढेमें देवे। कफका प्रकोप होनेसे त्रिफला का काढा और गोमूत्र इन दोनोंको एकत्र करके उसमें त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) का चूर्ण मिलायके देवे। यदि मनुष्य बादीसे पीडित हो तो उसको दस्त करानेके वास्ते निसोथ सैंधानमक और सोंठ इनका चूर्ण करके इमली या नींबूके रसमें देवे अथवा जंगली जीवोंके मांसरसमें[१] देवे तो दस्त होवे।

अन्य औषधोंसे दस्तोंका विधान।

एरंडतैलंत्रिफलाक्काथेनद्विगुणेनच॥ २०॥
युक्तंपीत्वापयोभिर्वानचिरेणविरिच्यते॥

अर्थ–अंडीके तेलसे दुगुना त्रिफलेका काढा कर उसमें अंडीका तेल डाल देवे अथवा अंडीका तेल दूधमें मिलायके देवे तो तत्काल दस्त हो।

---

१ हरिण शशा आदिके मांसको पानीमें औटावे। जब सीजके पेयाके समान होजावे तब उतारले। इसको मांसरस कहते हैं।

ऋतुभेदकरके दस्त ।

त्रिवृताकौटबीजंचपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ २१ ॥
समृद्वीकारसःक्षौद्रंवर्षाकालेविरेचनम् ॥

अर्थ—निसोथ इन्द्रजौ पीपल सोंठ दाखोंका रस और सहत ये औषध दस्त होनेके वास्ते वर्षाकालमें देना ।

शरदृऋतुमें दस्त ।

त्रिवृद्दुरालभामुस्ताशर्करादिव्यचंदनम् ॥ २२ ॥
द्राक्षांबुनासयष्टीकंशीतलंचघनात्यये ॥

अर्थ—निसोथ धमासा नागरमोथा उत्तम सफेदचंदन और मुलहटी इन सब औषधोंका चूर्ण कर दाखके पानीमें मिलायके शरद् ऋतुमें देवे तो दस्त होवे । यह दस्तकी औषध शीतल है ।

हेमंतऋतुमें दस्त ।

त्रिवृताचित्रकंपाठाह्यजाजीसरलावचा ॥ २३ ॥
हेमक्षीरीचहेमंतेचूर्णमुष्णांबुनापिबेत् ॥

अर्थ—निसोथ चीता पाढ जीरा देवदारु वच और चोक इनका चूर्णकर गरम जलमें मिलायके हेमंतऋतुमें देवे तो दस्त होवे ।

शिशिर वा वसंतऋतुमें दस्त ।

पिप्पलीनागरंसिंधुश्यामात्रिवृतयासह ॥ २४ ॥
लिहेत्क्षौद्रेणशिशिरेवसंतेचाविरेचनम् ॥

अर्थ—पीपल सोंठ सैंधानमक और काली निसोथ इन औषधोंका चूर्णकर सहतमें मिलाय शिशिर तथा वसंत ऋतुमें चाटे तो दस्त होवे सही । कई श्यामा विधायरेको भी कहते हैं ।

ग्रीष्मऋतुमें दस्त ।

त्रिवृताशर्करातुल्याग्रीष्मकालेविरेचनम् ॥ २५ ॥

अर्थ—निसोथका चूर्ण करके उसमें मिश्री मिलाय दस्त होनेके वास्ते ग्रीष्म ऋतु (गरमियों) में देवे ।

अभयादिमोदक ।

अभयामरिचंशुंठीविडंगामलकानिच ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंत्वक्पत्रंमुस्तमेवच ॥ २६ ॥ एतानिसमभागानिदंतीचात्रिगुणाभवेत् ॥

त्रिवृदष्टगुणाज्ञेयाषड्गुणाचात्रशर्करा ॥ २७ ॥ मधुनामोदकं कृत्वाकर्षमात्रप्रमाणतः॥ एकैकंभक्षयेत्प्रातःशीतंचानुपिबेज्जलम्॥२८॥तावद्विरिच्यतेजंतुर्यावदुष्णंनसेवते ॥ पानाहारविहारेषुभवेन्निर्यंत्रणंसदा ॥२९॥ विषमज्वरमंदाग्निपांडुकासभगंदरान् ॥ दुर्नामकुष्ठगुल्मार्शोगलगंडव्रणोदरान्॥३०॥ विदाहप्लीहमेहांश्चयक्ष्माणंनयनामयम् ॥ वातरोगंतथाध्मानंमूत्रकृच्छ्राणिचाश्मरीम्॥३१॥पृष्ठपार्श्वोरुजघनकट्युदररुजंजयेत्॥ सततंशीलनादेषपलितानिविनाशयेत् ॥ ३२ ॥ अभयामोदकाह्येतेरसायनवराःस्मृताः ॥

अर्थ–१ हरड २ काली मिरच ३ सोंठ ४ वायविडंग ५ आँमले ६ पीपल ७ पीपरामूल ८ दालचीनी ९ पत्रज १० नागरमोथा ये दश औषध समान भाग लेवे । तथा दंती तीन भाग निशोथ आठभाग तथा खाँड छः भाग इस प्रकार भाग लेकर सबका चूर्ण कर सहतमें मिलाय एक एक कर्षके मोदक (लड्डू) बनावे । इसमेंसे १ मोदक प्रातःकाल दस्त होनेके वास्ते भक्षण करे और ऊपरसे थोडा शीतल जल पीवे । फिर जबतक दस्त होते रहैं तबतक गरम पदार्थका सेवन न करे तथा पान और आहार एवं विहार कहिये श्रमादिक इनमें सर्वकाल नियमित रहे तो विषमज्वर, मंदाग्नि, पांडुरोग, खाँसी, भगंदर, कुष्ठ, गोला, बवासीर, गलगंड, भ्रम, उदररोग, विदाह, प्लीह, प्रमेह, राजयक्ष्मा, नेत्ररोग, बादीके रोग, पेटका फूलना, मूत्रकृच्छ्र, पथरी रोग, पीठ, पसली, कमर, जाँघ, पिडरी और उदर इनमें पीडाका होना इत्यादि सर्व रोग दूर होवें । इस मोदकको अभयादि मोदक कहते हैं इस अभयादिमोदकका निरंतर सेवन करनेसे पलित कहिये मनुष्यके सफेद बालोंका होजाना दूर हो अर्थात् सफेद बाल काले हो जावें तथा यह मोदक उत्तम रसायन है ।

दस्तोंको सहायकर्ता उपचार ।

पीत्वाविरेचनंशीतजलैःसंसिच्यचक्षुषी ॥ ३३ ॥ सुगंधिंकिंचिदाघ्रायतांबूलंशीलयेन्नरः ॥

अर्थ–मनुष्यको दस्तकी औषध देकर पश्चात् उस प्राणीके नेत्रमें शीतल जलके छींटे देवे और अतर पुष्प आदि सुगंधि वस्तु सुँघावे । तथा पानका बीडा बनायके खाय । ये योग करनेसे उत्तम प्रकारके दस्त होते हैं ।

दस्तहोनेपर किसप्रकार रहना ।

निर्वातस्थोनवेगांश्चधारयेन्नस्वपेत्तथा ॥ ३४ ॥
शीतांबुनस्पृशेत्कापिकोष्णनीरंपिबेन्मुहुः ॥

अर्थ—दस्त होनेके उपरांत हवामें न बैठे, अधोवायु मल मूत्र इत्यादिकोंके वेग (हाजत) को रोके नहीं, सोवे नहीं, शीतल जलको छूवे नहीं तथा दस्तोंमें गरम जल वारंवार पिया करे तो उत्तम जुलाब होवे (परंतु अभयादि मोदकपर गरमजल न पीवे) ।

दस्तमें जो पदार्थ निकलते हैं ।

बलादौषधपित्तानिवायुर्वातेयथाव्रजेत् ॥ ३५ ॥
रेकात्तथामलंपित्तंभेषजंचकफोव्रजेत् ॥

अर्थ—वमन (ओकारी) की औषध पीनेसे कफ और पीईहुई औषध, पित्त और बादी ये पदार्थ जैसे वमनके होनेसे बाहर निकालते हैं उसी प्रकार दस्तकारी औषध पीनेसे मल, पित्त, पीईहुई औषध और कफ ये पदार्थ दस्तके साथ गुदाके मार्ग होकर बाहर निकालते हैं ।

उत्तम दस्त न होनेसे उपद्रव ।

दुर्विरक्तस्यनाभेस्तुस्तब्धत्वंकुक्षिशूलता ॥ ३६ ॥
पुरीषवातसंगश्चकंडूमंडलगौरवम् ॥
विदाहोऽरुचिराध्मानंभ्रमश्छर्दिश्चजायते ॥ ३७ ॥

अर्थ—दस्त उत्तम न होनेसे इस प्राणीकी नाभिमें स्तब्धता, पसलियोंमें शूल, मल और अधोवायुकी अप्रवृत्ति, शरीरमें खुजली तथा चकत्ते ये उत्पन्न हों और अंगका भारीपना, दाह, अरुचि, पेट फूलना, भ्रम तथा वमन ये उपद्रव होते हैं ।

उत्तम जुलाब न होनेपर उपचार ।

तंपुनःपाचनैःस्नेहैःपक्त्वासंस्नेह्यरेचयेत् ॥
तेनास्योपद्रवायांतिदीप्तोऽग्निर्लघुताभवेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको उत्तम दस्त न हुए हों उसको आरग्वधादिकाथका पाचन देकर आमको पचावे फिर उसको स्नेहपान करावे अर्थात् घी पिलायके उसके कोठेको स्निग्ध (चिकना) करके फिर जुलाब देवे तो उसके संपूर्ण उपद्रव दूर होकर जठराग्नि प्रदीप्त होय और देह हलका होवे ।

अत्यंतदस्तहोनेसे उपद्रव ।

विरेकस्यातियोगेनमूर्च्छाभ्रंशोगुदस्यच ॥

शूलंकफातियोगःस्यान्मांसधावनसंनिभम् ॥ ३९ ॥
मेदोनिभंजलाभासंरक्तंचापिविरिच्यते ॥

अर्थ—मनुष्यको अत्यंत दस्त होनेसे मूर्च्छा, गुदामें पीडा, शूल, कफका अत्यंत गिरना, मांसके धोवनके जलसमान, मेदके समान तथा पानीके समान गुदाके रास्तेसे रुधिर गिरे ये उपद्रव होते हैं।

अत्यंतदस्तजन्य उपद्रवोंका यत्न।

तस्यशीतांबुभिःसिक्तंशरीरंतंदुलांबुभिः ॥ ४० ॥
मधुमिश्रैस्तथाशीतैःकारयेद्वमनंमृदु ॥

अर्थ—अत्यंत दस्त होनेसे मनुष्यके देहपर शीतल जलको छिडके उसी प्रकार शीतल चावलोंके धोवनमें सहत मिलायके पीनेको देवे अथवा हलकी वमन करावे।

दस्तबंदकरनेकी औषधि।

सहकारत्वचःकल्कोदध्नासौवीरकेणवा ॥ ४१ ॥
पिष्टोनाभिप्रलेपेनहंत्यतीसारमुल्बणम् ॥

अर्थ—आमकी छालको गौके दहीमें अथवा सौवीरमें पीसके कल्क करे उस कल्कको नाभिके ऊपर लेप करे तो दस्त होतेहुए बंद होवे।

दस्तरोकनेके यत्न।

अजाक्षीरंपिबेद्वापिवैष्किरंहारिणंतथा ॥ ४२ ॥
शालिभिःषष्टिकैःस्वल्पंमसूरैर्वापिभोजयेत् ॥
शीतैःसंग्राहिभिर्द्रव्यैःकुर्यात्संग्रहणंभिषक् ॥ ४३ ॥

अर्थ—दस्त बंद होनेके वास्ते बकरीका दूध पीवे। अथवा विष्किर पक्षियोंका मांसरस तथा हारिणके मांसका रस सेवन करे। अथवा साठी चावलोंका भात करके थोडा भोजन करे। अथवा मसूरको सिजायकर खाय। और भी विलायती अनार आदिशब्दसे शीतल और ग्राहक ऐसे पदार्थोंका सेवन करे तो दस्तोंका होना बंद होय।

उत्तमदस्तहोनेके लक्षण।

लाघवेमनसस्तुष्टयामनुलोमेगतेऽनिले ॥

---

[१] सौवीर करनेकी विधि मध्यखंडमें संधान और आसव बनानेके प्रकरणमें कह आए हैं। परंतु टीकाकर्त्ताओंने दस्त बंद करनेको सौवीर शब्द करके काँजी लेना ऐसाकहा है।

सुविरिक्तंनरंज्ञात्वापाचनंपाययेन्निशि ॥ ४४ ॥

अर्थ–जिस प्राणीका देह दस्त होनेसे हलका होगयाहो, चित्तमें प्रसन्नता तथा वायुकी स्वस्थानमें गमन, इतने लक्षण होनेसे उस मनुष्यको उत्तम जुलाब हुआ जानना। इसको रात्रिके समय पाचन[1] औषधि देनी चाहिये ।

विरेचनकरनेके गुण ।

इंद्रियाणांबलंबुद्धेःप्रसादोवह्निदीप्तता ॥
धातुस्थैर्यंवयःस्थैर्यंभवेद्रेचनसेवनात् ॥ ४५ ॥

अर्थ–जुल्लाब लेनेसे इस प्राणीकी इन्द्रियोंमें बल आवे, बुद्धि प्रसन्न रहे, जठराग्नि प्रदीप्त होवे एवं धातु और अवस्था इनमें स्थिरता आवे ।

दस्तमें वर्जितपदार्थ ।

प्रवातसेवाशीतांबुस्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ॥
व्यायामंमैथुनंचैवनसेवेतविरेचितः ॥ ४६ ॥

अर्थ–इस प्राणीको दस्त होनेके बाद अत्यंत पवन नहीं खानी, शीतल जल, तेलकी मालिश, अजीर्ण, परिश्रम और मैथुन इनका सेवन न करे ।

शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूंभोजयेत्कृताम् ॥
जांगलैर्विष्किराणांवारसैःशाल्योदनंहितम् ॥ ४७ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेउत्तरखंडे विरेचनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अर्थ–दस्त होनेके पश्चात् पथ्यमें साठी चावल और मूँग आदि धान्योंकी यवागूं[2] करके सेवन करे तथा जंगली हरिणादि जीवोंके मांसका[3] रस अथवा विष्किरपक्षी और मुरगा इत्यादिकोंके मांसका रस इस रसके साथ चावलोंका भात खाय ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितभाषामाथुरीटीकायामुत्तरखंडस्य चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

१ अंडकी जड सोंठ और धनिया इन तीन औषधोंका काढा करके पाचनार्थ देवे ।

२ चावल मूँग इत्यादि धान्यमेंसे जो अपनी प्रकृतिको हित हो उसको छः गुने जलमें औटायके पतली लेहीसी करे उसको यवागू कहते हैं ।

३ हरिणादि जंगली जीवोंके मांसको पानीमें सिजायके पेयाके समान पतली राखे उसको मांसरस कहते हैं ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

बस्तिकी विधि।

बस्तिर्द्विधानुवासाख्योनिरूहश्चततःपरम् ॥ बस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्बस्तिरितिस्मृतः ॥ १ ॥ यःस्नेहैर्दीयतेसस्याद-नुवासननामकः ॥ कषायक्षीरतैलैर्योनिरूहःसनिगद्यते ॥२॥

अर्थ–अंडकोशादिकरके गुदामें पिचकारी मारते हैं उस प्रयोगको बस्ति कहते हैं। वह बस्ति अनुवासन और निरूहण इन भेदों करके दो प्रकारकी है। जिनमें घी और तेल इत्यादिक स्नेह करके जो पिचकारी मारते हैं उसको अनुवासन बस्ति कहते हैं। और काढा दूध तेल इनको एकत्र करके जो पिचकारी मारते हैं उसको निरूहबस्ति कहते हैं।

अनुवासन बस्ति।

तत्रानुवासनाख्योहिबस्तिर्यःसोऽत्रकथ्यते ॥ पूर्वमेवततोबस्ति-र्निरूहाख्योभविष्यति ॥ ३ ॥ निरूहादुत्तरंचैवबस्तिःस्यादु-त्तराभिधः ॥ अनुवासनभेदश्चमात्राबस्तिरुदीरितः ॥ ४ ॥ प-लद्वयंतस्यमात्रातस्मादर्धापिवाभवेत् ॥

अर्थ–अनुवासन और निरूह इन दोनों बस्तियोंमें प्रथम अनुवासन नामक बस्तिको कहकर फिर निरूहबस्ति तथा उत्तरबस्तिको कहेंगे। तथा उस अनुवासनबस्तिका भेद मात्राबस्ति है उस मात्राबस्तिके स्नेहादिककी मात्रा दो अथवा एक पलकी जाननी इस प्रकार बस्तिके चार भेद हैं।

अनुवासनबस्तिके योग्य रोगी।

अनुवास्यस्तुरूक्षःस्यात्तीक्ष्णाग्निःकेवलानिली ॥ ५ ॥

अर्थ–रूक्ष कहिये स्नेहपानरहित और प्रदीप्त है अग्नि जिसकी तथा केवल वातरोगी इस प्रकारके मनुष्य अनुवासनबस्तिके योग्य जानने।

अनुवासनके अयोग्य।

नानुवास्यस्तुकुष्ठीस्यान्मेहीस्थूलस्तथोदरी॥अस्थाप्यानानु-वास्याःस्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः ॥ ६ ॥ शोकमूर्च्छारुचिभ-यश्वासकासक्षयातुराः ॥

अर्थ–कुष्ठी, प्रमेही, स्थूल, उदरी अर्थात् उदररोगी, ये अनुवासनके योग्य नहीं हैं। अजीर्ण उन्माद प्यास शोक मूर्च्छा अरुचि भय श्वास खाँसी और क्षय इन रोगों करके पीडित जो मनुष्य वह अस्थाप्य कहिये निरूहबस्तिके योग्य हैं। उनकी अनुवासनबस्तिमें योजना न करे।

बस्तिके मुखबनानेको सुवर्णादिकी नली।

नेत्रंकार्यंसुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः ॥ ७ ॥
नलैर्दंतैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वाविधीयते ॥

अर्थ–नेत्र कहिये गुदामें पिचकारी मारनेकी नली वह सुवर्णादि धातु वा नरसल हाथीदाँत सींगके अग्रभाग बिल्लोर अथवा सूर्यकांतादि मणिकी करानी चाहिये।

रोगीकी अवस्थानुसार नलीका प्रमाण।

एकवर्षात्तुषड्वर्षंयावन्मानंषडंगुलम् ॥ ८ ॥
ततोद्वादशकंयावन्मानंस्यादष्टसंयुतम् ॥
ततःपरंद्वादशभिरंगुलैर्नेत्रदीर्घता ॥ ९ ॥

अर्थ–बस्तिकी नली एक वर्षसे लेकर छः वर्षपर्यंत छः अंगुल लंबी तथा छः वर्षसे लेकर बारह वर्षपर्यन्त आठ अंगुलकी नली बनावे एवं बारह वर्षसे उपरांत नली बारह अंगुलकी लम्बी बनानी चाहिये।

नलीके छिद्रका प्रमाण।

मुद्गछिद्रंकलायाभंछिद्रंकोलास्थिसन्निभम् ॥ यथासंख्यंभवेन्नेत्रंश्लक्ष्णंगोपुच्छसन्निभम् ॥ १० ॥ आतुरांगुष्ठमानेनमूलेस्थूलं विधीयते ॥ कनिष्ठिकापरीणाहमग्रेचगुटिकामुखम् ॥ ११ ॥ तन्मूलेकर्णिकेद्वेचकार्येभागाच्चतुर्थकात् ॥ योजयेत्तत्रबस्तिं चबंधद्वयविधानतः ॥ १२ ॥

अर्थ–छः अंगुलवाली नलीका छिद्र (छेद) मूँगके दानेके प्रमाण करे और जो आठ अंगुलकी नली है उसमें मटरके समान छिद्र करे। बारह अंगुलवाली नलीमें बेरकी गुँठलीके समान छिद्र करना चाहिये। इस क्रम करके नलीके छिद्र करने चाहिये वह नली चिकनी होकर गौकी पूंछके समान अर्थात् ऊपर नीचेसे छोटी और बीचमें मोटी बनावे। तथा उस नलीका मूल रोगीके अंगूठेके प्रमाण मोटा करना चाहिये और अग्रभागमें कनिष्ठिका (छोटी उँगली) के प्रमाण मोटी होकर उसका मुख गोल करना चाहिये। उस नलीके तीन भाग त्याग के चतुर्थ भागकी जडमें दो कर्णिका करे

छत्रके समान करके हरिणादिकोंके अंडकी बस्ति उस जगह लगायके उन कर्णिकाओंसे उस बस्तिको बाँधके संधि मिलाय देवे ।

बस्ति किसके अंडकी होनीचाहिये ।

मृगाजसूकरगवांमाहिषस्यापिवाभवेत् ॥
मूत्रकोशस्यबास्तिस्तुतदलाभेनचर्मजः ॥ १३ ॥
कषायरक्तःसुमृदुर्बस्तिःस्निग्धोदृढोहितः ॥

अर्थ–हरिण बकरा सूकर बैल अथवा भैंसा इनके अंडकी बास्तिकी योजना करे । यदि इनके अंडकोश न मिलें तो हारिणादिकोंके चमडेकी बनावे । और वह बास्ति बेर तथा आहुली (रग) इत्यादिकके छालके काढेमें रँगीहुई होकर नरम चिकनी तथा पुख्ता होनी चाहिये ।

व्रणबस्तिका प्रमाण ।

व्रणबस्तेस्तुनेत्रंस्याच्छ्लक्ष्णमष्टांगुलोन्मितम् ॥ १४ ॥
मुद्गच्छिद्रंगृध्रपक्षनलिकापरिणाहिच ॥

अर्थ–व्रणविषयमें जो नली लगाई जाती है उसकी नली आठ अंगुल प्रमाण लंबी चिकनी तथा उसका छिद्र मूँगके समान तथा गीधके पाँखकी जितनी नली होती है इतनी मोटी हो। इसप्रकार व्रणबस्तिकी नली जाननी ।

बस्तिके गुण ।

शरीरोपचयंवर्णंबलमारोग्यमायुषः ॥ १५ ॥
कुरुतेपरिवृद्धिंचबस्तिःसम्यगुपासितः ॥

अर्थ–बास्तिको उत्तम प्रकारसे सेवन करनेसे शरीरकी वृद्धि कांति बल आरोग्य तथा आयुष्यकी वृद्धि ये गुण उत्पन्न होते हैं ॥

बस्तिके सेवनका काल ।

दिवसांतेवसंतेचस्नेहबास्तिःप्रदीयते ॥ १६ ॥
ग्रीष्मवर्षाशरत्कालेरात्रौस्यादनुवासनम् ॥
नचातिस्निग्धमशनंभोजयित्वानुवासयेत् ॥ १७ ॥
मदंमूर्च्छांचजनयेद्विधास्नेहःप्रयोजितः ॥
रूक्षंभुक्तवतोऽत्यन्तंबलंवर्णंचहीयते ॥ १८ ॥

अर्थ—वसंत ऋतुमें स्नेहबस्ति सायंकालमें देवे, ग्रीष्म ऋतु वर्षा ऋतु और शरद ऋतु इनमें रात्रिके समय देवे । रोगीको अत्यंत स्निग्ध भोजन करायके अनुवासन बस्तिका प्रयोग न करे। यदि करे तो मद मूर्च्छा ये उत्पन्न होती हैं । एवं अत्यंत रूक्ष भोजन करायके यदि वस्तिकर्म करे तो बल तथा कांति इनकी हानि होय इसप्रकार दोनों प्रकारकी बस्ति देनेसे ये उपद्रव होते हैं ।

बस्तिमें हीनमात्रा अतिमात्राका फल ।

हीनमात्रावुभौबस्तीनातिकार्यकरौस्मृतौ ॥
अतिमात्रौतथानाहक्लमातीसारकारकौ ॥ १९ ॥

अर्थ—अनुवासनबस्ति तथा निरूहणबस्ति इनमें अल्पमात्रा होनेसे उसके द्वारा अत्यंत कार्य नहीं होता अर्थात् रोग भले प्रकार दूर नहीं होता और यदि अनुवासन और निरूहकी अतिमात्रा होजावे तो आनाह ग्लानि और अतिसार ये रोग उत्पन्न होते हैं ।

उत्तमादिमात्रा ।

उत्तमस्यपलैःषड्भिर्मध्यमस्यपलैस्त्रिभिः ॥
पलाद्यर्धेनहीनस्ययुक्तामात्रानुवासने ॥ २० ॥

अर्थ—उत्तम बलवाले प्राणियोंको अनुवासनबस्तिमें छः पलकी मात्रा, मध्यमबली मनुष्य उनकी तीन पल और हीनबल जो मनुष्य हैं उनको मात्रा १॥ डेढ पलकी जाननी ।

स्नेहादिकमें सैंधवादिकका मान ।

शताह्वासैंधवाभ्यांचदेयंस्नेहेचचूर्णकम् ॥
तन्मात्रोत्तममध्यांत्याःषट्चतुर्द्वयमाषकैः ॥ २१ ॥

अर्थ—शतावर और सैंधानमक इनका चूर्ण अनुवासनबस्तिमें देनेकी मात्रा छः मासेकी उत्तम, चार मासेकी मध्यम और दो मासेकी कनिष्ठ मात्रा जाननी । इस प्रकार मात्राका क्रम जानना।

दस्तदेनेके पश्चात् अनुवासनबस्तिदेनेका प्रकार ।

विरेचनात्सप्तरात्रेगतेजातबलायच ॥
भुक्तान्नायानुवास्यायबस्तिर्देयोऽनुवासनः ॥ २२ ॥

अर्थ—मनुष्यको दस्त करायके जब सात दिन व्यतीत होजावें और देहमें पुरुषार्थ आय जावे तब उसको भोजन करायके अनुवासन नामक बस्तिके योग्य प्राणीको अनुवासन बस्ति देवे ।

बस्तिदेनेकीविधि ।

अथानुवासास्त्वभ्यक्तमुष्णांबुस्वेदितंशनैः ॥ भोजयित्वायथा शास्त्रंकृतचंक्रमणंततः ॥ २३ ॥ उत्सृष्टानिलविण्मूत्रंयोजये-त्स्नेहबस्तिना ॥ सुप्तस्यवामपार्श्वेनवामजंघाप्रसारिणः॥२४॥ कुंचितापरजंघस्यनेत्रंस्निग्धगुदेन्यसेत्॥बद्धाबस्तिमुखंसूत्रैर्वा-महस्तेनधारयेत्॥२५॥पीडयेद्दक्षिणेनैवमध्यवेगेनधीरधीः ॥ जंभाकासक्षयादींश्चबस्तिकालेनकारयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ–अनुवासनबस्तिके योग्य मनुष्यके देहमें तेल लगाय गरमजलसे देहसे हल्के पसीने निकाल उसको यथाशास्त्र भोजन कराय फिर उसको इधर उधर फिरायके तथा मल मूत्रकी इच्छा होय तो उससे निवृत्त करके, यदि अधोवायु त्यागनेकी इच्छा होय तो उसको त्याग करायके बस्तिकर्म करे। उसको बाँई करवट सुलायके बाँयाँ पैर पसरवा देवे। दहने पैरको सकोडके फिर गुदाके स्निग्ध कर बस्तिकी नली बस्तिके मुखपर डोरेसे बाँध उस नलीको गुदाके ऊपर धरे तथा कुशल वैद्य उस नलीको बाँएँ हाथमें रखके दहने हाथसे मध्यमवेग करके उसमें पिचकारी देवे अर्थात् पिचकारी मारे तथा बस्तिके समय जंभाई खाँसना तथा छींकना आदि ये रोगीको नहीं करने देवे।

पिचकारीमारनेमें काल।

त्रिंशन्मात्रामितःकालःप्रोक्तोबस्तेस्तुपीडने ॥
ततःप्राणिहितःस्नेहउत्तानोवाक्छतंभवेत् ॥ २७ ॥

अर्थ–पिचकारी मारनेमें तीस मात्रा पर्यंत काल जानना। फिर स्नेह भीतर पहुँचनेपर १०० अंक जितनी देरमें बोले जावें इतनी देरतक उस रोगीको चित्त लेटारहने देवे। उस मात्राका प्रमाण आगेके श्लोकमें लिखा है।

कितनीकालकी मात्रा होती है।

जानुमंडलमावेष्टयकुर्याच्छोटिकयायुतम् ॥
एकमात्राभवेदेषासर्वत्रैषविनिश्चयः ॥ २८ ॥

अर्थ–घोटूपर हाथकी चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा जाननी। ऐसा निश्चय सर्वत्र जानना ॥

१ चावलकी पतली पेया। २ घी लगायके।

पिचकारीमारनेके अंतरक्रिया ।

प्रसारितैःसर्वगात्रैर्यथावीर्यंप्रसर्पति॥ताडयेत्तलयोरनंत्रीन्वारां श्चशनैःशनैः ॥ २९ ॥ स्फिजश्चैवंततःश्रोणेशय्यांचैवोत्क्षिपेत्ततः ॥ जातेविधानेतुततःकुर्यान्निद्रांयथासुखम् ॥ ३० ॥

अर्थ–पिचकारी मारनेपर रोगीके हाथ पैर संपूर्ण अंग ढीले छोडके लंबे करे ऐसा करनेसे रसादिधातु अपने २ स्थानपर जाती हैं । तथा रोगीके हाथ पैरोंके तलमें तीनवार हलकी हलकी ताली मारे । उसी प्रकार कूलेमें तथा कटिके पश्चात् भागमें तीनवार ताली मारके उस रोगीको पलंगपर बैठाय देवे । इस प्रकारकी विधि होनेके पश्चात् रोगीको स्वस्थतापूर्वक यथासुख शयन करावे ।

उत्तमबस्तिकर्मके गुण ।

सानिलःसपुरीषश्चस्नेहःप्रत्येतियस्यतु ॥
उपद्रवंविनाशीघ्रंससम्यगनुवासितः ॥ ३१ ॥

अर्थ–गुदाके भीतर गयाहुआ तैल वायु और मलके साथ मिलाकर उपद्रव रहित तत्काल बाहर निकले तो उस मनुष्यको बस्तिकर्म उत्तम हुआ जानना ।

स्नेहका विकार दूर होनेमें यत्न ।

जीर्णान्नमथसायाह्नेस्नेहेप्रत्यागतेपुनः॥लघ्वन्नंभोजयेत्कामंदीप्ताग्निस्तुनरोयदि॥ ३२ ॥ अनुवासितायदेयंस्यादितरेऽह्निसुखोदकम् ॥ धान्यशुंठीकषायोवास्नेहव्यापत्तिनाशनम्॥३३॥

अर्थ–गुदाके द्वारा स्नेह निःशेष बाहर आजानेसे उस मनुष्यकी अग्नि यदि प्रदीप्त होवे तो उसको सायंकालमें पुराने अन्न नित्यके आहारकी अपेक्षा न्यून भोजनको देवे और अनुवासित मनुष्यको दूसरे दिन सुखोदक देय अर्थात् गरम जल पीनेको देवे अथवा धनिया और सोंठ इनका काढा करके देय तो स्नेहका विकार दूर होवे ।

वातादिकमें पिचकारी मारनेका प्रमाण ।

अनेनविधिनाषड्वासप्तचाष्टौनवापिवा ॥
विधेयाबस्तयस्तेषामंतेचैवनिरूहणम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त विधि करके वातादिक दोषोंमें छः वार सातवार आठवार अथवा नौवार पिचकारी मारे । फिर उस पिचकारी मारनेके पश्चात् निरूहणबस्तिकी योजना करे ।

---

१ एक वर्षके पुराने चावल अथवा साँठी चावलोंका भात पथ्यमें देवे ।

बस्तिकेक्रमसे गुण।

दत्तस्तुप्रथमोबस्तिःस्नेहयेद्बस्तिवंक्षणैः॥सम्यग्दत्तोद्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलंजयेत्॥३५॥बलंवर्णंचजनयेत्तृतीयस्तुप्रयोजितः॥ चतुर्थपंचमौदत्तौस्नेहयेतांरसासृजी ॥ ३६॥ षष्ठोमासंस्नेहयतिसप्तमोमेदएवच ॥ अष्टमोनवमश्चापिमज्जानंचयथाक्रमम् ॥ ३७ ॥ एवंशुक्रगतान्दोषान्द्विगुणःसाधुसाधयेत् ॥ अष्टादशाष्टादशकान्बस्तीनांयोनिषेवते ॥ ३८॥ सकुंजरबलोऽप्यश्वंजयेत्तुल्योऽमरप्रभः ॥

अर्थ–प्रथम पिचकारी मारनेसे वह बस्ति और वंक्षण अर्थात् अंडोंकी संधि द्वारा शरीरमें स्नेह न करे अर्थात् धातु बढावे। दूसरी पिचकारी देनेसे मस्तककी वायु दूर हो। तीसरी पिचकारी मारनेसे शरीरमें बल और कांति ये आवें। चौथी और पांचवीं पिचकारी मारनेसे रस और रुधिर इनकी वृद्धि होवे। छठीं और सातवीं पिचकारी मारनेसे मांस और मेदामें चिकनाई आवे और आठवीं और नौमी पिचकारी मारनेसे मज्जामें तथा श्लोकमें जो चकार है उस करके शुक्र धातुमें स्निग्धता करे है इसप्रकार अठारह पिचकारी देनेसे शुक्रधातुगत जो दोष उनका नाश होय। एवं जो प्राणी छत्तीस पिचकारी सेवन करता है उसमें हाथीके समान बल आनकर वेगमें घोडेको जीतता है तथा देवताके समान कांतिवाला होवे।

अनुवासनबस्ति तथा निरूहणबस्ति ये किसको देवे।

रूक्षायबहुवातायस्नेहबस्तिंदिनेदिने ॥ ३९ ॥ दद्याद्वैद्यस्तथान्येषामन्याबाधामपाहरेत्॥ स्नेहोऽल्पमात्रोरूक्षाणांदीर्घकालमनत्ययः ॥ ४० ॥ तथानिरूहःस्निग्धानामल्पमात्रःप्रशस्यते॥

अर्थ–रूक्ष होकर जो अत्यन्त बादीकरके पीडित हो उसको वैद्य प्रतिदिन (नित्य) स्नेहबस्ति देवै दूसरोंको अर्थात् स्थूलादिक मनुष्योंको निरूहणबस्ति नित्यप्रति देवे तो बादीका रोग दूर हो। रूक्ष पुरुषके स्नेहकी हलकी पिचकारी मारनी परंतु रोगी बहुत दिन बचाहुआ होवे तो स्निग्ध मनुष्यके निरूहण बस्ति थोड़ी देवे।

केवल तैल गुदाके बाहर आवे उसका यत्न।

अथवायस्यतत्कालंस्नेहोनिर्यातिकेवलः ॥ ४१ ॥ तस्यान्योऽन्यतरोदेयोनहिस्निग्धस्यतिष्ठति ॥

अर्थ-स्निग्ध मनुष्यके गुदाके द्वारा पिचकारी मारनेके उपरांत तत्कालही स्नेह बाहर निकले है ठैरे नहीं है । इस कारण स्नेहबस्ति देकर तत्काल निरूहबस्ति देवे इस प्रकार पलटकर, दोनों प्रकारकी बस्ति देवे ।

तैल बाहर न निकले उसके उपद्रव और यत्न ।

अशुद्धस्यमलोन्मिश्रःस्नेहोनैतियदापुनः ॥ ४२ ॥ तदाशैथिल्यमाध्मानंशूलंश्वासश्चजायते ॥पक्वाशयेगुरुत्वंचतत्रदद्यान्निरूहणम् ॥ ४३ ॥ तीक्ष्णंतीक्ष्णौषधियुताफलवर्त्तिर्हितातथा॥ यथानुलोमनंवायुर्मलंस्नेहश्चजायते ॥ ४४ ॥ तथाविरेचनंदद्यात्तीक्ष्णंनस्यंचशस्यते ॥

अर्थ-वमन विरेचन इत्यादिक करके जिस मनुष्यकी शुद्धि नहीं करी उसकी गुदाके द्वारा यदि मलमिश्रित स्नेह बाहर नहीं आया होवे तो शरीरका शिथिलपना, पेटका फूलना, शूल, श्वास और पक्वाशयमें भारीपना ये उपद्रव होते हैं । इनके दूर करनेको तीक्ष्ण निरूहणबस्ति देवे । इसप्रकार तीक्ष्ण औषधों करके मिली फलवर्त्ती जिससे वायु अधोगामी होकर मलमिश्रित स्नेह गुदाके द्वारा बाहर आवे इसप्रकार देवे । तथा तीक्ष्ण जुलाब तथा तीक्ष्ण नस्य देनी चाहिये ।

स्नेहबस्ति जिसको उपद्रव न करे उसका विधान ।

यस्यनोपद्रवंकुर्यात्स्नेहबास्तिरनिःसृतः ॥ ४५ ॥ सर्वोऽल्पोवावृतोरौक्ष्यादुपेक्ष्यःसविजानता ॥

अर्थ-स्नेहबस्ति कहिये स्नेहकी पिचकारी गुदामें मारनेके पश्चात् गुदाका संपूर्ण भाग आवृत कहिये व्याप्त होकर रहनेसे अथवा मनुष्यके रूक्षताके कारण गुदाके एक देशमें व्याप्त होकर रहनेसे शूलादिक उपद्रव नहीं करे उसको बहुतकाल पर्यंत रहने देवे ।

अहोरात्रिमेंभी जिसके तैल बाहर न निकले उसका यत्न ।

अनायातंत्वहोरात्रेस्नेहंसंशोधनैर्हरेत् ॥ ४६ ॥ स्नेहबस्तावनायातेनान्यःस्नेहोविधीयते ॥

अर्थ-जो स्नेह दिनरात्रिमेंभी बाहर न आवे उसको जुलाब देकर बाहर निकाले । स्नेहकी पिचकारी मारनेसे जो स्नेह बाहर न आवे तो उसके दो वार स्नेहकी पिचकारी नहीं देवे।

अनुवासन तैल ।

गुडूच्येरंडपूतीकभार्ङ्गीवृषकरोहिषम् ॥ ४७ ॥ शतावरीसह-

चरंकाकनासापलोन्मितम्॥यवमाषातसीकोलकुलित्थान्प्रसृ-तोन्मितान् ॥४८॥ चतुर्द्रोणांभसापक्त्वाद्रोणशेषेणतेनच ॥ पचेत्तैलाढकेपेष्यैर्जीवनीयैःपलोन्मितैः ॥४९॥ अनुवासनमे तद्धिसर्ववातविकारनुत् ॥

अर्थ-१गिलोय २ अंडकी जड ३ कंजेकी छाल ४ भारंगी ५ अडूसा ६ रोहिषतृण ७ शता ८ पियावांसा और ९ काकनासा (कौआठोडी) ये नौ औषध एक २ पैल प्रमाण लेवे १ जौ २ उडद ३ अलसी ४ बेरकी गुँठली तथा ५ कुलथी ये पांच औषध दो दो पल लेय । इन सब औषधोंको जवकूटकरके उसमें जल ४ द्रोण डालके औटावे । जब एक द्रोण मात्र जल शेष रहे तब उतारके छानलेय । फिर इसमें तिल्लीका तेल एक आढक डालके तथा जीवनीयगणकी औषध एक २ पलप्रमाण लेके बारीक चूर्ण करके उस तेलमें डालके फिर औटावे । जब काढा जलकर तेल मात्र शेष रहे तब उतारके तेलको किसपात्रमें भरके धर रक्खे। इसको अनुवासन तेल कहते हैं यह तेल संपूर्ण बादीके रोगोंको दूर करता है।

अनुवासनबस्तिके विपरीतहोनेसे जो रोगहोवें उनकी चिकित्सा।

षट्सप्ततिर्व्यापदस्तुजायंतेबस्तिकर्मणः ॥ ५० ॥
दूषितात्समुदायेनताश्चिकित्स्यास्तुसुश्रुतात् ॥

अर्थ-बस्तीकर्ममें दोषरूप कुछभी विपरीतता होनेसे छियत्तर प्रकारके रोग उत्पन्न होतेहैं उनकी चिकित्सा सुश्रुत ग्रंथमें कही है उस क्रमसे करे।

वस्तिकर्ममें पथ्य।

पानाहारविहारश्चपरिहारश्चकृत्स्नशः ॥
स्नेहपानसमाःकार्यानात्रकार्याविचारणा ॥ ५१ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेउत्तरखण्डे स्नेहविधिःपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अर्थ-अन्न पान और विहारादिक इनके आचरण जैसे स्नेहपानप्रकरणमें कहेहैं उसी प्रकार संपूर्ण कार्य इस स्नेहबस्तीमें करे इसमें विचार न करे।

इति श्रीशार्ङ्गधरे उत्तरखण्डे माथुरीभाषाटीकायां स्नेहविधिर्नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

१ पल और द्रोण आदिका मान प्रथमखण्डके परिभाषाप्रकरणमें है।

अथ षष्ठोऽध्यायः ६.

निरूहबस्तीका विधान ।

निरूहबस्तिर्बहुधाभिद्यतेकारणांतरैः ॥
तैरेवतस्यनामानिकृतानिमुनिपुंगवैः ॥ १ ॥

अर्थ–निरूहबस्ती कारणभेद करके अनेक प्रकारकी होतीहै और जैसे २ कारणोंके नाम हैं उसी २ प्रकारके उसके नाम होते हैं। उदाहरण जैसे–उत्क्लेशनबस्ती दोषहरबस्ती दोषशमनबस्ती इत्यादिक ।

निरूबस्तीका दूसरा नाम ।

निरूहस्यापरंनामप्रोक्तमास्थापनंबुधैः ॥
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनांस्थापनंमतम् ॥ २ ॥

अर्थ–निरूहबस्तीका दूसरा नाम आस्थापन जानना। दोष तथा रसादिक धातु इनको अपने स्थानपर बसाती है इसीसे इसको आस्थापन कहते हैं। वातादिक दोष अथवा रोग इनको दूर करती है इसीसे इसको निरूह कहते हैं।

निरूहबस्तीमें काढेआदिका प्रमाण ।

निरूहस्यप्रमाणंतुप्रस्थःपादोत्तरंमतम् ॥
मध्यमंप्रस्थमुद्दिष्टंहीनस्यकुडवास्त्रयः ॥ ३ ॥

अर्थ–निरूहबस्ती देनेमें कषायादिकोंका प्रमाण सव प्रस्थ उत्तम, एक प्रस्थ मध्यम और तीन कुडव कनिष्ठ इस प्रकार जानना।

निरूहबस्तीके अयोग्य मनुष्य ।

अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषौक्षतोरस्कःकृशस्तथा ॥ अध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥४॥ गुदशोफातिसारार्तोविषूचीकुष्ठसंयुतः॥गर्भिणीमधुमेहीचनास्थाप्यश्चजलोदरी॥५॥

अर्थ–अत्यंत स्निग्ध, ऊर्ध्वगामी हैं दोष जिसके वह, उरःक्षत करके पीडित, कृश, पेटका फूलना, ओकारी, हिचकी, बवासीर, खाँसी, श्वास इन करके पीडित गुदामें पीडा, सूजन, अतिसार, विषूचिका और कुष्ठ इन करके पीडित, गर्भिणी स्त्री, मधुप्रमेहवाला, जलंधरवाला इतने रोगी आस्थापन (निरूहबस्ती) के योग्य नहीं हैं।

निरूहबस्तीमें योग्यप्राणी ।

वातव्याधावुदावर्तेवातासृग्विषमज्वरे ॥ मूर्च्छातृष्णोदराना-हमूत्रकृच्छ्राश्मरीषुच ॥ ६ ॥ वृद्धासृग्दरमंदाग्निप्रमेहेषुनिरूह-णम् ॥ शूलेऽम्लपित्तेहृद्रोगेयोजयेद्विधिवद्बुधः ॥ ७ ॥

अर्थ—वातरोग, उदावर्त्तरोग, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, प्यास, उदर, आनाहरोग, मूत्र-कृच्छ्र, पथरी रोग, बहुत दिनका रक्तप्रदर, मंदाग्नि, प्रमेह, शूलरोग, अम्लपित्त तथा हृद्रोग ये रोग निरूहवस्तीके योग्य जानने चाहिये ।

निरूहबस्ती देनेका प्रकार।

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रंस्निग्धस्विन्नमभोजितम्॥मध्याह्नेगृहमध्ये चयथायोग्यंनिरूहयेत् ॥ ८ ॥ स्नेहबस्तिविधानेनबुधःकुर्या-न्निरूहणम् ॥ जातेनिरूहेचततोभवेदुत्कटकासनः ॥ ९ ॥ ति-ष्ठेन्मुहूर्तमात्रंचनिरूहगमनेच्छया ॥ अनायातंमुहूर्तेतुनिरूहं शोधनैर्हरेत् ॥ १० ॥

अर्थ—जो मलमूत्रादिक त्याग चुकाहो, स्निग्ध, जिसका पसीना निकाल चुका हो, जिसने भोजन न कियाहो ऐसे मनुष्यको दुपहरके समय घरके बीच योग्यता विचार निरूहण-बस्ती देवे । और निरूहणबस्तीके कर्म होनेके अनंतर वह निरूह बाहर आनेके लिये एक मुहूर्त (दोघडी) पर्यंत ऊकरू बैठा रक्खे । यदि एक मुहूर्त्तमेंभी निरूह बाहर नहीं निकले तो उस-को शोधन करके बाहर निकालनेका यत्नकरे ।

निरूह बाहर न आनेपर उसके शोधनकी औषधि ।

निरूहैरेवमतिमान्क्षारमूत्राम्लसैंधवैः ॥

अर्थ—निरूहबस्ती बाहर न निकलनेपर जवाखार गोमूत्र नींबूका रस अथवा जंभीरीका रस और सैंधानमक इन चार औषधियोंको एकत्र करके गुदामें फिर निरूहबस्ती देवे तो निरूह बाहर निकले ।

उत्तमनिरूहबस्तीहोनेके लक्षण ।

यस्यक्रमेणगच्छंतिविट्पित्तकफवायवः ॥ ११ ॥ लाघवंचोपजायेतसुनिरूहंतमादिशेत् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको निरूहबस्ती दी है उसका मल पित्त कफ और वायु ये क्रमकरके

१ जलोदरके सिवाय दूसरे उदररोगमें निरुहबस्ती देवे ।

गुदाके रास्तेसे बाहर आकर शरीरमें हलकापन आनेसे निरूहवस्तीका कर्म उत्तम हुआ जानना।

जिसको निरूहवस्ती उत्तम न हुईहो उसके लक्षण ।

यस्यस्याद्बस्तिरल्पाल्पवेगोहीनमलानिलः ॥ १२ ॥
मूत्रार्तिजाड्यारुचिमान्दुर्निरूढंतमादिशेत् ॥

अर्थ–जिसको निरूहबस्ती दी उस बस्तीके बाहर आनेका वेग अल्प होवे इसीसे मल और वायु ये जितने बाहर आने चाहिये उतने नहीं आवे और मूत्रके स्थानपर पीडा, शरीरका भारी होना तथा अरुचि इतने लक्षण करके युक्त मनुष्यको निरूहबस्ती उत्तम नहीं हुई ऐसा जानना ।

उत्तम निरूहवस्ती तथा स्नेहबस्तीके लक्षण ।

विविक्ततामनस्तुष्टिःस्निग्धताव्याधिनिग्रहः ॥ १३ ॥
आस्थापनस्नेहबस्त्योःसम्यग्दानेतुलक्षणम् ॥
अनेनविधिना युंज्यान्निरूहंबस्तिदानवित् ॥ १४ ॥

अर्थ–रोगीके देहमें हलकापन, मनकी प्रसन्नता, चिकनापन तथा रोगका नाश ये उत्तम आस्थापन तथा स्नेहनबस्तीके लक्षण जानने । इसी विधिसे वस्तीकर्मको जाननेवाले वैद्य निरूहबस्ती देवे ।

निरूहणवस्ती कितनीवार देवे उसका प्रकार ।

द्वितीयंवातृतीयंवाचतुर्थंवायथोचितम् ॥ सस्नेहएकःपवनेपित्ते द्वौपयसासह॥ १५॥कषायकटुरूक्षाद्याः कफकोष्णास्त्रयोमताः ॥ पित्तश्लेष्मानिलाविष्टंक्षीरयूषरसैःक्रमात् ॥ १६ ॥ निरूहंयोजयित्वाचततस्तदनुवासयेत् ॥

अर्थ–दो वार तीनवार अथवा चारवार जैसा दोष होय उसके अनुसार वैद्य निरूहबस्ति देवे । बादीके रोगमें स्नेहयुक्त बस्ति एकवार देवे, पित्तरोग होय तो दुग्धयुक्त निरूहबस्ति दो वार देवे । तथा कफरोग होवे तो कषाय[1] कटु[2] और रूक्ष[3] इत्यादिक पदार्थ एकत्रकर कुछ गरम करके तीनवार निरूहबस्ती देवे अर्थात् इन औषधोंकी तीन-वार पिचकारी मारे । अथवा पित्त और कफ बादी इन करके पीडित मनुष्य होय

---

१ हरड आमले इत्यादिक कषाय पदार्थ जानने ।
२ सोंठ मिरच आदि कटु पदार्थ जानने ।
३ कुलथी जौ आदि रूक्ष पदार्थ इनका काढा करके बस्ती देवे ।

तो दूध यूष और मांसरसे इनको क्रम करके निरूहबस्ति देवे फिर अनुवासन बस्ति देय अर्थात् स्नेहकी पिचकारी मारे।

सुकुमारआदिमनुष्योंके निरूहबस्ति देना।

सुकुमारस्यवृद्धस्यबालस्यचमृदुर्हितः ॥ १७ ॥
बस्तिस्तीक्ष्णःप्रयुक्तस्तुतेषांहन्याद्बलायुषी ॥

अर्थ—सुकुमार (नाजुक) मनुष्य वृद्ध और बालक इनके हलकी पिचकारी मारे। तथा इनके तीक्ष्ण बस्ति देनेसे इनके बलका और आयुका नाश होता है। इसीसे सुकुमार आदिको तीक्ष्ण बस्ती न देवे।

आदि मध्य और अन्तमें बस्तिका देना।

दद्यादुत्क्लेशनंपूर्वंमध्येदोषहरंततः ॥ १८ ॥
पश्चात्संशमनीयंचदद्याद्बस्तिंविचक्षणः ॥

अर्थ—प्रथम दोषोंको उत्क्लेशित करनेवाली औषधोंकी बस्ति देवे तथा मध्यमें दोषनाशक औषधोंकी बस्ति देय। और अन्तमें संशमनीय अर्थात् अपने २ स्वस्थानमें दोष बैठजावे ऐसी बस्ति देय अर्थात् ऐसी औषधोंकी पिचकारी मारे।

उत्क्लेशनबस्ति।

एरंडबीजंमधुकंपिप्पलीसैंधवंवचा ॥ १९ ॥
हपुषाफलकल्कश्चबस्तिरुत्क्लेशनःस्मृतः ॥

अर्थ—१ अंडोके बीज २ महुआके फल ३ पीपल ४ सैंधानमक ५ वच और हाऊबेरके पत्ते और मैनफल ये औषध समान भाग ले कूटके कल्क करे फिर दोषोंको उत्क्लेशित करनेके लिये यह उत्क्लेशन बस्ति देवे।

दोषहरबस्ति।

शताह्वामधुकंबिल्वंकौटजंफलमेवच ॥ २० ॥
सकांजिकःसगोमूत्रोबस्तिर्दोषहरःस्मृतः ॥

अर्थ—१ सोवा २ मुलहटी ३ बेलगिरी और इन्द्रजौ ये चार औषध समान भाग ले कांजीमें बारीक पीस और इसमें गोमूत्र मिलाय गुदामें पिचकारी मारे तो वातादिक दोषोंका शमन होवे। इसको दोषहरबस्ती कहते हैं।

---

१ वमनाध्यायमें वमन करनेके पश्चात् पथ्य कहा है उस जगह टिप्पणीमें यूष कल्क बनानेकी विधि लिखी है सो जाननी।

२ विरेचनाध्यायमें पथ्य कहा है उसी स्थानपर टिप्पणीमें मांसरसकी विधि कही है।

शोधनबस्ति ।

शोधनद्रव्यनिक्काथस्तत्कल्कैःस्नेहसैंधवैः ॥ २१ ॥
युक्त्याखजेनमथिताबस्तयःशोधनाःस्मृताः ॥

अर्थ—निशोथादिक शोधन द्रव्योंका काढा करके और उन्हीं शोधनद्रव्योंका कल्क करे तथा सैंधानमक उस काढेमें मिलाय युक्तिसे रई डालके मथ लेवे फिर दोषोंके शोधन करनेको इसकी बस्ती देवे ।

दोषशमन बस्ति ।

प्रियंगुर्मधुकोमुस्तातथैवचरसांजनम् ॥ २२ ॥
सक्षीरःशस्यतेबस्तिदोषाणांशमनेस्मृतः ॥

अर्थ—१ फूलप्रियंगु २ महुआके फल ३ नागरमोथा और ४ रसोत इन चार औषधोंको समान भाग लेकर दूधमें बारीक पीस दोष शमन होनेके अर्थ बस्ती देवे अर्थात् पिचकारी मारे ।

लेखनबस्ति ।

त्रिफलाक्काथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः ॥ २३ ॥
ऊषकादिप्रतीवापैर्बस्तयोलेखनाः स्मृताः ॥

अर्थ—त्रिफलाके काढेमें गोमूत्र सहत और जवाखार मिलावे तथा ऊषकादिक गणकी औषधोंका चूर्ण मिलायके बस्ति देनेको लेखन (कहिये मेदोरोगादिकोंका जो कृशीकरण) बस्ति कहते हैं ।

बृंहणबस्ति ।

बृंहणद्रव्यनिक्काथःकल्कैर्मधुरकैर्युतः ॥ २४ ॥
सर्पिर्मांसरसोपेताबस्तयोबृंहणामताः ॥

अर्थ—मूसली गोखरू और कौंचके बीज इत्यादिक बृंहण अर्थात् धातुवर्धक द्रव्योंका काढा कर उसमें महुआके पत्ते दाख और अनार इत्यादिक मधुर द्रव्योंका कल्क, घी और मांसरस इन सबको डालके बृंहण होनेके वास्ते बस्ति देवे ।

पिच्छिलबस्ति ।

बदर्यैरावतीशेलुशाल्मलीधन्वनागराः ॥२५॥ क्षीरसिद्धाःक्षौद्रयुक्तानाम्नापिच्छिलसंज्ञिताः ॥ अजोरभ्रैणरुधिरैर्युक्तादेया विचक्षणैः ॥२६॥ मात्रापिच्छिलबस्तीनांपलैर्द्वादशभिर्मता॥

अर्थ–१ बेरकी छाल २ नारंगी ३ गोंदीकी छाल ४ सेमरकी छाल ५ धमासा और ६ सोंठ ये छः औषध समान भाग लेके दूधमें पीस उसमें बकरा मेंढा और हरिण इनका रुधिर मिलायके कुशल वैद्य दोष पतले होनेके वास्ते इसकी बस्ति देवे। इस बस्तिको पिच्छिल बस्ती कहते हैं। इस बस्तीकी मात्राका प्रमाण बारह पलहै।

निरूहणबस्ति।

दत्वादौसैंधवस्याक्षंमधुनःप्रसृतिद्वयम् ॥२७॥ विनिर्मथ्यततोदद्यात्स्नेहस्यप्रसृतित्रयम् ॥ एकीभूतेततःस्नेहेकल्कस्यप्रसृतिंक्षिपेत् ॥ २८ ॥ संमूर्च्छितेकषायेतुचतुःप्रसृतिसंमितम् ॥ क्षिप्त्वाविमथ्यदद्याच्चनिरूहंकुशलोभिषक् ॥ २९ ॥ वातेचतुःपलंक्षौद्रंदद्यात्स्नेहस्यषट्पलम्॥ पित्तेचतुःपलंक्षौद्रंस्नेहस्यच पलत्रयम् ॥ ३० ॥ कफेषट्पलिकंक्षौद्रंस्नेहस्यैवचतुःपलम्॥

अर्थ–प्रथम सैंधानमक एक अक्षप्रमाण कहिये कर्ष प्रमाण तथा सहत दो प्रसृति अर्थात् चार पल इन दोनोंको एकत्र मर्दन करे। फिर उसमें घी अथवा तेल छः पलडालके एकत्र मिलाय दे। तब कल्ककी औषधि कही हैं उनका कल्क करके उस पूर्वोक्त स्नेहमें मिलावे अथवा उस कल्ककी औषधी संमूर्च्छित कहिये औटायके काढाकर उस स्नेहमें मिलावे। कुशल वैद्य इसकी निरूहबस्ती दव अर्थात् गुदामें पिचकारी मारे। इसे निरूहबस्तिकी साधारण विधि जाननी। विशेष विधि–यदि बादीका रोग होवे तो चार पल सहत और स्नेह छः पल लेके एकत्रकर बस्ती देवे। पित्तरोग होय तो सहत चार पलऔर स्नेह तीन पल ले एकत्रकर बस्ति देवे।तथा कफरोग होय तो सहत छः पल तथा स्नेह चारपल इनको एकत्रकरके बस्ति देवे।

मधुतैलकबस्ति।

एरंडक्वाथतुल्यांशंमधुतैलंपलाष्टकम् ॥३१॥ शतपुष्पापलार्धेनसैंधवार्धेनसंयुतम् ॥ मधुतैलकसंज्ञोऽयंबस्तिःखजविलोडितः ॥३२॥ मेदोगुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्तनाशनः ॥ बलवर्णकरश्चैववृष्योबृंहणदीपनः ॥ ३३ ॥

अर्थ–अंडकी जडका काढा ८ पल और सहत तथा तेल ये चार २ पल एवं सोंफ और सैंधानमक आधे २ पल ले सबको एकत्रकर रईसे मथलेवे इसको मधुतैलक बस्ति कहते हैं। यह बस्ति देनेसे मेदोरोग, गुल्मरोग, कृमिरोग, प्लीहा, मल और उदावर्त्त वायु इनका नाश होय। तथा यह बल कांति स्त्रीविषयप्रीति तथा धातुओंकी वृद्धि इनको देती है और अग्निको प्रदीप्त करती है।

दीपनबस्ति ।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानांप्रसृतिःप्रसृतिर्भवेत् ॥
हपुषासैंधवाक्षांशौबस्तिःस्याद्दीपनःपरः ॥ ३४ ॥

अर्थ—सहत घी और दूध ये दो दो पल लेवे हाऊबेर और सैंधानमक ये दोनों औषध कर्षमात्र ले बारीक पीसके उस सहत घी और दूधमें भिगोयके जठराग्नि प्रदीप्त होनेके अर्थ बस्ति देवे ।

युक्तरथबस्ति ।

एरंडमूलनिःक्काथोमधुतैलंससैंधवम् ॥
एषयुक्तरथोबस्तिःसवचापिप्पलीफलः ॥ ३५ ॥

अर्थ—अंडकी जडका काढा करके उसमें सहत और तेल डाले । तथा सैंधानमक वच पीपल और मैनफल ये चार औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे । उसको पूर्वोक्त काढेमें मिलाय गुदामें पिचकारी देवे । इसको युक्तरथ बस्ति कहते हैं । यह बस्ति सर्वरोगोंपर है ।

सिद्धबस्ति ।

पंचमूलस्यनिक्काथस्तैलंमागधिकामधु ॥
ससैंधवःसमधुकःसिद्धबस्तिरितिस्मृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—बृहत्पंचमूलका काढाकरे तेल पीपलकाचूर्ण सैंधानमक महुआकी लकडीके भीतरकागाभा अथवा मुलहटी ये सब उस काढेमें डालके बस्ति देवे । इसको सिद्धबस्ति कहतेहैं । इसे सर्वरोगोंपर देवे ।

बस्तिकर्ममें पथ्यापथ्य ।

स्नानमुष्णोदकैःकुर्याद्दिवास्वप्नमजीर्णताम् ॥
वर्जयेदपरंसर्वमाचरेत्स्नेहबस्तिवत् ॥ ३७ ॥
इति श्रीशार्ङ्गधरे उत्तरखंडे निरूहणबस्तिविधिः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थ—बस्तिकर्म कियेहुए मनुष्यको गरम जलसे स्नान करावे, दिनमें सोवे नहीं, अजीर्ण न होने देवे और आचरण स्नेह बस्तिके समान करे यह पथ्य है ।

इति श्रीशार्ङ्गधरेउत्तरखण्डे माथुरीभाषाटीकायां निरूहणबस्तिविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

उत्तरबस्तिका क्रम।

अतःपरंप्रवक्ष्यामिबस्तिमुत्तरसंज्ञितम्॥द्वादशांगुलकंनेत्रंमध्ये चक्रुतकर्णिकम् ॥१॥ मालतीपुष्पवृन्ताभंछिद्रंसर्षपनिर्गमम् ॥

अर्थ–अब इसके उपरांत उत्तरबास्तिका प्रमाण कहताहूँ। बारह अंगुल लंबी नली हो उस नलीका मध्यभाग कमलपत्रकी कार्णिकाके समान होना चाहिये। और वह नली मालतीके फूलके डठरेकेसमान मोटी हो उसके छिद्रमें एक सरसों चली जावे इतना बडा होना चाहिये।

उत्तरबस्तिकी योजना कैसे करै।

पंचविंशतिवर्षाणामधोमात्राद्विकार्षिकी ॥ २ ॥
तदूर्द्ध्वंपलमानंचस्नेहस्योक्ताविचक्षणैः ॥

अर्थ–मनुष्यकी अवस्था पच्चीस वर्ष होनेपर्यंत विचक्षण वैद्य बस्तिमें स्नेहकी मात्रा दो कर्ष योजना करे। पच्चीस वर्षके पश्चात् १ पल देवे।

उत्तरबस्तिकी योजनाका प्रकार।

अथास्थापनशुद्धस्यतृप्तस्यस्नानभोजनैः ॥ ३ ॥ स्थितस्य जानुमात्रेणपीठेत्विष्टशलाकया ॥ स्निग्धयामेढ्रमार्गेचततोनेत्रं नियोजयेत् ॥ ४ ॥ शनैःशनैर्घृताभ्यक्तंमेढ्ररंध्रेऽगुलानिषट् ॥ ततोऽवपीडयेद्बस्तिंशनैर्नेत्रंचनिर्हरेत् ॥५॥ ततःप्रत्यागतेस्ने- हेस्नेहबस्तिक्रमोहितः ॥

अर्थ–जो आस्थापन कहिये निरूहणबस्ति करके शुद्ध हुआ तथा स्नान और भोजन करके तृप्त हुआ है ऐसे मनुष्यको आसनपर घोटुओंके बल बिठाकर यथायोग्य सचिक्कण सलाई देवे। उस नलीपर घी लगाय शिश्नमार्गमें योजना करके बस्तिका पीडन करे अर्थात् पिचकारी मारे। फिर उस नलीको धीरे २ बाहर निकाल लेवे। फिर उस स्नेहके बाहर आनेसे उत्तम बस्तिकर्म होता है। इस प्रकार स्नेहबास्तिका क्रम जानना।

स्त्रियोंके बस्ति देनेकी विधि।

स्त्रीणांकनिष्ठिकास्थूलंनेत्रंकुर्याद्दशांगुलम् ॥ ६ ॥
मुद्गप्रवेशंयोज्यंचयोन्यंतश्चतुरंगुलम् ॥
द्व्यंगुलंमूत्रमार्गेचसूक्ष्मंनेत्रंनियोजयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ-स्त्रियोंके बस्ती देनेके वास्ते नेत्र कहिये बस्तीकी नली छोटी उँगलीके बराबर मोटी हो वह दश अंगुलकी लंबी तथा जिसमें मूँग चलाजावे इतना छिद्र होना चाहिये उस नलीको योनिके भीतर चार अंगुल प्रवेश करके फिर पिचकारी मारे । स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें बहुत बारीक नली लगायके उस नलीको दो अंगुल मूत्रमार्गमें प्रवेश करके पिचकारी मारे ।

बालकोंके बास्ति देनेका प्रमाण ।

मूत्रकृच्छ्रविकारेषुबालानांत्वेकमंगुलम् ॥
शनैर्निष्कंपमाधेयंसूक्ष्मनेत्रंविचक्षणैः ॥ ८ ॥

अर्थ-बालकोंके मूत्रकृच्छ्रविकार होनेसे वैद्य निष्कंप अर्थात् हाथ न हिले इस प्रकारसे बारीक नलीकी योजना करके धीरे २ उस नलीको शिश्नके भीतर १ अंगुल प्रमाण प्रवेश करके पिचकारी मारे ।

स्त्रियोंके तथा बालकोंके बस्ति देनेमें स्नेहकी मात्रा ।

योनिमार्गेषुनारीणांस्नेहमात्राद्विपालिकी ॥
मूत्रमार्गेपलोन्मानाबालानांचद्विकार्षिका ॥ ९ ॥
उत्तानायैस्त्रियैदद्यादूर्ध्वजान्वैविचक्षणः ॥
अप्रत्यागच्छतिभिषग्बस्तावुत्तरसंज्ञके ॥ १० ॥

अर्थ-स्त्रियोंके योनिमार्गमें बस्ति देनेमें स्नेहमात्रा अर्थात् स्नेहका प्रमाण दो पलका जानना । स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें स्नेहमात्रा एक पलकी जाननी । बालकोंके दो कर्ष प्रमाण जाननी । उत्तरसंज्ञक बस्तिमें कुशल वैद्य उस स्त्रीको सीधी बैठाकर उसके घोंटू ऊपरको धर पिचकारी मारे । यदि स्नेह बाहर न आवे तो आगे लिखी विधि करे ।

शोधनद्रव्यकरके बस्तिका विधान ।

भूयोबस्तिंनिदध्याच्चसंयुक्तैः शोधनैर्गणैः ॥
फलवर्तिंनिदध्याद्वायोनिमार्गेदृढांभिषक् ॥ ११ ॥
सूत्रैर्विनिर्मितांस्निग्धशोधनद्रव्यसंयुताम् ॥
दह्यमानेतथाबस्तौदद्याद्वस्तिंविचक्षणः ॥ १२ ॥
क्षीरवृक्षकषायेणपयसाशीतलेनच ॥
बस्तिःशुक्ररुजःपुंसांस्त्रीणामार्तवजारुजः ॥ १३ ॥

हन्यादुत्तरबस्तिस्तुनोचितोमोहिनांकचित् ॥

अर्थ–पीछे कहाहुआ उपायकरे शोधन द्रव्य (एरंडादि तैल समुदाय) की योनिमार्गमें पिचकारी मारे। अथवा एरंडबीजादिक जो औषधि हैं वे उनकी करडी बत्ती बनायके अथवा सूतकी बत्ती करके उस बत्तीके अंडी आदि औषध लपेटकर योनिमें योजना करे। उस बत्तीके अधो भागमें बस्तिस्थान है उसके विकृत होनेसे गूलर वड (आदि शब्दसे क्षीरवृक्ष) उनका काढा करके बस्ति देवे अथवा शीतल दूधकी बस्ति देवे तो बस्तिस्थान शुद्ध होवे। यह बस्ति शुक्रधातुसंबंधी पीडा होती है उस को तथा स्त्रियोंके रजोदर्शन संबंधी पीडा होतीहै उसको दूर करती है तथा जिन मनुष्योंके प्रमेह है उनको उत्तरबस्तिसे कदाचित् लाभ नहीं होता।

बस्तिकर्मके उत्तमहोनेके लक्षण।

सम्यग्दत्तस्यलिंगानिव्यापदःक्रमएवच ॥ १४ ॥
बस्तेरुत्तरसंज्ञस्यशमनंस्नेहबस्तिना ॥

अर्थ–उत्तरसंज्ञक बस्ति उत्तम होनेके लक्षण और दोष और उनकी शांति स्नेह बस्तिके समान जाननी चाहिये।

गुदामें फलवर्तीकी योजना।

घृताभ्यक्तेगुदेक्षेप्याश्लक्ष्णास्वांगुष्ठसंनिभा ॥
मलप्रवर्तिनीवर्तिःफलवर्तिश्चसास्मृता ॥ १५ ॥
इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायांसंहितायां चिकित्सास्थाने
उत्तरखंडे उत्तरबस्तिवर्णनोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ–गुदामें घी लगायके रोगीको अँगूठेके बराबर उत्तम करडी बत्ती करके एरंड बीजादिक रेचक औषधोंका उस बत्तीपर लेप करके दस्त होनेके वास्ते उसको गुदामें प्रवेश करे। इसको फलवर्ती कहते हैं।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितभाषामाथुरीटीकाया-
मुत्तरखंडस्य सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ८.

नस्यविधि।

नस्यंतत्कथ्यतेधीरैर्नासाग्राह्यंयदौषधम् ॥
नावनंनस्यकर्मेतितस्यनामद्वयंमतम् ॥ १ ॥

अर्थ—नाकमें डालनेकी औषधोंको नस्य कहते हैं। उस नस्यके नावन और नस्यकर्म ऐसे दो नाम हैं।

नस्यके भेद ।

नस्यभेदोद्विधाप्रोक्तोरेचनंस्नेहनंतथा ॥
रेचनंकर्षणंप्रोक्तंस्नेहनंबृंहणंमतम् ॥ २ ॥

अर्थ—इस नस्यके भेद दो हैं—एक रेचन और एक स्नेहन तिनमें रेचन नस्य वातादि दोषोंको छेदन करता है और जो स्नेहन है वह धातुवृद्धि करता है।

नस्यका काल ।

कफपित्तानिलध्वंसेपूर्वमध्यापराह्णके ॥
दिनस्यगृह्यतेनस्यंरात्रावप्युत्कटेगदे ॥ ३ ॥

अर्थ—कफके नाश करनेको नस्य प्रातःकाल देवे पित्तके नाश करनेको दो प्रहर दिन चढे नस्य देवे तथा वायुके नाश करनेको सायंकालमें नस्य देना। यदि रोग अत्यंत प्रबलताके साथ होवे तो रात्रिके समय नस्य देवे।

नस्यका निषेध ।

नस्यंत्यजेद्भोजनांतेदुर्दिनेचापतर्पणे॥तथानवप्रतिश्यायीगर्भिणीगरदूषितः ॥४॥ अजीर्णीदत्तबस्तिश्चपित्तस्नेहोदकासवः ॥ क्रुद्धःशोकाभिभूतश्चतृषार्तौवृद्धबालकौ ॥ ५ ॥ वेगावरोधीस्नातश्चस्नातुकामश्चवर्जयेत् ॥

अर्थ—भोजन करनेके पश्चात् नस्य न लेवे। जिस दिन आकाश बद्दलोंसे घिरा होवे उस दिन नस्य न ले। लंघन करके जिसको नवीन पीनसका रोग होवे, गर्भिणी स्त्री, त्रिषदोषकरके और अजीर्ण करके पीडित मनुष्य, जिसके बस्तिप्रयोग किया हो, घी तेल इत्यादि स्नेह जल और मद्य इनका सेवन करनेवाला मनुष्य, क्रोध शोक तथा तृषाके पीडित, वृद्ध, बालक, वात मूत्र और मल इनका निरोध करनेवाला मनुष्य स्नान किया हुआ अथवा जिसको स्नान करना है वह इतने मनुष्योंका नस्य नहीं देना चाहिये।

नस्यकर्ममें योग्यायोग्य रोगी ।

अष्टवर्षस्यबालस्यनस्यकर्मसमाचरेत् ॥ ६ ॥
अशीतिवर्षादूर्ध्वंचनावनंनैवदीयते ॥

अर्थ—आठवर्षके बालकके नस्य कर्म करे और अस्सीवर्षके उपरांत अवस्थावाले मनुष्यको नस्यकर्म नहीं करना।

अथवैरेचनंनस्यंग्राह्यंतैलैःसुतीक्ष्णकैः ॥ ७ ॥
तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वास्नेहैःक्वाथैरसैस्तथा ॥

अर्थ–विरेचन नस्य, अजमायन राई आदिका तीक्ष्ण तेल काढके देना चाहिये। अथवा तीक्ष्ण औषधोंकेही साथ तैल सिद्धकरके अथवा तीक्ष्ण औषधोंका काढा करके अथवा रसमें स्नेह सिद्ध करके नस्य देवे।

रेचकनस्यका प्रमाण।

नासिकारंध्रयोरष्टौषट्चत्वारश्चबिंदवः ॥ ८ ॥
प्रत्येकंरेचनेयोज्यामुख्यमध्यांत्यमात्रया ॥

अर्थ–रेचनमें नाकके दोनों छिद्रों (नथनों) में औषधकी आठ बिंदु डालना उत्तम मात्रा छः बिंदु (बूँद) डालना मध्यम मात्रा जाननी। और चार बिंदु डालना कनिष्ठ मात्रा कही जाती है।

नस्यकर्ममें औषधका प्रमाण।

नस्यकर्मणिदातव्यंशाणैकंतीक्ष्णमौषधम् ॥ ९ ॥ हिंगुस्याद्यवमात्रंतुमाषैकंसैंधवंस्मृतम् ॥ क्षीरंचैवाष्टशाणंस्यात्पानीयंचत्रिकार्षिकम् ॥ १० ॥ कार्षिकंमधुरंद्रव्यंनस्यकर्मणियोजयेत् ॥

अर्थ–नस्यकर्ममें तीक्ष्ण औषध होय तो एक शाण डाले। हींग एक यवप्रमाण, सैंधानमक २ मासे, दूध आठ शाण, जल तीन कर्ष, तथा खाँड अनार इत्यादिक मधुर द्रव्य होंय वे प्रत्येक एक कर्ष प्रमाण डालने चाहिये। इसप्रकार औषधोंकी योजना करे।

विरेचननस्यके दूसरे दो भेद।

अवपीडःप्रधमनंद्वौभेदावपरौस्मृतौ ॥ ११ ॥
शिरोविरेचनस्थानेतौतुदेयौयथायथम् ॥

अर्थ–उस विरेचन नस्यके दो भेद हैं। एक अवपीड तथा एक प्रधमन। इन दोनोंकी मस्तकके रेचन करनेमें योजना करे।

अवपीडन और प्रधमनके लक्षण।

कल्कीकृतादौषधाद्यःपीडितोनिःसृतोरसः ॥ १२ ॥ सोऽवपीडःसमुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ षडंगुलाद्विवक्त्रायानाडीचूर्णंतयाधमेत् ॥ १३ ॥ तीक्ष्णंकोलमितंवक्त्रवातैःप्रधमनंहितत् ॥

अर्थ–तीक्ष्ण औषधको पीसके कल्ककरके निचोडलेवे उस निचुडे हुए रसको अवपीड कहते हैं । छः अंगुल लंबी और दो मुखकी बनाकर उसमें तीक्ष्णचूर्ण १ कोल डालके मुखकी पवनसे नाकमें फूंक देवे । इसको प्रधमनसंज्ञक नस्य कहते हैं ।

रेचन और स्नेहनयोग्य प्राणी ।

ऊर्ध्वजत्रुगतेरोगेकफजेस्वरसंक्षये॥ १४ ॥अरोचकेप्रतिश्याये शिरःशूलेचपीनसे ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषुनस्यंवैरेचनंहितम् ॥ ॥ १५ ॥ भीरुस्त्रीकृशबालानांनस्यंस्नेहेनदीयते ॥

अर्थ–ऊर्ध्व जत्रुगतरोग, कफसंबंधी स्वरका क्षय, अरुचि, प्रतिश्याय, मस्तकशूल, पीनस, सूजन, अपस्मार और कुष्ठ इन रोगोंमें रेचक नस्य हितकारी जानना । डराहुआ मनुष्य, स्त्री कृश और बालक इनको स्नेहयुक्त नस्य देवे ।

अवपीडननस्ययोग्य प्राणी ।

गलरोगेसन्निपातेनिद्रायांविषमज्वरे ॥ १६ ॥
मनोविकारेकृमिषुयुज्यतेचावपीडनम् ॥

अर्थ–गलरोग, सन्निपात, अत्यंत निद्रा, विषमज्वर, मनके विकार और कृमिरोग इनमें अवपीडन नस्य देना चाहिये ।

प्रधमननस्ययोग्य प्राणी ।

अत्यंतोत्कटदोषेषुविसंज्ञेषुचदीयते ॥ १७ ॥
चूर्णंप्रधमनंधीरैस्तद्धितीक्ष्णतरंयतः ॥

अर्थ–अत्यंत उत्कट दोष (मूर्च्छा अपस्मारादिक तथा संज्ञा नष्ट हुई हो ऐसे संन्यासादिक रोग) इनमें अत्यंत तीक्ष्ण ऐसी प्रधमनसंज्ञक चूर्ण नस्य देना चाहिये ।

रेचकसंज्ञक नस्य ।

नस्यंस्याद्गुडशुंठीभ्यांपिप्पल्यासैंधवेनच ॥ १८ ॥
जलपिष्टेनतेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः ॥
हनुमन्यागलोद्भूतानश्यंतिभुजपृष्ठजाः ॥ १९ ॥

अर्थ–सोंठको गरम जलमें औटाय उसमें गुड मिलाय नासिकामें डाले । तथा पीपल और सैंधानमक इनको गरम जलमें औटाय नस्य देवे अर्थात् नाकमें डाले तो नेत्र कान नाक मस्तक ठोढी गर्दन भुजा (हाथ) और पीठ इनकी पीडाको दूर करे ।

---

१ सोंठ मिरच वच इत्यादिक तीक्ष्ण औषधोंको जलमें पीसे ।

रेचननस्यका दूसरा प्रकार।

मधूकसारकृष्णाभ्यांवचामरिचसैंधवैः ॥
नस्यंकोष्णजलेपिष्टंदद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ २० ॥
अपस्मारेतथोन्मादेसन्निपातेऽपतंत्रके ॥

अर्थ-महुआकी लकडीके भीतरका गाभा पीपल वच काली मिरच और सैंधानमक इन सब औषधोंको गरम जलमें पीस नस्य देवे तो मृगी उन्माद सन्निपात और अपतन्त्रक वायु इन्से नष्ट हुई चेष्टा दूर होके मनुष्य सावधान होय।

रेचननस्यका तीसरा प्रकार।

सैंधवंश्वेतमरिचंसर्षपाःकुष्ठमेवच ॥ २१ ॥
बस्तमूत्रेणपिष्टानिनस्यंतंद्रानिवारणम् ॥

अर्थ-सैंधानमक सफेद मिरच सफेदसरसों और कूठ ये औषध बकरेके मूत्रमें पीस नस्य देवे तो तंद्रा (और पूर्वोक्त अपस्मारादिक रोग) दूर होवें।

प्रधमनसंज्ञक नस्य।

रोहीतमत्स्यपित्तेनभावितंसैंधवंवचा ॥ २२ ॥
मरिचंपिप्पलीशुंठीकंकोलंलशुनंपुरम् ॥
कट्फलंचेतितच्चूर्णंदेयंप्रधमनंबुधैः ॥ २३ ॥

अर्थ-सैंधानमक वच काली मिरच पीपल सोंठ कंकोल लहसुन गूगल और कायफर इनका चूर्ण कर रोहू मछलीके पित्तकी इस चूर्णमें पुट दे। जब सूख जावे तब पूर्वोक्त प्रधमननलीमें इस चूर्णको भरके नस्य देवे, तो पूर्वोक्त तंद्रादिक दोष दूर होवें। इस चूर्णको प्रधमन कहते हैं।

बृंहणनस्यकी कल्पना।

अथबृंहणनस्यस्यकल्पनाकथ्यतेऽधुना ॥ मर्शश्चप्रतिमर्शश्च द्वौभेदौस्नेहनेमतौ॥२४॥ मर्शस्यतर्पणीमात्रामुख्याशाणैःस्मृताष्टभिः ॥ मध्यमाचचतुःशाणैर्हीनाशाणमितास्मृता॥२५॥ एकैकस्मिंस्तुमात्रेयंदेयानासापुटेबुधैः ॥ मर्शस्यद्वित्रिवेलंवा वीक्ष्यदोषबलाबलम् ॥२६॥ एकांतरंद्व्यंतरंवानस्यंदद्याद्विचक्षणः ॥ त्र्यहंपंचाहमथवासप्ताहंवासुयंत्रितम् ॥ २७ ॥

अर्थ–बृंहणे (धातुको बढानेवाली) नस्यकी कल्पना कहता हूं बृंहण नस्यके दो भेद हैं–मर्श प्रतिमर्श ये स्नेहन विषयमें लेनी । तिनमें मर्शनस्यकी तर्पणी मात्रा जाननी । वह आठ शाणकी मुख्य मात्रा होती है । चार शाणकी मध्यम मात्रा तथा एक शाणकी हीन मात्रा जाननी । उस मात्राको दोषोंका बलाबल विचार कर देवे । मनुष्यको वस्त्रादिकसे लपेटके एक एक पुडिया नाकमें दो अथवा तीनवार एक दिन बीचमें देकर अथवा दो दिन तीन दिनको बीच देकर, पांचवें दिन अथवा सातवें दिन नस्य देवे ।

नस्य अधिक होनेका यत्न ।

मर्शेशिरोविरेकेचव्यापदोद्विविधाःस्मृताः ॥ दोषोत्क्लेशात्क्षया-च्चैवविज्ञेयास्तायथाक्रमम्॥२८॥दोषोत्क्लेशनिमित्तासुयुंज्या-द्वमनशोधनम्॥अथक्षयनिमित्तासुयथास्वंबृंहणंमतम् ॥२९॥

अर्थ–मर्शनस्यकी मात्रा धात्वादिकों की तृप्ति करनेवाली है उसको आधिक्य होकर दोषोंका कोप होनेसे तथा मस्तकके विरेचन विषयमें विरेचनसंज्ञक नस्यकी मात्राके आधिक्यके कारण मस्तकमेंसे मेदादिकोंका क्षय होनेसे अनेक प्रकारकी पीडा होती है । तिनमें जिस दोषके उत्क्लेश निमित्त पीडा हो उसके दूर करनेको वमनकर्त्ता अथवा दस्त करनेवाली औषध देवे । और क्षय-निमित्तवाली पीडाको दूर करनेके लिये बृंहण औषध नाकमें अथवा पेटमें देवे ।

बृंहणनस्ययोग्य प्राणी ।

शिरोनासाक्षिरोगेषुसूर्यावर्तार्द्धभेदके ॥ दंतरोगेबलेहीनेमन्या-बाहंसजेगदे॥३०॥मुखशोषेकर्णनादेवातपित्तगदेतथा ॥ अ-कालपलितेचैवकेशश्मश्रुप्रपातने ॥ ३१ ॥ युज्यतेबृंहणंनस्यं स्नेहैर्वामधुरद्रवैः ॥

अर्थ–मस्तकरोग, नासारोग, नेत्ररोग, सूर्यावर्त्त रोग, अर्धावभेदक (आँधाशीशी) दांतोंका रोग, दुर्बल मनुष्यकी गर्दन, कंधा और बाहु इनमें जो पीडा होती है वह मुखशोष, कर्णनादरोग, वातपित्तसंबंधी विकार, विना समय मनुष्यके सफेद बालोंके होनेको पलित रोग कहते हैं वह तथा मस्तकके बाल और डाढी मूँछोंके बाल झरकर गिर पडें वह इन्द्रलुप्त रोग, इन सर्व रोगोंमें घृतआदि स्निग्ध पदार्थ तथा खाँड आदि मधुर पदार्थ इन करके बृंहण नस्यकी योजना करे ।

---

१ धातुके बढानेके विषयमें ।

२ धात्वादिको तृप्ति करनेवाली मात्राको तर्पणी कहते हैं ।

बृंहण नस्य।

सशर्करंपयःपिष्टंघ्रघृमाज्येनकुंकुमम् ॥ ३२ ॥ नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवारुजः ॥ भ्रूशंखाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्तार्धभेदकान् ॥३३॥ नस्यंस्याद्रुवुतैलेनतथानारायणेनवा ॥ माषादिनावापिसर्पिस्तत्तद्भेषजसाधितैः ॥ ३४ ॥ तैलंकफेस्याद्वातेच केवलेपवनेवसा ॥ दद्यान्नस्यंसदापित्तेसर्पिर्मज्जानमेवच॥३५॥

अर्थ–दूधमें खाँड डालके नस्य देवे। अथवा घीमें केशर डालके नस्य देय। इससे वातरक्तकी पीडा दूर होय अंडीके तेल करके अथवा नारायण तेल करके अथवा माषादि तेल करके अथवा उन २ औषधों करके सिद्ध किये हुए घृतकी नस्य देनेसे भ्रुकुटी शंख (कनपटी) नेत्र मस्तक कान इनके संबंधी रोग, तथा सूर्यावर्त्तरोग और आधाशीशी ये रोग दूर होवें। कफरोगपर तेलकी नस्य दे वातरोगपर वसा (चरबी) की नस्य देवे। और केवल पित्तरोगपर घी और मज्जा इनकी नस्य देवे।

पक्षाघातादिकरोगोंपर नस्य।

माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुबुकरोहिषैः॥ कृतोऽश्वगंधयाक्काथो हिंगुसैंधवसंयुतः ॥ ३६ ॥ कोष्णनस्यप्रयोगेणपक्षाघातंसकंपनम् ॥ जयेदर्दितवातंचमन्यास्तंभापबाहुकौ ॥ ३७ ॥

अर्थ–१ उडद २ कौंचके बीज ३ रास्ना ४ गंगेरनकी जड ५ अंडकी जड ६ रोहिसतृण और ७ असगंध इन सात औषधोंका काढा करके उसमें भूनी हुई हींग और सेंधानमक डाल उस गरम २ जलकी नस्य देवे तो कंपसहित पक्षाघातवायु, अर्दित (लकवा) वायु, गरदनकी नसका जकडना और अपबाहुक वायु ये सब दूर हों।

प्रतिमर्शनस्यकी दो बिन्दुरूप मात्रा।

प्रतिमर्शस्यमात्रातुद्विद्विबिंदुमितामता ॥
प्रत्येकशोनयनयोःस्नेहेनेतिविनिश्चितम् ॥ ३८ ॥

अर्थ–घृतआदिशब्दसे जो स्निग्ध पदार्थ उनके दो दो बिंदु एक एक २ नयनमें डालते हैं उसे प्रतिमर्शनस्यकी दो बिंदुरूप मात्रा जाननी।

बिंदुसंज्ञक मात्रा।

स्नेहेग्रंथिद्वयंयावन्निमग्नाचोद्धृताततः ॥तर्जनीयंस्रवेद्बिंदुंसामा-

त्राविंदुसंज्ञिता ॥ ३९ ॥ एवंविधैर्बिंदुसंज्ञैरष्टभिःशाणउच्यते ॥
सदेयोमर्शनस्येतुप्रतिमर्शोद्विबिंदुकः ॥ ४० ॥

अर्थ-घृत तेल (आदिशब्दसे जो स्निग्ध पदार्थ उन) में दो पेरुआ बूडे इस प्रकार तर्जनी उँगलीको डबोयके बाहर काढे । उस पेरुएसे जो बिंदु टपके उसको बिंदुमात्रा कहते हैं । इस प्रकार बिंदुसंज्ञक आठ मात्राओंका एक शाण होता है । वह एक शाण मात्रा मर्शनस्यमें देवे और प्रतिमर्शनस्यमें दो बिंदु मात्रा देवे । इतनी मर्शनस्यमें विशेषता जाननी ।

प्रतिमर्शनस्यके समय ।

समयाःप्रतिमर्शस्यबुधैःप्रोक्ताश्चतुर्दश ॥ प्रभातेदंतकाष्ठांतेगृ-
हान्निर्गमनेतथा॥४१॥व्यायामाध्वव्यवायांतेविण्मूत्रांतेऽजने-
कृते ॥ कवलांतेभोजनांतेदिवास्वप्नोत्थितेतथा ॥ ४२ ॥
वमनांतेतथासायंप्रतिमर्शःप्रयुज्यते ॥

अर्थ--प्रतिमर्शनस्यके समय चौदह हैं १ प्रातःकाल २ मुखधोनेपर ३ घरसे बाहर निकलते समय ४ परिश्रमके अंतमें ५ मार्गचलकर आनेपर ६ मैथुनके अंतमें ७ मलत्यागके अंतमें ८ मूत्रत्यागके अंतमें ९ नेत्रोंमें अंजन आँजनेके पश्चात् १० ग्रासके अंतमें ११ भोजनके अंतमें १२ दिनमें सोनेके पश्चात् उठकर १३ वमनके अंतमें और १४ सायंकालमें । इतने समयोंमें प्रतिमर्शनस्य देवे ।

प्रतिमर्शनस्य करके तृप्तके लक्षण ।

ईषदुच्छिंदनात्स्नेहोयदावक्त्रंप्रदह्यते ॥ ४३ ॥
नस्येनिषिक्तंतंविद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः॥
उच्छिदनंपिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम् ॥ ४४ ॥

अर्थ-नस्य देनेपर अल्पछींक आकर उस स्नेहके मुखमें उतरनेसे, वह मनुष्य प्रतिमर्शनस्य करके तृप्त हुआ ऐसा जानना । वह मनुष्य मुखमें उतरे हुए स्नेहको निगले नहीं किन्तु खखारके द्वारा बाहर थूँकदेवे ।

प्रतिमर्शके योग्य रोगी ।

क्षीणेतृष्णास्यशोषार्तेबालेवृद्धेचयुज्यते ॥
प्रतिमर्शेनशाम्यंतिरोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥ ४५ ॥
वलीपलितनाशश्चबलमिंद्रियजंभवेत् ॥

अर्थ-धातुक्षीण मनुष्य तथा तृष्णाकरके तथा मुखशोषकरके पीडित मनुष्य बाल और वृद्ध इनको प्रतिमर्शसंज्ञक नस्य देवे। ऊर्ध्वजत्रुके रोग अर्थात् गरदनके ऊपरके रोग तथा त्वचाकी शिथिलता एवं अकालमें बालोंका सफेद होना अर्थात् पालितरोग ये संपूर्ण रोग प्रतिमर्शनस्य करके दूर होतेहैं तथा चक्षुरादि इन्द्रियोंमें बल आवे।

पतितहोनेमें नस्य।

बिभीतनिंबगंभारीशिवाशेलुश्चकाकिनी ॥ ४६ ॥
एकैकंतैलनस्येनपलितंनश्यतिध्रुवम् ॥

अर्थ-बहेडा नीमकी छाल कंभारी हरड गोंदी और कौआडोडी इनके बीजोंके भीत रकी मज्जाका तेल पृथक् २ निकालके एक एककी पृथक् पृथक् नस्य देय तो मनुष्यके अकालमें जो सफेद बाल हो जातेहैं सो तरुणावस्थाके समान काले होवें।

नस्यकी विधि।

अथनस्यविधिंवक्ष्येनस्यग्रहणहेतवे॥४७॥ देशेवातरजोमुक्ते कृतदंतनिघर्षणम्॥विशुद्धंधूमपानेनस्विन्नभालंगलंतथा॥४८॥ उत्तानशायिनंकिंचित्प्रलंबशिरसंनरम् ॥ आस्तीर्णहस्तपादं चवस्त्राच्छादितलोचनम्॥४९॥ समुन्नमितनासाग्रंवैद्योनस्ये-नयोजयेत्॥कोष्णमच्छिन्नधारंचहेमताराादिशुक्तिभिः॥५०॥ शुक्त्यावायन्त्रयुक्त्यावाप्लोतैर्वानस्यमाचरेत् ॥

अर्थ-नस्य देनेमें नस्यकी विधि कहतेहैं। जिस स्थानमें पवन तथा धूर न होय उसमें मनुष्यको दाँतन और धूमपान कराके कपाल और गलेको शुद्ध कर पसीने युक्त करे। फिर चित्त लेटके मस्तकको कुछ थोडा लंबा कर हाथपैरोंको लंबेपसार कपडेसे नेत्रोंको ढक देवे। फिर वैद्य इस प्राणीकी नाकको कुछ ऊँची करके उसमें नस्यकी औषधको गरम गरम सुहाती धार एकसी लगातार डाले। परंतु वह नस्य सोनेके पात्रमें अथवा चाँदीके पात्रमें करके गेरे अथवा सीप और कौडी अथवा फोहे (कपडेके टुकडें) इत्यादि करके नाकमें डाले।

नस्यलेनेके पश्चात् नियम।

नस्येष्वासिच्यमानेषुशिरोनैवप्रकंपयेत् ॥५१॥ नकुप्येन्नप्र-भाषेतनोच्छिदेन्नहसेत्तथा॥एतर्हिविहितःस्नेहोनैवांतःसंप्रपद्यते ॥५२॥ ततःकासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसंभवः ॥

अर्थ-मनुष्य नस्य लेनेके समय मस्तकको न हिलावे, क्रोध न करे, किसीसे बोले नहीं, छींके

नहीं और हँसे नहीं । यदि इसप्रकार आचरण करे तो वह स्नेह मस्तक भीतर अच्छी तरह नहीं जाता, तथा उससे खाँसी पीनस मस्तक तथा नेत्र इनमें पीडा इत्यादि उपद्रव होतेहैं।

नस्यके संधारणका प्रकार ।

शृंगाटकमभिप्लाव्यस्थापयेन्नगिलेद्द्रवम् ॥ ९३ ॥ पंचसप्तदशैव स्युर्मात्रानस्यस्यधारणे॥ उपविश्याथनिष्ठीवेन्नासावक्त्रगतंद्रवम् ॥ ९४ ॥ वामदक्षिणपार्श्वाभ्यांनिष्ठीवेत्संमुखेनहि ॥

अर्थ–मनुष्यको नस्य देकर शृंगाटक कहिये नासावंशकी पुट भ्रूमध्य देशमें चतुष्पदहै उस जगह उस नस्य करके भिगोकर उस नस्यको रख देवे । उसका कारण पांच मात्रा सात मात्रा अथवा दश मात्रा कालपर्यंत करे । पश्चात् बैठकर नाकसे मुखमें उतरे हुए द्रव्यको खखार कर बाँईतरफ अथवा दहनीतरफ थूक देवे सम्मुख न थूके ।

नस्यकर्ममें त्याज्य कर्म ।

नस्येनीतेमनस्तापंरजःक्रोधंचसंत्यजेत् ॥९५ ॥ शयीतनिद्रां त्यक्त्वाचउत्तानोवाक्छतंनरः ॥ तथाविरेचनस्यांतेधूमोवाकवलोऽहितः ॥९६ ॥

अर्थ–नस्यकर्म होनेके पश्चात् मनको संताप न आने देवे, जहां धूल उडती हो वहांपर बैठे नहीं, क्रोध न करे, जिस प्रकार नींद न आवे इसप्रकारसे सौ वाक्पर्यंत सीधा (चित्त) लेटे। विरेचन नस्यके अंतमें धूम और ग्रास नहीं देना ।

नस्यमें शुद्ध्यादिकभेद ।

**नस्येत्रीण्युपदिष्टानिलक्षणानिसमासतः ॥
शुद्धिहीनातियोगानिविशेषाच्छास्त्रचिंतकैः ॥ ९७ ॥**

अर्थ–नस्यमें शुद्धिलक्षण हीनयोगलक्षण और अतियोगलक्षण ये तीन लक्षण विशेष करके शास्त्रज्ञवैद्योंने कहेहैं वह वक्ष्यमाण संक्षेप करके कहताहूं ।

उत्तमशुद्धिके लक्षण ।

**लाघवंमनसःशुद्धिःस्रोतसांव्याधिसंक्षयः ॥
चित्तेंद्रियप्रसादश्चशिरसःशुद्धिलक्षणम् ॥ ९८ ॥**

---

१ अनुवासन बस्तिके अध्यायमें मात्राका प्रमाण लिखा है उससे जानलेना ।

अर्थ-नस्य करके मस्तककी उत्तम शुद्धि होनेसे शरीर हलका, मन्यानाडीकी शुद्धि मुख नाक कान और गुदा इत्यादि स्रोतसे (बाहरके छिद्रोंका) शोधन हो, शिरोरोगादिक दूर हों, अंतःकरण तथा चक्षुरादि इन्द्री ये प्रसन्न रहैं।

हीनशुद्धिके लक्षण।

कंडूपदेहोगुरुतास्रोतसांकफसंस्रवः ॥
मूर्द्धिहीनविशुद्धेतुलक्षणंपरिकीर्तितम् ॥५९॥

अर्थ-नस्य करके मस्तककी अल्प शुद्धि होनेसे देहमें खुजली चले तथा देहका चिकट जाना ये लक्षण हों। एवं स्रोतें (मुखनासिकाआदि बाहरके मार्ग) से कफका स्राव होय।

अतिशुद्धिके लक्षण।

मस्तुलुंगागमोवातवृद्धिरिंद्रियविभ्रमः ॥
शून्यताशिरसश्चापिमूर्ध्निगाढंविरेचिते ॥ ६० ॥

अर्थ-नस्यद्वारा मस्तककी अत्यंत शुद्धि होनेसे मस्तुलुंग (मस्तक भीतर मगज) का नासिका आदिके द्वारा स्राव होने लगे, वायुकी वृद्धि होय, इन्द्रियोंको विभ्रम होय तथा मस्तकमें शून्यता आवे।

हीनशुद्धयादिकोंमें चिकित्सा।

हीनातिशुद्धेशिरसिकफवातघ्नमाचरेत् ॥
सम्यग्विशुद्धेशिरसिसर्पिर्नस्येनिषेचयेत् ॥ ६१ ॥

अर्थ-नस्यकरके मस्तककी अल्प शुद्धि तथा अत्यंत शुद्धि होनेसे कफवातनाशक नस्य देवे तथा उत्तम शुद्धि होनेसे उसकी नाकमें घृतकी नस्य देय।

अतिस्निग्धके लक्षण।

कफप्रसेकः शिरसोगुरुतेंद्रियविभ्रमः ॥
लक्षणंतदतिस्निग्धंरूक्षंतत्रप्रदापयेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ-नस्य करके मनुष्यका मस्तक अत्यंत स्निग्ध होनेसे कफका स्राव, मस्तकमें भारीपना और इन्द्रियोंमें भ्रांति ये लक्षण होते हैं। इसमें रूक्षपदार्थ की नस्य देय।

नस्यमें पथ्य।

भोजयेच्चानभिष्यंदिनस्याचारिकमादिशेत् ॥

अर्थ-अभिष्यंदी पदार्थ कहिये भैंसका दही आदिशब्दसे कफकारक पदार्थ ये भक्षण न करे। तथा नस्यमें जैसे शिष्ट जन आचरण करते हैं उसी प्रकार इस नस्य लेनेवाले रोगीको आचरण करने चाहिये।

पंचकर्मकी संख्या ।

वमनंरेचनंनस्यंनिरूहमनुवासनम् ॥
एतानिपंचकर्माणिकथितानिमुनीश्वरैः ॥ ६३ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायामुत्तरखंडे स्नेहविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अर्थ–१ वमन २ रेचन ३ नस्य ४ निरूहवस्ती और ५ अनुवासनवस्ति इन पांचोंको पंचकर्म ऐसा कहते हैं।

इति श्रीशार्ङ्गधरे चिकित्सास्थाने माथुरीभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ९.

धूमपानविधि ।

धूमस्तुषड्विधःप्रोक्तःशमनोबृंहणस्तथा ॥
रेचनःकासहाचैववामनोव्रणधूपनः ॥ १ ॥

अर्थ–धूम छः प्रकारका है। १ शमन २ बृंहण ३ रेचन ४ कासहा ५ वामन और ६ व्रणधूपन इस प्रकार छः प्रकारके धूम जानने।

शमनादि धूमोंके पर्याय ।

शमनस्यतुपर्यायौमध्यःप्रायोगिकस्तथा ॥
बृंहणस्यापिपर्यायौस्नेहनोमृदुरेवच ॥ २ ॥
रेचनस्यापिपर्यायौशोधनस्तीक्ष्णएवच ॥

अर्थ–शमनधूमके पर्यायशब्द मध्य और प्रायोगिक ऐसे दो जानने। बृंहण धूमके पर्यायशब्द स्नेहन और मृदु जानने। तथा रेचनधूमके पर्यायशब्द शोधन और तीक्ष्ण जानने।

धूमसेवन अयोग्य प्राणी ।

अधूमार्हाश्चखल्वेतेश्रांतोभीरुश्चदुःखितः ॥ ३ ॥ दत्तबस्तिर्विरिक्तश्चरात्रौजागरितस्तथा ॥ पिपासितश्चदाहार्तस्तालुशोषीतथोदरी॥४॥शिरोऽभितापीतिमिरीछर्द्याध्मानप्रपीडितः॥ क्षतोरस्कःप्रमेहार्तःपांडुरोगीचगर्भिणी ॥५॥ रूक्षःक्षीणोऽभ्य-

वहतक्षीरक्षौद्रघृतासवः ॥ भुक्तान्नदधिमत्स्यश्चबालोवृद्धःकृश-स्तथा ॥ ६ ॥ अकालेचातिपीतश्चधूमःकुर्यादुपद्रवान् ॥

अर्थ–थकाहुआ, डरनेवाला, दुःखकरके पीडित, जिसके बस्ति प्रयोग किया है, जिसका कोठा दस्तों करके खाली हो, रात्रिमें जागरण करनेवाला तृषा करके पीडित, तथा दाह करके पीडित, तालुशोषी, उदरी, शिरोभिताप करके पीडित, तिमिरी, वमन, आध्मान (बादीसे पेट फूलता है वह रोग) उरःक्षत प्रमेह और पांडुरोग इन करके पीडित, गर्भिणी स्त्री, रूक्ष, क्षीण, दूधे सहत घी आसव (मद्य) और अन्न दही तथा मछली इनको खाय चुकाहो बालक वृद्ध और दुर्बल मनुष्य इतने प्राणी धूमपानमें अयोग्य जानने अर्थात् इन सबको धूमपान करना वर्जित है एवम् अकालमें और अत्यन्त धूमपान करनेसे उपद्रव होते हैं ।

धूमपानके उपद्रवोंमें क्या देवे सो कहते हैं ।

तत्रेष्टंसर्पिषःपानंनावनांजनतर्पणम् ॥ ७ ॥
सर्पिरिक्षुरसंद्राक्षांपयोवाशर्करांबुवा ॥
मधुराम्लौरसौवापिशमनायप्रदापयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ–धूमपानके उपद्रव होनेसे उस मनुष्यको घी पीनेको देवे । नाकमें नस्य देय, नेत्रोंमें अंजन लगावे, तथा तर्पण (देहमें तृप्तिकारी द्राक्षादिमंड) देय । घी ईखका रस दाख दूध सर-बत और खाँड और जल अथवा मधुर और खट्टे पदार्थ ये भक्षण करनेको देवे जिनसे धूमसंबंधी उपद्रव दूर हों ।

धूमपानका समय और गुण ।

धूमश्चद्वादशाद्वर्षाद्गृह्यतेऽशीतिकान्नरः ॥
कासश्वासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः ॥ ९ ॥
वातश्लेष्मविकारांश्चहन्याद्धूमःसुयोजितः ॥

अर्थ–धूमपान बारह वर्षकी अवस्थासे लेकर अस्सी वर्षकी अवस्था पर्यंत करे पश्चात् नहीं करना । तथा उस धूमकी योजना उत्तम होनेसे श्वास खाँसी पीनस गरदन ठोढी और मस्तक इनमें पीडा होती है वह और वातकफसंबंधी विकार ये संपूर्ण दूर होवें ।

धूमप्रयोगसे प्रकृति कैसी होती है ।

धूमोपयोगात्पुरुषःप्रसन्नेंद्रियवाङ्मनाः ॥ १० ॥

---

१ दूध सहत घी और अन्न इत्यादिक पदार्थ भक्षण करके तत्कालही धूमपान नहीं करना ।

दृढकेशद्विजश्मश्रुःसुगंधवदनोभवेत् ॥

अर्थ–धूमका उपयोग होनेसे मनुष्य चक्षुरादि इन्द्रिय वाणी और अंतःकरण इन करके प्रसन्न रहे और केश दाँत और श्मश्रु (मूँछ) तथा दाढ़ी इनमें बल आवे ।

धूममें नलीका विचार ।

धूमनाडीभवेत्तत्रत्रिखंडाचत्रिपर्विका ॥ ११ ॥कनिष्ठिकापरीणाहाराजमाषागमांतरा ॥ धूमनाडीभवेद्दीर्घाशमनेरोगिणोंऽगुलैः ॥ १२ ॥ चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद्द्वात्रिंशद्भिर्मृदौस्मृता ॥ तीक्ष्णेचतुर्विंशतिभिःकासघ्नेषोडशोन्मितैः ॥ १३ ॥ दशांगुलैर्वामनीयेतथास्याद्व्रणनाडिका ॥ कलायमंडलंस्थूलाकुलित्थागमरंध्रिका ॥ १४ ॥

अर्थ–धूमसेवनमें नली तीन खण्ड और तीन ग्रंथि (गाँठ) करके युक्त तथा कनिष्ठिका उँगलीके बराबर मोटी तथा उसके छिद्रमें चौराका दाना भीतर चला जावे ऐसी पोली हो । इस प्रकारकी धूमसेवनकी नली रोगीको चालीस अंगुल लंबी लेनी चाहिये । मृदुसंज्ञक धूमके सेवनमें बत्तीस अंगुलकी लंबी लेय । तीक्ष्ण संज्ञक धूमसेवनमें चौवीस अंगुलकी, काससंज्ञक धूमसेवनमें सोलह अंगुलकी, वामनीय[1] संज्ञक धूमके सेवनमें दश अंगुलकी लंबी नली लेनी, इसी प्रकार व्रणके धूनी देनेको नली दश अंगुलकी लंबी होनी चाहिये । तथा वह नली मटरके दानेके प्रमाण मोटी तथा उसका छिद्र कुलथीका दाना भीतर चला जाय इतना बारीक करे इस प्रकारकी नली व्रणकी धूनीको वैद्य लेवे ।

धूमपानके अर्थ ईषिकाविधान ।

अथेषिकांप्रलिंपेच्चसुश्लक्ष्णांद्वादशांगुलाम्॥धूमद्रव्यस्यकल्केन लेपश्चाष्टांगुलःस्मृतः ॥१५॥ कल्कंकर्षमितंलिप्त्वाछायाशुष्कंनकारयेत् ॥ ईषिकामपनीयाथस्नेहाक्तांवर्तिमादरात् ॥ १६॥ अंगारैर्दीपितांकृत्वाधृत्वानेत्रस्यरंध्रके ॥ वदनेनापिबेद्धूमंवदनेनैवसंत्यजेत्॥१७॥नासिकाभ्यांततःपीत्वामुखेनैववमेत्सुधीः॥ शरावसंपुटेक्षिप्त्वाकल्कमंगारदीपितम् ॥ १८ ॥ छिद्रेनेत्रंसुवेश्याथव्रणंतेनैवधूपयेत् ॥

१ वमन होनेके वास्ते जो धूम हो उसको वामनीय धूम कहते हैं ।

अर्थ–ईषिका (नै) बारह अंगुल लम्बी लेवे और धूमसेवनकी औषधियाँ हैं उनका कल्ककरके उस कल्कको एक कर्ष लेकर उस ईषिका अर्थात् नै पर-आठअंगुल पर्यंत लेप करे। फिर उसको सुखायके सूखनेपर उस ईषिकाको अलग निकास लेवे । फिर उस कल्कके छिद्रमें दूसरी स्नेहयुक्त वत्तीको रख उसके ऊपर अंगार रख जलायके नलीके छिद्रमें धरे। पश्चात् उस नली करके मुखसे धूएँको खींचकर मुखद्वाराही त्याग देवे । फिर नाकके रास्तेसे धूएँको खींचके मुखके द्वारा छोडे। तथा शरावसंपुटके ऊपरकी तरफ छिद्र कर उसमें अंगारे रखके उनके ऊपर व्रणकी धूनीकी औषधोंका कल्क कियाहुआ डालके उस शरावेके छिद्रपर नलीके छिद्रको रखके व्रणमें धूनी देवे।

कौनसी औषधका कल्क कौनसे धूममें देवे।

एलादिकल्कंशमनेस्निग्धंसर्जरसंमृदौ ॥ १९ ॥ रेचनेतीक्ष्णकल्कंचकासघ्नेक्षुद्रिकोषणम् ॥ वामनेस्नायुचर्मांद्यंदद्याद्धूमस्यपानकम् ॥ २० ॥ व्रणेनिंबवचाद्यंचधूमनंसंप्रचक्षते ॥

अर्थ–शमनसंज्ञक धूपमें एलादिके औषधोंका गण है उसका कल्क करके देवे। मृदुसंज्ञक धूममें स्निग्ध (घृतादिक स्नेह) पदार्थोंमें शिलारस डालके कल्क करके देवे। रेचकसंज्ञक धूममें तीक्ष्ण औषधि (सरसों राई इत्यादिकों) का कल्ककरके देवे। कासघ्नधूममें कटेरी काली मिरच इत्यादि औषधोंका कल्ककर देवे । वामनधूपमें (वमन लानेवाले धूममें) स्नायु और चर्मादिके इनका कल्ककरके धूमपानार्थ देवे तथा व्रणोंमें नीम और वचका धूमपान करावे।

बालकग्रहनाशक धूनी।

अन्येऽपिधूमगेहेषुकर्तव्यारोगशांतये ॥ २१ ॥ सयथा ॥ मायूरपिच्छंनिंबस्यपत्राणिबृहतीफलम् ॥ मरिचंहिंगुमांसीचबीजंकार्पाससंभवम् ॥ २२ ॥ छागरोमाहिनिर्मोकंविष्ठाबैडालिकीतथा ॥ गजदंतश्चतच्चूर्णंकिंचिद्घृतविमिश्रितम् ॥ २३ ॥ गेहेषु-

---

[1] वाग्भट्ट ग्रन्थमें एलादिक गण है उसकी औषधि ये हैं । १ इलायची २ बडी इलायची ३ शिलारस ४ कूठ ५ गंधप्रियंगु ६ जटामांसी ७ नेत्रवाला ८ रोहिसतृण ९ कपूरी (शाकविशेष) १० किरमानी अजमायन ११ मोटी दालचीनी १२ तमालपत्र १३ तगर १४ ग्रन्थपर्णिकाभेद दूर्वा १५ जाइंका रस १६ नखद्रव्यं १७ व्याघ्रनख १८ देवदारु १९ अमर २० विशेषधूस २१ केशर २२ चौंचकी जड २३ गूगल २४ राल २५ कुन्दरू और २६ नागचम्पा ।

[2] हारिणादिकोंके स्नायु नाडी और चर्म आदिशब्दसे खुर सींग हाड इत्यादि जानने ।

धूपनंदत्तंसर्वान्बालग्रहाञ्जयेत् ॥ पिशाचान्राक्षसाञ्जित्वा सर्वज्वरहरंभवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—बालग्रह दूर होनेके दूसरे प्रकारका धूम होता है तिसमेंसे मयूरपिच्छादि धूनी कहते हैं । १ मोरकी चंद्रिका २ नीमके पत्ते ३ कटेरीके फल ४ मिरच ५ हींग ६ जटामांसी ७ कपासके बिनोले ८ बकरेके बाल ९ सांपकी कांचली १० बिल्लीकी विष्ठा ११ हाथीका दांत इन ग्यारह औषधोंका चूर्ण कर उसमें थोडासा घी मिलायके इस चूर्णकी वालेको धूनी देवे तो संपूर्ण बालग्रह पिशाच और राक्षस इनके सर्व उपद्रव तथा संपूर्ण ज्वर दूर हों।

धूमपानमें परिहार ।

परिहारस्तुधूमेषुकार्योरेचननस्यवत् ॥
नेत्राणिधातुजान्याहुर्नलवंशादिजान्यपि ॥ २५ ॥

इति श्रीदामोदरतनयशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायांचिकित्सास्थाने उत्तरखंडे धूमपानविधिर्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थ—रेचकसंज्ञक नस्यमें रोगोंके परिहार विषयमें जो उपाय कहा है सो इस धूमपानमें करना चाहिये । नलीका मुख सुवर्णादि धातुका अथवा नरसल अथवा बाँस इत्यादिकोंका करे ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितभाषामाथुरीटीकायामुत्तरखंडस्य नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.

गंडूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि ।

चतुर्विधः स्याद्गंडूषःस्नैहिकःशमनस्तथा ॥
शोधनोरोपणश्चैवकवलश्चापितद्विधः ॥ १ ॥

अर्थ—गंडूष चार प्रकारका है १ स्नैहिक २ शमन ३ शोधन और ४ रोपण उसी प्रकार कवलभी इन्हीं भेदों करके चार प्रकारका है ।

---

१ गंडूष कहिये द्रवपदार्थ करके कुल्ले करनेका प्रकार ।
२ कवल कहिये पदार्थको मुखमें गेरके बचानेका प्रकार ।

स्नैहिकादिकगंडूषोंकी दोषभेदकरके योजना।

स्निग्धोष्णैःस्नैहिकोवातेस्वादशीतैप्रसादनः ॥ पित्तेकट्वम्ललवणैरुष्णैःसंशोधनःकफे ॥ २ ॥ कषायतिक्तमधुरैःकदुष्णोरोपणव्रणे ॥ चतुःप्रकारोगंडूषःकवलश्चापिकीर्तितः ॥ ३ ॥

अर्थ–स्निग्ध और उष्ण इन पदार्थों करके जो कुरला (कुल्ला) करना उसे स्नैहिक गंडूष जानना। यह वायुरोगमें करे। मधुर और शीतल पदार्थोंकरके प्रसादन कहिये शमनगंडूष जानना यह पित्तरोगमें देवे। तीक्ष्ण खट्टे खारी और उष्ण इन पदार्थोंकरके शोधनगंडूष जानना। यह कफरोगमें योजन करे। कषैले कडुए और मधुर इन पदार्थोंकरके रोपण गंडूष जानना। यह गरम २ व्रणपर योजना करे। इसीप्रकार कवलभी चार प्रकारका जानना।

गंडूष और कवलमें भेद।

असंचारीमुखेपूर्णेगंडूषःकवलश्चरः ॥
तत्रद्रव्येणगंडूषःकल्केनकवलःस्मृतः ॥ ४ ॥

अर्थ–काढे आदि जो द्रवपदार्थ हैं उनसे मुखको भरके जैसेका तैसाही रहने देवे। फिर थोडी देरके बाद मुखसे पटक देनेको गंडूप (कुल्ला) कहते हैं। एवं कल्कादिक पदार्थको मुखमें इधर उधर फिरायके मुखमें रखनेको कवल कहते हैं।

गंडूष और कवलीऔषधोंका प्रमाण।

दद्याद्द्रवेषुचूर्णंचगंडूषेकोलमात्रकम् ॥
कर्षप्रमाणःकल्कश्चदीयतेकवलेबुधैः ॥ ५ ॥

अर्थ–गंडूषमें काढेआदि द्रव द्रव्य हैं उनमें चूर्ण एक कोल डाले तथा कवलमें १ कर्ष प्रमाण कल्ककी योजना करे।

कौनसी अवस्थामें और कितने कुल्ले करे।

धार्यतेपञ्चमाद्वर्षाद्गंडूषकवलादयः ॥
गंडूषात्सुस्थितःकुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः ॥ ६ ॥
मनुष्यस्त्रींस्तथापंचसप्तवादोषनाशनात् ॥

अर्थ–पांचवर्षके पश्चात् अर्थात् पांचवर्षकी आयुके पीछे इस प्राणीको गंडूष और कवलग्रहण करने चाहिये। मनुष्य स्वस्थचित्त होके बैठे। फिर रोग दूर होनेको कपाल गला तथा आदिशब्दसे मुख इनमें थोडा पसीना आनेपर्यंत तीन अथवा पांच अथवा सात गंडूष करे। अथवा दोष दूर होने पर्यंत करे।

गंडूषधारणमें दूसरा प्रमाण ।

कफपूर्णास्यतांयावच्छेदोदोषस्यवाभवेत् ॥ ७ ॥
नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत्तावद्गंडूषधारणम् ॥

अर्थ—कफसे मुखभर आवे तबतक अथवा दोषोंका छेदन होनेपर्यंत अथवा नेत्र नाक इनमें स्राव छूटने पर्यंत गंडूष धारण करे ।

बादीके रोगमें स्नैहिकगंडूष ।

तिलकल्कोदकंक्षीरंस्नेहोवास्नैहिकेहितः ॥ ८ ॥

अर्थ—तिलोंका कल्क और जल तथा दूध और तेल आदि चिकने पदार्थ इनकी स्नैहिक गंडूषमें योजना करना चाहिये ।

पित्तरोगमें शमनसंज्ञक गंडूष ।

तिलानीलोत्पलंसर्पिःशर्कराक्षीरमेवच ॥
सक्षौद्रोहनुवक्त्रस्थोगंडूषोदाहनाशनः ॥ ९ ॥

अर्थ—तिल नीला कमल घी खाँड और दूध ये सब पदार्थ एकत्रकर इसमें सहत डालके कुल्ले करे तो पित्तसंबंधी ठोढी और मुख इनमें जो दाह होय सो दूर होवे ।

व्रणादिरोगोंमें मधुगंडूष ।

वैशद्यंजनयत्यास्येसंदधातिमुखव्रणान् ॥
दाहतृष्णाप्रशमनंमधुगंडूषधारणम् ॥ १० ॥

अर्थ—सहतको जलमें मिलायके कुल्ले करे तो मुखके घाव और छाले पडें तथा दाह और तृषा ये रोग दूर होकर मुखमें स्वच्छता आती है ।

विषादिकोंपर गंडूष ।

विषक्षाराग्निदग्धेचसर्पिर्धार्यंपयोऽथवा ॥

अर्थ—विषदोष, क्षारादिजन्य विकार, अग्निदाहजन्य विकार इनमें घी अथवा दूधके कुल्ले करे ।

दाँतोंके हिलनेपर गंडूष ।

तैलसैंधवगंडूषोदंतचालेप्रशस्यते ॥ ११ ॥

अर्थ—तिलोंका तेल और सैंधानमक इनको एकत्रकरके कुल्ले करे तो हिलतेहुए दाँत जमकर मजबूत होजावें ।

मुखशोषपर गंडूष ।

शोषंमुखस्यवैरस्यंगंडूषःकांजिकोजयेत् ॥

अर्थ–मुखशोष तथा मुखकी विरसता इनमें काँजीके कुरले करे तो मुखशोष और विरसता दूर हो।

कफपर गंडूष।

सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेणकफेहितः॥ १२॥

अर्थ–सैंधानमक और त्रिकुटा (सोंठ मिरच और पीपल) तथा राई इनका चूर्णकर अदरखके रसमें मिलायके कुरले करे तो कफका दोष दूरहोवे।

कफ और रक्तपित्तपर गंडूष।

त्रिफलामधुगंडूषःकफासृक्पित्तनाशनः॥

अर्थ–त्रिफलाके चूर्णको सहतमें मिलाय कुल्ले करनेसे कफ और रक्तपित्त दूर होवे।

मुखपाक (छालेपर) गंडूष।

दार्वीगुडूचीत्रिफलाद्राक्षाजात्यश्वपल्लवः॥ १३॥ यवासश्चेति तत्क्वाथः षष्ठांशःक्षौद्रसंयुतः॥ शीतोमुखेधृतोहन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजम्॥ १४॥

अर्थ–दारुहल्दी, गिलोय, त्रिफला, दाख, चमेलीके पत्ते और जवासा ये सब औषध समान भाग लेकर काढा करे। इस काढेका छठा भाग सहत मिलायके उस काढेको शीतल करके कुल्ले करे तो त्रिदोषजन्य मुखपाक (मुखके छाले) दूर होवें।

गंडूषके सदृश प्रतिसारण और कवल।

यस्यौषधस्यगंडूषस्तथैवप्रतिसारणम्॥
कवलश्चापितस्यैवज्ञेयोऽत्रकुशलैर्नरैः॥ १५॥

अर्थ–जिस औषधिका गंडूष उसी औषधका प्रतिसारण (मंजन) जानना तथा उसी औषधका कवलभी कुशल वैद्य जाने।

कवलका प्रकार।

केशरंमातुलिंगस्यसैंधवव्योषसंयुतम्॥
हन्यात्कवलतोजाड्यमरुचिंकफवातजाम्॥ १६॥

अर्थ–बिजोरेकी केशर सैंधानमक और त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) ये औषध एकत्र कर इनका कवल करनेसे मुखकी जडता तथा कफवातजन्य अरुचि ये दूरहों।

प्रतिसारणके भेद।

कल्कोऽवलेहश्चूर्णंचत्रिविधंप्रतिसारणम्॥

अंगुल्यग्रगृहीतंचयथास्वंमुखरोगिणाम् ॥ १७ ॥

अर्थ–कल्क अवलेह और चूर्ण इन भेदोंसे प्रतिसारण तीन प्रकारका है । उसको मुखरोगी मनुष्यके जैसा दोष होय उसीके अनुसार उँगलीके आगेके पेरुआमें भरके जीभको तथा संपूर्ण मुखमें लगावे ।

प्रतिसारणचूर्ण ।

कुष्ठंदार्वीसमंगाचपाठातिक्ताचपीतिका ॥
तेजनीमुस्तलोध्रैश्चचूर्णंस्यात्प्रतिसारणम् ॥ १८ ॥
रक्तस्रुतिंदंतपीडांशोथंदाहंचनाशयेत् ॥

अर्थ–१ कूठ २ दारुहल्दी ३ लजालू ४ पाढ ५ कुटकी ६ मजीठ ७ हल्दी ८ नागरमोथा और ९ लोध इन नौ औषधोंका चूर्ण करके जीभपर तथा संपूर्ण मुखमें उँगलीके पेरुआसे रगडे तो दाँतोंके मसूढोंसे रुधिरका गिरना, दाँतोंमें पीडाका होना, सूजन, दाह ये रोग दूरहों । इस चूर्णको प्रतिसारण अर्थात् मंजन कहते हैं ।

गंडूषादिके हीनयोगादि होनेके लक्षण ।

हीनयोगात्कफोत्क्लेशोरसाज्ञानारुचीतथा ॥ १९ ॥
अतियोगान्मुखेपाकःशोषस्तृष्णाक्लमोभवेत् ॥

अर्थ–गंडूषादिकोंका हीनयोग (अल्पयोग) होनेसे कफका आधिक्य होता है । मधुरादि पदार्थोंसे रसका ज्ञान नहीं रहता और अन्नादिकोंपर अरुचि होती है । गंडूषादिकोंका अत्यंत योग होनेसे मुखपाक अर्थात् मुखमें छाले होजावें तथा शोष और प्यास ये लक्षण होते हैं ।

शुद्धगंडूषके लक्षण ।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यंवक्त्रलाघवम् ॥
इंद्रियाणांप्रसादश्चगंडूषेशुद्धिलक्षणम् ॥ २० ॥
इति श्रीदामोदरसुतशार्ङ्गधरप्रणीतायांसंहितायां चिकित्सास्थाने
उत्तरखंडेगंडूषादिविधिर्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ–गंडूषादिकोंका उत्तम योग होनेसे व्याधिका नाश अंतःकरणमें संतोष मुखमें निर्मलता हलकापन रसनादिक इन्द्रियोंमें प्रसन्नता ये लक्षण होते हैं ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितभाषामाथुरीटीकायामुत्तरखंडस्य दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः ११.

लेपकी विधि।

आलेपस्य चनामानिलिप्तोलेपश्चलेपनम् ॥ दोषघ्नोविषहावर्ण्यो मुखलेपस्त्रिधामतः ॥ १ ॥ त्रिप्रमाणश्चतुर्भागस्त्रिभागार्धांगुलोन्नतः ॥ आर्द्रोव्याधिहरःसस्याच्छुष्कोदूषयतिच्छविम् ॥ २ ॥

अर्थ–लिप्त लेप और लेपन ये तीन नाम लेपके हैं उसीको आलेप कहते हैं। वह लेप दोषघ्न[1] विषघ्न[2] और वर्ण्य[3] इन भेदोंकरके मुखलेप तीन प्रकारका है। उस लेपके प्रमाण तीन हैं जैसे एक अंगुल ऊँचेको दोषघ्न जानना, पौन अंगुलके प्रमाण ऊँचे लेपको विषघ्न जानना और जो आधे अंगुल ऊँचा होवे उसे वर्ण्य जानना। ऐसे तीन प्रमाण जानने। जो आर्द्र (गीला) लेप है उसे रोगहरणकर्त्ता जानना। जो शुष्क (करडा) लेप है उसे शरीरकी कांतिको दूषित करनेवाला जानना।

दोषघ्न लेप।

पुनर्नवांदारुशुंठीसिद्धार्थशिग्रुमेवच ॥
पिष्टांचैवारनालेनप्रलेपः सर्वशोथहा ॥ ३ ॥

अर्थ–१ पुनर्नवा (साँठ) २ देवदारु ३ सोंठ ४ सफेदसरसों और ५ सहजनेकी छाल ये पांच औषधि समान भाग लेकर काँजीमें पीस सूजनपर लेप करे तो नौ प्रकारकी सूजन दूर होवे।

दाहशांतिका लेप।

विभीतफलमज्जाक्तलेपोदाहार्तिनाशनः ॥

अर्थ–बहेडेके भीतरकी गिरीको बारीक पीस देहमें लेप करे तो दाहसंबंधी पीडा दूर हो।

दशांगलेप।

शिरीषंमधुयष्टीचतगरंरक्तचंदनम् ॥ ४ ॥ एलामांसीनिशायुग्मंकुष्ठंबालकमेवच ॥ इति संचूर्णलेपोऽयंपंचमांशघृतप्लुतः ॥ ५ ॥

---

१ सूजन खुजली इत्यादि रोगोंका दूर कर्त्ता जानना।
२ सिलाए बच्छनाग इत्यादिकोंके विषको दूर करनेवाला।
३ मुख और त्वचाको कांति देनेवाला।

जलेनक्रियतेसुज्ञैर्दशांगइतिसंज्ञितः ॥ विसर्पान्विषविस्फोटा-
ञ्छोथदुष्टव्रणाञ्जयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ—१ सिरसकी छाल २ मुलहटी ३ तगर ४ लालचंदन ५ इलायची ६ जटामांसी ७ हल्दी ८ दारुहल्दी ९ कूट और १० नेत्रवाला इन दश औषधोंको समान भागले बारीक पीस चूर्ण करे फिर जलमें सानके रोगके स्थानपर लेप करे तो विसर्परोग, विषदोष, विस्फोट, सूजन, दुष्टव्रण ये सर्व रोग दूर हों । इस लेपको दशांगलेप कहते हैं ।

विषघ्नलेप ।

अजादुग्धतिलैर्लेपोनवनीतेनसंयुतः ॥
शोथमारुष्करंहंतिलेपोवाकृष्णमृत्तिकैः ॥ ७ ॥

अर्थ—बकरीके दूधमें तिलोंको पीसके उसमें मक्खन मिलाय लेप करे अथवा काली मिट्टी और तिल इन दोनोंको एकत्र पीस इसमें मक्खन मिलाय लेप करे तो भिलायेकी सूजन दूर होवे।

दूसरा प्रकार ।

लांगल्यतिविषालाबूजालिनीबीजमूलकैः ॥
लेपोधान्यांबुसंपिष्टःकीटविस्फोटनाशनः ॥ ८ ॥

अर्थ—१ कलियारी २ अतीस ३ कडुई तूंबीके बीज ४ कडुई तोरईके बीज ५ मूलीके बीज इन पांच औषधोंको समान भाग लेकर धान्यांबु (काँजी) में पीसके कीटविशेषके दंशपर लेप करे तथा विस्फोटकरोगपर लेप करे तो ये विकार दूर हों ।

मुखकांतिकारक लेप ।

रक्तचंदनमंजिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियंगवः ॥
वटांकुरमसूराश्चव्यंगघ्नामुखकांतिदाः ॥ ९ ॥

अर्थ—१ लालचंदन २ मजीठ ३ लोध ४ कूठ ५ फूलप्रियंगु ६ बडके अंकुर ७ मसूर ये सात औषधी समभाग लेकर पानीमें पीस लप करे तो झाई रोग दूरहो और यह लेप मुखकी कांति करता है ।

दूसरा प्रकार ।

मातुलुंगजटासर्पिःशिलागोशकृतोरसः ॥
मुखकांतिकरोलेपःपिटिकाव्यंगकालजित् ॥ १० ॥

अर्थ-बिजोरेकी जड घी मनशिल और गौके गोबरका रस ये चार औषध एकत्र कर मुखपर लेप करे तो यह लेप मुखपर कांति करे और मुँहाँसे व्यंग और नीलिका ये रोग दूर हों।

मुँहाँसेनाशक लेप।

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटिकापहः ॥ तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरीचंमुखलेपनात्॥ ११॥सिद्धार्थकवचालोध्रसैंधवैश्चप्रलेपनम्॥

अर्थ-लोध धनियां और वच ये तीन औषधि समान भाग ले जलमें पीस लेप करे अथवा गोरोचन और काली मिरच इन दोनोंको जलसे बारीक पीसके लेप करे। अथवा सफेद सरसों वच लोध और सेंधानमक इन चार औषधोंको जलसे बारीक पीसके लेप करे। इस प्रकार ये तीन प्रकारके लेप मुखके मुँहाँसे दूर करनेके वास्ते जानने।

व्यंगरोगपर लेप।

व्यंगेषुचार्जुनत्वग्वामांजिष्ठावासमाक्षिकः ॥ १२ ॥ लेपःसनवनीतोवाश्वेताश्वखुरजामषी ॥

अर्थ-कोहवृक्षकी छालका चूर्ण अथवा मंजीठका चूर्ण अथवा सफेद घोडेके खुरसंबंधी हाडकी राख ये तीन औषध पृथक् २ सहत और मक्खनमें मिलायके पृथक् २ लेप करे तो व्यंग रोग दूर होवे।

मुखकी झाईपर लेप।

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यांमर्दयित्वाविलेपनात् ॥ १३ ॥ मुखकार्ष्ण्यंशमंयातिचिरकालोद्भवंध्रुवम् ॥

अर्थ-आकके दूधमें हल्दीको पीस लेप करे तो मुखकी बहुत दिनकी कालौंच (झाई) दूर होवे।

मुँहाँसे आदिपर लेप।

वटस्यपांडुपत्राणिमालतीरक्तचंदनम् ॥ १४ ॥कुष्ठंकालीयकं लोध्रमेभिर्लेपंप्रयोजयेत् ॥तारुण्यपिटिकाव्यंगनीलिकादिविनाशनम् ॥ १५ ॥

अर्थ-बडके पीले पत्ते चमेली लालचंदन कूठ दारुहल्दी और लोध इन सब औषधोंको एकत्र पीसके लेप करे तो जवानीके मुँहांसे और व्यंग नीलिकादिक रोग दूर होवें।

अरुंषिकारोगपर लेप ।

पुराणमथपिण्याकंपुरीषंकुक्कुटस्यच ॥
मूत्रपिष्टःप्रलेपोऽयंशीघ्रंहन्यादरुंषिकाम् ॥ १६ ॥

अर्थ–तिलोंकी पुरानी खल और मुरगेकी बींठ इन दोनोंको गोमूत्रमें पीस लेप करे तो अरुंषिका दूर होवे ।

दूसरा प्रकार ।

खदिरारिष्टजंबूनांत्वग्भिर्वामूत्रसंयुतैः ॥
कुटजत्वक्सैंधवंवालेपोहन्यादरुंषिकाम् ॥ १७ ॥

अर्थ–खैर नीम और जामुन इन तीनोंकी छालका चूर्ण करके गोमूत्रसे पीस लेप करे अथवा कडाकी छाल और सैंधानमक ये दो औषध गोमूत्रमें पीस लेप करे तो अरुंषिकारोग दूर होवे ।

दारुणरोगपर लेप ।

प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैःससैंधवैः ॥
कार्योदारुणकेमूर्ध्निप्रलेपोमधुसंयुतः ॥ १८ ॥

अर्थ–१ चिरोंजी २ मुलहटी ३ कूठ ४ उडद और ५ सैंधानमक ये पांच औषध समान ले बारीक पीस सहतमें मिलायके मस्तकमें दारुण (कहिये दारुणरोग) दूर होनेके वास्ते लेप करे ।

दूसरी विधि ।

दुग्धेनखाखसंबीजंप्रलेपाद्दारुणंजयेत्॥आम्रबीजस्यचूर्णंतुशिवाचूर्णसमंद्वयम् ॥१९॥ दुग्धपिष्टःप्रलेपोऽयंदारुणंहंतिदारुणम्॥

अर्थ–खसखसको दूधमें पीस मस्तकपर लेप करे तथा आमकी गुँठली गिरी और छोटी हरड इन दोनोंको समान भाग ले चूर्ण कर दूधमें पीस लेप करे तो घोर दुर्धर दारुण रोग दूर होवे ।

इन्द्रलुप्तपर लेप ।

रसस्तिक्तपटोलस्यपत्राणांतद्विलेपनात् ॥ २० ॥
इंद्रलुप्तंशमंयातित्रिभिरेवादिनैर्ध्रुवम् ॥

अर्थ–कडुये पटोलके पत्तोंका रस काढके उसका तीन दिन लेप करे तो इन्द्रलुप्त रोग निश्चय दूर होवे ।

दूसरी विधि।

इंद्रलुप्तापहोलेपोमधुनाबृहतीरसः ॥ २१ ॥
गुंजामूलफलंवापिभल्लातकरसोऽपिवा ॥

अर्थ-कटेरीका रस निकाल उसमें सहत मिलायके लेप करे अथवा घूंघचीकी जडका अथवा घूंघची (चिरमिठी) के रसको सहतमें मिलायके लेप करे। अथवा भिलाएके पत्तोंका रस निकाल उसमें सहत मिलाय लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग दूर हो।

केशवृद्धिपर लेप।

गोक्षुरस्तिलपुष्पाणितुल्येचमधुसर्पिषी ॥ २२ ॥
शिरःप्रलेपनंतेनकेशसंवर्धनंपरम् ॥

अर्थ-गोखरू तिलके फूल इन दोनोंको समान भाग लेके चूर्ण करे। और सहत तथा घी ये दोनों बराबर लेके इसमें चूर्णको सानके मस्तकपर लेप करे तो केश बढें।

केश जमानेवाला लेप।

हस्तिदंतमषींकृत्वाछागीदुग्धंरसांजनम् ॥ २३ ॥
रोमाण्यनेनजायंतेलेपात्पाणितलेष्वपि ॥

अर्थ-हाथीके दाँतको जलायके उसकी राख कर लेवे यह राख और रसोत इन दोनोंको बकरीके दूधमें पीस जिस स्थानके बाल उडगये हों उस जगह लेप करे तो बाल ऊग आवें। यह लेप हाथोंकी हथेली पर करनेसे हथेलीमें भी बाल अवश्य ऊगें।

इन्द्रलुप्तरोगपर लेप।

यष्टींदीवरमृद्वीकातैलाज्यक्षीरलेपनैः ॥ २४ ॥
इंद्रलुप्तःशमंयातिकेशाःस्युःसघनादृढाः ॥

अर्थ-मुलहटी कमल और दाख इन तीन औषधोंको तिलोंके तेल गौका दूध और घी इनमें पीसके लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग दूर हो तथा बाल दृढ और सघन होवें।

केश आनेपर दूसरा लेप।

चतुष्पदानांत्वग्रोमनखशृंगास्थिभस्मभिः ॥ २५ ॥
तैलेनसहलेपोऽयंरोमसंजननःपरः ॥

अर्थ-बकरीआदि चौपाए जीवोंकी त्वचा (चाम) बाल नख सींग और हाड इनकी भस्म कर तिलके तेलमें मिलायके लेप करे तो यह लेप नवीन केश (बाल) आनेमें अत्यंत उत्तम है।

केश काले करनेका लेप ।

इंद्रवारुणिकाबीजतैलेनाभ्यंगमाचरेत् ॥ २६ ॥
प्रत्यहंतेनकालाग्निसन्निभाःकुंतलाह्यलम् ॥

अर्थ–इन्द्रायनके बीजोंका तेल पातालयंत्र करके निकासलेय फिर इसको सफेद बालोंपर नित्य लेप करे तो बाल अत्यंत काले होवें ।

दूसरी विधि ।

अयोरजोभृंगराजस्त्रिफलाकृष्णमृत्तिका ॥ २७ ॥
स्थितमिक्षुरसेमासंलेपनात्पलितंजयेत् ॥

अर्थ–१ लोहका चूर्ण २ भाँगरा ९ त्रिफला (हरड बहेडा आँवला) ६ कालीमिट्टी ये छः औषध समान भाग ले चूर्ण कर ईखके रसमें डालके एक महीने पर्यंत धरा रहने दे। फिर अकालमें जो सफेद बाल हुए हों उनपर यह लेप करे तो काले बाल होवें ।

तीसरा प्रकार ।

धात्रीफलत्रयंपथ्येद्वेतथैकांबिभीतकम् ॥२८॥ पंचाम्रमज्जालोहस्यकर्षैकंचप्रदीयते ॥ पिष्ट्वालोहमयेभांडेस्थापयेद्दुषितं निशि ॥ २९ ॥ लेपोऽयंहंतिनचिरादकालपलितंमहत् ॥

अर्थ–आमले तीन, हरड दो, बहेडेका फल एक, आमकी गुंठलीके भीतरकी मिंगी पांच, लोहचूर्ण एक कर्ष इन संपूर्ण औषधोंको लोहकी कढाहीमें बारीक पीस सब रात्रि उसी प्रकार धरी रहने दे। दूसरे दिन लेप करे तो जिस मनुष्यके थोडी अवस्थामें सफेद बाल होगएहों वे इस लेपसे तत्काल काले होवें ।

चतुर्थ प्रकार ।

त्रिफलानीलिकापत्रंलोहंभृंगरजःसमम् ॥ ३० ॥
अजामूत्रेणसंपिष्टंलेपात्कृष्णीकरंस्मृतम् ॥

अर्थ–त्रिफला और नीलके पत्ते तथा लोहका चूर्ण एवं भांगरा इन सब औषधोंको समान भाग लेक बकरीके मूत्रसे पीस लेप करे तो यह लेप सफेद बालोंके काले करनेमें परमोत्तम है ।

पांचवाँ प्रकार ।

त्रिफलालोहचूर्णंचदाडिमत्वग्बिसंतथा ॥ ३१ ॥ प्रत्येकं पंच

पलिकंचूर्णंकुर्याद्विचक्षणः॥भृंगराजरसस्यापिप्रस्थषट्कंप्रदाप-
येत् ॥३२॥ क्षिप्त्वालोहमयेपात्रेभूमिमध्येनिधापयेत् ॥ मास-
मेकंततःकुर्याच्छागीदुग्धेनलेपनम् ॥३३॥ कूर्चैशिरसिरात्रौच
संवेष्टचैरंडपत्रकैः ॥ स्वपेत्प्रातस्ततःकुर्यात्स्नानंतेनचजायते॥
॥ ३४ ॥ पलितस्यविनाशश्चत्रिभिर्लेपैर्नसंशयः ॥

अर्थ—त्रिफला लोहका चूरा अनारकी छाल और कमलका कंद ये प्रत्येक पांच २ पल लेव । सबको बारीक पीस चूर्ण करे । फिर छः प्रस्थ भाँगरेका रस निकालके एक लोहेकी कढाहीमें भरके और पूर्वोक्त त्रिफला आदिका चूर्ण डालके एक महीने पर्यंत जमीनमें गाड देवे । पश्चात् बाहर निकालके इसमें बकरीका दूध मिलायके मस्तकमें रात्रिके समय लेप करे और उस लेपपर अंडके पत्ते बाँधके सोय जावे । प्रातःकाल उठके स्नान करे, इसप्रकार तीन लेप करे तो जिस मनुष्यके युवावस्थामें सफेद बाल होगए हों वे निश्चय बहुत जल्दी काले होजावें ।

केशनाशक प्रयोग ।

शंखचूर्णस्यभागौद्वौहरितालंचभागिकम् ॥३५॥ मनःशिला
चार्धभागास्वर्जिकाचैकभागिका ॥ लेपोऽयंवारिपिष्टस्तुकेशा-
नुत्पाटचदीयते ॥ ३६ ॥ अनयालेपयुक्त्याचसप्तवेलंप्रयु-
क्तया ॥ निर्मूलकेशस्थानंस्यात्क्षपणस्यशिरोयथा ॥ ३७ ॥

अर्थ—शंखचूर्ण दो भाग हरताल एक भाग मनशिल आधा भाग सज्जीखार एक भाग इन सबको जलमें पीसके जिस जगहके बाल निर्मूल करनेहों उस जगह उस्तरासे बालोंको दूर करके इस औषधका लेप करे । इसप्रकार युक्तिसे सात लेप करे तो बालोंके आनेका स्थान निर्मूल होवे अर्थात् फिर उस जगह बाल नहीं आवें । संन्यासीके मस्तक प्रमाण चिकना होजाय ।

दूसरी विधि ।

तालकंशाणयुग्मंस्यात्षटशाणंशंखचूर्णकम् ॥ द्विशाणिकंप-
लाशस्यक्षारंदत्वाप्रमर्दयेत् ॥३८॥ कदलीदंडतोयेनरविपत्र-
रसेनवा ॥ अस्यापिसप्तभिर्लेपैर्लोम्नांशातनमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—हरताल २ शाण और शंखका चूर्ण छः शाण तथा पलाश (ढाक) का खार २ शाण

इन सब औषधोंको केलाके दंडके रसमें अथवा आकके पत्तोंके रसमें खरलकर केश दूर करनेकी जगह सातवार लेप करे । यह लेप केश दूर करनेके विषयमें परमोत्तम है ।

सफेदकोढ दूरहोनेका औषध ।

सुवर्णपुष्पीकासीसंविडंगानिमनःशिला ॥
रोचनासैंधवंचैवलेपनाच्छ्वित्रनाशनम् ॥ ४० ॥

अर्थ–१ पीली चमेली २ हीराकसीस ३ वायविडंग ४ मनशिल ५ गोरोचन ६ सैंधानमक ये छः औषध समान भाग ले गोमूत्रसे पीस लेप करे तो श्वित्रकुष्ठ (सफेद कोढ) दूर हो।

दूसरी विधि ।

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिकाकृता ॥
बस्तमूत्रेणसंपिष्टाप्रलेपाच्छ्वित्रनाशिनी ॥ ४१ ॥

अर्थ–१ काकतुंडी २ पवारके बीज ३ कूठ ४ पीपल ये चार औषध समान भाग लेकर बकरेके मूत्रसे पीसके लेप करे तो श्वित्रकुष्ठ दूर होवे ।

तीसरी विधि ।

बाकुचीवेतसोलाक्षाकाकोदुंबरिकाकणा॥रसांजनमयश्चूर्णंति-लाःकृष्णास्तदेकतः ॥ ४२ ॥ चूर्णयित्वागवांपित्तैःपिष्टाचगु-टिकाकृता ॥ अस्याःप्रलेपाच्छ्वित्राणिप्रणश्यंत्यतिवेगतः ॥४३॥

अर्थ–१ बावची २ अमलवेत ३ लाख ४ कठूमर ५ पीपल ६ सुरमा ७ लोहका चूर्ण ८ काले तिल ये आठ औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे । फिर गौके पित्तसे इन सब औषधोंको खरल करके गोली करे । फिर लेप करे इस लेपके प्रभावसे श्वित्रकुष्ठ बहुत जल्दी दूर होवे।

विभूतपर लेपन ।

धात्रीसर्जरसश्चैवयवक्षारश्चचूर्णितैः ॥
सौवीरेणप्रलेपोऽयंप्रयोज्यःसिध्मनाशने ॥ ४४ ॥

अर्थ–१ आँवले २ राल ३ जवाखार इन तीन औषधोंको सौवीरमें[१] अथवा काँजीमें पीसके विभूत (बनरफ) रोग दूर करनेको प्रयुक्त करे ।

---

१ सौवीर बनानेकी विधिमध्यमखण्डमें सन्धानप्रकरणमें लिखी है ।

दूसरा प्रकार।

दार्वीमूलकबीजानितालकंसुरदारुच॥ तांबूलपत्रंसर्वाणिकार्षिकाणिपृथक्पृथक् ॥ ४५ ॥ शंखचूर्णंशाणमात्रंसर्वाण्येकत्रचूर्णयेत् ॥ लेपोऽयंवारिणापिष्टःसिध्मनांनाशनःपरः ॥ ४६ ॥

अर्थ–१ दारुहल्दी २ मूलीके बीज ३ हरताल ४ देवदारु ५ नागरबेलके पान ये पांच औषध एक २ कर्ष तथा शंखका चूर्ण १ शाण ले। इन सब औषधोंका चूर्ण करके जलसे पीसके लेप करे तो विभूत रोग दूर हो।

नेत्ररोगपर लेप।

हरीतकीसैंधवंचगैरिकंचरसांजनम् ॥
बिडालकोजलेपिष्टःसर्वनेत्रामयापहः ॥ ४७ ॥

अर्थ–१ हरड २ सैंधानमक ३ गेरू और ४ रसोत ये चार औषध समान भाग ले जलसे पीसके बिडालक अर्थात् नेत्रोंके बाहर लेप करे। इसको बिडालक कहते हैं। इस लेप करके नेत्रके सर्व विकार दूर होवें।

दूसरी विधि।

रसांजनंव्योषयुतंसंपिष्टंवटकीकृतम् ॥
कंडूंपाकान्वितांहंतिलेपादंजननामिकाम् ॥ ४८ ॥

अर्थ–१ रसांजन, व्योष कहिये २ सोंठ ३ मिरच ४ पीपल ये चार औषध समान भाग ले पानीसे पीस गोली करे। इसको जलमें घिसके खुजलीयुक्त तथा पाकयुक्त अंजननामिका (गुहेरी) जो नेत्रोंके कोएनपर होती है उसके दूर करनेको लगावे तो गुहेरी दूर हो।

खुजलीआदिपर लेप।

प्रपुन्नाटस्यबीजानिबाकुचीसर्षपास्तिलाः ॥
कुष्ठंनिशाद्वयंमुस्तंपिष्टातक्रेणलेपतः ॥ ४९ ॥
प्रलेपादस्यनश्यंतिकंडूदद्रूविचर्चिकाः ॥

अर्थ–१ पमारके बीज २ बावची ३ सरसों ४ नील ५ कूठ ६ हल्दी ७ दारुहल्दी ८ नागरमोथा ये आठ औषध समान भाग ले चूर्ण करे। छाछमें पीसके इसका लेपकरे तो खुजली दाद और विचर्चिका (पैरोंका फटना) ये रोग दूर होवें।

दादखुजली आदिपर लेप ।

हेमक्षीरीविडंगानिदरदंगंधकस्तथा ॥ ९० ॥ दद्रुघ्नःकुष्ठसिंदूरं सर्वाण्येकत्रमर्दयेत् ॥ धत्तूरनिंबतांबूलीपत्राणांस्वरसैःपृथक् ॥९१॥ अस्यप्रलेपमात्रेणपामादद्रूविचर्चिकाः॥ कंडूश्चरकसश्चैवप्रशमंयांतिविगतः ॥ ९२ ॥

अर्थ—१ चोक २ वायविडंग ३ हींगलू ४ गंधक ५ पमारके बीज ६ कूठ ७ सिंदूर ये सात औषध समान भाग लेकर धतूरेके पत्ते तथा नीमके पते और नागरवेलके पत्तोंका रस इनमें पृथक् २ खरलकर एक एकका लेप करे तो खाज दाद और विचार्चिका कंडू और रकस (सूखी खाज) रोग (कुष्टरोगका भेद) संपूर्ण दूर होवें ।

दूसरा प्रकार ।

दूर्वाभयासैंधवंचचक्रमर्दःकुठेरकः ॥
एभिस्तक्रयुतोलेपःकंडूदद्रूविनाशनः ॥ ९३ ॥

अर्थ—१ दूब २ छोटी हरड ३ सैंधानमक ४ पमारके बीज ५ वनतुलसी ये पांच औषध समान भाग ले छाछमें पीस लेप करे तो खुजली और दाद ये दूर हों ।

रक्तपित्तादिकोंपर लेप ।

चंदनोशीरयष्ट्याह्वाबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ॥
क्षीरपिष्टैःप्रलेपःस्याद्रक्तपित्तशिरोरुजि ॥ ९४ ॥

अर्थ—१ लालचंदन २ नेत्रवाळा ३ मुलहटी ४ गंगेरनकी जड ५ वघनखी ६ कमल ये छः औषध समान भाग ले दूधमें पीस लेप करे तो रक्तपित्तसंबंधी मस्तकपीडा दूर हों ।

उदर्दरोगपर लेप ।

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाटतिलैःसह ॥
कटुतैलेनसंमिश्रमुदर्दघ्नंप्रलेपनम् ॥ ९५ ॥

अर्थ—१ सफेद सरसों २ हल्दी ३ कूठ ४ पमारके बीज ५ तिल इन पांच औषधोंको समान भाग ले बारीक चूर्ण करके सरसोंके तेलमें मिलायके लेप करे तो शीतपित्तका भेद उदर्द रोग जो है वह दूर होवे ।

वातविसर्परोगपर लेप ।

रास्नानीलोत्पलंदारुचंदनंमधुकंबला ॥
घृतक्षीरयुतोलेपोवातवीसर्पनाशनः ॥ ९६ ॥

अर्थ–१ रास्ना २ नीला कमल ३ देवदारु ४ लालचंदन ५ मुलहटी ६ गंगेरनकी जड ये छः औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर दूधमें अथवा घीमें सानके लेप करे तो वातविसर्प रोग दूर हो ।

पित्तविसर्परोगपर ।

मृणालंचंदनंलोध्रमुशीरंकमलोत्पलम् ॥
सारिवामलकंपथ्यालेपःपित्तविसर्पनुत ॥ ५७ ॥

अर्थ–१ कमलका डाँठरा २ लालचंदन ३ लोध ४ नेत्रवाला ५ कमल ६ छोटा कमल ७ सारिवा ८ आँवले ९ छोटी हरड ये नौ औषध समान भाग ले पानीसे पीस लेप करे तो पित्त-विसर्प दूर होवे ।

कफविसर्पपर लेप ।

त्रिफलापद्मकोशीरसमंगाकरवीरकम् ॥
नलमूलमनंताचलेपःश्लेष्मविसर्पहा ॥ ५८ ॥

अर्थ–त्रिफला कहिये १ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ पद्माख ५ नेत्रवाला ६ धायके फूल ७ कनेर ८ नरसलकी जड ९ धमासा ये नौ औषध समान भाग ले जलसे पीस लेप करे तो कफ-विसर्प दूर हो ।

पित्तवातरक्तपर लेप ।

मूर्वानीलोत्पलंपद्मंशिरीषकुसुमैःसह ॥
प्रलेपःपित्तवातास्रेशतधौतघृतप्लुतः ॥ ५९ ॥

अर्थ–१ मूर्वा २ नीला कमल ३ पद्माख और ४ सिरसका फूल ये चार औषध समान भाग लेके चूर्ण करे तथा सौवार धुलेहुए घीमें इस चूर्णको मिलायके लेप करे तो पित्तवातरक्त दूर होवे ।

नाकसे रुधिर गिरनेपर लेप ।

आमलंघृतभृष्टंतुपिष्टंकांजिकवारिभिः ॥
जयेन्मूर्ध्निप्रलेपेनरक्तंनासिकयासृतम् ॥ ६० ॥

अर्थ–आँवलेको घीमें भून काँजीमें पीस मस्तकपर लेप करे तो नाकसे जो रुधिर गिरता है वह दूर होवे ।

वातकी मस्तकपीडापर लेप ।

कुष्ठमेरंडतैलेनलेपात्कांजिकपेषितम् ॥
शिरोऽतिवातजांहन्यात्पुष्पंवामुचुकुंदजम् ॥ ६१ ॥

अर्थ–कूठ अथवा मुचुकुंदके फूलोंको काँजीमें पीस उसमें अंडीका तेल मिलायके वातसंबंधी मस्तकपीडा दूर होनेको लेपकरे ।

दूसरा प्रकार ।

देवदारुनतंकुष्ठंनलदंविश्वभेषजम् ॥
सकांजिकःस्नेहयुक्तोलेपोवातशिरोऽर्तिनुत् ॥ ६२ ॥

अर्थ–१ देवदारु २ तगर ३ कूठ ४ नेत्रवाला और ५ सोंठ ये पांच औषध समान भाग ले काँजीसे पीस उसमें अंडीका तेल मिलायके लेप करे तो वातसंबंधी मस्तकपीडा दूर होय ।

पित्तशिरोरोगपर लेप ।

धात्रीकसेरुह्रीबेरपद्मपद्मकचंदनैः ॥ दूर्वोशीरनलानांचमूलैःकुर्यात्प्रलेपनम् ॥ ६३ ॥ शिरोऽर्तिपित्तजांहन्याद्रक्तपित्तरुजंतथा ॥

अर्थ–१ आँवला २ कचूर ३ नेत्रवाला ४ कमल ५ पद्माख ६ रक्तचंदन ७ दूबकी जड ८ नेत्रवाला और ९ नरसलकी जड इन नौ औषधोंको जलमें पीसके लेप करे तो पित्तसंबंधी मस्तकपीडा दूर होवे ।

कफसंबंधी मस्तकपीडापर लेप ।

हरेणुनतशैलेयमुस्तैलागरुदारुभिः ॥ ६४ ॥
मांसीरास्नारुबूकैश्चकोष्णोलेपःकफार्तिनुत् ॥

अर्थ–१ रेणुका २ तगर ३ पत्थरका फूल ४ नागरमोथा ५ इलायची ६ अगर ७ देवदारु ८ जटामांसी ९ रास्ना और १० अंडकी जड ये दश औषध समान भाग ले गरम जलमें पीसके कफसंबंधी मस्तकपीडापर लेप करे तो अच्छी होय ।

दूसरा प्रकार ।

शुंठीकुष्ठप्रपुन्नाटदेवकाष्ठैःसरोहिषैः ॥ ६५ ॥
मूत्रपिष्टैःसुखोष्णैश्चलेपःश्लेष्मशिरोऽर्तिनुत् ॥

अर्थ–१ सोंठ २ कूठ ३ पमारके बीज ४ देवदारु ५ रोहिषतृण ये पांच औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीस सुखोष्ण कहिये कुछ गरम करके लेप करे तो कफसंबंधी मस्तकपीडा दूर हो ।

सूर्यावर्त्त तथा अर्धभेदकपर लेप ।

सारिवाकुष्ठमधुकंवचाकृष्णोत्पलैस्तथा ॥ ६६ ॥
लेपःसकांजिकस्नेहःसूर्यावर्तार्धभेदयोः ॥

अर्थ-१ सारिवा २ कूठ ३ मुलहटी ४ वच ५ पीपल तथा ६ नीला कमल ये छः औषध समान भाग लेकर काँजीमें पीस उसमें अंडीका तेल मिलायके लेप करे तो सूर्यावर्त्तरोग और आधासीसी ये रोग दूर हों।

कनपटी अनंतवात तथा सर्वशिरोरोगोंपर लेप।

वरीनीलोत्पलंदूर्वातिलाःकृष्णापुनर्नवा ॥ ६७ ॥
शंखकेऽनंतवातेचलेपःसर्वशिरोऽर्तिजित् ॥

अर्थ-१ विदारीकंद २ नीला कमल ३ दूब ४ काले तिल और ५ पुनर्नवा ये पांच औषध समान भाग लेकर पानीमें पीस लेप करे तो कनपटीकी पीडा अनंतवात और सर्व मस्तकके रोग दूर हों।

दूसरा प्रकार।

अथलेपविधिश्चान्यःप्रोच्यतेसुज्ञसंमतः ॥ ६८ ॥
द्वौतस्यकथितौभेदौप्रलेपाख्यप्रदेहकौ ॥

अर्थ-इसके अनंतर बुद्धिमानोंको मान्य ऐसे दूसरे लेपकी विधि है तिसमें एक प्रलेपाख्य और दूसरी प्रदेहक इस प्रकार दो भेद जानने।

उन दोनों लेपोंके उच्चत्वमें प्रमाण।

चर्मार्द्रमाहिषंयद्वत्प्रोन्नतंसमितिस्तयोः ॥ ६९ ॥
शीतस्तनुर्निर्विषीचप्रलेपःपरिकीर्तितः ॥
आर्द्रोघनस्तथोष्णःस्यात्प्रदेहःश्लेष्मवातहा ॥ ७० ॥

अर्थ-वे प्रलेपक और प्रदेहक ये दो लेप भैंसकी गीली चाम जितनी मोटी होती है इतने मोटे होने चाहिये। तथा उसके गुण कहते हैं कि शीतवीर्य तथा तनु अर्थात् सूक्ष्मरूप स्रोतसों (छिद्रों) में प्रवेश करनेवाले तथा निर्विषी ऐसा प्रलेपक जानना। आर्द्र कहिये द्रवयुक्त और जड तथा उष्ण कफवायुको दूर करनेवाला ऐसा प्रदेहक लेप जानना।

दोनों प्रकारके लेप किस जगह देने।

रोमाभिमुखमादेयौप्रलेपाख्यप्रदेहकौ ॥
वीर्यसम्यग्विशत्याशुरोमकूपैःशिरामुखैः ॥ ७१ ॥

अर्थ-प्रलेपाख्य और प्रदेहक ये दोनों लेप रोम सम्मुख करके देवे अर्थात् सब रोमोंको खडे करके लेप करे। इसका यह कारण है कि शिरारूप जो रोमरंध्र उनके द्वारा करके उस लेपका वीर्य उत्तम प्रकार करके शरीरमें प्रवेश करता है।

साधारणलेपविषयमें निषेध ।

नरात्रौलेपनंकुर्याच्छुष्यमाणंनधारयेत् ॥
शुष्यमाणमुपेक्षेतप्रदेहंपीडनंप्रति ॥ ७२ ॥

अर्थ–रात्रिमें लेप न करे । और उस लेपके सूखनेपर उसको धारण न करे । कारण यह है कि लेप सूखनेपर उसको लगा रहने देनेसे देहको अत्यंत पीडा होती है ।

रात्रिमें निषेधका हेतु ।

तमसापिहितोह्यूष्मारोमकूपमुखेस्थितः ॥
विनालेपेननिर्यातिरात्रौनोलेपयेत्ततः ॥ ७३ ॥

अर्थ–रात्रिमें अंधकार करके शरीरसंबंधी ऊष्मा आच्छादित हो रोमरंध्रमुखोंमें आकर रहे है और विना लेपके वह बाहर निकले है इसीसे रात्रिमें लेप न करे ।

रात्रिमें प्रलेपादिकोंकी विधि तथा योग्य प्राणी ।

रात्रावपिप्रलेपादिविधिःकार्योविचक्षणैः ॥
अपाकिशोथेगंभीरेरक्तश्लेष्मसमुद्भवे ॥ ७४ ॥

अर्थ–जिस सूजनका पाक नहीं हुआ हो उसपर तथा गंभीरसंज्ञक जो व्रण उसमें एवं रक्तकफसे उत्पन्न जो सूजन उसमें बुद्धिमान् वैद्य रात्रिमेंभी लेपादिकोंकी विधि करे अर्थात् लेप करे ।

व्रण दूर होनेपर लेप ।

आदौशोथहरोलेपोद्वितीयोरक्तसेचनः ॥ तृतीयश्चोपनाहःस्या-
च्चतुर्थःपाठनक्रमः॥७५॥पंचमःशोधनोभूयात्षष्ठोरोपणइष्यते॥
सप्तमोवर्णकरणोव्रणस्यैतेक्रमामताः ॥ ७६ ॥

अर्थ–प्रथम व्रणसंबंधी जो सूजन होती है उसके दूर करनेको लेप करे । दूसरा लेप व्रणमें जो रुधिर जमा रहताहै वह पिघल जावे ऐसा लेप करे । तीसरा लेप उपनाह कहिये पसीने निकालनेका प्रयोग है । चौथा लेप व्रण फूटे ऐसा करे । पांचवाँ लेप राध आदिका शोधन होय ऐसा करे छठा लेप रोपण कहिये व्रण भर आवे ऐसा करे । सातवाँ लेप व्रणके स्थानपर कांति आवे ऐसा करे इसप्रकार व्रण अच्छा होनेके विषयमें सात क्रम जानने । वे औषध आगे ग्रंथमें कहते हैं ।

व्रणसंबंधी वायुकी सूजनपर लेप ।

बीजपूरजटामांसीदेवदारुमहौषधम् ॥

रास्नाग्निमंथोलेपोऽयंवातशोथविनाशनः ॥ ७७ ॥

अर्थ-१ बिजोरेकी जड २ जटामांसी ३ देवदारु ४ सोंठ ५ रास्ना ६ अरनीकी जड ये औषध समान भाग लेके पानीमें पीस व्रणसंबंधी जो वादीकी सूजन उसके दूर करनेको लेप करे।

पित्तकी सूजपनर लेप।

मधुकंचंदनंमूर्वानलमूलंचपद्मकम् ॥
उशीरंवालकंपद्मंपित्तशोथेप्रलेपनम् ॥ ७८ ॥

अर्थ-१ मुलहटी २ लालचंदन ३ मूर्वा ४ नरसलकी जड ५ पद्माख ६ नेत्रवाला ७ खस ८ कमल ये आठ औषधि समान भाग ले जलसे पीस व्रणसंबंधी पित्तकी सूजनपर लेप करे।

कफजन्य व्रणकी सूजनपर लेप।

कृष्णापुराणपिण्याकंशिग्रुत्वक्सिकताशिवा ॥
मूत्रपिष्टःसुखोष्णोऽयंप्रदेहःश्लेष्मशोथहृत् ॥ ७९ ॥

अर्थ-१ पीपल २ पुरानी खल ३ सहजनेकी छाल ४ खांड और ५ हरड ये पांच औषधि समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके थोडा गरम करके कफसंबंधी सूजन दूर करनेको यह प्रदेहसंज्ञक लेप करे।

आगंतुक सूजन तथा रक्तजन्य सूजनपर लेप।

द्वेनिशेचंदनेद्वेचशिवादूर्वापुनर्नवा ॥ उशीरंपद्मकंलोध्रंगैरिकं चरसांजनम् ॥ ८० ॥ आगंतुकेरक्तजेचशोथेकुर्यात्प्रलेपनम् ॥

अर्थ-१ हल्दी २ दारुहल्दी ३ चंदन ४ लालचंदन ५ हरड ६ दूब ७ पुनर्नवा (सांठ) ८ नेत्रवाला ९ पद्माख १० लोध ११ गेरू १२ रसोत ये बारह औषध समान भाग ले जलमें पीस आगंतुक सूजन तथा रक्तजन्य सूजन दूर होनेके वास्ते यह लेप करे।

व्रण पकनेका लेप।

शणमूलकशिग्रूणांफलानितिलसर्षपाः ॥ ८१ ॥
सक्तवःकिण्वमतसीप्रदेहःपाचनःस्मृतः ॥

अर्थ-१ सनके बीज २ मूलीके बीज ३ सहजनेके बीज ४ तिल ५ सरसों ६ जव ७ लोहकीटी ८ अलसीके बीज ये आठ औषध समान भाग ले व्रण पकनेको यह प्रदेह संज्ञक लेप करे।

पके व्रण फोडनेका लेप।

दन्तीचित्रकमूलत्वक्स्नुह्यर्कपयसीगुडः ॥ ८२॥
भल्लातकश्चकासीसंसैंधवंदारणेस्मृतः ॥

अर्थ-१ दंतीकी जड २ चीतेकी छाल ३ थूहरका दूध ४ आकका दूध ५ गुड ६ भिलावे ७ हीराकसीस ८ सैंधानमक इन आठ औषधोंमेंसे छः औषधोंका चूर्ण करके उसको थूहरके दूध और आकके दूधमें सानके पकेहुए व्रणपर लगावे तो वह फूटजावे।

दूसरा प्रकार।

चिरबिल्वोग्निकोदंतीचित्रकोहयमारकः ॥ ८३॥
कपोतकंकगृध्राणांमलंलेपनदारणम् ॥

अर्थ-१ कंजेके बीज २ भिलाए ३ दंतीकी जड ४ चीतेकी छाल ५ कनेरकी जड इन पांच औषधोंका चूर्ण करे। फिर कपोत (कबूतर वा पिंडुकिया) कंक (सफेद चील) और गीध इन तीनोंकी वींठ समान भाग लेके उस चूर्णमें मिलायके पकेहुए फोडेपर लेप करे तो वह फोडा तत्काल फूटजावे।

तीसरा प्रकार।

सर्जिकायावशूकाव्याःक्षारालेपनदारणाः ॥ ८४॥
हेमक्षीर्य्यास्तथालेपोव्रणेपरमदारणः ॥

अर्थ-सज्जीखार और जवाखार इनका लेप फोडा फोडनेको करे। उसी प्रकार, हेमक्षीरी (चोक) का लेप फोडेके फोडनेको उत्तम कहा है।

व्रणशोधन लेप।

तिलसैंधवयष्ट्याह्वनिंबपत्रनिशायुगैः ॥ ८५॥
त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैःप्रलेपोव्रणशोधनः ॥

अर्थ-१ तिल २ सैंधानमक ३ मुलहटी ४ नीमके पत्ते ५ हल्दी ६ दारुहल्दी ७ निसोत ये सात औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर घीमें सानके लेपकरे तो व्रणका शोधन होवे।

व्रणके शोधन और रोपणविषयक लेप।

निंबपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुतः ॥ ८६॥
तिलैश्चसहसंयुक्तोलेपःशोधनरोपणः ॥

अर्थ- १ नीमके पत्ते २ घी ३ सहत ४ मुलहटी ५ तिल इन पांच औषधोंको

तीन औषधोंका चूर्ण करके उसमें घी सहत मिलायके व्रणका शोधन और रोपण करनेके वास्ते लेप करे।

व्रणसम्बन्धी कृमि दूरकरनेपर लेप।

करंजारिष्टनिर्गुंडीलेपो हन्याद्व्रणक्रिमीन् ॥ ८७ ॥
लशुनस्याथवा लेपो हिंगुनिंबभवोऽथवा ॥

अर्थ–१ करंज २ नीम ३ निर्गुंडी इन तीन औषधोंके पत्तोंको पीस व्रणसंबंधी कृमि दूर होनेको लेप करे। अथवा केवल लहसनको पीसके लेप करे अथवा हींग और नीमके पत्ते दोनोंको एकत्र पीसके लेप करे।

व्रणके शोधन और रोपणपर दूसरा लेप।

निंबपत्रं तिला दंती त्रिवृत्सैंधवमाक्षिकम् ॥ ८८ ॥
दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनरोपणः ॥

अर्थ–१ नीमके पत्ते २ तिल ३ दंती ४ निसोथ ५ सैंधानमक ये पांच औषध समान भाग ले बारीक चूर्णकर सहतमें सानके दुष्ट व्रणके शमन होने और शोधन तथा रोपण कहिये भरनेके वास्ते लेपकरे।

उदरशूलमें नाभिपर लेप।

मदनस्य फलं तिक्तां पिष्ट्वा कांजिकवारिणा ॥ ८९ ॥
कोष्णं कुर्यान्नाभिलेपं शूलशांतिर्भवेत्ततः ॥

अर्थ–१ मैनफल २ कुटकी इन दोनों औषधोंको समान भाग ले कांजीसे पीस कुछ गरम करके नाभीपर लेप करे तो पेटका शूल (दर्द) दूर होय।

वातविद्रधिपर लेप।

शिग्रुशेफालिकैरंडयवगोधूममुद्गकैः ॥ ९० ॥
सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥

अर्थ–१ सहजनेकी छाल २ निर्गुंडीके पत्ते ३ अंडकी जड ४ जौ ५ गेहूँ ६ मूँग ये छः औषध समान भाग लेकर पानीमें पीस वातविद्रधि रोग दूर होनेके वास्ते सहन होय ऐसा गरम करके गाढा लेप लगावे।

पित्तविद्रधिपर लेप।

पैत्तिके सर्पिषा लाजमधुकैः शर्करान्वितैः ॥ ९१ ॥
प्रलिंपेत्क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचंदनैः ॥

अर्थ—साली चावलकी खील मुलहटी इन दोनोंका चूर्ण और खाँड इन दोनोंका घीमें सानके लेप करे । अथवा पयस्या कहिये क्षीरकाकोली उसके अभावमें असगंध नेत्रवाला और लालचंदन ये तीन औषध दूधमें पीसके लेप करे तो पित्तविद्रधि दूर होय ।

कफविद्रधिपर लेप ।

इष्टिकासिकतालोहकिट्टंगोशकृतासह ॥ ९२ ॥
सुखोष्णश्चप्रदेहोऽयंमूत्रैःस्याच्छ्लेष्मविद्रधौ ॥

अर्थ—१ ईंट २ वालूरेत ३ लोहकी कीट ४ गौका गोवर ये चार औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके यह प्रदेहसंज्ञक लेप कफविद्रधिपर करे तो कफकी विद्रधि दूर हो ।

आगंतुकविद्रधिपर लेप ।

रक्तचंदनमंजिष्ठानिशामधुकगैरिकैः ॥ ९३ ॥
क्षीरेणविद्रधौलेपोरक्तागंतुनिमित्तजे ॥

अर्थ—१ लालचंदन २ मजीठ ३ हल्दी ४ मुलहटी ५ गेरू ये पांच औषध समान भाग ले दूधमें पीस अभिघात निमित्त करके दुष्टहुए रुधिरसे उत्पन्न विद्रधिपर लेप करे ।

वातगलगंडपर लेप ।

निचुलःशिग्रुबीजानिदशमूलमथापिवा ॥ ९४ ॥
प्रदेहोवातगंडेषुसुखोष्णःसंप्रदीयते ॥

अर्थ—१ जलवेतस २ सहजनके बीज इन दोनोंको जलसे पीस वात गलगंड दूर होनेके वास्ते यह प्रदेहसंज्ञक लेप सहन होय ऐसा थोडा गरम करके करे अथवा दशमूलको पीसके लेप करे ।

कफकेगलगण्डपर लेप

देवदारुविशालाचकफगंडेप्रदेहकः ॥ ९५ ॥

अर्थ—१ देवदारु २ इन्द्रायणकी जड़ इन दोनों औषधोंको जलसे पीस कफगलगंड दूर होने को यह प्रदेह संज्ञक लेप करे ।

सर्षपारिष्टपत्राणिदग्ध्वाभल्लातकैःसह ॥
छागमूत्रेणसंपिष्टमपचीघ्नंप्रलेपनम् ॥ ९६ ॥

अर्थ—१ सरसों २ नीमके पत्ते ३ भिलाए ये तीन औषध समान भाग लेके जलाय डाले । जब राख होजावे तब इस राखको बकरेके मूत्रसे सानके अपचीरोग जो गंडमालाका भेद है उसके दूर करनेको लेप करे ।

गंडमाला अर्बुद तथा गलगंडपर लेप ।

सर्षपाःशिग्रुबीजानिशणबीजातसीयवान् ॥
मूलकस्यचबीजानितक्रेणाम्लेनपेषयेत् ॥ ९७ ॥
गण्डमालार्बुदंगंडंलेपेनानेन शाम्यति ॥

अर्थ–१ सरसों २ सहजनेके बीज ३ सनके बीज ४ अलसीके बीज ५ जौ ६ मूलीके बीज ये छः औषध समान भाग ले खट्टी छाछमें पीस गंडमाला अर्बुद और गलगंड ये रोग दूर करनेको यह लेप करे ।

अपबाहुकवातरोगपर लेप ।

तक्षयित्वाक्षुरेणांगंकेवलानिलपीडितम् ॥ ९८ ॥
तत्रप्रदेहंदद्याच्चपिष्टंगुंजाफलैःकृतम् ॥
तेनापबाहुजापीडाविश्वाचीगृध्रसीतथा ॥ ९९ ॥
अन्यापिवातजापीडाप्रशमंयातिवेगतः ॥

अर्थ–केवल वादीसे पीडित मनुष्यके अंगमें जिस जगह बादीका कोप होवे उस स्थानको छुरासे मूँड बाल दूर करके उस स्थानपर घूँघचीको जलमें पीसके लेप करे तो अपबाहुक वायु विश्वाची वायु (जो भुजामें होती है) तथा गृध्रसी वायु (जघारोग विशष) ये वायु दूर हों तथा और प्रकारके वायुसंबंधी रोग इस लेप करके तत्काल दूर हों ।

श्लीपदरोगपर लेप ।

धत्तूरैरंडनिर्गुंडीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ॥ १०० ॥
प्रलेपःश्लीपदंहंतिचिरोत्थमपिदारुणम् ॥

अर्थ–१ धतूरेके पत्ते २ अंडके पत्ते ३ निर्गुंडीके पत्ते ४ पुनर्नवा जडसहित ५ सहजनेकी छाल ६ सरसों इन छः औषधोंको पीस, बहुत दिनका तथा दारुण श्लीपद रोग दूर होनेके वास्ते यह लेप करे ।

कुरंडरोगपर लेप ।

अजाजीहपुषाकुष्ठमेरंडबदरान्वितम् ॥ १०१ ॥
कांजिकेनतुसंपिष्टंकुरंडघ्नंप्रलेपनम् ॥

अर्थ–१ जीरा २ हाऊबेर ३ कूठ ४ अंडकी जड ५ बेरकी छाल इन पांच औषधोंको समान भाग ले कांँजीमें पीस कुरंड (अंडवृद्धि) रोग दूर होनेको यह लेप करे ।

उपदंशरोगपर लेप ।

करवीरस्यमूलेनपरिपिष्टेनवारिणा ॥ १०२ ॥
असाध्यापिजरत्याशुर्लिंगोत्थारुक्प्रलेपनात् ॥

अर्थ–कनेरकी जडको जलमें पीसके लेप करे तो लिंगमें जो उपदंशसबंधी पीडा वह असाध्यभी तत्काल दूर होवे ।

उपदंशपर दूसरा लेप ।

दहेत्कटाहेत्रिफलांसामषीमधुसंयुता ॥ १०३ ॥
उपदंशेप्रलेपोऽयंसद्योरोपयतिव्रणम् ॥

अर्थ–त्रिफलेको कडाहीमें जलायके उसकी राख सहतमें मिलायके लेप करे तो लिंगमें जो उपदंशसंबंधी व्रण होता है उसका तत्काल रोपण होय अर्थात् वह घाव तत्काल भर आवे ।

उपदंशपर तीसरा लेप ।

रसांजनंशिरीषेणपथ्ययाचसमन्वितम् ॥ १०४ ॥
सक्षौद्रंलेपनंयोज्यमुपदंशगदापहम् ॥

अर्थ–१ रसोत २ सिरसकी छाल ३ हरड ये तीन औषध ले समान भागका चूर्ण कर सहतमें मिलायके लिंगपर लेप करे तो उपदंशसंबंधी जो लिंगमें घावआदि उपद्रव होते हैं वे तत्काल नष्ट हों ।

अग्निदग्धपर लेप ।

अग्निदग्धेतुगाक्षीरीप्लक्षचंदनगैरिकैः ॥ १०५ ॥
सामृतैःसर्पिषा स्निग्धरालेपंकारयेद्भिषक् ॥
तंदुलीयकशायैर्वाघृतमिश्रैःप्रलेपयेत् ॥ १०६ ॥

अर्थ–१ वंशलोचन २ पाखर ३ लाल चंदन ४ गेरू ५ गिलोय इन पांच औषधोंका समान भाग लेके चूर्ण करे । फिर घीमें मिलाय जिस मनुष्यकी देह अग्निसे जल गई हो उसपर लेप करे । अथवा चौलाईका काढा करके उसमें घी डालके उसका लेप करे ।

दूसरा लेप ।

यवान्दग्ध्वामषीकार्यातैलेनयुतयातया ॥
दद्यात्सर्वाग्निदग्धेषुप्रलेपोव्रणरोपणः ॥ १०७ ॥

अर्थ–जवोंको जलाय राख करके तिलके तेलमें मिलाय मनुष्यके देहपर अग्निसे जलेहु

स्थानपर लेप करे तो जलनेसे जो घाव हुआ हो वह भरके शरीर जैसाका तैसा हो जावे। अग्निका जलना पुष्टादि भेदसे चार प्रकारका है सो माधवनिदानसे जान लेना ।

योनि कठोरकरनेका लेप।

पलाशोदुंबरफलैस्तिलतैलसमन्वितैः ॥
मधुनायोनिमालिंपेद्गाढीकरणमुत्तमम् ॥ १०८ ॥

अर्थ—१ पलास (ढाक) के फूल २ गूलरके फल इन दोनोंका चूर्ण कर तिलके तेलमें मिलायके तथा उसमें सहत मिलायके योनिमें लेप करे तो शिथिल हुईभी योनि इस लेपसे कठोर अर्थात् तंग होजावे ।

दूसरा लेप।

माकंदफलसंयुक्तमधुकर्पूरलेपनात् ॥
गतेऽपियौवनेस्त्रीणांयोनिर्गाढातिजायते ॥ १०९ ॥

अर्थ—आमका कोमल फल तथा कपूर इन दोनोंका चूर्णकर सहतमें मिलाय योनिमें लेप करे तो, वृद्धा (बुड्ढी) स्त्रीकीभी योनी सुकडके अत्यंत तंग होजावे ।

लिंग और स्तनादिक वृद्धिकरनेका लेप ।

मरीचंसैंधवंकृष्णातगरंबृहतीफलम् ॥ अपामार्गस्तिलाःकुष्ठंयवामाषाश्वसर्षपाः॥११०॥अश्वगंधाचतच्चूर्णमधुनासहयोजयेत् ॥ अस्यसंततलेपेनमर्दनाच्चप्रजायते ॥ १११॥ लिंगवृद्धिःस्तनोत्सेधःसंहतिर्भुजकर्णयोः ॥

अर्थ—१काली मिचर २ सैंधानमक ३ पीपल ४ तगर ५ कटेकि फल ६ ओंगाके बीज ७ काले तिल ८ कूठ ९ जौ १० उडद ११ सरसों १२ असगंध ये बारह औषध समान भाग ले चूर्ण कर सहतमें मिलाय लिंगपर निरंतर अर्थात् नित्य प्रति लेप कर मर्दन करे तो लिंग मोटा होय इसी प्रकार स्त्रियोंके स्तनोंपर करे तथा भुजा और कर्ण (कान) पर लेप कर मर्दन करे तो इनकी वृद्धि होवे ।

लिंगवृद्धिपर दूसरा लेप ।

सिताश्वगंधासिंधूत्थाछागक्षारैर्घृतंपचेत् ॥ ११२ ॥
तल्लेपान्मर्दनाल्लिंगवृद्धिःसंजायतेपरा ॥

अर्थ—सफेद फूलकी असगंध और सैंधानमक ये दोनों औषध बारीक करके इस चूर्णसे चौगुना घी और घीसे चौगुना भेडका दूध ले सबको एकत्र करके चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि

जलावे जब सब वस्तु जलकर केवल घीमात्र शेष रहे तब इस घीको लिंगपर लेप करके मर्दन करे तो लिंग अत्यंत स्थूल होवे ।

योनिद्रावणकारी लेप ।

इंद्रवारुणिकापत्ररसैःसूतंविमर्दयेत् ॥ ११३ ॥
रक्तस्यकरवीरस्यकाष्ठेनचमुहुर्मुहुः ॥
तल्लिप्तलिंगसंयोगाद्योनिद्रावोऽभिजायते ॥ ११४ ॥

अर्थ–इन्द्रायणके पत्तोंका रस निकालके उस रसमें पारा मिलायके लाल फूलके कनेरकी लकडीसे उसको खरलकरे अर्थात् घोटे । इसप्रकार वारंवार अर्थात् जब २ रस सूख जावे तब २ और रस डालके पारेको घोटे । इसप्रकार पांच सातवार घोटके लिंगपर लेप करे । पश्चात् शिश्न और योनिका संयोग होतेही पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रीका वीर्य तत्काल पतन हो स्त्री हतवीर्य होवे ।

देहदुर्गंधदूरकरनेका लेप ।

तांबूलपत्रचूर्णतुचूर्णकुष्ठशिवाभवम् ॥
वारिणालेपनंकुर्याद्गात्रदौर्गंध्यनाशनम् ॥ ११५ ॥

अर्थ–१ पान २ कूठ ३ हरड इन तीनोंका चूर्ण कर जलमें मिलायके शरीरमें लेप करे तो देहसंबंधी दुर्गंध दूर होय ।

दूसरा लेप ।

कुलित्थसक्तवःकुष्ठंमांसीचंदनजंरजः ॥
सक्तवश्चणकस्यैवत्वक्चैवैकत्रकारयेत् ॥ ११६ ॥
स्वेददौर्गंध्यनाशश्चजायतेऽस्यावधूलनात् ॥

अर्थ–१ कुलथीका सत्तू २ कूठ ३ जटामांसी ४ सफेद चंदन ५ चनेका भुनाहुवा चून इन सबका चूर्ण करके शरीरमें इस चूर्णका अवधूलन कहिये मालिश करे तो देहमें पसीनोंका आना और देहकी दुर्गंध दूर होवे ।

वशीकरण लेप ।

वचासौवर्चलंकुष्ठंरजन्योमरिचानिच ॥ ११७ ॥
एतल्लेपप्रभावेनवशीकरणमुत्तमम् ॥

अर्थ–१ वच २ संचरनमक ३ कूठ ४ हल्दी ५ दारुहल्दी ६ काली मिरच ये छः औषध समान भाग ले जलसे पीस शरीरमें लेप करे यह लेप वशीकरणकर्त्ता उत्तम प्रयोग है ।

मस्तकमें तेलधारण करनेके चार प्रकार।

अभ्यंगः परिषेकश्च पिचुर्बस्तिरितिक्रमात् ॥ ११८ ॥
मूर्धतैलं चतुर्धा स्याद्बलवच्च यथोत्तरम् ॥

अर्थ—अभ्यंग कहिये मस्तकमें तेलका मर्दन और परिषेक कहिये मस्तकमें तेलको चुपडना तथा पिचु कहिये रुईके गालेको अथवा कपडेके टुकडेको तेलमें भिगोयके मस्तकपर धारण करना । और बस्ति कहिये चमडेकी वस्ति बनायके मस्तकपर तेल धारण करनेका प्रयोग वह आगेके श्लोकमें कहा है इस प्रकार मूर्धतैलके कहिये मस्तकमें तेल धारण करनेके चार भेद हैं सो क्रमसे एककी अपेक्षा दूसरा बलवान् है ।

शिरोबस्तीकी विधि।

त्रयोऽभ्यंगादयः पूर्वं प्रसिद्धाः सर्वतः स्मृताः ॥ ११९ ॥
शिरोबस्तिविधिश्चात्र प्रोच्यते सुज्ञसंमतः ॥

अर्थ—पिछले श्लोकमें कहे हुए अभ्यंग परिषेकादिक तीन प्रकार वे सर्वत्र स्थलोंमें प्रसिद्ध हैं । तथा शिरोबस्तिकी विधि नहीं कही इस वास्ते बुद्धिमानोंको मान्य ऐसी शिरोबस्तिकी विधि कहताहूं ।

शिरोबस्तिका प्रकार।

शिरोबस्तिश्चर्मणः स्याद्द्विमुखो द्वादशांगुलः ॥ १२० ॥
शिरःप्रमाणं तं बद्ध्वा मस्तके माषपिष्टकैः ॥
संधिरोधं विधायादौ स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत् ॥ १२१ ॥

अर्थ—मस्तकपर धारण करनेकी जो बस्ति उसको शिरोबस्ति कहते हैं वह हरिणादिकोंके चमडेकी बनावे । उसका आकार बारह अंगुल ऊँची टोपीके समान बनायके दो मुख बनावे । तिसमें नीचेका मुख मस्तकपर आयजावे ऐसा करे और ऊपरका मुख छोटा करना चाहिये । उस टोपीको मनुष्यको पहनाय उसके नीचे जो छिद्र रहते हैं उसके चारों तरफ उडदके चूनको जलमें सानके संधियोंको बंद कर देवे । पश्चात् स्नेह सहन होय ऐसा थोडा गरम करके बस्तिके ऊपरके मुखसे मस्तकपर भर देवे ।

शिरोबस्तिधारणमें प्रमाण।

तावद्धार्यस्तु यावत्स्यान्नासानेत्रमुखस्रुतिः ॥
वेदनोपशमो वापि मात्राणां वा सहस्रकम् ॥ १२२ ॥

अर्थ–नाक नेत्र और मुख इनमें जबतक स्राव न होय तवतक अथवा मस्तकसंबंधी पीडा दूर हो तबतक अथवा बस्तिके अध्यायमें अनुवासनबस्तिकी मात्राका कालप्रमाण १००० एक-हजार मात्रा पूर्ण होनेपर्यंत मस्तकपर बस्तिको धारण करे ।

शिरोबस्तिधारणमें काल ।

विनाभोजनमेवात्रशिरोबस्तिःप्रशस्यते ॥
प्रयोज्यस्तुशिरोबस्तिः पंचसप्ताहमेववा ॥ १२३ ॥

अर्थ–विना भोजन किये हुए मनुष्यको शिरोबस्ति कराना उत्तम है और यह शिरोबस्ति पांचवें दिन अथवा सातवें दिन करनी चाहिये ।

शिरोबस्तिके कर्म होनेके उपरांत क्रिया ।

विमोच्यशिरसेबस्तिंगृह्णीयाच्चसमंततः ॥
ऊर्ध्वकायंततःकोष्णनीरैःस्नानंसमाचरेत् ॥ १२४ ॥

अर्थ–मस्तकपर धारण की हुई बस्तिके चारों तरफ एकसा उचलकर पटक देवे अर्थात् ऐसा न करे कि कहीं तो बस्ति लगी हुई है और कहींसे उखाडी हुई । जब बस्तिको उखाड चुके तब ऊर्ध्वकाय कहिये मस्तकपर सुहाता २ गरम जल डालके स्नान करे ।

शिरोबस्तिदेनेसे रोग दूर हों उनका कथन ।

अनेनदुर्जयारोगावातजायांतिसंक्षयम् ॥
शिरःकंपादयस्तेनसर्वकालेप्रयुज्यते ॥ १२५ ॥

अर्थ–दुर्जय कहिये दूर करनेको अशक्य ऐसे शिरःकंपादिक जो बादीके रोग हैं वे इस बस्तीके देनेसे दूर होते हैं । इसवास्ते इनमें इस बस्तिकी सर्व कालमें योजना करनी चाहिये ।

कानमें औषध डालनेकी विधि ।

स्वेदयेत्कर्णदेशंतुकिंचिन्नुःपार्श्वशायिनः ॥
मूत्रैःस्नेहैरसैःकोष्णैस्ततःकर्णंप्रपूरयेत् ॥ १२६ ॥

अर्थ–मनुष्यको कुछ करवटकी तरफ सुलायके कानके चारों तरफ पसीने युक्त करके पश्चात् गोमूत्रादिक तैलादिक तथा औषधोंका रस सहन होय इस प्रकार थोडा २ गरम करके कानमें डाले ।

कानमें औषधडालनेके कितनीदेर ठहरे ।

कर्णंतुपूरितंरक्षेच्छतंपंचशतानिवा ॥

सहस्रंवापिमात्राणां श्रोत्रकंठशिरोगदे ॥ १२७ ॥

अर्थ—कर्णरोग कंठरोग और मस्तकरोग ये दूर होनेके लिये कानमें जो औषध डालीहो वह सौ मात्रा अथवा पांचसौ मात्रा अथवा एक हजार मात्रा होवे तावत्काल पर्यंत कानमें रक्खे। मात्राके लक्षण आगेके श्लोकमें कहेहैं सो जानना।

मात्राका प्रमाण।

स्वजानुनःकरावर्तंकुर्याच्छोटिकयायुतम् ॥
एषामात्राभवेदेकासर्वत्रैवैषनिश्चयः ॥ १२८ ॥

अर्थ—अपने घोंटूके चारों तरफ स्पर्श होय इसप्रकार हाथको फेरके चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा होतीहै ऐसा निश्चय सर्वत्र है।

रसादिक तथा तैलादिक इनका कानमें डालनेका काल।

रसाद्यैःपूरणंकर्णेभोजनात्प्राक्प्रशस्यते ॥
तैलाद्यैःपूरणंकर्णेभास्करेऽस्तमुपागते ॥ १२९ ॥

अर्थ—रसआदिकरके जो औषध कानमें डालना हो सो भोजन करनेके पूर्व डाले। तथा तैलादिक जो औषध कानमें डाले वह दिन मुंदनेके पश्चात् अर्थात् रात्रिमें डाले।

कर्णशूलपर औषध।

पीतार्कपत्रमाज्येनलिप्तमग्नौप्रतापयेत् ॥
तद्रसःश्रवणेक्षिप्तःकर्णशूलहरःपरः ॥ १३० ॥

अर्थ—आकके पके हुए पत्तेमें घी लगाय अग्निपर तपाय उसका रस निकालके कानमें डाले तो कर्णशूल दूर हो।

कर्णशूलपर मूत्रप्रयोग।

कर्णशूलातुरेकोष्णंबस्तमूत्रंससैंधवम् ॥
निक्षिपेत्तेनशाम्यंतिशूलपाकादिकारुजः ॥ १३१ ॥

अर्थ—बकरेके मूत्रमें सैंधानमक डालके कुछ थोडा गरम कर कानमें डाले तो कर्णशूल और व्रणसंबंधी पाकादिक उपद्रव दूर हों।

कर्णशूलपर तीसरा प्रयोग।

शृंगवेरंचमधुकंमधुसैंधवमामलम् ॥ तिलपर्णीरसस्तैलंटंकणं निंबुकद्रवम् ॥ १३२ ॥ कदुष्णंकर्णयोर्देयमेतद्वावेदनापहम् ॥

अर्थ—१ अदरखका रस २ मुलहटी ३ सहत ४ सैंधानमक ५ आंवले ६ तिलपर्णीका रस

७सरसोंका तेल ८ सुहागा ९ नींबका रस ये नौ औषध एकत्र कर कुछ गरम करके कानमें डाले तो कर्णसंबंधी पीडा दूर हो ।

कर्णशूलपर चतुर्थ प्रयोग ।

कपित्थमातुलुंगाम्लशृंगवेररसैःशुभैः ॥ १३३ ॥
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णंकर्णशूलोपशांतये ॥

अर्थ—१ कैथके फलका रस २ बिजोरेका रस अमलवेतका रस ४ अदरखका रस ये चार रस एकत्र कर कुछ २ गरम कर कर्णशूल दूर होनेके वास्ते कानमें डाले ।

कर्णशूलपर पांचवाँ प्रयोग ।

अर्कांकुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्ताँल्लवणान्वितान् ॥ १३४ ॥
संनिदध्यात्स्नुहीकांडेकोरितेतच्छदावृते ॥
पुटपाकक्रमंकृत्वारसैस्तत्रप्रपूरयेत् ॥ १३५ ॥
सुखोष्णैस्तेनशाम्यंतिकर्णपीडाःसुदारुणाः ॥

अर्थ—आकके अंकुर अर्थात् आगेकी कोमल २ पत्ती इनको नींबूके रसमें खरलकर उसमें थोडासा तिलका तेल और सैंधानमक डाल गोला बनावे । फिर थूहरकी गीली लकडीको भीतरसे पोली करके उसमें उस गोलेको रखके उसके चारों तरफ थूहरके पत्ते लपेटके बांध देवे फिर उसके ऊपर गीली मिट्टी लपेटके पुटपाककी विधिसे उस औषधका पाक होय ऐसी हलकी अग्नि देवे । पश्चात् उस गोलेको बाहर निकालके पत्ते वगैरहको दूर करे । फिर उस थूहरकी लकडी सहित निचोडके रस निकाल लेवे । अग्निपर सुखोष्ण करके कानमें डाले तो कानमें जो बडी भारी दारुण पीडा होतीहो वह दूर होय ।

कर्णशूलपर दीपिका तेल ।

महतःपंचमूलस्यकांडान्यष्टांगुलानितु ॥ १३६ ॥
क्षौमेणावेष्टचसंसिच्यतैलेनादीपयेत्ततः ॥
यत्तैलंच्यवतेतेभ्यःसुखोष्णं तेनपूरयेत् ॥ १३७ ॥
ज्ञेयंतद्दीपिकातैलंसद्योगृह्णातिवेदनाम् ॥
एवंस्याद्दीपिकातैलंकुष्ठेदेवतरौतथा ॥ १३८ ॥

---

१ अमलवेतके अभावमें चनेका खार अथवा चूकेका रस डालना चाहिये ।
२ पुटपाककी विधि मध्यमखंडमें स्वरसके पश्चात् कही है सो देखलेना ।

अर्थ—बडा पंचमूल अर्थात् बेल आदि पांच औषधोंकी जड आठ २ अंगुलकी ले उनको रेशमी वस्त्रमें अथवा कपडेमें लपेट तेलमें भिगोकर अग्निसे जलावे। तथा उन जडोंको सीधी रक्खे कि जिससे तेल टपक कर नीचे गिरे। उस तेलको कुछ थोडासा गरम करके कानमें डाले तो कानकी पीडा अर्थात् कानमें टीस मारना तत्काल दूर हो। इसको दीपिकातैल कहते हैं। इसी प्रकार कूठ अथवा देवदारुका तेल निकालके कानमें डाले तो कर्णशूल दूर होवे।

कर्णशूलपर स्योनाकतैल।

तैलंस्योनाकमूलेनमंदेऽग्नौपरिपाचितम् ॥
हरेदाशुत्रिदोषोत्थंकर्णशूलंप्रपूरणात् ॥ १३९ ॥

अर्थ—टैंटूकी जडको पीस कल्क करे तथा उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर दोनोंके एकत्र करे तथा उस तेलके पाक होनेके वास्ते उसमें कल्कका चौगुना जल डालके चूल्हेपर रखके मंद मंद आँचसे परिपक्व करे जब जलआदि सब जलके केवल तेलमात्र आय रहे तब उतारके तेलको छान किसी उत्तम शीशीआदि पात्रमें भरके रख देवे। इसको कानमें डाले तो त्रिदोषजन्य कर्णशूल तत्काल दूर होवे।

कर्णनादपर तैल।

कल्कक्काथेनयष्ट्याह्वकाकोलीमाषधान्यकैः ॥
सूकरस्यवसांपक्त्वाकर्णनादार्तिहारिणी ॥ १४० ॥

अर्थ—१ मुलहटी २ काकोलीके अभावमें असगंध ३ उडद ४ धनियाँ इन चार औषधोंका काढा करके उसमें इन्हीं औषधोंको कल्क करके डाल देवे। तथा सूअरकी वसा (अर्थात् मांसका स्नेह) उस काढेमें डालके चूल्हेपर चढाय अग्नि देकर स्नेह मात्र रहे तबतक पाक करे फिर इसको कानमें डाले तो कर्णनाद (कानोंमें शब्द हुआ करे सो) दूर हो।

कर्णनादादिकोंपर तैल।

सर्जिकामूलकंशुष्कंहिंगुकृष्णासमन्वितम् ॥
शतपुष्पाचतैस्तैलंपक्वंसूक्तंचतुर्गुणम् ॥ १४१ ॥
प्रणादंशूलबाधिर्यस्रावंकर्णस्यनाशयेत् ॥

अर्थ—१ सज्जीखार २ सूखी मूली ३ हींग ४ पीपल ५ सोंफ ये पांच औषध समान भाग ले, पीस कल्क करे। उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर उस कल्कमें मिलावे।

तथा उस कल्कका चौगुना सूक्त (सिरका) लेकर तेलमें मिलावे । फिर इस तेलके पात्रको चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि जलावे । जब तेलका पाक हो चुके तब उतारके तेलको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके धर रक्खे । इस तेलको कानमें डाले तो कर्णप्रणाद कर्णशूल बहिरापना तथा कानसे पूय (राध) आदिका स्राव ये रोग दूर होंय ।

बहरेपनपर अपामार्गक्षारतैल ।

अपामार्गक्षारजलेतत्क्षारंकल्कितंक्षिपेत् ॥ १४२ ॥
तेनपक्कंजयेत्तैलंबाधिर्यंकर्णनादकम् ॥

अर्थ–ओंगाकी राखकर किसी मिट्टीके पात्रमें धर उसमें उस राखसे चौगुना जल डालके रात्रिको चार प्रहर धरा रहनेदे । प्रातःकाल ऊपरके पानीको लोहेकी कडाहीमें निकाल उसमें उस जलसे चौथाई तिलका तेल डाले । फिर चूल्हेपर चढायके मंद २ अग्निसे पाक करे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके पात्रमें धर रक्खे । इस तेलको कानमें डाले तो कानका बहरापन तथा कर्णनाद दूर होय ।

कर्णनाडीपर शम्बूकतैल ।

शंबूकस्यतुमांसेनपचेत्तैलंतुसार्षपम् ॥ १४३ ॥
तस्यपूरणमात्रेणकर्णनाडीप्रशाम्यति ॥

अर्थ–शंबूक कहिये छोटा शंख अथवा शींपी उसका मांस और उस मांससे चौगुना सरसोंका तेल लेवे । उस तेलमें मांस डालके पकावे । जब पक्क होजावे तब मांसको निकालके दूर करे और इस तेलको कानमें डाले तो कर्णनाडी कहिये कर्णसम्बंधी फोडा दूर होय ।

कर्णस्रावपर औषध ।

चूर्णंपंचकषायाणां कपित्थरसमेवच ॥ १४४ ॥
कर्णस्रावेप्रशंसंतिपूरणंमधुनासह ॥

अर्थ–पंचकषाय कहिये पंचकषायसंज्ञक पांच औषध (कि जिनके नाम आगेके श्लोकमें कहे हैं) उनका चूर्ण करे । फिर कैथके रसमें इस चूर्णको और थोडा सहत डालके राधआदि स्राव दूर करनेको कानमें डाले ।

पंचकषायसंज्ञक वृक्षोंके नाम ।

तिंदुकान्यभयालोध्रःसमंगाचामलक्यपि ॥ १४५ ॥
ज्ञेयाःपंचकषायास्तुकर्मण्यस्मिन्भिषग्वरैः ॥

अर्थ-१ तेंदू २ हरड ३ लोध ४ मजीठ ५ आँवला ये कर्णस्राव दूर होनेके वास्ते पंचकषायसंज्ञक वृक्ष जानने। इनके फल लेने। यह विचार प्रथमखंडके परिभाषा अध्यायमें कह आए हैं।

कर्णस्रावपर औषध।

सर्जिकाचूर्णसंयुक्तंबीजपूररसंक्षिपेत् ॥ १४६ ॥
कर्णस्रावरुजोदाहाःप्रणश्यंतिनसंशयः ॥

अर्थ-सज्जीखारके चूर्णको बिजोरेके रसमें मिलायके कानमें डाले तो कर्णस्रावसंबंधी पीडा और दाह ये निश्चय करके दूर हों।

कानसे राध बहे उसपर औषध।

आम्रजंबूप्रवालानिमधूकस्यवटस्यच ॥ १४७ ॥
एभिःसंसाधितंतैलंपूतिकर्णोपशांतिकृत् ॥

अर्थ-आम जामुन महुआ और बड इन चारोंके कोमल पत्तोंको पीस कल्क करके उसमें तिलोंका तेल, उस कल्कका चौगुना डालकर अग्निपर पाक करे। पश्चात् यह तेल कानमेंसे जो राध बहती है उसके दूर होनेके लिये कानमें डाले।

कणके कीडे दूरहोनेपर तेल।

पूरणंहरितालेनगवांमूत्रयुतेनच ॥ १४८ ॥
अथवासार्षपंतैलंकर्णकीटहरंपरम् ॥

अर्थ-हरतालको गोमूत्रमें औटायके कानमें डाले अथवा सरसोंका तेल कानमें डाले तो कानके कीडेको हरण करता है।

कानका कीडा दूरहोनेका दूसरा प्रयोग।

स्वरसंशिग्रुमूलस्यसूर्यावर्तरसंतथा ॥ १४९ ॥
त्र्यूषणंचूर्णितं चैवकपिकच्छूरसंतथा ॥
कृत्वैकत्रक्षिपेत्कर्णेकर्णकीटहरंपरम् ॥ १५० ॥

अर्थ-सहँजनेकी छालका रस, हुलहुलका रस, त्र्यूषण (सोंठ मिरच पीपल) और कौंछकी जडका रस ये सब रस एकत्र करके उसमें पूर्वोक्त त्रिकुटेका रस मिलायके कानके कीडे दूर करनेको कानमें डाले।

तीसरा प्रयोग।

सद्योमद्यंनिहंत्याशुकर्णकीटंसुदारुणम् ॥

सद्योहिंगुनिहंत्याशुकर्णकीटंसुदारुणम् ॥ १६१ ॥

इति श्रीदामोदरात्मजशार्ङ्गधरेण निर्मितायां संहितायां चिकित्सास्थाने उत्तरखंडे लेपादिविधिवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्थ—हींग और मद्य इन दोनोंमेंसे कोईसी एक वस्तु कानमें डाले तो कानके कीडे मरजावें।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितमाथुरीभाषाटीकायामुत्तरखंडस्यैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः १२.

रक्तस्रावकी विधि ।

शोणितंस्रावयेज्जंतोरामयंप्रसमीक्ष्यच ॥
प्रस्थंप्रस्थार्धकंवापिप्रस्थार्धार्धमथापिवा ॥ १ ॥

अर्थ—मनुष्यके देहमें आमय कहिये रुधिरजन्य कुष्ठादिक रोगोंको देखके रक्तस्राव करे अर्थात् देहसे रुधिर निकाले उसका प्रमाण १ प्रस्थ अथवा अर्धप्रस्थ अथवा आधेका आधा अर्थात् चौथाई प्रस्थ कहिये १ कुडव प्रमाण जानना ।

रक्तस्रावका सामान्यकाल ।

शरत्कालेस्वभावेनकुर्याद्रक्तस्रुतिंनरः ॥
त्वग्दोषग्रंथिशोथाद्यानस्यूरक्तस्रुतेर्यतः ॥ २ ॥

अर्थ—देहसे रुधिर काढनेसे त्वचासंबंधी दोष व्रणादिक गाँठ और सूजन इत्यादिक रोग दूर होते हैं। इसीसे शरत्कालमें स्वभाव करके मनुष्योंका रुधिरस्राव करे अर्थात् फस्त खोले ।

रक्तका स्वरूप ।

मधुरंवर्णतोरक्तमशीतोष्णंतथागुरु ॥
शोणितंस्निग्धविस्रंस्याद्विदाहश्चास्यपित्तवत् ॥ ३ ॥

अर्थ—रुधिर, रस करके मीठा है वर्ण करके लाल और गुणों करके अशीतोष्ण कहिये मंदोष्ण भारी चिकना तथा आमगंधी है । तथा उस रुधिरकी दाहशक्ति पित्तके समान है । इस प्रकार रुधिरके रस, वर्ण और गुण जानने ।

रुधिरमें पृथिव्यादिभूतोंके गुण।

विस्रताद्रवतारागश्चलनंविलयस्तथा ॥
भूम्यादिपंचभूतानामेतेरक्तगुणाःस्मृताः ॥ ४ ॥

अर्थ-विस्रता कहिये आमगंधता यह पृथ्वीका गुण है। द्रवता अर्थात् पतलापन जलका गुण है। राग कहिये लाली अग्निका गुण है चलन वायुका गुण और लीनता आकाशका गुण है। इस प्रकार पृथिव्यादि पांच भूतोंके पांच गुण रुधिरमें हैं इस प्रकार जानना।

दुष्टरुधिरके लक्षण।

रक्तेदुष्टेवेदनास्यात्पाकोदाहश्चजायते ॥
रक्तमंडलताकंडूःशोथश्चपिटिकोद्गमः ॥ ५ ॥

अर्थ-मनुष्यका रुधिर दुष्ट होनेसे शरीरमें पीडा होय, अंग पकेके समान होकर दाह होय, तथा देहमें रुधिरके चकत्ते खुजली सूजन और फुन्सी होय।

रुधिरवृद्धिके लक्षण।

वृद्धेरक्तांगनेत्रत्वंशिराणांपूरणंतथा ॥
गात्राणांगौरवंनिद्रामदोदाहश्चजायते ॥ ६ ॥

अर्थ-रुधिरके बढनेसे शरीर और नेत्र ये लाल रंगके हों, धमन्यादि नाडी पूरित होवे अर्थात् फूल आवें। तथा देहका भारी होना निद्रा, मद होय ये उपद्रव होते हैं।

क्षीणरुधिरके लक्षण।

क्षीणेऽम्लमधुराकांक्षामूर्च्छाचत्वचिरूक्षता ॥
शैथिल्यंचशिराणांस्याद्वातादुन्मार्गगामिता ॥ ७ ॥

अर्थ-मनुष्यका रुधिर क्षीण होनेसे खटाई और मिष्टपदार्थोंके भोजनकी इच्छा होय, मूर्च्छा आवे, त्वचाका रूखापन, नाडियोंमें शिथिलता, तथा वायु ऊर्ध्वमार्ग होकर गमन करती है।

बादीसे दूषितरुधिरके लक्षण।

अरुणंफेनिलंरूक्षंपरुषंतनुशीघ्रगम् ॥
अस्कंदिसूचिनिस्तोदंरक्तंस्याद्वातदूषितम् ॥ ८ ॥

अर्थ-बादीसे रुधिरके दूषित होनेसे वह लाल रंगका, झागके समान, रूक्ष कठोर और हलका, शीघ्र गमन कर्ता और पतला होता है। तथा सूईके चुभानेके समान पीडा होती है।

पित्तदूषितरुधिरके लक्षण ।

पित्तेनपीतंहरितंनीलंश्यावंचविस्रकम् ॥
अस्कंद्युष्णंमक्षिकाणांपिपीलीनामनिष्टकम् ॥ ९ ॥

अर्थ–पित्त करके रुधिरके दूषित होनेसे उसका रंग पीले रंगका हरे रंगका नीले रंग अथवा श्याम रंगका होता है । वह आमगंधी (कचाईद मारे) उष्ण और चंचलता रहित होता है तथा उसको चैंटी और मक्खी नहीं खाती ।

कफदूषितरुधिरके लक्षण ।

शीतंचबहलंस्निग्धंगैरिकोदकसन्निभम् ॥
मांसपेशीप्रभंस्कंदिमंदगंकफदूषितम् ॥ १० ॥

अर्थ–कफसे दूषित हुआ रुधिर स्पर्श करनेसे अत्यंत शीतल होता है, स्निग्ध होकर गेरूके समान रंगवाला होता है, तथा मांसपेशी कहिये मांसके छोटे २ टुकडोंके समान हो स्कंदि कहिये घन तथा मंदगमन करनेवाला होता है ।

द्विदोष तथा त्रिदोषसे दूषित रुधिरके लक्षण ।

द्विदोषदुष्टंसंसृष्टंत्रिदुष्टंपूतिगंधकम् ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तंकांजिकाभंचजायते ॥ ११ ॥

अर्थ–दो दोषोंसे दूषित हुआ रुधिर दोनों दोषोंके लक्षण करके युक्त होता है । एवं त्रिदोषसे दूषित हुए रुधिरमें सडीहुई बास आवे और वह तीनों दोषके लक्षण करके युक्त होकर काँजीके समान होता है ।

विषदूषितरुधिरके लक्षण ।

विषदुष्टंभवेच्छ्यावंनासिकोन्मार्गगंतथा ॥
विस्रंकांजिकसंकाशंसर्वकुष्ठकरंबहु ॥ १२ ॥

अर्थ–विषसे दूषित हुआ रुधिर काले रंगका होता है । ऊपरके मार्ग होकर नासिकासे गिरता है । आमगंधि होकर काँजीके समान दीखता है तथा अतिशय करके यह दूषित रुधिर संपूर्ण कुष्ठोंको उत्पन्न करता है ।

शुद्धरुधिरके लक्षण ।

इंद्रगोपप्रभंज्ञेयंप्रकृतिस्थमसंहतम् ॥

अर्थ–जिस रुधिरमें कोईसा विकार नहीं हो अर्थात् शुद्ध रुधिर जो अपनी प्रकृतिपर है वह इन्द्रगोप (वीरबहूटी इस नामका कीडा लाल रंगका जो वर्षाऋतुमें होता है उस) के समान रंगवाला और पतला होता है ।

रुधिरस्रावयोग्य रोग ।

शोथेदाहेंगपाकेचरक्तवर्णेऽसृजःस्रुतौ ॥१३॥ वातरक्तेतथाकुष्टेसपीडेदुर्जयेऽनिले ॥ पाणिरोगेश्लीपदेचविषदुष्टेचशोणिते ॥ ॥१४॥ ग्रंथ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगरक्ताधिमंथिषु ॥ विदारीस्तनरोगेषुगात्राणांसादगौरवे ॥ १५ ॥ रक्ताभिष्यंदतंद्रायां पूतिघ्राणस्यदेहके ॥ यकृत्प्लीहविसर्पेषुविद्रधौपिटिकोद्गमे ॥१६॥ कर्णौष्ठघ्राणवक्राणांपाकेदाहेशिरोरुजि ॥ उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावः प्रशस्यते ॥ १७ ॥

अर्थ–दाह सूजन तथा जिसके अंगका पाक तथा शरीर लाल रंगका हो ऐसा मनुष्य तथा जिसकी नासिका द्वारा रुधिर गिरा करे, वातरक्त कोढ तथा पीडायुक्त हो, जीतनेमें अशक्य ऐसा बादीका रोग, हाथोंका रोग, श्लीपदरोग तथा विषसे दूषित रुधिर, ग्रंथिरोग, अर्बुद, गंडमालाका भेद, अपची रोग, क्षुद्ररोग, रक्ताधिमंथ (नेत्रोंका रोग), विदारीरोग, स्तनरोग, अंगोंकी शिथिलता, तथा शरीरका भारी होना, रक्ताभिष्यंद, तन्द्रा, दुर्गंधयुक्त हैं नाक मुख और देह जिसके, यकृत् कहिये कालखंडरोग, प्लीहा, विसर्प, विद्रधि तथा अंगोंपर फुन्सीका होना कान और होठ नाक तथा मुख इनका पाक, दाह, मस्तकपीडा, उपदंश, रक्तपित्त ये विकार जिन मनुष्योंके देहमें होयँ उनका रुधिर वैद्यको निकालना चाहिये । ये रुधिर काढनेके योग्य हैं ।

रुधिरनिकालनेके प्रकार ।

एषुरोगेषुशृंगैर्वाजलौकालाबुकैरपि ॥
अथवापिशिरामोक्षैःकुर्याद्रक्तस्रुतिंनरः ॥ १८ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त रोगोंमें वैद्य सींगी जोक तूँबी अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले ।

फस्तखोलने अयोग्य रोगी ।

नकुर्वीतशिरामोक्षंकृशस्यातिव्यवायिनः ॥ क्लीबस्यभीरोर्गर्भिण्याःसूतिकापांडुरोगिणः ॥ १९ ॥ पंचकर्मविशुद्धस्यपीतस्नेहस्यचार्शसाम् ॥ सर्वांगशोथमुक्तानामुदरश्वासकासिना-

१ अंग पके फोडेके समान होता है ।
२ ये कर्णादिक पकेके समान होकर प्रतीत हों ।

म् ॥ २० ॥ छर्द्यतीसारयुक्तानामतिस्विन्नतनोरपि ॥ ऊनषोडशवर्षस्यगतसप्ततिकस्यच ॥ २१ ॥ आघातस्रुतरक्तस्याशिरामोक्षोनशस्यते ॥ एषांचात्यायिकेयोगेजलौकाभिस्तुनिर्हरेत् ॥ २२ ॥ तथापिविषयुक्तानांशिरामोक्षोऽपिशस्यते ॥

अर्थ—कृश (दुबलाहुआ) मनुष्य, स्त्रीका संग करनेमें अत्यंत आसक्त, नपुंसक, डरपोक, गार्भिणी स्त्री, प्रसूतास्त्री पांडुरोगी, वमनादि पंच कर्म करके शुद्धहुआ मनुष्य, जिसने स्नेह पान किया हो, बवासीररोग, जिसका सर्वांग सूजगया हो, उदररोग, श्वास, खाँसी, वमन और अतिसार इत्यादि रोगोंसे पीडित, तथा जिसके अंगोंका पसीना निकाला हो, जिस मनुष्यकी अवस्था सोलह वर्षसे न्यून (कम) हो, तथा जिसकी सत्तर वर्षसे ऊपर अवस्था (ऊमर) होगईहो, चोट लगनेसे नासिकादिद्वारा रुधिर गिरताहो ऐसा मनुष्य, इन सब रोगियोंकी फस्त नहीं खोलनी । यदि रुधिर निकालनाही ठीक समझाजावे तो जोक लगायके रुधिर निकाले । कदाचित् ये रोगी विषप्रयोगसे व्याप्त होवे तो उनकी फस्त खोलकरही रुधिर निकाले ।

वातादिकसे दूषितरक्तके निकालनेका प्रकार ।

गोशृंगेणजलौकाभिरलाबुभिरपित्रिधा ॥२३॥ वातपित्तकफैर्दुष्टंशोणितंस्रावयेद्बुधः ॥ द्विदोषाभ्यांतुसंसृष्टंत्रिदोषैरपिदूषितम् ॥ २४ ॥ शोणितंस्रावयेद्युक्त्याशिरामोक्षैःपदैस्तथा॥

अर्थ—बादीसे दूषितहुआ जो रुधिर उसको गौके सींगसे अर्थात् सींगी देकर निकाले । पित्तसे दूषित रुधिरको जोक लगायके निकाले । कफसे दूषित रुधिरको तूमडी लगायके निकाले । और जो दो दोषों करके अथवा तीन दोषों करके दूषित रुधिर है उसको युक्तिपूर्वक फस्त खोलके अथवा पछनेसे निकालना चाहिये ।

सींगी आदिको रुधिरग्रहणमें प्रमाण ।

गृह्णातिशोणितंशृंगंदशांगुलमितंबलात् ॥ २५ ॥
जलौकाहस्तमात्रंचतुंबीचद्वादशांगुलम् ॥
पदमंगुलमात्रेणशिरासर्वांगशोधिनी ॥ २६ ॥

अर्थ—सिंगी लगानेसे सिंगी अपने बलसे दश अंगुलके रुधिरको खींचलेती है जोक लगानेसे एक हाथके रुधिरको खींचे । तुंबी बारह अंगुलका उस्तरा एक अंगुलके रुधिरको खींचके निकाले । एवं फस्त खोलनेसे संपूर्ण अंगका शोधन होता है ।

जिनके अंगसे रुधिर नहीं निकले उसका कारण।

शीतेनिरन्नेमूर्च्छांतितंद्राभीतिमदश्रमैः॥
युतानांनस्रवेद्रक्तंतथाविण्मूत्रसंगिनाम्॥ २७॥

अर्थ—शीतकालमें जिस मनुष्यने उपवास किया हो, मूर्च्छा तंद्रा भयभीत मद और श्रम इन करके युक्त हो, मळ और मूत्र ये जिसने भले प्रकार न किये हों ऐसे मनुष्योंके देहसे रुधिर नहीं निकलता।

रुधिर न निकलनेमें औषधि।

अप्रवर्तिनिरक्तेचकुष्ठचित्रकसैंधवैः॥
मर्दयेद्व्रणवक्त्रंचतेनसम्यक्प्रवर्तते॥ २८॥

अर्थ—फस्त देनेसे यदि रुधिर बाहर न आवे तो कूठ चित्रक और सैंधानमक इन तीन औषधोंका चूर्ण करके व्रणके मुखपर चुपडे तो रुधिर उत्तम प्रकारसे निकलने लगे।

रुधिरनिकालनेमें काल।

तस्मान्नशीतेनात्युष्णेनास्विन्नेनातितापिते॥
पीत्वायवागूंतृप्तस्यशोणितंस्रावयेद्बुधः॥ २९॥

अर्थ—शीतकाल तथा अत्यंत गरमी न हो ऐसे समयमें मनुष्यके अंगका पसीना बिना निकाले और शरीर अत्यंत तप्त न होनेपर जौंकी यवागू पीकर तृप्त हुए मनुष्यका वैद्य रुधिर निकाले।

अत्यंत रुधिर निकलनेमें कारण।

अतिस्विन्नस्योष्णकालेतथैवातिशिराव्यधात्॥
अतिप्रवर्ततेरक्तंतत्रकुर्यात्प्रातिक्रियाम्॥ ३०॥

अर्थ—मनुष्यके अंगका अत्यंत पसीना निकालकर गरमीकी ऋतुमें रुधिर निकालनेसे तथा फस्त खोलते समय अधिक नसके कट जानेसे देहसे रुधिर अधिक निकलता है उसके बंद करनेका यत्न आगेके श्लोकोंमें कहा है।

अत्यंत रुधिर निकलनेपर उपाय।

अतिप्रवृत्तेरक्तेचलोध्रसर्जरसांजनैः॥यवगोधूमचूर्णैर्वाधवधन्वनगैरिकैः॥३१॥ सर्पनिर्मोकचूर्णैर्वाभस्मनाक्षौमवस्त्रयोः॥ सुखंव्रणस्यबद्धाचशीतैश्चोपचरेद्व्रणम्॥३२॥ विध्येद्दूर्ध्वंशि-

रांतांवादहेत्क्षारेणवाग्निना ॥ व्रणंकषायःसंधत्तेरक्तंस्कंदयतेहि-मम् ॥ ३३ ॥ व्रणास्यंपाचयेत्क्षारोदाहःसंकोचयेच्छिराम् ॥

अर्थ—नसमेंसे रुधिर अत्यंत निकलने लगे तो उसके बंद करनेको लोध राल और रसोत इन तनोंका चूर्ण अथवा जौ और गेहूं इनका चून अथवा धामिन जवासा और गेरू इन तीनोंका चूर्ण अथवा सांपकी कांचलीका चूर्ण अथवा रेशम और कपडेकी राख इन सब औषधोंमें जो समयपर मिल जावे उसको उस घावके मुखपर भरके दाब देवे फिर उस व्रणपर चंदनादिक शीतल लेपादिक उपचार करे तो रुधिरका अत्यंत निकलना बंद होवे । यदि इतने उपाय करने-पर भी रुधिर बंद न होय तो उस नसके ऊपर फिर शस्त्रसे फस्त खोले । अथवा उस व्रणके मुखको अग्निसे दाग देवे । इत्यादि उपायों करके रुधिर बंद होताहै इसमें हेतु कहते हैं कि क-षाय कहिये लोध्रादिक चूर्ण व्रणके मुखको पकडता है और शीतोपचार करके रुधिर थमता है । क्षार करके व्रणका पाचन होता है । तथा अग्न्यादि दाह करके शिरा (नस) का संकोच होता है ।

दागदेनेसे जो रोग दूरहो उनके नाम ।

वामांडशोथेदक्षस्यपरस्यांगुष्ठमूलजाम् ॥ ३४ ॥ दहेच्छिरां व्यत्ययेतुवामांगुष्ठशिरांदहेत् ॥ शिरादाहप्रभावेणशुष्कशोथः प्रशाम्यति ॥३५॥ विषूच्यांपाददाहेनजायतेऽग्नेःप्रदीपनम् ॥ संकुचंतियतस्तेनरसश्लेष्मवहाःशिराः ॥ ३६ ॥यदावृद्धिर्यकृ-त्प्लीह्नोःशिशोःसंजायतेऽसृजः ॥तदातत्स्थानदाहेनसंकचंत्य-सृजःशिराः ॥ ३७ ॥

अर्थ—मनुष्यको बाएँ तरफके अंडकोशपर सूजन होवै तो दहने हाथके अँगूठेकी जडमें शि-राको दाग देवे और दहने अंडकोशपर सूजन होय तो बाएँ हाथके अँगूठेकी जडमें दाग देवे तो अंडकोशकी सूजन दूर होवे । विषूचिका होनेसे लोहकी पत्ती अथवा कलछीको तपायकर पै-रोंके तलुवोंको तपावे ऐसा करनेसे रसवाहिनी शिरा तथा कफवाहिनी शिरा हैं उनका संकोच होकर अग्नि प्रदीप्त तथा विषूचिका (हैजा) दूर होती है । जिस समय बालकके पेटमें दहिने तरफ यकृत् कहिये कलेजा और बांई तरफ प्लीहा इनकी वृद्धि होय उस कालमें उस जगहपर दाग देवे तो यकृत् और प्लीहा ये सुकड जाते हैं ।

दुष्टरुधिर निकालनेपर जो अवशिष्टरहे उसके गुण ।

रक्तदुष्टेऽवशिष्टेऽपिव्याधिर्नैवप्रकुप्यति ॥अतःस्राव्यंसावशेषंर-

केनातिक्रमोहितः ॥ ३८ ॥ आंध्यमाक्षेपकंतृष्णांतिमिरंशिर-
सोरुजम् ॥ पक्षघातंश्वासकासौहिक्कांदाहंचपांडुताम् ॥ ३९ ॥
कुरुतेविस्रुतंरक्तंमरणंवाकरोतिच ॥

अर्थ—शरीरसे दुष्ट रुधिर निकलकर थोडा अवशिष्ट रहनेसे रोगोंका प्रकोप नहीं होता इसीसे जब २ रुधिर निकाले तभी २ थोडासा अवशिष्ट छोड देना चाहिये तो हितकारी होता है संपूर्ण रुधिर काढनेसे अंधापन, आक्षेपवायु, प्यास, तिमिर, मस्तकपीडा, पक्षाघातवायु, श्वास, खाँसी, हिचकी, दाह और पांडुरोग ये उपद्रव होते हैं तथा मनुष्य मरणावस्थाको पहुँच जाता है। इसी वास्ते इस प्राणीका संपूर्ण रुधिर नहीं काढना चाहिये।

रुधिरसे देहकी उत्पत्तिआदिका प्रकार।

देहस्योत्पत्तिरसृजादेहस्तेनैवधार्यते ॥ ४० ॥
विनातेनव्रजेज्जीवोरक्षेद्रक्तमतोबुधः ॥

अर्थ—रुधिरसे देहकी उत्पत्ति है तथा रुधिरहीसे देहका धारण होता है और रुधिरके विना जीव रहता ही नहीं है अतः बुद्धिवान् वैद्य रुधिरका रक्षण करे।

रुधिर निकालनेपर दोष कुपित होनेका उपाय।

शीतोपचारैःकुपितेस्रुतरक्तस्यमारुते ॥ ४१ ॥
कोष्णेनसर्पिषाशोथंसव्यथंपरिषेचयेत् ॥

अर्थ—रुधिर काढनेपर व्रणस्थानमें पित्तका प्रकोप होनेसे चंदनादिक शीतल उपचार करे, वादीका प्रकोप होनेसे यदि उस व्रणके स्थानमें पीडायुक्त सूजन आयजावे तो उस स्थानमें थोडे घीको गरम करके लगावे।

रुधिर निकालनेपर पथ्य।

क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः ॥ ४२ ॥
रसःसमुचितःपानेक्षीरंवाषष्टिकाहिताः ॥

अर्थ—शरीरसे रुधिर काढनेसे जो मनुष्य क्षीण होगया हो उनको हरिण ससा मेंढा काला हरिण तथा बकरा इनके मांसका रस सिद्ध करके पिलावे। तथा साँठीचावलोंको गौके दूधमें डालके खीर करके भोजन करना अथवा गौका दूध पिलावे। साँठीचावलका भात खानेको दे। इसप्रकार ये पदार्थ सेवन करना हितकारी होता है।

उत्तम प्रकारसे रुधिर निकलनेके लक्षण ।

पीडाशांतिर्लघुत्वंचव्याधेरुद्रेकसंक्षयः ॥ ४३ ॥
मनःस्वास्थ्यंभवेच्चिह्नंसम्यग्विस्राविते॒ऽसृजि ॥

अर्थ—पीडाका नाश, देहमें हलकापन, रोगोंके उत्कर्षका भले प्रकार नाश, मनमें प्रसन्नता ये लक्षण उत्तमप्रकार रुधिर निकालनेसे होते हैं ।

रुधिर निकलनेपर वर्जित वस्तु ।

व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानप्रवातकात् ॥ ४४ ॥
एकाशनंदिवानिद्राक्षाराम्लकटुभोजनम् ॥
शोकंवादमजीर्णंचत्यजेदाबलदर्शनात् ॥ ४५ ॥

इति श्रीदामोदरात्मजशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखंडे चिकित्सा-स्थाने रक्तमोक्षणविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अर्थ—परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शीतल जलसे स्नान करना, बहुत हवा खाना, एकही धान्यका भोजन करना, दिनमें सोना, जवाखारादि खारे खट्टे तथा चरपरे पदार्थ भक्षण करना, शोक और वाद करना तथा बहुभोजनजन्य अजीर्ण इस प्रकार ये सर्व कारण शरीरमें जबतक पुरुषार्थ न आवे तबतक त्याग देना चाहिये ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितमाथुरीभाषाटीकायामुत्तरखंडस्य द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३.

नेत्र अच्छे होनेके वास्ते उपचार ।

सेकआश्चोतनंपिंडीबिडालस्तर्पणंतथा ॥
पुटपाकोऽजनंचैभिःकल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १ ॥

अर्थ—१ सेक २ आश्चोतन ३ पिंडी ४ बिडाल ५ तर्पण ६ पुटपाक और ७ अंजन ये सात प्रकार नेत्ररोगमें कहे हैं । इनका कल्क करके जिस रीतिसे नेत्ररोगपर उपचार करना कहा है उसी प्रकार करे ।

सेकके लक्षण ।

सेकस्तुसूक्ष्मधाराभिःसर्वस्मिन्नयनेहितः ॥

मीलिताक्षस्यमर्त्यस्यप्रदेयश्चतुरंगुलम् ॥ २ ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्र बन्द करायके दूध घी रस इत्यादिकोंकी संपूर्ण नेत्रपर चार अंगुलके अंतरसे धार डालनेको सेक कहते हैं ।

उस सेकके स्नेहनादिभेदकरके तीन प्रकार ।

सचापिस्नेहनोवातेरक्तेपित्तेचरोपणः ॥
लेखनश्चकफेकार्यस्तस्यमात्राधुनोच्यते ॥ ३ ॥

अर्थ—वातरोग होनेसे स्नेहन सेक करे । रक्तपित्तका कोप होनेसे रोपण सेककरे तथा कफरोग होनेसे लेखन सेककी योजना करे । अब उसकी मात्रा कहते हैं ।

सेककी मात्रा ।

षड्वाक्छतैःस्नेहनेषुचतुर्भिश्चैवरोपणे ॥
वाक्छतैश्चत्रिभिःकार्यःसेकोलेखनकर्मणि ॥ ४ ॥

अर्थ—स्नेहनकर्ममें छःसौ अंक होनें पर्यंत नेत्रोंपर जिस औषधकी कही है उसकी धार दे । रोपण कर्म होय तो चारसौ अंकहोय तबतक धार डाले तथा लेखनकर्म होनेसे तीनसौ अंक होय तबतक धार डाले ।

सेककरनेका काल।

कार्यस्तुदिवसेसेकोरात्रौचात्ययिकेगदे ॥

अर्थ नेत्रोंपर सेक करना होय तो दिनमें करे । यदि रोगकी आधिक्यताहोवे तो रात्रिके समयकरे ।

वाताभिष्यंदरोगपर ।

एरंडत्वक्पत्रमूलैःशृतमाजंपयोहितम् ॥ ५ ॥
सुखोष्णंसेचनंनेत्रेवाताभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ—अंडकी छाल पत्ते और जड ये संपूर्ण बकरीके दूधमें औटावे । पश्चात् सुखोष्ण करके गरम २ की धार वाताभिष्यंदरोग दूरहोनेकेवास्ते नेत्रोंपर देवे ।

वाताभिष्यंदपर दूसरा सेक ।

परिषेकोहितोनेत्रेपयःकोष्णंससैंधवम् ॥ ६ ॥

---

१ दूध घी इत्यादि स्नेहन द्रव्यों करके नेत्रोंपर धार देना ।
२ लोध मुलहटी त्रिफला इत्यादिक जो औषध उनको दूधमें अथवा पानीमें पीस नेत्रोंपर धार देवे ।
३ सोंठ मिरच इत्यादि लेखन औषधोंको जलमें पीसके अथवा काढा करके नेत्रोंपर धार देवे ।

रजनीदारुसिद्धं वा सैंधवेनसमन्वितम् ॥
वाताभिष्यंदशमनंहितंमारुतपर्यये ॥ ७ ॥
शुष्काक्षिपाकेचहितमिदंसेचनकंतथा ॥

अर्थ–बकरीके दूधमें सैंधानमक डाल गरम करके सहन होय ऐसी गरम २ दूधकी धार नेत्रोंपर देय । अथवा हल्दी देवदारु और सैंधानमक इनका चूर्ण कर उसको दूधमें डालके गरम २ नेत्रोंपर धार डाले तो वाताभिष्यंद रोग वातविपर्यय तथा शुष्काक्षिपाक ये रोग दूरहों ।

रक्तपित्त तथा अभिघातपर सेक।

शाबरंमधुकंतुल्यंघृतभृष्टंसुचूर्णितम् ॥ ८ ॥
छागक्षीरघृतंसेकात्पित्तरक्ताभिघातजित् ॥

अर्थ–लोध और मुलहटी ये दोनों औषध समान भाग ले घीमें भून चूर्ण करके बकरीके दूधमें डाल नेत्रोंपर सेक करे । अर्थात् उस दूधकी गरम २ नेत्रोंपर धार देवे तो पित्तविकार, रुधिरविकार और अभिघातजन्य विकार दूर होवे ।

रक्ताभिष्यंदपर सेक ।

त्रिफलालोध्रयष्टीभिःशर्कराभद्रमुस्तकैः ॥ ९ ॥
पिष्टैःशीतांबुनासेकोरक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ–त्रिफला (कहिये हरड बहेडा आँवला) लोध मुलहटी खाँड और नागरमोथेका भेद भद्रमोथा ये सब औषध समान भाग ले शीतल जलमें पीस उस पानीका नेत्रोंपर सेक करे तो रक्ताभिष्यंदरोग दूर हो । रक्ताभिष्यंद अर्थात् जिसके नेत्र रुधिरविकारसे दूखें ।

रक्ताभिष्यंदपर दूसरा सेक ।

लाक्षामधुकमंजिष्ठालोध्रकालानुसारिवा ॥ १० ॥
पुंडरीकयुतःसेकोरक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ–१ लाख २ मुलहटी ३ मजीठ ४ लोध ५ सारिवा ६ सफेद कमल इन छःऔषधोंको जलमें पीसके उस पानीकी नेत्रोंपर धार डाले तो रक्ताभिष्यंदरोग दूर होवे ।

नेत्रशूलनाशक सेक ।

श्वेतलोध्रघृतेभृष्टंचूर्णितंपटविस्रुतम् ॥ ११ ॥
उष्णांबुनाविमृदितंसेकाच्छूलघ्नमंबके ॥

अर्थ- सफेद लोधको घृतमें भूनके चूर्ण कर लेवे फिर उसको कपड छानके गरम जलसेपीस उस जलकी नेत्रोंपर धार डाले तो नेत्रोंमें पीडाहोना दूर होवे ।

आश्चोतनके लक्षण ।

अथह्याश्चोतनंकार्यंनिशायांनकथंचन ॥ १२ ॥
उन्मीलितेऽक्ष्णिदङ्मध्येबिंदुभिर्द्व्यंगुलाद्धितम्॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रोंको उवाड नेत्रोंमें दो अंगुलके अंतरसे दूध काढा इत्यादिककी बूँद डालना इसको आश्चोतन कहते हैं। यह आश्चोतन कर्म रात्रिमें कदापि न करे ।

लेखनादि आश्चोतनमें कितनी बिंदु डाले उसका प्रमाण।

बिंदवोऽष्टौलेखनेषुस्नेहने दशबिंदवः ॥ १३ ॥
रोपणेद्वादशप्रोक्तास्तेशीतेकोष्णरूपिणः ॥
उष्णेचशीतरूपाःस्युःसर्वत्रैवैषनिश्चयः ॥ १४ ॥

अर्थ—लेखन कर्म होय तो नेत्रमें आठ बूँद डाले। स्नेहकर्ममें दशबिंदु, रोपणकर्ममें बारह बिंदु डाले। वे बिंदु शीतकालहोय तो मंदोष्ण करके डाले और गरमीकी ऋतु हो तो शीतल डाले यह सर्वत्र निश्चय है ।

वातादिकोंमें देनेकी योजना ।

वातेतिक्तंतथास्निग्धंपित्तेमधुरशीतलम् ॥
तिक्तोष्णरूक्षंचकफेक्रमादाश्चोतनंहितम् ॥ १५ ॥

अर्थ—वातरोगमें कटु और स्निग्ध ऐसा आश्चोतन करे पित्तरोग होय तो मधुर तथा शीतल ऐसा करे, कफरोग होय तो कटु और उष्ण तथा रूक्ष ऐसा आश्चोतन करे इस प्रकार आश्चोतन योजना करनेसे हितकारी होता है।

आश्चोतनकी मात्राके लक्षण ।

आश्चोतनानांसर्वेषांमात्रास्याद्वाक्छतंहितम् ॥
निमेषोन्मेषणंपुंसामंगुल्योश्छोटिकाथवा ॥ १६ ॥
गुर्वक्षरोच्चारणंवावाङ्मात्रेयंस्मृताबुधैः ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रोंका निमेषोन्मेष कहिये पलकोंका खुलना मूँदना अथवा चुटकी बजाना अथवा गुरु कहिये दीर्घ अक्षरका उच्चारण करना अर्थात् एक अंक बोलना इतने कालको एक वाङ्मात्रा कहते हैं। ऐसी सौ वाङ्मात्रा संपूर्ण आश्चोतन कर्मोंमें हितकारी होती है।

वाताभिष्यंदपर आश्चोतन ।

बिल्वादिपंचमूलेनबृहत्येरंडाशिग्रुभिः ॥ १७ ॥
क्वाथआश्चोतनेकोष्णोवाताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ—बिल्वादि पांच औषधोंकी जड कटेरी अंडकी जड तथा सहँजनेकी छाल इन सब औषधों का काढा करके उसको सुहाता २ गरम करके नेत्रोंमें बूँद डाले तो वाताभिष्यंदरोग दूर होवे ।

वातजन्य तथा रक्तपित्तसे उत्पन्न हुये अभिष्यन्दपर आश्चोतन ।

अंबुपिष्टैर्निंबपत्रैस्त्वचंलोध्रस्यलेपयेत् १८ ॥
प्रताप्यवह्निनापिष्टातद्रसोनेत्रपूरणात् ॥
वातोत्थंरक्तपित्तोत्थमभिष्यंदंविनाशयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—नीमके पत्तोंको जलमें पीसके लोधकी छालपर लेप कर देवे । फिर उस छालको अग्नि-पर तपायके पीस लेवे । तब उसका रस निकालके नेत्रोंमें बूँद डाले तो वातजन्य तथा रक्तपित्त जन्य जो अभिष्यन्द होता है वह दूर होवे ।

सर्वप्रकारके अभिष्यन्दोंपर आश्चोतन ।

त्रिफलाश्चोतनंनेत्रेसर्वाभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ—त्रिफलेके काढेकी गरम २ बूँद नेत्रोंमें डाले तो सर्व प्रकारके अभिष्यंदरोग दूर हों ।

रक्तपित्तादिजन्य अभिष्यन्दपर आश्चोतन ।

स्त्रीस्तन्याश्चोतनंनेत्रेरक्तपित्तानिलार्तिजित् ॥ २० ॥
क्षीरसर्पिर्घृतंवापिवातरक्तरुजंजयेत् ॥

अर्थ—स्त्रीके दूधको बूँद नेत्रोंमें डालेतो रक्तपित्त तथा बादीसे होनेवाली पीडा दूरहोवे । उसी प्रकार दूध मलाई अथवा घी इनकी बिंदु नेत्रोंमें छोडे तो वातरक्तसंबंधी पीडा दूरहोवे ।

पिंडीके लक्षण ।

पिंडीकवलिकाप्रोक्ताबध्यतेपट्टवस्त्रकैः ॥ २१ ॥
नेत्राभिष्यंदयोग्यासाव्रणेष्वपिनिबध्यते ॥

अर्थ—औषधको पीस टिकिया बनाय नेत्रोंपर रखके रेशमी कपडेकी पट्टीसे बाँधे इसको पिंडी अथवा कवलिका इस प्रकार कहते हैं । यह पिंडीनेत्राभिष्यंद रोगपर हितकारी है तथा व्रणपर भी इसको बाँधते हैं ।

कफाभिष्यंदपर शिरोविरेचन ।

अभिष्यंदेऽधिमंथेचसंजातेश्लेष्मसंभवे ॥ २२ ॥
स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्यशिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत् ॥

अर्थ–कफसंबंधी अभिष्यन्द तथा अधिमन्थ ये रोग जिस मनुष्यके होवें उसके मस्तकमें तेल मलकर स्निग्ध करे अर्थात् मस्तकके पसीने निकाले । फिर मस्तकके शोधन होनेके वास्ते तीक्ष्ण औषधकी नाकमें नस्य देवे ।

अधिमंथरोगपर दूसरा उपचार ।

अधिमंथेषुसर्वेषुललाटेवेधयेच्छिराम् ॥ २३ ॥
अशांतेसर्वथामंथेभ्रुवोस्तुपरिदाहयेत् ॥

अर्थ–संपूर्ण अधिमंथोंमें ललाटस्थ शिरा अर्थात् मस्तककी फस्त खोलके रुधिर निकाले तो सर्व प्रकारके अधिमन्थ शांत होवें । यदि इस प्रकार करनेपरभी रोग शांति न होवे तो भृकुटीमें दाग देवे ।

अभिष्यंदमें क्रिया ।

अभिष्यंदेषुसर्वेषुबध्नीयात्पिंडिकांबुधः ॥ २४ ॥
वाताभिष्यंदशांत्यर्थंस्निग्धोष्णपिंडिकाभवेत् ॥

अर्थ–संपूर्ण अभिष्यंद रोगोंमें नेत्रोंपर जो औषध कही है उसकी टिकिया करके बाँधे और वाताभिष्यंद शमन होनेको स्निग्ध कहिये चिकनी और गरम ऐसी टिकिया बाँधे ।

वाताभिष्यंदपर तथा पित्ताभिष्यंदपर पिंडी ।

एरंडपत्रमूलत्वङ्निर्मितावातनाशिनी ॥ २५ ॥
पित्ताभिष्यंदनाशायधात्रीपिंडीसुखावहा ॥

अर्थ–अंडके पत्ते जड और छाल इन सबको पीसके टिकिया बनावे इस टिकियाको वाताभिष्यंद नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे । तथा पित्ताभिष्यंद दूर करनेको आँवलोंको पीस टिकिया बनायके नेत्रोंपर बाँधे ।

पित्ताभिष्यंदपर दूसरी पिंडी ।

महानिंबफलोद्भूतापिंडीपित्तविनाशिनी ॥ २६ ॥

अर्थ–बकायनके फलोंको पीस टिकिया बनाय पित्ताभिष्यंद नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे ।

कफाभिष्यंदपर पिंडी ।

शिग्रुपत्रकृतापिंडीश्लेष्माभिष्यंदनाशिनी ॥

अर्थ-सहँजनेके पत्तोंको पीस टिकिया बनाय कफाभिष्यंद नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे।

कफपित्ताभिष्यंदपर पिंडी।

निंबपत्रकृतापिंडीश्लेष्मपित्तहराभवेत् ॥ २७ ॥
त्रिफलापिंडिकाप्रोक्तानाशनेश्लेष्मपित्तयोः ॥

अर्थ-कफपित्ताभिष्यंद दूर करनेको नीमके पत्ते पीस टिकिया बनाय नेत्रोंपर बाँधे अथवा त्रिफलाको पीस टिकिया बनायके नेत्रोंपर बाँधे तो कफपित्ताभिष्यंद रोग दूर हो।

रक्ताभिष्यंदपर पिंडी।

पिष्टाकांजिकतोयेनघृतभृष्टाचपिंडिका ॥ २८ ॥
लोध्रस्यहरतिक्षिप्रमभिष्यंदमसृग्दरम् ॥

अर्थ-लोधको काँजीमें पीस घीमें भूनके टिकिया बनावे। इसको नेत्रोंपर बाँधे तो रक्ताभिष्यंद नेत्ररोग दूर हो।

सूजनखुजली इत्यादिकोंपर पिंडी।

शुंठीनिंबदलैःपिंडीसुखोष्णास्वल्पसैंधवा ॥ २९ ॥
धार्याचक्षुषिसंयोगाच्छोथकंडूव्यथापहा ॥

अर्थ-सोंठ और नीमके पत्ते इनको एकत्र पीस उसमें थोडासा सेंधानमक डालके टिकिया बनावे। इसको सूजन और खुजली दूर होनेके वास्ते कुछ गरम करके नेत्रोंपर बाँधे।

बिडालकके लक्षण।

बिडालकोबहिर्लेपोनेत्रपक्ष्मविवर्जितः ॥ ३० ॥
तस्यमात्रापरिज्ञेयामुखलेपविधानवत् ॥

अर्थ-नेत्रोंको छोड पलकोंके बाहरके अंगमें नेत्रोंके चारोंतरफ लेप करनेको बिडालक कहै हैं, इसके लेपकी मात्रा मुखलेपका विधान कहाहै उसी प्रकार जाननी।

सर्वनेत्ररोगोंपर लेप।

यष्टीगैरिकसिंधूत्थदार्वीताक्ष्यैंःसमांशकैः ॥ ३१ ॥
जलपिष्टैर्बहिर्लेपःसर्वनेत्रामयापहः ॥

अर्थ-१ मुलहटी २ गेरू ३ सेंधानमक ४ दारुहल्दी ५ खपरिया इन सबको समान भाग ले पानीमें पीस नेत्रोंके बाहरके भागमें चारों तरफ लेप करे तो सर्व अभिष्यंद रोग दूर हों।

सर्वनेत्ररोगपर दूसरा लेप।

रसांजनेनवालेपः पथ्याविश्वदलैरपि ॥ ३२ ॥
कुमारिकाग्निपत्रैर्वादाडिमीपल्लवैरपि ॥
वचाहरिद्राविश्वैर्वातथानागरगैरिकैः ॥ ३३ ॥

अर्थ—रसोतको जलमें पीस लेपकरे अथवा हरड सोंठ और पत्रज ये तीन औषध जलमें पीसके लेप करे। अथवा घीगुवार और चीतेके पत्ते दो औषध जलमें पीसके लेपकरे। अथवा अनारकी पत्तियोंको पीस लेप करे। अथवा वच हल्दी आर सोंठ ये तीन औषध जलमें पीसके लेप करे। उसी प्रकार सोंठ और गेरू ये दो औषध जलसे पीसके लेपकरे। ये छः प्रकारके लेप नेत्रके बाहरले भागमें चारोंतरफ करनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होवें।

सर्वनेत्ररोगोंपर तीसरा लेप।

दग्ध्वाग्नौसैंधवंलोध्रंमधूच्छिष्टयुतेघृते ॥
पिष्टमंजनलेपाभ्यांसद्योनेत्ररुजापहम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—सैंधानमक और लोध इन दोनों औषधोंको अग्निमें जलायके मोम और घीमें सानलेवे। फिर खूब बारीक करके नेत्रोंमें अंजन करे और बाहरके भागमें उन औषधोंका लेप करे तो नेत्रसंबंधी पीडा तत्काल दूर होवे।

चौथा लेप।

लोहस्यपात्रेसंघृष्टोरसोनिंबुफलोद्भवः ॥
किंचिद्घनोबहिर्लेपान्नेत्रबाधांव्यपोहति ॥ ३५ ॥

अर्थ—लोहेके पात्रमें नींबूके रसको घोटे। जब कुछ गाढा होजावे तब नेत्रोंके बाहरके भागमें लेप करे तो नेत्रसंबंधी पीडा दूर होय।

अर्मरोगपर लेप।

संचूर्ण्यमरिचंकेशराजस्वरसमर्दनात् ॥
लेपनादर्मणांनाशंकरोत्येषप्रयोगराट् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कालीमिरचोंको भाँगरेके रसमें पीसके नेत्रोंपर लेप करे तो शुक्लार्म तथा अधिमांसार्म इत्यादिक नेत्ररोगमें जो अर्मरोग है वह दूर होवे।

अंजननामिकाफुन्सीपर लेप।

स्विन्नांभित्त्वाविनिष्पीड्यभिन्नामंजननामिकाम् ॥

शिलैलानतासिंधूत्थैःसक्षौद्रैःप्रतिसारयेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ—नेत्रके कोयोंमें अंजननामिका फुन्सी होती है उसको स्वेदयुक्त करके अर्थात् बफारेसे पसीने निकालके फोडडाले और चारोंतरफसे दाबके मलवा निकाल डाले। फिर मनशिल इलायची तगर और सैंधानमक इन चार पदार्थोंका चूर्णकर सहतमें मिलाय उस फुन्सीमें प्रतिसारण करे अर्थात् उस औषधको उस फुन्सीके ऊपर चुपडे तो अंजननामिका फुन्सी (गुहेरी) दूर होवे ।

नेत्ररोगपर तर्पण ।

अथतर्पणकंवच्मिनेत्रतृप्तिकरंपरम् ॥ यद्रूक्षंपरिशुष्कंचनेत्रंकुटिलमाविलम् ॥ ३८ ॥ शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम् ॥ तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यंदाधिमंथकैः ॥ ३९ ॥ शुक्राक्षिपाकशोथाभ्यांयुक्तंवातविपर्ययैः ॥ तन्नेत्रंतर्पणेयोज्यंनेत्रकर्मविशारदैः ॥ ४० ॥

अर्थ—नेत्रोंको तृप्त करता ऐसा तर्पण कहताहूं । जिन नेत्रोंमें रूक्षता शुष्कता वा कोपन तथा गदलाहट होवे ऐसे प्रकारके नेत्ररोग तथा जिसमें पलकोंके बाल जाते रहेहों, शिरोत्पात, कृच्छ्रोन्मीलन, तिमिर, अर्जुन, शुक्र कहिये फूला, अभिष्यंद, अधिमंथ, शुक्राक्षिपाक, सूजन, वातविपर्यय इतने रोगों करके व्याप्त जो नेत्र उनमें वैद्य तर्पण करे अर्थात् नेत्रोंकी तृप्तिकारी औषध उनमें डाले ।

तर्पणअयोग्य प्राणी

दुर्दिनात्युष्णशीतेषुचिंतायासभ्रमेषुच ॥
अशांतोपद्रवेचाक्ष्णितर्पणंनप्रशस्यते ॥ ४१ ॥

अर्थ--दुर्दिन कहिये मेघाच्छादित दिवस अत्यंत गरमी और शीतकाल होनेसे शरीरमें चिंता परिश्रम और भ्रम ये उपद्रव होनेसे तथा नेत्रसंबंधी शूलादिक उपद्रव शांत न होनेसे यह तर्पण मात्राकी योजना न करे ।

तर्पणका विधान ।

वातातपरजोहीनेदेशेचोत्तानशायिनः ॥ आधारामाषचूर्णेनक्लिन्नेनपरिमंडलौ ॥ ४२ ॥ समौदृढावसंबाधौकर्तव्यौनेत्रकोशयोः ॥ पूरयेद्घृतमंडेनविलीनेनसुखोदकैः ॥ ४३ ॥ अथवाशतधौते-

नसर्पिषाक्षीरजेनवा॥ निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणियावत्स्युस्तावदे-
वहि ॥ ४४ ॥ पूरयेन्मीलितेनेत्रेततउन्मीलयेच्छनैः ॥

अर्थ—पवन गरमी तथा धूल ये जिस जगह न होवे उस स्थानमें मनुष्यको चित्त लेटायके नेत्रको ...में अर्थात् नेत्रके चारों ओर भिगेहुए उडदोंके चूनका दृढ तथा उत्तम गोल और समान मंडल बनावे। फिर नेत्रोंको बंद करके उस मंडलमें पतला घी भर देवे। अथवा मंड ...हिये माँड अथवा सुखोष्णजल अथवा सौवार धुलाहुआ घी अथवा दूध ये पदार्थ जहांतक नेत्रोंके ...लक न डूबे तहांतक भरे अर्थात् तवतक पतली २ धार डाले फिर धीरे २ नेत्रोंको खोले।

तर्पणमात्राका प्रमाण।

धारयेद्वर्त्मरोगेषुवाङ्मात्राणांशतंबुधः ॥ ४५ ॥ स्वच्छेकफे-
संधिरोगेमात्रापंचशतंहितम् ॥ शुक्लेचषट्शतंकृष्णरोगेसप्तश
तंमतम् ॥ ४६ ॥ दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमंथेसहस्रकम् ॥ सह
स्रंवातरोगेषुधार्यमेवंहितर्पणम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—नेत्रसंबंधी पलकोंके रोग उनमें सौ वाङ्मात्रा होनेपर्यंत तर्पणरूप औषध नेत्रोंमें धारण करे केवल कफरोग होय तो नेत्रोंके संधिगत रोग होनेसे पांचसौ मात्रा धारण करे। नेत्रोंके सफेद भागमें रोग होनेसे छः सौ मात्रा, काली, पुतलीमें रोग होनेसे सातसौ मात्रा, दृष्टिरोग होनेसे आठसौ, अधिमंथरोग होनेसे एक हजार मात्रा तथा वातरोग होनेसे एक हजार मात्रा तर्पणरूप औषधको धारणकरे इस प्रकार मात्राका प्रमाण जानना।

तर्पणद्वारा कफकी आधिक्यता होनेमें उपाय।

स्विन्नेनयवपिष्टेनस्नेहवीर्येरितंततः ॥
यथास्वंधूमपानेनकफमस्यविशोधयेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—तर्पणके स्नेह वीर्य करके उत्पन्नहुए कफको जो भिगोकर पीस लेवे। इसको ...केमें धरके पीवे। इसप्रकार शोधन करना चाहिये।

तर्पणप्रयोग कितने दिन करे उसकी मर्यादा।

एकाहंवात्र्यहंवापिपंचाहंचेष्यतेपरम् ॥

अर्थ—नेत्रोंमें तर्पणप्रयोग करना होय तो एक दिन अथवा तीन दिन अथवा पांच दिनपर्यंत करे। यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना।

तर्पणकी तृप्तिके लक्षण ।

तर्पणेतृप्तिलिंगानिनेत्रस्येमानिभावयेत् ॥ ४९ ॥ सुखस्वप्नावबोधत्ववैशद्यंवर्णपाटवम् ॥ निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्चक्रियालाघवमेवच ॥ ५० ॥

अर्थ–सुखपूर्वक निद्राका आना और यथेष्ट जागना, नेत्रोंकी कांति उत्तम होय, दृष्टि (नजर) स्वच्छ (साफ) हो, रोगोंका नाश और क्रियालाघव कहिये नेत्रोंका खुलना मूँदनारूप क्रियाका हलकापन होय । ये लक्षण तर्पण करके नेत्र तृप्त होनेसे होते हैं ।

तर्पण अधिकहोनेके लक्षण ।

अथसाश्रुगुरुस्निग्धंनेत्रंस्यादतितर्पितम् ॥

अर्थ–तर्पण करके नेत्र अत्यंत तृप्त होनेसे नेत्रोंसे जल आवे नेत्रोंका भारीपन तथा उनसे चिकनाहट होती है ।

हीनतर्पणके लक्षण ।

रूक्षमस्राविलंरुग्णंनेत्रंस्याद्धीनतर्पितम् ॥ ५१ ॥

अर्थ–तर्पणकरके नेत्र तृप्त होनेसे तेज रहित हों लाल रंगके हों दूखें तथा रोगोंकरके व्याप्त हों ।

तर्पणकरके नेत्र अतिस्निग्ध तथा हीनस्निग्ध होनेसे यत्न ।

रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोःस्यात्प्रतिक्रिया ॥

अर्थ–तर्पण करके अतिस्निग्ध नेत्र उनको रूक्ष उपायोंकरके अच्छा करे । हीनस्निग्ध नेत्रोंकी स्निग्धोपचारोंकरके चिकित्सा करे अर्थात् रूक्षोंको चिकने पदार्थों करके और चिकनोंको रूक्ष पदार्थ करके अच्छा करना चाहिये ।

पुटपाक ।

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिपुटपाकस्यसाधनम् ॥ ५२ ॥ द्वौबिल्वमात्रौ मांसस्यपिंडौस्निग्धौसुपेषितौ ॥ द्रव्याणांबिल्वमात्रंतुद्रवाणांकु डवोमतः ॥ ५३ ॥ तदेकस्थंसमालोड्यपत्रैःसुपरिवेष्टितम् ॥ पुटपाकेनतत्पक्त्वागृह्णीयात्तद्रसंबुधः ॥ ५४ ॥ तर्पणोक्तवि- धानेनयथावदुपचारयेत् ॥

अर्थ–इसके उपरांत पुटपाक साधनकी क्रिया कहते हैं। हरिणादिकोंका मांस दो बिल्व लेकर उसको घृतादिक स्नेहपदार्थके साथ मिलायके बारीक पीस सूखी औषध जो कही है वह एक बिल्व ले। तथा दूध जल इत्यादिक द्रव पदार्थ एक कुडव ले। ये सब वस्तु उस मांसमें मिलायके उस मांसका गोला बनावे। फिर जामुन अथवा आम इत्यादिकोंके पत्तोंको उस मांसके गोलेके चारों तरफ लपेटके उसपर मिट्टीको लेप करै। पश्चात् पुटपाककी विधिसे उस गोलेको अग्निमें सिद्ध करे। फिर उसकी मिट्टी और पत्तोंको दूर करके उस गोलेको निचोडके रस निकास लेवे और तर्पणकी विधिके अनुसार इस रसको नेत्रोंमें डाले (बिल्व नाम पलका है) मध्यखंडमें स्वरसाध्यायमें पुटपाककी विधि कही है।

पुटपाकसम्बन्धीरस नेत्रोंमें डालनेका विधान।

दृष्टिमध्येनिषेच्यःस्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ॥ ५५ ॥
स्नेहनोलेखनश्चैवरोपणश्चेतिसत्रिधा ॥

अर्थ–वह पुटपाकसंबन्धी रस स्नेहन लेखन और रोपण इन भेदों करके तीन प्रकारका है। उसे मनुष्यको चित्त लेटायके नेत्रोंमें दृष्टिके मध्यभागमें नित्य डाले।

स्नेहनादि भेदकरके पुटपाककी योजना।

हितःस्निग्धोऽतिरूक्षस्यस्निग्धस्यापिहिलेखनः ॥ ५६ ॥
दृष्टेर्बलार्थमितरःपित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥

अर्थ–रूक्षनेत्रोंमें स्निग्ध पुटपाक और स्निग्ध नेत्रोंमें लेखन पुटपाक योजना करे तथा दृष्टिमें बल आनेके लिये इतर कहिये रोपण पुटपाककी योजना करे। वह पुटपाक नेत्रसंबंधी दुष्टहुए पित्त रुधिर व्रण और वायु इनको दूर करे। इनकी पृथक् २ योजना आगेके श्लोकोंमें कही हैं।

स्नेहनपुटपाक।

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदःस्वाद्वौषधैःकृतः ॥ ५७ ॥
स्नेहनःपुटपाकस्तुधार्योद्वेवाक्छतेदृशोः ॥

अर्थ–घी हरिणादिकोंका मांस वसा मज्जा और मेदा ये सब घीमें मिलायके पीसे। तथा स्वादु औषध कहिये काकोल्यादि गणकी औषधोंका चूर्ण करके उस मांसादिकमें मिलायके गोला

१ तर्पण और पुटपाक दोनोंमें नेत्रोंके चारों तरफ उडदका धामलामाथा बनाय करके रस डालते हैं परन्तु तर्पणरूप औषध नेत्र मूँदके ऊपर गेरते हैं और पुटपाक संबंधी रस नेत्रोंको खोलकर नेत्रोंके बीचाबीचमें डाला जाता है केवल इतनाही भेद है।

करे । उस गोलेके चारोंतरफ जामुन आँब इत्यादिकोंके पत्ते लपेट उसपर मिट्टी लगायके पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे । पश्चात् उस गोलेको बाहर निकाल मिट्टी और पत्तोंको दूर करके रस निचोड लेवे । इस रसको नेत्रोंमें डाले और जबतक दोसौ मात्रा होवे तबतक इसको धारण करे । इसको स्नेहनपुट पाक कहते हैं ।

लेखनपुटपाक ।

जांगलानांयकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ॥५८॥ कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिंधुजैः ॥ समुद्रफेनकासीसस्रोतोजलधिमस्तुभिः ॥ ५९ ॥ लेखनोवाक्छतंधार्यस्तस्यतावद्धिधारणम् ॥

अर्थ—हरिणादिकोंके कलेजेका मांस लोहचूर्ण तांबेका चूर्ण शंख मूँगा सैंधानमक समुद्रफेन हीराकसीस सुरमा तथा बकरीके दहीका तोड ये नौ लेखन द्रव्य जानना । इनका चूर्ण करके उसे मांसमें मिलाय दे । तथा उसमें दहीका तोड (दहीका जल) मिलायके गोला करे । और इसको पुटपाककी विधि (जो पूर्व कह आए हैं उसी प्रकार) से सिद्ध करे । पश्चात् उसको बाहर निकाल निचोडके रस निकाल लेवे । इसको नेत्रोंमें डालके सौ वाङ्मात्रा होने पर्यंत धारण करे । इसको लेखन पुटपाक कहते हैं ।

रोपणपुटपाक ।

स्तन्यजांगलमध्वाज्यतिक्तकद्रव्यपाचितः ॥ ६० ॥
लेखनात्रिगुणोधार्यःपुटपाकस्तुरोपणः ॥
वितरेत्तर्पणोक्तांतुक्रियांव्यापत्तिदर्शने ॥ ६१ ॥

अर्थ—स्त्रीके स्तनका दूध हरिणादिकोंका मांस सहत घी और कुटकी इन संपूर्ण औषधोंका पूर्वोक्त हरिणादिकके मांसमें मिलायके गोला बनावे । तथा इसको पुटपाककी विधिसे परिपक्व करके बाहर निकाल पत्ते मिट्टी दूर करके रस निचोड लेवे इसको नेत्रोंमें डालके तीनसौ वाङ्मात्रा होने-पर्यंत धारण करे । इसको रोपणपुटपाक कहते हैं । यदि पुटपाकके अधिक अथवा न्यून होनेसे नेत्रोंमें भारीपना तथा निस्तेजता इत्यादिक उपद्रव होवें तो तर्पणमें जैसी क्रिया लिखी है उसी प्रकार इस पुटपाकके हीनाधिक्य होनेमें करे ।

संपक्वदोष होनेसे अञ्जन तथा साधारण अञ्जनका विधान ।

अथसंपक्वदोषस्यप्राप्तमंजनमाचरेत्॥ हेमंतेशिशिरेचैवमध्या-

ह्नंजनमिष्यते ॥ ६२॥पूर्वाह्णेचापराह्णेचग्रीष्मेशरदिचेष्यते ॥ वर्षासुनाभ्रेनात्युष्णेवसंतेचसदैवहि ॥ ६३॥

अर्थ–दोषोंको परिपाक[1] होनेपर अर्थात् पांच दिनके पश्चात् अंजनादिक करे। तथा अंजन की साधारण विधि कहते हैं कि हेमंतऋतु (मार्गशिर और पौष) तथा शिशिर ऋतु (माघ फाल्गुन) इनमें मध्याह्नकालमें (दो प्रहर दिन चढनेपर) नेत्रोंसें अंजन करे। ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ आषाढ) और शरद्ऋतु (आश्विन कार्तिक) इनमें दो प्रहर दिन चढनेके पूर्व और तीसरे प्रहरमें अंजन करे। वर्षाऋतु तथा अत्यंत गरमीमें अंजन न करे। एवं वसंत ऋतुमें सर्वकाल अंजन आँजना चाहिये।

अंजनके भेद।

लेखनंरोपणंचैवतथातत्स्नेहनांजनम्॥लेखनंक्षारतीक्ष्णाम्लरसैरंजनमिष्यते ॥ ६४॥ कषायतिक्तरसयुक्तसस्नेहंरोपणंमतम् ॥ मधुरस्नेहसंपन्नमंजनंचप्रसादनम् ॥ ६५॥

अर्थ–लेखन रोपण और स्नेहन इन भेदों करके अंजन तीन प्रकारका है उनमें खारी तीक्ष्ण और खट्टा ये रस जिस अंजनमें हैं वह लेखन अंजन कहाता है। कषाय कहिये कषैला, तिक्त कहिये कडुआ, इन दो रसों करके युक्त जो अंजन स्नेहयुक्त हो उसे रोपणांजन जानना। मधुरस करके युक्त और स्नेहयुक्त जो होय उस अंजनको प्रसादन कहिये स्नेहनांजन जानना।

गुटिकादिभेदकरके अंजनके तीन भेद।

गुटिकारसचूर्णानित्रिविधान्यंजनानिच ॥ कुर्याच्छलाकयांगुल्याहीनानिचयथोत्तरम् ॥ ६६ ॥

अर्थ–गुटिका कहिये गोली तथा रसरूप (द्रवपदार्थ युक्त)अंजन एवं चूर्ण इस प्रकार अंजन तीन प्रकारके जानने। गुटिकाकी अपेक्षा (बनिस्बत) रस गुणोंमें न्यून है। तथा रसांजनकी अपेक्षा चूर्णांजन गुणोंमें न्यून है इसप्रकार उत्तरोत्तर गुणोंमें हलकेहैं। तथा उन अंजनोंको शलाका कहिये सलाई करके अथवा उँगुलियोंसे नेत्रोंमें लगावे।

अंजनविषयमें अयोग्य।

श्रांतेप्ररुदितेभीतेपीतमद्येनवज्वरे ॥

---

[1] जिस प्राणीके नेत्र जिस दिन दूखनेको आवें उस दिनसे लेकर पांच दिनके पश्चात् दोष परिपक्व होते हैं।

अजीर्णेवेगघातेचनांजनंसंप्रचक्षते ॥ ६७ ॥

अर्थ–श्रमसे थकाहुआ, रुदन करनेवाला, डरपोक, मद्यपान करनेवाला, नवीन ज्वरवाला और अजीर्ण होनेवाला, मूत्रादिकोंका अवरोध करनेवाला ऐसे मनुष्यको अंजन नहीं करना चाहिये ।

अंजनवर्तीका प्रमाण ।

हरेणुमात्रांकुर्वीतवर्तितीक्ष्णांजनेभिषक् ॥
प्रमाणंमध्यमेऽध्यर्धंद्विगुणंतुमृदौभवेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ–तीक्ष्ण अंजन (जो नेत्रोंको अत्यंत पीडाकरे) की हरेणु (मटर) के समान लम्बी बत्ती बनावे । उसी प्रकार मध्यम अंजनमें हरेणुके डेढ बीजके बराबर लंबी गोली बनावे और मृदु अंजनमें मटरके दो बीजोंको बराबर गोली बत्तीके आकार करे ।

अंजनमें रसका प्रमाण ।

रसक्रियातूत्तमास्यात्रिविडंगमिताहिता ॥
मध्यमाद्विविडंगास्याद्धीनात्वेकविडंगका ॥६९ ॥

अर्थ–रसक्रिया कहिये द्रवरूप अंजनकी मात्रा तीन वायविडंगके समान नेत्रोंमें डालनेसे उत्तम रसक्रिया जाननी । दो वायविडंगके समान मात्रा नेत्रोंमें डालनेको मध्यम रसक्रिया जाननी । एक वायविडंगके प्रमाणकी मात्रा हीनरसक्रिया अर्थात् कनिष्ठ जाननी ।

विरेचनअंजनमें चूर्णका प्रमाण ।

वैरेचनिकचूर्णंतुद्विशलाकंविधीयते ॥
मृदौतुत्रिशलाकंस्याच्चतस्रःस्नैहिकेंजने ॥ ७० ॥

अर्थ–वैरेचनिकचूर्ण (जिस चूर्णसे नेत्रोंसे अधिक जल गिरे) उसको द्विशलाक अर्थात् सलाईको दोवार चूर्णमें सानके दो वार नेत्रोंमें फेरके निकास लेवे मृदु अंजनमें औषधोंके चूर्णमें तीनवार सलाईको डुबोयके तीनवार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय । घी आदि जो चिकने पदार्थ हैं उनसे मिले हुए अंजनोंमें सलाईको चारवार डुबोयके सलाईको चारवार नेत्रोंमें फेरको निकाल लेय ।

सलाईका प्रमाण और वह किसकी बनावे ।

मुखयोःकुंठिताश्लक्ष्णाशलाकाष्टांगुलोन्मिता ॥
अश्मजाधातुजावास्यात्कलायपरिमंडला ॥ ७१ ॥

अर्थ–पाषाण (पत्थर) की अथवा सुवर्णादि धातुओंकी ऐसी सलाई आठ अंगुलकी करके उसका मुख गोल करे परंतु बारीक न करे । तथा वह मटरके दानेके समान सुंदर गोल होनी चाहिये ।

लेखनादिकोंमें सलाईका प्रमाण ।

ताम्रलोहाश्मसंजाताशलाकालेखनेमता ॥
सुवर्णरजतोद्भूताशलाकास्नेहनेमता ॥ ७२ ॥
अंगुलीचमृदुत्वेनकथितारोपणेबुधैः ॥

अर्थ–लेखन अंजनमें ताँबेकी अथवा लोहेकी अथवा पत्थरकी सलाईकी योजना करे । स्नेहन अंजनमें सोनेकी अथवा रूपे (चाँदी) की सलाईकी योजना करे तथा उँगलीमें नम्रता है इसी वास्ते रोपण अंजनमें उँगलीकी योजना करे अर्थात् उँगलीहीसे लगावे ।

कौनसे समय तथा कौनसे भागमें अंजन करे ।

सायंप्रातश्चांजनंस्यात्तत्सदानैवकारयेत् ॥ ७३ ॥
नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायांसंप्रशस्यते ॥
कृष्णभागादधःकुर्यादपांगंयावदंजनम् ॥ ७४ ॥

अर्थ–सायंकाल और प्रातःकाल अंजन करे । सर्वकाल अंजन नहीं करे अत्यंत शीतकाल, अत्यंत उष्णकाल, वायु (अत्यंत हवा) चलनेके समय और जिस समय बद्दल होवें उस समय अंजन न करे । नेत्रके काले भागके नीचेके पलकमें अंजन करे ।

चंद्रोदयावर्ती ।

शंखनाभिर्बिभीतस्यमज्जापथ्यामनःशिला ॥ पिप्पलीमरिचं-कुष्ठंवचाचेतिसमांशकम् ॥ ७५ ॥ छागीक्षीरेणसंपिष्यवर्ति-कुर्याद्यवोन्मिताम् ॥ हरेणुमात्रांसंघृष्यजलैःकुर्यादथांजनम् ॥ ॥ ७६ ॥ तिमिरंमांसवृद्धिंचकाचंपटलमर्बुदम् ॥ रात्र्यंधंवार्षि-कंपुष्पंवर्तिश्चंद्रोदयाजयेत् ॥ ७७ ॥

अर्थ–१ शंखकी नाभी २ बहेडेके फलके भीतर की गिरी ३ हरड ४ मनशिल ५ पीपल ६ काली मिरच ७ कूठ और ८ वच ये आठ औषधि समान भाग ले बकरीके दूधमें बारीक पीस जौके समान गोली बत्तीके सदृश लंबी बनावे । इसको चंद्रोदयावर्त्ती कहते हैं । पश्चात्

एक गोलीको रेणुकाके बीजके समान जलमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो तिमिर, मांसवृद्धि, काँचबिंदु, पटलगतरोग, अर्बुद, रतौंध तथा एक वर्षका फूला ये सब रोग दूर हों ।

फूलआदिपर बत्ती ।

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशःपरिभाविता ॥
करंजबीजवर्तिस्तुशुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७८ ॥

अर्थ–कंजेके बीजोंका चूर्ण करके पलासके फूलोंके रसकी अनेक भावना अर्थात् पुट देकर बहुत बारीक खरल कर बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । फिर इस गोलीको जलमें घिसके नेत्रोंमें आँजे तो शुक्र कहिये फूला आदिशब्द करके मांसवृद्धि जड इत्यादिक रोग शस्त्रसे काटनेके समान दूर होवें ।

दूसरा प्रकार ।

समुद्रफेनसिंधूत्थशंखद...
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिःशुक्र...

अर्थ–१ समुद्रफेन २ सैंधानमक ३ शं... बीज ये पाच औषध समान भाग ले जलसे ... तो फूला छर इत्यादिक रोग शस्त्रसे काटनेके ...

लेखनी...

दंतैर्दंतिवराहोष्ट्रगोहयाजखरो...
र्वैर्विचूर्णितैः ॥ ८० ॥ दंतवर्तिः...

अर्थ–हाथी सूअर ऊँट बैल घोडा बकरा... और समुद्रफेन इन सबका चूर्ण करके पानीमें... इस गोलीको दंतवर्त्ती कहते हैं । इसको जल... दूर होय ।

तद्रा दूर होनेको लेखनीवर्त्ति ।

नीलोत्पलंशिग्रुबीजंनागकेशरकंतथा ॥ ८१ ॥
एतत्कल्कैःकृतावर्तिरतितंद्रांविनाशयेत् ॥

अर्थ–नीला कमल, सहजनेके बीज तथा नागकेशर ये तीन पदार्थ समान भाग ले जलमें खरल करके लंबी गोली बनावे । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें आँजे तो तंद्रा दूर हो

रोपिणीकुसुमिका वर्ती।

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युःषष्टिसंख्याःकणाकणाः ॥८२॥ जातीसुमानिपंचाशन्मरिचानिचषोडश ॥ सूक्ष्मंपिष्टाजलेवर्तिःकृता कुसुमिकाभिधा ॥ ८३ ॥ तिमिरार्जुनशुक्राणांनाशिनीमांसवृद्धिहृत् ॥ एतस्याश्चांजनमात्राप्रोक्तासार्धहरेणुका ॥ ८४ ॥

अर्थ—तिलके फूल ८० पीपलके भीतरके दाने ६० चमेलीके फूल ५० तथा कालीमिरच १६ इन सबको एकत्रकर जलसे पीसके गोली बनावे। इसको कुसुमिकावर्ती कहते हैं। यह गोली हरेणुकाके डेढ १॥ बीजके बराबर जलमें पीसके नेत्रोंमें अंजन करे तो तिमिर अर्जुन फूला और मांसवृद्धि ये रोग दूर होवें।

रतौंध दूरकरनेकी वत्ती।

…ः ॥

…शिनी ॥ ८५ ॥

… पत्ते ५ नीमके पत्ते इन पांच औषधोंको …सके गोली बनावे। इसको जलसे घिसके …

…हनीवर्ती।

…गानिच ॥ पिष्टावर्तिंजलैःकुर्या- …स्रावंहरत्याशुवातरक्तरुजंतथा ॥

… बहेडेके फलका बीज २ भाग हरडके भीतरका … करके जलमें बारीक पीस लंबी गोली करे। …समान जलमें घिसके नेत्रोंमें आँजे तो नेत्रोंसे जलका बहना तत्काल दूर हो तथा वातरक्तजन्य पीड़ा दूर होय।

रसक्रिया।

तुत्थमाक्षिकसिंधूत्थसिताशंखमनःशिलाः ॥८७॥ गैरिकोदधिफेनौचमरिचंचेतिचूर्णयेत् ॥ संयोज्यमधुनाकुर्यादंजनार्थंरसक्रियाम् ॥ ८८ ॥ वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरांपराम् ॥

अर्थ—१ लीलाथोथा २ स्वर्णमाक्षिक ३ सैंधानमक ४ मिश्री ५ शंख ६ मनशिल ७ गेरू

एक गोलीको रेणुकाके बीजके समान जलमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो तिमिर, मांसवृद्धि, काँचबिंदु, पटलगतरोग, अर्बुद, रतोंध तथा एक वर्षका फूला ये सब रोग दूर हों ।

फूलआदिपर बत्ती ।

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभाविता ॥
करंजबीजवर्तिस्तु शुक्रादींश्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७८ ॥

अर्थ–कंजेके बीजोंका चूर्ण करके पलासके फूलोंके रसकी अनेक भावना अर्थात् पुट देकर बहुत बारीक खरल कर बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । फिर इस गोलीको जलमें घिसके नेत्रोंमें आँजे तो शुक्र कहिये फूला आदिशब्द करके मांसवृद्धि जड इत्यादिक रोग शस्त्रसे काटनेके समान दूर होवें ।

दूसरा प्रकार ।

समुद्रफेनसिंधूत्थशंखदक्षांडवल्कलैः ॥
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रादींश्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ–१ समुद्रफेन २ सैंधानमक ३ शंख ४ मुरगेके अंडेके ऊपरका बक्कल ५ सहजनेके बीज ये पाच औषध समान भाग ले जलसे पीस बत्तीके समान गोली करके नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला छर इत्यादिक रोग शस्त्रसे काटनेके समान दूर हों ।

लेखनीदन्तवर्त्ती ।

दंतैर्दंतिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः ॥ शंखमुक्तांभोधिफेनयुतैः सर्वैर्विचूर्णितैः ॥ ८० ॥ दंतवर्तिः कृता श्लक्ष्णा शुक्राणां नाशिनी परा ॥

अर्थ–हाथी सूअर ऊँट बैल घोडा बकरा और गधा इनके दाँत तथा शंख मोती और समुद्रफेन इन सबका चूर्ण करके पानीमें पीसके बत्तीके सदृश गोली बनावे । इस गोलीको दंतवर्त्ती कहते हैं । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला दूर होय ।

तद्रा दूर होनेको लेखनीवर्त्ति ।

नीलोत्पलं शिग्रुबीजं नागकेशरकं तथा ॥ ८१ ॥
एतत्कल्कैः कृता वर्तिरतितंद्रां विनाशयेत् ॥

अर्थ–नीला कमल, सहजनेके बीज तथा नागकेशर ये तीन पदार्थ समान भाग ले जलमें खरल करके लंबी गोली बनावे । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें आँजे तो तंद्रा दूर हो

रोपिणीकुसुमिका वर्ती।

तिलपुष्पाण्यशीतिःस्युःषष्टिसंख्याःकणाकणाः ॥८२॥ जाती सुमानिपंचाशन्मरिचानिचषोडश ॥ सूक्ष्मंपिष्ट्वाजलेवर्तिःकृता कुसुमिकाभिधा ॥ ८३ ॥ तिमिरार्जुनशुक्राणांनाशिनीमांसवृ द्धिहृत् ॥ एतस्याश्चांजनमात्राप्रोक्तासार्धहरेणुका ॥ ८४ ॥

अर्थ—तिलके फूल ८० पीपलके भीतरके दाने ६० चमेलीके फूल ५० तथा कालीमिरच १६ इन सबको एकत्रकर जलसे पीसके गोली बनावे। इसको कुसुमिकावर्ती कहते हैं। यह गोली हरेणुकाके डेढ १॥ बीजके बराबर जलमें पीसके नेत्रोंमें अंजन करे तो तिमिर अर्जुन फूला और मांसवृद्धि ये रोग दूर होवें।

रतोंध दूरकरनेकी बत्ती।

रसांजनंहरिद्रेद्वेमालतीनिंबपल्लवाः ॥
गोशकृद्रससंयुक्तावर्तिर्नक्तांध्यनाशिनी ॥ ८५ ॥

अर्थ—१ रसोत २ हल्दी ३ दारुहल्दी ४ चमेलीके पत्ते ५ नीमके पत्ते इन पांच औषधोंको समान भागले गौके गोबरके रसमें बारीक पीसके गोली बनावे। इसको जलसे घिसके लगावे तो रतोंध दूर होय।

नेत्रस्रावपर स्नेहनीवर्ती।

धात्र्यक्षपथ्याबीजानिह्येकद्वित्रिगुणानिच ॥ पिष्ट्वावर्तिंजलैःकुर्या- दंजनंद्विहरेणुकम् ॥ ८६ ॥ नेत्रस्रावंहरत्याशुवातरक्तरुजंतथा ॥

अर्थ—आँवलेके भीतरका बीज १ भाग बहेडेके फलका बीज २ भाग हरडके भीतरका बीज गोली ३ भाग इन सब बीजोंको एकत्र करके जलमें बारीक पीस लंबी गोली करे। पश्चात् उस गोलीमेंसे दो हरेणुकाके बीज समान जलमें घिसके नेत्रोंमें आँजे तो नेत्रोंसे जलका बहना तत्काल दूर हो तथा वातरक्तसंबंधी पीडा दूर होय।

रसक्रिया।

तुत्थमाक्षिकसिंधूत्थसिताशंखमनःशिलाः ॥८७॥ गैरिकोद धिफेनौचमरिचंचेतिचूर्णयेत् ॥ संयोज्यमधुनाकुर्यादंजनार्थर सक्रियाम् ॥ ८८ ॥ वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरांपराम् ॥

अर्थ—१ लीलाथोथा २ स्वर्णमाक्षिक ३ सैंधानमक ४ मिश्री ५ शंख ६ मनशिल ७ गेरू

समुद्रफेन औ. ९ काली मिरच ये नौ औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर सहतमें मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो पलकोंके रोग अर्मरोग तिमिर काचबिंदु और फूला ये रोग दूर होंय ।

फूलादूरकरनेकी रसक्रिया ।

वटक्षीरेणसंयुक्तोमुख्यःकर्पूरजःकणः ॥ ८९ ॥
क्षिप्रमंजनतोहंतिकुसुमंचद्विमासिकम् ॥

अर्थ–बडके दूधमें कपूरको घिस नेत्रोंमें अंजन करनेसे दोमहीनाका फूला शिघ्र दूर होवे ।

अतिनिद्रानाशक लेखनी रसक्रिया ।

क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमंजयेत् ॥ ९० ॥
अतिनिद्राशमंयातितमःसूर्योदयेयथा ॥

अर्थ–सहत और घोडेकी लार इन दोनोंमें काली मिरच पीसके जिसको अत्यंत निद्राआती हो उसके नेत्रोंमें लगावे, तो जैसे सूर्यके उदय होनेसे अंधकार नष्ट होता है इसी प्रकार इस गोलीके अंजन करनेसे निद्रा तत्काल दूर होवे ।

तंद्रानाशक रसक्रिया ।

जातीपुष्पंप्रवालंचमरिचंकटुकीवचा ॥ ९१ ॥
सैंधवंबस्तमूत्रेणपिष्टंतंद्राघ्नमंजनम् ॥

अर्थ–चमेलीके फूल चमेलीके अंकुर काली मिरच कुटकी बच और सैंधानमक ये औषध समान भागले बकरेके मूत्रमें सबको बारीक पीस नेत्रोंमें अंजन करे तो तंद्रा दूर होय ।

संनिपातपर रसक्रिया ।

शिरीषबीजंगोमूत्रेकृष्णामरिचसैंधवैः ॥ ९२ ॥
अंजनंस्यात्प्रबोधायसरसोनशिलावचैः ॥

अर्थ–१ सिरसके बीज २ पीपल ३ काली मिरच ४ सैंधानमक ५ लहसन ६ मनशिल और ७ बच ये सात औषध समान भागले गोमूत्रमें पीसके जो मनुष्य संनिपातमें बेहोस पडाहो उसके नेत्रोंमें आँजे तो उसको तत्काल होश होजावे ।

दाहादिकोंपर रसक्रिया ।

दार्वीपटोलंमधुकंसनिंबंपद्मकोत्पलम् ॥ ९३ ॥ सपौंडरीकंचैतानिपचेत्तोयेचतुर्गुणे ॥ विपाच्यपादशेषंतुश्टतंनीत्वापुनःपचेत् ॥ ९४ ॥ शीतेतस्मिन्मधुसितांदद्यात्पादांशकांनरः॥ रसक्रियैषादाहाश्रुरक्तरोगरुजोहरेत् ॥ ९५ ॥

अर्थ—१ दारुहल्दी २ पटोलपत्र ३ मुलहटी ४ नीमकी छाल ५ पद्माख ६ कमल ७ सफेद कमल ये सात पदार्थ समान भाग ले जौकूटकर उसमें सब औषधोंसे चौगुना जल डालके औटावे। जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतारले। फिर उसको छानके फिर औटावे। जब गाढा होनेपर आवे तो उस अवलेहसे चौथाई सहत और मिश्री मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो दाह स्राव रुधिरके विकारसे नेत्रोंका लालरंग होना ये सर्व रोग दूर होवें।

नेत्रोंके पलकोंके बालआनेको तथा खुजलीआदिपर रोपणीरसक्रिया।

रसांजनंसर्जरसोजातीपुष्पंमनःशिला॥ समुद्रफेनोलवणंगैरिकंमरिचानिच॥ ९६॥ एतत्समांशंमधुनापिष्टाप्रक्लिन्नवर्त्मनि॥ अंजनंक्लेदकंडूघ्नंपक्ष्मणांचप्ररोहणम्॥ ९७॥

अर्थ—१ रसोत २ रार ३ चमेलीके फूल ४ मनशिल ५ समुद्रफेन ६ सैंधानमक ७ गेरू और ८ काली मिरच इन आठ औषधोंका चूर्ण कर सहत मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो पलकोंके रोगोंमें उत्क्लिष्ट वर्त्म रोग है वह तथा नेत्रोंका मैल युक्त होना एवं खुजली ये रोग दूर होवें तथा पलकोंके झडेहुए बाल फिर ऊग आवें।

तिमिरपर रसक्रिया।

गुडूचीस्वरसःकर्षःक्षौद्रंस्यान्माषकोन्मितम्॥ सैंधवंक्षौद्रतुल्यंस्यात्सर्वमेकत्रमर्दयेत्॥ ९८॥ अंजयेन्नयनंतेनापिल्लार्मातिमिरंजयेत्॥ काचंकंडूंलिंगनाशंशुक्लकृष्णगतान्गदान्॥ ९९॥

अर्थ—गिलोयका स्वरस एक कर्ष निकालके उसमें सहत और सैंधानमक एक एक मासा मिलायके अच्छी रीतिसे खरल करे। फिर नेत्रोंमें अंजन करे तो पिल्लार्म, तिमिर, काचबिंदु, खुजली, लिंगनाश तथा नेत्रोंके सफेद भागमें और काले भागमें होनवाले ये सब रोग दूर हों।

अंजनमें पुनर्नवाका योग।

**दुग्धेनकंडूंक्षौद्रेणनेत्रस्रावंचसर्पिषा॥
पुष्पंतैलेनातिमिरंकांजिकेननिशांधताम्॥ १००॥
पुनर्नवाजयेदाशुभास्करस्तिमिरंयथा॥**

अर्थ—पुनर्नवा (साँठ) को दूधमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करनेसे नेत्रोंकी खुजली दूर होय। सहतमें घिसके लगावे तो नेत्रोंसे जलका वहना दूर हो। घीमें घिसके लगावे तो फूला दूर होवें। तेलमें घिसके लगावे तो तिमिर रोग नष्ट होय। कांजीमें घिसके लगावे तो रतोंध दूर होय। इस

विषयमें दृष्टांत है कि जैसे सूर्य नारायण अंधकारका तत्काल नाश करे उसी प्रकार पुनर्नवा अनुपानके भेद करके सर्व रोगोंको दूर करती है ।

नेत्रस्रावपर रोपणीरसक्रिया ।

बब्बूलदलनिष्क्वाथोलेहीभूतस्तदंजनात् ॥ १०१ ॥
नेत्रस्रावंजयत्येषमधुयुक्तोनसंशयः ॥

अर्थ—बबूरके पत्तोंके काढेको गाढा होने पर्यन्त औटावे । फिर इसमें थोडासा सहत डालके नेत्रोंमें अंजन करे तो यह नेत्रोंसे जलके बहनेको निश्चय दूर करे ।

दूसरा प्रकार ।

हिज्जुलस्यफलंघृष्ट्वापानीयेनित्यमंजनम् ॥१०२॥
चक्षुःस्रावोपशांत्यर्थंकार्यमेतन्महौषधम् ॥

अर्थ—हिज्जुलके फलको पानीमें घिसके नित्य अंजन करे तो नेत्रोंसे जल गिरनेको दूर करे ।

नेत्रस्वच्छ होनेको स्नेहनीरसक्रिया ।

कनकस्यफलंघृष्ट्वामधुनानेत्रमंजयेत् ॥ १०३ ॥
ईषत्कर्पूरसहितंस्मृतंनेत्रप्रसादनम् ॥

अर्थ—निर्मलीके फलको सहतमें घिसके उसमें थोडासा कपूर मिलायके नेत्र प्रसन्न होनेकेवास्ते अंजन करे ।

शिरोत्पातरोगपर अंजन ।

सर्पिःक्षौद्रंचांजनंस्याच्छिरोत्पातस्यशातने ॥ १०४ ॥

अर्थ—घी और सहत दोनोंको एकत्र कर नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्र रोगमें जो शिरोत्पात रोग है वह दूर होय ।

अंधापनदूरहोनेकी रसक्रिया ।

कृष्णसर्पवसाशंखःकतकाफलमंजनम् ॥
रसक्रियेयमचिरादंधानांदर्शनप्रदा ॥ १०५ ॥

अर्थ—काले सर्प (काले साँप) की वसा कहिये मांसस्नेह शंख और निर्मलीके बीज इन तीनोंको एकत्र खरलकर नेत्रोंमें अंजन करे तो मनुष्यको बहुत जल्दी दीखने लगे ।

लेखनचूर्णांजन ।

दक्षांडत्वक्छिलाकाचैः शंखचंदनगैरिकैः ॥
द्रव्यैरंजनयोगोऽयंपुष्पार्मादिविलेखनः ॥ १०६ ॥

अर्थ–१ मुरगेके अंडेकी सफेदी २ मनशिल ३ सफेद काँच ४ शंख ५ सफेद चंदन और ६ स्वर्णगैरिक अर्थात् नम्र जातका गेरू ये छः पदार्थ समान भाग ले बारीक पीसके चूर्ण करे। फिर इसको नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला और मांसार्मादिक रोग दूर हो।

रतौंधदूर होनेका लेखनचूर्ण ।

कणाच्छागयकृन्मध्येपक्त्वातद्रसपेषिता ॥
अचिराद्धंतिनक्तांध्यंतद्वत्सक्षौद्रभूषणम् ॥ १०७ ॥

अर्थ–बकरेके कलेजेके मांसमें पीपल रखके अंगारोंपर पाक करे। पश्चात् उस मांसका रस तथा पीपल इन दोनोंको पीसके जिस प्राणीके रतौंध आती है उसके अंजन करे तो रतौंध जाती रहे।

खुजलीआदिपर लेखनचूर्णाञ्जन ।

शाणार्धंमरिचंद्वौचपिप्पल्यर्णवफेनयोः॥ शाणार्धंसैंधवंशाणानव सौवीरकांजनम् ॥ १०८ ॥ पिष्टंसुसूक्ष्मंचित्रायांचूर्णांजनमिदंशुभम् ॥ कंडूकाचकफार्तानांमलानांचविशोधनम् ॥ १०९ ॥

अर्थ–काली मिरच अर्ध शाण, पीपल और समुद्रफेन ये दोनों दो दो शाण ले। सैंधानमक अर्ध शाण तथा सुरमा नौ शाण इन सब औषधोंको जिस दिन चित्रा नक्षत्र होय उस दिन अत्यंत बारीक पीस चूर्ण करे। फिर इस चूर्णका नेत्रोंमें अंजन करे तो खुजली तथा काँचबिंदु ये दूर हों। कफकरके पीडित नेत्रोंका तथा मलोंका शोधन होय।

सर्वनेत्ररोगोंपर मृदुचूर्णांजन ।

शिलायांरसकंपिष्ट्वासम्यगाप्लाव्यवारिणा ॥ गृह्णीयात्तज्जलंसर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ ११० ॥ शुष्कंचतज्जलंसर्वंपर्पटीसन्निभं भवेत् ॥ विचूर्ण्यभावयेत्सम्यक्त्रिवेलंत्रिफलारसैः ॥ १११ ॥ कर्पूरस्यरजस्तत्रदशमांशेननिक्षिपेत् ॥ अंजयेन्नयनेतेनसर्वदोषहरंहितवत् ॥ ११२ ॥ सर्वरोगहरंचूर्णंचक्षुषोःसुखकारिच ॥

अर्थ–खपरियाको पत्थरके खरलमें उत्तम रीतिसे खरल करके काजलसमान बारीक चूर्ण करे। पश्चात् उस चूर्णको जलमें डालके मिलाय देवे फिर उस जलको नितारके दूसरे पात्रमें निकाल लेवे और उस पात्रमें जो नीचे खपरियाके बडे २ टुकडे रह गए हों उनको दूर पटक देवे। फिर उस नितारे हुए पानीको दूसरे पात्रमें करके सुखाय ले इस प्रकार करनेसे उस खपरियाके चूर्णकी पपडी जम जावेगी, उसको निकालके चूर्ण करे। उस चूर्णको त्रिफलेके काढेकी तीन भावना देवे। पश्चात् उस चूर्णका दशवाँ भाग भीमसेनी कपूर मिलायके नेत्रोंमें अंजन करे तो सर्व दोष तथा सर्व रोग दूर होकर नेत्रोंको सुख होय। खपरियाको वैद्य परीक्षा करके लेवे। (यह मुंबईमें मिलती है)।

सर्वनेत्ररोगोंपर सौवीरांजन ।

अग्नितप्तंचसौवीरंनिषिंचेत्त्रिफलारसैः ॥ ११३ ॥ सप्तवेलंतथा स्तन्यैःस्त्रीणांसिक्तंविचूर्णितम् ॥ अंजयेन्नयनेतेनप्रत्यहंचक्षुषो- र्हितम् ॥ ११४ ॥ सर्वानक्षिविकारांस्तुहन्यादेतन्नसंशयः ॥

अर्थ–सुरमेको अग्निमें तपायके उसपर त्रिफलेके काढेको छिरक देवे। जब शीतल होजावे तब फिर अग्निमें तपावे और त्रिफलेका काढा छिडकके शीतल करे। इसप्रकार सातबार करे तथा इसी प्रकार सातबार स्त्रीका दूध छिडकके शीतल करे। फिर इसको बहुत बारीक पीसके सलाईसे अंजन करे तो यह अंजन नेत्रोंको बहुत हितकारी होय इसमें संदेह नहीं है।

शीशेकी सलाई बनानेकी विधि ।

त्रिफलाभृंगशुंठीनांरसैस्तद्वच्चसर्पिषा ॥ ११५ ॥
गोमूत्रमध्वजाक्षीरैःसिक्तोनागःप्रतापितः ॥
तच्छलाकाहरत्येवसर्वान्नेत्रभवान्गदान् ॥ ११६ ॥

अर्थ–त्रिफलेका काढा, भांगरेका रस, शुंठीका काढा, घी, गोमूत्र, सहत और बकरीका दूध, इन एक एकमें सात २ बार शीशेको बुझावे। फिर उस शीशेकी सलाई बनावे। इस सलाईको नेत्रोंमें फेरा करे तो संपूर्ण नेत्रके रोग दूर होवें।

प्रत्यंजन करनेकी विधि ।

गतदोषमपेताश्रुसंपश्यन्सम्यगंभासि ॥
प्रक्षाल्याक्षियथादोषंकार्यंप्रत्यंजनंततः ॥ ११७ ॥

अर्थ–उस शीशेकी सलाईको नेत्रोंमें फेरनेसे दोष दूर हो नेत्रोंसे पानी निकल जानेके पश्चात् रोगी क्षणमात्र शीतल जलको देखे फिर उसके नेत्र जलसे धोयके नेत्रोंमें प्रत्यंजन करे। वह प्रत्यंजन आगे इसी ग्रंथमें लिखा है।

सदोष नेत्र होनेसे निषेध।

नवानिर्गतदोषेऽक्ष्णिधावनंसंप्रयोजयेत् ॥
प्रत्यंजनंतीक्ष्णतप्तेनेत्रेचूर्णःप्रसादनः ॥ ११८ ॥

अर्थ–नेत्रोंसे जबतक दोष निःशेष न निकले तबतक नेत्रोंको जलसे नहीं धोवे तथा तीक्ष्ण अंजन करके नेत्र संतप्त होनेसे उसमें प्रत्यंजन चूर्ण लगावे। वह आगेके श्लोकमें कहा है अथवा प्रसादनचूर्ण नेत्रोंमें लगावे।

प्रत्यंजनचूर्ण।

शुद्धेनागेद्रुतेतुल्यंशुद्धंसूतंविनिक्षिपेत् ॥
कृष्णांजनंतयोस्तुल्यंसर्वमेकत्रचूर्णयेत् ॥ ११९ ॥
दशमांशेनकर्पूरंतस्मिंश्चूर्णेप्रदापयेत् ॥
एतत्प्रत्यंजनंनेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ १२० ॥

अर्थ–शीशेको शुद्ध[1] करके अग्निपर पतला करे। तथा शीशेको समभागशुद्ध किया हुआ पारा लेकर उस तपेहुए शीशेमें मिलाय देवे। पश्चात् इन दोनोंका समान भाग सुरमा लेके दोनोंमें मिलाय दे। फिर सबका चूर्ण करके उस चूर्णका दशवाँ हिस्सा भीमसेनी कपूर उस चूर्णमें मिलावे। इसको प्रत्यंजन चूर्ण कहते हैं। इस करके संपूर्ण नेत्ररोग दूर होते हैं तथा यह चूर्ण नेत्रोंको अमृतके समान गुण कर्ता है।

सर्पविषपर अंजन।

जयपालस्यमज्जांचभावयेन्निंबुकद्रवैः ॥
एकविंशतिवेलंततोवर्तिंप्रकल्पयेत् ॥ १२१ ॥
मनुष्यलालयाघृष्ट्वाततोनेत्रेतयांजयेत् ॥
सर्पदष्टविषंजित्वासंजीवयतिमानवम् ॥ १२२ ॥

अर्थ–जमालगोटेके भीतरकी मज्जा अर्थात् बीजोंके भीतरका बीज उसको नींबूके रसकी २१ इक्कीस पुट देके बारीक पीस लंबी गोली बनावे पश्चात् उसको मनुष्यकी लारमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो सर्पके काटनेसे जो विषबाधा होय वह दूर होकर मनुष्य सावधान होय।

---

१ सुवर्णादि धातुओंका शोधन मध्यखंडमें लिखा है उसी जगह शीशेका शोधन सो जानना अथवा शीशेकी सलाई बनानेमें जिस प्रकार शुद्धि लिखी है उस प्रकार करनी चाहिये।

हाथोंकी हथेलीसे नेत्र पोंछनेके गुण ।

भुक्त्वापाणितलंघृष्ट्वाचक्षुषोर्यदिदीयते ॥
जातारोगाविनश्यंतितिमिराणितथैवच ॥ १२३ ॥

अर्थ-भोजन करनेके पश्चात् हाथोंको धो, गीले हाथोंकी दोनों हथेली आपसमें घिसके नेत्रोंमें लगावे तो उत्पन्नहुए रोग तथा तिमिर रोग ये दूर होवें ।

शीतांबुपूरितमुखःप्रतिवासरंयःकालत्रयेणनयनद्वितयं जलेन ॥ आसिंचतिध्रुवमसौनकदाचिदक्षिरोगव्यथा-विधुरतांभजतेमनुष्यः ॥ १२४ ॥

अर्थ-प्रतिदिन दिनमें तीनवार शीतल जलसे मुखको भरके शीतल जलसे नेत्रोंको तीनवार छिडके तो अति दुःख देनेवाली नेत्ररोगसंबंधी पीडा वह कभी भी नहीं होवे ।

ग्रंथको समूलत्वसूचनापूर्वक स्वाभिमानका परिहार ।

आयुर्वेदसमुद्रस्यगूढार्थमणिसंचयम् ॥
ज्ञात्वाकैश्चिद्बुधैस्तैस्तुकृताविविधसंहिताः ॥ १२५ ॥
किंचिदर्थंततोनीत्वाकृतेयंसंहितामया ॥
कृपाकटाक्षविक्षेपमस्यांकुर्वंतुसाधवः ॥ १२६ ॥

अर्थ-समुद्रके समान (दुरवगाहन) आयुर्वेद, तत्संबंधी जो मणिके समान गूढार्थ उनके समुदायोंको उत्तमप्रकार जानके अग्निवेश चरकादिक मुनीश्वरोंने अनेक प्रकारकीजो संहिता कीहैं उन सब संहिताओंका कुछ २ सारांश लेकर यह शार्ङ्गधरसंहिता की हैं । इसपर महात्माजन कृपा करके अवलोकन करो ।

ग्रंथ पढनेका फल ।

विविधगदार्तिदारिद्रनाशनंयाहरिरमणीवकरोतियोगरत्नैः॥वि-लसतुशार्ङ्गधरसंहितासाकविहृदयेषुसरोजनिर्मलेषु॥१२७॥

अर्थ-योग कहिये काढे, चूर्ण, गुटिका, अवलेह इत्यादिक येही हुए रत्न इन करके अनेक प्रकारके ज्वरादिक जो रोग तत्संबंधी पीडारूप जो दरिद्र उसको दूर करनेवाली ऐसी यह शार्ङ्गधरसंहिता कमलके समान निर्मल कविके हृदयमें शोभित होवे । इस विषयमें दृष्टांत है कि, जैसे लक्ष्मी अनेक प्रकारके रत्नोंकरके अपने आश्रित (भक्तजनों) के दरिद्रको दूर करती है तैसेही यह संहिताभी ।

---

१ शर्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ । भोजनांते स रेन्नियं चक्षुस्तस्य न हीयते ।

अल्पायुषामल्पधियामिदानींकृतंसमस्तश्रुतिपाठशक्ति ॥
तदत्रयुक्तंप्रतिबीजमात्रमभ्यस्यतामात्महितप्रयत्नात् ॥ १२८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखंडः परिपूर्णः ॥

अर्थ—इस कलियुगमें प्रायः मनुष्य अल्पायुषी तथा अल्पबुद्धिवाले हैं इसीसे लोग (प्राणी) सर्वआयुर्वेद पढनेमें समर्थ नहीं हैं अतएव इस युगमें आत्माको हितकारी योग्य सारांशरूप ऐसा जो यह तंत्र उसका बडे प्रयत्न करके अभ्यास करो।

इति श्रीमाथुरपाठकज्ञातीयभारद्वाजकुलकैरवानंददायिराकेशश्रीकृष्णलाल-पुत्रदत्तरामनिर्मितमाथुरीशार्ङ्गधरव्याख्या समाप्तिमगमत्।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।
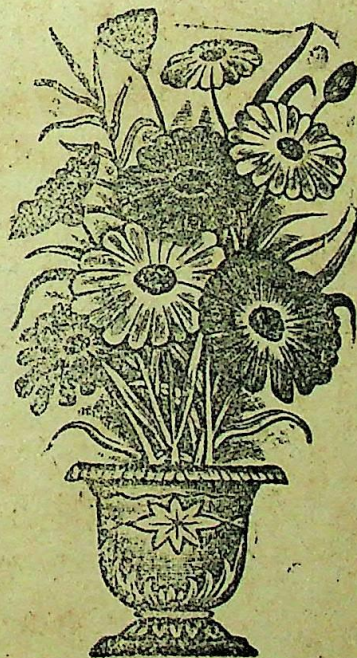
विक्रय्यपुस्तकें-वैद्यकग्रंथाः।

पुस्तकोंके नाम	कीमत.
चरकसंहिता-भाषाटीकास०	१०)
हारीतसंहिता भाषाटीकास०	३)
अष्टांगहृदय (वाग्भट) भाषाटीकासमेत	८)
भावप्रकाश भाषाटीकासमेत	८)
रसरत्नाकर भाषाटीकासमेत समस्त रसादि मारण शोधन आदि	५)
बृहन्निघंटुरत्नाकर भाषाटीकास० प्रथमभाग	३)
बृहन्निघंटुरत्नाकर भाषाटीकास० द्वितीयभाग	३)
बृहन्निघंटुरत्नाकर भाषाटीकास० तृतीयभाग	३)
बृहन्निघण्टुरत्नाकर भाषाटीकास० चतुर्थभाग	२॥)
बृहन्निघंटुरत्नाकर भाषाटीकास० पंचमभाग	५॥)
बृहन्निघंटुरत्नाकर भाषाटीकास० छठवाँ भाग	४॥)
बृहन्निघंटुरत्नाकर-सप्तम अष्टम भाग । अर्थात् "शालिग्रामनिघंटुभूषण,, (अनेक देशदेशांतरीय संस्कृत, हिंदी, बंगला, महाराष्ट्री, गौजरी, द्राविडी, तैलंगी, औत्कली, इंग्लिश, लैटिन, फारसी, अरबी भाषाओंमें सर्व औषधोंके नाम और गुणोंका वर्णन औषधियोंके चित्रोंसमेत)	८)
बृहन्निघंटुरत्नाकर (वैद्यक) संपूर्ण आठों भाग... ...	३०)
कामरत्न योगेश्वर नित्यनाथप्रणीत भाषाटीकासमेत ...	१॥)
पथ्यापथ्यभाषाटीकास० ...	॥)
चिकित्साखण्ड भाषाटीकास० प्रथमभाग	४)
शार्ङ्गधर निदानसह भाषाटीका प०दत्तराम चौबे मथुरानिवासीका बनाया	३)
चिकित्साक्रमकल्पवल्लीसंस्कृत काशीनाथकृत. भिषग्वरोंके देखनेयोग्य	२॥)
माधवनिदान उत्तम भाषाटीकास०ग्लेज	२)
" रफ कागज	१॥)
अंजननिदान भाषाटीका अन्वयसहित	॥)
हंसराजनिदान भाषाटीकास०	१)
चर्य्याचंद्रोदयभाषाटीकास० (व्यंजन बनानेका):	१॥)

सब पुस्तकोंका बडा "सूचीपत्र" आधे आनेका टिकट भेजनेसे भेजा जायगा,

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष-बंबई.